

☐ **Jagadan Keshavnagar Publication No. 1**

☐ **Board of Editors**

Aravind-Parashakti Mahadev Keshavnagar, Keshavnagar

Sri Devendra Mahadev Keshavnagar

Sri Ratan Mahadev

Dr. Shobhachand Mahadev Keshavnagar

☐ **Managing Editor**

Sachind Sutar, Keshavnagar

☐ **Promoter**

Munishi Vinayakumar 'Bhama'

Sri Mahendra Muni 'Dhakar'

☐ **Financial Assistance**

Sri Seth Khimwaraji Choudhary

☐ **Publishing Date**

Vir-Nirvan Samvat 2508, Vikram Samvat 2037, January 1991

☐ **Publishers**

Sri Agam Prakashana Samiti

Jain Sthanak, Pipaliya Bazar, Beawar (Raj.) [ India ]

Pin 305901

☐ **Printers**

Vaidic Yantralaya,

Kesar ganj, Ajmer.

☐ **Price 45 Rs.**

## समर्पण

जितनी तलस्पर्शी विद्या जैत सत  
में विस्तृत है, अनेकालोक वस्तुस्थितियाँ  
जितके उज्ज्वल आकार की रूपांगी है, जो  
आत्ममन्त्र के विद्याल भण्डार है,  
महामायाविद्या है, ज्योतिष शास्त्र के गर्भाक्ष  
आधार्य है,

जितका हृदय तलसीत-सा मृदुल एवं  
गहुर है, जितके लयबद्ध में अस्मादल  
सौजन्य झलकता है, सत जितके  
लोकलोक उपायों से भरी है,

उस महास्वविद्या श्रीमत्सोपायस्वर  
घण्टितमय उपायवाय

श्री कस्तूरचन्द्रजी महाराज

के तन्त्र-तन्त्रों में

☐ **Jagadguru Chaitanya's Padma Pratishtha**

☐ **Board of Editors**

Anuyoga-Pravartaka M - in Jagadgururaj 'Kaviratna'  
Sri Devendra Muni 'Sudatta'  
Sri Ratan Muni  
Pt. Shobhachar 'a Bhakta'

☐ **Managing Editor**

Srichand Surana 'Naras'

☐ **Promotor**

Munisri Vinayakumar 'Bhimra'  
Sri Mahendra Muni 'Dinakar'

☐ **Financial Assistance**

Sri Seth Khivrayji Choradia

☐ **Publishing Date**

Vir-Nirvan Samvat 2508, Vikram Samvat 2037, January 1941.

☐ **Publishers**

Sri Agam Prakashana Samiti  
Jain Sthanak, Pipaliya Bazar, Beawar ( Raj. ) [ India ]  
Pin 305901

☐ **Printers**

Vaidic Yantralaya,  
Kesar ganj, Ajmer.

## समर्पण

जिनकी तलास्पर्शी विद्वता जैन संघ  
में विस्तृत है, अनेकानेक वशाद्वियाँ  
जिनके उज्ज्वल आचार की साक्षी हैं, जो  
आत्म-ज्ञान के विशाल भण्डार हैं,  
बहुभाषाविद् हैं, ज्योतिष शास्त्र के गर्भस्थ  
आचार्य हैं,

जिनका हृदय नवनीत-सा मृदुल एवं  
मधुर है, जिनके व्यवहार में असाधारण  
सौजन्य झलकता है, संघ जिनके  
होकेतर उपकारों से भरी है,

उन महामुण्डिर श्रीमणिसंघरत्न  
पण्डितप्रवर उपाध्याय

श्री कस्तूरचन्द्रजी महाराज

के कर-कमलों में

□ मधुकर मुनि



1

## प्रकाशकीय

भगवान् श्रीमहावीर की २५ वीं निर्वाण-शताब्दी के पावन प्रसंग पर साहित्यप्रकाशन की एक नई उत्साहपूर्ण सहर उठी थी। उस समय जैनधर्म, जैनदर्शन और भगवान् महावीर के लोकोत्तर जीवन और उनकी कल्याणकारी शिष्याओं से सम्बन्धित विपुल साहित्य का मृज्जत हुआ। मुनि श्रीहजारीमल्लमूर्तिप्रकाशन ब्यावर की ओर से भी 'तीर्थंकर महावीर' नामक ग्रन्थ का प्रकाशन किया गया। इसी प्रसंग पर विद्वद्गुरु अष्टम मुनि (धन म. भा. अमल सप्त के युवाचार्य) श्रीमिथीमल जो म. 'मयुरा' के भन में एक उदात्त भावना जागृत हुई कि भ. महावीर से सम्बन्धित साहित्य का प्रकाशन हो रहा है, यह तो ठीक है, किन्तु उनकी भूल और पवित्र बाणी जिन भागों में सुरक्षित है, उन भागों को सर्वसाधारण को क्यों न सुनम कराया जाय, जो सम्पूर्ण बत्तीसी के रूप में वही उपलब्ध नहीं है। भगवान् महावीर की असली महिमा तो उस परम पावन सुप्रामयी बाणी में ही निहित है। मुनिश्री की यह भावना जैसे तो विरसंचित थी परन्तु उस वातावरण ने उसे अधिक प्रबल बना दिया।

मुनिश्री ने कुछ वरिष्ठ भागमत्री श्री आचर्य तथा विद्वानों के समक्ष अपनी भावना प्रस्तुत की। धीरे-धीरे भागमबत्तीसी के प्रकाशन की चर्चा बन पड़ती गई। भला कौन ऐसा विवेकशील व्यक्ति होगा जो इस पवित्रतम कार्य की मर्यादा और अनुमोदना न करे? अमल भगवान् महावीर के साथ भाज हारा जो सम्पर्क है, वह उनकी जगत्-पावन बाणी के ही माध्यम से है। भगवान् की देशना के सम्बन्ध में कहा गया है—'सम्ब-जगजीव-रक्षक-बधुपाए पावपण भगवया मुकहियं।' अर्थात् जगत् के समस्त प्राणियों की रक्षा और दया के लिए ही भगवान् की देशना प्रस्तुत हुई थी। अतः एक भगवद्वाणी का प्रचार और प्रसार करना प्राणिमान की रक्षा और दया का ही कार्य है। इससे अधिक अर्थ विवक्षित्वा का ग्रन्थ कोई कार्य नहीं हो सकता।

इस प्रकार भागमप्रकाशन के विचार को सभी ओर से पर्याप्त समर्थन मिला। तब मुनिश्री के वि. स. २०३५ के ब्यावर-चातुर्मास में ममाज के अग्रगण्य आचर्य एक विद्वानों की एक बैठक आयोजित की गई और प्रकाशन की रूप-रेखा पर विचार किया गया। सुदीर्घ चिन्तन-मनन में पश्चात् वैशाख शुक्ला १० को जो भगवान् महावीर के कैवलज्ञान-कल्याणक का शुभ दिन था, भागमबत्तीसी के प्रकाशन की घोषणा कर दी गई और शीघ्र ही कार्य प्रारम्भ कर दिया गया।

हमारे मुख्य सहयोगी श्रीगुड श्रीचन्द्रजी सुराणा 'सरस' में प्रबन्ध-सम्पादक का दायित्व स्वीकार किया और आचार्य के सम्पादन का कार्य प्रारम्भ कर दिया। साथ ही अन्य विद्वानों ने भी विभिन्न भागों के सम्पादन का दायित्व स्वीकार किया और कार्य प्रारम्भ हो गया।

तब तक प्रसिद्ध विद्वान् एवं भागों के गम्भीर अध्येता पंडित श्री श्रीचन्द्रजी भारिल्ल भी बम्बई से ब्यावर आगए और उनका मार्गदर्शन एवं सहयोग भी हमें प्राप्त हो गया। आपके बहुमूल्य सहयोग से हमारा कार्य प्रतिमुग्न हो गया और भार हल्का हो गया।

श्री. श्रीचन्द्रजी द्वारा सम्पादित-सूचित आचार्य (प्रथम श्रुतस्कन्ध) का विधोवन जोधपुर में युवाचार्य-आदर-समारोह के शुभ अवसर पर राजस्थान के महामहिम राज्यपाल श्री यशुवन्त तिलक के कर-कमलों से हुआ।

तत्परचात् द्वितीय ध्रुतस्कन्ध का तथा डा. छुनत्तालजी भास्त्री द्वारा गण्यादि-घातुनि उपागर-दत्त का शिरोध्या  
याचार्यप्रवर पूज्य श्रीजदमलजी म की जयन्ती के समारोह-प्रसंग पर मेडवा महार में, उपप्रसंगिक स्वामी  
श्रीब्रजलालजी म तथा युवाचार्यजी श्रीमधुकर मुनिजी म के साग्रित्य में भाग्य के विभाग विभागान्तरों एवं  
वैज्ञानिक डा. दोलतमिह्रजी महता के वरद हस्तों से हुषा । इस प्रकार सब मरु तीन पन्थ प्रकाशित हो चुके हैं ।  
चौथे श्री ज्ञाताधर्मकथाज्ञ का प्रकाशन दि. २५ जनवरी, १९०१ के दिन डेहू (नागौर) में होने वाले दोषा-ममारोह  
के अवसर पर करने का विचार किया गया था किन्तु राज्यव्यापी विप्लवमंड के कारण सम्भव न हो सका । अब  
इसे प्रकाशित करते समय हमें अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है ।

प्रस्तुत ग्राम्य का सम्पादन और अनुवाद प. शोभाचन्द्रजी भारिला ने किया है । उनके विषय में कुछ  
लिखने की आवश्यकता नहीं है । समिति की ओर से प्रकाशित होने वाले ग्राम्यों का पड़िनी पढ़ने निरीक्षण और  
समीक्षण करते हैं, फिर युवाचार्यश्रीजी उन्हें अन्तिम रूप से अवलोकन करते हैं और तत्परचात् ही उनका मुद्रण  
प्रारम्भ किया जाता है ।

स्वानाङ्गमूत्र मुद्रणार्थ भागरा भेज दिया गया है और अन्तर्दृष्टांग तथा अनुसरीगानिक प्रमेर में  
मुद्रित होने जा रहे हैं । मूत्रकृतांग, समवायाम आदि भी शीघ्र प्रेस में दिए जा सकेंगे, ऐसी आशा है ।

अन्त में हम श्रमसुख के युवाचार्य, सर्वतोभद्र श्रीमधुकर मुनिजी महाराज के धर्तीव आभारी हैं जिनकी  
शामनप्रभविना की उत्कट भावना, ग्राम्यों के प्रति उद्दाम भक्ति, धर्मज्ञान के प्रचार-प्रसार के प्रति तीव्र उत्कटा  
और साहित्य के प्रति प्रगतिम अनुराग की बदौलत हमें भी बीतराम-वाण्डी की किन्तु सेवा करने का मौभाग्य  
प्राप्त हो सका ।

सम्पादकमण्डल के अन्यतम सदस्य, सुप्रसिद्ध साहित्यकार और विद्वान् श्री देवेन्द्रमुनिजी शास्त्री ने  
प्रस्तुत ग्राम्य की विषय विस्तृत प्रस्तावना लिख कर हमें सहकारण का महसूस बढ़ाया है । इसके लिए हादिर  
आभार प्रकट करते हैं ।

सेवा के इस साहित्यिक अनुष्ठान में अपने सहयोगियों के भी हम कृतज्ञ हैं । सागर-वर-गङ्गाधी श्रावकवर्ग  
पक्षशी सेठ मोहनमलजी सा. पोरहुवा में समिति की अध्यक्षता स्वीकार कर और एक बड़ी धनराशि प्रदान कर  
हमें उत्साहित किया है । भावके अनुज छाता सेठ श्रीकृष्णजी सा. ने, जिनका परिषद अध्यक्ष दिया जा रहा है, प्रस्तुत  
ग्राम्य के प्रकाशन का भार बहुत किया है । इनके अतिरिक्त सेठ श्रीकृष्णलालजी बैताना, श्री मूलचन्दजी गुराणा  
श्रीदीनतरामजी पारख, श्रीरतनचन्दजी मोदी तथा श्री चौदमलजी विनायकिया का सहयोग विभिन्न रूपों में हमें  
प्राप्त हो रहा है । समिति के कार्यालय की व्यवस्था श्रीगुजानमलजी सेठिया आरम्भिता की भावना से कर रहे हैं ।  
हम इन सब के आभारी हैं ।

पुनराज शोशोदिया  
कार्यवाहक अध्यक्ष

जतनराज महता  
सहाय्य

श्री ग्राम्यप्रकाशन, समिति, व्यावर (राजस्थान)

# आमुख

जैनधर्म, दर्शन व संरहित का मूल आधार बीतराग सर्वज्ञ की काणी है। सर्वज्ञ धर्मात् आत्मज्ञाता। मनुष्य रूप से आत्मदर्शन करने वाले हो विश्व का समग्र दर्शन कर सकते हैं। जो समग्र को जानते हैं, वे ही तत्त्वज्ञान का यथार्थ निरूपण कर सकते हैं। परमहितकर नि धर्मस का यथार्थ उद्देश कर सकते हैं।

सर्वज्ञों द्वारा कथित तत्त्वज्ञान, आत्मज्ञान तथा आचार-व्यवहार का सम्यक् परिचय 'भागम' शास्त्र या मूल के नाम से प्रसिद्ध है।

तीर्थंकरों की काणी मुक्त मुक्तों की दृष्टि के समान होती है, महान् प्रज्ञावान् गणधर उमे मूल रूप से प्रथित करके व्यवस्थित 'भागम' का रूप दे देने हैं।

आज जिनसे हम 'भागम' नाम से अभिहित करने हैं, प्राचीन समय में वे 'गणपिटक' कहलाते थे। 'गणपिटक' में समग्र ज्ञानमार्गी का समावेश हो जाता है। परषादपूर्वी काल में हमने अग, उपाग, मूल, छेद, धादि अनेक भेद किये गये।

जब लिखने की परम्परा नहीं थी, तब भागमों की स्मृति के आधार पर या गुरु-परम्परा में सुरक्षित रखा जाता था। भगवान् महावीर के बाद सवन्नग एक हजार वर्ष तक 'भागम' स्मृति-परम्परा पर ही चले आये थे। स्मृतिदुर्बलता, गुरुपरम्परा का विच्छेद तथा अन्य अनेक कारणों से धीरे-धीरे भागमज्ञान भी नुप्त होता गया। महासरोवर का जन सूखता-सूखता गोल्पद मात्र ही रह गया। तब देवर्द्धिगणी समाश्रमण ने धर्मगो का सम्मेलन बुलाकर, स्मृति-दोष से मुक्त होते भागमज्ञान को, जिनकाणी को सुरक्षित रखने के पवित्र उद्देश्य से लिपिबद्ध करने का ऐतिहासिक प्रयास किया और जिनकाणी को पुस्तकाकृत करके आने वाली पीढ़ी पर भवर्णेनीय उपकार किया। यह जैन धर्म, दर्शन एवं संरक्ति की धारा को प्रवहमान रखने का भदमून उपक्रम था। भागमों का यह प्रथम सम्पादन वीरनिर्वाण के ९८० या ९९३ वर्ष पश्चात् सम्पन्न हुआ।

पुस्तकाकृत होने के बाद जैन भागमों का स्वरूप मूल रूप में भी सुरक्षित हो गया, किन्तु कालदोष, बाहरी आक्रमण, आन्तरिक मतभेद, विषह, स्मृति-दुर्बलता एवं प्रमाद धादि कारणों से भागमज्ञान की शुद्ध धारा, धर्मबोध की सम्यक् गुरु-परम्परा धीरे-धीरे क्षीण होने से नहीं रकी। भागमों के अनेक महत्त्वपूर्ण सन्दर्भ, पद तथा गूढ़ अर्थ क्षिप्त-विच्छिन्न होते चले गए। जो भागम जिनसे जाते थे, वे भी पूर्ण शुद्ध नहीं होते थे। उनका सम्यक् अर्थ-ज्ञान देने वाले भी विरले ही रहे। अन्य भी अनेक कारणों से भागम-ज्ञान की धारा संकुचित होनी गयी।

विक्रम की सोलहवीं शताब्दी में लोकाशाह ने एक आतिकारी प्रयत्न किया। भागमों के शुद्ध धीरे यथार्थ अर्थ-ज्ञान को निरूपित करने का एक साहसिक उपक्रम पुनः चालू हुआ। किन्तु

१. अर्थ भासद भरहा भुत गति गणधर निवर्ण।

आचार्यप्रवर पूजा श्रीजयमलजी म की जयन्ती के समारोह-प्रसंग पर मेडिता शहर में, उपप्रवर्तक स्वामी योगेश्वरजी म तथा युवाचार्यजी श्रीमधुकर मुनिजी म. के सांनिध्य में भारत के विख्यात शिक्षाशास्त्री एवं मानिक डा. दीनदत्तजी महता के वन्दन हस्तों से हुआ। इस प्रकार अब तक तीन ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। तीसरे श्री आचार्यप्रवरपूजा का प्रकाशन दि. २५ जनवरी, १९८१ के दिन देहू (नागौर) में होने वाले दोषा-समारोह के अवसर पर करने का विचार किया गया था किन्तु राश्वव्यापी विद्युत्कट के कारण सम्भव न हो सका। अब उसे प्रकाशित करने समय हम अत्यन्त प्रमत्तता का अनुभव हो रहा है।

प्रस्तुत ध्याम का सम्पादन और अनुवाद प श्रीभाचन्द्रजी भारिल्ल ने किया है। उनके विषय में कुछ लिखने की आवश्यकता नहीं है। समिति की ओर से प्रकाशित होने वाले ध्यामों का पद्धतजी पहले निरीक्षण और सहीपन करना है, फिर युवाचार्यजी उन्हे अन्तिम रूप में अवलोकन करते हैं और तत्पश्चात् ही उनका मुद्रण प्रारम्भ किया जाता है।

स्वाध्यायप्रवृत्त मुद्रणार्थ ध्यामों भेज दिया गया है और अन्तर्दृष्टांत तथा अनुत्तरीयगतिक ध्यामों में सुधार होने का रहे है। गृहहण, ममवायाग आदि भी छोड़ प्रेस में दिए जा सकेंगे, ऐसी आशा है।

ध्याम में हम धर्मशास्त्र के युवाचार्य, सर्वोपदेष्टा श्रीमधुकर मुनिजी महाराज के अतीव आभारी हैं जिनकी मार्गदर्शना की उद्भूत भावना, ध्यामों के प्रति उद्दाम भक्ति, धर्मज्ञान के प्रचार-प्रसार के प्रति तीव्र उत्कण्ठ और साहित्य के प्रति अग्रिम अनुग्रह की बदौलत हमें भी जीवन-व्यापी की क्वचित् सेवा करने का सीमाव्य प्राप्त हो गया।

सम्पादनसमय के अत्यन्त सदस्य, सुप्रसिद्ध साहित्यकार और विद्वान् श्री देवेन्द्रमुनिजी शास्त्री ने प्रस्तुत ध्याम की विराट् प्रकाशना निष्ठ कर इस सत्कारण का महत्त्व बढ़ाया है। इसके लिए हार्दिक आभार प्रकट करने हैं।

मेरा है इस साहित्यिक अनुष्ठान में करने सहयोगियों के भी हम कृतज्ञ हैं। सागर-वर-गम्भीर आचार्यवर्ग वरधी केड आदमजी म्. भोरिया ने समिति की अग्रगण्य स्वीकार कर और एक बड़ी धनराशि प्रदान कर हमें उत्साहित किया है। आगे के अनुक आना मेड श्रीवाराजी मा. ने, जिनका परिषद अग्रगण्य दिया जा रहा है, प्रस्तुत ध्याम के प्रकाशन का भार सहन किया है। उनके अनिरुद्ध मेड श्रीवाराजी मा. ने, श्री भूमिपदजी गुराणा श्रीवाराजी मा. ने, श्रीवाराजी मा. ने तथा श्री वीरमजी विनायका का सहयोग विभिन्न रूपों में हमें प्राप्त हो रहा है। समिति के कार्यरत श्रीवाराजी मा. ने ध्याम प्रकाशना की भावना से कर रहे हैं। हम इस तरह के ध्यामों हैं।

गुणराज शीलोदिन  
१९८६-८७

जगतनारायण महता  
महामन्त्री  
श्री आचार्यप्रवर, समिति, आचार (राजस्थान)

श्वेताम्बर मूर्तिपूजक परम्परा के विद्वान् श्रमण स्व. मुनि श्री पुष्पविजय जी ने ध्यागम-सम्पादन की दिशा में बहुत ही व्यवस्थित व उत्तमकोटि का कार्य प्रारम्भ किया था। उनके स्वर्गवास के पश्चात् मुनि श्री जम्बूविजय जी के तत्त्वावधान में यह सुन्दर प्रयत्न थम रहा है।

उक्त सभी कार्यों का विह्वल अवलोकन करने के बाद मेरे मन में एक संकल्प उठा। धाज वही तो ध्यागमों का मूल मान्य प्रकाशित हो रहा है और कहीं ध्यागमों की विशाल व्याख्याएँ की जा रही हैं। एक, पाठक के लिए दुर्बोध है तो दूसरी जटिल। मध्यम मार्ग का अनुसरण कर ध्यागमवाणी का भावोद्घाटन करने वाला ऐसा प्रयत्न होना चाहिए जो सुबोध भी हो, सरल भी हो, संक्षिप्त हो, पर सारपूर्ण व सुगम हो।

गुरुदेव ऐसा ही चाहते थे। उसी सज्जना को लक्ष्य में रखकर मैंने ४-५ वर्ष पूर्व इन विषय में चिन्तन प्रारम्भ किया। सुदीर्घ चिन्तन के पश्चात् वि. स २०३६ बैशाख शुक्ल १० महावीर कैवल्यादिबन्ध को हट्ट निर्णय करके ध्यागम-वक्तोसो का सम्पादन-विवेचन कार्य प्रारम्भ कर दिया और सब पाठकों के हाथों में ध्यागम-ग्रन्थ, कमरा पहुँच रहे हैं, इसकी मुझे अत्यधिक प्रसन्नता है।

ध्यागम-सम्पादन का यह ऐतिहासिक कार्य पूज्य गुरुदेव की पुष्पस्मृति में आयोजित किया गया है। धाज उनका पुष्पस्मरण मेरे मन को उत्तमसित कर रहा है। साथ ही मेरे वन्दनीय गुरु-ध्याता पूज्य स्वामी श्री हजारीमलजी महाराज की प्रेरणाएँ—उनकी ध्यागम-भक्ति तथा ध्यागम सम्बन्धी तलस्पर्शी ज्ञान, प्राचीन धारणाएँ, मेरा सम्बल बनी हैं। अतः मैं उन दोनों स्वर्गीय ध्याताओं की पुष्पस्मृति में विभोर हूँ।

शामनसेवी स्वामीजी श्री बजलालजी महाराज का मार्गदर्शन, उत्साह-सहजान, सेवा-भावी शिष्य मुनि विनयकुमार व महेन्द्र मुनि का साहचर्य-बल, सेवा-सहयोग तथा महासती श्री फानु'वर जी, महामती श्री अणुकारकु'वरजी, परमविदुषी साध्वी श्री उमराव कु'वर जी, 'भर्चना'—की विनम्र प्रेरणाएँ मुझे सदा प्रोत्साहित तथा कार्यनिष्ठ बनाये रखने में सहायक रही हैं।

मुझे हट्ट विश्वास है कि ध्यागम-वाणी के सम्पादन का यह सुदीर्घ प्रयत्न-साध्य कार्य सम्पन्न करने में मुझे सभी सहयोगियों, धावकों व विद्वानों का पूर्ण सहकार मिलता रहेगा और मैं अपने लक्ष्य तक पहुँचने में सक्षम बने रहूँगा।

इसी भाषा के साथ.....

—मुनि मिश्रीमल 'मधुकर'

कुछ बाल बाद पुन उसमे भी व्यवधान आगए। साम्प्रदायिक द्वेष, सैद्धान्तिक विग्रह तथा विधिकारो की भाषाविषयक अल्पज्ञता आगमो की उपाधि तथा उनो मध्यम मार्गबोध में बहुत बड़ा बिप्न बन गए।

उत्तरीगवी शताब्दी के प्रथम चरण में जब आगम-मुद्रण की परम्परा चली तो पाठरो को कुछ सुविधा हुई। आगमो की प्राचीन टीकाएँ, चूनि व निर्वृत्ति जब प्रकाशित हुई तथा उनके आधार पर आगमो का सरल व स्पष्ट भावबोध मूर्तित होकर पाठरो को गुप्त हुआ तो आगमज्ञान का पठन-पाठन स्वभावतः बढ़ा, सैकड़ो जिज्ञासुओं में आगम-संशोधन की प्रवृत्ति जगी व जैनतर देशो-विदेशो विद्वान् भी आगमो का अनुशीलन करने लगे।

आगमो के प्रकाशन-सम्पादन मुद्रण के कार्य में जिन विद्वानो तथा मनीषी आगमों ने ऐतिहासिक कार्य किया, पर्याप्त सामग्री के अभाव में आज उन सबका नामो-नेप कर पाना कठिन है। फिर भी मैं स्वामिकवासी परम्परा के कुछ महान् मुनियों का नाम ग्रहण अवश्य ही कर गा।

पूज्य श्री अमोलक ऋषि जो महाराज स्वामिकवासी परम्परा के वे महान् गार्हो व दुर्द-सकल्यवासी मुनि थे, जिन्होंने अल्प साधनों के चल पर भी पूरे सत्तोस शूत्रो की हिन्दी में अनुदित करके जन-जन को सुलभ बना दिया। पूरी सत्तोसी का सम्पादन प्रकाशन एक ऐतिहासिक कार्य था, जिससे सम्पूर्ण स्वामिकवासी व तेरापथी समाज उपकृत हुआ।

**गुरुदेव पूज्य स्वामी श्री जोरावरमलजी महाराज का एक सकल्य :**

मैं जब गुरुदेव स्व स्वामी श्री जोरावरमलजी महाराज के तत्त्वावधान में आगमो का अध्ययन कर रहा था तब आगमोदय समिति द्वारा प्रकाशित कुछ आगम उपलब्ध थे। उन्ही के आधार पर गुरुदेव मुझे अध्ययन कराते थे। उनको देखकर गुरुदेव की सगता था कि यह महाराज यद्यपि काफी धर्म-मान्य हैं, एवं अब तक के उपलब्ध सस्करणों में काफी शूद्र भी है, फिर भी अनेक स्थान असंगत हैं। मूल पाठ में एवं उसकी वृत्ति में कहीं-कहीं अन्तर भी है, वही वृत्ति बहुत मशिम्ल है।

गुरुदेव स्वामी श्री जोरावरमलजी महाराज स्वयं जैन सूत्रो के प्रकाशक पण्डित थे। उनकी मेधा बरी अत्युत्तम व सङ्कणा-प्रधान थी। आगमसाहित्य की यह स्थिति देखकर उन्हें बहुत पीडा होनी थी व वे बार-बार उन्हीने व्यक्त भी किया कि आगमो का शूद्र, सुन्दर व सर्वोपयोगी प्रकाशन हो तो बहुत लोगों का कल्याण होगा, कुछ परिस्थितियों के कारण उनका सकल्य, मात्र भावना तक सीमित रहा।

हमी बीष आचार्य श्री जवाहरलालजी महाराज, जैनधर्मविचार आचार्य श्री आरमा-रामजी महाराज, पूज्य श्री चामीनातजी महाराज आदि विद्वान् मुनियो ने आगमो की सुन्दर व्याख्या व टीकाएँ लिखकर अथवा अपने तत्त्वावधान में लिखवाकर इस बमी को पूरा किया है।

बर्तमान में तेरापथ सम्प्रदाय के आचार्य श्री गुप्तजी ने भी यह भारीय प्रयत्न प्रारम्भ किया है और अनेक स्तर से उनका आगम-कार्य चल रहा है। मुनि श्री कन्दैयामाल जी 'कर्मस' आगमो को सम्पादन की धनुषियों में बर्णीत करने का मौनिक एवं महत्त्वपूर्ण प्रयास कर रहे हैं।

श्वेताम्बर मूर्तिपूजक परम्परा के विद्वान् श्रमण स्व. मुनि श्री पुण्यविजय जी ने भागम-सम्पादन की दिशा में बहुत ही व्यवस्थित व उत्तमकौटि का कार्य प्रारम्भ किया था। उनके स्वर्गवास के पश्चात् मुनि श्री जम्बूविजय जी के सत्वावधान में यह सुन्दर प्रयत्न चल रहा है।

उक्त सभी कार्यों का विहंगम अवलोकन करने के बाद मेरे मन में एक सकल्प उठा। आज नहीं तो भागमों का मूल मात्र प्रकाशित हो रहा है और कहीं भागमों की विशाल व्याख्याएँ की जा रही हैं। एक, पाठक के लिए दुर्बोध है तो दूसरी जटिल। मध्यम मार्ग का अनुसरण कर भागमवाणी का भावोद्घाटन करने वाला ऐसा प्रयत्न होना चाहिए जो सुबोध भी हो, सरल भी हो, सदिष्ट हो, पर सारपूर्ण व शुभ हो।

गुरुदेव ऐसा ही चाहते थे। उसी भावना को लक्ष्य में रखकर मैंने ४-५ वर्ष पूर्व इस विषय में चिन्तन प्रारम्भ किया। सुदीर्घ चिन्तन के पश्चात् वि. सं २०३६ वैशाख शुक्ल १० महावीर कैवल्यदिवस को इस निर्णय करके भागम-वस्तीसी का सम्पादन-विवेचन कार्य प्रारम्भ कर दिया और अज पाटकों के हाथों में भागम-ग्रन्थ, जमग पहुँच रहे हैं, इसकी मुझे अत्यधिक प्रमत्तता है।

भागम-सम्पादन का यह ऐतिहासिक कार्य पूज्य गुरुदेव की पुण्यस्मृति में आयोजित किया गया है। आज उनका पुण्यस्मरण मेरे मन को उत्तेजित कर रहा है। साथ ही मेरे वन्दनीय गुरु-आत्मा पूज्य स्वामी श्री हजारीमनजी महाराज की प्रेरणाएँ—उनकी भागम-भक्ति तथा भागम सम्बन्धी तलस्पर्शी ज्ञान, प्राचीन धारणाएँ, मेरा सम्बन्ध बनी हैं। अतः मैं उन दोनों स्वर्गीय आत्माओं की पुण्यस्मृति में विभोर हूँ।

शासनसेवी स्वामीजी श्री ब्रजलालजी महाराज का मार्गदर्शन, उत्साह-सहर्दन, सेवा-भावी शिष्य मुनि विनयकुमार व महेन्द्र मुनि का साहचर्य-जल, सेवा-सहयोग तथा महासती श्री कानकुँवर जी, महासती श्री अणकारकुँवरजी, परमविदुषी साध्वी श्री उमराव कुँवर जी, 'अर्चना'—की विनम्र प्रेरणाएँ मुझे सदा प्रोत्साहित तथा कार्यनिष्ठ बनाये रखने में सहायक रही हैं।

मुझे इस विश्वास है कि भागम-वाणी के सम्पादन का यह सुदीर्घ प्रयत्न-साध्य कार्य सम्पन्न करने में मुझे सभी सहयोगियों, आचर्य व विद्वानों का पूर्ण सहकार मिलता रहेगा और मैं अपने लक्ष्य तक पहुँचने में यत्निशील बना रहूँगा।

इसी भाषा के साथ.....

—मुनि मिथीमल 'मधुकर'



श्री आगम प्रकाशाल समिति, व्यातर  
(कार्यकारी समिति)

☐ अध्यक्ष

सेठ श्री मोहनमन जो गा चोरडिया

☐ कार्यवाहक अध्यक्ष

सेठ श्री गुमराज जो गिनोडिया

☐ उपाध्यक्ष

श्री कंवरलाल जो बेनाला  
श्री दीलतराम जो पारग  
श्री भवरलाल जो श्रीभीमान  
श्री रतनचन्द जो चोरडिया

☐ महामन्त्री

श्री जतनराज जी मेहता

☐ मन्त्री

श्री ज्ञानराज जी मूधा  
श्री चांदमल जी विनायकिया

☐ कोषाध्यक्ष

श्री गुमानमल जी चोरडिया (मद्रास)  
श्री रतनचन्द जी मोदी (व्यावर)

☐ सदस्यगण

श्री मूलचन्द जी सुराणा  
श्री सायरचन्द जी चोरडिया  
श्री जेठमल जी चोरडिया  
श्री मोहनसिंह जी लोढा  
श्री बादलचन्द जी मेहता  
श्री मागीसाल जी सुराणा  
श्री माणकचन्द जी बेताला  
श्री भवरलाल जी गोठी  
श्री भंवरलाल जी मूधा  
श्री प्रकाशचन्द जी जैन [परामर्शदाता]



५—श्री जैन एजुवेशन सोसाइटी के घेठनें हैं ।

६—श्री जयमल जैन इन्सुरांस के सदस्य हैं ।

७—श्री एम. एम. जैन महिलासंघ के अध्यक्ष हैं ।

८—श्री दक्षिण भारत स्वाच्छास्य समिति मद्रास के सदस्य हैं ।

उल्लिखित संस्थाओं के माध्यम से हमें वे माध्यम-माध्यम प्राप्त हुए हैं जो हमारे उत्तर देश में वि. वि. संस्थाओं की स्थापना भी की है—

१—श्रीबाराज चोरडिया डिस्पेन्सरी, माबर रोड, मद्रास

२—श्रीबाराज चोरडिया चेरेटेबिल ट्रस्ट, मद्रास

३—श्रीमती भवरीकु वर चोरडिया चेरेटेबिल, मद्रास

इस संक्षिप्त परिचय से ही पाठक समझ सकेंगे कि गेड गिरिगात्रजी का जीवन विना बहुतगुणी है । विशेषतः उल्लेखनीय यह है कि चोरडियाजी अपनी भाग्यशाली हैं । वे सड़कों के पीछे गयी दीहों, सड़कों उनके पीछे दीहती है । जब, जहाँ, जिस व्यवसाय में हाथ डालने हैं, पूर्ण सफलता प्राप्त कराने के लिए सफल रहती है ।

इतना सब होते हुए भी चोरडियाजी बहुत सादगी-गमन्द, मौज्ज्यगुस्ति, भद्रहृदय, अल्प-प्राणी और प्रभावशाली व्यक्तित्व के धनी हैं ।

उल्लेख करते हुए अत्यन्त प्रसन्नता है कि प्रस्तुत शास्त्र 'ज्ञाताधर्मस्था' के प्रकाशन का स्वयं-भार धारण ही वहन किया है । इस उदारता के लिए समिति आपकी अतीव आभारी है ।

□□

**सम्पादकोप : यन्त्रिजित**

[illegible][illegible][illegible]

(가) 본회의 의결사항은 본회의록에 기록한다.

[illegible]

1. 1950년대 초반에 시작된 '백두대간' 탐사대는 백두대간을 횡단하는 과정에서 많은 어려움을 겪었다. 특히 겨울철에는 눈이 깊어 걷기 힘들었고, 여름에는 폭염과 가뭄이 심했다. 탐사대는 이러한 자연적 장애를 극복하기 위해 다양한 방법을 시도했다. 예를 들어, 겨울에는 눈길을 뚫고 걷고, 여름에는 새벽에 출발하여 낮에는 휴식을 취하는 등.

[illegible][illegible][illegible]

॥ १॥ सर्वभूतानां मां भक्त्या प्रपन्नानां हृदयानां मे निवासि, अहं भुवि सर्वत्र भक्त्या प्रपन्नानां भवति ॥



द्वारा निर्धारित पद्धति का अनुसरण करते हुए तैयार किया गया है। इसमें स्थान-स्थानपर 'जाव' शब्द का प्रयोग करके इसी ग्रन्थ में ग्रन्थन आए पाठों को तथा ग्रन्थ भागों में प्रयुक्त पाठों को संक्षिप्त करने का प्रयास किया गया है। फिर भी ग्रन्थ भरने काय मे बृहदाकार है। अतएव ग्रन्थ अत्यधिक स्पष्टकाय न बन जाए, यद्वात ध्यान मे रख कर 'जाव' शब्द मे आह्य आवायक और अत्युपयोगी पाठों को ब्रैकेट मे दे दिया गया है, किन्तु जिस 'जाव' शब्द से आह्य पाठ बारबार आते हो रहते हैं, जैसे 'मिस-एराइ', ग्रन्थ पाण, आदि वहाँ प्रति परिचित होने के कारण यो हो रहते दिया गया है। वही-वही उन पाठों के स्थान टिप्पणों मे उल्लिखित कर दिए गए हैं।

व्यापक होने से प्रस्तुत ग्रन्थ को आशय को समझ लेना कठिन नहीं है। अतएव प्रत्येक सूत्र-वर्णिका का विवेचन करते आशय को स्पष्टकाय बनाने मे सहायता है, परन्तु जहाँ आवायक प्रतीत हुआ वहाँ विवेचन किया गया है।

प्रत्येक अध्यायन के आरम्भ से पूर्व उनका साम्प्रतिक रहस्य पाठक को हृदयगत करने के लक्ष्य से सार-संक्षेप दे दिया गया है।

आवायक टिप्पण और पाठान्तर भी दिए गए हैं।

अनेक स्थलों मे भूतपाठ के 'जाव' शब्द का 'यावत्' रूप हिन्दी-धनुवाद में भी प्रयुक्त किया गया है। यद्यपि प्रचलित भाषा मे ऐसा प्रयोग नहीं होना किन्तु ग्राह्य नहीं जानने वाले और केवल हिन्दी-धनुवाद पढ़ने वाले पाठकों को भी आगमिक भाषापद्धति का विचित्र आभास हो सकेगा, इस दृष्टिकोण से धनुवाद में 'यावत्' शब्द का प्रयोग किया गया है। 'यावत्' शब्द का अर्थ है—जयंत या तक। जिस शब्द या वाक्य से आगे जाव (यावत्) शब्द का प्रयोग हुआ है वहाँ से आरम्भ करके, जिस शब्द के पहले वह हो, उसके बीच का पाठ यावत् शब्द मे समाया जाता है। इस प्रकार पुनर्लक्षित से बचने के लिए 'जाव' शब्द का प्रयोग किया जाता है।

ग्रन्थ मे तीन परिशिष्ट दिए गए हैं। प्रथम परिशिष्ट मे उपनय-गाथाएँ दी गई हैं और उनका हिन्दी भाषा मे अर्थ भी दे दिया गया है। ये गाथाएँ मूल आगम का भाग नहीं हैं, अतएव इन्हें मूल से पृथक् रखना गया है। फिर भी अध्ययन का समं प्रकाशित करने वाली हैं, अतएव पठनीय हैं। दूसरे परिशिष्ट मे, प्रस्तुत आगम मे प्रयुक्त ध्वनिविशेषों की प्रकारादि क्रम से सूची दी गई है और तीसरे मे स्थल-विशेषों की सूची है जो धनुसंज्ञान-प्रतिमियों के लिए विशेष उपयोगी होगी।

भूतपाठ के निर्धारण मे तथा 'जाव' शब्द की पूर्ति मे मुनि धीनयमतजी म. द्वारा सम्पादित 'अग-सुताएँ' का अनेकानेक स्थलों पर उपयोग किया गया है, एतदर्थ उनके आभारी हैं। अर्थ करने मे भी अभयदेव मूरि की टीका का अनुगमन किया गया है। इनके अतिरिक्त अनेक भागों और ग्रन्थों से सहायता ली गई है, उन सब के प्रति कृतज्ञता भावित करना कर्तव्य है।

भाषा है प्रस्तुत संस्करण जिज्ञासु स्वाध्यायप्रतिमियों, आगम-संविदों तथा छात्रों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।



# प्रस्तावना

धर्म, दर्शन, समाज और संस्कृति का अध्ययन करने के लिए धर्म-ग्रन्थों की गहरी नींव पर टिका हुआ है। विश्व में जिनके भी धर्म और संस्कृति हैं उनके लिए महापुरुषों ने, प्रवक्ताओं ने जो पावन उपदेश प्रदान किये वे उपदेश वेद, त्रिपिटक, आदिबिना, कुरान या सलिफिट के रूप में जाने और पहचाने जाते हैं। उन्हीं धर्मों को संग्रहीत कर विषय के धर्म और दर्शन लिखित हुए हैं।

## वेद और आगम

ब्राह्मण संस्कृति के धर्म-ग्रन्थ वेद हैं। वेद वैदिक चिन्तकों के विचारों की समग्र निधि है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद के अन्तर्गत वेदों में परिवर्तन करने हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों में वेदों के शब्दों का व्यापक अर्थ दिया गया है। वहीं वेदमन्त्र के शब्द अर्थ-अर्थ न हो जायें, इसके लिए वे मतलब रखे। वेदों के शब्दों में अर्थान्तरिक का आरोप करने में उनमें अर्थपरिवर्तन नहीं हुए। क्योंकि वैदिक में संहितापाठ, पादपाठ, प्रमपाठ, जटापाठ, धनपाठ के रूप में वेदमन्त्रों के पठन और उच्चारण का वैज्ञानिक क्रम बताया था, जिसके कारण वेदों का शाब्दिक अर्थ-वर्तमान में जो वास्तविक विद्यमान है। बौद्ध और जैन चिन्तकों ने शब्दों की ओर अधिक ध्यान न देकर धर्म पर विशेष ध्यान दिया। उन्होंने ही लिखी मात्र भी उद्देश्य नहीं की, जिससे जैन आगम और बौद्ध त्रिपिटकों में अनेक पाठान्तरण हो गये हैं। विविध पाठान्तरों के होने पर भी धर्म के सम्बन्ध में मतभेद नहीं है। जैन और बौद्ध शास्त्रों में अर्थान्तरिक का आरोप नहीं किया गया। इसलिए भी उनमें अर्थ-परिवर्तन होने रहे हैं।

जैन, बौद्ध और वैदिक साहित्य का जब हम तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन करते हैं तो यह स्पष्ट हो जाता है कि वेद एक ऋषि के द्वारा लिखित नहीं है, अपितु अनेक ऋषियों ने समय-समय पर मन्त्रों की रचना की जिसके कारण वेदों में विविधता है। सभी ऋषियों के विचारों में एकत्वता हो यह प्रमाण नहीं है। वैदिक साहित्यमनुसार ऋषिगण अनेकपट्टा थे, अनेकपट्टा नहीं थे, उन्होंने अपने अनेकश्रुतों के द्वारा और अपना उन्हीं शब्दों में अभिव्यक्ति दी थी।

पर जैन आगम और बौद्ध त्रिपिटक धर्मग्रन्थ अनेकान्तरों और तथ्यान्तरों के विस्तार का ही धर्म है। उनके प्रवक्ता एक ही हैं, इसलिए उनमें विविधता नहीं आई है। दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि वेदों में ही शब्द हैं जब कि जैन आगमों में तीर्थंकरों के शब्द नहीं हैं। तीर्थंकर तो धर्म रूप में प्रवक्ता करते हैं, शब्द रूप में श्रवण रचना गण्य करते हैं। अतः जैन आगम के शब्द गण्यधर्मों के हैं

व्यक्तिकृतितु कि गा० १९२ (अ) धर्मशास्त्र भा-१. ६४-७२.





केन में सक्तन करते हैं। भगवान् महावीर के एकात्म गणधर थे। उनके सभी गणधर धारणी शक्ति में सम्पूर्ण में उनकी रचना करने हैं। जादिक शक्ति से सभी गणधरों को रचना एक सत्तम हो यह संभव नहीं है पर सच सभी का एक था। भगवान् महावीर के गणधर स्यारह थे किन्तु उनके गण भी थे<sup>२</sup>, पहले तो सानवें तक गणधर गण-एक गण को बाचना देने थे। बादमें मोचें गणधर की एक बाचना की और दसवें तथा स्यारहवें की भी एक बाचना थी। वे गणधर परस्पर सम्मिलित रूप से बाचना देने थे। इसलिए स्थानांग<sup>३</sup> और कल्पमूत्र<sup>४</sup> में यह स्पष्ट बताया है कि स्यारह गणधरों की भी बाचनाएँ हुईं। जो गणधर भगवान् महावीर के रहने हुए ही मृत हो चुके थे। इन्द्रभूति गौतम और मुचमी, ये दोनों भगवान् महावीर के मुक्त होने के पश्चात् विद्यमान थे। ज्यों-ज्यों गणधर मृत होते चले गये, उनके गण मुचमी के गण में सम्मिलित होते गये। आज जो ध्यात-साहित्य उपलब्ध है उसके रचयिता मुचमी हैं पर सच के प्रत्यक्ष भगवान् महावीर ही हैं। किन्तु स्मरण रखना होगा कि उनकी प्रामाणिकता, सच के प्रत्यक्ष संबंध होने से ही है।

अनुयोगद्वार में ध्यात के गुतांग परधायम और तदुभयात्म, ये तीन भेद प्राप्त होते हैं<sup>५</sup>। मास ही अन्य शक्ति में ध्यातांगम अनन्तरागम और परन्तरागम, ये तीन रूप भी मिलते हैं<sup>६</sup>। तीर्थंकर सच रूप ध्यात का उपदेश प्रदान करते हैं। इसलिए सच रूप ध्यात तीर्थंकरों का ध्यातांगम है। उन्होंने ध्यातांगम किसी ध्यात में प्राप्त नहीं किया। वह ध्यातांगम उनका स्वयं का है। उही ध्यातांगम को गणधर, तीर्थंकरों में प्राप्त करते हैं। तीर्थंकर और गणधरों के बीच किसी अन्य तीसरे व्यक्ति का व्यवधान नहीं है। इसलिए वह ध्यातांगम गणधरों के लिए अनन्तरागम है। उस ध्यातांगम के साधारण से ही गणधर स्वयं मूर्त रूप में रचना करते हैं, ध्यात मूत्रागम गणधरों के लिए ध्यातांगम है। गणधरों के जो साक्षात् ज्ञाप्य है, मूत्रागम गणधरों से सीधा ही प्राप्त करते हैं। उनके बीच में भी किसी तीसरे का व्यवधान नहीं है, भ्रतः उन ज्ञाप्यों के लिए मूत्रागम अनन्तरागम हैं। पर ध्यातांगम परन्तरागम से प्राप्त हुआ है, क्योंकि वह ध्यातांगम अपने धर्मगुरु गणधरों से उन्होंने प्राप्त किया। ध्यातांगम गणधरों का ध्यातांगम नहीं क्योंकि उन्होंने तीर्थंकरों से प्राप्त किया। गणधरों के प्रसिद्ध और उनकी परम्परा में होने वाले अन्य ज्ञाप्य-प्रसिद्धों के लिए मूर्त और सच—दोनों ध्यात परम्परागम हैं।

असल भगवान् महावीर के पावन प्रवचनों का गणधरों ने मूर्त रूप में जो सक्तन और ध्यातन किया वह सक्तन “अंगगाहित्य” के नाम से विद्युत् है। त्रिमन्त्र गणी शवा-धमण ने विवेकाचरकभाष्य में लिखा है कि तप, नियम, और ज्ञानरूपी बुद्ध पर आरुढ़ अनन्तज्ञानसंपन्न केवलज्ञानी भव्यजनों को उद्बोधन देने हेतु ज्ञान-पुण्य की वृद्धि करते हैं, उते गणधर बुद्धि रूपी पट में ग्रहण कर उसका प्रवचन के निमित्त प्रथन करते हैं<sup>७</sup>। गणधरों में विगिष्ट प्रतिभा होती है। उनकी बुद्धि ध्यात सीधे होती है। वे बीजबुद्धि प्राप्ति श्रद्धियों में मग्न होते हैं। वे तीर्थंकरों को पुण्यवृद्धि को पूर्णरूप से ग्रहण कर स्वविरपी पुण्यमात्रा की तरह प्रवचन के निमित्त मूर्तमात्रा ध्यात करते हैं। बिछरे हुए पुण्य को ग्रहण करना बहुत कठिन है, किन्तु मूर्त की हुई पुण्यमात्रा को ग्रहण करना सुकर है। यही बात त्रिमन्त्रवचन रूपी पुण्य के सम्बन्ध में भी है। पर, ध्यात,

२. कल्पमूत्र-२०३.

३. स्थानांग. स्था-९-२६

४. कल्पमूत्र सू० २०३

५. अनुयोग द्वार-४३० पृ० १७९.

६. गही० ४७० गही

७. विशेष० भाष्य. १०९४-९५

म, धर्मरत्न, प्रामाद आदि विभिन्न त्रयपुराण सूत्ररूप में व्याख्या होती हैं। यह सूत्र रूप में प्रकीर्ण है। इस तरह समीचीन रूप में सत्यता-पुर्वक उपाय प्रदान, सुख, परावर्तन, धारण, स्मरण, दान, पूजा हो सक्त है। गणधरो ने अविच्छिन्न रचना की है। गणधर होने के कारण इस प्रकार व्युत्पत्त हो सका है। आप्यकार ने विविध प्रकार के प्रश्न समुच्चय कर उनसे समाधान प्रस्तुत किए हैं। यह जिन प्रकार सत्यताप्राप्त योगा के विषय विचार में विवेचन करने हैं वेमा गणधरो के विषय नहीं करते। गणधरो के विषय बहुत ही संक्षेप में एवं सारित करने हैं। गणधर विदुषा के साथ उग धर्म का सूत्ररूप प्रदान करते हैं। वे शास्त्रादि के विषय सुख का प्रवर्तन करने हैं।

सूत्र में यह जिज्ञासा उद्बुद्ध हो सकती है कि तीर्थंकर धर्म का प्रमाण करने हैं, जिना शब्द के धर्म प्रकार कहा जा सकता है? यदि तीर्थंकर संघ में सुख हो करने हैं तो जो सूत्रता ही जानी है वह तो ही है। पर उंग धर्म कहा कहा कर उचित है? समाधान करने हुए जिनमद ने कहा—धर्मन् पुण्यपेक्षा ही गणधरो की अपेक्षा में बहुत ही स्वल्प रूप में कहते हैं। वे पुण्य में डाढ़गामी नहीं करते। डाढ़गामी अपेक्षा में वह धर्म है और गणधरो की अपेक्षा में सुख है८।

तीर्थंकर जब धर्मदेगता प्रदान करने हैं, उनके धर्म वैशिष्ट्य के कारण वे भाषात्मक सुदृग्य श्रोताओं अपनी अपनी भाषा में परिवर्तित हो जाते हैं। समवायान<sup>१</sup> में 'भाषा-प्रतिशय' के मन्त्रधर्म में विस्तृत रूप दिया है—तीर्थंकर धर्ममागधी भाषा में धर्म का व्याख्यान करने हैं। उनके द्वारा कही हुई धर्म-धर्म भाषा धर्म-धर्माय, द्विपद-चतुष्पद मृग पशु पक्षी सर्पशुभ आदि जीवों के हित व कल्याण तथा सुख लिए। उनकी अपनी अपनी भाषाओं में परिष्कृत हो जाती है। उगी कथन का समर्थन धीरपात्रिक<sup>१०</sup> में और मार्ग हेमचन्द्र<sup>११</sup> ने काव्यानुगमन में किया है। संक्षेप में गारोम यह है कि वर्तमान में जो अग माहिय धर्मो धर्म के प्रत्यक्ष भगवान् महावीर और गुण-रचयिता गणधर सुधर्म हैं। अब-माहिय के कारण भेद है इस प्रकार हैं—(१) भाषा (२) सूत्र (३) स्थान (४) समवाय (५) भगवती (६) ज्ञानधर्म तथा (७) उपायप्रदान (८) अन्तर्दृष्टि (९) अतृतीयपात्रिक (१०) प्रत्यक्षारण्य (११) विपाक और (१२) रटिवाद।

## ताम्रपुराण : परिषद

अग माहिय में ज्ञानधर्मकथा का उदा स्थान है। इसके दो श्रुतकथ हैं। प्रथम श्रुतकथ में ज्ञान ही उदाहरण और द्वितीय श्रुतकथ में धर्मकथा है। इससे इस भाष्य का 'ताम्रपुराणकथा' नाम है। धर्म धर्मदेव में अपनी टीका में इसी धर्म को स्पष्ट किया है। ताम्रपुराण्य में 'ज्ञानधर्मकथा' नाम काया। आप्यकार ने दिया है—उदाहरणों के द्वारा जिनमें धर्म का कथन किया है<sup>१२</sup>। जयधर्मता में ताम्रधर्म-कथा—'ताम्रधर्मकथा' नाम किया है। ताम्र का धर्म स्वामी है। ताम्रधर्मकथा का तात्पर्य है ताम्र-तीर्थंकर

चतुर्विंशतः ४३० पृ० १३९

१. समवायान् पृ० ३४

२. धीरपात्रिक पृ० ११३-१८

३. काव्यानुगमन, अष्टादश निबन्ध १-१

४. ज्ञाना दृष्टान्ता ताम्रपुराण धर्मो यत्र कथ्यते ज्ञानधर्मकथा। —नरसार्धभाष्य

शारा प्रसिद्धि धर्मकथा । मंरुन साहित्य मे प्रस्तुत आदम का नाम 'ज्ञानधर्मकथा' उपलब्ध होता है<sup>१३</sup> । आचार्य मन्मथ<sup>१४</sup> व आचार्य धर्मदेव<sup>१५</sup> ने उदाहरणप्रधान धर्मकथा की ज्ञाताधर्मकथा कहा है । उनका रटि मे प्रथम ध्वनयन मे आठ है और दूसरे ध्वनयन मे धर्मकथा है ।

आचार्य हेमचन्द्र ने अपने बीम मे ज्ञानप्रधान धर्म कथाएँ ऐसी धर्म कथा है । प. बेचरदास जी शीतो<sup>१६</sup>, डा. जगदीशचन्द्र जैन<sup>१७</sup>, डा. नेमिचन्द्र शास्त्री<sup>१८</sup> का अभिप्राय है कि ज्ञानपुत्र महावीर की धर्मकथाओं का प्रत्यक्ष होने से प्रस्तुत अंग की उक्त नाम मे अभिहित किया गया है ।

इतिहास आदम साहित्य के अनुसार भगवान् महावीर के वध का नाम "ज्ञान" था । कल्पसूत्र<sup>१९</sup>, आचार्य<sup>२०</sup>, मुच्युतनाथ<sup>२१</sup>, भगवती<sup>२२</sup>, उत्तराध्यायन<sup>२३</sup> और दशवैशालिक<sup>२४</sup> में उनके नाम के रूप में 'ज्ञान' शब्द का प्रयोग हुआ है । विनयविट्ठल<sup>२५</sup>, मञ्जिमनिदाय<sup>२६</sup>, दीपनिकाय<sup>२७</sup>, मुत्तनिपात्र<sup>२८</sup> आदि शीघ्ररिटकी

१३. लक्ष्मण कानिष्ठ ११२०, पृ. ७२
१४. ज्ञानानि उदाहरणानि लक्षणाना धर्मकथा ज्ञाताधर्मकथा. अथवा ज्ञानानि—ज्ञाताध्यायनानि प्रथमधुत्तरकथे, धर्मकथा द्वितीयधुत्तरकथे तामु प मन्मथानि (ग.) ज्ञाताधर्मकथा. —नदी वृत्ति, पृ. २३०-२३१
१५. ज्ञानानि उदाहरणानि लक्षणाना धर्मकथा, दीर्घलं वज्ञातावाद् अथवा—प्रथमधुत्तरकथो ज्ञातामिधाय-कथान् ज्ञानानि, द्वितीयानु लक्ष्य धर्मकथा. —ममवायोग पृ. १०८
१६. भगवान् महावीरजी धर्मकथाओ, टिप्पण पृ. १८० ।
१७. प्राचीनसाहित्य का इतिहास
१८. प्राचीन भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ. १७२
१९. कल्पसूत्र ११०
२०. (क) आचार्य ध्यु. २, अ. १५, सू. १००३  
(ख) आचार्य ध्यु. १, अ. ८, उ. ८, सू. ४४८
२१. (क) सूत्र उ. १, भा. २२  
(ख) सूत्र. ११६१२  
(ग) सूत्र. ११६१२४  
(घ) सूत्र. २१६११९
२२. भगवती १५७९
२३. उत्तरा० १११७
२४. दशवै० अ० ५, उ० २, भा० ४९ तथा ६१२५ एवं ६१२६.
२५. विनय विट्ठल महाकथ पृ० २४२
२६. मञ्जिमनिदाय हिन्दी उपाधि—मुत्तन्त पृ० २२२  
सूत्र—मुच्युतनाथ मुत्तन्त " ५९  
सूत्र—मीरोपम—मुत्तन्त " १२४  
महा सम्बन्ध मुत्तन्त " १४७  
भगवत्पराज कुमार मुत्तन्त " २३४  
देवदत्त मुत्तन्त " ४४१
२७. दीपनिकाय सामञ्जस्य मुत्त " १८ । २१  
" समीति परिपात्र मुत्त " २८२  
" महापरिनिर्वाण मुत्त " १४५  
" पागादिक मुत्त " २५२
२८. मुत्तनिपात्र—मुत्तिय मुत्त " १०८

से भगवान् महावीर का उल्लेख "निर्यट नातपुत्त" के रूप में किया गया है।

द्वितीय भाष्य में<sup>३१</sup> महावीर का वंश "नाथ" माना है। 'धर्म्मजय नाम माना'<sup>३२</sup> में नाथ का उल्लेख है। उत्तर गुरुग में<sup>३३</sup> भी 'नाथ' वंश का उल्लेख हुआ है। कितने ही मूर्खग्य मनीषियों का अभिमत है कि प्रभुन धामम का नाम भगवान् महावीर के वंश को अनुलक्ष्य में लेकर किया गया है। ज्ञातधर्मकथा या धर्मकथा में ज्ञान्य है भगवान् महावीर की धर्मकथा। पाश्चात्य चिन्तक वेबर<sup>३४</sup> का मानना है कि जर्मन में ज्ञान्त्वनीर महावीर की धर्मकथा हो वह 'नाथाधर्मकथा' है। किन्तु समवायंग<sup>३५</sup> नदीमून<sup>३६</sup> में प्रागमो ज्ञा पश्चिम प्रदान किया गया है उसके आधार से ज्ञातधर्मो महावीर की धर्मकथा यह धर्म मंगत नहीं है। वही पर यह स्पष्ट किया गया है कि ज्ञानाधर्मकथा में ज्ञातो (उदाहरणभूत व्यक्तियों) के नगर, उद्यान, द्वि का विधान किया गया है। प्रभुन धामम के प्रथम अध्यक्षन का नाम "उत्थितज्ञात" (उत्थितज्ञात) है। ही पर ज्ञान का धर्म उदाहरण हो गही प्रतीत होता है।

द्वितीय उदाहरणप्रदान धर्मकथा है। उन कथाओं में उन धीरवीर साधकों का वर्णन है जो भयंकर उपमर्ग प्रविष्टन होने पर भी मेरु की लक्ष्य धरत रहे। इसमें परिमित वाचनाएँ, अनुयोगज्ञार, वेद, छन्द, श्लोक, अनुमिति गुरुग्यात व प्रतिनिधि गुरुग्यात मन्त्राण है। इनके दो श्रुतस्तव्य हैं। प्रथम श्रुतस्तव्य में उन्नीस उपमर्ग ही धीर ज्ञान्य श्रुतस्तव्य में दस वर्ग हैं। दोनों श्रुतस्तव्य के २९ उद्देशन काल हैं, २९ समुद्देशन काल हैं, १०१००० पद हैं, गुरुग्यात मन्त्र है, धनन नम, धनन पदाय, परिमित जग, धनन्त स्थावर आदि का वर्णन है। ज्ञाना धर्मकथा में वक्ष्यमाण ३९०० श्लोक प्रमाण है।

प्रथम धर्मकथा में विनयी ही कथाएँ—ऐतिहासिक व्यक्तियों से सम्बन्धित हैं और कितनी ही कथाएँ विनयी हैं। प्रथम धर्मकथा का मुख्य पात्र मेघकुमार ऐतिहासिक व्यक्ति है। तुल्ये आदि की कुछ कथाएँ हपक के रूप में हैं। उन कथा-कथाओं का उद्देश्य भी प्रतिबोध प्रदान करना है।

द्वितीय धर्मकथा में दस वर्ग हैं। उनमें में प्रत्येक धर्मकथा में ५००-५०० धर्मकथाविनयी हैं और एक एक धर्मकथाविनयी में ५००-५०० धर्मकथाविनयी हैं। प्रथम धर्मकथा में धर्म उल्लेख नहीं है। वह विनयी कथागाहिय धाम विनियम है। प्रथम धर्मकथा में धर्म उल्लेख ही विनयी है। वर्णन में प्रथम श्रुतस्तव्य में १९ वर्ग हैं और द्वितीय धर्मकथा में २०१ कथाएँ हैं। विनयी के विनयी भी धर्ममन्त्राणक हुए हैं उन्होंने जन-जन के धर्मकथा वक्ष्यमाण वक्ष्यमाण के वर्णन रहस्य की कथाने के लिए धर्ममन्त्राण, धर्म, जैसे धार्मिक

३१. १०० उपमर्ग १-१२०, उपमर्ग १०० १२२

३२. १०० उपमर्ग १-१२० १२२

३३. १०० उपमर्ग १ १२०

३४. १०० उपमर्ग १-१२० The Drama of Nya

३५. १०० उपमर्ग १-१२० १२२

३६. १०० उपमर्ग १-१२० १२२

३७. १०० उपमर्ग १-१२०

३८. १०० उपमर्ग १-१२० १२२

गद्यपद्य की सुगन्धने के लिए बचपनो का उपयोग किया है। वेद, उपनिषद्, त्रिपिटक, पुराण व बाह्यिक में बचपनो का प्रयोग है।

चदवान् महावीर ने भी कथाओं द्वारा कोष्ट प्रदान किया है। प्रभुज आचम में आरमा की उन्नति के बराबरे है, जिस कारणों से आत्मा समोदय होता है, महिमायमें भी उल्लूट आध्यात्मिक उल्लूट का मयता है। आहार का उद्देश्य, मयमी ओवन की कठोर माधन, गुण वर्ग्याय, धनगति व धन्य का महार आदि विषयों पर कथाओं के माध्यम से प्रदान होता है। ये कथाएँ बाद-विवाद के लिए नहीं, ओवन के उपाय के लिए हैं। ये कथाएँ ईशानसीह की जीविकया (वैरव्या) की तरह हैं, इनमें अनुभव का अनुभव है। इन कथाओं की गीनी मय गीपी घोर मयोट है।

**मिथइमार**

प्रथम अनुसूचक के प्रथम अन्वयन में मेघदूतार की कथा हो गई है। मेघदूतार राजा धीरिग वा पुत्र है। भगवान् महावीर के श्वात-वैराग्य में धन्यदानों द्वारा प्रवचन की ध्वज बर छापी घाटों पत्तियों का परिणाम कर प्रवचना प्रह्लाद करता है। शाना-विज्ञा व अन्व परित्रय उने गीतने का प्रवचन प्रवास करने हैं विष्णु मैत्राय आचना इनकी प्रवचन की विमलार का कोई भी छात्ररंज उने छात्रविन न कर सता। उने एक दिन का रात्र्य भी विज्ञा गया वर वह उममें भी आमान नहीं हुआ। वीक्षा वहुत के पश्चात् अमल मेघ को रात्रि में मोने के विष्णु मैत्राय श्वात विज्ञा छाड़ी लगन-लगन छाते-छाते रहने थे। उनके वीरों की टकराहट में उमकी छाते गुल गई, पुनः छाते में भी वीक्षा छिने लगती कि दुमरे मुनि के चरण का रगमें हो जाता। पूर्णों की मुकुमार शब्दा पर मोने शाना रात्र्यदूतार छात्र छूम में मो गया का छीर वीरों की छीरों लगने में उने नींद नहीं पायही थी, शिगने गिर चला गया, छाते नाम हो गई छीर लगुणं शरीर शिविग हो गया। उनके विचार करने में। उमका लगुणं छिने वीरों के लगन की तरह टूट-टूट कर बिखरने लगा। वह मोचने लगा—प्रतिदिन हम प्रहार वक्तें भगवन्-भगवन् की छीरों में विज्ञा, विज्ञा प्रहार समर हो सनेवा ? प्रात होने पर भगवान् महावीर मुनि मेघदूतार को उमका पूर्वमध मुनाते हैं छीर कहने हैं—मुने पूर्वमध में विज्ञा तरह वष्ट सहन दिया था, समरग या रहा है न ? मुनेद्वय हाथी के भव में दो दिन छीर मोन रात्र मुने अमना एक वर शरणीम की लगने के विष्णु शब्दा रखा था। तीन दिन के पश्चात् जब वर की नीचे रखना चाहता तो अमर में रहने के कारण वह पात्र गया था। जोर देकर नीचे रखने का मुने प्रयास दिया तो अपने छात्रों न संभामकर नीचे गिर पड़े। तीन दिन के अंगे छीर लगने होने से मुन उठ नहीं गये वर मुहारे मन में अमूर्त भावि थी। वह मुनेद्वय हाथी शरणीम मुन मय हुआ ही। अब जग में वष्ट में चला रहे हो। चबराधो मन, पाप्यागिक वष्ट में समभावपूर्वक रहन विज्ञे गये वष्टों का अत्यधिक मय है। ये वष्ट जीवन को पवित्र बनाने वाले हैं।

अध्यापन महावीर की प्रेरणादायक भाषा से मेघकुमार का हृदय प्रबुद्ध हो गया और वह साधवर्जीवन में जाने वाले बच्चे में एक के भाग से बचकर हो गया ।

### मेध के साथ मन्द की तुलना

मेघदूतार के समान ही सच दीक्षित नन्द का वर्णन बौद्ध साहित्य सूत्रनिपात,<sup>34</sup>धम्मपद<sup>35</sup> षट्ठनया,

३५ गुलनिधान—घट्टरथा, पृ० २७२.

३९. धर्मपद—महर्षिभा, पृष्ठ-१। पृ० २९-१०२.

पारवती<sup>१३</sup> व देवमाया<sup>१८</sup> में प्राप्त होता है। वह भी तथामत बुद्ध के पास अपनी नव विवाहिता पत्नी नरदत्तमाया की छोड़कर दीक्षा ग्रहण करता है। पर जनपदकृत्याणी मन्दा का उमे सतत स्मरण आता था। जिसमें वह मन ही मन व्यथित होता है। तथामत बुद्ध ने उमके हृदय की बात जान ती घोर उमे प्रेरित करने के लिए वे उमे अपने माथ में मोते हैं। चमते हुए माथ में एक बन्दरिया की दिशाते हैं जिसकी चम, नाह घोर गुल बटो हई थी, जिसमें बाग जब कर नष्ट हो गये थे। चमडो भी फट चुकी थी। उमसे तो पृथक् पृथक् था। दीयने में बडो बीभक्ष्य थी। बुद्ध ने नन्द से पूछा—नन्द, क्या सुहावरी पत्नी इस बन्दरीमा परितः सुहाती है ? उमसे कहा—भयवन् ! वह तो अत्यन्त सुन्दर है।

10. 4 9 8 7 6 5 4 3 2 1  
 11. 2 1 0 9 8 7 6 5 4 3 2 1  
 12. 1 0 9 8 7 6 5 4 3 2 1 0 9 8 7 6 5 4 3 2 1  
 13. 0 9 8 7 6 5 4 3 2 1 0 9 8 7 6 5 4 3 2 1 0 9 8 7 6 5 4 3 2 1

(४)  $\frac{1}{2} \log \frac{1}{2} = -0.1532$   
(५)  $\frac{1}{2} \log \frac{1}{2} = -0.1532$

[illegible]

१०. ११. १२. १३. १४. १५. १६. १७. १८. १९. २०. २१. २२. २३. २४. २५. २६. २७. २८. २९. ३०. ३१. ३२. ३३. ३४. ३५. ३६. ३७. ३८. ३९. ४०. ४१. ४२. ४३. ४४. ४५. ४६. ४७. ४८. ४९. ५०. ५१. ५२. ५३. ५४. ५५. ५६. ५७. ५८. ५९. ६०. ६१. ६२. ६३. ६४. ६५. ६६. ६७. ६८. ६९. ७०. ७१. ७२. ७३. ७४. ७५. ७६. ७७. ७८. ७९. ८०. ८१. ८२. ८३. ८४. ८५. ८६. ८७. ८८. ८९. ९०. ९१. ९२. ९३. ९४. ९५. ९६. ९७. ९८. ९९. १००.

अनुसरीरपातिक भूज में मयधपुरी के जैनदीक्षा लेने का उल्लेख है।<sup>४३</sup> बौद्ध धीरा लेने का उल्लेख घेरा भगवान व घेर गाथा की छन्दरथा में है।<sup>४४</sup> मज्झिमनिकाय,<sup>४५</sup> मंयुक्त निवाय<sup>४६</sup> आदि में उसके जीवनप्रसंग हैं।

## राजगृह

प्रथम मयधवन में राजगृह नगर का भी उल्लेख है जहाँ पर भगवान् महावीर ने अपने चानुर्मत्त विधे से<sup>४७</sup> श्रीर दो गो से भी अग्रिार बार उनके वहाँ समयसरण लगे थे।<sup>४८</sup> राजगृह नगर की प्रत्यक्ष देवसोकभूत व भगवान्पुरी शानुग कहा है।<sup>४९</sup> तथागत बुद्ध भी अनेक बार राजगृह में आए थे। उन्होंने अपने धर्मप्रचार का केन्द्र बनाने का भी प्रयाग किया था। भगवान् महावीर गुणकोन, मण्डिबुच्छ, श्रीर मुद्गरपाणि आदि उद्यानों में टहरा करते थे,<sup>५०</sup> जब कि बुद्ध शुद्धूट पर्वत, कलंदरनिवाय श्रीर वेणुवन में टहरते थे।<sup>५१</sup> राजगृह नगर श्रीर उगके सन्निवट नारद ग्राम,<sup>५२</sup> कुण्डुटाराम विहार<sup>५३</sup>, शुभ्रुट पहाड़ी यष्टिवन,<sup>५४</sup> उरविक्कग्राम प्रभासवन<sup>५५</sup> आदि बुद्ध धर्म में सम्मिश्रित थे। राजगृह में एक बौद्ध-मंजीनि हुई थी।<sup>५६</sup> जब बिम्बिसार बुद्ध का अनुयायी था तब बुद्ध ने राजगृह से वैशाली जाने की इच्छा व्यक्त की। तब राजा ने बुद्ध के लिए सड़क बनवायी श्रीर राजगृह से गया तक की भूमि की समस्त करवाया।<sup>५७</sup>

राजगृह के प्राचीन नाम गिरिव्रज, वसुमती<sup>५८</sup> बाह्मपपुरी<sup>५९</sup> मयधपुरी<sup>६०</sup> बराह, वृषभ, ऋषिगिरि

४३. अनुसरीरपातिक १-१०

४४. शुद्धनिकाय पञ्च-७ भाषदा, भिद्युजगदीश करण

४५. मज्झिमनिकाय ७६

४६. मंयुक्तनिवाय

४७. बलासूत्र ५-१२३

(क) द्वावदा प्रतप्ति ७-४, १-९ २-५

(ग) द्वावधक ४७३/४९२/५१८

४८. भगवान् महावीर एक अनुसोमन पृ. २४१-४३

४९. पञ्चवक्क देवरीगम्मा एवं अलवापुरीमंकागा

५०. (क) ज्ञानाधर्म कथा पृ. ४७, (ख) दगाधुतरवंध १०९ पृ. ३६४.

(ग) उपामपदशा ८, पृ. ५१.

५१. मज्झिमनिकाय सारनाथ पृ. २३४

(ख) मज्झिमनिकाय जगदगदीक्षामी सुत्तन पृ. ३०५

५२. नेपालीज बुद्धिस्ट लिटरेचर पृ. ४५

५३. वही पृ. ९-१०

५४. महावस्तु ४४१

५५. नेपालीज बुद्धिस्ट लिटरेचर पृ. १६६

५६. वुत्तवाग ११ वा पञ्चक

५७. धम्मपद कामेट्री ४३९-४०

५८. रामायण १/३२/७

५९. महाभारत, २४-मे ४४

६०. वही ,, २०-३०





यह दर्शन के अनुसार स्वप्न का मूल आध्यात्मिकमोक्षोन्मीलन कर्म का उद्देश है। दर्शनमोक्ष के कारण मन में राग मोह द्वेष का स्वप्न होता है, विल-बोधन घटता है। मध्य आदि विषयों से संबंधित स्वप्न मोह स्वप्न विचार-तारों से मन प्रवर्धित होता है। स्वप्न-विषय या विषयोन्मुखी वृत्ति इतनी प्रबल हो जाती है कि नींद आने पर भी जाग नहीं होती। दृष्टिहीन हो जाती है, किन्तु मन की वृत्ति भी घटती रहती है। ये घनेकाश विषयों का विघ्न करती रहती है। वृत्तियों की दम प्रसार को अव्यवस्थाहीन स्वप्न है।

निम्नस्वप्न स्वप्न के स्वप्न का धर्म दमिन् भावनाओं की अभिव्यक्ति कहा है। उन्होंने स्वप्न के मध्यस्थ, विचारोत्पत्ति, आवाहनकरण और नाटकीकरण, ये चार प्रकार दिये हैं। (१) बहुत विस्तार की घटना को स्वप्न में सक्षिप्त रूप में देखा (२) स्वप्न में घटना को विस्तार से देखा (३) घटना का स्थानान्तर हो जाना, किन्तु मूल सत्कार बही है, अभिभावक द्वारा अवधीन करने पर स्वप्न में किसी और व्यक्ति आदि को देखकर अवधीन होना (४) पूर्ण घटनाएँ नाट्य के रूप में स्वप्न में आना।

आत्मं युग<sup>१३</sup> स्वप्न को वैचन अनुभव की प्रतिज्ञा नहीं मानते हैं। वे स्वप्न की मानव के अतिरिक्त का विचार और भावी जीवन का घोषणा मानते हैं। आर्य और युग के स्वप्न सबकी विचारों में मुख्य रूप से अन्तर यह है कि आर्य यह मानता है कि अधिराज स्वप्न मानव की कामभावना से सम्बन्धित होते हैं जब कि युग का मतलब है कि स्वप्नों का कारण मानव के वैचन वैचनिक अनुभव अवस्था उत्पत्ति स्वार्थमयी इच्छाओं का दमन मात्र ही नहीं होना किन्तु उगने के अधीनमन मन की आध्यात्मिक अनुभूतियों भी होती हैं। स्वप्न में वैचन दमिन् भावनाओं की अभिव्यक्ति की बात पूर्ण सत्य नहीं है, वह वैचन सयोग मात्र ही नहीं है, किन्तु उगने अभूतपूर्व सत्यता भी रही हुई होती है।

आचार्य त्रिलोक ने<sup>१४</sup> स्वप्न अवस्था वाले और अस्वप्न अवस्थावाले, ये दो स्वप्न के प्रकार माने हैं। जब शरीर पूर्ण स्वप्न होता है तो मन पूर्ण जाग रहता है, उग सत्य जो स्वप्न दीधने है वह स्वप्न अवस्थावाला स्वप्न है। ऐसे स्वप्न बहुत ही कम आते हैं और आयः मध्य होते हैं। मन विक्षिप्त हो और शरीर अस्वप्न हो उग समय दो स्वप्न समाय होते हैं। आचार्य ने दीनमगुरुष और देवमगुरुष<sup>१५</sup> इन प्रकार स्वप्न के दो भेद भी दिये हैं। वाय, पितृ कर्क प्रभृति शारीरिक विचारों के कारण जो स्वप्न आते हैं वे बोधक हैं। इष्टदेव या मानसिक सम्राट् की चिन्ता में जो स्वप्न आते हैं वे देवमगुरुष हैं। स्वप्नात्मक<sup>१६</sup> और अव्यवस्थित<sup>१७</sup> में यथास्थ स्वप्न, (जो स्वप्न में देखा है आगे पर उगी तरह देखा, अर्थात् अनुभूत-प्रतिबुद्ध सुप्त-असुप्त का की प्राप्ति) प्रगतास्वप्न (विस्तार से देखा) विस्तारस्वप्न (मन में रही हुई चिन्ता को स्वप्न में देखा) तद्विपरीत स्वप्न (स्वप्न में देखी हुई घटना का विपरीत प्रभाव) व्यक्त स्वप्न (स्वप्न में दिखाई देनेवाली वस्तु का पूर्ण ज्ञान न होना), इन पाँच प्रकार के स्वप्नों का वर्णन है।

७३. हिन्दीविषययोग गद्य-१२ पृ० २६४

७४. ते य स्वप्ना द्विधा भ्रातः स्वप्नास्वप्नात्मिकावराः।

मर्मस्फुटानुनि स्व स्व विपर्ययितमर्मा।

तस्या स्फुः स्वस्वमगृष्टा निष्ठा स्वप्नो विपर्ययात्

जगत्प्रतीकमेतद्धि विद्धि स्वप्नविमर्शम्॥ महाभारत ४१-२५/६०

७५. वही सर्ग ४१/६१

७६. स्थानाग—५

७७. भगवती—१६-६



विशिष्ट धर्मियों की मानाएँ जो स्वयं निरुपनी हैं उनके अन्तर्निहित की उदात्त धार्मिकताएँ उगने लगी हैं। वे सोचती हैं कि मेरे ऐसा दिव्य अन्न पुत्र हो जो दिव्यदिग्गज की धार्मिक समीक्षा से योग्यमानित कर। उगरी पवित्र भावना के कारण इस प्रकार के पुत्र आने भी हैं। यह अवश्य समस्त सज्जन चाहिए कि स्वयं यन्त्र स्वयं ही हैं। स्वयं पर अत्यधिक विश्वास कर समीक्षा में मुँह नहीं मोड़ना चाहिये। केवल स्वयंशुद्ध नहीं समीक्षाएँ बनना चाहिए। वह तो केवल मूर्खता प्रदान करनेवाला है।

## बोहदः एक अनुचितन

प्रभु उद्यमन में मेघनुमार की माना धार्मिकी की यह बोहद उत्पन्न होता है कि आकाश में उसका पुत्र बन पड़ा घाघ, हजार-हजार धारा के रूप में वह खरग बहें। आकाश में बाद बनना की समर हो। बाहरी धीर हरिवाणी सहनहार रही हो, रगदिरमें चुन सहन रहे हों, मेघ की समीर गर्जना की गुनवर गुरुर केदारव के साथ गुन कर रहे हो, धीर बलबल धीर उत्पन्न करते हुए गरी-जाते वह रहे हों, मेघों की टाटर ध्वनि हो रही हो। उस समय में अपने पवि सप्तःध्वं ध्वनि के साथ हस्ती-गन पर आकाश होकर गजदह नगर के उपवन वैधावगिरि के उदका में पहुँचकर आनन्द कीड़ा बहें। पर वह अनु भर्त्ता की नहीं वो त्रिमते बोहद की पुनि हो तने। बोहद की पुनि न होने से महापानी मुरझाने लगी। महापानी ध्वनिगत उनके मुरझाने के कारण की समभकर समपुमार के द्वारा महापानी के बोहद की पुनि करवाने है।

बोहद की इस प्रकार की घटनाएँ आत्म साहित्य<sup>२१</sup> में अल्प स्थलों पर भी घाई हैं। जैनधर्मासाहित्य में बोहद आने में<sup>२२</sup> धीर बंदिन परभरा से अयो<sup>२३</sup> में बोहद का अनेक स्थलों पर वर्णन है। यह सातत्य है कि जब महिला गर्भवती होती है तब गर्भ के प्रभाव से उस के अन्तर्निहित में विविध प्रकार की दृष्टाएँ उद्बुद्ध होती हैं। वे विचित्र धीर असाधारण दृष्टाएँ 'बोहद' 'बोहदा' नहीं आती हैं। बोहद के लिए सख्त साहित्य में 'डिहद' भी आया है। 'डिहद' का अर्थ है दो हृदय की धारण करनेवाली। गर्भवस्था में मा की दृष्टाओं पर गर्भरप शिशु का भी प्रभाव होता है। यद्यपि शिशु की दृष्टाएँ जिन रूप में चाहिए उन रूप में व्यक्त नहीं होती, शिशु उसका प्रभाव मा की दृष्टाओं पर अवश्य ही होता है। मैंने स्वयं अनुभव किया है कि बच्चा में बच्चा महिला भी गर्भव्य शिशु के प्रभाव के कारण उदार भावना में डाल देती है, गर्भ की गायना करती है और गर्भगायना करनेवाली महिलाएँ भी शिशु के प्रभाव के गर्भ-विभूष बन जाती हैं। इसलिए यह स्पष्ट है कि गर्भरप शिशु का प्रभाव मा पर होता है और मा की विचारधारा का समस्त शिशु पर भी होता है। जोडाबाई आदि के ऐतिहासिक उदाहरण हमारे सामने हैं जिन्होंने अपने गर्भव्य शिशु पर गर्भ के सम्बार डाले थे।

बोहद के समय महिला की स्थिति विविध बन जाती है। उस समय उसकी भावनाएँ इतनी तीव्र होती हैं कि यदि उसकी भावनाओं की पुनि न की जाय तो वह दग्ग हो जाती है। कई बार तो बोहद की पुनि के प्रभाव में महिलाएँ अपने प्राणों का त्याग भी कर देती हैं। मुख्यतः भारतीय आनुवंश का एक बोधरप प्रय है। उनमें लिखा

८१. विवाह मूल—३; बटारोमु सं. १६. साहा मतसई प्र. मतव मा १-१५,  
—३-९०२ ५-७२; ऐतिह्य चरित, उत्तरा० टीका १३२, साधनकर्ण २ पु० १६९  
निरिवाचनिका १, पु० ९-११, विष्ट निरुक्ति ८०; व्यवहारभाष्य १, ३, पु० १६,  
८२. शिशुमार जातक एवं मानर जातक; मुक्त जातक; वृष जातक, खरु जातक.  
निदान बर्णा;  
८३. रघुवच—ग० १६; बचामरिमागद ८० २२; ३५, तिनवमरवी पु० ७५; वेणीमहार।

है—दोहद के पूर्ण न होने पर जो सन्तान उत्पन्न होती है उगला धराव रहित होता है। या तो बल दुर्बल होगा, सुज-पूज, जड़, शोना, वाडा, या अघा होगा, घाटावक की मग्न रूप होगा। विन्तु दोहद पूर्ण होने पर सन्तान सर्वांगमुन्दर होती है।<sup>८४</sup>

आचार्य हेमचन्द्र के समय तक दोहना माना की मनोरथ-पूति के धार्य में प्रवर्तित था। सात्रस्थान, मध्यप्रदेश उत्तरप्रदेश और दक्षिण भारत के कर्नाटक, आन्ध्र और तमिलनाडु में सातवें माह में माँ, माँघे, धीरे, तीमन्त के रूप में समारम्भ मनाया जाता है। सात महीने में गर्भस्थ शिशु प्रायः शारीरिक पूर्णता को प्राप्त कर लेता है। ऐसा भी माना जाता है कि यदि सात मास में बालक का जन्म हो जाता है तो वह जीवित रहता है तो महान् मशहूरी होता है। बामुदेव श्रीकृष्ण को सातवें माह में उत्पन्न हुआ माना जाता है।

सुश्रुत आदि में चार माह में दोहद पूति का समय बताया है। ज्ञातधर्म कथा,<sup>८५</sup> कथा-कोश<sup>८६</sup> और बृहत्संहिता<sup>८७</sup> आदि में भी ये ऐसे प्रमाण मिलते हैं कि तीसरे, पाँचवें और सातवें माह में दोहद की पूति की गई। क्योंकि उसी समय उसकी दोहद उत्पन्न हुए थे। आधुनिक शरीर-शास्त्रियों का भी यह अभिमत है कि गर्भवति-निर्माण की प्रक्रिया तृतीय मास में पूर्ण हो जाती है, उसके पश्चात् ध्रूव के आवश्यक अंग-प्रत्यंग में पूर्णता प्राप्ति रहती है।

अगविज्ञा<sup>८८</sup> जैन साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। उस ग्रन्थ में विविध दृष्टियों से दोहदों के सन्ध में गहराई से चिन्तन किया है। जितने भी दोहद उत्पन्न होने हैं उन्हे पाँच भागों में विभक्त किया जा सकता है—शब्दगत, गद्यगत, रूपगत, रसगत और स्पर्शगत। क्योंकि ये ही मुख्य दृष्टियों के विषय हैं और इन्हीं की दोहदों में पूति की जाती है। प्राचीन साहित्य में जितने भी दोहद आये हैं उन सभी का समावेश इन पाँचों में हो जाता है। वैदिक साहित्य में, बौद्ध जगत साहित्य में और जैन कथा साहित्य में दोहद उत्पत्ति और उसकी पूति के अनेक प्रमाण मिलते हैं। चरक आदि में भी इस पर विस्तार से चर्चा है।

प्राचीन ग्रन्थों के आधार से वाक्वाच्य चिन्तक डा० इलूमफील्ड<sup>८९</sup> आदि ने दोहद के सम्बन्ध में कुछ चिन्तन किया है।

## कला : एक विश्लेषण

व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन के सर्वांगीण विकास हेतु शिक्षा प्राप्त करना आवश्यक माना गया था। प्राचीन शिक्षाव्यवस्था का उद्देश्य था चरित्र का सगठन, व्यक्तित्व का निर्माण, संस्कृति की रक्षा, सामाजिक ८४. दोहदविमानान् शुभ्र कुण्डल धरन् जड वामन विवृताक्षमनश्च वा नारी सुत जनयति। तस्मात् सा यद्यदिच्छेत् तत्स्य दास्येत्। सन्धरीहृदा हि योग्यवन्तं चिरायुषश्च पुत्र जनयति।

सुश्रुतसाहिता, प्र० ३, शरीरस्थानम्-१४

८५. ज्ञातधर्म कथा—१, पृ० १०

८६. कथाकोश पृ० १४

८७. बृहत्संहिता—म-४९

८८. अगविज्ञा अध्याय ३६

८९. The Dohado or Craving of Pregnant women

—Journal of American Oriental Society. Vol IX Part 1st Page 1-24.

धार्मिक बर्तनों को सम्यक् प्रकार से धारण करना। जब भेषधूमर धातु वर्ष का हो गया तब शुभ नक्षत्र और श्रेष्ठ लग्न में उसे कलापाद्य के नाम से जाना गया। प्राचीन युग में शिक्षा का प्रारम्भ धातु वर्ष में माना गया, क्योंकि तब तक बालक का मस्तिष्क शिक्षा ग्रहण करने के योग्य हो जाता था। भगवती<sup>१०</sup> और अन्य ग्रन्थों में भी इसी उद्गम का उल्लेख है। कथाकोश-प्रकरण<sup>११</sup>, ज्ञानपत्रमी कथा<sup>१२</sup>, कुवलयमाला<sup>१३</sup> आदि में भी इसी उद्गम का उल्लेख है। स्मृतिथी में पाँच वर्ष की उम्र में शिक्षा देने का उल्लेख है। पर ग्रन्थों में धातु वर्ष ही बनाया है<sup>१४</sup>।

उम्र युग में विविध कलाओं का गहराई से अध्ययन कराया जाता था। पुरखों के लिए बहुरंज कलाएँ और स्त्रियों के लिए चीमठ कलाएँ थीं। केवल प्रथम से ही नहीं, उन्हें अर्थ और प्रयोगात्मक रूप से भी सिखलाया जाता था। वे कलाएँ मानव की ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों के पूर्ण विकास के लिए अत्यन्त उपयोगी थीं। मानसिक विकास उच्चतम होने पर भी शारीरिक विकास यदि न हो तो उसके अध्ययन में समतुल्य पैदा नहीं हो सकती।

प्रस्तुत ग्रन्थ में बहुरंज कलाओं का उल्लेख हुआ है। बहुरंज कलाओं के नाम समवायानु, राजप्रवनीय, प्रीपपातिक प्रीट, प्रवसूय मुखोदिका टोका में भी प्राप्त होते हैं। पर ज्ञानमूर्त्ति में आदि हुई कलाओं के नामों में और उन भागों में धाम्य हुए नामों में कुछ भिन्नता है। सुत्तनात्मक दृष्टि से अध्ययन करने हेतु हम यहाँ दे रहे हैं। —ज्ञातामूर्त्ति अनुसार<sup>१५</sup> (१) लेख (२) गणित (३) रूप (४) माट्य (५) गीत (६) वाचिक (७) स्वरगत (८) पुच्छरगत (९) समताम (१०) छान (११) जनवाद (१२) पाशक (पाना) (१३) घट्टापद (१४) पुर काव्य (१५) दकमृत्तिका (१६) धनविधि (१७) पानविधि (१८) वस्त्रविधि (१९) वितेपन विधि (२०) शयन विधि (२१) धार्या (२२) प्रहेलिका (२३) मागविका (२४) गायिका (२५) गीति (२६) श्लोक (२७) हिरण्ययुक्ति (२८) स्वर्णयुक्ति (२९) चूर्णयुक्ति (३०) आभरणविधि (३१) तरुणीप्रतिकर्म (३२) स्त्रीलक्षण (३३) पुत्रलक्षण (३४) हयलक्षण (३५) गजलक्षण (३६) गोलक्षण (३७) कुक्कुटलक्षण (३८) छत्रलक्षण (३९) दण्डलक्षण (४०) समिलक्षण (४१) मणिलक्षण (४२) काकणीलक्षण (४३) वास्तुविद्या (४४) स्तम्भावारमान (४५) नगरमान (४६) म्यूह (४७) प्रतिम्यूह (४८) चार (४९) प्रतिचार (५०) चक्रम्यूह (५१) गण्डम्यूह (५२) शकटम्यूह (५३) युद्ध (५४) नियुद्ध (५५) युद्धनियुद्ध (५६) दृष्टियुद्ध (५७) मुद्रियुद्ध (५८) बाहुयुद्ध (५९) लतायुद्ध (६०) इषुशस्त्र (६१) छद्मप्रवाद (६२) धनुर्वेद (६३) हिरण्यपाक (६४) स्वर्णपाक (६५) मूत्रवेद (६६) वस्त्रवेद (६७) नाविका वेद (६८) पत्रवेद (६९) वटवेद (७०) सज्जीव (७१) निर्जीव (७२) शकुनिरत।

प्रीपपातिक<sup>१६</sup> में पाँचवीं कला 'गीत' है, पञ्चवीसवीं कला 'गीति' और छपनवीं कला 'दृष्टियुद्ध' नहीं है।

१०. भगवती-प्रभयदेव वृत्ति ११ ११, ४२९, पृ० ९९९

११. कथाकोश प्रकरण पृ० ८.

१२. ज्ञानपत्रमी कथा ६ ९२

१३. कुवलयमाला २१, १२-१३,

१४. (क) डॉ. सी. दामगुल 'द जैन सिस्टम आफ एजुकेशन' पृ० ७४.

(ख) एच. आर. वापडिया 'द जैन सिस्टम आफ एजुकेशन' पृ० २०६.

१५. ज्ञातामूर्त्ति पृ. ४८ (प्रस्तुत संस्करण)

१६. प्रीपपातिक ४० पत्र १८३.

- (६०) वस्तुनिवेसं—प्रत्येक वस्तु के स्थापन कराने की कला  
 (६१) नगरनिवेसं—नगर निर्माण का ज्ञान  
 (६२) ईसत्य—ईषत् को महत् करने की कला  
 (६३) छल्पवाय—तलवार आदि की मूठ बनाने की कला  
 (६४) धामसिक्ख—धरुवनिष्ठा  
 (६५) हस्तिसिक्ख—हस्तिनिष्ठा  
 (६६) घगुन्नेय = घनुवेद  
 (६७) हिरण्यपाय, सुवर्णपाय, भस्मपाय, धातुपाय—हिरण्यपाक, सुवर्णपाक, भस्मपाक, धातुपाक बनाने की कला  
 (६८) बाहुजुद, दडजुद, मुट्ठिजुद, घट्ठिजुद, जुद, निजुद, जुदादजुद—बाहुजुद, दडजुद, मुट्ठिजुद, घट्ठिजुद, जुद, निजुद, जुदादजुद करने की कला  
 (६९) मुत्तामेड, नासिमाखेड, वट्टेड, धम्मसेड, चम्मसेड—सूत बनाने की कला, नली बनाने की, गेलने की, वस्तु के स्वभाव जानने की, चमड़ा बनाने आदि की कला  
 (७०) पन्नवेदग्ग-कडगच्छेज्ज-पन्नछेदन, वृक्षाग विशेष छेदने की कला  
 (७१) गजीवं, निग्जीवं—सजीवन, निर्जीवन—सजीवनी विद्या  
 (७२) गजएग्ग—पक्षी के शब्द से ज्ञानाशुच जानने की कला

[illegible]

आचार्य बा. ग. ग. ने 'बा. ग. ग.' में १०१ चौमठ बनाधो का वर्णन किया है। उन चौमठ बनाधो के साथ ही एक ही धार में १०१ बहसर बनाधो को हम सहज तुलना कर सकते हैं। वे बहसर बनाधो चौमठ बनाधो के समान ही हैं। देखिए—

१०० दशमस्कन्धः । अध्यायः १०० ।

१०१. वाचस्पति विद्यालय, न. प्र. प्र. प्र.

बाय सूच	श्रीमा सूच
(१) गीत	(१) गीत (७) वचन
(२) वाचि	(६) वाचि (८) पुस्तक (९) गद्य
(३) कृत	(४) कृत
(४) धर्म	(५) धर्म
(५) विवेकचन्द्रिका (६) विवेक	(६) धर्म
(६) मूल पुस्तक विवरण	(७) धर्म
(७) पुस्तकविषय (पुस्तकविषय)	(८) धर्म
(८) धर्मविवरणविषय	(९) धर्म
(९) धर्म विषय	(१०) धर्म
(१०) धर्म विषय	(११) धर्म
(११) धर्म विषय	(१२) धर्म
(१२) धर्म विषय	(१३) धर्म
(१३) धर्म विषय	(१४) धर्म
(१४) धर्म विषय	(१५) धर्म
(१५) धर्म विषय	(१६) धर्म
(१६) धर्म विषय	(१७) धर्म
(१७) धर्म विषय	(१८) धर्म
(१८) धर्म विषय	(१९) धर्म
(१९) धर्म विषय	(२०) धर्म
(२०) धर्म विषय	(२१) धर्म
(२१) धर्म विषय	(२२) धर्म
(२२) धर्म विषय	(२३) धर्म
(२३) धर्म विषय	(२४) धर्म
(२४) धर्म विषय	(२५) धर्म
(२५) धर्म विषय	(२६) धर्म
(२६) धर्म विषय	(२७) धर्म
(२७) धर्म विषय	(२८) धर्म
(२८) धर्म विषय	(२९) धर्म
(२९) धर्म विषय	(३०) धर्म
(३०) धर्म विषय	(३१) धर्म
(३१) धर्म विषय	(३२) धर्म
(३२) धर्म विषय	(३३) धर्म
(३३) धर्म विषय	(३४) धर्म
(३४) धर्म विषय	(३५) धर्म



- (३५) तथारामं  
(३६) तथाराम  
(३७) तथारामिधि  
(३८) तथाराम परीक्षा

(३९) धातुवाद

- (४०) मणिरामाकर—ज्ञान  
(४१) मृदायुद्ध  
(४२) मेघ कुकुट सावक युद्ध विधि  
(४३) मुक्त सारिका प्रलापन  
(४४) उत्सादन सबाहुन केसमार्जन मुक्तलाभा  
(४५) अक्षर मुष्टिका कथन  
(४६) म्लेच्छित वसाविवरण  
(४७) देशभाषा-विज्ञान  
(४८) पुष्पकटिका  
(४९) निमित्तज्ञान

- (५०) यन्त्रमातृका  
(५१) धारणमातृका  
(५२) सापद्धय  
(५३) मानगी काव्य त्रिया  
(५४) अमिषानकीश  
(५५) अर्थ विज्ञान

- (५६) त्रिया वरुण  
(५७) अलितक योग  
(५८) वरुण योगन  
(५९) धूत विशेष  
(६०) माधुर्य श्रोत्र  
(६१) वासनीहन—

- (४३) तथारामाकर (४३) तथारामाकर  
(४४) मणिरामाकर (४४) मणिरामाकर  
(४५) मृदायुद्ध (४५) मृदायुद्ध  
(४६) मेघ कुकुट (४६) मेघ कुकुट  
(४७) मुक्त सारिका (४७) मुक्त सारिका  
(४८) उत्सादन (४८) उत्सादन  
(४९) निमित्तज्ञान (४९) निमित्तज्ञान

- (७२) मुक्त सारिका (७२) मुक्त सारिका (७२) मुक्त सारिका  
(७३) मृदायुद्ध (७३) मृदायुद्ध (७३) मृदायुद्ध  
(७४) मेघ कुकुट (७४) मेघ कुकुट (७४) मेघ कुकुट  
(७५) मुक्त सारिका (७५) मुक्त सारिका (७५) मुक्त सारिका  
(७६) उत्सादन (७६) उत्सादन (७६) उत्सादन  
(७७) निमित्तज्ञान (७७) निमित्तज्ञान (७७) निमित्तज्ञान

- (२१) धार्या (२१) धार्या (२१) धार्या  
(२२) मीति (२२) मीति (२२) मीति  
(२३) पुर काव्य (२३) पुर काव्य (२३) पुर काव्य

- (१०) धूत (१०) धूत (१०) धूत  
(११) जनवाद (११) जनवाद (११) जनवाद  
(१२) पाशाक (१२) पाशाक (१२) पाशाक

काम सूत्र

जाति सूत्र

(६२) वैजयिका.....

(६३) वैजयिका.....

(६४) व्यायामिनी

(४६) मूढ (४७) प्रतिमूढ (४०) चक्रमूढ (४१)  
गच्छमूढ (४२) शकट मूढ (४३) मूढ (४४) निपुण  
(४५) मुदातिमूढ (४६) दृष्टिमूढ (४७) मुष्टिमूढ  
(४८) बाहुमूढ (४९) सतामूढ (६०) ह्युशास्त्र (६१)  
धरुप्रवाद (६२) धनुर्वेद  
(४४) स्कन्धाधारमन

पुरुषो की भाति महिषाघो की कलाघो का भी प्रयुक्त भाष्य में उल्लेख है। पर यहाँ उनके नाम नहीं बताये गये हैं। जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति<sup>११२</sup> में महिषाघो की चौसठ कलाघो के नाम इस प्रकार प्राप्त होते हैं—

(१) नृत्य (२) घोषित्य (३) चित्र (४) वाचित्र (५) मन्त्र (६) तंत्र (७) ज्ञान (८) विज्ञान (९) दम्भ (१०) जनस्तम्भ (११) गतिमान (१२) तानमान (१३) मेघवृष्टि (१४) फलावृष्टि (१५) भारामरोपण (१६) भारारोपण (१७) धर्मविचार (१८) मनुनमार (१९) क्रियावृत्त्य (२०) सस्कृतजल्प (२१) प्रमादनीति (२२) धर्मनीति (२३) वाणिज्यावृद्धि (२४) सुवर्णसिद्धि (२५) गुराभर्तनकरण (२६) सोलागचरण (२७) हयगज-परीक्षण (२८) पुण्य-स्त्री लक्षण (२९) हेमरत्नभेद (३०) अष्टादश तिथि परिच्छेद (४१) तत्त्वज्ञान बुद्धि (३२) वस्तुसिद्धि (३३) काम क्रिया (३४) वैद्यक क्रिया (३५) कुम्भप्रम (३६) सात्त्विक (३७) अजन योग (३८) कर्णयोग (३९) हस्तनायक (४०) कचनपाठक (४१) भोज्य विधि (४२) वाणिज्य विधि (४३) मुद्रमण्डन (४४) शालि-वर्णन (४५) कथाकथन (४६) पुण्यवाचन (४७) वनोचन (४८) काव्य शक्ति (४९) स्फारविधि वेदा (५०) सर्व-भाषा विज्ञेय (५१) अग्निघान ज्ञान (५२) मूलपरिधान (५३) मृशोपचार (५४) गृहाचार (५५) व्याकरण (५६) परनिराकरण (५७) रत्नघन (५८) केसवर्णन (५९) शोभावाद (६०) वित्तव्यापार (६१) अकविचार (६२) लोकव्यवहार (६३) अन्त्यासरिका (६४) प्रश्नप्रहेलिका।

केनद्रि शीवस्तवरात्रिन्द्र, ने "शिवस्तवरात्रिन्द्र" में भी चौसठ कलाघो का निर्देश किया है। वे इस प्रकार हैं—(१) इतिहास (२) भागम (३) वाक्य (४) अलंकार (५) नाटक (६) गायकले (७) कवित्व (८) काम-शास्त्र (९) दुरीवर (१०) देवभाषाविपिज्ञान (११) सिपिरम (१२) वाचन (१३) गणक (१४) ध्वजहार (१५) स्वरशास्त्र (१६) शकुन (१७) सामुद्रिक (१८) रत्नशास्त्र (१९) यज-अथर्व-यज कौशल (२०) मल्लशास्त्र (२१) मूलकर्म (२२) मूलहोहद (बागवानी) (२३) गद्यवाद (२४) धातुवाद (२५) रत्न सवर्ण (२६) अतिवाद (२७) दिनवाद (२८) अग्निस्तम्भ (२९) जल स्तम्भ (३०) वायु स्तम्भ (३१) वय स्तम्भ (३२) बयोरकरण (३३) आकर्षण (३४) मोहन (३५) विद्वेषण (३६) उच्चाटन (३७) भारण (३८) कालवचन (३९) परकायप्रवेश (४०) पादुका-सिद्धि (४१) वाक्सिद्धि (४२) मुष्टिकामिद्धि (४३) ऐन्द्रजालिक (४४) अजन (४५) परदृष्टिचलन (४६) स्वरवचन (४७) मणिमण्डा धोयघादिकी सिद्धि (४८) चोरकर्म (४९) चित्रक्रिया (५०) सोहक्रिया (५१) धर्मक्रिया (५२) मुक्तिक्रिया (५३) दारुक्रिया (५४) वेणुक्रिया (५५) चर्मक्रिया (५६) अवरक्रिया (५७) धनुष्यकरण (५८) दत्तिकरण (५९) मृगयाविधि (६०) वाणिज्य (६१) पाकुपात्य (६२) कृषि (६३) शास्त्रकर्म (६४) मेयादि मुद्रकारक कौशल

११२ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति वृत्ति, वक्षस्कार २, पत्र १३९-२ १४०-१

शुजाचार्य ने 'नीतिमार्ग चर्य' ११३ में प्रकाशनाक्ष में चौगड बनाई बताया है। हिन्दु विद्याभवन में हम यहाँ उन्हें नहीं देख रहे हैं। शुजाचार्य का अभिप्राय है कि काल वर चद्रभूत जन्म है कि एक गुण स्थिति जो कालो-चरारण नहीं कर सकता है, उसे बन गये ११४

प्राचीन काल में कलाओं के द्वाारा अध्ययन के विषय विभिन्न विचारों ने विभिन्न कलाओं पर अपना प्रभाव का निर्माण किया था। अध्ययक विचार में उन कलाओं के मध्य में विशेषता भी दिखायी गयी। जैसे, भारत का 'नाट्य शास्त्र' वास्तव्यन का 'कामगूत्र' चर्य और मुख्य की महिमा, मन का 'गार दंगल', पात्रा'य का 'हस्त्यापुत्रेद', नीलचर्य की 'मातगनीका', योशुमा' का 'सिन्धुगल' ४३३ का 'मार्गि शास्त्र' आदि।

प्राचीन काल में अध्ययन बहुत ही द्वाारा होता था। बहुततर कलाओं में या चौगड कलाओं में जीवन की सपूर्ण विधियों का परिज्ञान हो जाता था।

## लिपि और भाषा

कलाओं के अध्ययन व अध्यापन के साथ ही उन युग में प्रत्येक स्थिति को और विवेकपूर्ण समझ परिचार में जन्मे हुए व्यक्तियों को बहुभाषाविद् होना भी अनिवार्य था। भारत और भारत भाषाओं के अनिवार्य चद्रारु देशी भाषाओं का परिज्ञान आवश्यक था। प्रस्तुत युग में मेघदूतार के वर्णन में 'चद्रारुविशिष्टगारादेशीभाषा विमारा' यह शून्य पाठ है। पर वे चद्रारु भाषाओं कीनगी को हमारा उन्नेय शून्य पाठ में नहीं है। चीनानिक आदि में भी इसी तरह का पाठ मिलता है, किन्तु वहाँ पर भी चद्रारु देशी भाषाओं का निर्देश नहीं है, तबानी टीकाकार आचार्य समवेद ने ११४ प्रस्तुत पाठ पर विवेचन करते हुए चद्रारु विधियों का उन्नेय किया है, पर चद्रारु देशी भाषाओं का नहीं। समवेद ने विभिन्न देशों में प्रचलित चद्रारु विधियों में विमाराद निष्ठा है। समवायग, प्रज्ञापना, विशेषावश्यकभाष्य की टीका और कल्पगुणटीका में चद्रारु विधियों के नाम मिलने हैं पर सभी नामों में अतिवित्ति भिन्नता है। हम यहाँ तुलनात्मक अध्ययन करनेवाले विज्ञानगुणों के लिए उनके नाम प्रस्तुत कर रहे हैं।

### समवायग ११४ के अनुसार

- (१) ब्राह्मी (२) यावनी (३) दीगउपरिका (४) यरोष्टिका (५) यरणाविका (पुष्करगारि) (६) वाहारातिग
- (७) उच्चतरिका (८) मदारपुष्टिका (९) भोगवतिका (१०) बैणकिया (११) निहृषिका (१२) अंकमि
- (१३) गणितलिपि (१४) मध्यमलिपि (भूतलिपि) (१५) आदर्श लिपि (१६) माहेश्वरी (१७) दामिली लिपि (बावरी) (१८) वीलिन्दी लिपि

### प्रज्ञापना ११७ के अनुसार

- (१) ब्राह्मी (२) यावनी (३) दीमापुष्टिया (४) यरोष्ठी (५) पुष्करगारिया (६) भोगवत्या (भोगवती)

११३. नीतिमार्ग ४-३

११४. मातो मूकोर्षि यत् चतु'कलायश्च' तु तत् स्मृतम् ॥

११५. माता शून १ टीका

११६. समवायग समवाय १८

११७. प्रज्ञापना ६१३७

(७) बहारादपा (८) चण्डबर्षरिया (९) अष्टपदुडिठवा (१०) बंजयिरी (११) बंजमिनि (१२) निरुबिरी  
(१३) गणिम निवि (१४) बंधवं निवि (१५) घागम निवि (१६) माहेमदरी (१७) दोमिनीनिवि (८) वीतिगरी

बिजेवावयक टीका<sup>११८</sup> के अनुसार

(१) हग (२) भून (३) दतो (४) राधमी (५) उडरी (६) बबनी (७) मुपरी (८) बीरी (९) इबिरी  
(१०) निपरीय (११) मानबिनी (१२) मडि (१३) नापरी (१४) लाट (१५) वारमी (१६) अमिमिली  
(१७) बागुबनी (१८) मुपदेवी:

बल्पमू<sup>११९</sup> टीका के अनुसार

(१) लाटी (२) बीरी (३) दाहवी (४) बानडी (५) दुजरी (६) मोरहटी (७) मरहटी (८) मुरामाली  
(९) बोंगली (१०) मानडी (११) मिहरी (१२) हाडी (१३) बीडी (१४) हगमीरी (१५) वगनी (१६) मनी  
(१७) मानबी (१८) मदावोडी

बीनी भाषा में रचित 'दा मुपन् नु निन्' नामक बौद्ध विवरणों में तथा

'मलिन-वज्जरी'<sup>१२०</sup> के अनुसार

(१) बाहो (२) धगेष्टी (३) पुपगमारी (४) अमनिवि (५) बगनिवि (६) मगप निवि (७) मांगमविदि  
(८) मनुप्यनिवि (९) अमुमीय निवि (१०) मकारि निरी (११) बद्धवस्मी निवि (१२) डाबिड निवि  
(१३) मनारि निवि (१४) बधिरा निवि (१५) उचनिवि (१६) मंब्या लिवि (१७) अनुभोम निवि  
(१८) अरवंधुनिवि (१९) दरदनिवि (२०) धारमनिवि (२१) बीमनिवि (२२) हगनिवि (२३) मध्याभार-  
विनर निवि (२४) पुनानिवि (२५) देबनिवि (२६) नागनिवि (२७) वसनिवि (२८) गधवं निवि  
(२९) डिगनिवि (३०) महोरम निवि (३१) मगुर निवि (३२) मकहनिवि (३३) मृगबकनिवि (३४) बकनिवि  
(३५) बापुमकनिवि (३६) मोरदेव निवि (३७) अनगिह देव निवि (३८) उत्तरपुडरीयनिवि (३९) धारवोडादिनिवि  
(४०) पूर्वदिदेहनिवि (४१) उधोरनिवि (४२) निधोरनिवि (४३) बिधोरनिवि (४४) प्रसोपनिवि (४५) सागरनिवि  
(४६) बयानिनि (४७) मेग प्रतियेधनिवि (४८) अनुडननिवि (४९) मास्मावत्तनिवि (५०) गणावत्तनिवि  
(५१) उग्गेमावत्तनिवि (५२) विधेमावत्तनिवि (५३) पाव निविनिवि (५४) द्विपत्तरपव मधि निविनि निवि  
(५५) दमोत्तरपव मधिनिविनि निवि (५६) धम्महागिणी निवि (५७) मर्वदमंघहागिणीनिवि (५८) विद्यानुमीमनिवि  
(५९) विमिथिन निवि (६०) कृपिपगमन निवि (६१) धग्गीरेक्षणिनिवि (६२) मवीपघनिसयद निवि  
(६३) मर्वमार मरहण निवि (६४) मर्वमनदउधहणी निवि ।

इन निविनों के सम्बन्ध में सागमप्रभाकर पुष्यविजय<sup>१२१</sup> बी म० का यह धर्ममन था कि इनमें धनेकों नाम वर्णित हैं। इन निविनों के सम्बन्ध में अभी तक कोई प्राचीन सिलालेख भी उपलब्ध नहीं हुआ है, इससे भी यह प्रतीत होता है कि ये सभी निविनी प्राचीन समय में ही मुज हो गईं। या इन निविनों का स्थान बाहो निवि ने से निचा होगा। मेरी दृष्टि में बट्टाचरु देगीय भाषा और निविनी ये दोनों पृथक् पृथक् होनी चाहिए।

११८. बिजेवावयक भाष्य भाषा ४६४ बी टीका

११९. बल्पमून टीका

१२०. मलिनविस्तरा अध्याय १०

१२१. 'भारतीय धर्म धम्म संस्कृति धने सेधनकता' पृ. ५

है।<sup>१३३</sup> भारत की दस प्रमुख राजधानियों में एक राजधानी वाराणसी भी थी<sup>१३४</sup>। ग्रीवान् चू चांग ने वाराणसी को देश छोड़ नगर होने माना है। उगने वाराणसी देश का विस्तार ४००० ली छोड़ नगर का विस्तार लंबाई में १८ ली छोड़ चौड़ाई में ६ ली बताया है<sup>१३५</sup>। जातक के अनुसार वाशी राज्य का विस्तार ३०० योजन था<sup>१३६</sup>। वाराणसी वाशी जनपद की राजधानी थी। प्रस्तुत नगर वर्णा और धमी इन दो नदियों के बीच में अवस्थित था, धन इगना नाम वाराणसी पडा। यह निरुक्त नाम है। भगवान् पार्श्वनाथ आदि का जन्म भी इसी नगर में हुआ था।

वाराणसी के बाहर मृत-गंगातीरनामक एक झह (झड़) था जिनमें रंग धिरने कमल के फूल महारते थे। विविध प्रकार की मछलियाँ और कूर्म तथा अन्य जलचर प्राणी थे। दो कुर्मी ने झह से बाहर निकलकर अपने अगोपाग फैला दिये। उनी समय दो शृगाल आहार की अन्वेषण करते हुए वहाँ पहुँचे। कुर्मी ने शृगालों की पद-छानि सुनी, तो उन्होंने अपने शरीर को समेट लिया। शृगालों ने बहुत प्रवास किया पर ये कुर्मी का कुछ भी न कर सके। अन्धे समय तक प्रतीक्षा करने के बाद एक कुर्म ने अपने अगोपागों को फैला दिया जिससे उसे शृगालों ने पौर दिया। जो गिरुड़ा रहा उगगा बाल भी खाता न हुआ। उनी तरह जो साधक अपनी इन्द्रियों को पूर्ण रूप से धन में रचना है उसको क्वचित् भी धान नहीं होती। सूत्रशृतांग<sup>१३७</sup> में भी बहुत ही संक्षेप में कूर्म के रूपक को गायक के जीवन के साथ सम्बन्धित किया है।

श्रीमद् भगवद्गीता<sup>१३८</sup> में भी 'द्विचतप्रज्ञ' के स्वरूप का विश्लेषण करते हुए कष्ट का दृष्टान्त देने हुए कहा जंगे—वह अपने प्रयोगों को, बाह्य भय उपस्थित होने पर, समेट लेता है वैसे ही साधकों को विषयों से इन्द्रियों को हटा लेना चाहिए। तथागत बुद्ध ने भी साधक जीवन के लिए कूर्म का रूपक प्रयुक्त किया है।

इस तरह कूर्म का रूपक जैन बौद्ध और वैदिक आदि सभी धर्मग्रन्थों में इन्द्रियनिग्रह के लिए दिया गया है। पर यहाँ क्या के गायक में देने के कारण अत्यधिक प्रभावशाली बन गया है।

पाँचवें अध्याय का मध्यस्थ विश्वविभूत द्वारका नगरी से है। धर्मण और वैदिक दोनों ही परम्पराओं के जलो में द्वारका की विस्तार में पाया है। यह पूर्व पश्चिम में १२ योजन लम्बी और उत्तर दक्षिण में भी बाजल विस्तीर्ण थी। कृषेर द्वारा निर्मित मीने के प्रकार वाली थी, जिन पर पाँच वर्षवाली मणियों के कगूरे थे। बरी दर्शनीय थी। उगरे उत्तर-पूर्व में रिवननामक पर्वत था। उस पर नन्दवननामक उद्यान था। कृष्ण वहाँ के मन्त्र थे।<sup>१३९</sup>

११३ व्याख्या प्रशस्ति १४, पृ० ३८३

११४ —(क) स्थानांग १०

(ख) निजीय ९-१९

(ग) दीपनिराय-महायीरपरिनिष्प्राण मुक्त

११५ दुष्पान, बुद्धांग डेवंग इन इन्द्रिया, भा० २, पृ० ४६-८८

११६ धर्मसिंहट्ट जगज्-ज्ञानक भाग ३ पृ० ८४६

११७ महा बुद्धमेघ दाई, मण देते ममादरे।

एव वाऽवाह मेधावी, समन्वयेण मयाहरे।

—सुबहनाग

११८. दया महाने काय कुर्मीदर्शनीय सर्वज।

११९. ११९. ११९. ११९. ११९. ११९. ११९. ११९. ११९. ११९.

—श्रीमद्भगवद्गीता २-३८

११९. ११९. ११९. ११९.

मुहूर्त्त<sup>१४०</sup> के अनुसार द्वारका के चारों ओर पत्थर का प्राकार था। त्रिपट्टिशलाका पुष्प<sup>१४१</sup> चरित्र में आचार्य हेमचन्द्र ने निम्ना है कि द्वारका १२ योजन आयामवाली और नौ योजन विस्तृत थी। वह रत्नमयी थी। उसके समिपट्ट अट्टारह हाथ ऊँचा नौ हाथ भूमिगत और बाहर हाथ चौड़ा सभी ओर खाई से घिरा हुआ एक गुम्बर किला था। बड़े सुन्दर प्रसाद थे। राम कृष्ण के प्रसाद के नाम प्रसासानामक सभा थी। उनके समीप पूर्व में रत्नक गिरि, दक्षिण में मात्स्यवान भील, पश्चिम में सीमनस पर्वत और उत्तर में मत्स्यमादन गिरि थे। आचार्य हेमचन्द्र<sup>१४२</sup> आचार्य श्रीलाक<sup>१४३</sup> देवप्रभसूरि<sup>१४४</sup> आचार्य जिनसेन<sup>१४५</sup> आचार्य गुणभद्र<sup>१४६</sup> प्रभृति रत्नावर व दिगम्बर परम्परा के षष्ठकारों ने और वैदिक हरिवंश पुराण,<sup>१४७</sup> विष्णुपुराण<sup>१४८</sup> और श्रीमद् भागवत<sup>१४९</sup> आदि में द्वारका को समुद्र के किनारे माना है। महाभारत में श्रीकृष्ण ने द्वारकागमन के सम्बन्ध में युधिष्ठिर से कहा—मयुरा को छोड़कर हम कुशस्थलीनामक नगरी में आये जो रत्नक पर्वत में उपनोमिता थी। वहाँ दुर्गन्त दुर्ग का निर्माण किया। अक्षिरु द्वारवासी होने से द्वारवती कहलाई।<sup>१५०</sup> महाभारत जनपद की टीका<sup>१५१</sup> में नीलकण्ठ ने बुधवार का अर्थ द्वारका किया है।

प्रमुदपाल मित्तन<sup>१५२</sup> ने लिखा है—श्रुतेन जनपद से यादवों के आगमन के कारण द्वारका के उस छोटे से राज्य की अत्यधिक उन्नति हुई। वहाँ पर दुर्गन्त दुर्ग और विशाल नगर का निर्माण कराया गया और अग्रक क्षिति सभ के एक शक्तिशाली यादव राज्य के रूप में स्थापित किया गया। भारत के समुद्र तट का वह सुदृढ़ राज्य विदेशी घनार्यों के आक्रमण के लिए देश का एक सज्ज प्रहरी बन गया। गुजराती में 'द्वार' का अर्थ बन्दरगाह है। द्वारका या द्वारवती का अर्थ बन्दरगाहों की नगरी है। उन बन्दरगाहों से यादवों ने समुद्रयात्रा कर विराट् सम्पत्ति प्राप्त की थी। हरिवंश पुराण<sup>१५३</sup> में लिखा है—द्वारका में निर्धन, आग्यहीन, निर्बल तन और मलिन मन का कोई भी व्यक्ति नहीं था। वायुपुराण आदि के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि महाराजा रत्न ने समुद्र के मध्य कुशस्थली नगरी बनाई थी। वह सानस जनपद में थी। वह कुशस्थली श्रीकृष्ण के समय द्वारका या द्वारवती के नाम से पहचानी जाने लगी। घटजातक<sup>१५४</sup> का अभिमत है कि द्वारका के एक ओर विराट् समुद्र अटकेलिया कर रहा था तो दूसरी ओर मगनधु की पर्वत था। डा. मनमोहन का भी यही मन्व्य है कि

१४०. बृहत्संहिता भाग २, पृ. २५१
१४१. त्रिपट्टिशलाका पुष्प = सर्ग ५, पृ. ९२
१४२. त्रिपट्टिश. सर्ग ८, सर्ग ५, पृ. ९२
१४३. अट्टपन्न महापुराणचरित्र पृ.
१४४. पाण्डवचरित्र देवप्रभसूरि रचित
१४५. हरिवंश पुराण ४१/१९१९
१४६. उत्तरपुराण ७१/२०-२३, पृ. ३७६
१४७. हरिवंशपुराण २/५४
१४८. विष्णुपुराण ५/२३/१३
१४९. श्रीमद्भागवत १० अ ५०/५०
१५०. महाभारत सभापर्व अ. १४
१५१. (क) महाभारत जनपद अ. १६० श्लो० ५०/ (ख) अतीत का अनावरण पृ. १६३
१५२. द्वितीय घट वन का इतिहास पृ. ४७
१५३. हरिवंशपुराण २/५८/६५
१५४. जातक (चतुर्थ घट) पृ. २८४

पेनवरु<sup>१५५</sup> ने द्वारका को कबोज का एक नगर माना है। इस मान्यता<sup>१५६</sup> ने पार्श्व कथा का आधार बना करने हुए लिया है कि सभर है यह कबोज हो कबोज हो जो कि पाण्डव युद्ध के दस वर्षों का देग था। श्री मोतीचन्द<sup>१५७</sup> कबोज को गामोर प्रदेश मानते हैं। श्री द्वारका की कबोज का उल्लेख में पाण्डव युद्ध का देग है। रामन डेविड<sup>१५८</sup> ने कबोज का द्वारका की राजधानी माना है। उदात्त भक्त<sup>१५९</sup> ने लिखा है द्वारका मीरपुर का एक नगर था, मगर द्वारका कबजे में आते २० मील की दूरी पर कबुज की गली में एक छोटा सा टीलू है। यहाँ एक दूसरी द्वारका है जो बेट द्वारका कही जाती है। यहाँ मोरियर<sup>१६०</sup> में लिखी है विद्वानों ने द्वारिका की अवस्थिति पताचम मानने को सम्भवता को है। इस धारणा पर आधारित मोरियर<sup>१६१</sup> ने लिखा है—प्राचीन द्वारका मधुद म दृष्ट गई, धन द्वारका की अवस्थिति का निर्णय करता कहित है।

प्रस्तुत विवेचन से यह स्पष्ट है कि द्वारका एक विभिन्न नगरी थी। यह लंका के समान ही स्वर्णपुरी थी। सम्राट् श्रीकृष्ण तीन चण्ड के अधिपति थे। उनसे यह राजधानी थी। पाण्डवात्मव मेरुती मन्त्र प्रभा-सम्पन्न नागी थी। प्राधुनिक युग में त्रिम नरह में नारी मेरुत्र करने के लिए उन्मुख करती है, यह मन्त्र न स्पष्ट होकर संचालन करना पसन्द करती है, वैसे ही पाण्डवा घर की मानसिन् थी। यह मन्त्र घर की देवसेवा करती थी। उसी के नाम का धनुमरुण उसके पुत्र के लिए दिया गया। धनुमन् धर्मिष्ठनेमि के पालन प्रवर्तन की धारणा कर पावच्छा कुमार के धनमर्मादि में वैराग्य का प्रयोग उपायों मानने लगा। उनमें धनी धनीम पतिव्रता परित्याग कर समयमाधना के कठोर महामार्ग पर बटना चाहता। माना के छोड़ प्रहार में समर्पित और धनुम करने पर भी प्रत्येक पुत्र के वैराग्य की विजय हुई। पाण्डवा दीक्षोत्सव मनाने के लिए स्वयं सम्राट् कृष्ण के पास पहुंचती है और दीक्षोत्सव के लिए धन धामर मागती है। श्रीकृष्ण ने स्वयं आकर कुमार की परीक्षा ली। पावच्छा कुमार ने कहा—नाथ, मेरे दो शत्रु हैं। आप यदि उन शत्रुओं से मेरी रक्षा कर सकें तो मैं समय स्वीकार नहीं करूँगा।

श्रीकृष्ण ने पूछा—वे शत्रु, कौन हैं जो तुम्हें परेशान कर रहे हैं ? उनमें कहा—एक बुद्धावस्था है जो निरन्तर निवट आ रही है और दूसरी मृत्यु है। श्रीकृष्ण ने कहा इन शत्रुओं को पराजित करने का सामर्थ्य मुझमें भी नहीं है। कुमार परीक्षा में खरा उत्तरा। श्रीकृष्ण ने द्वारका में उद्योगपणा करवाई कि जो कोई भी समयमाधना के पथ पर बटना चाहे उसके परिवार का भरण पोषण मैं करूँगा। इन उद्योगपणा से एक हजार भक्ति पावच्छा कुमार के साथ प्रव्रज्या लेने के लिए प्रस्तुत हुए। श्रीकृष्ण ने अभिनिष्क्रमण महोत्सव मनाया।

प्रस्तुत कथानक में ऐतिहासिक पुरुष श्रीकृष्ण वामदेव के धनमर्मादि में सर्वत्र धर्म के प्रति वितनी महती निष्ठा थी यह स्पष्ट रूप से व्यक्त होती है। एक महिला भी उनके पास सहज पहुँच सकती थी। और अपने हृदय की बात उनसे कह सकती थी। वे प्रत्येक प्रजा की बात की भाति से ध्वनित करते और समस्याओं का समाधान करते। हमी धर्मपथ में प्रत्येक धार्मिक गुरुिधों को भी सुलभाया गया है। शीवधर्म की मान्यताओं का दिग्दर्शन करते हुए जैनधर्मसम्मत शीवधर्म का प्रतिपादन किया है। जैन दर्शन ने इष्ट शीव के स्थान पर भाव शीव को महत्त्व दिया

१५५. पेनवरु भाग २, पृ. ९

१५६. The Dictionary of Pali proper Names. भाग १. पृ. ११२६

१५७. Geographical & Economic Studies in Mahabharatha पृ ३२-४०

१५८. Buddhist India P. 28

१५९. बौद्धवादीन भारतीय भूगोल पृ ४८७

१६०. थॉमस मेरेटियर भा. १ पार्ट. १. पृ. ११ का टिप्पण।

१६१. इण्डियन एण्टिक्वेरी, मन् १९२५, सप्लिमेंट पृ. २५

है। मात्रा, गुण, ध्वन्यादाय, के संबंध में जैन दृष्टिकोण को स्पष्ट किया है। शब्दज्ञान ही उल्लाने के लिए ऐसे प्रश्न समुपस्थित किए गये जिससे सामान्य स्तर पर उत्तर मिलना है। विष्णु पांडेयना मुनि ने उन शब्दों का गहरा पक्ष पर पोषी पहिनी की शाली मूक बना दी, धर्म का मून बिना बनाया।

इस ध्वन्याय में शब्दक-रात्रि का भी वर्णन है, जो उस माधना करने है। उत्कृष्ट तन माधना में उनका शरीर वराधि में बर्णित हो गया। उनका पुत्र राजा मण्डक रात्रि के उपचार ने लिए प्रार्थना करता है और मणून उपचार की व्यवस्था करने में वे पुनः पक्ष में रोगमुक्त भी हो जाते हैं। यहाँ पर यह स्मरणयोग है कि रोग परीयह है, उसमें मार्ग में श्रमण धीयध बहान नहीं बनाया, पर धनवाद मार्ग में यह धीयध का उपयोग भी करना है। दृष्ट्य का बर्णन है कि वह श्रमण-धर्मियों की ऐसे प्रणय पर सेवा का मुनहय लाभ है। जो दृष्ट्य उस महान् लाभ से बर्णित रहता है वह बहान बहो सेवा की निधि से बर्णित रहता है।

अब शैवक रात्रि माधना की दृष्टि में निहित हो जाते हैं वह उनके धर्म सिध्यगण धर्म्य विहार का जाने हैं। विष्णु पंचक मुनि धननी धनून सेवा में एक धार्मिक सिध्य का उत्तरदायित्व निभाने हैं। सिध्य के द्वारा धर्म्यस्पर्श करने हो पुन की प्रगुल धार्मिक जग जानी है। बहा ही मुन्दर विधेयण है और वह धर्म्यल प्रेरणायवी भी है।

उत्ते धर्म्ययन का संबंध राजद्वह नगर से है। इस धर्म्ययन में धर्मवाद जैसे पुन पंथीर विषय को स्पष्ट के द्वारा स्पष्ट किया है। गणधर शीतल की जिज्ञासा के समाधान में धर्मयान् ने तु के उदाहरण से इस बात पर प्रकाश डाला कि मिट्टी के लेप में भारी बना हुआ धुआ जल में घल हो जाता है और लेप हटने में वह पुन तैरने लगता है। वैसे ही कर्मों के लेप में धार्मिक भारी बनकर गणधर-माधर में डूबता है और उग लेप से मुक्त होकर ऊर्ध्वगति करता है।

सातवें धर्म्ययन में धर्मा गार्ववाह की बार पुनवधुषी का उदाहरण है। थोड़ी धननी बार पुनवधुषी की परीक्षा के लिए पाँच पाँच शालि के दाने उगड़े देना है। प्रथम पुनवधु ने कोर दिये। दूसरी ने प्रसाध समझकर खा लिये। तीसरी ने उगड़े नभामकर रखा और चौथी ने मंती करवा कर उगड़े लून बहाया। थोड़ी ने चतुर्थ रोहिणी की गृहधामिनी बनाया। वैसे ही मुन पक्ष दाने कर्ममहावत-धार्मिक के दाने सिध्यों की प्रदान करना है। कोई उसे गष्ट कर डालता है, दूसरा उसे धान-धान का साधन बना लेता है। कोई उसे मुरझित रखता है और कोई उसे उत्कृष्ट साधना कर धर्म्यधिर विवर्णित करता है।

श्री डाइमन ने अपनी जर्मन पुस्तक-"बुद्ध और महावीर" में वाइविन की धर्मपू और लूब की कथा के साथ प्रस्तुत कथा की तुलना की है। यहाँ पर शालि के दानों के स्थान पर 'हेलेण्ट' शब्द आया है। हेलेण्ट उस गुण में प्रचलित एक मित्रता था। एक व्यक्ति विदेश जाने समय अपने दो पुत्रों को दस-दस हेलेण्ट दे गया था। एक ने व्यापार द्वारा उसकी धर्म्यधिर बुद्धि की। दूसरे ने उगड़े जमीन में रख लिए। तीसरे पर पिता प्रथम पुन पर बहुत प्रसन्न हुआ।

छाटवें धर्म्ययन में तीर्थंकर मल्ली भगवती का वर्णन है जिन्होंने पुन पक्ष में माया का लेखन किया। माया के कारण उनका धार्मिक उल्लाप जो माधना के द्वारा हुआ था, उसमें माया उपस्थित हो गई। तीर्थंकर सभी पुन होने हैं, पर मल्ली भगवती रमो हुईं। इसे जैन साहित्य में एक धार्मिक जनक घटना माना है। मल्ली भगवती ने अपने पर मुण्य होने वाले धर्मो राजाओं को, शरीर की प्रभुविता दिया कर प्रतिबुद्ध किया। उन्हीं के साथ दोहा ग्रहण की। केवल ज्ञान प्राप्त किया। तीर्थं स्थापना कर तीर्थंकर बनी।



मन्त्री भगवती का जन्म मिथिला में हुआ था। मिथिला उम युग की एक सुप्रसिद्ध नगरी थी।  
 जलक<sup>११३</sup> की दृष्टि में मिथिला राज्य का विस्तार ३०० योजन था। उसमें १६ महानगर थे। मुनि ज  
 में भी मिथिला के विस्तार का पता चलता है। वागमयी के राजा ने यह निश्चय किया था कि वह अपनी पुत्री  
 विराह उसी राजकुमार के साथ करेगा जो एक पत्नीव्रत का पालन करेगा। मिथिला के राजकुमार मुनि के  
 विवाह की चर्चा चल रही थी। एक पत्नीव्रत की बात को ध्यान कर वहाँ के मंत्रियों ने वहाँ-मिथिला का वि  
 ७ योजन है और समुच्चय राष्ट्र का विस्तार ३०० योजन है। हमारा राज्य बड़ा है, अतः राजा के पत्नी  
 १६०० रनिया होनी<sup>११३</sup> चाहिए। रामायण में मिथिला को जनरपुरी कहा है। विविध तीर्थ कल्प<sup>११४</sup> में  
 देश को निरूपित कहा है। और मिथिला को जयनी<sup>११५</sup> कहा है। महाभारत वनपर्व (२५८) महावग्नु (पृ. ३  
 दिव्यावदान (पृ. ४२८) और रामायण आदिराष्ट्र के अनुगार तीरभुञ्जि नाम है। यह नेपाल की सीमा पर  
 है। वर्तमान में यह जनरपुर के नाम से प्रसिद्ध है, इसके उत्तर में मुजफ्फरपुर और दरभंगा के जिले हैं, (म  
 उपाधी की धार धारी बुद्धिजय पृ. ३१, कमिषन लेख्येड ज्यार्वे की धार्य दृष्टिया, एम एम. मजुमदार संस्करण पृ.  
 हमने पाए ही महाराजा जनक के छाता कनक थे। उनके नाम से कनकपुर कहा हुआ है। मिथिला से ही जैन ध  
 की शाखा मैथिलिया<sup>११६</sup> निकली है। यहाँ पर भगवान महावीर ने छह वर्षावाम<sup>११७</sup> भ्रमण किये थे। छाठवें  
 धर्म धर्माचार की भी यह जन्मस्थली है<sup>११८</sup> यहाँ पर प्रत्येक बुद्ध नगरी की कवण की ध्वनि को ध्यान कर  
 उत्पन्न हुआ था।<sup>११९</sup>

इन्द्र ने नमि राजा की कहा—मिथिला जल गहरी है और धार गायत्री की ओर अपने मुस्तवी बदल  
 रहे हैं, तब नमि ने इन्द्र ने कहा—इन्द्र 'महिलाए इन्द्रमानीए' ण मे इन्द्राई क्रिष्ण' (उत्तरा. ९/१४) उ  
 ध्वनि की भाँति महाभाग में भी जनक के सम्बन्ध में एक कथा आती है। प्रवल अग्निदाह के कारण भग  
 होने हुए मिथिला की देवदर अनामिका से जनक ने कहा—इस जलनी हुई नगरी मे मेरा कुछ भी नहीं जन  
 'मिथिलायाम् प्रदीप्यायाम् न मे दहति क्रिष्ण' (महाभारत १२, १७, १८-१९) महाजनक जातक में भी  
 प्रकार का वचन मिलता है। 'मिथिलायाम् दह्यमानाय न मे रिच्छि अदह्य' (जातक ६, ५४-५५) म  
 महावीर और बुद्ध के समय मिथिला में मणराज्य था।

कमुषे निरुद्ध ने सामुद्रिकार बाद का कहा से प्रवर्तन किया था।<sup>१२०</sup> दशार्चधारी धार्य महावि  
 यह मुनि का विहारस्थल था<sup>१२१</sup> बागमया और यहक ये दो नदियाँ प्रस्तुत नगर को घेरकर बहती हैं।  
 मिथिला एक समृद्ध राष्ट्र था। त्रिवर्ष मूरि के समय वहाँ पर प्रत्येक घर कक्षीवन से शोभित था।  
 रहा था दिन भीजन था। स्थान-स्थान पर बाँधी, दूर और तालाब थे। वहाँ की जनता धर्मनिष्ठ और धर्म

- ११२ जलक (म ८०६) भाग ४, पृ. २३
- ११३ जलक (म ८०६) भाग ४ पृ. ४, ५२१-२२
- ११४ महाभारत अष्टादश स्कंध—विषय तीर्थव्रत, पृ. ३२
- ११५ वही पृ. ३२
- ११६ वही. पृ. ३२
- ११७ कल्पवृक्ष २१३, पृ. २९८
- ११८ महाभारत अष्टादश स्कंध भा. ६४
- ११९ उत्तराखण्ड के मुजफ्फरपुर, पृ. १३१-१३२
- १२० महाभारत अष्टादश स्कंध भा. १३१
- १२१ महाभारत अष्टादश स्कंध भा. १३२
- १२२ विषय तीर्थव्रत पृ. ३२

माता थी।<sup>१७३</sup> जातक के अनुसार मिथिला के चार प्रवेशद्वारों में प्रत्येक स्थान पर बाजार थे। (जातक VI पृ ३३०) नगर वास्तुकला की दृष्टि से अत्यन्त बलात्मक था। वहाँ के निवासी बहुमूल्य वस्त्र धारण करते थे। (जातक ४६ महाभारत २०६) रामायण के अनुसार यह एक मनोरम व स्वच्छ नगर था। सुन्दर सड़कें थी। व्यापार का बड़ा केन्द्र था। (परमत्पदोपको ध्यान द पेन्थापा मिहली संस्करण II। २७७-८) यह नगर विजो का केन्द्र था। (मार्कवालय श्रोतमूत्र X ३, १४) अनेक नाविक यहाँ पर हुए हैं जिन्होंने तर्कशास्त्र को नई दिशा दी। महान् साविक गणेश मण्डनमित्र और वैष्णव कवि विद्यापति भी यहीं के थे। विदेह राज्य की सीमा उत्तर में हिमालय, दक्षिण में गंगा, पश्चिम में गंडकी और पूर्व में गहरी नदी तक थी। वर्तमान में नेपाल की सीमा के अन्तर्गत यहाँ पर मुजफ्फरपुर और दरभंगा के जिले हैं। वहाँ छोटे नगर जनकपुर को प्राचीन मिथिला कहते हैं। कितने ही ब्रिटान् सोतामदी के समिष्ट 'मुहिला'<sup>१७४</sup> नायक स्थान को प्राचीन मिथिला का अग्रभूज मानते हैं। जैन धार्मिकों में इस राजधानियों में मिथिला भी एक है।<sup>१७५</sup>

प्रस्तुत अध्ययन में उत्कृष्ट विचकला का भी रूप देखने को मिलता है। कलाकार इतने निष्णात होते थे कि किसी व्यक्ति के एक रूप को देखकर ही उनका हृदय चित्र उद्भूत कर देते थे। राजा-महाराजा और धर्मोद्योगों को चित्रकला अधिक प्रिय थी, जिसके कारण विविध प्रकार की विशालाएँ बनाई जाती थी। प्रस्तुत अध्ययन में कुछ अवान्तर कथाएँ भी आई हैं। अब परिवाजिका चोबछा राजा जितसन्त के पास आती है, जितसन्त परिवाजिका से कहता है कि क्या आपने मेरे जैसे अत पुर को कभी निहार्य है? परिवाजिका ने मुस्कराते हुए कहा— मुम रूप मडूक जैसे हो। और फिर रूपमडूक की मनोरम कथा मूल पाठ में भी आई है।

प्रस्तुत अध्ययन में अर्धभक्त धावक की मुदृष्ट धर्मनिष्ठा का उल्लेख है। उस युग में समुद्रयात्रा की जाती थी। व्यापारीगण विविध प्रकार की साधकरी लेकर एक देश से दूसरे देश में पहुँचते थे। इसमें छह राजाओं का परिचय भी दिया गया है। मल्ली भगवती के मुग में राज्यव्यवस्था विम प्रकार थी, इसकी भी स्पष्ट जानकारी मिलती है।

नीचें अध्ययन में सारगर्भिक जिनपाणिन और जिनरक्षित का वर्णन है। उन्होंने अनेक बार समुद्रयात्रा की थी। जब मन में आता तब वे यात्रा के लिए चल पड़ते। बारहवीं बार माता-पिता नहीं चाहते थे कि वे विदेश यात्रा के लिए जाय, पर वे माता की अवहेलना कर चल दिये। विष्णु भयकर क्रोधन से उनकी मौका दूट गई और और वे रत्नदीप में रत्नदेवी के भुयल में फँस गये। मूलक यक्ष ने उनका उद्धार करना चाहा। जिनरक्षित ने धावना से अनर्चित होकर अपने प्राण नत्रा दिये और जिनपाणिन विचलित न होने से सुरक्षित स्थान पर पहुँच गया। इसी प्रकार जो साधक अपनी साधना में विचलित नहीं होता है वही नदय को प्राप्त करता है।

प्रस्तुत कथानक से मिलता जुलता कथानक बौद्ध साहित्य के उपाहस जातक में हैं और विद्यावधान में भी मिलता है। तुलनात्मक अध्ययन करने में स्पष्ट होता है कि कथानकों में परस्पर के भेद से कुछ अन्तर अवश्य आता है पर कथानक के मूल सत्त्व प्रायः काफी मिलते जुलते हैं। प्रस्तुत कथानक से यह भी पता चलता है कि समुद्रयात्रा सरल और सुगम नहीं थी। अनेक आपत्तियाँ उस यात्रा में रही हुई थीं। उन आपत्तियों से बचने के लिए वे लीम स्तुतिपाठ और भगवतपाठ भी करते थे। विदेशयात्रा के लिए राजा की आज्ञा भी आवश्यक थी। इष्ट स्थान पर पहुँचने पर वे उपहार लेकर वहाँ के राजा के पास पहुँचते और राजा उनके कर को माफ कर देता था। धार्मिक व्यवस्था में विविधता या महत्त्वपूर्ण हाथ है। इसलिए व्यापारी व्यापार के विकास हेतु समुद्रयात्रा करते थे।

१७३. वही० पृ० २२

१७४. The Ancient Geography of India, पृ० ७१८

१७५. स्थानाग १०/११७

**शक्रुन :**

अनुसंधान में वह विचारों की विशाल समृद्धि के लिए प्रेरित हो है। वह है जो देखता है। अनुसंधान का धर्म 'सूचित वाचक' है। जो धर्म में समाप्त हो जाता है। उसका प्रमाण अनुसंधान द्वारा होता है। आधुनिक विज्ञान की शक्ति में यह शक्ति का अनुसंधान प्रमाण होता है। अनुसंधान प्रभावशाली या अनुसंधान नहीं है। यह एक शक्ति है। धर्म का समाप्ति समाप्ति विचारों की।

शुद्धदमन की परम्परा प्रागैतिहासिक रूप में लगी आरम्भ है। क्या-साहित्य का साहित्यिक रूप में स्पष्ट होता है कि जन्म विकास चरित्रमय रूपरेखा और साहित्य साहित्यिक चरित्रों के साहित्य का शुद्ध देना का प्रमाण था। शुद्ध तो शुद्ध देना ही थे श्रमण भी शुद्ध देना थे। मन्त्र ही साहित्य हो गयी है कि शुद्ध की तो धर्म का मतलब ही होता है और उन कामनाओं की प्रति के लिए वह शुद्ध देना वह प्रति साहित्य सकता है, पर श्रमण शुद्ध देना, यह कहाँ तक उचित है ? उन्मत्त में निहित है कि श्रमण के शुद्ध देना का देना इतना ही उद्देश्य रहा है कि मुझे ज्ञान, दर्शन, आरिष व तब की विशेष उपाधि होती या नहीं ? मैं जिस शुद्ध को प्रतिबोध देने जा रहा हूँ—उसमें मुझे गलतता मिली या नहीं ? शुद्ध को देखकर जानें की गलतता का सहज परिणाम हो जाता है और अशुद्ध को देखकर उसमें आनेवाली बाधाएँ भी जान हो जाती हैं। इसलिए श्रमण के शुद्ध देना का उद्देश्य साहित्य है। वह स्वयं के लिए उनका उपयोग करे पर शुद्धों को न बाधे। विशेष जिज्ञासु बृहस्पत्य भाष्य\*, निगीय भाष्य\*\*, आश्रयक शुद्ध\*\*\* आदि में श्रमणों के शुद्ध देना के प्रमाण देख सकते हैं।

देश, काल और परिस्थिति के अनुसार एक वस्तु शुभ मानी जाती है और वही वस्तु दूसरी परिस्थिति में अशुभ भी मानी जाती है। एनदर्थ शत्रुन विवेचन करनेवाले ग्रंथों में मायमा-भेद भी हमोपर होता है।

जैन धर्म और जैनितर साहित्य में शकुन के संबंध में विस्तार से विवेचन है, पर हम यहाँ उनके गिम्नार में न जाकर संक्षेप में ही प्राचीन ग्रंथों के आलोचक में शुभ और अशुभ शकुन का वर्णन प्रस्तुत कर रहे हैं। बाहर जाने समय यदि दिग्मं शकुन होने है तो अशुभ माना जाता है—

- (१) पथ में मिलनेवाला अधिक अत्यन्त गंदे वस्त्र धारण विधे हो ।
- (२) गामने मिलनेवाले व्यक्ति के निर पर बाण्ड का भार हो ।
- (३) मार्ग में मिलनेवाले व्यक्ति के शरीर पर तेल मला हुआ हो ।
- (४) पथ में मिलनेवाला अधिक वामन या कुबज हो ।
- (५) मार्ग में मिलनेवाली महिला बर्दा गुमारी हो ।

शुभ शकून इस प्रकार है—

- (१) पोहो जा दिनदिनाता (२) ददन विषे दुष्प मयूर का केवारव<sup>१७७</sup>  
(३) वार्द भोर यदि वारु पय फडफडाता हुआ शब्द करे ।

\* (ग) बृहत्काय—१ १९२१-२४, १ २८१०-३१

\*(ग) निगोधभाष्य—१६.७०५४-५५, १९ ६०७८-६०९५.

\*\*\* (प) भावराशुनि—२ पृ. २१८

१७६ अधोदनिर्मुक्तिः

१०० (क) पञ्चवर्षीय ५८, ५७, ६९, ७०, ७२, ८१, ७३

- (४) दाहिनी घोर बिपादने हुए हाथी का मन्द करना घोर पुष्पी को प्रताड़ना ।
- (५) मूत्र के सम्मुख बैठे हुए शीघ्र द्वारा बहुत तीक्ष्ण मन्द करना ।
- (६) दाहिनी घोर शीघ्र का पंखों को डीमा कर व्याकुल रूप में बैठना ।
- (७) शीघ्र द्वारा मयेंतर मन्द ।
- (८) शीघ्र का पंख कटाड़ना ।
- (९) गर्दभ द्वारा दाहिनी घोर मुहवर बैठना ।
- (१०) मुगधिन हवा का मन्द-मन्द रूप में प्रवाहित होना ।<sup>१७४</sup>
- (११) निर्धूम धमन की उन्मादा दक्षिणावर्त प्रवर्तित होना ।
- (१२) नन्दीउर, पूर्णननस, बाँध, पटह, छप, चामर, ध्वजा-पनाका का साक्षात् कार होना ।<sup>१७५</sup>

प्रतीक गणितिका<sup>१७६</sup> में लिखा है कि शत्रुन मृदुर्न से भी प्रचन होना है । जवुक, धान (नीसकठ) मयूर, भारद्वाज, मकुल यदि दक्षिण दिशा में दिखलाई दें तो सर्वसंपत्ति प्राप्त होती<sup>१७७</sup> है ।

द्वयर्षे अष्टाग्रतः प्रोक्तं के उदाहरण से प्रतिपादन किया है कि जैसे वृष्णपक्ष में चन्द्र की चार चद्रिका मन्द घोर मन्दनर होती जानी है और शुक्लपक्ष में वही चद्रिका धमिबुद्धि को प्राप्त होती है वैसे ही चन्द्र के सत्त बनी की अधिका से आत्मा की ज्योति मंद होती है और बने की ज्यो-ज्यो म्यूनना होती है ज्यों-ज्यों जमनी ज्योति अधिकाधिक जगमगाने लगती है ; स्पष्ट बहुत ही ज्ञानदार है । दार्शनिक बहुत विचारधारा को रूपक के द्वारा बहुत ही सरल व सुगम रीति में उपस्थित किया है । यह विज्ञान भी गणधर बीनम ने राजबृह में प्रस्तुत की थी और भगवान् ने समाधान दिया था ।

मयार्थे अष्टाग्रतः प्रोक्तं के अष्टाग्रतः नामक वृत्त होने हैं । उन का उदाहरण देकर आराध्यक और विराध्यक का निष्कर्ष दिया गया है । जिस प्रकार बहू वृत्त अनुकूल घोर प्रतिबन्ध पवन को सहन करता है वैसे ही अमंगी को अनुकूल घोर प्रतिबन्ध बचने को सहन करना चाहिए । जो सहता है वह आराध्यक बनता है ।

बारहवें अष्टाग्रत में वनूयिन जल को शुद्ध बनाने की पद्धति पर प्रकाश डाला है । घटर के गदे पानी को साफ करने की यह पद्धति आधुनिक युग की फिल्टर पद्धति से प्रायः भिन्नी है । घाज से २५०० वर्ष पूर्व भी यह पद्धति ज्ञान थी । संसार का कोई भी पदार्थ एवान्त रूप में न शुभ है और न अशुभ ही है । प्रत्येक पदार्थ शुभ से अशुभ रूप में और अशुभ से शुभ रूप में परिवर्तित हो सकता है । जो रोगी से पूछा नहीं करनी चाहिए ।

यहाँ पर ध्यान देने योग्य है भगवान् ऋषभ-देव और महावीर के अतिरिक्त बार्हम तीर्थंकरों ने चातुर्धर्म धर्म का उद्देश दिया । यह चातुर्धर्म धर्म अमंगी के लिए था, किन्तु गृहस्थों के लिए जो प्रज्ञ-अशुभ ही थे । वहाँ पर चार अशुभ का उल्लेख नहीं है, किन्तु पाँच अशुभ का उल्लेख है ।<sup>१७८</sup>

इन बचानक का संबंध अथानगरी से है ।

१७८. पञ्चवर्तिन—७२, ८४, ८५/२, ९१, ९४, ९५, ९९

१७९. बृहत्संख्यसमुपाय—८२-८४

१८०. गह दिशा उ मृदुता मृदुता उ मउणावती ।

—प्रकीर्ण गणितिका इली ८

१८१. आपनिर्धुक्ति भाष्य १०८

१८२. “विचित्त” केवलपत्रत चाउज्जाम धम्म परिवहेद, तमाइसधद, जहा जीवा वग्गति जाव पव अणुपयाह ।”

तेरहवें अध्ययन में दहुर का उद्घाटन है। नद गणितार राजपूत का निवासी था। मतंग के प्रभाव में मन-नियम की साधना करते हुए भी वह चमिन हो गया। उसने चार भावाधी के साथ एक वापिका का निर्माण कराया। उसकी वापिका के प्रति अध्ययन प्रामाणिक थी। आत्मिक के कारण प्रार्थना में वह मृत्यु की वरग बना है और उसी वापी में दहुर बना है। कुछ समय के बाद भगवान् महावीर के धामम की बात सुनकर जति-मग्न प्राप्त करके वह वन्दन करने के लिए चला। पर छोटे की टाप से धामन हो गया। वहीं पर धनतन पूरे प्राणों का पश्याग कर वह स्वर्ग का अधिकायी देव बना।

द्वय अध्ययन में पुनर्गणी-वापिका का मुन्दर वर्णन है। वह वापिका अनुपकोण थी और उस में विविध प्रकार के वस्त्र मिल रहे थे। उस पुनर्गणी के चारों ओर उपवन भी थे। उन उपवनों में प्राचुरिक पुष्प के 'दार' के महान् स्थान-स्थान पर विविध प्रकार की बलाहकियाँ निर्मित की गई थी। वहाँ पर सैर कराटे के लिए जो लोग आते थे उनके लिए नाटक दिखाने की भी व्यवस्था की गई थी। चिह्नितान्य का भी निर्माण कराया था। वहाँ पर वृक्ष विविध नित्यक थे। उन्हे बेतन भी मिलता था। उन पुष्प में गौतम महाप्रोण-प्रचुरित थे—  
(१) श्याम (२) काम-गामी (३) उर्वर (४) दाह-जलन (५) बुद्धिभूत (६) भगदर (७) धर्म-वर्णनीर (८) धर्म-  
(९) नेत्रभूत (१०) मन्त्रक भूत (११) भोजन विषयक अरवि (१२) नेत्र वेदना (१३) वर्ण वेदना (१४) बह-  
प्रात (१५) दहुर—जलोदर (१६) कोड़। धाधारार<sup>१८३</sup> में १६ महारोगों के नाम सूचने प्रकार से मिलते हैं।  
विदार<sup>१८४</sup>, निर्णीय भाष्य<sup>१८५</sup> आदि में भी १६ प्रकार की व्याधियों के उल्लेख हैं, पर नामों में भिन्नता है।  
धरमसिन्हा<sup>१८६</sup> में आठ महारोगों का वर्णन है।

द्वय प्रकार द्वय अध्ययन में मानविक दृष्टि में विपुल सामग्री है जिसका ऐतिहासिक दृष्टि में अत्यधिक महत्त्व है।

चौदहवें अध्ययन में तैत्तिरीय का वर्णन है। मानव जिन समय मृत्यु के सागर पर तैरता हो उस समय उसे धामित साधना करना समझ नहीं होता पर जिन समय दुःख की दावालि में भूलत रहा हो, उस समय धर्म-विद्या करने के लिए साधना उद्बुद्ध होती है। जब तैत्तिरीय प्रथम का जीवन बहुत ही सुखी था। उस समय उसे धर्म-विद्या करने की भावना ही नहीं आती हुई। पर पोट्टिय देव, जो पूर्वमेव में पोट्टिया नामक उसी धर्मप्राप्ति थी, उसने बचतबद्ध होने में तैत्तिरीय को समझाने का प्रयास किया, पर जब वह नहीं समझा तो राजा बलरज के अन्तर्धान के विचार परिवर्तित कर दिये और प्रजा के भी। वह धामित को सहन न कर सका। जागो हाउजर मरना चाहता, पर मर न सका। गर्दन में बंधी शिवा बाधकर जल में डूब कर, मृत्यु धाम के द्वार में आग लगाकर, मरने का प्रयास किया, पर मर न सका। अन्त में देव ने प्रविशोद्य देव उने संयममार्ग दर्शा करने के लिए उन्हे शिव दिया। समय बहण कर उसने उन्हे उद्बुद्ध समय साधना की।

द्वय अध्ययन में राजा बलरज की अध्ययन निष्ठुरता का वर्णन है। वह स्वयं ही राज्य का उपभोग करना चाहता है। और उसके मानस में यह कुर विचार उद्बुद्ध होता है कि नहीं मेरे पुत्र मुझे राज्य छीन लेंगे। इसलिए वह अपने पुत्रों को विनाश कर देता था। एक दिन राज्य के लोग में इनका समानयोग हुआ

१८१ धाधारार—१-१-१७३

१८२ विदार—१, ७० ७

१८३ निर्णीय भाष्य—११/३६६६

१८४ धरमसिन्हा—पुष्टी की जाती नहीं है।

पुष्टी के अनुसार, राजा बलरज का भी नर।

—धारमसिन्हा दृष्टि-विवरण—१.

कर सकता है—यह इतिहास का एक काला पृष्ठ है। और इस पृष्ठ की एक बार नहीं घनेक बार पुनरावृत्ति होती रही है। कभी पिता के द्वारा तो कभी पुत्र के द्वारा और कभी माई के द्वारा। यस्तुत लोभ का दानव जिनके सिर पर सवार हो जाता है वह उचित अनुचित के विवेक से बिहीन हो जाता है।

पन्द्रहवें अध्यायन में नदीफल का उदाहरण है। नदीफल विपयें फल थे, जो देखने में सुन्दर, मधुर और सुवासित, पर उनकी छाया भी बहुत जहरीली थी। धन्ना सार्यबाह ने अपने सभी व्यक्तियों को मूर्खित किया कि वे नदीफल से बचें, पर जिन्होंने सूचना की अवहेलना की वे अपने जीवन से हाथ धो बैठे। धन्य सार्यबाह की तरह तीर्थंकर हैं। विपय-प्रिय सभी नदीफल हैं जो तीर्थंकरों की आज्ञा की अवहेलना कर उन्हें ग्रहण करते हैं, वे जन्म मरण को प्राप्त करते हैं किन्तु मुक्ति को ग्रहण नहीं कर सकते हैं।

प्रस्तुत अध्ययन में धन्ना सार्यबाह अपने साथ उन सभी व्यक्तियों को ले जाते हैं जिनकी धार्मिक स्थिति नाजुक थी, जो स्वयं व्यापार भादि हेतु जा नहीं सकते थे। इसमें पारस्परिक सहयोग की भावना प्रमुख है सार्यनमूह में घनेक मतों के माननेवाले परित्राजक भी थे। इसमें यह स्पष्ट होता है कि उस समय विविध प्रकार के परित्राजक अपने मत का प्रचार करने के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान भी जाते थे। उनके नाम इस प्रकार हैं—

(१) चरक जो जूय वण्ड धूमते हुए भिक्षा ग्रहण करते थे और छाते हुए चलते थे। व्याख्या प्रज्ञप्ति में<sup>१८७</sup> चरक परित्राजक छायाई हुई भिक्षा ग्रहण करते और लंगोटी भगाते थे। प्रज्ञापना में<sup>१८८</sup> चरक भादि परित्राजकों को कृपित का पुत्र कहा है। माचाराग बूणि में लिखा<sup>१८९</sup> है—साम्ब चरक के भवन थे। वे परित्राजक प्राप्त बाल उठकर रुक्म प्रादि देवताओं के गृह का परिभाजन करते, देवताओं पर उपलक्षण करते और उनके सामने धूप भादि करते थे। बृहदारण्यक उपनिषद्<sup>१९०</sup> में भी चरक का उल्लेख मिलता है। प. वेचरदास जी दोमो ने चरक को निवण्डी, कच्छनीधारी या कोपीनधारी तापस माना है।

(२) बीरिक—यस में पड़ें हुए वस्त्रों को धारण करने वाला या यत्नमय उपकरण रखने वाला।

(३) चर्मखडिक—चमड़े के वस्त्र और उपकरण रखनेवाला।

(४) भिक्षुण्ड—(भिक्षाण्ड) केवल भिक्षा से ही जो जीवननिर्वाह करते हैं, किन्तु गोदुग्ध प्रादि रस ग्रहण नहीं करते। कितने ही स्थलों पर बुद्धानुयायी को भिक्षुण्ड कहा है।

(५) पशुरंग—जो शरीर पर भस्म लगाते हैं। निषीय बूणि<sup>१९१</sup> में गोशालक के शिष्यों को पशुरभिक्षु लिखा है। अनुयोगद्वार बूणि<sup>१९२</sup> में पशुरंग को सत्तरख भिक्षुओं का पर्यायवाची माना है। शरीर पर श्वेत भस्म लगाने के कारण इन्हें पशुरंग या पशुरभिक्षु कहा जाता था। उद्योगनसूरि की दृष्टि से पाय के दही, दूध, गोबर, जल प्रादि को मांस की भांति समझकर नहीं खाना पशुरभिक्षुओं का धर्म था।

१८७ व्याख्याप्रज्ञप्ति १-२-पृ. ४९

१८८ प्रज्ञापना २० वृ. १२१४

१८९ (क) माचाराग बूणि ८-पृ. २६५

(ख) भावश्यक मनसगिरि वृत्ति भा. १, पृ. ८७

१९० बृहद् उप

१९१ निषीय बूणि १३, ४४२० (ख) २, १०८५

१९२ अनुयोगद्वार बूणि पृ. १२

(१) जनेन श्राफ द ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट पुना २६, न. २ पृ. ९२०

(११) कुवलयमाला २०६/११

२१९ अष्टाधारण, आदि वर्ष १५-१४-२४३ ।

बनाया था। इन उगता नाम हस्तिनापुर पड़ा। महाभाग वास में वह कौरवों की राजधानी थी।<sup>२१०</sup> अभिमन्यु के पुत्र परोक्षित को वहाँ का राजा बनाया था।<sup>२११</sup> विविध तीर्थकल्प के अभिमतानुसार ऋषभदेव के पुत्र कुक्षि ने उनके एक पुत्र हस्ती से, उन्होंने हस्तिनापुर बनाया<sup>२१२</sup> था। विष्णुकुमार मुनि ने बलि द्वारा हवन किये जाने वाले ७०० मुनियों की रक्षा की थी। मनकुमार, महापद्म, सुभौम और परशुराम का जन्म इसी नगर में हुआ था। इसी नगर में कालिक धोखे ने मुनिमुद्रन स्वाधी के पास संयम लिया था और तीर्थमैत्र पद प्राप्त किया<sup>२१३</sup> था। शातिनाथ, कुबुनाथ और धरनाथ इन तीनों तीर्थंकरों और वनवर्तियों की जन्मभूमि होने का शौरव भी इसी नगर को है। पौराणिक दृष्टि में इस नगर का अत्यधिक महत्त्व रहा है। वगुदेव झिण्डो में इसे ब्रह्मस्थल कहा<sup>२१४</sup> है। इसके उपर नाम गजपुर और नागपुर भी थे। वर्तमान में हस्तिनापुर गंगा के दक्षिण तट पर मेरठ से २२ मील दूर उत्तर-पश्चिम बंगाल से तथा दिल्ली से छप्पन मील दूर दक्षिण-पूर्व में विद्यमान है। पानी साहित्य में इसका नाम हस्तीपुर या हस्तिनीपुर आता है। जैनाचार्य श्री नरसिंह रचित "अजितशालि" नामक स्तवन में इस नगरी के लिए गजपुर, गजपुर, नागाह्व, नागमाह्व, नागपुर, हस्तिणगर, हस्तिणगर, हस्तिणगर, हस्तिनीपुर आदि पर्यायवाचक शब्दों का उल्लेख किया गया है। इसी हस्तिनापुर नगर से द्रोपदी को आतसीयड क्षेत्र की अमरकंका नगरी में ले जाया जाता है। श्रीकृष्ण पांडवों के साथ वहाँ पर पहुँचते हैं और द्रोपदी को, पद्मनाभ को पराजित कर पुनः ले आते हैं। श्रीकृष्ण पांडवों की एक हरकत से अग्रमन्न होकर कुन्ती की प्रार्थना में समुद्र तट पर नवीन मयूरा बना कर वहाँ रहने को धनुरनि देते हैं। इसमें पांडवों की वीणा और मुक्ति लाभ का वर्णन है। प्रस्तुत अध्ययन के प्रारम्भ में द्रोपदी के पूर्वज का वर्णन है। जिसमें उसने नागधी के भव में धर्मरक्षि मननार को बड़े बूँदों का आहार दिया था और जिसके कलस्वरूप अनेक भवों में उसे जन्म लेना पड़ा। इसमें कण्डल नारद की वरदानों का भी परिचय है।

इस अध्ययन में एक महत्वपूर्ण बात यह है कि दुर्वासना के साथ अहुर का दान देने में बहुत सख्ती भव-परम्परा बड़ गई। दान गृहभाषना के साथ और ऐसे पदार्थ का देना चाहिए जो हितप्रद हो। दूसरी बात, निदान साधक-जीवन का शब्द है। मुक्ती होने के लिए अमररहित होना चाहिए। एतदर्थ ही उमास्वमि ने निःशब्दी बनी<sup>२१५</sup> निष्ठा है। भाषा, निदान और विध्यादर्शन ये तीन शब्द हैं जिनके कारण ब्रह्मों के पालन में एकाग्रता नहीं आ पाती। ये शब्द अमर में पीडा उत्पन्न करते हैं। यह साधक को व्याकुल और बेचैन बनाता है। इन शब्दों में तीव्र कर्मबन्ध होता है। गुरुमातिका गांधी ने अपनी उत्कृष्ट साधना को भौतिक पदार्थों को प्राप्त करने के लिए नष्ट कर दिया।

इस अध्ययन में सांख्यिक दृष्टि से यह बात भी महत्वपूर्ण है कि उस युग में मर्दन के लिए ऐसे तेज तैयार किए जाते थे जिन के निर्माण में गौ स्वर्ण मुद्राएं और हजार स्वर्ण मुद्राएं व्यय होती थी। शतपाक लेन में भी प्रकार की ऐसी जड़ी बूटियों का उपयोग होता था और सहस्रपाक में हजार धोपधियों का। ये पारंपरिक स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त लाभप्रद होते थे। स्नान के लिए उष्णीदक, शीतोदक और गन्धोदक आदि का उपयोग होता था।

प्रस्तुत अध्ययन में गंगा महानदी की तीरों के द्वारा पार करने का उल्लेख है। गंगा भारत की सब से

२१७. महाभारत, आदिपर्व १००-१२-२४४।
२१८. महाभारत, प्रस्थान पर्व १-८-२४५।
२१९. विविध तीर्थकल्प में हस्तिनापुर कल्प, पृ. २७।
२२०. जयवाणी पृ. २८३-९४।
२२१. वगुदेवझिण्डो पृ. १६५।
२२२. वरदार्थ सूत्र ७-१३।





बनाया था। इस उत्तरा नाम हस्तिनापुर रहा। महाभारत बात में वह कौरवों की राजधानी थी।<sup>२१७</sup> अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित को बहावा राजा बनाया था।<sup>२१८</sup> विविध तीर्थं कल्प के अभिमन्यानुसार श्रृंगभद्र के पुत्र कुच थे। उनके एक पुत्र हस्ती थे, उन्होंने हस्तिनापुर बनाया<sup>२१९</sup> था। विष्णुकुमार मुनि ने बलि द्वारा हवन किये जाने वाले ७०० मुनियों की रक्षा की थी। सनत्कुमार, महापद्म, मुष्नीम और चरभुराम का जन्म इसी नगर में हुआ था। इसी नगर में कातिक थोड़ी ने भुविमुत्रन स्वामी के धाम सयम निपा था और सौधमैन्द्र पद्म प्राप्त किया<sup>२२०</sup> था। शातिनाथ, कुचुनाथ और धरनाथ इन तीनों तीर्थंकरों और धन्वर्षियों की जन्मभूमि होने का मोख भी इसी नगर को है। पौराणिक दृष्टि में इस नगर का अत्यधिक महत्व रहा है। वसुदेव हिण्डी में इसे ब्रह्मरूप कहा<sup>२२१</sup> है। इसके धर नाम मत्स्य और भावपुर भी थे। वर्तमान में हस्तिनापुर गंगा के दक्षिण तट पर मेरठ से २२ मील दूर उत्तर-पश्चिम कोण में तथा दिल्ली से छप्पन मील दूर दक्षिण-पूर्व में विद्यमान है। पाली साहित्य में इसका नाम हस्तीपुर या हस्तिनीपुर प्राप्त है। जैनार्थों को नदियेण रचित "अजितशानि" नामक स्तवन में इस नगरी के लिए गयपुर, गजपुर, नागाक्षय, नागमाक्षय, नागपुर, हस्तिगुडर, हस्तिगुण्डर, हस्तिगुण्डपुर, हस्तिनीपुर आदि पर्यायवाचक शब्दों का उल्लेख किया गया है। इसी हस्तिनापुर नगर से द्रोपदी की छातकीर्ण क्षेत्र की धमरकंठा नगरी में ले जाया जाता है। श्रीकृष्ण पांडवों के साथ बहा पर पहुँचते हैं और द्रोपदी की, पद्मनाभ की पराजित कर पुनः ले आते हैं। श्रीकृष्ण पांडवों की एक हस्त में प्रमथ होकर कुन्ती की प्रार्थना से समुद्र तट पर नवीन मयुरा बना कर बहा रहने की अनुमति देते हैं। इसमें पांडवों की दोषा और मुक्ति लाभ का वर्णन है। प्रस्तुत अध्ययन के प्रारम्भ में द्रोपदी के पूर्वसूच का वर्णन है जिसमें उसने नागधी के भव में धर्मरक्षि धनगार की कहुवे दूँ के का आहार दिया था और जिसके कर्मरूप अनेक भवों में उसे जन्म लेना पड़ा। इसमें कण्ठ्य नाग की करकुरी का भी परिचय है।

इस अध्ययन में एक महत्वपूर्ण बात यह है कि दुर्वासना के साथ जहर का दान देने से बहुत सखी भव-परम्परा बड़ गई। दान दुर्वासना के साथ और ऐसे पदार्थ का देना चाहिए जो हितप्रद हो। दूसरी बात, निदान माधव-शोकन का शब्द है। सुखी होने के लिए शायरहित होना चाहिए। एतदर्थ ही उमास्वति ने नि गङ्गो बती<sup>२२२</sup> लिखा है। माया, निदान और मिथ्यादर्शन ये तीन शब्द हैं जिनके कारण श्रुती के पालन में एकाग्रता नहीं आ पाती। ये शब्द अन्तर में बीजा उत्पन्न करते हैं। वह साधक को व्याकुल और बेचैन बनाता है। इन शक्तियों से तीव्र कर्मबन्ध होता है। युक्त्यात्मिका साधवी ने अपनी उल्लेख साधना की भौतिक पदार्थों को प्राप्त करने के लिए मत्त कर दिया।

इस अध्ययन में सांस्कृतिक दृष्टि से यह बात भी महत्वपूर्ण है कि उस युग में मर्दन के लिए ऐसे तेज तैयार किए जाते थे जिन के निर्माण में गौ स्वर्ण सुद्राएं और हजार स्वर्ण सुद्राएं व्यय होती थी। शतपाक तेल में भी प्रकार की ऐसी जड़ी बूटियों का उपयोग होता था और सहस्रपाक में हजार औषधियों का। ये शारीरिक स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त लाभप्रद होते थे। स्नान के लिए उपयोदक, जीतोदन और यद्योदक आदि का उपयोग होता था।

प्रस्तुत अध्ययन में गंगा महानदी की नौका के द्वारा पार करने का उल्लेख है। गंगा भारत की सब से

२१७ महाभारत, आदिपर्व १००-१२-२४४।

२१८ महाभारत, प्रस्थान पर्व १-८-२४५।

२१९ विविध तीर्थं कल्प में हस्तिनापुर कल्प, पृ. २७।

२२० जयवाणी पृ. २८३-९४।

२२१ वसुदेवहिण्डी पृ. १६५।

२२२ तत्त्वार्थ सूत्र ७-१३

45

[illegible][illegible]

इस वाक्य में भावपूर्ण दृष्टि के यह भाग की व्याख्या है कि उन युग में सर्वे के लिए ऐसे तेज-मयार विद्यार्थियों के बिना के निर्माण के जो स्वयं मुद्राएं और हजार स्वयं मुद्राएं व्यय होती थी। क्योंकि तेज-मयों की वजह से ही जहाँ जहाँ कहीं का वाक्य होता था और वाक्यवाचक के हजार चीजों का। वे नारीयक-व्यवस्था के लिए वाक्य वाक्य होते थे। इनके के लिए उपलब्ध, जोभी-कभी मधुर-मार्ग का उपयोग होता था।

प्रत्यक्ष कार्यरत में भंडा मजदूरों को नीचा के काम पार करने का उद्योग है। भंडा प्राप्त की राह से

११७. मन्त्राभ्यास, सावित्री १००-१२-२४६ ।  
 ११८. मन्त्राभ्यास, प्रणाम वर १-८-२४५ ।  
 ११९. विविध तीर्थस्नान से ह्मितातुर वन, पृ. २३ ।  
 १२०. अन्धशाली पृ. २८३-९४ ।  
 १२१. समुद्रमंथनी पृ. १६५ ।  
 १२२. गणेशार्चन ग्रन्थ ३-१३ ।

बड़ी नदी है। उसे देवताओं की नदी माना है।<sup>२२३</sup> जम्बूद्वीप प्रज्जित के अनुसार वह देशधिष्टि<sup>२२४</sup> है। प्राचीनों में अनेक स्थलों पर गंगा को महानदी माना है।<sup>२२५</sup> स्थानात् प्रादि में गंगा को महानंदा कहा है।<sup>२२६</sup> प्राचीन भगवद्देव ने महानंदा शब्द को उपमावाचक माना है।<sup>२२७</sup> विनायक जगन्नाथ के कारण वह समुद्र के समान है। पुराणकार ने गंगा को समुद्रमणि कहा।<sup>२२८</sup> है। वैदिक दृष्टि से गंगा में नौ गो नदियाँ मिलती हैं<sup>२२९</sup> और जैन दृष्टि से चौहद हजार<sup>२३०</sup> जिनमें यमुना, गङ्गा, कोसी, गहरी, गंडकी वत्सपुत्र प्रादि बड़ी नदी भी सम्मिलित है। प्राचीन युग में गंगा अत्यन्त विनाश की। समुद्र में प्रवेश करते समय गंगा का पाट माले बाण्ड योजन चौड़ा<sup>२३१</sup> था। और वह पाँच कोस गहरी थी। आज गंगा उतनी विनाश नहीं है। गंगा और उसी महायक नदियों से अनेक विशालकाय नहरें निकल चुकी हैं। आधुनिक सर्वेक्षण के अनुसार गंगा १५५७ मील लम्बे मार्ग को तयकर बंग सागर में मिलती है। वह वर्षाकालीन बाढ़ से १७,००,००० घन फुट पानी का प्रति क्षण प्रवाह करती है<sup>२३२</sup>। इस अध्ययन के प्रमुख पात्र श्रीकृष्ण, वाण्डव, द्वीपदी प्रादि जैन और वैदिक प्रादि परंपरा के बहुचर्चित और आदरणीय व्यक्ति रहे हैं जिनके जीवन प्रसंगों से सम्बन्धित अनेक विराट्काय ग्रंथ विद्यमान हैं। प्रस्तुत अध्ययन में श्रीकृष्ण के नरसिंह रूप का भी वर्णन है। नरसिंहावतार की चर्चा श्रीमद् भागवत में है जो विष्णु के एक अवतार थे, पर श्रीकृष्ण ने कभी नरसिंह का रूप धारण किया हो, ऐसा प्रसंग वैदिक परंपरा के पक्ष में देने में नहीं आया, यहाँ पर उसका सजीव चित्रण हुआ है।

समस्त अध्ययन में जगन्नी अश्वों का उल्लेख है। कुछ व्यापारी हस्तिनीयं नगर से व्यापार हेतु नीलाओं में परिभ्रमण करते हुए कालिक द्वीप में पहुँचते हैं। वहाँ वे चादी, स्वर्ण और हीरे की सदाओं के साथ श्रेष्ठ नम्र के घोड़े देखते हैं। इनके पूर्व अध्ययनों में भी समुद्रयात्रा के उल्लेख पाये हैं। ज्ञाता में पोतपट्टन और जलपत्तन शब्द व्यवहृत हुए हैं जो समुद्री वाहकगाह के अर्थ में हैं, यहाँ पर विदेशी माल उतरता था। कहीं-कहीं पर बेतान और पोतधाग शब्द मिलते हैं। पोतवहन शब्द जहाज के लिए आया है। उस युग में जहाज दो तरह के होते थे। एक मान होनेवाले, दूसरे यात्रा के लिए। वाहकगाह तक हाथी या शरट पर चढ़कर लोय जाते थे। समुद्रयात्रा में प्रायः गुप्तान घातों पर जहाज हमलाने लगते। किन्तु व्यक्तिमूढ़ हो जाते, क्योंकि उस समय नीलाओं में विशासूचक शक नहीं थे। इसलिए आगमन सवट में बचने के लिए इन्द्र, रुद्र प्रादि देवताओं का स्मरण भी करते थे। पर यह स्पष्ट है कि भारतीय व्यापारी अत्यन्त कुशलता के साथ समुद्री व्यापार करना जानते थे। उन्हें सामुद्रिक मार्गों का भी परिज्ञान था। बाह्य अर्थ में और आन्तरिक की तरह सुदृढ़ और विराटकाय भी नहीं थे। इसलिए हवाओं

- |   |   |
|---|---|
| २२३ (क) स्कन्दपुराण, काशीखण्ड २९ अध्याय | २२६ स्कन्दपुराण काशीखण्ड २९ अ०            |
| (ग) समस्तोप १/१०/३१                     | २२९ हारीत १/७                             |
| २२४, जम्बूद्वीपप्रज्जित ४ बधस्कार       | २३०. जम्बू० ४ बधस्कार                     |
| २२५ (क) स्थानात् ५/३                    | २३१ बही०                                  |
| (ग) समस्तोप २६ वा समस्तोप               | २३२ हिन्दी विश्वकोष, नागरी प्रचारिणी सभा। |
| (ग) जम्बूद्वीपप्रज्जित ४ बधस्कार        |   |
| (ग) निर्माण सूत्र १२/६२                 |   |
| (क) स्कन्दपुराण सूत्र ६/३२              |   |
| २२६ (क) स्थानात् ५/३/१                  |   |
| (ग) निर्माण सूत्र १२/६२                 |   |
| (क) स्कन्दपुराण सूत्र ६/३२              |   |
| २२७ (क) स्थानात् सूत्र ५/३/१            |   |
| (ग) स्कन्दपुराण सूत्र ६/३२              |   |

को प्रतिष्ठापना से उद्धारों को अत्यधिक खराब रहना था। तथापि वे निर्भीकता से एक देश से दूसरे देश में घूमा करते थे। वे व्यापारी भी बहुत पेशाओं को लेकर हस्तग्रीव नगर पहुँचे और राजा से उन थोड़े धनको के सम्बन्ध में बड़ाता। राजा अपने अनुचरों के साथ चोड़ों को लाने का बलिष्ठों को आदेश देता है। व्यापारी घरों को पहुँच लाने के लिए बचारी, धामरी, बचारी, बचा, पट्टधारी विविध प्रकार की योगार्थ, विविध प्रकार के विन मुद्रादि पदार्थ, मुद्रिका-मन्त्र्यंश सक्कर, मायमहिरा, पुष्पोत्तर और पद्मोत्तर प्रकार की गर्जगाय और विविध प्रकार के वस्त्र आदि के साथ पहुँचे और उन मुद्रादि पेशाओं से उन चोड़ों को अपने अधीन किया। स्वयंराज से पूर्वोक्तों को छोड़ पगधोत बन गये। इसी तरह जो गायक विषयो के अधीन होते हैं वे भी पराधीनता के पक्ष में निर्माण हो जाते हैं। (अपने को सामाजिक गायक को पक्षधर कर देती है।

अनुन आचरण में यह के साथ-साथ भी प्रयुक्त हुए हैं। बीच मायाएँ हैं। जिनमें पुन, उगी बाज की उद्घोषण के रूप में दुष्टताया गया है।

अष्टादशवें सप्तमय में गुजरात थोड़ी-बच्चा का वर्णन है। वह अपना कार्यवाह की पुत्री थी। उसकी देशमान के लिए विधान दामिपुत्र को निरुत्तर दिया गया। वह बहुत ही उच्छृंखल था। धन उसे निकाल दिया गया। वह अनेक व्यसनों के साथ तरकाशिविधि बन गया। गुजरात का अष्टादश किया। थोड़ी और उसके पुत्रों ने उनका पीछा किया। उन्हें घटती वे विज्ञान डग्न मारी कई गुजरात का मूल देह प्राप्त हुआ। वे धायन क्षुधा गिरामा में पीड़ित हो चुके थे। धन, गुजरात के मूल देह का भक्षण कर अपने प्राणों को बचाया। गुजरात के शरीर का मांस खाकर उन्होंने अपने जीवन की रक्षा की। उन्हें विधि-साध भी उस आहार के प्रति राग नहीं था। उसी तरह पट्टधारी के रक्त धमला-धमला भी सप्तमनिर्वाह के लिए आहार का उपयोग करते हैं, रगतवादन हेतु नहीं। धमला क्षुधा वेदना होने पर आहार ग्रहण करना चाहिए। आहार का मध्य मयम-माधना है।

बौद्ध विविधक साहित्य में भी इसी प्रकार मूल बच्चा के मांस को भक्षण कर जीवित रहने का वर्णन प्राप्त होता है।<sup>१३३</sup> विमुद्रिमय और मित्रा मनुष्य में भी धमला की इसी तरह आहार सेना चाहिए यह बताया गया है। मनुस्मृति धारणवर्धन मूल (२.४.९.११) बागिष्ठ (१.२.० २१) बोधायन धर्म मूल (२.७ ११ १२) में मन्वागियों के आहार संबंधी चर्चा इसी प्रकार मिलती है।


अनुन आचरण के अनुसार तत्त्वों के द्वारा ऐसी भक्षण विधि का प्रयोग किया जाता था, जिनमें शरीर लाने अपने साथ गुप्त जाने थे। इससे यह भी जान होता है कि महावीरयुग में ताने आदि का उपयोग घनादि की रक्षा के लिए होता था। विदेशी मारी मेवास्त्री, हूवेनगांग, पाहियान, आदि में अपने मायाविशेषों में निवा है कि भारत में बौद्ध भी माया आदि का उपयोग नहीं करता था, पर धायन साहित्य में ताने के भी वर्णन मिलते हैं वे अनुगतिधुओं के लिए अन्वेषणों को अनेका रखते हैं।

उत्तमिन्वें सप्तमय में गुजरीक और कच्छरीक की कथा है। जब राजा महापथ धमला बने तब उनका अंगेष्टपुत्र गुजरीक राज्य का मन्त्रालय करने लगा और कच्छरीक मुखराज बना। पुन महापथ मुनि बड़ा धाये तो कच्छरीक ने धमलाधर्म स्वीकार किया। कुछ समय बाद कच्छरीक मुनि बड़ा धाये। उन समय वे दाहुरवा से प्रगिन थे। महाराजा गुजरीक ने धीवधि उपचार कराया। स्वस्थ होने पर भी जब कच्छरीक मुनि वहीं जमे रहे। तब राजा ने निवेदन किया कि धमला मर्णा की दृष्टि में धायन विहार करना उचित है। किन्तु कच्छरीक के मन में भोगों के प्रति धामनि उत्पन्न हो चुकी थी। वे कुछ समय परिश्रम कर पुन बड़ा धा गये। गुजरीक के मन्त्रालय पर भी वे न समझे तब कच्छरीक को राज्य भीषण गुजरीक ने कच्छरीक का धमलाधर्म स्वयं धारण कर



धानी पुष्पवृत्ता के पाग दोहा प्रहण की थी। (६) मुंभा (७) निमुंभा (८) रभा (९) निरंभा और (१०) मरना ये धातुओं की भी घोर पाशंवाश के उपदेश से दोहा प्रहण की थी। (११) दया (१२) गनेरा (१३) मोशमिनी (१४) दग्गा (१५) घमा घोर (१६) बिष्मला ये बाराणसी की थीं घोर चोटियाँ की लहरियाँ थीं। इन्होंने भी पाशंवाश के उपदेश से दोहा प्रहण की थी। (१७) दया (१८) मुंभा (१९) दबांगा (२०) रघरावनी (२१) रघरावनी (२२) दघरावनी ये पद्मा नमो की थीं। इन्होंने भी पाशंवाश की वरमरा से दोहा प्रहण की थी। (२३) नमरा (२४) नमरवरा (२५) उत्तरा (२६) मुदनेना (२७) बघरनी (२८) बटुणा (२९) मुग्गा (३०) मुग्गा (३१) गुग्गा (३२) बटुगुग्गा (३३) उत्तरा (३४) भारवा (३५) बटुगा (३६) बटुमनी (३७) नमरा (३८) नमरवरा (३९) बघरागा (४०) केमुवरी (४१) बघमेना (४२) रनिगिया (४३) रोहिणी (४४) नीमिया (४५) री (४६) गुग्गनी (४७) मुग्गा (४८) मुग्गवरी (४९) मावच्छा (५०) बघरावनी (५१) मुग्गा (५२) डिमगा (५३) मुग्गा (५४) लरवरी के बसोम बुकागियाएँ भागपुर की थीं। भयवान् पाशंवाश के उपदेश से साधना के पक्ष पर पाने बंदम बड़ाये थे।

अथास्थानाहिरय

वृत्तिकार ने प्रथम अध्ययन का सार बताने  दिया—प्रविष्टिपूर्वक प्रवृत्ति करनेवाले शिष्य को सही मार्ग पर लाने के लिए समय पर उपालम्भ भी देना चाहिए। द्वितीय अध्ययन के प्राप्त में दिया—बिना भ्रातृ के मोक्ष की प्राप्ति के लिए प्रवृत्ति नहीं हो सकती। इसलिए शरीर को भ्रातृ देना चाहिए। तृतीय अध्ययन का



सारे प्रस्तुत किया है कि विज्ञानों को जिन-यन्त्रों के प्रति चिन्ति याच भी गंभीर नहीं करना चाहिए। गंदे पानी का मूल है। जिनके अन्तर्गत में आया होना है। वे गंदे निगता के माग में भूतों रहे हैं। उन्हें मर्यादों के दर्शन नहीं होने। इसी तरह सभी अद्ययनों का अद्ययनाय प्रस्तुत किया गया है।

द्वितीय अनुसन्ध में धर्मकथाओं से ही धर्मों का प्रतिपादन किया है। वृत्तिार ने हमारा विवेक प्रस्तुत नहीं किया। सर्व सुगम और गेप मुश्किलम् इतना ही किया गया है। इस वृत्ति का ज्ञान प्रमाण १२०० है। यह वृत्ति स० ११२० में विजयादशमी को अण्णहिनपुर गाउन में पूर्ण हुई। आचार्य अम्बरदेव ने अपने पुत्र का नाम जिनेश्वर बताया है। और यह भी बताया है कि इस वृत्ति का मज्जाघन दोगाणाय ने किया है। वृत्ति को प्रशस्ति में यह भी पता चलता है कि इसकी अनेक वाचनाएँ वृत्तिार के समय प्रचलित थीं।

समोक्कलोल गणि ने वि० स० १५९६ में ज्ञाताधर्मका वृत्ति का निर्माण किया था। आधुनिक में पूज्य श्री आमीलाल जी म० ने संस्कृत में गविस्वर टीका लिखी है। ज्ञातागूण पर प्राचीन टप्पे भी मिलते हैं। वे टप्पे धर्मविह मुनि के लिखे हुए हैं। ज्ञातागूण पर सर्वप्रथम हिन्दी अनुवाद आचार्य श्री अमोलक श्रुति म० का प्राप्त होता है। ५० शोभाचन्द्र जी भारिल का हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित हुआ है। ५० केपूरदास जी दोनी का गुजरानी छायानुवाद भी प्रकाशित हुआ है। एक से छाठ अध्ययन तक गुजरानी अनुवाद भावनगर में भी प्रकाशित हुआ है।

स्वातन्त्र्यवासी समाज एक जागरूक समाज है। वह आगमों के प्रति पूर्ण निष्ठावान् है। समय के अनुसार आगमों के विवेचन की ओर उसका लक्ष्य रहा है। जिस समय टक्का युग आया उस समय आचार्य श्रीधर्मविह जी ने सत्तार्षिण आगमों पर बालागबोध टप्पे लिखे, जो टप्पे सूत्रस्पर्शी, और शब्दायं को स्पष्ट करनेवाले हैं। जिन समय अनुवाद युग आया उस समय आचार्य श्री अमोलक श्रुति जी म० ने आगमसत्यता का अनुवाद किया। उनके बाद अमलगाय के प्रथम आचार्य श्री आभाराम जी म० ने भी अनेक आगमों के हिन्दी अनुवाद और उन पर विम्वृत विवेचन लिखा। पूज्य श्री आमीलाल जी म० ने अत्यन्त विस्तार के साथ सस्कृत में टीकाएँ लिखी और हिन्दी और गुजरानी अनुवाद के साथ प्रकाशित भी हुई। और यों अनेक स्वयं से आगम साहित्य प्रकाशित हुआ तथापि आधुनिक सत्कर्म का साथ निरन्तर बनी रही। रितने ही प्रबुद्ध चिन्तकों ने व प्रतिभासम्पन्न मनीषियों ने आचार्यों उद्धाने बहुत भरीं। उन्होंने कपरेछाएँ भी प्रस्तुत कीं। पर आगमों के जैसे चाहिए वैसे उद्घुष्ट ज्ञान साधारणों उपयोगी स्फुरण प्रकाशित नहीं कर सके। केवल उनकी उद्धान, उद्धान ही रही। परम हर्ष का विषय कि मेरे परम श्रद्धेय सद्गुरुवर्य अध्यात्मयोगी राजस्थानकेसरी उपाध्याय श्री पुष्करमूर्तिजी म० के स्नेही साथी आचार्य श्रीमधुकर मूर्तिजी ने इस भगीरथ कार्य को अपने हाथों में लिया। उन्होंने मूर्धन्य मनीषियों के सहयोग में इस कार्य का सम्पन्न करने का दृढ़ संकल्प किया है, जिससे फलस्वरूप आचार्यगण गूढ़ का शानदार सम्पन्न जिनमें प्रबुद्ध पाठकों के वर कमों में पड़ा। निष्पक्ष विद्वानों ने उसके सपादन और विवेचन की सुवर्ण में प्रशंसा की। उनके परचात् उपासकदशम का भी अष्टतम प्रकाशन हुआ।

उसी अल्पमात्र की लड़ी की लड़ी में ज्ञातागूण का सर्वश्रेष्ठ स्फुरण प्रकाशित हो रहा है। सत्कर्म का यह विवेचन है कि हमें विभिन्न प्रतिभों के आधार से विभुष्ट पाठ लेने का प्रयास किया गया। मूल पाठ के साथ ही हिन्दी में अनुवाद दिया गया है। जहाँ लड़ी आवश्यक हुआ वहाँ विषय को स्पष्ट करने लिए सारांश में सारपूर्ण विवेचन भी दिये गये हैं। इस आगम के संपादक और विवेचक हैं जैनराज के तेज नारायण, सावित्र्यमयी, सदादशनाममंत्र ५ शोभाचन्द्रजी भारिल, जिन्होंने आज तक ज्ञातागूण का संपादन किया है। वे एव शश्वती सदादश के रूप में जाने माने और पहचाने जाते हैं। संपादन के साथ ही ज्ञातागूण-आचार्यों एवं आचार्यीय व्यक्तियों और विद्वानों को आगम, धर्म, दर्शन पढ़ाते रहे हैं। इस रूप में

के एक विधुत आगममर्मज्ञ हैं। उन्होंने प्रस्तुत आगम का बहुत ही सुन्दर संपादन किया है। अनुवाद और विवेचन की भाषा सरस, सरस व सुशोभ है, शैली मन को सुझाने वाली है। विवेचन में ऐसे अनेक रहस्य उद्घाटित किये हैं जो पाठकों को अभिनव चिन्तन प्रदान करने वाले हैं। उनकी बिलक्षण प्रतिभा सर्वत्र मुखरित हुई है।

अद्वैत युवाचार्यश्री के दिशानिर्देशन में यह संपादन हुआ है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि इस संपादन का सर्वत्र समादर होगा।

प्रस्तुत संस्करण की यह विशेषता है कि इसमें अनेक परिशिष्ट दिये गए हैं। विशिष्ट स्थलों एवं व्यक्तियों की संस्करणानुक्रम से नामावली दी गई है। साथ ही आगम में आये हुए 'जाव' शब्द की आवश्यकतानुसार पूर्ति भी की गई है। इस प्रकार अनेक नवीन विशेषताओं को लिए हुए यह आगम अवश्य ही जन-जन के मन को मुग्ध करेगा।

प्रस्तावना को मैं और भी अधिक विस्तार के साथ लिखना चाहता था, पर अन्य लेखनकार्य में अत्यधिक व्यस्त होने में तथा साधनाभाव से जितना लिखना चाहता था नहीं लिख सका, तथापि जो कुछ लिखा है उससे प्रबुद्ध पाठकों को तात्पर्य के सम्बन्ध में जानने को कुछ प्राप्त हो सकेगा, ऐसी भाशा है। आज आवश्यकता है आगमसाहित्य पर सुव्यासक दृष्टि से चिन्तन करने की। आगमसाहित्य में भरपूर सामग्री भरी पड़ी है। उस पर यदि कोई शोधकार्य करना चाहे तो बहुत कुछ किया जा सकता है। शोधार्थियों के लिए यह विषय अभी प्रायः अज्ञात मा पड़ा है। एक-एक आगम पर अनेक शोधग्रन्थ तैयार हो सकते हैं। वैदिक और बौद्ध ग्रन्थों के साथ उन सभी प्रसंगों की व स्थितियों की तुलना भी हो सकती है। समय मिला तो कभी यह कार्य करने की मेरी प्रबल भावना है। मुझे प्यु कि बहुत।

श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय  
उदयपुर (राज.)  
दि. २५-११-१९८०

—देवेश्वरमुनि शास्त्री



# विषयानुक्रम

प्रथम अध्ययन : उदितपुत्रात् — 

मार : संक्षेप	.....	१
प्रारम्भ	.....	७
प्रार्थ सुधर्मा	.....	७
जम्बू स्वामी	.....	८
जम्बू स्वामी की जिज्ञासा	.....	९
सुधर्मा स्वामी का समाधान	.....	१०
अभयकुमार	.....	१२
धारिणी का स्वप्नदर्शन	.....	१४
स्वप्न-निवेदन	.....	१५
श्रेष्ठिका द्वारा स्वप्नपल्लवपत्र	.....	१६
स्वप्नपाठको का भाङ्गान	.....	१८
स्वप्नपाठको द्वारा कथादेश	.....	२३
धारिणी देवी का बोहद	.....	२६
धारिणी की चिन्ता	.....	२९
बोहद-निवेदन	.....	३१
अभयकुमार का आगमन	.....	३२
अभय का आश्वासन	.....	३४
अभय की देवाराधना	.....	३५
देव का आगमन	.....	३६
अराज-मेषविक्रिया	.....	३७
बोहदवृत्ति	.....	३९
देव का विमर्जन	.....	४२
गर्भ की सुरक्षा	.....	४२
मेषकुमार का जन्म	.....	४३
जन्मोत्सव	.....	४४
अनेक मन्त्रार	.....	४६
नामरत्नगुप्तवार	.....	४६
मेषकुमार का सानन-वासन	.....	४७
बालाशिक्षण	.....	४८

१-११-११  
 २-११-११  
 ३-११-११  
 ४-११-११  
 ५-११-११  
 ६-११-११  
 ७-११-११  
 ८-११-११  
 ९-११-११  
 १०-११-११  
 ११-११-११  
 १२-११-११  
 १३-११-११  
 १४-११-११  
 १५-११-११  
 १६-११-११  
 १७-११-११  
 १८-११-११  
 १९-११-११  
 २०-११-११  
 २१-११-११  
 २२-११-११  
 २३-११-११  
 २४-११-११  
 २५-११-११  
 २६-११-११  
 २७-११-११  
 २८-११-११  
 २९-११-११  
 ३०-११-११  
 ३१-११-११  
 ३२-११-११  
 ३३-११-११  
 ३४-११-११  
 ३५-११-११  
 ३६-११-११  
 ३७-११-११  
 ३८-११-११  
 ३९-११-११  
 ४०-११-११  
 ४१-११-११  
 ४२-११-११  
 ४३-११-११  
 ४४-११-११  
 ४५-११-११  
 ४६-११-११  
 ४७-११-११  
 ४८-११-११  
 ४९-११-११  
 ५०-११-११  
 ५१-११-११  
 ५२-११-११  
 ५३-११-११  
 ५४-११-११  
 ५५-११-११  
 ५६-११-११  
 ५७-११-११  
 ५८-११-११  
 ५९-११-११  
 ६०-११-११  
 ६१-११-११  
 ६२-११-११  
 ६३-११-११  
 ६४-११-११  
 ६५-११-११  
 ६६-११-११  
 ६७-११-११  
 ६८-११-११  
 ६९-११-११  
 ७०-११-११  
 ७१-११-११  
 ७२-११-११  
 ७३-११-११  
 ७४-११-११  
 ७५-११-११  
 ७६-११-११  
 ७७-११-११  
 ७८-११-११  
 ७९-११-११  
 ८०-११-११  
 ८१-११-११  
 ८२-११-११  
 ८३-११-११  
 ८४-११-११  
 ८५-११-११  
 ८६-११-११  
 ८७-११-११  
 ८८-११-११  
 ८९-११-११  
 ९०-११-११  
 ९१-११-११  
 ९२-११-११  
 ९३-११-११  
 ९४-११-११  
 ९५-११-११  
 ९६-११-११  
 ९७-११-११  
 ९८-११-११  
 ९९-११-११  
 १००-११-११

गार गधेय  
 श्रीरङ्गु श्री विज्ञाना  
 श्रीगुधर्मा द्वारा सामाध्या  
 धन्य सायंवाट भटा भावार्

द्वितीय अध्यायन : सप्तमः

वज्रय चोर	१०९
न्याय के लिए भद्रा की देखभाल—	११३
बंभी घाजा मांगना	११३
नि की धनुमति	११३
बों की पूजा	११३
पुत्राणि	११४
पुत्रप्रसन्न	११६
पुत्रदत्त नामकरण	११६
पुत्र की इच्छा	११७
देवता	११९
वज्रय चोर का निग्रह	१२१
वज्रय का अन्तिम सस्कार	१२२
ग्रन्थ मार्गद्वारा का निग्रह	१२२
ग्रन्थ के घर से भोजन	१२३
भोजन में गे विभाग	१२३
भद्रा का चोर	१२५
ग्रन्थ का छुड़वाना	१२६
ग्रन्थ का सत्कार	१२६
भद्रा के चोर का शमन	१२७
वज्रय चोर की अद्यमयति	१२८
हयविर-भागमन	१२९
ग्रन्थ की धनुष्यामना	१२९
ग्रन्थ की धनुष्यामना और स्वर्ग-प्राप्ति	१३०
उपमहार	१३१

### तृतीय अध्यायन : श्रंङ्क . १२८

मार : संक्षेप	१३३
जम्बू स्वामी का प्रश्न	१३५
मुधुमती स्वामी का उत्तर	१३५
मयूरी के अङ्के	१३५
मित्रों की प्रतिज्ञा	१३६
गणिका देवदत्ता	१३६
गणिका के साथ विहार	१३७
मयूरी का उद्देश	१४०
अर्द्धों का अग्रहरण	१४०
अकाशीन गागरदत्तपुत्र	१४१
अकाशीनता का कुफल	१४२

पद्यों का गुण  
उपगच्छ

२२२

२२३

## चतुर्थ अध्यायन : कर्म

कर्म मर्म	२२४
कर्म का प्रश्न	२२५
कर्म का उत्तर	२२६
कर्म का विवेचन	२२७
कर्म का भूत	२२८
कर्म का वास्तविक	२२९
कर्म का कर्म का दुर्लभ	२३०
कर्म का	२३१
कर्म का	२३२

## पञ्चम अध्यायन : शैलक

कर्म मर्म	२३३
कर्म	२३४
कर्म का मर्म	२३५
कर्म का मर्म	२३६
कर्म का मर्म	२३७
कर्म का मर्म	२३८
कर्म का मर्म	२३९
कर्म का मर्म	२४०
कर्म का मर्म	२४१
कर्म का मर्म	२४२
कर्म का मर्म	२४३
कर्म का मर्म	२४४
कर्म का मर्म	२४५
कर्म का मर्म	२४६
कर्म का मर्म	२४७
कर्म का मर्म	२४८
कर्म का मर्म	२४९
कर्म का मर्म	२५०
कर्म का मर्म	२५१
कर्म का मर्म	२५२
कर्म का मर्म	२५३
कर्म का मर्म	२५४
कर्म का मर्म	२५५
कर्म का मर्म	२५६
कर्म का मर्म	२५७
कर्म का मर्म	२५८
कर्म का मर्म	२५९
कर्म का मर्म	२६०
कर्म का मर्म	२६१
कर्म का मर्म	२६२
कर्म का मर्म	२६३
कर्म का मर्म	२६४
कर्म का मर्म	२६५
कर्म का मर्म	२६६
कर्म का मर्म	२६७
कर्म का मर्म	२६८
कर्म का मर्म	२६९
कर्म का मर्म	२७०
कर्म का मर्म	२७१
कर्म का मर्म	२७२
कर्म का मर्म	२७३
कर्म का मर्म	२७४
कर्म का मर्म	२७५
कर्म का मर्म	२७६
कर्म का मर्म	२७७
कर्म का मर्म	२७८
कर्म का मर्म	२७९
कर्म का मर्म	२८०
कर्म का मर्म	२८१
कर्म का मर्म	२८२
कर्म का मर्म	२८३
कर्म का मर्म	२८४
कर्म का मर्म	२८५
कर्म का मर्म	२८६
कर्म का मर्म	२८७
कर्म का मर्म	२८८
कर्म का मर्म	२८९
कर्म का मर्म	२९०
कर्म का मर्म	२९१
कर्म का मर्म	२९२
कर्म का मर्म	२९३
कर्म का मर्म	२९४
कर्म का मर्म	२९५
कर्म का मर्म	२९६
कर्म का मर्म	२९७
कर्म का मर्म	२९८
कर्म का मर्म	२९९
कर्म का मर्म	३००

बन राजा की दीक्षा	१८०
नर का जनन-विहार	१८३
नर मुनि की रचना	१८३
नर की विविधता	१८४
नर की निविधता	१८५
गुरुओं द्वारा परिचालन	१८६
नर का योग	१८७
नर का पुनर्जागरण	१८८
तपस्यो का नियम	१८९
उपमहार	१८९

### षष्ठ अध्यायन : कुम्भक

नार : संक्षेप	१९०
उद्देश्य	१९१
कुम्भक में भगवान् का ध्यान	१९१
कुम्भक-नियमों का प्रारंभ	१९१
भगवान् का समाधान	१९२

### सप्तम अध्यायन : रोहिणीज्ञान

नार : संक्षेप	१९४
उद्देश्य	१९७
यस्य साधनान् की परिचयविज्ञानः वरीक्षा का विचार	१९८
वर्ष-वरीक्षा	१९९
वरीक्षा-परिणाम	२०३
उपमहार	२०४

### आठवाँ अध्यायन : मत्स्य

नार : संक्षेप	२०९
उद्देश्य	२१३
महाभारत का उद्देश्य	२१४
बन राजा की दीक्षा और निर्वाण	२१४
राजा महाभारत	२१४
महाभारत की दीक्षा	२१४
महाभारत का माध्याहार	२१७
तीर्थंकर नामधर्म का उद्देश्य	१७
महाभारत आदि की उत्पत्ति	५



श्रद्धा का सुफल	.....	१४
उपगहार	.....	१५

### चतुर्थ अध्यायन : कूर्म

सार संक्षेप	.....	१६
जम्बू का प्रश्न	.....	१७
मुधर्मा का उत्तर	.....	१८
कूर्मों का निर्गमन	.....	१९
पापी शृगाल	.....	२०
शृगालों की ब्यासाकी	.....	२१
असंयत कूर्म की दुर्दशा	.....	२२
निष्कर्ष	.....	२३
संयत कूर्म	.....	२४
सारांश	.....	२५

### पञ्चम अध्यायन : शैलक —

सार संक्षेप	.....	२६
प्रारम्भ	.....	२७
हजारका नयारी	.....	२८
रैवतन परंन	.....	२९
श्रीरूपवर्णन	.....	३०
पावकका पुत्र	.....	३१
अस्मिन्नेमि का समवसरण	.....	३२
कृष्ण की उपगमना	.....	३३
पावककापुत्र का वैराग्य	.....	३४
कृष्ण द्वारा वैराग्यपरीक्षा	.....	३५
पावककापुत्र की प्रश्रया	.....	३६
मुदर्शन श्रीरुप	.....	३७
कृष्ण परित्राजक	.....	३८
मुद्र की धर्मदेवता	.....	३९
पावककापुत्र का आत्मन	.....	४०
पावककापुत्र-मुदर्शन-संवाद	.....	४१
कृष्ण का पुनरात्मन	.....	४२
कृष्ण-पावककापुत्र-संवाद	.....	४३
कृष्ण की प्रश्रया	.....	४४
पावककापुत्र की मुक्ति	.....	४५

देवी द्वारा उपदेश	२९०
देवी का आदेश	२९१
माकंदोपुत्रों का आ-वसत	२९५
दक्षिण-वन का रहस्य	२९६
संनय यज्ञ	२९७
गुरुवार की प्राप्ति का और कर्तव्य	२९८
गुरुवार	२९९
त्रिनयन का वप	३०४
त्रिनयन की गुरुत्व दृष्टांति	३०७
त्रिनयन की दोहा, स्वयंदाति	३०७

### दशम अध्यायन : अष्ट

सार : संक्षेप	३०९
अष्टु स्वामी का प्रश्न	३११
गुरुत्व का उत्तर	३११
हानि-वृद्धि सबधी प्रश्न	३१३
अष्टु का उत्तर—हीनता का समाधान	३१२
वृद्धि का समाधान	३१२

### ग्यारहवीं अध्यायन : दायद्वय

सार : संक्षेप	३१४
अष्टु स्वामी का प्रश्न	३१४
गुरुत्व स्वामी द्वारा समाधान	३१४
दायद्वय-विराधक	३१५
देवद्विराधक	३१६
देवद्विराधक	३१६
सर्वद्विराधक	३१७
सर्वद्विराधक	३१७

### बारहवीं अध्यायन : उदकजात -

सार : संक्षेप	३१९
उदकजात	३२१
राजा त्रिनयन द्वारा भोजन की प्रणाली	३२२
गुरुत्व अष्टु का मोन	३२२
गुरुत्व-निराश्रय	३२३
परिष्ठा का गुरुत्व	३२४
गुरुत्व द्वारा राजा की उदकजात करने का निश्चय	३२५

समाधिपत्रिका	
पुनर्जन्म	
मन्त्री कुमारी का जन्म	११५
मोहनदास का निर्माण	११६
राजा प्रतियुक्ति	११७
राजा चन्द्रवर्मा	११८
अष्टमर की मागवशास	११९
मान विगास द्वारा अष्टमर को परोक्ष	१२०
राजा रत्न	१२१
बाशीराज अष्ट	१२२
राजा अदीनशाह	१२३
राजा जितेश्वर	१२४
दूतों का सदनविषय	१२५
दूतों का अथमान	१२६
पुष्ट की संधारी	१२७
पुष्ट प्रारम्भ	१२८
मुद्रम की पराजय	१२९
मिथिला का घेराव	१३०
मन्त्री द्वारा चिन्ता सचची प्रश्न	१३१
चिन्तानिबन्ध का उपाय	१३२
राजाओं की सचोपन	१३३
मन्त्री कुमारी की दीक्षा	१३४
वर्षादान	१३५
दुष्टों का प्रागमन-दीक्षोत्सव	१३६
केवलज्ञान की प्राप्ति	१३७
मन्त्री तीर्थकारी की सचसम्पत्ति	१३८
मिथिलाप्राप्ति	१३९

नवम अध्यायन : भाकंदी १३२ कि १३३

सार . सक्षेप	१४०
उत्तर	१४१
प्रारम्भ	१४२
माकरी पुत्रों की सागरयात्रा	१४३
नीरा-मय	१४४
रत्नद्वीप	१४५
रत्नद्वीप-देवी	१४६

द्वारा धर्मकी	११५
का आदेश	११६
तदीपुत्रों का वन-गमन	११५
अप-वन का रहस्य	११६
क मध	११७
कारे की प्राप्ति और अर्त	११८
कारा	११९
निरक्षित का वध	१२४
निरक्षित की सन्तुष्टि गृहप्राप्ति	१२७
निरक्षित की दीक्षा, स्वर्गप्राप्ति	१२७

### दशम अध्यायन : चन्द्र

सार : संक्षेप	१२९
अम्बु स्वामी का प्रश्न	१३१
मुधर्मा का उत्तर	१३१
हानि-वृद्धि संबंधी प्रश्न	१३३
मणवान् का उत्तर—हीनता का समाधान	१३२
वृद्धि का समाधान	१३२

### धारहर्षा अध्यायन : दावद्वय

सार : संक्षेप	१३४
अम्बु स्वामी का प्रश्न	१३४
मुधर्मा स्वामी द्वारा समाधान	१३४
भारधक-विराधक	१३५
देशविराधक	१३६
वैशारधक	१३६
सर्वविराधक	१३७
सर्वारधक	१३७

### धारहर्षा अध्यायन : उदकज्ञात -

सार संक्षेप	१३९
उदकज्ञ	१३९
राजा जितवन्त द्वारा भोजन की प्रणामा	१३२
मुधर्मा अमात्य का मोन	१३२
पुद्गल-परिणामन	१३३
परिष्ठा का गदा प्राप्ति	१३४
मुधर्मा द्वारा राजा को तत्त्वबोध कराने का निश्चय	१३५



देव का भविष्य  
संहार

## चौदहवां अध्यायन : तैत्तिरीय

संक्षेप  
ब्रह्म स्वामी का प्रश्न  
सर्वस्वामी का उत्तर  
तैत्तिरीय अध्याय  
तैत्तिरीय का पोटिला के साथ परिणय  
नकारण राजा की राज्याभिषेक  
नरान की अदलाबदली  
जकुमार का रहस्य-संगोपन  
तैत्तिरीय की पोटिला के प्रति विरक्ति  
जता धार्या का प्रागमन  
पोटिला की मन्त्र-तन्त्रविषयक प्रार्थना  
पोटिला का ध्यावर्धन-स्वीकार  
दीक्षा की अनुमति-प्राप्त  
अनुमति की शर्त-स्वीकृति  
पोटिला धार्या की स्वर्गप्राप्ति  
नकारण का निधन  
नकारण का राज्याभिषेक  
पोटिल देव द्वारा उद्बोधन का विचार  
तैत्तिरीय का भारमण्डल का निष्फल प्रयत्न  
पोटिल द्वारा उद्बोधन  
तैत्तिरीय की आत्मस्मरण  
तैत्तिरीय की प्रवृत्ति-कैवल्यप्राप्ति  
नकारण द्वारा क्षमाप्राप्त  
निष्कृतप्राप्ति

## पन्द्रहवां अध्यायन : नन्दोक्त

सार : संक्षेप  
ब्रह्म स्वामी की जिज्ञासा  
सुधर्मा स्वामी द्वारा समाधान  
धन्य सार्थवाह की घोषणा  
धन्य का सार्थ के साथ प्रस्थान  
उपयोगी चेतावनी  
चेतावनी का पालन

३५४
३५४
३५५
३५८
३५८
३५८
३५९
३६२
३६३
३६५
३६६
३६७
३६८
३६९
३७०
३७०
३७१
३७१
३७३
३७३
३७५
३७७
३७८
३७९
३७९
३८०
३८१
३८३
३८३
३८५
३८६
३८७
३८८
३८९
३८९
३९०
३९१
३९२
३९३
३९४
३९५
३९६
३९७
३९८
३९९
४००
४०१
४०२
४०३
४०४
४०५
४०६
४०७
४०८
४०९
४१०
४११
४१२
४१३
४१४
४१५
४१६
४१७
४१८
४१९
४२०
४२१
४२२
४२३
४२४
४२५
४२६
४२७
४२८
४२९
४३०
४३१
४३२
४३३
४३४
४३५
४३६
४३७
४३८
४३९
४४०
४४१
४४२
४४३
४४४
४४५
४४६
४४७
४४८
४४९
४५०
४५१
४५२
४५३
४५४
४५५
४५६
४५७
४५८
४५९
४६०
४६१
४६२
४६३
४६४
४६५
४६६
४६७
४६८
४६९
४७०
४७१
४७२
४७३
४७४
४७५
४७६
४७७
४७८
४७९
४८०
४८१
४८२
४८३
४८४
४८५
४८६
४८७
४८८
४८९
४९०
४९१
४९२
४९३
४९४
४९५
४९६
४९७
४९८
४९९
५००



स्वयंवरमण्डप का निर्माण	.....	४२८
आवास-व्यवस्था	.....	४२८
स्वयंवर : घोषणा	.....	४३०
स्वयंवर	.....	४३१
पाण्डवों का वरण	.....	४३४
विवाह-विधि	.....	४३५
पाण्डु राजा द्वारा निर्मण्डल	.....	४३५
हस्तिनापुर में कल्याणकरण	"	४३७
नारद का आगमन	"	४३८
द्रौपदी पर नारद का रोष	.....	४३९
नारद का अमरकवागमन : जाल रचना	.....	४४०
पद्मनाभ की दुर्लभता	" "	४४२
द्रौपदी-दृष्टि	.....	४४२
पद्मनाभ का द्रौपदी को भोग-आमन्त्रण	.....	४४४
द्रौपदी की गवेषणा	.....	४४५
द्रौपदी का उद्धार	.....	४४९
कृष्ण द्वारा देव का आह्वान	.....	४५०
पद्मनाभ के पात दूतप्रवेश	.....	४५१
पद्मनाभ-पाण्डव-मुठ	.....	४५३
पाण्डवों की पराजय	.....	४५४
पद्मनाभ द्रौपदी की शरण में	.....	४५६
द्रौपदी-गमर्षण	.....	४५७
कामुदेवों का ध्वनि-मिलन	.....	४५८
धीरुष्ण का लीटना : पाण्डवों की छरारत	" "	४६०
धीरुष्ण का पाण्डवों पर रोष : देशनिर्वासन	.....	४६२
पाण्डुसपुरा की स्थापना	.....	४६४
पाण्डुसैन का अगम	" "	४६५
स्वकिर-आगमन : धर्मध्वज	.....	४६९
प्रसंगवाक्य	.....	४७७
मगधान् धरिष्टनेमि का निर्वाण	" "	४७८
पाण्डुओं का निर्वाण	.....	४७९
दार्पा द्रौपदी का स्वर्गवास	.....	४७९
द्रौपदी का भविष्य	.....	४७९

### सत्तरहवीं अध्यायन : आकीर्ण

भार : सशेन	.....	४७७
अश्व कर्माधी की विज्ञाना	.....	४७४



श्रीगुधर्मा द्वारा समाधान	...	४३१
नीरा-वणिको का कालिकट्टीप-गमन	....	४३१
कालिकट्टीप के आकर धीरे भव	....	४३१
अश्वो का अपहरण	....	४३१
कथानक का निष्कर्ष	....	४३१
विपलोलुपता का दुष्परिणाम	....	४३१
हृदयोलुपता का दुष्फल	....	४३१
हृदयसत्वर का गुण	....	४३१
कत्त ध्यनिर्देश	....	४३१

### अठारहवाँ अध्यायन : सुंमुमा

मार मक्षेप	....	४९१
उल्लेख	....	४९४
चित्तात दाम चेटक उसकी गैतानी	....	४९४
दामचेटक की गिरायलें	....	४९४
दामचेटक का निष्णामन	....	४९४
दामचेटक दुव्यंतनी बना	....	४९४
धीर-गेनापति की शरणमें	....	४९४
बिलास धीर-गेनापति बना	....	४९४
धन्य मार्गवाह के घर की छूट धन्य कन्या का अपहरण	....	४९४
मगररक्षकों के समक्ष करियाद	....	४९४
बिलास का पीछा किया	...	४९४
सुंमुमा का शिरच्छेदन	....	४९४
धन्य का मोह	....	४९४
आहार-गानी का अभाव	....	४९४
धन्य मार्गवाह का प्राणत्याग प्रभाव	...	४९४
उपेष्ट पुत्र की प्राणोत्तम की सैयारी	....	४९४
अन्तिम निर्णय	....	४९४
शत्रुदृष्ट में बातिगी	....	४९४
निष्कर्ष	....	४९४

### उन्नीसवाँ अध्यायन : पुण्डरीक

मार : मक्षेप	...	४९४
धन्य की बिलास	....	४९४
गुणनी बिलास द्वारा समाधान	....	४९४
महापद्म काका की पीछा : निजिप्रान्ति	....	४९४

कङ्करीक की दीक्षा		
कङ्करीक की दम्पता	..	५१४
कङ्करीक मुनि की सिद्धिगता	...	५१६
प्रदग्गा का परिव्याय	....	५१६
राज्याभिषेक	.....	५१९
पुष्करीक का दीक्षाग्रहण	.....	५१९
कङ्करीक की पुन. दम्पता	.....	५१९
मरण एक नरकगमन	..	५१९
पुष्करीक की उष साधना	.....	५२०
उष साधना का मुफान	.....	५२१
	.....	५२१
	.....	५२२

### द्वितीय धृतस्कन्ध-१-१० वर्ग

मार : लक्ष्य		
प्रथम अध्ययन-प्रास्ताविक	....	५२४
मुघर्मा का प्रागमन	..	५२६
जम्बू का प्रसन	....	५२६
मुघर्मा स्वामी का उत्तर	....	५२६
काली देवी की कथा	..	५२६
काली देवी का पूर्वभय	.....	५२७
द्वितीय अध्ययन-राजी देवी	.....	५२८
तृतीय अध्ययन-रजनी देवी	..	५
चतुर्थ अध्ययन-विष्णु देवी	.....	५
पञ्चम अध्ययन-मैया देवी	..	५
द्वितीय वर्ग-प्रथम अध्ययन	..	५
द्वितीय वर्ग २-५ अध्ययन	..	५
तृतीय वर्ग-प्रथम अध्ययन	.....	५१
तृतीय वर्ग-२-६ अध्ययन	..	५४
तृतीय वर्ग ७-१२ अध्ययन	..	५४
तृतीय वर्ग १३-५४ अध्ययन	...	५४
चतुर्थ वर्ग-प्रथम अध्ययन, रुपा	.....	५४१
चतुर्थ वर्ग २-६ अध्ययन	...	५४५
चतुर्थ वर्ग ७-५४ अध्ययन	..	५४७
म वर्ग-प्रथम अध्ययन, कमलः	.....	५४८
म वर्ग शेष ३१ अध्ययन	...	५४८
वर्ग-१-३२ अध्ययन	..	५४९
म वर्ग-१-४ अध्ययन	.....	५५०
	..	५५१
	..	५५२



## प्रथम अध्ययन : उत्तिष्ठतज्ञात

प्रथम अध्ययन में राजगृह नगर (मगध) के अधिपति महाराज श्रेणिक के सुपुत्र मेघकुमार जीवन अकित किया गया है, किन्तु इसका नाम 'उत्तिष्ठतज्ञात' है। यह नाम इस अध्ययन में मेघ के पूर्वभय में घटित एक महत्वपूर्ण घटना पर आधारित है। उस घटना ने एक पशु को मानव और फिर प्रतिमानव-सिद्ध परमात्मा के सर्वोच्च पद पर प्रतिष्ठित

आत्मा अनादि-अमन्त चिन्मय तत्त्व है। राग-द्वेष आदि विकारों से प्रस्त होने के कारण वह अवस्थाओं में जन्म-मरण करता है। एक अवस्था से दूसरी अवस्था में जाना ही संसरण या जाता है। कभी अधोगति के पाताल में तो कभी उच्च गति के शैल-सिखर पर वह आरूढ़ इस चढ़ाव-उतार का मूल कारण स्वयं आत्मा ही है। सत्-संयोग मिलने पर आत्मा जब भी स्वरूप को समझ लेता है तब अनुकूल पुरुषार्थ करके अपने विद्युत् स्वरूप को प्राप्त करके भी आत्मिक बंधन को अधिगत कर लेता है-शाश्वत एव अभ्यावाध मुक्त का स्वामी बन मेघकुमार के जीवन में यही घटित हुआ।

स्तुत अध्ययन में मेघकुमार के तीन भवों-जन्मों का दिग्दर्शन कराया गया है और दो भावी लक्षण हैं। प्रतीत तीसरे भव में वह जगली हाथी था। जंगल में दावानल सुलगता है। के लिए वह इधर-उधर भागता दौड़ता है। भूला-प्यासा वह पानी पीने के विचार से तालाब में प्रवेश करता है। पानी तक पहुँचने से पहले ही कीचड़ में फँस जाता है। प्रयत्न करता है पर परिणाम विपरीत होता है-अधिकाधिक कीचड़ में धँसता जाता है। चार, असहाय हो जाता है। संयोगवश, उसी समय एक दूसरा तरण हाथी, जो उसका पूर्व बही था पहुँचता है और बँद का स्मरण करके अपने तीखे दन्त-शूलों से प्रहार करके उसकी ना समाप्त कर देता है। कल्पित परिणामों-आर्त्त-ध्यान-के कारण हाथ-हाथ करता हुआ योग करके पुनः हाथी के रूप में—पशुपति में उत्पन्न होता है। वन-चर उसका नाम रखते हैं।

योग की वान, जंगल में पुनः दावानल का प्रकोप होता है। सारा जंगल धाँप-धाँप कर लपटों से व्याप्त हो जाता है। मेरुप्रभ फिर अपने यूथ-झुंड के साथ इधर-उधर भागता-प्रारणरक्षा करता है। किन्तु इस बार दावानल का लोमहर्षक दृश्य देखकर प्रतीत भव घुँघला-भस्म-सा चित्र उसके कल्पना-नेत्रों में उभरता है। वह बिचारों की गहराई में और उसे शुभ अध्यवसाय, लेश्याविशुद्धि एवं ज्ञानावरण कर्म के विशिष्ट क्षयोपशम से ए ज्ञान उत्पन्न हो जाता है। इस ज्ञान से अपने पूर्वजन्मों को जाना जा सकता है।

मेरुप्रभ हाथी को जातिस्मरण से पूर्व जन्म की घटना विदित हो गई। दावानल का भी आया। तब उसने बार-बार उत्पन्न होने वाली इस विपदा से छुटकारा पाने के लिए—घास-पूस, पेड़-पौधों से रहित, साफ-मफाचट मैदान तैयार किया।

बुद्ध काल व्यतीत होने पर फिर योग्य ऋतु में दारानान का प्रयोग हुआ। इस बार बन का स्थान तैयार था—बनाया हुआ वह मडल। मेरुप्रभ उगी ओर भागा। जंगल के गभीर प्रारं जानवर मडल में ठसाठस भग गए थे। जानिये धैरभाव स्थापन कर घेर, हिरण्य, भेड़िया, नर आदि सभी एक दूसरे से सटे बैठे थे। मेरुप्रभ भी थोड़ीमी जगह देग कर गदा हो गया।

अचानक मेरुप्रभ के दारौर में गुजली उठी। उमने दारौर गुजलाने के लिए पैर ऊपर उठ ही था कि अन्य बलवान् प्राणियों द्वारा घातन गाना हुआ एक शनक, पैर उठाने में नाची हुई जगह में धा घुसा।

अब मेरुप्रभ हाथी के सामने बड़ी विवट समझा थी। पैर जमीन पर टेकना है तो शनक की घटनी बन जाती है। पैर उठाये रखते तो कब तक? दावानल जल्दी शान्त नहीं होता। फिर भारी भरकम शरीर! उसे तीन पैरों पर कंठे सेमाने! एक छोटी घारगरजा की मितता तो दूगरी और जीवदया की प्रबल भावना! बड़ी सममजस की स्थिति थी। परन्तु श्रेष्ठ आत्मा अपने हित और सुख का विघात करके भी दूसरे के हित और सुख के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। आगिर आत्मरक्षा के समक्ष भूतदया की विजय हुई। मेरुप्रभ ने स्वयं धीरे कष्ट सहन करके भी शनक की अनुकम्पा के लिए अपना पैर अधर ही उठा रक्खा। इस प्रशस्त अनुकम्पा की बदौलत मेरुप्रभ का संगार परीत हो गया—अनन्त जन्म-मरण का चक्र अति सीमित हो गया और उसने मनुष्यायु का वन्ध किया।

मेरुप्रभ ने अडाई अहो-रात्र तक अपना पैर उठाए रक्खा। जब दावानल जंगल की भस्मभार करके शान्त हो गया, बुझ गया और दूसरे प्राणी आहार-पानी की गोज में दधर-उधर चले गए शनक भी चला गया तो मेरुप्रभ ने अपना पैर पृथ्वी पर टेकना चाहा। परन्तु अडाई दिन तक ऐसा सा अधर रहने के कारण पैर अकड़ गया था। अतएव पैर जमाने के प्रयत्न में वह स्वयं ऐसा गि गया जैसे बिद्युत् के प्रबल आघात से पर्वत का शिखर टूट कर गिर पड़ा हो।

उस समय मेरुप्रभ की उम्र सौ वर्ष की थी। जरा से जर्जरित था। भूता-प्यासा होने; अतिशय दुर्बल, अशक्त और पराक्रम-हीन हो गया था। वह उठ नहीं सका और तीन दिन तक दुस्त वेदना सहन करके अन्त में प्राण त्याग करके मगधसम्राट् श्रेणिक की महारानी धारिणी के उदर शिशु के रूप में जन्मा।

शिशु जय गर्भ में था तब महारानी धारिणी की असमय में पचरंगी मेघों से युक्त वर्षा ऋ के दृश्य की देखने का दोहद उत्पन्न हुआ। अभय कुमार के प्रयत्न से, देवी सहायता से, विप्रिया डा वर्षा ऋतु का सर्जन किया गया। प्रस्तुत अध्ययन में वर्षा ऋतु का जो शब्दचित्र अंकित किया गया। वह अतिशय भव्य और हृदयग्राही है। सूक्ष्म प्रकृति-निरीक्षण की गभीरता का उससे स्पष्ट परिचय मिलता है। वर्षाऋतु का दृबहू दृश्य नेत्रों के सामने आ खड़ा होता है। उस प्रसंग की भाषा भी धार प्रवाहमयी, आह्लादजनक और मनोरम है। पड़ते-पड़ते ऐसा अनुभव होने लगता है जैसे कि उरगृष्ट काव्य का पारायण कर रहे हैं। इस प्रकार के सरस पाठ आगमों में विरले ही मिलते हैं।

मेघ सबघी माता के दोहद के कारण, यथासमय जन्म लेनेवाले बालक का नाम भी मेघ रक्खा जाता है।

सम्राट् के पुत्र के लालन-पालन के विषय में कहना ही क्या। बड़े प्यार से उसका पाल पोषण-नापोषण हुआ। साठ वर्ष की उम्र होने पर उसे कला-शिक्षण के लिए कलाचार्य के सिपुर्द

दिया गया। कन्याधर्म में पुरस्कार की बहुराज्य कन्याओं की निष्ठा थी। उन कन्याओं का नामोल्लेख इस प्रसंग में किया गया है। कन्याकुमार मेघ के अंग-अंग मिल उठे। वह बटारह देवी भाषाओं में प्रवीण, गीत-नृत्य में निपुण और मुद्रा-न्याय में भी निष्णात हो गया। तत्पश्चात् बाट राज-कुमारियों के साथ, एक ही दिन, उनका विवाह किया गया। इस प्रकार राजकुमार मेघ उत्तम राजसी भोग-उपभोग भोगने लगा।

कुछ ज्ञान के पश्चात् जनपद-विहार करते-करते और जगन् के त्रीनों को यादवन एवं पारमार्थिक गुरु तथा कन्यायों का पथ प्रदर्शित करने हुए भगवान् महावीर का राजगृह नगर में पदार्पण हुआ। राजा-भ्राता सभी धर्मदेवता श्रवण करने के लिए प्रभु की सेवा में उपस्थित हुए। मेघकुमार को जब भगवान् के समवसरण का वृत्तान्त विदित हुआ तो वह भी वहाँ पीछे रहने वाला था। धारमा में जब एक बार मन्त्री जागृति पा जातो है, अपने समीप भ्रान्तरिक वैभव की भ्रांती मिल जाती है, धारमा जब एक बार भी स्व-सवेदन के चङ्क्रमण, अपूर्व अमृत-रस का आस्वादन कर लेता है, तब समार का उत्तम में उत्तम वैभव और उत्कृष्ट में उत्कृष्ट भोग भी उसे वानू के कवल के समान नीरव, निस्वार और धीके जान पड़ते हैं। राजकुमार मेघ का विवेक जागृत हो चुका था। वह भी भगवान् की उपासना के लिए पहुँचा। धर्मदेवता श्रवण की। भगवान् का एक-एक बोल मानो अमृत का एक-एक बिन्दु था। उगता पान करते ही उनके आह्वान की सीमा न रही। आत्मा मोक्षोत्तर धारणी से उद्भासित हो उठी। उसने अपने-आपको भगवान्-वरणी में समाहित कर दिया। गच्छाद् के साधने मोक्षवान पुत्र ने मिष्ट ब्रम्ह का गुरुङ्ग संकल्प कर लिया।

मेघ माता-पिता की अनुमति प्राप्त करने उनके पास पहुँचा। दीक्षा की बात सुनने ही माता धारिणी देवी तो बेहोश होकर धक्काम में धरती पर गिर पड़ी और पिता श्रेणिक सभाद् चकित रह गए। उन्होंने मेघकुमार को प्रथम तो अनेक प्रकार के सासारिक प्रलोभन देकर सतृप्तना चाहा। जब उनका कुछ भी धमर न हुआ तो मातृ-जीवन की कठोरता, धर्मकरता एवं दुस्माध्यता का वर्णन किया। यह सब भी जब विफल हुआ तो माता-पिता समझ गए—‘गूरदास की कारी कमरिया बड़े म दूजो रंग।’

आगिर माता-पिता ने अनमने भाव से एक दिन के लिए राज्यामीन होने का आग्रह किया, जिसे मेघ ने मौनभाव में स्वीकार कर लिया। बटे टाट-बाट से राग्याभिषेक हुआ। राजकुमार मेघ अब सभाद् मेघ बन गए। अगर उनका संकल्प कब बदलने वाला था! तत्काल ही उन्होंने सयम ग्रहण करने की अभिलाषा व्यक्त की और उपकरणों की मांग की। एक लाख स्थूल-मोहरों से पात्र एवं एक लाख से वस्त्र गरीबे गए। एक लाख मोहरें देकर शिरोमुञ्चन के लिए नार्द बुलवाया गया। बटे ऐश्वर्य के साथ दीक्षा हो गई। सभाद् ने स्वेच्छापूर्वक भिक्षु-जीवन अंगीकार कर लिया। इस प्रकार की महान् शान्ति करने का सामर्थ्य मित्र धर्म में ही है। संसार के अन्य किसी वाद में नहीं।

‘गमय गोमय ! मा पमायए’ मूत्र धारण गारपूर्ण है। जीवन का तत्परदर्शी और व्यापक अनुभव इसमें गमाया है। मनुष्य एक क्षण के लिए अनावधान होता है—अकाल में पड़ता है कि अन्तरतर में छिने-दबे विचार धारकण कर बटते हैं। बड़ी से बड़ी उंचाई पर से उसे नीचे गिरा देते हैं। मेघ मुनि के जीवन में कुछ ऐसा ही घटित हुआ।

दीक्षा की पहली रात थी। ज्येष्ठानुक्रम—बड़े-छोटे के क्रम में संस्तारक (विद्योने) विद्यार गये। मेघ मुनि उस समय सब से छोटे थे। उनका विस्तर द्वार के पास लगा, जहाँ से मुनियों का प्रावागमन था। प्राते-जाते मुनियों के पैरों की धूल उनके शरीर पर गिरती, कभी पैरों की टसर पड़ती। फूलों की सेज पर सोने वाले मेघ मुनि को ऐसी स्थिति में निद्रा कैसे प्राती? बड़े कष्ट में वह रात व्यतीत हुई, मगर उन्होंने प्रातः ही उपाश्रय छोड़कर वापिस राजमहल में लौट जाने का विचार कर लिया। अलवत्ता भगवान् महावीर की अनुमति लेकर ही ऐसा करने का निश्चय किया। प्रातः काल जब वे अनुमति लेने भगवान् के निकट पहुँचे तो अन्तर्यामी भगवान् ने उनके मनोभाव को पढ़ने ही प्रकट कर दिया। साथ ही पूर्व के हाथी के भवों में सहन की गई घोर्रातिघोर व्याघ्रों का विस्तृत वर्णन सुनाया। कहा—‘अब तुम इतना-सा कष्ट भी सहन नहीं कर सकते?’

भगवान् के वचन सुनते ही मेघ मुनि को जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया। वे स्पष्ट रूप से अपने पूर्वभयों को देखने-जानने लगे। अपनी स्खलना-दुर्बलता के लिए पश्चात्ताप करने लगे। बोले—‘भने! प्रातः मे दो नेत्र छोड़कर यह समस्त शरीर श्रमण निर्घ्न्यों की सेवा के लिए समर्पित है।’

मेघ मुनि ने पुनः दीक्षा अंगीकार करके अपनी स्खलना के लिए प्रायश्चित्त किया। ग्राह्य भगों का अध्ययन किया। भिक्षु-प्रतिमार्ण अंगीकार की, गुणरत्नसंवत्सर तपश्चरण किया। इन तपश्चर्याओं में उनका शरीर निर्वल हो गया किन्तु धारमा अतिशय बलशाली बन गई। समाधिपूर्वक शरीर त्याग कर वे विजय नामक अनुत्तर विमान में देव के रूप में जन्मे। यहाँ से ज्यवन कर प्रमुक्त भय धारण करके अग्न में वन्यन्त्र प्राप्त करके वे शाश्वत सुख-मुक्ति के भागी होंगे। विस्तृत विवेचन जानने के लिए पाठक इस अध्ययन का गव्य अध्ययन करें।

## पठमं अञ्जयणः उक्खित्तणाए

प्रारम्भ—

१—तेणं कालेणं तेणं समएणं चम्पा नामं नगरी होत्वा, वण्णघो<sup>१</sup> ।

उस काल में अर्थात् इस अवसर्पिणी काल के चौथे धारे में और उस समय में अर्थात् कूणिक राजा के समय में चम्पा नामक नगरी थी । उसका वर्णन उववाई सूत्र के अनुसार जान लेना चाहिए ।

२—तीसे नं चम्पाए जयरीए बहिया उत्तरपुरद्धिमे वितीमाए पुण्णमहं नामं चेइए होत्वा, वण्णघो<sup>२</sup> ।

उस चम्पा नगरी के बाहर, उत्तरपूर्व दिक्-कोण में अर्थात् ईशान भाग में, पूर्णभद्र नामक चैरय था । उसका भी वर्णन उववाई सूत्र के अनुसार जान लेना चाहिए ।

३—तय नं चम्पाए जयरीए कोणिघो नामं राया होत्वा, वण्णघो<sup>३</sup> ।

चम्पा नगरी में कूणिक नामक राजा था । उसका भी वर्णन उववाई सूत्र से जान लेना चाहिए ।

भार्यं सुधर्मा

४—तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवघो महावीरस्स व्रतिवासी भज्जसुहम्मे नामं धेरे जाइसंपन्ने, कुलसंपन्ने, बल-रूप-विणय-णाण-दंसण-चरित्त-साधव-संपन्ने ओयंसी, तेयंसी, वच्चंसी, जससी, जियकोहे, जियमाणे, जियमाए, जियलोहे, जियईरिए, जियनिहे, जियपरितहे, जीवियात्त-मरण-भयविप्पमुक्के, तवप्पहाणे, गुणप्पहाणे, एवं करण-वरण-निगह-णिच्छय-अज्जव-मह्व-साधव-व्रति-भुत्ति-भुत्ति-विज्जा-मंत-वंध-वेय-नय-नियम-सत्त्व-सोय-णाण-दंसण-चरित्तप्पहाणे, ओरात्ते, ओरे, ओरव्वए ओरतव्वसी, ओरयंमचेरवासी, उच्छूटसरीरे, खल्लिस्स-विउल्लेउल्लेस्से चोहसपुव्वी, चउना-णोवगए, पंचाहिं अणगारसएहिं सद्धिं संपरिवुडे पुव्वानुपुत्थि धरमाणे, वामाणुगामं इइअमाणे, सुहं-सुहेणं विहरमाणे, जेणेव चम्पा नगरी, जेणेव पुण्णमहं चेइए, तेणामेव उवागच्छइ । उवागच्छिता अहापडिक्खं उगहं ओगिण्हइ; ओगिण्हिता संजमेण तवसा अप्पाणं भावेमाणे विरहति ।

उस काल और उस समय में धमण भगवान् महावीर के शिष्य भार्यं सुधर्मा नामक स्वविर थे । वे जातिसम्पन्न-उत्तम मानुष्य वाले थे, कुलसम्पन्न-उत्तम पितृपक्ष वाले थे, उत्तम सहनन से उत्पन्न बल से युक्त थे, अनुत्तर विमानवासी देवों की अपेक्षा भी अधिक रूपवान् थे, विनयवान्, चार ज्ञानवान्, धार्मिक सम्पत्त्ववान्, साधववान् (द्रव्य से अल्प उपधि वाले और भाव से श्रद्धि रत एव साता रूप तीन गौरवों से रहित) थे, भोजस्वी अर्थात् मानसिक तेज से सम्पन्न या चढ़ते परिणाम वाले, तेजस्वी अर्थात् शारीरिक कान्ति से देदीप्यमान, वचस्वी-संगुण वचन वाले, यशस्वी, क्रोध को जीतने वाले,



मान को जीतने वाले, माया को जीतने वाले, लोभ को जीतने वाले, पाँचों इन्द्रियों को जीतने वाले, निद्रा को जीतने वाले, परीपहों को जीतने वाले, जीवित रहने की कामना और मृत्यु के भय में रहित, तप-प्रधान अर्थात् धन्य मुनियों की अपेक्षा अधिक तप करने वाले या उत्कृष्ट तप करने वाले, गुणप्रधान अर्थात् गुणों के कारण उत्कृष्ट या उत्कृष्ट समय-गुण वाले, करणप्रधान-पिण्डविशुद्धि आदि करण-सत्तरी में प्रधान, चरणप्रधान-महाव्रत आदि चरणसत्तरी में प्रधान, निग्रहप्रधान-मनाचार में प्रवृत्ति न करने के कारण उत्तम, तत्त्व का निश्चय करने में प्रधान, इसी प्रकार आज्ञाप्रधान, मार्गप्रधान, साधन-प्रधान, अर्थात् क्रिया करने के कौशल में प्रधान, क्षमाप्रधान, गुप्तिप्रधान, मुक्ति (निलोभना) में प्रधान, देवता-अधिष्ठित व्रतस्मि आदि विद्याओं में प्रधान, मंत्रप्रधान अर्थात् हरिणगमेयी आदि देवों में अधिष्ठित विद्याओं में प्रधान, ब्रह्मचर्य अथवा समस्त कुशल अनुष्ठानों में प्रधान, वेदप्रधान अर्थात् लौकिक एवं लोकोत्तर आगमों में निष्णात, नम्रप्रधान, नियमप्रधान—भाति-भाति के अग्निग्रह धारण करने में कुशल, सत्यप्रधान, सौचप्रधान, ज्ञानप्रधान, दर्शनप्रधान, चारित्रप्रधान, उदार अर्थात् अपनी उप तपश्चर्या से समीपवर्ती अल्पसत्त्व वाले मनुष्यों को भय उत्पन्न करने वाले, घोर अर्थात् परीपहों, इन्द्रियों और कषायों आदि आन्तरिक जन्तुओं का निग्रह-करने में कठोर, घोरव्रती अर्थात् महाव्रतों को आदर्श रूप से पालन करने वाले, घोर तपस्वी, उत्कृष्ट ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले, शरीर-संस्कार के त्यागी, विपुल तेजोलेख्य को अपने शरीर में ही समाविष्ट करके रखने वाले, बौद्ध पूर्णों के ज्ञाता, चार ज्ञानों के धनी, पाँच सौ साधुओं से परिवृत, अनुक्रम से चमत्ते हुए, एक ग्राम से दूसरे ग्राम में विचरण करते हुए, मुखे-मुखे विहार करते हुए, जहाँ चम्पा नगरी थी और जहाँ पूर्णभद्र चैत्य था, उसी जगह आये। आकर यथोचित अवग्रह को ग्रहण किया, अर्थात् उपाश्रय की याचना करके उगम स्थित हुए। अवग्रह को ग्रहण करके समय और तप से आराम को भावित करते हुए विचरने लगे।

५—तए नं चंषाए नयरीए परिसा निगया । कोणिमो निगामो । धम्मो कहिमो । परिसा जामेव दिसं पाडसुम्रा, तामेव विंति पडिगया ।

तत्पश्चात् चम्पा नगरी में परिपद (जनसमूह) निकली। कृत्तिक राजा भी (बन्धना करने के लिए) निकला। मुधर्मा स्वामी ने धर्म का उपदेश दिया। उपदेश सुनकर परिपद जिस दिशा से आई थी, उगी दिशा में लौट गई।

जम्बू स्वामी

६—तेणं कालेणं तेणं समएणं अज्जुपुहम्मसस धनगरसस जेरुहे धंतेवासो अज्जुसंजुणामं अणुगारे वासाधोत्तेणं सत्तसेहे जाव [समवउरंस-संटाण-संठिए, चडररिसहनाराय-संधयणे, कणग-पुसग-धेरवातो, उवट्टसरीरे, संतिस्स-विउसतेउसेस्ते] अज्जुपुहम्मसस धेरसस अदूरसामंते उड्डंजाणू ग्रहोतिरे भागकीटोवणए सज्जेमं तवसा अण्णं मावेमाणे विहरति ।

उग बाल घोर उग समय में आये गुज्जरा धनगर के ज्येष्ठ नायक आये जम्बू नामक धनगर में, जो बादल मोचीय घोर मान हवा उँचे शरीर वाले, [समचौरस संस्थान तथा पश्य-श्रवण-नाराय चमत्तन वाले थे, बगोटी पर गीची हुई स्वर्णरेखा के गठन, तथा कमल के गर्भ के समान गौरवर्ण थे।

आत्मा को तपोमय बनाने वाले, महातपस्वी—प्रशस्त और दीर्घ तप वाले, उदार-प्रधान, धीर कषायादि शत्रुओं के उन्मूलन में कठोर, घोरगुण—दूसरों के लिए दुरनुचर मूलोत्तर गुणों से सम्पन्न, उप्रतपस्वी, शत्रुओं के लिए कठिन ब्रह्मचर्य में लीन, शारीरिक संस्कारों का त्याग करने वाले—शरीर के प्रति गर्वया ममत्वहीन, संकटों योजना में स्थित वस्तु को भस्म कर देने वाली विस्तीर्ण तेजोलेश्या को शरीर में ही लीन रखने वाले—विपुल तेजोलेश्या का प्रयोग न करने वाले] धार्य सुधर्मा से न बहुत दूर, न बहुत समीप धर्मात् उचित स्थान पर, ऊपर घुटने और नीचा मस्तक रखकर ध्यानरूपी कोष्ठ में स्थित होकर मयम और तप के आत्मा को भावित करते हुए विचरते थे ।

जन्म स्वामी की जिज्ञासा

७—तए नं से भज्जजंज्णामे धनपारे जायसङ्गे, जायसंसए, जायकोउहल्ले, संजातसङ्गे, संजात-संसए, संजातकोउहल्ले, उपपन्नसङ्गे, उपपन्नसंसए, उपपन्नकोउहल्ले, समुपपन्नसङ्गे, समुपपन्नसंसए, समुपपन्नकोउहल्ले उद्धाए उद्धेति । उद्धाए उद्धिता जेणामेव भज्जमुहम्मे थेरे तेणामेव उवागच्छति । उवागच्छिता भज्जमुहम्मे थेरे तिबलुत्तो भायाहिणवयाहिणं करेइ । करेत्ता वंदति नमंसति, वंदिता नमंसिता भज्जमुहमस्स थेरस्स एव्वासम्मे नातिदूरे सुस्सुसमाणे नमंसमाणे अभिमुहं पंजलिउडे विणएणं पज्जुवासमाणे एवं वयासी ।

तत्पश्चान् धार्य जन्म नामक अनगार को तत्त्व के विषय में थड़ा (जिज्ञासा) हुई, संशय हुआ, कुतूहल हुआ, विशेष रूप से थड़ा हुई, विशेष रूप से संशय हुआ और विशेष रूप से कुतूहल हुआ । थड़ा उत्पन्न हुई, संशय उत्पन्न हुआ और कुतूहल उत्पन्न हुआ । विशेष रूप से थड़ा उत्पन्न हुई, विशेष रूप से संशय उत्पन्न हुआ और विशेष रूप से कुतूहल हुआ । तब वह उत्थान करके उठ खड़े हुए और उठ करके जहाँ धार्य सुधर्मा स्थित थे, वही आये । आकर धार्य सुधर्मा स्थित की तीन बार दक्षिण दिशा में आरम्भ करके प्रदक्षिणा की । प्रदक्षिणा करके वाणी से स्तुति की और काया से भगवत्कार किया । स्तुति और भगवत्कार करके धार्य सुधर्मा स्थित से न बहुत दूर और न बहुत समीप-उचित स्थान पर स्थित होकर, सुनने की इच्छा करते हुए सम्मुख दोनों हाथ जोड़कर विनयपूर्वक पशुपासना करते हुए इस प्रकार बोले ।

विशेषण—थड़ा का अर्थ यहाँ इच्छा है । जन्म स्वामी को तत्त्व जानने की इच्छा हुई, क्योंकि श्रीवर्धमान स्वामी ने जैसे-जैसे अङ्ग का अर्थ कहा है, उसी प्रकार छठे अङ्ग का अर्थ कहा है या नहीं ? इस प्रकार का संशय उत्पन्न हुआ । संशय उत्पन्न होने का कारण यह था कि 'पंचम अङ्ग में समस्त पदार्थों का स्वरूप बतला दिया गया है तो फिर छठे अङ्ग में क्या कहा होगा ?' इस प्रकार का कुतूहल हुआ । इस प्रकार थड़ा, संशय और कुतूहल में कार्यकारण भाव है । अर्थात् कुतूहल से संशय का जन्म हुआ और संशय ने थड़ा—जानने की इच्छा उत्पन्न की ।

जात का अर्थ सामान्य रूप से होना, संजात का अर्थ विशेष रूप से होना, उत्पन्न का अर्थ सामान्य रूप में उत्पन्न होना और समुत्पन्न का अर्थ विशेष रूप से उत्पन्न होना है ।

८—जइ नं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेण, भाइगरेणं, तित्थपरेणं, सयंसंवद्धेणं, पुरिसुत्तमेणं, पुरिसत्तीहेणं, पुरिसवरपुं डरीएणं, पुरिसवर—गंधहत्विणा, लोगुत्तमेणं सोपनाहेणं, सोगहिणं, लोगपईवेणं, लोग-पल्लोपगरेणं,

अभयदणं, शरणवणं, चक्रवर्णं, भागवणं, बोहिवणं, धम्मवणं,  
धम्मवेसणं, धम्मनायणेणं, धम्मसारहिणा, धम्मवरघाउरंतचक्रवट्टिणा,

अत्थद्विहयवरनाणदंसणघरेणं, विषट्ठउमेणं, जिणेणं, जायएणं<sup>१</sup> तिन्नेणं, तारएणं, मुत्तेणं  
सोमणेणं, बुद्धेणं, बोहएणं, सव्वन्नेणं, सव्ववरिसणेणं सिवमयलमरुअमणंतमकलममध्यायाहमपुणरावित्तं  
सासयं ठाणमवगएणं, पंचमस्स अंगस्स अयमट्ठे पणस्से, छट्ठस्स ञं भत्ते ! अंगस्स णायोधम्मकहाणं  
के अट्ठे धम्मस्से ?

श्री जम्बू स्वामी ने श्रीसुधर्मा स्वामी से प्रश्न किया—भगवन् ! यदि श्रुतधर्म की प्राप्ति करने वाले, गुरुपदेश के बिना स्वयं ही बोध को प्राप्त, पुरुषों में उत्तम, कर्म-शत्रु का विनाश करने में पराक्रमी होने के कारण पुरुषों में सिंह के समान, पुरुषों में श्रेष्ठ कमल के समान, पुरुषों में गन्धहस्ती के समान, अर्थात् जैसे गन्धहस्ती की गन्ध से ही अन्य हस्ती भाग जाते हैं, उसी प्रकार जिनके पुण्य-प्रभाव से ही ईति, भीति आदि का विनाश हो जाता है, लोक में उत्तम, लोक के नाय, लोक का हित करने वाले, लोक में प्रदीप के समान, लोक में विशेष उद्योत करने वाले, अभय देने वाले, शरणदाता, श्रद्धा रूप नेत्र के दाता, धर्ममार्ग के दाता, बोधिदाता, देशविरति और सर्वविरति रूप धर्म के दाता धर्म के उपदेशक, धर्म के नायक, धर्म के सारथि, चारों गतियों का अन्त करने वाले धर्म के चक्रवर्ति अथवा सम्पूर्ण भारत क्षेत्र में धर्म सम्मग्री चक्रवर्ती—सर्वोत्कृष्ट, कहीं भी प्रतिहत न होने वाले केवल ज्ञान-दर्शन के धारक, धार्मिक कर्म रूप छद्म के नाशक, रागादि को जीतने वाले और उपदेश द्वारा अन्य प्राणियों को जिताने वाले, ससार-सागर से स्वयं तिरहे हुए और दूसरों को तारने वाले स्वयं कर्मबन्धन से मुक्त और उपदेश द्वारा दूसरों को मुक्त करने वाले, स्वयं बोध-प्राप्त और दूसरों को बोध देने वाले, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, शिव-उपद्रवरहित, अवल-चलन आदि क्रिया से रहित, अवल-धारीरिक व्याधि की वेदना से रहित, अनन्त, असम, अव्याबाध और अपुनरावृत्ति—पुनरागमन रहित सिद्धिगति नामक शाश्वत स्थान को प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने पाँचवें अंग का यह (अं आपने कहा) अर्थ कहा है, तो भगवन् ! छठे अंग ज्ञाताधर्मकथा का क्या अर्थ कहा है ?

सुधर्मा स्वामी का समाधान

६—जंढु त्ति, तए ञं अज्जसुहम्मे येरे अज्जजंयूणामं, अणगारं एवं धयासी—एवं लल्लु जंढु  
समणेणं भगवया महावीरेणं जाव<sup>२</sup> संपत्तेणं छट्ठस्स अंगस्स दो सुयवल्खंथा पणस्सा, संजहा—णायो  
य धम्मकहाओ य ।

‘हे जम्बू !’ इस प्रकार सम्बोधन करके आर्य सुधर्मा स्थविर ने आर्य जम्बू नामक अनगर इस प्रकार कहा—जम्बू ! यावत् सिद्धिस्थान को प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने छठे अज्ज ज्ञाताधर्मकथा के दो श्रुतचक्रवर्ण प्रवर्णन किये हैं । वे इस प्रकार हैं ज्ञात (उदाहरण) और धर्मकथा ।

१०—अइ ञं भत्ते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं छट्ठस्स अणस्स दो सुयवल्खं  
पणस्सा, संजहा—णायोणं य धम्मकहाओ य, पइमस्स ञं भत्ते ! सुयवल्खंथस्स समणेणं जाव<sup>३</sup> संपत्ते  
णायोणं अइ अउभरणा पणस्सा ?

जम्बू स्वामी पुनः प्रश्न करते हैं—भगवन् ! यदि यावत् सिद्धिस्थान को प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने छठे अंग के दो श्रुतस्कन्ध प्रकथित किये हैं—ज्ञात और धर्मकथा, तो भगवन् ! ज्ञात नामक प्रथम श्रुतस्कन्ध के यावत् सिद्धिस्थान को प्राप्त श्रमण भगवान् ने कितने अध्ययन कहे हैं ?

११—एवं सन्तु जंबू ! समनेणं जाव<sup>१</sup> संवसेणं पायाणं एगुणवीसे-अरुणपणा पणत्ता, संजहा—

उत्तिष्ठतणाए, संपाडे, अंटे, कुम्भे य, सेतये ।  
सुंये य, रोहिणी, मल्ली, मार्कंदी, चरिमाइ य ॥१॥  
दावद्वे, उदगणाए, मंडुवके, सेयसी, वि य ।  
अंरिफेते, अमरकका, आइण्णे, सुसमाइ य ॥२॥  
अवरे य पुं डरीए, पाया एगुणवीसइमे ।

हे जम्बू ! यावत् सिद्धिस्थान को प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने ज्ञात नामक श्रुतस्कन्ध के उन्नीस अध्ययन कहे हैं । वे इस प्रकार हैं—

(१) उत्तिष्ठत ज्ञान (२) संपाट (३) अंडक (४) कुम्भ (५) धौलक (६) रोहिणी (७) मल्ली (८) मार्कंदी (९) चन्द्र (१०) दावद्वेवृषा (११) सुम्भ (१२) उदक (१३) मंडूक (१४) सेतसीपुत्र (१५) मन्दीपल (१६) अमरकका (द्रोपदी) (१७) आकोण (१८) सुपमा (१९) पुण्डरीक-कुण्डरीक यह उन्नीस ज्ञात अध्ययनों के नाम हैं ।

१२—अइ णं भंते ! समनेणं जाव<sup>२</sup> संवसेणं पायाणं एगुणवीसे अरुणपणा पणत्ता, संजहा—उत्तिष्ठतणाए जाव पुं डरीए य, पठमस्स णं भंते ! अरुणपणास्स के अट्ठे पणत्ते ?

भगवन् ! यदि श्रमण यावत् सिद्धिस्थान को प्राप्त भगवान् महावीर ने ज्ञात-श्रुतस्कन्ध के उन्नीस अध्ययन कहे हैं, यथा—उत्तिष्ठज्ञात यावत् पुण्डरीक, तो भगवन् ! प्रथम अध्ययन का क्या धर्म कहा है ?

१३—एवं सन्तु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेय जंबूदीवे, सारहे वासे, दाहिणकुमारहे, रायगिहे नामं नगरे होरथा, वण्णघो<sup>३</sup> । गुणसीसे वेइए, वण्णघो<sup>३</sup> ।

हे जम्बू ! उस काल और उस समय में, इसी जम्बूद्वीप में, भारतवर्ष में, दक्षिणार्ध भारत में राजगृह नामक नगर था । उसका वर्णन उल्लेख सूत्र में वर्णित चम्पा नगरी के समान जान लेना चाहिए । राजगृह के ईशान कोण में मुगुधील नामक उद्यान था । उसका वर्णन भी श्रौतपातक सूत्र से जान लेना चाहिए ।

१४—तएय णं रायगिहे नगरे सेगिए लामं राया होरथा महया हिमवंतं वण्णघो<sup>४</sup> । तस्स णं सेगियस्स रण्णे नंदा नामं वेवो होरथा सुकुमालवाणिपाया वण्णघो<sup>४</sup> ।

उस राजगृह नगर में श्रेणिक नामक राजा था । वह महाहिमवत पर्वत के समान था, इत्यादि वर्णन श्रौतपातक सूत्र के अनुसार समझ लेना चाहिए । उस श्रेणिक राजा की नन्दा नामक देवी थी । वह मुकुमार हाथों-पैरों वाली थी इत्यादि वर्णन भी श्रौतपातक सूत्र से जान लेना चाहिए ।

१—मूत्र ८

१. मूत्र ८, २. धीर सूत्र १, ३. धीर. मूत्र २, ४. धीप सूत्र ६, ५. धीप. सूत्र ७

### रानी का स्वयंवर

पुष्करतावर्तजातमयसि गुत्त—आगरा ओहीरमाणी ओहीरमाणी दमं, महं, सत्तुसैहं  
रवपवृत्तमिहं, नष्टपत्ति सोमं सोमावर्तमीवायं जंभायमाणी मुहमदगयं गयं पातित्ता नं पविष्टा ।

[illegible]

जलने से उठाने हुई मयमयानी गंध से रमणीय था । उसमें उत्तम गुणों की गंध भी विद्यमान थी । सुगंध की अधिकता के कारण वह गंध-द्रव्य भी हो बट्टी जैसा प्रतीत होता था । मणियों की किरणों के प्रकाश से वहाँ का अंधकार गायब हो गया था । अधिक क्या कहा जाय ? वह अपनी चमक-दमक से तथा गुणों से उत्तम देवविमान की भी पराजित करता था ।

इस प्रकार के उत्तम भवन में एक शय्या बिछी थी । उस पर शरीर-प्रमाण उपधान बिछा था । उसमें दोनों धोर—गिरहाने धोर पाँयते की जगह तकिए लगे थे । वह दोनों तरफ ऊँची धोर मयमय भुकी हुई थी—गंभीर थी । जैसे गंगा के किनारे की बानू में पाँव रखने में पाँव धँस जाता है, उसी प्रकार उसमें धँस जाता था । कसौदा काड़े हुए शीम दुबूल का चहर बिछा हुआ था । वह मास्तर मलक, नवत, कुमस्त, निम्ब धोर सिंहकेसर नामक धास्तरणों से भाष्पादित था । जब उसका से नहीं किया जाता था तब उसपर सुन्दर बना हुआ रजतनाल पड़ा रहता था—उस पर मसहरो लगे हुए थी, वह प्रति रमणीय थी । उसका स्पर्श धाजिनक (चर्म का वस्त्र) रई, बूर नामक वनस्पति धोर मसहरो के समान नरम था ।

ऐसी सुन्दर शय्या पर मध्य रात्रि के समय धारिणी रात्री, जब न गहरी नीद में थी भी जाग ही रही थी, बल्कि बार-बार हल्की-भी नीद ले रही थी—ऊँच रही थी, तब उसने एक महान्, सहाय ऊँचा, रजतबूट-बादी के निस्तर के सहित श्वेत, सौम्य, सौम्याकृति, लीला करते हुए, जो सेते हुए हाथों को धाकानतल से अपने मुख में प्रवेग करते देखा । देखकर वह जाग गई ।

### रचनानिवेदन

१८—तए नं सा धारिणी वैशो धयमेवाह्वं उरालं, कल्लालं सिधं धनं मंगलं सस्ति । महानुमिणं वातिसा नं पडिबुद्धा समानी हट्टवुद्धा बित्तमानंदिवा पीडमणा परमसोमणसि । हरितवत्तवित्तपमानहियमा धाराहयकलंबपुष्पकपणिवि सपूतसिदरोमकुवा तं सुमिणं ओमिण्ह ओमिण्हइत्ता सगणिज्जाओ उट्ठंति, उट्ठंइत्ता पायपीडाओ पच्चोरहइ, पच्चोरहइत्ता धनुविममवत्त संभंताए धविलंविमाए रायहंतसरितीए गईए जेणामेव से सेणिए राया तेणामेव उवागच्छइ । उ गणिज्जसा सेणियं रायं ताहि इट्ठाहि कंताहि पियाहि मधुन्नाहि मणामाहि उरालाहि कल्लालं सिवाहि धन्नाहि मंगल्लाहि सस्सरियाहि, हिययमणिज्जाहि, हिययपट्ठापणिज्जाहि मिय-मय रिमिय-गंभीर-सस्सरितीयाहि निराहि संमवमाणी संलवमाणी पडिबोहेइ । पडिबोहेत्ता सेणिएणं र धम्ममग्गनाया समानी णाणामणि-कणग-रयण-मत्तिविसंति भट्ठासणंति निसीयइ । निसीइत्ता धासा वोसरया सुहासणवरगधा करयनेपरिगगहिधं सिरसावत्तं मयए धंअल्लि कट्ठु, सेणियं रायं एवं वयास

तत्पश्चात् वह धारिणी देवी इस प्रकार के इस स्वरूप वाले, उदार प्रधान, कल्याणकारी शिव-उपद्रव का नाश करने वाले, धन्य-धन प्राप्ति कराने वाले, भागलिक-पाप विनाशक एवं सुशोभित महास्वप्न को देखकर जागी । उसे हृष्यं धीर मतोष हुआ । चित्त में आनन्द हुआ । मन में प्रीति उत्पन्न हुई । परम प्रसन्नता हुई । हृष्यं के यशोगुण होकर उसका हृदय विकसित हो गया । मेघ की धारा का प्रापात पाए बद्ध के पूस के समान उसे रोमांच हो आया । उसने स्वप्न का विचार किया । विचार करके शय्या से उठी धीर उठकर पादपीठ में नीचे उतरी । नीचे उतर मानसिक त्वरा रहित, शारीरिक चपलता से रहित, म्थलना में रहित, बिलम्ब-रहित राजहस जैसी गति से उ



सिधे धन्ये मंगल्ये सत्सिरीए णं तुमे देवानुप्पिए ! सुमिणे दिट्ठे, धारोग्ग-तुट्ठि-दीहाउय-कल्लाण-मंगल-कारए णं तुमे देवी सुमिणे दिट्ठे । अत्थसामो ते देवानुप्पिए, पुत्तलामो ते देवानुप्पिए रज्जलामो भोगसोवत्तलामो ते देवानुप्पिए ।

एवं खलु तुमं देवानुप्पिए नवहं मात्ताणं बहुपडिपुन्नाणं अट्ठठमाणं राहुंदिमाणं विइवकं-त्ताणं अहं कुलकेडं कुलदोषं कुलपव्वयं कुलवडिसयं कुलतिलकं कुलकित्तिकरं, कुलवित्तिकरं कुलणदिकरं कुलजसकरं कुलाधारं कुलपायवं कुलविघट्टणकरं सुकुमालपाणिपायं जाव<sup>१</sup> दारयं पयाहिंसि ।

‘देवानुप्रिये ! तुमने उदार-प्रधान स्वप्न देखा है, देवानुप्रिये ! तुमने कल्याणकारी स्वप्न देखा है, देवानुप्रिये ! तुमने शिव-उपद्रव विनाशक, धन्य-धन की प्राप्ति कराने वाला, मंगलमय—सुख-कारी और सधीक—सुशोभन स्वप्न देखा है । देवी ! धारोग्य, तुष्टि, दीर्घायु, कल्याण और मंगल करने वाला स्वप्न तुमने देखा है । देवानुप्रिये ! इस स्वप्न को देखने से तुम्हें धर्म का लाभ होगा, देवानुप्रिये ! तुम्हें पुत्र का लाभ होगा, देवानुप्रिये ! तुम्हें राज्य का लाभ होगा, भोग का तथा सुख का लाभ होगा ।

निश्चय ही देवानुप्रिये ! तुम पूरे नव मास और साडे मास रात्रि-दिन व्यतीत होने पर हमारे कुल की ध्वजा के समान, कुल के लिए दीपक के समान, कुल में पर्वत के समान किसी से पराभूत न होने वाला, कुल का भूषण, कुल का तिलक, कुल की कीर्ति बढ़ाने वाला, कुल की आजीविका बढ़ाने वाला, कुल को आनन्द प्रदान करने वाला, कुल का यश बढ़ाने वाला, कुल का आधार, कुल में वृक्ष के समान आश्रयणीय, और कुल की वृद्धि करने वाला तथा सुकोमल हाथ-पंर वाला पुत्र (यावत्) प्रसव करोगी ।’

२२—सं वि ष णं दारए उम्भुवकबालभावे विन्नायपरिणयमेत्ते जोध्वणगमणुपसे सूरै धीरे विवकंते विरियग्नविपुलबलवाहणे रज्जवती राया भविस्सइ । तं उराले णं तुमे देवीए सुमिणे दिट्ठे, जाव<sup>१</sup> धारोग्ग-तुट्ठि-दीहाउकल्लाणकारए णं तुमे देवी ! सुमिणे दिट्ठे त्ति कट्ठु भुग्गो भुग्गो अणुव्वहेइ ।

‘वह बालक बाल्यावस्था को पार करके, कला आदि के ज्ञान में परिपक्व होकर, जीवन को प्राप्त होकर, धूर-धीर और पराक्रमी होगा । वह विस्तीर्ण और विपुल सेना तथा वाहनों का स्वामी होगा । राज्य का अधिपति राजा होगा । अनएव, देवि ! तुमने धारोग्यकारी तुष्टिकारी, दीर्घायुकारी और कल्याणकारी स्वप्न देखा है ।’ इस प्रकार कहकर राजा बार-बार उसकी प्रशंसा करने लगा ।

२३—तए णं सा धारिणी देवी सेणिएणं रज्जा एवं वृत्ता समाणी हट्ठुदुट्ठ जाव<sup>१</sup> हियया करदसपरिगहियं जाव सिरसावत्तं भत्यए अज्जलि कट्ठु एवं ययासी ।

तत्पश्चान् वह धारिणी देवी श्रेष्ठिक राजा के इस प्रकार कहने पर हर्षित एवं सन्तुष्ट हुई । उसका हृदय आनन्दित हो गया । वह—‘दोनों हाथ जोड़कर आवर्त्त करके और मस्तक पर अजलि करके इस प्रकार बोली—

२४—एवमेयं देवानुप्पिया ! तहमेयं अवित्तहमेयं असविट्ठमेयं इच्छियमेयं देवानुप्पिया ! पडिच्छियमेयं इच्छियपडिच्छियमेयं, सत्त्वे णं एसमट्ठे जं णं तुमे वयह त्ति कट्ठु तं सुमिणं सम्मं



पडिच्छद्द। पडिच्छिता सेणिएणं रण्णा अन्नमणुण्णाया समानी जाणामणिकणमरयणमत्तिचित्तामो  
महासणाओ अम्भुट्ठेह, अम्भुट्ठेसा जेणेव सए सयणिज्जे तेणेव उवागच्छद्द, उवागच्छिता सयंनि  
सयणिज्जंति निसोघद्द। निसोइत्ता एयं ययासी—

देवानुप्रिय ! आपने जो कहा है सो ऐसा ही है। आपका कथन सत्य है, असत्य नहीं है।  
यह कथन सत्य रहित है। देवानुप्रिय ! आपका कथन मुझे इष्ट है, अत्यन्त इष्ट है, प्रीति  
तथा अत्यन्त इष्ट है। आपने मुझसे जो कहा है सो यह अर्थ सत्य है। इस प्रकार कहकर धारिणी  
देवी स्वप्न को भलीभाँति अगीकार करती है। अगीकार करके राजा श्रेणिक की आज्ञा पार  
माना प्रकार के मणि, सुवर्ण और रत्नों की रचना से विचित्र भद्रासन से उठती है। उठकर जिस  
जगह अनन्त शय्या थी, वही जाती है। आकर शय्या पर बैठती है और बैठकर इस प्रकार (मन  
ही मन) कहती है—सोचती है—

२५—मा मे से उत्तमे पहाणे मंगल्ले सुमिणे अन्नोहि पावसुमिणेहि पडिहम्मिहि ति कट्ठ देव-  
गुरुजनसंब्धाहि पत्तथाहि धम्मियाहि कहाहि सुमिणजानरियं पडिजागरमाणो विहरइ।

'मेरा यह स्वरूप मे उत्तम और फल से प्रधान तथा मंगलमय स्वप्न, अन्य अशुभ स्वप्नो से  
गष्ट न हो जाय' ऐसा सोचकर धारिणी देवी, देव और गुरुजन संवधी प्रशस्त धार्मिक कथामें द्वारा  
अपने शुभ स्वप्न की रक्षा करने के लिए जागरण करती हुई विचरने लगी।

रत्नवाटियों का भाट्टान

२६—तए णं सेणिए राया पच्चत्तकालत्तमयंसि कोट्टुविपपुरिसि सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं  
वयामी—तिपामेव भो देवाणुप्रिया ! बाहिरियं उवट्ठाणत्तासं अज्ज सधित्तं परमरम्मं गंधोदगत्ति-  
गुह्य-गंमज्जिघोचमित्तं पंधवन्न-सरत्त-गुरमि-मुक्कपुक्कपुंजोवयारकत्तियं कालागुर-पवरकुंदुरक्क-गुर-  
वक्क-पुव-इअन्नमयमयंतं पुद्दधुयामिरामं सुगंधवरगंधियं गंधयट्ठिभूयं करेह बारवेह य; करित्ता व  
बारवित्ता य एयमात्तियं पच्चविण्हइ।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा ने प्रभात काल के समय कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुला  
कर इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रियो ! आज बाहर की उपस्थान शाला (सभाभवन) को शीघ्र ही  
विलेप रूप से परम रमणीय, गंधोदक से मिश्रित, गाफ-मुखरी, सोपी हुई, पाँच बलों के सरस सुगंधित  
एव बिखरे हुए पत्तों के समूह रूप उपचार से युक्त, कालागुरु, कुंदुरक्क, गुरुक्क (सोभान) तथा  
भूप के जलाने से प्रवृत्ती हुई, गंध से व्याप्त होने के कारण मनोहर, अष्ट सुगंध के पूर्ण से सुगंधित  
तथा सुगंध की गुटिका (बट्टी) के समान करो। मेरी यह आज्ञा आपिसा सोपो अर्थात् आज्ञानुसार कार्य  
हो जाने की सूचना दो !

विवेचन—प्राचीन काय मे सेवकों की सम्राट में कितना सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त था यह बात  
जैन ग्रन्थों में अभी भाँति बिदिन होती है। उन्हें 'कौटुम्बिक पुरुष' अर्थात् परिवार का सदस्य समझा  
जाता था और महार्थहम मध्यमभाट्ट श्रेणिक जैसे पुरुष भी उन्हें 'देवानुप्रिय' कहकर संबोधन करते  
थे। दर पदान देने योग्य है।

२७—तए णं ते कोट्टुविपपुरिसा सेणिएणं रण्णा एवं युत्ता समाना हट्ठुट्ठा आव-

ववववववववव ।

तत्पश्चात् ये कौटुम्बिक पुरुष श्रेणिक राजा द्वारा दम प्रकार कहे जाने पर हर्षित हुए । उन्होंने भ्रातानुमार कार्य करके भ्राता यापिम सौपी ।

२८—तए नं सेणिए राया कल्लं पाउप्पभायाए रयणोए कुल्लुप्पसकमतकोममुम्मिलियंमि, यहं पंडरे पभाए, रत्ताभोगपपास-किमुय-मुयमुह-मुंजडराग-बंघुजीवग-वारावयवत्तण-नयण-परहुय-सुरत्तभोगण-जासुमिणकुमुय-जत्तियजत्तण-तवणिज्जकलत्त-हगुसयनिपर-ह्वाइरेगरेहत्तसत्तिरोए दिवा-गरे यहकमेण उडिए, तस्म दिणकरपरंपरावयारपरडम्मि संघवारे, बालातवकुं कुमेणं लइए थ्व जोय-सोए, सोमणवित्तप्राणप्रास-विगसंत-वित्तवदंसियम्मि सोए, कयसागरसंडवोहए उडिठपम्मि सूरै तहस्स-रत्तिम्मि दिणपरे तेयसा जत्तंते सयणिज्जाधो उट्ठेत्ति ।

तत्पश्चात् स्वप्न यानो रात्रि के बाद दूसरे दिन रात्रि प्रकाशमान प्रभात रूप हुई । प्रफुल्लित कमलों के पत्ते विकसित हुए, कामे मृग के नेत्र निद्रारहित होने से विकस्वर हुए । फिर वह प्रभात पाण्डुर-स्वत वर्ण वाला हुआ । साज धनोक की कान्ति, पद्मान के पुष्प, लोते की चोंच, चिरमी के अर्धभाग, दुपहरी के पुष्प, कबूतर के पैर घोर नेत्र, कोकिला के नेत्र, जासोद के फूल, जाग्रत्यमान अग्नि, स्वर्णकलश तथा हिंगूल के समूह की लालिमा में भी अधिक लालिमा से जिमकी श्री सुशोभित हो रही है, ऐसा मूर्त्य प्रमत्तः उदित हुआ । मूर्त्य की किरणों का समूह नीचे उतरकर अंधकार का विनाश करने लगा । बाल—मूर्त्य रूपी कुंकुम से मानां जीवलोक व्याप्त हो गया । नेत्रों के विषय का प्रचार होने में विकसित होने वाला लोक स्पष्ट रूप में दिखाई देने लगा । सरोवरों में स्थित कमलों के घन की विकसित करने वाला, तथा महत्त्र किरणों वाला दियाकर तेज से जाग्रत्यमान हो गया । ऐसा होने पर राजा श्रेणिक दाय्या से उठा ।

विवेचन—जब मूर्त्य उडोयमान होता है और जब उदित हो जाता है तब उसके प्रकाश के स्वरूप में बिम्ब-किम प्रकार का परिवर्तन होता है—उसके प्रकाश के रंगों में किम भ्रम से उलट-फेर होता है, प्रस्तुत मूर्त्य में उसका चित्र उपस्थित किया गया है । नैयगिक वर्णन का यह उल्लेख उदाहरण है ।

२९—उडिठत्ता जेणेष भट्टणत्तात्ता तेजेव उवायवट्ठइ, उवायवट्ठत्ता भट्टणत्तालं अणुपवित्तइ, अणुपवित्तत्ता अणोगवायाम-जोग-वगण-वामट्टण-मत्तसुट्टकरणेहि संते परिस्सन्ते, सयपाणेहि सहस्सवा-णेहि मुणंघवरेत्तलमाइएहि षोणणिज्जेहि वीयणिज्जेहि व्थणणिज्जेहि मवणिज्जेहि विहणिज्जेहि, सविव-दियपायवत्तायणिज्जेहि अमंगएहि अमंगिए समाणे, तेत्तवम्मंमि पडिणुणवाणिपाय-सुकुमासकोमल-सत्तेहि पुरित्तेहि छेएहि वत्तेहि पट्ठेहि कुत्तत्तेहि मेहावीहि निउत्तेहि विउणत्तिवोवणएहि जियपरिस्स-त्तेहि अमंगण-परिमट्टणत्तट्टण-करणगुणनिम्माएहि अट्ठिठसुहाए भंससुहाए तपासुहाए रोमसुहाए चउत्तिवहाए संत्राहणाए संवाहिए समाणे अवगयपरिस्समे नारेदे अट्टणत्तात्ताधो पडिणिक्कमद ।

दाय्या से उठकर राजा श्रेणिक जहाँ व्यायामशाला थी, वही आता है । आकर व्यायाम-शाला में प्रवेश करता है । प्रवेश करके अनेक प्रकार के व्यायाम, योग्य (भारी पदार्थों को उठाना), चण्ण (कूदना), ध्यामदन (भुजा आदि अंगों को परस्पर मरोड़ना), कुप्पली तथा करण (बाहुओं को विशेष प्रकार से मोड़ना), रूप कमरत से श्रेणिक राजा ने थम किया और मूव थम किया, अर्थात् गामान्यतः शरीर का और विशेषतः प्रत्येक अङ्गोपाङ्ग का व्यायाम किया । तत्पश्चात् दातपाक तथा महत्तपाक आदि थंठ मुगधित तेल आदि अभ्यगतां से, जो प्रीति उत्पन्न करने वाले अर्थात्



बहुमूल्य धीर श्रेष्ठ वस्त्र धारण किया । सरम धीर मुगधिन गोसीर्य बन्दन में धरीर पर विलेपन किया । मुषि पुष्पों की भासा पहनी । केसर धादि वा लेपन किया । मणियों के धीर स्वर्ण के भलंकार धारण किये । घठारह लडो के हार, नौ लडो के धर्षहार, तीन लडो के छोटे हार तथा सन्धे सटकने हुए कटिभूष से धरीर की सुन्दर शोभा बढ़ाई । कठ में कंठा पहना । उगलियो में अंगुठियाँ धारण की । सुन्दर थंग पर अन्यान्य सुन्दर आभरण धारण किये । अनेक मणियों के बने कटक धीर वृष्टिक नामक आभूषणों से उसके हाथ स्तम्भिन से प्रनीत होने लगे । अतिशय रूप के कारण राजा अत्यन्त मुनोमित हो उठा । कुंडलो के कारण उसका मुगमडल उद्दीप्त हो गया । मुकुट में मस्तक प्रकाशित होने लगा । वक्ष-स्थल हार में आच्छादित होने के कारण अतिशय प्रीति उत्पन्न करने लगा । सन्धे सटकते हुए दुपट्टे में उसने सुन्दर उत्तरागम किया । मुद्रिकाओं से उसकी उंगलियाँ पीली दीगने लगी । नाना भाँति की मणियाँ, मुवर्ण धीर रत्नों से निर्मल, महामूल्यवान्, निपुण कलाकारों द्वारा निर्मित, चमचमाते हुए, मुरबित, भली-भाँति मिली हुई सन्धियों वाले, विनिष्ट प्रकार के, मनोहर, सुन्दर आकार वाले धीर प्रशस्त वीर-वलय धारण किए । अधिक क्या कहा जाय ? मुकुट धादि आभूषणों से भल्लूकन धीर वस्त्रों से निभूषित राजा श्रेष्ठिक कल्पवृक्ष के समान दिग्याई देने लगा । कोरट वृक्ष के पुष्पों की भासा बासा छत्र उसके मस्तक पर धारण किया गया । आजू-बाजू धार चामरों से उसका धरीर बीजा जाने लगा । राजा पर दृष्टि पड़ते ही लोग 'जय-जय' का मांगनिक धीप करने लगे । अनेक गणनायक (प्रजा में बडे), दंडनायक (कटक के अधिपति), राजा (मार्दविर गजा), ईश्वर (युवराज भयवा ऐश्वर्यशाली), तलवर (राजा द्वारा प्रदत्त स्वर्ण के पट्टे वाले), मांडलिक (कतिपय धायो के अधिपति), कौटुम्बिक (कतिपय कुटुम्बों के स्वामी), मन्त्री, महामन्त्री, ज्योतिषी, द्वारपाल, अमात्य, चेट (पैरो में पाम रहने वाले मेवक) पीठमई (सभा में समीप रहने वाले मेवक मित्र), नागरिक लोग, व्यापारी, मेठ, सेनापति, सार्यवाह, दून धीर मन्धिपाल—इन सब से घिरा हुआ, यहाँ के समूह में देदीप्यमान तथा नक्षत्रों धीर ताराओं के बीच चन्द्रमा के समान प्रियदर्शन राजा श्रेष्ठिक मज्जनगृह से इस प्रकार निकला जैसे उज्ज्वल महामेघों में से चन्द्रमा निकला ही । मज्जनगृह में निकलकर जहाँ बाह्य उपस्थानशाला (सभा) थी, वही प्राया धीर पूर्व दिशा की धीर मुख करके श्रेष्ठ सिंहासन पर आसीन हुआ ।

३१—तए णं से तेणिए रागा अण्णो भदूरसामेत्ते उत्तरपुरिद्धिमे विसिमागे अट्ठ महासणाईं सेयवत्थपञ्चत्थुपाईं सिद्धस्यमंगलोवयारकयसंतिकम्माईं रथावेइ । रथावेत्ता जाणांमणिरयणमंडियं अहियवेत्थणिज्जरत्थं महगघवरपट्टणुगयं सहवहुमत्तिसयचित्तट्ठाणं ईहामिय-उत्तम-तुरय-गर-भगर-विहग-वालग-किन्नर-वड-सरम-भमर-कुंजर-वणसय-पडमलय-अत्तिचित्तं मुखचियवरकणापवर-नेरंत-वेत्तमागं अमिमतियं जवणियं धंछावेइ, धंछावेत्ता अचछर-मउअमसूरग-उत्थइयं थवलवत्थ-पञ्चत्थुपं विसिट्ठं अंगसुहकासयं सुमउयं धारिणीए देवीए महासणं रथावेइ । रथावेत्ता कोट्टुं वियपुरिसे सदावेइ । सदावेत्ता एवं वयासी-खिणामेव यो वेवाणुप्पिया । अट्ठंगमहानिमित्तमुत्तत्थपाठए विविहसत्थ-कुसले सुविशपाठए सदावेह, सदावेत्ता एयमाणत्तियं खिणामेव पच्चप्पिएह ।

३१—तत्परवात् श्रेष्ठिक राजा अपने समीप ईशान कोण में श्वेत वस्त्र से आच्छादित तथा सरमों के मांगलिक उपचार से जिनमें पान्तिकर्म किया गया है, ऐसे घाठ भद्रासन रखवाता है । रखवा करके नाना मणियों धीर रत्नों से मंडित, अतिशय दर्शनीय, बहुमूल्य धीर श्रेष्ठ नगर में बनी एवं सैकड़ों प्रकार की वाले चित्रों का स्थानभूत, ईहायुग (जेडिया),

पक्षी, सर्प, किन्नर, रुद्र जाति के मृग, घण्टापत्र, चमरी गाय, हाथी, वनलता और गणनता प्रादि चित्रों से युक्त, श्रेष्ठ स्वर्ण के तारों में भरे हुए गुणोमित किनारों वाली जवनिका (पर्दा) गम भीतरी भाग में बंधवाई । जवनिका बंधवाकर उसके भीतरी भाग में धारिणी देवी के लिए भद्रामन रखवाया । वह भद्रासन आस्तरक (गोली) और कोमल तकिया में ढका था । श्वेत : उग पर विद्या हुआ था । सुन्दर था । स्पर्श से अंगों को मुग उत्पन्न करने वाला था और प्रति मृदु था । इस प्रकार आसन बिछवाकर राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलवाया । बुलवाकर इस प्र कहा—देवानुप्रियो । घण्टाग महानिमित्त-ज्योतिष के मूत्र और घर्ष के पाठक तथा विविध शास्त्र कुशल स्वप्नपाठको (स्वप्न शास्त्र के पंडितों) को धीघ्र ही बुलाओ, और बुला कर नीघ्र ही इस आज्ञा को धारिण लीटाओ ।

३२—तए णं ते कौटुम्बियपुरिसा सेजिएणं रग्ना एयं बुत्ता समाणा हट्ठ जाय<sup>१</sup> हियया करयलपरिगहियं वसनहं सिरसायत्तं मरयए धंजलि कट्ठु एय देवो तह ति आणाए विणएणं वपणं पडिमुणेंति, पडिमुणित्ता सेजियस्स रण्णो अंतियाओ पडिनिबलमंति । पडिनिबलमित्ता रायगिहस्स नगरस्स मग्गमग्गभेणं जेणव सुमिणपाठगिहाणि तेणव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता सुमिणपाठए सहावेंति ।

तत्पश्चात् वे कौटुम्बिक पुरुष श्रेणिक राजा द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर हर्षित यावत् आनन्दित—हृदय हुए । दोनों हाथ जोड़कर दसों नलों की इकट्ठा करके मस्तक पर घुमा कर अंजलि जोड़ कर 'हे देव ! ऐसा ही हो' इस प्रकार कह कर विनय के साथ आज्ञा के वचनों को स्वीकार करने हैं और स्वीकार करके श्रेणिक राजा के पास से निकलते हैं । निकल कर राजगृह के बीचों बीच होकर जहाँ स्वप्नपाठकों के घर थे, वहाँ पहुँचते हैं और पहुँच कर स्वप्न पाठकों को बुलाते हैं ।

३३—तए णं ते सुमिणपाठगा सेजियस्स रग्गो कौटुम्बियपुरिसेहि सहाविया समाणा हट्ठबुद्ध जाय<sup>१</sup> हियया गहाया कयलिकम्मा जाव कयकोउयमंगलपायच्छित्ता अप्प-महाग्गामरणालंकियसरोरा हरियातिप-गिट्ठाययकयमुट्ठाणा सएहि सएहि गिहेहितो पडिनिबलमंति, पडिनिबलमित्ता रायगिहस्स मग्गमग्गभेणं जेणव तेजियस्स रग्गो भयणवडैसगहुवारेणं तेणव उवागच्छंति । उवागच्छित्ता एगयओ मित्ति । मित्तिता सेजियस्स रग्गो भयणवडैसगहुवारेणं अणपविंसंति । अणपवित्तिता जेणव बाहि-रिया उवट्ठानताला जेणव सेजिये राया तेणव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता सेजियं रायं जएणं विजएणं सहावेंति । सेजिएणं रग्गा अविषय-अंदिप-पुहय-मानिय-सवकारिय-मग्गानिया समाणा पत्तेयं पत्तेयं पुग्गमत्तेयु महात्तेयु नितीयंति ।

तत्पश्चात् वे स्वप्नपाठक श्रेणिक राजा के कौटुम्बिक पुरुषों द्वारा बुलाये जाने पर हट्ट-मुट्ट यावत् आनन्दित-हृदय हुए । उन्होंने स्नान किया, कुल देवता का पूजन किया, यावत् कौटुक (मगी तिलक प्रादि) और मंगल प्रावर्धित (गरगों, दही पावन आदि का प्रयोग) किया । अन्य हिन्दु बह्मूच्य सामग्रियों में नगौर की घलट्टन किया, मस्तक पर दूर्वा तथा सारंगी मगल निमित्त धारण किए । फिर घरने-घरने घरों में निकले । निकल कर राजगृह के बीचोंबीच होकर श्रेणिक राजा के मुख्य मठ के द्वार पर आये । आकर सब एक साथ मिले । एक साथ मिलकर श्रेणिक

राजा के मुख्य महल के द्वार के भीतर प्रवेश किया । प्रवेश करके जहाँ बाहरी उपस्थानगाला थी और जहाँ श्रेणिक राजा था, वहाँ आये । आकर श्रेणिक राजा को जय और विजय शब्दों से वधाया । श्रेणिक राजा ने चन्दनादि में उनकी अर्चना की, गुणों की प्रशंसा करके वन्दन किया, पुष्पों द्वारा पूजा की, आदरपूर्ण दृष्टि से देख कर एवं नमस्कार करके मान किया, फल—वस्त्र आदि देकर सत्कार किया और अनेक प्रकार की भक्ति करके सम्मान किया । फिर वे स्वप्नपाठक पहले से विद्याएँ हुए भद्रासनों पर अलग-अलग बैठे ।

३४—तए ए सेणिए राया जवणियंतरियं धारिणि देवि ठवेह, ठवेत्ता पुष्प-फल-पट्टिपुण्हस्ये परेणं विणएणं ते सुमिणपाठए एव वयासो—एवं ससु देवानुप्पिया ! धारिणी देवी अञ्ज तंति तारि-सगति सयणिज्जंति जाव<sup>१</sup> महामुमिणं पासिता णं पडिबुद्धा । तं एयस्स णं देवानुप्पिया ! उरालस्स जाव<sup>२</sup> सस्तिरोयस्स महामुमिणस्स के मग्गे कल्लाने कलवित्तिसिसेसे भविससइ ?

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा ने जवनिका के पीछे धारिणी देवी को बिठलाया । फिर हाथों में पुष्प और फल लेकर अत्यन्त विनय के साथ उन स्वप्नपाठकों से इस प्रकार कहा—देवानुप्पियो ! आज उस प्रकार की उस (पूर्ववर्णित) दाय्या पर सोई हुई धारिणी देवी यावत् महास्वप्न देखकर जागी हैं । तो देवानुप्पियो ! इस उदार यावत् सद्योक्त महास्वप्न का क्या कल्याणकारी फल विशेष होगा ?

स्वप्नपाठकों द्वारा कलादेश

३५—तए णं ते सुमिणपाठगा सेणियस्स रण्णो अंतिए एयमदं सोच्चा निसम्म हदं जाव<sup>३</sup> हियया तं मुमिणं सम्मं ओणिहंति । ओणिहंता ईहं अणुपविसंति, अणुपवित्तिता अन्नमग्गेणं सद्धि संचालेति, संचालित्ता तस्स सुमिणस्स सट्ठठा गहियट्ठा पुच्छियट्ठा विणिच्छियट्ठा अभिगयट्ठा सेणियस्स रण्णो पुरो सो सुमिणस्सयाई उच्चारमाणो उच्चारमाणो एवं वयासो—

तत्पश्चात् वे स्वप्नपाठक श्रेणिक राजा का यह कथन सुनकर और हृदय में धारण करके हृष्ट, तुष्ट, आनन्दितहृदय हुए । उन्होंने उस स्वप्न का सम्यक् प्रकार से अवग्रहण किया । अवग्रहण करके ईहा (विचारणा) में प्रवेश किया; प्रवेश करके परस्पर एक-दूसरे के साथ विचार-विमर्श किया । विचारविमर्श करके स्वप्न का अपने आपसे अर्थ समझा, दूसरों का अभिप्राय जानकर विशेष अर्थ समझा, आपस में उस अर्थ की वृद्धताई की, अर्थ का निश्चय किया, और फिर तथ्य अर्थ का (अन्तिम रूप से) निश्चय किया । वे स्वप्नपाठक श्रेणिक राजा के माथे में स्वप्नशास्त्री का बार-बार उच्चारण करते हुए इस प्रकार बोले—

३६—एवं ससु अहं सामी ! सुमिणस्सयंसि बायालीसं सुमिणा, तीसं महामुमिणा यावत्तारि सयवमुमिणा विट्ठा । तय णं सामी ! अरहंतमायरो वा, चक्कवट्टिमायरो वा अरहंतसि वा चक्कवट्टिट्ठसि वा गम्भं वक्कममाणसि एएसि तोसाए महामुमिणाणं इमे जोइस्स महामुमिणे पासित्ता णं पडिबुग्गन्तिः—

तंजहा मय-उसम-सीह-अमितेय—दाम-सति-दिणयरं अयं कुं भं ।

पउमसर-सायर-विमाण—मवण-ययणुच्चय-सिहि च ॥

‘हे स्वामिन् ! हमारे स्वप्नशास्त्र में यथालीम स्वप्न श्रीर नीम महास्वप्न-कुल मिलाकर ७२ स्वप्न हमने देखे हैं । अग्रिहत की माता श्रीर चत्रवर्ती की माता, जब अग्रिहत श्रीर चत्रवर्ती गर्भ में आते है तो तीम महास्वप्नो में मे चौदह महास्वप्न देगकर जागती हैं । वे इस प्रकार हैं—

(१) हाथी (२) वृषभ (३) सिंह (४) अभिषेक (५) पुष्पो की माला (६) चन्द्र (७) मृग (८) ध्वजा (९) पूर्ण कुम्भ (१०) पद्ममुक्त मरोवर (११) धीरमागर (१२) विमान अथवा भवन (१३) रत्नों की राशि श्रीर (१४) अग्नि ।

विशेष-तीर्थकर प्राय. देवलोक से ज्वन करके मनुष्य लोक में अवतरित होते हैं । कोई-कोई कभी रत्नप्रभा पृथ्वी से निकल कर भी जन्म लेते हैं । स्वर्ग में आकर जन्म लेने वाले तीर्थकर की माता को स्वप्न में विमान दिखाई देता है श्रीर रत्नप्रभा पृथ्वी से आकर जन्मने वाले तीर्थकर की माता भवन देखती है । इसी कारण बारहवें स्वप्न में ‘विमान अथवा भवन’ ऐसा विकल्प बनाया गया है ।

३७—वामुदेवमायरो वा वामुदेवसि गर्भं वषकममाणंसि एएसि चोदसन्हं महामुमिणां अन्नतरे सत्त महामुमिणे पासित्ता णं पडिबुज्झन्ति । बलदेवमायरो वा बलदेवसि गर्भं वषकममाणंसि एएसि चोदसन्हं महामुमिणां अण्णयरे चत्तारि महामुमिणे पासित्ता णं पडिबुज्झन्ति । मंडलियमायरो वा मंडलियंसि गर्भं वषकममाणंसि एएसि चोदसन्हं महामुमिणां अन्नयरं एणं महामुमिणे पासित्ता णं पडिबुज्झन्ति ।

जब वामुदेव गर्भ में आते हैं तो वामुदेव की माता इन चौदह महास्वप्नों में से किन्हीं भी सात महास्वप्नों को देखकर जागृत होती हैं । जब बलदेव गर्भ में आते हैं, तो बलदेव की माता इन चौदह महास्वप्नों में से किन्हीं चार महास्वप्नों को देखकर जागृत होती है । जब मांडलिक राजा गर्भ में आता है तो मांडलिक राजा की माता इन चौदह महास्वप्नों में से कोई एक महास्वप्न देखकर जागृत होती है ।

३८—इमे षण्ण सामी ! धारिणीए देवीए एणे महामुमिणे विट्ठे । तं उराले णं सामी ! धारिणीए देवीए मुमिणे विट्ठे । जाव<sup>१</sup> आरोग्यनुट्ठिदीहाउकल्लाणमंगल्लकारए णं सामी ! धारिणीए देवीए मुमिणे विट्ठे । अण्णसामी सामी ! सोवससामी सामी ! ओणसामी सामी ! पुत्तसामी सामी ! एउत्तसामी सामी ! एवं ललु सामी ! धारिणी देवी नवण्हं भासाणं बट्टपडिबुग्गणं जाव बारण पदात्ति । से वि ष णं बारए उण्णुवकवालमावे विन्नावपरिणयमित्ते जोवणगमणुपत्ते मूरे चोरे विरट्ठे विविधविउत्तवस-वाहणे उउत्तवती राया मविस्सह, अण्णयारे वा माविपत्ता । तं उराले णं सामी ! धारिणीए देवीए मुमिणे विट्ठे जाव<sup>२</sup> आरोग्यनुट्ठि जाव विट्ठे त्ति कट्ट भुज्जो भुज्जो अण्णुवहेत्ति ।

स्वामिन् ! धारिणी देवी ने इन महास्वप्नों में से एक महास्वप्न देगा है ; अथवा स्वामिन् ! धारिणी देवी ने उदार स्वप्न देगा है. यावत् आरोग्य, सुष्टि, दीर्घायु, कल्याण श्रीर मंगलकारी स्वामिन् ! धारिणी देवी ने स्वप्न देगा है । स्वामिन् ! इसमें आपको धर्म लाभ होगा । स्वामिन् ! भोग का लाभ होगा, पुत्र का तथा राज्य का लाभ होगा । इस प्रकार स्वामिन् ! धारिणी देवी पूरे नौ माम धर्मान होने पर यावत् पुत्र को जन्म देगी । यह पुत्र बाल-यव को





४२—तए णं धारिणी देवी सेणियस्स रओ अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णितम्म हट्ठ जाव' हियमा तं सुमिणं सम्मं पडिच्छइ । पडिच्छिता जेणेव सए वासधरे तेणेव उवागच्छइ । उवागच्छिता ष्हाया कयवलिकम्मा जाव विपुलाहि जाव विहरइ ।

तत्पदवात् धारिणी देवी, श्रेणिक राजा का यह कथन गुनकर और हृदय में धारण करते हृष्ट-तुष्ट हुई, यावत् आनन्दितहृदय हुई । उसने उस स्वप्न को सम्यक् प्रकार से अंगीकार किया । अंगीकार करके अपने निवासगृह में आई । आकर स्नान करके तथा बलिकर्म प्रयात् कुलदेवता की पूजा करके यावत् विपुल भोग भोगती हुई विचरने लगी ।

धारिणी देवी का बोहद

४३—तए णं तीसे धारिणीए देवीए दोमु मासेसु वीइवकंतेसु तइए मासे वट्टमाणे तस्स गगनस दोहलकालसमयसि अयमेवाएये अकालमेहेसु दोहले पाउडमविश्या ।

तत्पदवात् दो मास व्यतीत हो जाने पर जब तीसरा मास चल रहा था तब उस गर्भ के दोहदकाल (दोहले का समय—गर्भिणी स्त्री की इच्छा विक्षेप का समय) के अवसर पर धारिणी देवी को इस प्रकार का अकाल-मेघ का दोहद उत्पन्न हुआ ।

४४—एवमाओ णं ताओ अम्मयाओ, सपुत्राओ णं ताओ अम्मयाओ, कयश्याओ णं ताओ, कयपुत्राओ, कयलवण्णाओ, कयविहवाओ, सुलढे तासि माणुस्सए जम्म-जीविमकले, जाओ नं मेहेसु अम्भुणएसु अम्भुजएसु अम्भुनएसु अम्भुट्टिएसु सगज्जिएसु सविज्जुएसु सकुत्तिएसु समएिएसु यंतपोत्तरप्पट्ट-अंक-संल-चंद-कुंद-सालि-विट्ठुरासि-समप्पमेसु

पिउर-हरियालमेय-चंपग—सण—कोरंट—सरिसप-पउमरय-समप्पमेसु  
सखारस-तरतरसकिमुय-जासुमण-रत्तबंधुजीवग-जातिहिगुलय-सरसकु'कुम-उरडम-ससरहिर-इंगोवगतमप्पमेसु,

वरहिण-नीलगुलिय-सुग-चास-विच्छ - मिगपत्त-सासग-नीलुप्पलनियर - नयसिरीस-कुसुम-नवस-हसतामप्पमेसु,

जअचंजण-मिगमेय-रिट्टग-ममरावलि-गवस-गुलिय-कज्जल-समप्पमेसु,

पुरंतविज्जुपसगज्जिएसु वायवस-विपुलसगगचयसपरिसविकरेसु निम्मलवर-वारिधारापगतिय-पचंडमारयसाम्माय-समीअरंत—उवर उवरितुरियवासं वयासिएसु, धारापहकरणिवायनिधायिमे-हणितसे हरियगणकंघए, वल्लिवियपायवगणेसु, वल्लिवियाणेसु पसरिएसु, उम्भएसु सोमगमुवागएसु, अगेसु नएसु वा, बेमारगिरिप्पवापतइ-कडगविमुक्केसु उज्जरेसु, सुरियपहाविपलोदकेणाउलं सखुमं कलं वरंतीसु गिरिनदीसु, सगज-वज्जुण-नीप-कुडय-कंदल-सिलियकसिएसु उववणेसु, मेह-रसिय-हट्ठनुट्ट-विट्टिट्ट-हरिसवसपमुक्कट्टकेजाराय मयतेसु वरहिणेसु, उउ-वस-मयजणिय-सरणसहयरि-पणरिघएसु, मवगरमिसितिय-कुडयकंदल-कलंबगंधणि मयतेसु उववणेसु, परहयदपरिमितसंकुलेसु उहायंत-रत्तइ-गोवपयोवपकारग्निलवितेसु भोगयतणमंडिएसु बहुरपयंपिएसु संपिडिय-वरिय-ममर-महकरिपहवर-वरितिय-मत्तएवप-कम्मा सवलोसमपुरगु'जंनहेसामएसु उववणेसु, परिसानियचंद-गूर-गहगन-पणट्टनवसत्त-तारगणरे इंडाउवट्टविघपट्टटि अंवरतसे उह्मोणवलागपंतिसोभंतमेहविदे, कारडग-

ਅਰਥਾਤ: ਅਸੀਂ ਪੁਰਸ਼ਾਂ ਦੇ ਸਾਥ ਵਾਤਸਲਿਯ ਰੱਖਾਂ, ਭਰਾਵਾਂ ਵਰਗੇ ਵਿਰਾਸਤੀ ਰੱਖੀਏ।  
ਸਾਥੀ, ਭੈਣ ਭੈਣ ?

[illegible][illegible][illegible]

मन के मन, मरम रस, वरु के वर, मान के मन, मान मन के प्रमुख  
मन मान के हृदय, मन न हृ, बरना धीर शरीर के मन धीर दृष्टि (मान  
के मान मन मान मान मान)

उत्तम अजन, काले भ्रमर या कोयला, रिष्टरत्न, भ्रमरसमूह, भ्रम के सींग, काली गोली और कज्जल के समान काले वर्ण वाले,

इस प्रकार पाँचों वर्णों वाले मेघ हो, विजली चमक रही हो, गर्जना की ध्वनि हो रही हो, विस्तीर्ण आकाश में वायु के कारण चपल बने हुए बादल इधर-उधर चल रहे हों, निर्मल श्रेष्ठ जल-धाराओं से गलित, प्रचंड वायु से आहत, पृथ्वीतल को भिगोने वाली वर्षा निरन्तर वरम रही हो, जल-धारा के समूह से भूतल शीतल हो गया हो, पृथ्वी रूपी रमणी ने घास रूपी कंकुल को धारण किया हो, वृक्षों का समूह पल्लवों से सुशोभित हो गया हो, वेलों के समूह विस्तार को प्राप्त हुए हों, उन्नत भू-प्रदेश, सौभाग्य को प्राप्त हुए हो, अर्थात् पानी से धुलकर साफ-सुधरे हो गए हों, मयवा पर्वत और कुण्ड सौभाग्य को प्राप्त हुए हो, वैभारगिरि के प्रपात तट और कटक से निर्भर निकल कर बह रहे हों, पर्वतीय नदियों में तेज गहाय के कारण उत्पन्न हुए फेनों से युक्त जल बह रहा हो, उद्यान राज, अजुन, नीप और कुटज नामक वृक्षों के अकुरों से और छत्राकार (कुकुरमुत्ता) से युक्त हो गया हो, मेघ की गर्जना के कारण हृष्ट-तुष्ट होकर नाचने की चेष्टा करने वाले मयूर हंसे के कारण मुक कठ से केकार्य कर रहे हो, और वर्षा ऋतु के कारण उत्पन्न हुए मद में तरुण मयूरियाँ नृत्य कर रही हो, उपवन (पर के समीपवर्ती वाग) शिल्पि, कुटज कदल और कदम्ब वृक्षों के पुष्पों की नवीन और तीव्रभयुक्त गंध की वृष्टि धारण कर रहे हों, अर्थात् उत्कट सुगंध से सम्पन्न हो रहे हो, नगर के बाहर के उद्यान कोकिलाना के स्वरघोलना वाले शब्दों से व्याप्त हों और रक्तवर्ण इन्द्रगो नामक कीड़ी ने शोभायमान हो रहे हो, उनमें चातक करुण स्वर से बोल रहे हों, वे नम हुए वृक्षा (वनस्पति) ने सुशोभित हो, उनमें मेढक उच्च स्वर से आवाज कर रहे हों, मदोन्मत्त भ्रमरों और भ्रमरियों के समूह एकत्र हो रहे हों, तथा उन उद्यान-प्रदेशों में पुष्प-रस के लोलुप एवं मधुर गुंजार करने वाले मदोन्मत्त भ्रमर लीन हो रहे हो, आकाशतल में चन्द्रमा, सूर्य और ग्रहों का समूह मेघों से आच्छादित होने के कारण दमक धरा का दृष्टिगोचर हो रहा हो, इन्द्रधनुष रूपी ध्वजपट फहरा रहा हो, और उसमें रहा हुआ मेघसमूह बगुलों की कतारों से शोभित हो रहा हो, इस भाँति कारक, चक्रवाक और राजहट पक्षियों को मानस-सरोवर की ओर जाने के लिए उत्सुक बनाने वाला वर्षाऋतु का समय हो। ऐसे वर्षाकाल में जो माताएँ स्नान करके, बलिकर्म करके, कौतुक मगल और प्रायश्चित्त करके (वैभारगिरि के प्रदेशों में अपने पति के साथ विहार करती हैं, वे धन्य हैं।)

धारिणी देवी ने इसके पश्चात् क्या विचार किया यह बतलाते हैं—वे माताएँ धन्य हैं जो पेरों में उत्तम नूपुर धारण करती हैं, कमर में करधनी पहनती हैं, वक्षस्थल पर हार पहनती हैं, हाथों में बने तथा उगलियों में अंगुष्ठियाँ पहनती हैं, अपने बाहुओं को विचित्र और श्रेष्ठ बाजूबंदों में स्तम्भित करती हैं, जिनका अंग रत्नों में भूषित हो, जिन्होंने ऐसा वस्त्र पहना हो जो नागिका के निःशाम की वायु में भी उड़ जाय अर्थात् अत्यन्त बारीक हो, नेत्रों को हरण करने वाला हो, उत्तम बने और रत्नों बाँधा हो, घोंटे के मुँह में निक्लने वाले फेन से भी कोमल और हल्का हो, उज्जर हो, जिसकी विनाशिका मुखों के तारों में बुनी गई हो, स्वेन होने के कारण जो आकाश एवं स्थल के समान शुभ कान्ति बाँधा हो और श्रेष्ठ हो। जिन माताओं का मस्तक समस्त ऋतुओं संवत्सी हर तीर्थों और वृक्षमानाओं से सुशोभित हो, जो बालागुरु आदि की उत्तम मूर्त में भूषित हो और जो मस्त्रों के समान बेग बालों हो। इस प्रकार सत्रघट्ट करके जो मेघनक नामक गंधहस्ती पर आरुह होकर, श्रेष्ठ-नृपों की माता में सुशोभित छत्र को धारण करती हैं। चन्द्रप्रभ, वय और वेद्यों जल

के निर्मल दंड जाने एवं दंग, बुन्दपुण, जलवण और धमन वा मयन करने में उत्पन्न हुए फल के समूह के समान उज्ज्वल, ऐसे चार चामर जिनके ऊपर खोरे जा रहे हैं, जो हस्ती-रत्न के मध्य पर (महावन के रूप में) राजा श्रेणिक के साथ बँधी हो। उनके पीछे-पीछे चतुरंगिणी सेना चल रही हो, धर्पात् विद्याल घरमेना गजमेना, रथसेना और पैदल सेना हो। छत्र आदि राजचिह्नों रूप समस्त श्रद्धि के साथ, घामुषणो आदि की कान्ति के साथ, यावत् [समस्त यत्न, समुदय, आदर, विभूति, विभूषा एवं श्रम के साथ, समस्त प्रकार के पुण्यों के सौरभ, माताओं और भक्तियों के साथ, समस्त बाधों के दायों की र्वनि के साथ, महान् श्रद्धि, शुक्ति, बस तथा समुदाय के साथ, एक ही साथ बजाए जाते हुए वाद्यों के शब्दों के साथ, दाय पणव, पट्ट भेरी, भण्डार, गरमणों, हुडक, मुरज, मृदंग एवं दुन्दुभि] वाद्यों के निर्वोपनाद के साथ, राजगृह नगर के श्रु गेटक (मिथाड़े के प्रकार के मार्ग) द्वार (जहाँ तीन मार्ग मिलें), चतुष्क (चौर), चत्वर (चतुर्तरा) चतुर्मुख (चारों ओर द्वार वाले देवकुल आदि), महापथ (राजमार्ग) तथा सामान्य मार्ग में गंधादक एक बार छिड़का हो, अनेक बार छिड़का हो, श्रु गेटक आदि की शुचि किया हो, झाड़ा हो, गोबर आदि में लीपा हो, यावत् पाँच वर्षों के राजा मुगधमय दियरे हुए पुण्यों के समूह के उपचार में युक्त किया हो, वाले भग्न, श्रेष्ठ कुदर, लोभान तथा धूप को जलाने में फेंका हुई मुगध में मधमथा रहा हो, उत्तम पूर्ण के गध से मुगधित किया हो, और मानो गंधद्वयों की गुटिका ही हो, ऐसे राजगृह नगर को देखती जा रही हो। नागरिक जन अभिनन्दन कर रहे हो। गुच्छों, सताओं, वृक्षों, पुन्मो (भाडियों)। एवं बैलों के समूहों में व्याप्त, मनोहर बंधारपर्वत के निचले भागों के समीप, चारों ओर मंत्र भ्रमण करती हुई अपने दोहद को पूर्ण करती हैं (वे माताएं धन्य हैं।) तो मैं भी इस प्रकार मेघों वा उदय आदि होने पर अपने दोहद को पूर्ण करना चाहती हूँ।

धारिणी की चिन्ता

४५—तए न ता धारिणी देवो संति दोहसंति अविनिश्रमार्गति असपन्नदोहस। असंपुन-  
दोहस। असंमणियदोहस। सुवता भुवता निम्मंता ओनुया ओलुगसरीरा पमइसदुदस। कितता  
ओमंघियवपण-अवणकमला पंडइयमूही करवलमलिय अब चंदगमाला नित्तेया दोणविण्णवपणा  
अहोच्चियपुक्क-गंय-मल्लालंकार-हारं अणमिलसमाणी कीडारमणकिरियं च परिहायेमाणी दोणा  
दुम्भणा निराणंदा भूमिगयदिठ्ठीया दोहयमणसंकप्पा जाव भियायइ ।

तत्पश्चात् वह धारिणी देवी उग्र दोहद के पूर्ण न होने के कारण, दोहद के सम्पन्न न होने के कारण, दोहद के सम्पूर्ण न होने के कारण, मेघ आदि का अनुभव न होने से दोहद के सम्मानित न होने के कारण, मानसिक सताप द्वारा स्वतः का गोपण हो जाने से मुष्क हो गई। भूय से व्याप्त हो गई। भाम रहित हो गई। जीर्ण एक जीर्ण शरीर वाली, स्नान का त्याग करने से मलीन शरीर वाली, भोजन त्याग देने से दुर्बली तथा थान्न हो गई। उमने मुख और नयन रूपी कमल नीचे कर लिए, उमका मुख फीका पड़ गया। हयैनियों में ममली हुई चम्पक-पुष्पों की माला के समान निस्तेज हो गई। उमका भुग दीन और विवर्ण हो गया, यथोचित पुष्प, गध, माला, भक्तिकार और हार के विषय में रचिरहित हो गई, अर्थात् उसने इन सबका त्याग कर दिया। जल आदि की शीशा और पीपड आदि सेलों का परित्याग कर दिया। वह दीन, दुखी मन वाली, भ्रान्तहीन एवं भूमि की तरफ टट्टि किये हुए बैठी रही। उसके मन का सकल्प-हीनता नष्ट हो गया। वह यावत् आर्त्तध्यान में द्रव गई।

४६—तए नं तोसे धारिणीए देवीए भंगपडियारियाओ अग्निमतरियाओ दासवेडीयाओ कीं  
देवि ओनुगम जाव भियायमाणि पासंति, पासित्ता एवं वयासी—किं नं तुमे देवानुप्रिये ! ओनुगम  
ओनुगमरीरा जाव भियायसि ?

तत्पश्चान् उम धारिणी देवी की अगपरिचारिकाएं शरीर की सेवा-गुप्त्या करे  
प्राप्त्यन्तर दागिया धारणी देवी को जीएँ-सी एव जीएँ शरीर वाली, यावत् प्रातिप्यान कर  
देवनी है । देवकर इम प्रकार कहती है—‘हे देवानुप्रिये ! तुम जोएँ जैसी तथा जीएँ शरीर  
बनो हो नहीं हो ? यावत् प्रातिप्यान क्यों कर रही हो ?’

४७—तए नं मा धारिणी देवी ताहि भंगपडियारियाहि अग्निमतरियाहि दासवेडीया  
बुना ममाणी मो घाडाति, मो व परियाणाति, अनाढायमानी अपरियाणमानी सुसिणीया सी

तत्पश्चान् धारिणी देवी अगपरिचारिका आभ्यन्तर दासियों द्वारा इम प्रकार  
( अगमन/क होने में ) उनका आदर नहीं करती और उन्हें जानती भी नहीं—उनकी बात  
नहीं देती । नहीं आदर करती और नहीं जानती हुई वह मीन ही रहती है ।

४८—तए नं ताओ भंगपडियारियाओ अग्निमतरियाओ दासवेडीयाओ धारिणी  
नि मव वि एव वयासी—किं नं तुमे देवानुप्रिये ! ओनुगम ओनुगमरीरा जाव भियाय

म वह अगपरिचारिका आभ्यन्तर दागिया दूसरी बार और तीसरी बार इम  
प्रकार—‘हे देवानुप्रिये ! क्यों तुम जीएँ-सी जीएँ शरीर वाली हो रही हो, यहाँ तक कि  
बन रही हो ?’

४९—तए नं धारिणी देवी ताहि भंगपडियारियाहि अग्निमतरियाहि दासवेडीया  
मव वि एव बुना ममाणी मो घाडा, मो परियाणा, अनाढायमानी अपरियाणमानी  
कीकरा ।

तत्पश्चान् धारिणी देवी आभ्यन्तर दागिया द्वारा दूसरी बार  
इम प्रकार—‘हे देवानुप्रिये ! क्यों तुम जीएँ-सी जीएँ शरीर वाली हो रही हो, यहाँ तक कि  
बन रही हो ?’

५०—तए नं ताओ भंगपडियारियाओ अग्निमतरियाओ दासवेडीयाओ धारिणी  
उमव वि एव बुना ममाणी मो घाडा, मो परियाणा, अनाढायमानी अपरियाणमानी  
कीकरा । तत्पश्चान् धारिणी देवी आभ्यन्तर दागिया द्वारा तीसरी बार  
इम प्रकार—‘हे देवानुप्रिये ! क्यों तुम जीएँ-सी जीएँ शरीर वाली हो रही हो, यहाँ तक कि  
बन रही हो ?’

५१—तए नं ताओ भंगपडियारियाओ अग्निमतरियाओ दासवेडीयाओ धारिणी  
उमव वि एव बुना ममाणी मो घाडा, मो परियाणा, अनाढायमानी अपरियाणमानी  
कीकरा । तत्पश्चान् धारिणी देवी आभ्यन्तर दागिया द्वारा चौथी बार  
इम प्रकार—‘हे देवानुप्रिये ! क्यों तुम जीएँ-सी जीएँ शरीर वाली हो रही हो, यहाँ तक कि  
बन रही हो ?’

११—तएवं ते सेनिए राया ताति धंगपडिपारियाण धनिए एयमट्ट सो संभते समाने तिण्णं तुरिधं चवत्तं वेत्तं जेणेव धारिणी देवी तेनेव उवागवत्त । उवा देवि सोमुग्गं सोमुग्गसरीरं जाव घट्टउम्भानोवगयं भियायमानि पातइ । पातिता ए वं तुमं देवानुप्पिए ! सोमुग्गा सोमुग्गसरीरा जाव घट्टउम्भानोवगया भियायमति ?

तव धर्मिक राजा उन व गवरिधारिकाओं में यह सुनकर मन में धारण कर व्याकुल होता हुआ, स्वरा के साथ, एवं धारण ही प्रस्ता में उही धारिणी देवी थी, धारण धारिणी देवी को जोग-जोगी जोगी धारीर धारी धायन् धारतवान से मुन देगा है । देगकर इन प्रकार कहता है—देवानुप्रिये ! तुम जोगी जोगी, जोगी धारी धारतवान से मुन होकर क्यों बिना कर रही हो ?

१२—तएवं सा धारिणी देवी सेनिएणं रण्णा एव बुत्ता समानी नो प्राडाइ, ज सविट्ठमि । धारिणी देवी, धर्मिक राजा के इन प्रकार कहने पर भी धारण नहीं करती— देवी, मावन् मौन रहती है ।

१३—तएवं ते सेनिए राया धारिणि देवि सोवत्तं वि तव्वं वि एव वडामो— देवानुप्पिए ! सोमुग्गा जाव भियायमति ? तत्तद्वान् धर्मिक राजा ने धारिणी देवी ने दूगरी बार धीर फिर तीगरी बार प्रकार कहा—देवानुप्रिये ! तुम जोग-गो होकर मावन् चिन्तित क्यों हो ?

१४—तएवं सा धारिणी देवी सेनिएणं रण्णा सोवत्तं वि तव्वं वि एवं बुत्ता सम प्राडावि, नो वरिजामानि, तुत्तिणीया सविट्ठमि । तत्तद्वान् धारिणी देवी, धर्मिक राजा के दूगरी बार धीर तीगरी बार भी इन कहने पर सादर नहीं करती धीर नहीं जानती—मौन रहती है ।

१५—तएवं ते सेनिए राया धारिणि देवि तव्वहत्ताविणं करेइ, करित्ता एवं वयासी— तुमं देवानुप्पिए ! वहुमेवस्स घट्टस्स धनारिहे सवणवाए ? ता वं तुमं ममं धयमेयावत्तं मणोमाणं दुक्कं रहसोकरेमि ? तव धर्मिक राजा, धारिणी देवी को शपथ दिलाता है धीर शपथ दिलाकर कहत देवानुप्रिये ! क्या मैं तुम्हारे मन की बात सुनने के लिए भयान्य हूँ, जिससे तुम अपने मन में ए मानगिक दुःख को छिपानो हो ?

तव धर्मिक राजा, धारिणी देवी को शपथ दिलाता है धीर शपथ दिलाकर कहत देवानुप्रिये ! क्या मैं तुम्हारे मन की बात सुनने के लिए भयान्य हूँ, जिससे तुम अपने मन में ए मानगिक दुःख को छिपानो हो ?

१६—तएवं सा धारिणी देवी सेनिएणं रण्णा तव्वहत्ताविणं समानी सेनियं रायं ए तां—एवं तसु तामो ! मम तस्स उरात्तस्स जाव महात्तमिणस्स तिण्णं माताणं वहुअप्पुण्णा मेयावत्तं प्रकालमेहेत्तु सोहेत्तं पाउम्भए—‘वग्गाधो वं तामो अम्मयाधो, कयत्ताधो वं तामो यामो, जाव’ वैमारगिरिपायमूलं धाहिहमाणीधो सोहत्तं विणिमि । तं जइ ण रायं

डोहलं धिणिज्जामि । तए णं हं सामी ! अयमेवाहयंसि अकाल-डोहलंसि अविणिज्जमानंसि ओलुगा जाव अट्टज्जाणोवगया भिप्पामि ।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा द्वारा नपय सुनकर धारिणी देवी ने श्रेणिक राजा से इस प्रकार कहा—स्वामिन् । मुझे यह उदार आदि पूर्वोक्त विनोपणो वाला महास्वप्न आया था । उसे आए तीन मास पूरे हो चुके हैं, अतएव इस प्रकार का अकाल-मेघ संबंधी दोहद उत्पन्न हुआ है कि वे माताएं धन्य हैं और वे माताएं कृतार्थ हैं, यावत् जो वंमार पर्वत की तलहटी में भ्रमण करती हुई अपने दोहद को पूर्ण करती हैं । अगर मैं भी अपने दोहद को पूर्ण करूं तो धन्य होऊँ । इस कारण हे स्वामिन् । मैं इस प्रकार के इस दोहद के पूर्ण न होने से जीर्ण जंमी, जीर्ण शरीर वाली हो गई हूँ, यावत् आर्त ध्यान करती हुई चिन्तित हो रही हूँ । स्वामिन् ! जीर्ण-नी-यावत् आर्त ध्यान से युक्त हार्क चिन्ता-प्रस्त होने का यही कारण है ।

५७—तए णं से सेणिए राया धारिणीए देवीए अंतिए एवमट्ठं सोच्छा नितम्म धारिणि देवै एव बहासी—‘मा णं तुम देवानुप्पिए । ओलुगा जाव भिप्पाहि, अहं णं तहा करिहसामि जहा णं तुमं अयमयाकस्स अकालडोहलस्स मनोरहसंपत्तो अविस्सड’ ति कट्ट पारिणि देवि इद्धाहि कंताहि विपाहि मणुग्गाहि मणामाहि वग्गुहि समासासेइ । समासासित्ता जेणैव बाहिरिया उवट्ठाणसाता सेणामैव उवागच्छइ । उवागच्छित्ता सोहासणवरणए पुररपाहिमुहे सन्निसग्गे । धारिणीए देवीए एव अकालडोहलं वहाहि आएहि य उवाएहि य उप्पत्तिपाहि य वेणइपाहि य कम्मपाहि य पारिणाभिपाहि य चउच्चिवाहि बुद्धीहि अणुचितेमाणे अणुचितेमाणे तस्स दोहलस्स आयं वा उवायं वा ठिं वा उप्पत्ति वा अविदमाणे ओहपमणसंकप्पे जाव भिप्पायइ ।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा ने धारिणी देवी से यह बात सुनकर और समझ कर, धारिणी देवी ने इस प्रकार कहा—देवानुप्रिये ! तुम जीर्ण शरीर वाली मत होओ, यावत् चिन्ता मत करो । मैं वैसा करूँगा अर्थात् कोई ऐसा उपाय करूँगा जिससे तुम्हारे इस अकाल-दोहद की पूर्ति हो जायगी । इस प्रकार कहकर श्रेणिक ने धारिणी देवी को इष्ट (प्रिय) कान्त (इच्छित), प्रिय-प्रीति उत्पन्न करने वाली, मनोज्ञ (मनोहर) और मणाम (मन को प्रिय) वाली से आश्वासन दिया । आश्वासन देकर जहाँ बाहर की उपस्थानशाला थी, वहाँ आया । आकर थोड़ा सिंहासन पर पूर्व दिशा की ओर मुग्न करने बैठा । धारिणी देवी के इस अकाल-दोहद की पूर्ति करने के लिए बहुतरे भावों (लाभों) में, उपायों में, औत्पत्तिकी बुद्धि से वैयक्तिक बुद्धि से, कार्मिक बुद्धि से, पारिणामिक बुद्धि से—दस प्रकार धारण करके बुद्धि से बार-बार विचार करने लगा । परन्तु विचार करने पर भी उग दोहद के लाभ का, उपाय को, स्थिति को और निष्पत्ति को समझ नहीं पाता, अर्थात् दोहद पूर्ति का कोई उपाय नहीं मूझता । अतएव श्रेणिक राजा के मन का सकल्प नष्ट हो गया और वह भी यावत् चिन्तापस्त हो गया ।

अथचतुर्थार ॥ आगमन

५८—तपालंतर् अयए कुमारे जहाए कयवसिकम्मो जाव सत्वासंकारविमूतिए पापवंधए पहारेय मममाए ।

तदनन्तर अथचतुर्थार स्नान करके, धनिकर्म (गृहदेवता का पूजन) करके, यावत् [कोतुक, मदन एव प्राप्तिक्रम करके] समस्त धनधारों में विभूषित होकर श्रेणिक राजा के चरणों में बन्दना

करने के लिए जाने का विचार करना है—रवाना होता है ।

५६—तएवं तं समयकुमारे त्रेलीव सेलिण् राया तेलेव उवागच्छइ । उवागच्छइत्ता सेलिण् रायं प्रोहयमणसंरूपं जाव पासइ । पासइत्ता समयमेवाहवे अम्मरियए वितिए (परिणए) मणोगते संरूपे समुपगिरिया ।

तत्पश्चात् समयकुमार श्रेणिक राजा के समीप जाता है । आकर श्रेणिक राजा को देखता है कि इनके मन के सकल्प की प्राप्ति हुई है । यह देखकर समयकुमार के मन में इस प्रकार का यह धार्मिक प्रयात् धारणा संबन्धी, चिन्तित, प्रविष्ट (प्राप्त करने की इष्ट) और मनोगत-मन में रहा हुआ सकल्प उत्पन्न होता है—

६०—अन्नया मं मं सेलिण् राया एउजमाणं पामनि, पासइत्ता आदाति, परिजाणाति, सत्कारेइ, सम्मालेइ, आसवति, संतवति, अट्टासलेणं उवणिमंतेति मत्थयंसि अघाति । इयाणि मं सेलिण् राया नो आदाति, नो परिवाणइ, नो सत्कारेइ, नो सम्माणेइ, नो इट्ठाहि कंताहि विवाहि मणुणाहि ओरासाहि वगूहि आसवति, संववति, नो अट्टासणेणं उवणिमंतेति, नो मत्थयंसि अघाति य, किं पि प्रोहयमणसंरूपे भियायणि । तं भविष्यं नं एय कारणेणं । तं सेयं ललु मे सेलिण् रायं एयमट्ठं पुच्छित्तए । एवं संपेहेइ, सपेहिता जेणामेव सेलिण् राया तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छइत्ता कारणपरिगृहिणं तिरसावत्तं मत्थए अज्जनि कट्ठे जएणं विजएणं वट्ठावेइ, वट्ठावइत्ता एयं वयासी—

‘अन्य समय श्रेणिक राजा मुझे आना देखते थे तो देखकर आदर करते, जानते, वस्त्रादि से सत्कार करते, आसनादि देकर सम्मान करने तथा आलाप-मत्स्य करते थे, आगे आसन पर बैठने के लिए निमन्त्रण करते और मेरे मस्तक को सूंघते थे । किन्तु आज श्रेणिक राजा मुझे न आदर दे रहे हैं, न आया जान रहे हैं, न सत्कार करते हैं, न इष्ट वस्तु प्रिय मनोज्ञ और उदार वचनों से आलाप-संभाषण करते हैं, न अग्र्य आसन पर बैठने के लिए निमन्त्रित करते हैं और न मस्तक को सूंघते हैं । उनके मन के संकल्प की कुछ प्राप्ति हुई है, अतएव चिन्तित हो रहे हैं । इसका कोई कारण होना चाहिए । मुझे श्रेणिक राजा से यह बात पूछना श्रेय (योग्य) है ।’ समयकुमार इस प्रकार विचार करता है और विचार कर जहाँ श्रेणिक राजा थे, वही आना है । आकर दोनों हाथ जोड़कर, मस्तक पर आवर्त करके, प्रजलि करके जय-विजय से वधाना है । वधाकर इस प्रकार कहता है—

६१—तुम्हे नं ताओ ! अन्नया मं एउजमाणं पासइत्ता आदाह, परिजाणह, जाव मत्थयंसि अघायह, आसणेणं उवणिमंतेह, इयाणि ताओ ! तुम्हे मं नो आदाह जाव नो आसणेणं उवणिमंतेह । किं पि प्रोहयमणसंरूपं जाव भियायह । तं भविष्यं ताओ ! एय कारणेणं । तओ तुम्हे मम ताओ ! एयं कारणेणं अणुहेमाणा असंकेमाणा अनिह्वेमाणा अपच्छाएमाणा जहाभूतमवितहमसंदिद्धं एयमट्ठ-माइयह । तएवं हं तस्स कारणेस्स अंतममण ममिस्सामि ।

हे तात ! आप अन्य समय मुझे आना देखकर आदर करते, जानते, यावत् मेरे मस्तक को सूंघते थे और आसन पर बैठने के लिए निमन्त्रित करते थे, किन्तु तात ! आज आप मुझे आदर नहीं दे रहे हैं, यावत् आसन पर बैठने के लिए निमन्त्रित नहीं कर रहे हैं और मन का सकल्प नष्ट



होने के कारण कुछ चिन्ता कर रहे है। तो इसका कोई कारण होना चाहिए। तो हे तात ! प्रायः इस कारण को छिपाए बिना, इष्टप्राप्ति में शका रहने बिना, अपलाप किये बिना, दबाये बिना, जैसा का तैसा, सत्य एवं सदेहरहित कहिए। तत्पश्चात् ॥ उम कारण का पार पाने का प्रयत्न करूंगा, अर्थात् आपकी चिन्ता के कारण को दूर करूंगा।

६२—तए न सेजिए राया अमएणं कुमारेणं एवं वृत्ते समाने अमयं कुमारं एवं वयासी-एवं सलु पुत्ता ! तव वृत्तमाजयाए धारिणीए देवीए तस्स गम्भस्स बोमु मासेसु अइअकंतेसु तइयमासे वट्टमाणे बोहलकाससमयंसि अयमेयाह्वये बोहसे पाउअमविरया-अग्नाओ णं ताओ अमयाओ तहव निरवसेसं भाणियथं जाव विणिति । तए णं अहं पुत्ता ! धारिणीए देवीए तस्स अकालबोहलस्स अहं हि आएहि य उवाएहि जाव उत्पत्ति अविदमाणे ओहयमणसंकल्पे जाय भियायामि, तुमं अगमं वि न याणामि । तं एतेणं कारणेणं अहं पुत्ता ! ओहयमणसंकल्पे जाय भियामि ।

अभयकुमार के इस प्रकार कहने पर श्रेणिक राजा ने अभयकुमार से इस प्रकार कहा— पुत्र ! तुम्हारी छोटी माता धारिणी देवी की गर्भस्थिति हुए दो मास बीत गए और तीसरा मास बन रहा है। उसमें दोहद-काल के समय उसे इस प्रकार का दोहद उत्पन्न हुआ है—वे माताएँ धन्य हैं, इत्यादि सब पहले की भांति ही कह लेना चाहिए, यावत् जो अपने दोहद को पूर्ण करती हैं। तब हे पुत्र ! मैं धारिणी देवी के उस अकाल-दोहद के भायो (लाभ), उपायों एवं उपपत्ति को अर्थात् उसकी पूति के उपायों को नहीं समझ पाया हूँ। इससे मेरे मन का संकल्प नष्ट हो गया है और मैं चिन्ता-मुक्त हो रहा हूँ। इसी से मुझे तुम्हारा भ्राना भी नहीं जान पड़ा। अतएव पुत्र ! मैं इसी कारण नष्ट हुए मनःसंकल्प वाला होकर चिन्ता कर रहा हूँ।

अमय व आवासान

६३—तए णं से अमयकुमारे सेजियस्स रग्गो अंतिए एयमट्ठं सोच्चा जितप्पन हट्ठ जाव' हियए सेजिय' राय' एवं वयासी—'मा णं तुम्हे ताओ ! ओहयमणसंकल्पा जाव भियायह । अहं णं तहा करिस्सामि, जहा णं मम वृत्तमाजयाए धारिणीए देवीए अयमेयाह्वयस्स अकालबोहलस्स मणो-रहसंप्पत्ती अविस्सह' ति वट्ठु सेजियं रायं ताहि इट्ठाहि कंताहि जाव [ विपाहि मणुग्गाहि मणामाहि अणुहि ] समासासेइ ।

तत्पश्चात् वह अभयकुमार, श्रेणिक राजा ने यह अर्थ सुनकर और समझ कर हृष्ट-बुद्ध और ध्यानन्दिन-हृदय हुआ। उसने श्रेणिक राजा से इस भांति कहा—हे तात ! आप भय-मनोरथ होकर चिन्ता न करें। मैं वैया (कोई उपाय) करूंगा, जिससे मेरी छोटी माता धारिणी देवी के इस अकाल-दोहद के मनोरथ की पूति होगी। इस प्रकार कह कर (अभयकुमार ने) इष्ट कंत [दाय्य प्रिय, मनोमं एवं मनोहर वचनों से] श्रेणिक राजा को सान्त्वना दी।

६४—तए णं सेजिए राया अमएणं कुमारेणं एवं वृत्ते समाने हट्ठतुट्ठे जाव अमयकुमारं सवकारेण संमानेति, सवकारिता संमानिता पडिविसग्गेति ।

श्रेणिक राजा, अभयकुमार के इस प्रकार' कहने पर हृष्ट-तुष्ट हुआ। वह अभयकुमार का सत्कार करता है, सम्मान करता है। सत्कार-सम्मान करके विदा करता है।

६५—तएवं से अभयकुमारे सत्कारिय-सम्मानिए पडिविस्त्रिजिए समाने सेणियस्स रत्तेनो अंति-याप्रो पडिनिषण्णमइ। पडिनिषण्णमिता जेणामेव सए सवणे तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छिता सोहासणे नित्तणे।

तब (श्रेणिक राजा द्वारा) सत्कारित एवं सम्मानित होकर विदा किया हुआ अभयकुमार श्रेणिक राजा के पास से निकलता है। निकल कर जहाँ अपना भवन है, वहाँ आता है। आकर वह सिंहासन पर बैठ गया।

अभय की बेवारायना

६६—तएवं तस्स अभयकुमारस्स अयमेयाकूळे अक्कटियए जाव [चित्तिए, पत्थिए मनोगए संकप्पे] समुत्पज्जित्था—नो लल्लु सब्बा माणस्सएण उवाएणं मम चुल्लमाउपाए धारिणीए देवीए अकालदोहलमणोरहसंपत्ति करेतए, जन्तव दिव्वेणं उवाएणं। अरियं नं मज्झं सोहम्मकप्पवासी पुब्बसंगतिए देवे महिद्दीए जाव [महंजुइए महापरवक्कमे महाजसे महव्वले महानुभावे] महासोक्खे। तं सियं लल्लु मम पोसहसालाए पोसहिणस्स बंमचारिस्स उप्पुबकमणि-सुवण्णस्स चवणमाला-वन्नग-विलेखणस्स निक्खिन्नसत्थ-मुत्तलस्स एगस्स अवीयस्स दम्मसंपारोवणयस्स अट्ठममत्तं परिगिण्हिता पुब्बसंगतियं देवं मणसि करेमाणस्स विहरितए। तस्से नं पुब्बसंगतिए देवे मम चुल्लमाउपाए धारिणीए देवीए अयमेयाकूळे अकालमेहेसु दोहसं विणिहिइ।

तत्पश्चात् अभयकुमार को इस प्रकार का यह आध्यात्मिक (आंतरिक) विचार, चिन्तन, प्राणित या मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ—दिव्य अर्थात् देव सबधी उपाय के बिना केवल मानवीय उपाय से मेरी छोटी माता धारिणी देवी के अकाल-दोहद के मनोरथ की पूर्ति होना शक्य नहीं है। सीधर्म कल्प में रहने वाला देव मेरा पूर्व का मित्र है, जो महान् श्रद्धिधारक यावत् [महान् द्युति-वाला, महापराक्रमी, महान् यशस्वी, महान् वलशाली, महानुभाव] महान् सुख भोगने वाला है। तो मेरे लिए यह श्रयस्कर है कि मैं पीपघसाला मे पीपघ ग्रहण करके, ब्रह्मचर्य धारण करके, मणि-सुवर्ण आदि के भ्रलकारा का त्याग करके, माला वर्णक और विलेपन का त्याग करके, शस्त्र-मुत्तल आदि अर्थात् समस्त आरम्भ-समारम्भ को छोड़ कर, एकाकी (राग-द्वेष से रहित) और अद्वितीय (सेवक आदि की सहायता से रहित) होकर, डाघ के सधारे पर स्थित होकर, अट्ठममत्त-तेजा की लपस्या ग्रहण करके, पहले के मित्र देव का मन में चिन्तन करता हुआ स्थित रहूँ। ऐसा करने से वह पूर्व का मित्र देव (यहाँ आंकर) मेरी छोटी माता धारिणी देवी के अकाल-मेघों सबंधी दोहद को पूर्ण कर देगा।

६७—एवं सपेहेइ, सपेहिता जेणव पोसहसाला तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छिता पोसहसालं पमज्जति, पमज्जिता उच्चार-पासवणमूमि पडिलेहेइ, पडिलेहिता दम्मसंपारणं पडिलेहेइ, पडिलेहिता दम्मसंपारणं दुक्खइ, दुक्खिता अट्ठममत्तं परिगिण्हइ, परिगिण्हिता पोसहसालाए पोसहिए बंमवारी जाव पुब्बसंगतियं देवं मणसि करेमाणे करेमाणे चिट्ठइ।

अभयकुमार इस प्रकार विचार करता है। विचार करके जहाँ पीपघशाला है, वहाँ जाना है जाकर पीपघशाला का प्रमार्जन करता है। उच्चार प्रसवण की भूमि (मत्त-मूल त्यागने के स्थान का प्रतिलेखन करता है। प्रतिलेखन करके टाभ के गयारे का प्रतिलेखन करता है। टाभ के संयारे क प्रतिलेखन करके उस पर आसीन होता है। आसीन होकर अष्टमभवत तप ग्रहण करता है। प्रह करके पीपघशाला में पीपघमुक्त होकर, ग्रहचर्यं अ भीकार करके पहले के मित्र देव का मन में पुन पुन. चिन्तन करता है।

विवेचन—तेसे की तपस्या अष्टमभवत कहलाती है, क्योंकि पूर्ण रूप से इसे सम्पन्न कर लिए आठ बार का भक्त-आहार त्यागना आवश्यक है। अष्टमभवत प्रारंभ करने के पहले दिन एक करना, तीन दिन के छह बार के आहार का त्याग करना और फिर अगले दिन भी एकाशन क इस प्रकार आठ बार का आहार त्यागना चाहिए। उपवास और बेला आदि के संबन्ध में भी समझना चाहिए। तभी चतुर्षभवत, पष्ठभवत आदि सजाएँ वास्तविक रूप में सार्थक होती हैं।

देव का आगमन

६८—तए नं तस्स अभयकुमारस्स अट्ठमवत्ते परिणममाणे पुब्बसंगतिअस्स देवस्स । चसति । तस्से नं पुब्बसंगतिए सोहम्मकल्पवासी देवे आसणं चसियं पासति, पासित्ता ओहि पडं तस्से न तस्स पुब्बसंगतिअस्स देवस्स अयमेवाहये अज्झरियए जाव' समुत्पज्जिअया—'एवं स पुब्बसंगतिए जंबूदीवे दीवे मारहे वासे दाहिणडुमरहे वासे रायगिहे नयरे पोसहसात्ताए अमा कुमारो अट्ठमवत्त' परिणिहिस्ता नं मम मणसि करेमाणे करेमाणे चिट्ठति । तं सेयं' जसु मम अभय-स्स कुमारस्स अतिए पाठमवत्तिए ।' एवं संवेहेइ, संवेहिता उत्तरपुरच्छिमं विसीमागं अयवकमत्ति, अयवकमत्ति विउच्चियसमुपाएणं समोहणति, समोहणित्ता संखेज्जाइं ओयणाइं बंडं नित्तिरति । तज्जा—

जब अभयकुमार का अष्टमभवत तप प्राय पूर्ण होने आया, तब पूर्वभव के मित्र देव का आसन चलायमान हुआ। तब पूर्वभव का मित्र सौधर्म कल्पवासी देव अपने आसन को चलित हुआ देखना है और देखकर अवधिज्ञान का उपयोग लगाता है। तब पूर्वभव के मित्र देव को इस प्रकार का यह आन्तरिक विचार उत्पन्न होता है—'इस प्रकार मेरा पूर्वभव का मित्र अभयकुमार जंबूद्वीप नामक द्वीप में, भारतवर्ष में, दक्षिणार्ध भारत में, राजगृह नगर में पीपघशाला में, अष्टमभवत ग्रहण करके मन में बार बार मेरा स्मरण कर रहा है। अतएव मुझे अभयकुमार के समीप प्रकट होना (जाना) योग्य है।' देव इस प्रकार विचार करके उत्तरपूर्व दिग्भाग (ईशान कोण) में जाता है और वैश्रियसमुद्रपात करता है, अर्थात् उत्तर वैश्रिय घरीर बनाने के लिए जीव-प्रदेशों को बाहर निकलता है। जीव-प्रदेशों को बाहर निकाल कर सत्यात योजना का दृष्ट बनाता है। वह इस प्रकार —

६९—रयणाणं १ बइराणं २ वेदसियाणं ३ मोहियवत्तानं ४ मसारगल्लानं ५ हंसगम्भा ६ पुलगाणं ७ सोर्गपियाणं ८ ओइरत्ताणं ९ अंकाणं १० अंजणाणं ११ रययाणं १२ जायहवा १३ अंजणुपुमाणं १४ कलिहाणं १५ रिट्ठाणं १६ अहावायरे योगसे परिसाडेइ, परिसाजित

प्रथम अध्यायन : उत्तिष्ठन्तज्ज्ञात ]

ग्रहामुत्तमे योगले परिगिण्हति, परिगिण्हइत्ता समयकुमारमणुकंपमाने वेवे पुध्व  
बहुमान-जायसोगे, तयो विमानवरपुण्डरियाधो रयणुत्तमाधो धरणिपलमणतुरियस  
वापुणित-विमल-कण-पयरग-वडिसग-मउडककडाडोवदंसजिजो, अणेगमणि-कण  
मंदित-मत्तिचित्त-विणिउत्तमणुगणजणियहरिसे, वेसोतमाण-वरललित-कुंडसुजति  
सोमरुवे, उदितो विव कोमुदोनिताए सणिच्छरंगारउज्जलियमज्जभागस्ये नयन  
दिव्योत्तिष्ठपञ्चतुज्जलियदंसनाभिरामो उत्तमच्छिप्तमत्तजापसोहे पइटठगंघुं पा  
नगदरो, विगुम्भियविचित्तवेसे, बीवसमुदाणं असंसपरिमाणनामधेज्ज्ञाणं मज्झका  
उज्जोयंतो पनाए विमसाए जीवलोगं, रायगिहं पुरवरं च अमपस्स म पासं ओवयति

(१) कर्त्तन रत्न (२) वज्र रत्न (३) वैदूर्य रत्न (४) लोहिताक्ष रत्न (५)  
(६) हस्तगर्भ रत्न (७) पुलक रत्न (८) मोगधिक रत्न (९) ज्योतिरत्न रत्न (१०)  
अंजन रत्न (१२) रजत रत्न (१३) जातरूप रत्न (१४) अंजनपुलक रत्न (१५)  
(१६) रिष्ट रत्न—इन रत्नों के यथा-वादेर अर्थात् असार पुद्गमों का परित्याग न  
करके यथामूढम अर्थात् सारभूत पुद्गलों को ग्रहण करता है। ग्रहण करके (उ  
धनात्ता है।) फिर अभयकुमार पर अनुकंपा करता हुआ, पूर्वभव मे उत्पन्न हुई स्नेह  
गुणानुराग के कारण (वियोग का विचार करके) वह स्नेह करने लगा। फिर उ  
रचना वाले अथवा उत्तम रत्नमय विमान से निकलकर पृथ्वीतल पर जाने के लि  
का प्रचार किया, अर्थात् वह क्षीघ्रतापूर्वक चल पड़ा। उस समय चलायमान होते हु  
प्रतर जैसे कर्णपूर और मुकुट के उत्कट घाटम्बर से वह दर्शनीय लग रहा था। अने  
और रत्नों के समूह से शोभित और विचित्र रचना वाले पहने हुए कांटिमूत्र मे उभ  
था। हितते हुए अष्ट और मनोहर कुण्डलों से उज्ज्वल हुई। मुख भी दीप्ति से उ  
सौम्य हो गया। कातिकी पूर्णिमा की रात्रि मे, शनि और मंगल के मध्य मे स्थित  
शारदनिशाकर के समान वह देव दर्शकों के नयनों को आनन्द दे रहा था। तात्पर्य य  
मंगलग्रह के समान चमकते हुए दोनों कुण्डलों के बीच उसका मुख धरद् ऋतु के च  
शोभायमान हो रहा था। दिव्य ओपधियों (जड़ी-बूटियों) के प्रकाश के समान म  
से देदीप्समान, रूप से मनोहर, समस्त ऋतुओं की लक्ष्मी से वृद्धित शोभा वाले स  
प्रसार से मनोहर मेरु पर्वत के समान वह देव अभिराम प्रतीत होता था। उस देव  
की विक्रिया की। असंख्य-संख्य और असंख्य नामो वाले द्वीपों और समुद्रों के म  
लगा। अपनी विमल प्रभा से जीवलोक को तथा नगरवर राजगृह को प्रकाशित क  
रूपधारी देव अभयकुमार के पास आ पहुँचा।

७०—ताए णं से वेवे अंतलिबलपडियन्ने दसद्ववन्नाइं सल्लिखिणियाइं पवर  
( एक्को ताव एसो यमो, अण्णो वि गमो— ) ताए उक्किट्ठाए तुरियाए चवला  
उद्ध माए जइणाए सेयाए दिव्वाए देवगतिए जेणामेयं जुंहुदीवे दीवे, भारहे वासे, जेण

तत्पश्चात् दस के आधे अर्थात् पाँच वर्ग वाले तथा पुष्कर वाले उत्तम वस्त्रों को धारण किये एवं वह देव आकाश में स्थित होकर (अभयकुमार से इस प्रकार बोला—)

यह एक प्रकार का गम-पाठ है । इसके स्थान पर दूसरा भी पाठ है । वह इस प्रकार है—

वह देव उत्कृष्ट, त्वरा वाली, चपल-कायिक चपलता वाली, अति उत्तम के कारण चंड-मयानक, दृढता के कारण सिंह जैसी, गर्व की प्रचुरता के कारण उद्घत, शत्रु को जीतने से जय करने वाली, ऐक अर्थात् निपुणता वाली और दिव्य देवगति में जहाँ जम्बूद्वीप था, भारतवर्ष था और जहाँ दक्षिणार्धभरत था, उसमें भी राजगृह नगर था और जहाँ पीपयशाळा में अभयकुमार था, वही प्राता है । आकर के आकाश में स्थित होकर पाँच वर्ग वाले एवं पुष्कर वाले उत्तम वस्त्रों को धारण किये हुए वह देव अभयकुमार से इस प्रकार कहने लगा—

७१—‘ग्रहं न देवानुत्पिया । पुष्पसंगतिं सोहम्मकल्पयासी देवे महद्भिण्ण, जं नं तुमं पोसहसालाए अट्टममत्तं पणिग्गित्ता नं ममं मणसि करेमाणे चिट्ठसि, तं एस नं देवानुत्पिया । ग्रहं इहं हवमागए । सदिसाहि नं देवानुत्पिया । किं करेमि ? किं दसामि ? किं पयच्छामि ? किं वा ते हिय-इच्छित्तं ?’

‘हे देवानुत्पिय ! मैं तुम्हारा पूर्वभव का मित्र सीधमंकल्पयासी महान् श्रद्धा का धारक देव हूँ । क्योंकि तुम पीपयशाळा में अष्टमभवत तप ग्रहण करके मुझे मन में रखकर स्थित हो अर्थात् मेरा स्मरण कर रहे हो, इसी कारण हे देवानुत्पिय ! मैं सीध यहाँ आया हूँ । हे देवानुत्पिय ! बताओ तुम्हारा क्या इष्ट कार्य करूँ ? तुम्हें क्या दूँ ? तुम्हारे किसी संबंधी को क्या दूँ ? तुम्हारा मनो-याचित्त क्या है ?’

७२—तए नं से अमरं कुमारे तं पुष्पसंगतिं देवं अंतलिबलपडिवधं पासइ । पासित्ता हट्ठुडं पोसहं पारेइ, पारिसा करयलं अंजलि कट्टु एवं वयासी—

एवं एतु देवानुत्पिया । मम चूलमाउयाए धारिणीए देवीए अयमेयाह्वे अकालबोहते पाठभूते-यमाओ नं तामो अम्मयाओ । तहवे पुष्पमेणं जाव विणिज्जामि । तं एवं तुमं देवानुत्पिया । मम चूलमाउयाए धारिणीए देवीए अयमेयाह्वे अकालबोहसं विणेहि ।

तत्पश्चात् अभयकुमार ने आकाश में स्थित पूर्वभव के मित्र उस देव को देखा । देखकर वह हृष्ट-मुष्ट हुआ । पीपय का पारा-पूर्ण किया । फिर दोनों हाथ मस्तक पर जोड़ कर इस प्रकार कहा— ‘हे देवानुत्पिय ! मेरी छोटी माता धारिणी देवी को इस प्रकार का अकाल-दोहद उत्पन्न हुआ है कि वे माताएँ धन्य हैं जो अपने अकाल मेघ-दोहद का पूर्ण करती हैं यावत् मैं भी अपने दोहद को पूर्ण करूँ ।’ इत्यादि पूर्व के समान सब कथन यहाँ समझ लेना चाहिए । सो हे देवानुत्पिय । तुम मेरी छोटी माता धारिणी देवी के इस प्रकार के दोहद को पूर्ण कर दो ।’

अकाल-मेघशिक्षा

७३—तए नं से देवे अमरं कुमारेणं एवं वुत्ते समाणे हट्ठुडं अमयकुमारं एवं वयासी— ‘तुमं नं देवानुत्पिया ! गुणिव्यवधीतस्ये अच्छाहि । ग्रहं तव चूलमाउयाए धारिणीए देवीए

प्रथम अध्यायन : उल्लिख्यज्ञात ]

अथमेयाह्वं 'दोहलं विणेमोति' कट्टु, अथयस्स कुमारस्स भंतिपाओ पडिणिबलमति उत्तरपुरच्छिमे णं वेमारपयए वेउड्वियसमुग्घाएणं समोहणति, समोहणइत्ता र दंड नित्तिरति, जाव बोच्चं पि वेउड्वियसमुग्घाएणं समोहणति, समोहणत्ता वि सविज्जुयं सफुत्तियं तं पंचवण्णमेहणिनाओवसोहिंयं दिव्यं पाउसत्तिरि दिव्यवेइ । अथए कुमारे तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छत्ता अमयं कुमारं एवं वयासी ।

तत्पश्चात् यह देव अभयकुमार के ऐसा कहने पर हर्षित और संतुष्ट होकर बोला—देवानुप्रिय ! तुम निश्चिन्त रहो और विश्वास रखो । मैं तुम्हारी लघु मत्त के इस प्रकार के इस दोहद की पूर्ति किए देता हूँ ।' ऐसा कहकर अभयकुमार के लिए निकलकर उत्तरपूर्व दिशा में, वैमार गिरि पर जाकर वैज्रिय समुद्रघात कर करके सख्यात योजन प्रमाण वाला दंड निकालता है, यावत् दूसरी बार भी वैज्रिय है और गर्जना से युक्त, विजली से युक्त और जल बिन्दुओं से युक्त पाँच वर्ष धागे शोभित दिव्य वर्षा ऋतु की दोमा की विज्रिया करता है । विज्रिया करने जहाँ अभय कुमाता है । आकर अभयकुमार से इस प्रकार कहता है—

७४—एवं सत्तु देवानुप्पिया ! मए तव पिमहुमाए सगग्गिया सफुत्तिया पाउसत्तिरी विउड्विया । तं विणेउ णं देवानुप्पिया ! तव धुल्लमाउया धारिणी अकालदोहलं ।

देवानुप्रिय ! मैंने तुम्हारे प्रिय के लिए—प्रसन्नता की खातिर गर्जनायुक्त, विद्युत् युक्त दिव्य वर्षालक्ष्मी की विज्रिया की है । अतः हे देवानुप्रिय ! तुम्हारी छोटी देवी अपने दोहद की पूर्ति करे ।

बोहरपूति

७५—तए णं ते अभयकुमारे तस्स पुव्वसंगत्तियस्स देवस्स सोहम्मकप्पवात्तिमा सोरुत्ता निस्सम्म हट्टुत्तुं सयाओ भवणाओ पडिणिबलमइ, पडिणिबलमत्तिमा जेणामे तेणामेव उवागच्छति, उवागच्छत्ता करयल० अंजलि कट्टु एवं वयासी ।

तत्पश्चात् अभयकुमार उस सौधर्मकल्पवासी पूर्व के मित्र देव से यह बात हर्षित एवं संतुष्ट होकर अपने भवन से बाहर निकलता है । निकलकर जहाँ श्रेणि वहाँ आता है । आकर मस्तक पर दोनों हाथ जोड़कर इस प्रकार कहता है—

७६—'एवं सत्तु ताओ ! मम पुव्वसंगत्तिएणं सोहम्मकप्पवात्तिमा देवेण वि सविज्जुया (सफुत्तिया) पंचवण्णमेहनिनाओवसोहिंया दिव्या पाउसत्तिरी विउड्वियं णं मम धुल्लमाउया धारिणी देवी अकालदोहलं ।'

७७—तए नं ते तेजिए राया अमयस्स कुमारस्स अंतिए एयमहुं सोच्चा णितम्म हहवुद्ध जाव  
कोहुं बियपुरिसे महावेत्ति, सहावित्ता एवं वयासो—‘खिप्पामेव भो देवाणप्पिधा ! रायणिहं नयर  
सिपाअग-तिय-चउह-चउर-चउरमुह-महापह-पहेसु आसित्तित्त जाव सुयंधवरगंधियं गंधवट्टिमुयं  
करेह । करित्ता य मम एयमाणत्तियं वच्चप्पिएह ।’ तते नं ते कोहुं बियपुरिसा जाव पच्चप्पिण्णि ।

तत्परश्चान् थेलिक राजा, अमयकुमार से यह बात सुनकर और हृदय में धारण करके  
हसित व मनुष्ट हुआ। याचन उसने कौटुम्बिक पुरषों (सेवकों) को बुलवाया। बुलवाकर इस भाँति  
कहा— देशानुग्रियो ! शीघ्र ही राजगृह नगर में शृ गाटक (सिंघाड़े की आकृति के मार्ग), त्रिक (जहाँ  
तीन रास्ते मिलें वह मार्ग), चतुष्क (चौक) और चवूतरे आदि को सीध कर, यावत् उत्तम सुगन्ध से  
सुगन्धित करके गण की यष्टी के समान करो। ऐसा करके मेरी आज्ञा वापिस लीं। तत्परश्चान् ने  
कौटुम्बिक पुरष आज्ञा का पालन करके यावत् उस आज्ञा को वापिस लीं, अर्थात् आज्ञानुसार  
कार्य ही करने की सूचना देने हैं।

७८—तए न मे सेनिए राया होक्चं पि कोडुं बियपुरिसे सदावेड, सदाविता एवं दयासी—  
'निष्पामेड मो देवानुत्तिवा' ह्य-गय-रह-ओहपवरकलितं खाउरंगिणि सेन्न सद्राहेह, सेयणयं ब  
मंभट्टिय वरिचलेह ।'

ते हि लोकेषु जायन्त्युत्पिबन्ति ।

मन्मथान् भंगिक राजा दूगरी वार कीडुम्बिक पुरकों को बुलवाता है और वृमवाकर इन प्रकार कहता है—'देवान्दियो' शीघ्र हो उत्तम भवन, गज, रथ तथा योद्धाओं (पदातियों) सहित चतुर्गो मेला को तैयार करो और मेवनक नामक मधुहम्नी को भी तैयार करो।'

ए बीदुग्धिर पुनर्ध भो द्याता शानन करके यावन् द्याता वापिम गोपते है ।

७२—नए अं मे मेनिष् हाया त्रेमेव पारिणी देत्री तेयामेव उवागच्छति । उवागच्छन्ना  
 जातिभि हेवि एव वदामी—एवं समु देवाणुनिष् । सगन्निवा आव [सविज्जुया सकुत्तिपा रिग]  
 वाउजनिरो वाउज्जुया, न अं मुयं देवाणुनिष् । एवं वदामिदोहसं विमेहि ।

मन्त्रावाचन श्रृंगार साक्षात् प्रार्थना देवी श्री, वही आया। पाकर प्रार्थना देवी से इन  
 ५ वाक्यों में देवानुग्रह। इस प्रकार तुम्हारी अभिलाषा अनुसार मर्जना को ध्वनि, विजयी तथा  
 ५ वाक्यों में दृष्टि देवी वही को सुखसा प्रदान है। मन्त्रावाचन देवानुग्रह ! तुम अपने मन्त्रा-  
 वाचन को मन्त्रावाचन करो।

८. — अथ यथा कालो देवो मे निरुत्तमं रक्षा एवं कृत्वा समागो हृदयुता, त्रैलोक्ये मन्त्रगो  
देवेन उवाच— उवाच— अथ यथा कालो देवो मे निरुत्तमं रक्षा एवं कृत्वा समागो हृदयुता, त्रैलोक्ये मन्त्रगो  
देवेन उवाच— उवाच— अथ यथा कालो देवो मे निरुत्तमं रक्षा एवं कृत्वा समागो हृदयुता, त्रैलोक्ये मन्त्रगो

तत्पश्चात् वह धारिणी देवी श्रेष्ठिक राजा के इस प्रकार कहने पर दृष्ट-नुष्ट ह  
स्नानगृह था, उमी धोर धाई । धाकर स्नानगृह में प्रवेश किया । प्रवेश करके मन्  
र स्नान किया, बन्धकर्म किया, कौमुक, मगन धीर प्रायश्चित्त किया । फिर क्या कि  
है—यैरी मे उमम नूपुर पहने, (कमर में मणिज्जटिन करधनी, वधस्थान पर द्वार, हाथों  
नियों में धौगुडियो धारण की, बाजूबधों में उमकी भुजाएँ स्तम्भ हो गईं, ) यावत् प्राका  
देक मणि के गमान प्रभा बाने वस्त्रों को धारण किया । वस्त्र धारण करके तेधनक नामक  
प्राकट होकर, समृतमयन में उरुद्विज्ज्ञान हुए पंन के समूह के गमान देवत चामर के धानों कणी  
पजानी हुई रवाना हुई ।

८१—तए नं मे सेनिए राया व्हाए बयबलिवग्गमे जाव (कयकोउय-मंगल-या  
महापामरणासंविद्यतरीरे) सरितरीए हरिवग्गवरगए सकोरंटमत्तकामिणं दुत्तंणं परिज्ज  
चामराहि बोद्धवमाणे धारिणि देवि विट्ठो धणुगवत्तइ ।

तत्पश्चात् श्रेष्ठिक राजा ने स्नान किया, बन्धकर्म किया, कौमुक, मगन प्रायश्चित्त  
। किन्तु बहुमन्य धाम्पणों में धारी की सुगोभिन किया । सुगन्धिन होकर, श्रेष्ठ गध  
पर प्रान्द होकर, सोरंट वध के तूनों की माला बाने दान की मस्तक पर धारण  
: चामरों में बिजाते हुए धारिणी देवी का अनुगमन किया ।

८२—तए नं मा धारिणी देवी सेनिएणं रणा हरिवग्गवरगएणं विट्ठो विट्ठो मम  
। मगा, हय-मय-रह-जोह-कलियाए चाउरंगिणीए सेनाए तद्धि संपरिवट्ठा महमा भट्ट-वडग  
विज्जता समिकडुए ताम्भुईए जाव' बुद्धिमिणिघोसनादितरवेणं रायगिहे नगरे सिपाडग  
वक-वक्कर जाव (चउम्भुह) महापहपहेसु नापरज्जेणं अभिनदिवज्जमाणा अभिनदिवज्ज  
मेव वेमारगिरिपय्मए तेणामेव उवागवत्तइ । उवागविज्जता वेमारगिरिकडगतडपायमूले प्रा  
उजाणेसु य, काणणेसु य, वणेसु य, वणसंठेसु य, रक्खेसु य, मुक्खेसु य, पुम्भेसु य, लयामु य, व  
कंदरामु य, दरीमु य, बुद्धीसु य, बहेसु य, कक्खेसु य, नदीमु य, संगमेसु य, विवरा  
द्रमाणी य, वेक्खमाणी य, भज्जमाणी य, पत्ताणि य, पुत्ताणि य, कलाणि य, पत्तवाणि  
हमाणी य, माणेमाणी य, अण्णायमाणी य, परिभज्जमाणी य, परिमाएमाणी य, वेमारगि  
बोहलं विण्णमाणी सम्भो समंता धाहिइति । तए नं धारिणी देवी विणोतदोहला संयुम  
मोहत्ता जाया यावि होरया ।

श्रेष्ठ हाथी के स्कंध पर बैठे हुए श्रेष्ठिक राजा धारिणी देवी के पीछे-पीछे चले । ध  
धरव, हाथी, रथ धीरे धोड़ाधों की चतुरंगी सेना में परिवर्तित थी । उसके चारों धीरे  
नी का समूह घिरा हुआ था । इस प्रकार सम्पूर्ण समूह के साथ, सम्पूर्ण दृष्टि के साथ,  
मि के निषेध के साथ राजगृह नगर के शृंगाटक, त्रिक चतुष्क धीरे चतुर धादि में होकर  
हुँस राजमार्ग में होकर निकली । नागरिक लोगों ने पुनः पुनः उमका अभिनन्दन वि  
द्वान् वह जहाँ वेमारगिरि पर्वत था, उमी धोर धाई । धाकर वेमारगिरि के कटकत मे



तलहटी में, दम्पतियों के श्रीडास्थान आगमों में, पुण्य-पत्र में गणन उद्यानों में, गामान्य वृ-  
युक्त काननों में, नगर में दृश्यती वनों में, पत्र जाल के वृक्षों के समूह गाने वनगणों में, वृ-  
युक्तकी आदि के गुच्छाओं में, बाग की भांती आदि गुच्छों में, घास घादि की सजावटें घासों  
में नागरवेल आदि की घनियों में, गुफाओं में, दरी (नृपान आदि के रहने के गडहों में), गुरी  
खोदे आप ही घने जल की तर्पणों में, हृदी-नानाओं में, घन्य जन गाने काननों में, नदियों में,  
के संगमों में और अन्य जलाशयों में, अर्थात् इन गाने घामगम गरी होती हुई, वहाँ के दृ-  
देखती हुई, स्नान करती हुई, पत्रों पुष्पों फलों और वस्त्रों (कोपनों) को ग्रहण करती हुई,  
करके उनका मान करती हुई, पुष्पादिक को ग्रहणी हुई, फल आदि का भक्षण करती हुई और  
को वाँटती हुई, वैभारगिरि के समीप की भूमि में अपना दोहद पूर्ण करती हुई चारों ओर पर्व  
करने लगी। इस प्रकार धारिणी देवी ने दोहद को दूर किया, दोहद को पूर्ण किया और दोहद का  
सम्पन्न किया।

८३—तए नं सा धारिणी देवी सेयनगमंगहर्षि कुरडा समानी सेणिएणं हरियसंघराणएणं  
विदुधो विदुधो समणुगम्ममाणमगा हयय जाव<sup>१</sup> रहें जेणव रायगिह नगरे तेणव उवागच्छइ।  
उवागच्छिता रायगिहं नगरं मज्झं मज्झेणं जेणामेव तए मवणं तेणामेव उवागच्छति। उवागच्छिता  
विडलाहं माणुरसाहं भोगभोगाहं जाव (पच्चणुमवमाणो) विहरति।

तत्पश्चात् धारिणी देवी सेचनक नामक गधहस्ती पर आरोह्य हुई। श्रीशिव राजा भौंछ हाथी  
के स्पर्ध पर बैठकर उसके पीछे-पीछे चलने लगे। अश्व हस्ती आदि से घिरी हुई वह जहाँ राजगृह  
नगर है, वहाँ जाती है। राजगृह नगर के बीचोबीच होकर जहाँ अपना भवन है, वहाँ जाती है।  
यहाँ आकर मनुष्य सम्बन्धी विपुल भोग भोगती हुई विचरती है।

देव का विसर्जन

८४—तए नं से अभयकुमारे जेणामेव पोसहसाला तेणामेव उवागच्छइ। उवागच्छिता  
पुव्वसंगतियं त्वं सक्कादेइ, सम्माणेइ। तक्कारिता सम्मानिता पडिधिसज्जेति।

तत्पश्चात् वह अभयकुमार जहाँ पीपघशाला है, वही जाता है। आकर पूर्व के मित्र देव का  
गरकार-गम्मान करके उसे विदा करता है।

८५—तए नं से देवे सगज्जियं पंचयणं महोवसोहिं दिव्यं पाउसतिरि पडितारहि,  
पडितारहिता जामेव विसि पाउसमुए, तामेव विसि पडिगए।

तत्पश्चात् अभयकुमार द्वारा विदा किया हुआ वह देव गर्जेना से युक्त पचरंगी मेघों से  
गुनीभित दिव्य वर्षा-सदृश का प्रतिस्तरण करता है, अर्थात् उसे समेट लेता है। प्रतिस्तरण करते  
जिग दिना से प्रकट हुआ था, उसी दिना में चला गया, अर्थात् अपने स्थान पर गया।

बभं की सुरता

८६—तए नं सा धारिणी देवी संसि अकालवोहसंसि विणीयंसि संमानियवोहसा तए

प्रथम अध्यायन : उत्तिस्तपपाद ]

गम्भस्स घणुकंपणद्धाए जयं चिद्धति, जयं घासयति, जयं सुवति, आहारं वि य णं आहारे  
णाइत्ति<sup>१</sup> नातिकुदुयं नातिकसायं नातिमंसि<sup>२</sup> नातिमहुरं जं तस्स गम्भस्स हिमं मिमं परथयं  
काते । आहारं आहारेमाणी नाइचित्तं, नाइसोगं, नाइदेणं, नाइमोहं, नाइमयं, नाइपरि  
वधगपचिता-सोप-मोह-मय-परित्तासा उदु-मयमाण-सुहेहि<sup>३</sup> भोयण-वद्धामण-गंध-मत्तासंकारेहि तं  
सुहंसुहेणं परिवहति ।

तत्पश्चान् धारिणी देवी ने अपने उम अकास दोहद के पूर्ण होने पर दोहद को सम्भ  
किया । वह उम गर्भ को अनुकम्पा के लिए, गर्भ को बाधा न पहुँचे इस प्रकार यतना-सावधाना  
खड़ी होती, यतना से बैठती और यतना में ध्यान करती । आहार करती तो ऐसा आहार करते  
अधिक सोना न हो, अधिक कटुक न हो, अधिक कसैला न हो, अधिक खट्टा न हो, और अधिक  
नी न हो । देन और काम के अनुगार जो उस गर्भ के लिए हिनकारक (बुद्धि-आयुष्य भा  
कारण) हो, मित (परिमित एवं इन्द्रियो को अनुकूल) हो, पथ्य (भारोग्यकारक) हो । वह  
चिन्ता न करती, अति शोक न करती, अति दैन्य न करती, अति मोह न करती, अति भय न  
और अति त्रास न करती । अर्थात् चिन्ता, शोक, दैन्य, मोह, भय और त्रास से रहित होकर सब प्रा  
में सुखप्रद भोजन, वस्त्र, गंध, माला और धनकार आदि में सुखपूर्वक उस गर्भ को वहन करने लग

मेजुमार का जन्म

८७—सए णं सा धारिणी देवी नवण्हं मासाणं बहूपडिपुण्णाणं अट्ठमाण राइविमाणं बी  
ताणं अट्ठरत्तकालसमयसि सुकुमासपाणिपायं जाव<sup>१</sup> सरवंगमु<sup>२</sup>दरंगं वारयं पयाया ।

तत्पश्चात् धारिणी देवी ने नौ मास परिपूर्ण होने पर और साढ़े सात रात्रि-दिवस बीत  
पर, अर्धरात्रि के समय, अत्यन्त कोमल हाथ-पैर वाले यावत् परिपूर्ण इन्द्रियों से युक्त शरीर  
सज्जनों और व्यंजनों से सम्पन्न, मान-उन्मान-प्रमाण से युक्त एवं सर्वांग-सुन्दर शिशु का प्रसव कि

८८—सए णं तासो अंगपडिमारियासो धारिणि देवि नवण्हं मासाणं जाव<sup>१</sup> वारयं प  
पासंति । पासिता सिगं तुरियं चवलं वेइयं, जेणेव सेणिए राया तेणेव उवागच्छंति, उवागधि  
सेणियं रायं जएणं विजएणं वट्ठावेंति । वट्ठाविता करयत्तपरिगगहिंयं तिरसायत्तं मयए अंजलि  
एवं वयासी ।

तत्पश्चात् दासियों ने देखा कि धारिणी देवी ने नौ मास पूर्ण हो जाने पर यावत् पु  
जन्म दिया है । देख कर हर्ष के कारण शीघ्र, मन में त्वरा वाली, काम में चपल एवं वेग वा  
दासियों श्रेणिक राजा के पास आती हैं । आकर श्रेणिक राजा को जय-विजय शब्द कह कर व  
देती हैं । वघाई देकर, दोनों हाथ जोड़कर, मस्तक पर धावतन करके अंजलि करके इस  
कहती हैं ।

८९—एवं खलु वेवाणुप्पिया । धारिणी देवी नवण्हं मासाणं जाव<sup>१</sup> वारयं पयाया ।  
अण्हे वेवाणुप्पियाणं पियं निवेएयो, पियं मे भवउ ।

में, दम्पतियों के श्रीडास्यान आगमों में, पुनः-पुनः में मङ्गल उपायों में, सामान्य वृत्तों में, नगर से दूरवर्ती वनों में, गङ्गा जल के वृत्तों के समूह या वनगण्डों में, वृत्तों की आदि के गुच्छाओं में वाग की भाँटी आदि गुच्छों में, घास आदि की लताओं वर्षा की गरवेल आदि की वल्लियों में, गुफाओं में, दरी (शूगात आदि के रहने के गड्ढों में), चुम्बो (किं आप हो बने जल की तनेया) में, हृदी-तानाओं में, अन्य जन गाने कच्छों में, नदियों में, नदि तमों में और अन्य जलाशयों में, अर्थात् इन नगर के आगम गङ्गी होनी हुई, वहाँ के दृश्यों की हुई, स्नान करनी हुई, पत्रों पुष्पों फलों और पत्तियों (कीर्तनों) को ग्रहण करती हुई, सः उनका मान करती हुई, पुष्पादिक को सूघनी हुई, फल आदि का भक्षण करती हुई और दूसरों को दत्तती हुई, वैभारगिरि के समीप की भूमि में अपना दोहद पूर्ण करती हुई चारों ओर परिभ्रमण करती लगी। इस प्रकार धारिणी देवी ने दोहद को दूर किया, दोहद को पूर्ण किया और दोहद को प्राप्त किया।

८३—तए नं सा धारिणी देवी सेयनतमंयहरिच कुरडा समानी सेणिएणं हरियसंयवरणं  
प्रो विट्ठलो समणुग्ममाणमगा हयगय जाव' रहें जेणें रायगिहे नगरे तेणें उवागच्छता  
अगच्छिता रायगिहं नगरं मज्झं मज्झेणं जेणामेव सए भवणं तेणामेव उवागच्छति । उवागच्छिता  
उलाहं माणुसाहं भोगभोगाहं जाय (पच्चणुमयमाणी) विहरति ।

तत्पश्चात् धारिणी देवी सेचनक नामक गधहस्ती पर आरोहण हुई। श्रेष्ठिक राजा श्रेष्ठ हाथी स्वयं पर बैठकर उसके पीछे-पीछे चलने लगे। अश्व हस्ती आदि में घिरी हुई वह जहाँ राजगृह पर है, वहाँ आती है। राजगृह नगर के बीचोबीच होकर जहाँ अपना भवन है, वहाँ आती है। हाँ आकर मनुष्य सम्बन्धी विपुल भोग भोगती हुई विचरती है।

४ का विसर्जन

८४—तए नं से अभयकुमारो जेणामेव पोसहसाता तेणामेव उवागच्छता । उवागच्छिता  
ध्वसंतितियं देवं सबकारेह, सम्मानेह । सबकारिता सम्मानिता पडिविसज्जेति ।

तत्पश्चात् वह अभयकुमार जहाँ पीपघसाता है, वही आता है। आकर पूर्व के मित्र देव का तत्कार-सम्मान करके उसे विदा करता है।

८५—तए नं ॥ देवे सगज्जियं पंचवणं महोवसोहियं दिव्यं पाउससिरि पडिसाहरति,  
पडिसाहरिता जामेव दिसि पाउब्भए, तामेव दिसि पडिगए ।

तत्पश्चात् अभयकुमार द्वारा विदा किया हुआ वह देव गर्जना से युक्त पंचरंगी मेघों से सुशोभित दिव्य वर्षा-तरंगों का प्रतिसंहरण करता है, अर्थात् उसे समेट लेता है। प्रतिसंहरण करके जिग दिसा से प्रकट हुआ था, उसी दिसा में चला गया, अर्थात् अपने स्थान पर गया।

५ वं की मुरसा

८६—तए नं सा धारिणी देवी तंति अकालदोहसंसि विणीयंसि संमानियडोहसा तत्त

प्रथम अध्यायन : उत्तिष्ठज्ञात ]

तथा धूप इस प्रकार जलाओ कि उनकी सुगंध से सारा वातावरण मधुमया जाय कारण नगर सुगंध की गुटिका जैसा बन जाए, नट, नर्नक जल, मल, भौटिक (मु (विद्रूपक) कपाकार, प्लवक (तेराक) नृत्यकर्ता, धादकतण—शुभाशुभ फल व पर चढ़ कर खेल दिखाने वाले, चित्रपट दिखाने वाले, तूणा-वीणा बजाने वाले, त धादि लोगों में से युक्त करो एव सर्वत्र (मंगल) गान कराओ । कारागार से कैदियों को और नाप की वृद्धि करो । यह सब करके मेरी आज्ञा वापिस लीयो ।

याचन कोटम्बिक पुरष राजाजा के अनुसार कार्य करके भ्राजा वापिस देते है

६१—तए न से सेणिए राया अट्टारसतेणीप्यतेणीमी सहावेति । सहावि  
 'गच्छह नं तुम्हे वेदाणुप्यिया । रायगिहे नगरे अस्मिन्नराहिरिए उस्सुक्कं उ  
 अदेडिमकुड'डिमं अवरिमं अघारणज्जं अणुदुयसूहं अमितायसत्तवामं गणिया  
 अणेतात्तालयराणवरितं पमुदयपक्कीलियानिरामं जहूरिहं डिइवडियं वसविधिसियं  
 करित्ता अयमाजसियं पक्कवियणह ।'

ते वि करेन्ति, करिता सहेव पञ्चप्पिणंति ।

तत्पश्चात् श्रेष्ठिक राजा कुम्भकार आदि जाति रूप अठारह श्रेष्ठिये उपविभाग रूप अठारह श्रेष्ठियों को बुलाता है। बुलाकर इस प्रकार कहता है—  
जामो और राजगृह नगर के भीतर और बाहर दस दिन की स्थितिपतिका (कुल होने वाली पुनर्जन्मोत्पत्ति की विधिपति रीति) कराओ। वह इस प्रकार है—दस (बुद्धि) लेना बंद किया जाय, गामो घमेरह का प्रतिवर्ष लगने वाला कर माफ किया किमानी आदि के घर में बेमार लेने आदि के लिए राजपुद्गो का प्रवेश निषिद्ध (अप्रराध के अनुसार लिया जाने वाला द्रव्य) न लिया जाय, किसी को श्रृष्टी न भर्षात् राजा की तरफ से सब का श्रृष्ट चुका दिया जाय, किसी देनदार को पक धोपणा कर दो। तथा सर्वत्र मृदंग आदि बाजे बजवाओ। चारों ओर विकसि मालाएँ लटकाओ। गणिकाएँ जिनमें प्रधान ही ऐसे पात्रों से नाटक करवाओ। (प्रेक्षाकाव्यो) से नाटक करवाओ। ऐसा करो कि लोग हर्षित होकर श्रीइ यथायोग्य दस दिन की स्थितिपतिका करो-कगामो और मेरी यह आज्ञा मुझे वापिस

राजा थ्रेंलिक का यह आदेश सुनकर वे इसी प्रकार करते हैं और राजाजा

६२—तए णं से सेणिए राया बाहिरियाए उबट्टाणसालाए सीहासणवर  
सन्निसन्ने सहएहि य माहस्सिएहि य सयसाहस्सिएहि य जाएहि दाएहि मायेहि दस  
पडिच्छेमाणे पडिच्छेमाणे एवं ष णं विहरति ।

उत्पश्चात् श्रेणिक राजा बाहर की उपस्थानशाला (सभाभवन) में, पूर्व व

अनेक संस्कार

६३—तए नं तस्स अम्मापियरो पदमे दिवसे जातकम्मं करेन्ति, करित्ता वित्तिपदिवसे जागरियं करेन्ति, करित्ता सत्तिपदिवसे चंदमूरवंसणियं करेन्ति, करित्ता एवामेय निव्वसे अमुइजातकम्मकरणे संपत्ते वारसाहदिवसे विपुलं अत्तण पाणं खाइमं साइमं उयवल्लडावेन्ति, उयवल्लडावित्ता मित्त-पाइ-णियाग-सयण-संबंधि-परिजणं बलं च बह्वे गणणायग—दंडणायग जाव (राईसर-तलवर-माइविय-कोइ-बिय-मत्ति-महामत्ति-गणग-वोवारिय-अमरुच-वेड-पीठमइ-नगर-निगम-सेट्ठि-सेणावइ-सयवाह-दूय-संपिवाले) आसंतेति ।

तत्पश्चात् उम धानक के भाता-पिता ने पहले दिन जातकर्म (नाल काटना आदि) किया दूसरे दिन जागरिका (रात्रि जागरण) किया । तीसरे दिन चन्द्र-मूर्य का दर्शन कराया । इस प्रकार अनुवि जातकर्म की क्रिया सम्पन्न हुई । फिर बारहवा दिन आया तो विपुल भक्षण, पान, खादिम और स्वादिम वस्तुएँ तैयार करवाटे । तैयार करवाकर मित्र, वधु आदि ज्ञाति, पुत्र आदि निजक जन, बाका आदि स्वजन, दयमुर आदि सम्बन्धी जन, दास आदि परिजन, सेना, और बहुत से गणनायक, दटनायक पायन् [राजा, राजकुमार, तनवर, माडविक, कौटुम्बिक, मंत्री, महामंत्री, गणक, दौवारिक, प्रमाय्य, वेट, पीठमद, नगरवासी, निगमवासी, थोळी, सेनापति, सार्यवाह, दूत और मन्त्रिपाल इन गय] को आमन्त्रण दिया ।

६४—तथो पट्ठा ण्हाया कयवत्तिकम्मा कयकोउयमंगलपायच्छित्ता सव्यासंकार-विभूतिया मइमहासत्तंति भोयणमंडवत्ति तं विपुलं अत्तणं पाणं खाइमं साइमं मित्तपाइ०<sup>१</sup> गणणायग जाव सत्ति पाणाएमाणा वित्ताएमाणा परिमाएमाणा परिभुंजेमाणा एवं च नं विहरइ ।

उगके पश्चात् स्नान किया, वनिकर्म किया, भणितिलक आदि कौतुक किया, पावन् ममम् धानबारा में विभूषित हुए । फिर बहुत विशाल भोजन-मंडप में, उम भक्षण, पान, खादिम और स्वादिम भोजन का मित्र, ज्ञाति आदि तथा गणनायक आदि के साथ आस्वादन, विस्वादन, परस्पर विभाजन और परिभोग करने हुए विचरने लगे ।

मायवरजनसंस्कार

६५—अमियभुत्तरागवा वि य नं समाणा आयांता ओवत्ता परममुइभया तं मित्तनाइनिय मयणमवधिपरिजण०<sup>२</sup> गणणायग०<sup>३</sup> विपुलेणं पुष्क-मंय-मन्सायंकारेणं सवकारेति, संमाणेति, सव्व रिता सम्माणित्ता एवं वयामी—अहंता नं अहं इमस्स वारवस्स गवमयस्स वेव समाणस्स अक्का मेहेम डोहेत्ते पाउअभू, तं होठ नं अहं वारए मेहे नामेणं मेहेकुमारो ।<sup>४</sup> तस्स वारवस्स अम्माविय अउमंवाकचं गोणं गुणनिपट्ठयं मायपेउअं करेन्ति ।

इस प्रकार भोजन करने के पश्चात् कुछ भ्रम में आचमन (कुम्मा) किया । हाय-मुन धीरे-धीरे हुए, परम सुख हुए । फिर उन मित्र, ज्ञाति निजक, स्वजन, सम्बन्धीजन, परिजन आदि तत्पश्चात् आदि का विपुल वस्त्र, गंध, माना और भक्षण करने के संस्कार किया, सम्मान दिया ।

इस प्रकार कहा—वर्षादि हमारा यह पुत्र जब गर्भ में स्थित था, तब हमने

ता को भकाल-मेघ सम्बन्धी दोहद हुआ था । अतएव हमारे इस पुत्र का नाम मेघकुमार होता है । इस प्रकार माता-पिता ने गोलु धर्मान् गुणनिष्पन्न नाम रक्खा ।

कुमार का सालन-पालन

६६—तए नं से मेहकुमारे पंचधाईपरिग्राहि । तंजहा-खोरधाईए, मंडणधाईए, मज्जनधाईए, लावणधाईए, झंकुधाईए । धन्नाहि य बहूहि पुज्जाहि चिसाइयाहि धामणि-वडभि-वडधरि-वडसि-एियाहि पत्तुविय-ईतिगिय-धोरुगिणि-सासिय-सउसिय-वमिलि-सिहलि-धारवि-मुसिदि-पक्कलि-ति-मूह-डि-सबरि-पारसोहि णाणादेसोहि विदेसपरिमडियाहि इंगित-वितिय-परिषय-विधाणिधाहि सनेवपणहियवेसाहि निजणकुससगहि विणीयाहि वेडियाचक्कवास-वरिसधर-कंछुइम-मह्वरगयंद-रिचित्ते हयाओ हयं संहरिज्जमाणे, धंकाओ धंकां परिभुज्जमाणे, परिमिज्जमाणे, धालिज्जमाणे, त्तालिज्जमाणे, रम्मंसि मणिक्कोट्टिमत्तंसि परिमिज्जमाणे परिमिज्जमाणे निस्वायल्लिखाधायंसि रिक्कन्दरमत्तलीने च चंपपायवे सुहंसुहेणं चकुइ ।

तत्पश्चात् मेघकुमार पाँच धायों द्वारा ग्रहण किया गया—पाँच धाएँ उसका पालन-पोषण करने लगी । वे इस प्रकार थी—(१) खोरधात्री—दूध पिलाने वाली धाय, (२) मज्जनधात्री—बस्त्रा-पण पहनाने वाली धाय (३) मज्जनधात्री—स्नान कराने वाली धाय, (४) वीडापनधात्री—खेल खिलाने वाली धाय और (५) अकधात्री—गोद में लेने वाली धाय । इनके अतिरिक्त वह मेघकुमार अगण्य कुञ्जा (कुचट्टी) विलातिका (चित्तान-किरात नामक अनायें देश में उत्पन्न), धामन (बीनी), डमी (बड़े पेट वाली) बबरी (बबर देश में उत्पन्न), वकुण देश की, योनक देश की, पत्तुविक देश की, ईमिनिक, धोरुकिन ल्हामक देश की, लकुम देश की, त्रिबिड देश की, मिहून देश की, प्ररय देश की, लंद देश की, पक्कए देश की, पारम देश की, यहल देश की, मुवंड देश की, धवर देश की, इन प्रकार के देशों की, परदेश-अपने देश से भिन्न राजगृह को सुशोभित करने वाली, इगिन (मुख आदि की ट्टा), चिन्तित (मानसिक विचार) और प्रापित (अभिलषित) को जानने वाली, अपने-अपने देश के धाय को धारण करने वाली, निपुणों में भी अतिनिपुण, विनययुक्त दासियों के द्वारा तथा स्वदेशीय नियों द्वारा और वर्गधरों (प्रयोग द्वारा नपुंसक बनाए हुए पुरुषों), कबुक्तियों और महत्तरको प्रन्तःपुर के कार्य की विन्ता रखने वाली) के समुदाय से घिरा रहने लगा । वह एक के हाथ से दूसरे हाथ में जाता, एक की गोद से दूसरे की गोद में जाता, गा-गाकर बहुलाया जाता, उगली कड़कर चलाया जाता, वीडा आदि से सालन-पालन किया जाता एवं रमणीय मणिजटित फर्श पर चलाया जाता हुआ वामुरहित और व्यापतरहित गिरिगुफा में स्थित चम्पक वृक्ष के समान सुगन्धित बढ़ने लगा ।

६७—तए नं तत्त मेहरस कुमारस्त धम्मापियरो धणपुब्बेणं नामकरणं च पज्जेमणं च एवं कम्मणं च चोलोवणं च महया महया इड्ढोत्तवकारसमुवणं करिसु ।

तत्पश्चात् उस मेघकुमार के माता-पिता ने अनुक्रम से नामकरण, पालने में सुलाना, पैरों से रलाना, चौटी रखना, आदि संस्कार बड़ी-बड़ी श्रद्धा और सत्कारपूर्वक मानवसमूह के साथ सम्पन्न किए ।

## कलाशिक्षण

६८—तए णं तं मेहकुमार अम्मापियगे सातिरेगट्टवासाजायगं सेय (गम्भट्टमे पासे) सोहंनिंति हिहरणमुहुत्तंसि कलापरियस्स उवणेन्ति । तते णं से कलापरिए मेहं कुमारं सेहाइयाओ गणितत्प-  
हाणाओ सउणरतपउज्जवसाणाओ यावत्तारि कलाओ सुत्तओ अ अरयओ अ करणओ ॥ सेहावेति,  
सिखलावेति ।

तत्पश्चात् मेघकुमार जब कुछ अधिक घाट वर्ष का हुआ अर्थात् गर्भ में घाट वर्ष का हुआ तब माता-पिता ने शुभ तिथि, करण और मुहूर्त में कलाचार्य के पास भेजा । तत्पश्चात् कलाचार्य ने मेघकुमार को, गणित जिनमें प्रधान है ऐसी, लेख आदि वाकुनिरुत (पशियों के वाक्य) तक की बहुत-  
कराएँ मूल से, अर्थ से और प्रयोग से मिद करवाएँ तथा सिपलाई ।

६९—संज्ञा—(१) लेहं (२) गणियं (३) रुयं (४) नट्टं (५) गीयं (६) वायं  
(७) सरगयं (८) पोक्खरगयं (९) समतालं (१०) जयं (११) जणवाय (१२) पासयं  
(१३) अट्ठावयं (१४) पोरेकव्व (१५) वगमट्ठियं (१६) अगमविहिं (१७) पाणविहिं  
(१८) वरयविहिं (१९) विलेखणविहिं (२०) सयणविहिं (२१) अउजं (२२) पहेलियं (२३)  
मागहियं (२४) गाहं (२५) मोहयं (२६) सिलोयं (२७) हिरण्यजुत्ति (२८) सुवन्नजुत्ति  
(२९) च्चुन्नजुत्ति (३०) आमरणविहिं (३१) तदणीपट्टिकम्मं (३२) इरियलव्वणं (३३) पुरिस-  
लव्वणं (३४) हयलव्वणं (३५) गयलव्वणं (३६) गोणलव्वणं (३७) कुक्कुडलव्वणं (३८)  
छत्तलव्वणं (३९) डंढलव्वणं (४०) असिलव्वणं (४१) मणिलव्वणं (४२) कागणिलव्वणं  
(४३) वायुविज्जं (४४) छंमारभाणं (४५) नगरभाणं (४६) वूहं (४७) पडिबूहं (४८) चारं  
(४९) पडिचारं (५०) ववक्खूहं (५१) गरलवूहं (५२) सगडवूहं (५३) जुडं (५४) निजुडं  
(५५) जुडातिजुडं (५६) अट्ठिजुडं (५७) मुट्ठिजुडं (५८) याहुजुडं (५९) सपाजुडं  
(६०) ईसयं (६१) छट्ठवयायं (६२) धणुधेयं (६३) हिरण्यपायं (६४) सुवन्नपायं (६५)  
मुल्लेहं (६६) वट्ठलेहं (६७) नालियालेहं (६८) पत्तच्छेज्जं (६९) कडगच्छेज्जं (७०) सज्जीवं  
(७१) निज्जीवं (७२) सउणरदमिति ।

यह कलाएँ इस प्रकार हैं—(१) लेपन (२) गणित (३) रूप बदलना (४) नाटक (५)  
गायन (६) वाद्य यंत्राणा (७) स्वर जानना (८) वाद्य सुधारना (९) समान ताल जानना (१०)  
त्रुमा खेलना (११) लोभो के साथ वाद-विवाद करना (१२) पासों से खेलना (१३) चौपड़ खेलना  
(१४) नगर की रक्षा करना (१५) जल और मिट्टी के संयोग से वस्तु का निर्माण करना (१६) धान्य  
निपजाना (१७) नया पानी उत्पन्न करना, पानी को सम्कार करके शुद्ध करना एवं उत्पन्न करना  
(१८) नवोन वस्त्र बनाना, रंगना, गीना और पहनना (१९) विलेपन की वस्तु को पहचानना, नेपार  
करना, लेप करना आदि (२०) दाय्या बनाना, दायन करने की विधि जानना आदि (२१) धार्मी छंद  
को पहचानना और बनाना (२२) पहेलियाँ बनाना और ब्रूमना (२३) मागधिका अर्थात् मगध देश  
की भाषा में गाथा आदि बनाना (२४) प्राकृत भाषा में गाथा आदि बनाना (२५) गीति छंद बनाना  
(२६) स्मोक (प्रनुत्तुप् एट्ट) बनाना (२७) गुण्यं बनाना, उसके धाभूयण बनाना, पहनना आदि  
(२८) नई धारी बनाना, उसके धाभूयण बनाना, पहनना आदि (२९) चूर्ण-गुलाब धारी आदि





उस युग में कलाशिक्षक का कितना सम्मान समाज में था, यह तथ्य भी प्रस्तुत सूत्र से प्रष्ट होता है ।

कलाचार्य को प्रीतिदान

१००—तए णं से कलायरिए मेहं कुमारं सेहाइयाओ गणियप्पहाणाओ सउणिरप्पआ-  
यसाणाओ बायत्तरि कलाओ सुत्तओ य अत्थओ य करणओ य सिहावेति, सिवसावेति, सिहावेत्ता  
सिवसावेत्ता अम्मापिऊणं उवणेति ।

तए णं मेहस्स कुमारस्स अम्मापियरो तं कलायरियं मधुरेहि वयणेहि विपुलेण वरय-गंय-  
मत्तासांकरेणं सबकारेति, सम्मानेति, सबकारिता सम्मानिता विपुलं जीवियारिहं पीइवानं वसयति ।  
इतइत्ता पडिविसउजेति ।

तत्पश्चात् वह कलाचार्य, मेघकुमार को गणित प्रधान, लेखन से लेकर शकुनिरुत पर्यंत  
बहुतर कलाएँ सूत्र (मूल पाठ) से, अर्थ से और प्रयोग से सिद्ध कराता है तथा सिखलाता है । निंद  
करवाकर और सिललाकर माता-पिता के पास वापिस ले जाता है ।

तब मेघकुमार के माता-पिता ने कलाचार्य का मधुर वचनों से तथा विपुल वस्त्र, गध, भाला  
और अलंकारों से सत्कार किया, सम्मान किया । सत्कार-सम्मान करके जीविका के योग्य विपुल  
प्रीतिदान दिया । प्रीतिदान देकर उसे विदा किया ।

१०१—तए णं मेहे कुमारो बायत्तरिकलापंडिए णयंयमुत्तपडिओहिए अट्ठारस-विहियणार-  
देसीभासा-वितारए गोइरई गंयव्वनट्टुकुससे हयजोहो गयजोहो रहजोहो बाहुजोहो बाहुप्पमहो अलं-  
भोगतमभे साहसिए विद्यालचारी जाए यावि होत्था ।

तब मेघकुमार बहुतर कलाओं में पंडित हो गया । उसके नौ अंग—दो कान, दो नेत्र, दो  
नासिका, त्रिहस्ता, त्वचा और मन आत्मावरणा के कारण जो सोये-से थे अर्थात् अत्यन्त बेतना बाले थे  
वे जागृत हो गए । वह अट्ठारह प्रकार की देशी भाषाओं में कुशल हो गया । वह गीत में प्रीति  
वाला, गीत और नृत्य में कुशल हो गया । वह अश्वयुद्ध, रथयुद्ध और बाहुयुद्ध करने वाला बन गया  
अरन्तरी बाहुओं में विपरीत वा मर्दन करने में समर्थ हो गया । भोग भोगने का सामर्थ्य उसमें था गया  
साहसी होने के कारण विकालचारी—यात्री रात में भी चैन पड़ने वाला बन गया ।

मेघकुमार का वाणिज्य

१०२—तए णं तस्स मेहकुमारस्स अम्मापियरो मेहं कुमारं बायत्तरिकलापंडितं जाव विद्या-  
चारोत्रायं पातंति । पासिता अट्ठ पासायडिसए कारेति अअभगवमसियपहसिए विव मणि-वण-  
रयण-मत्तिविले, बाउड तविअपवेअयंती-यडागा-दुत्ताहउत्तकसिए, तुंणे, गगणतलममिसंयमा-  
तिहरे, आचंनररयणपंअरिअन्मियअ मणिअणयूमियाए, विपसियसपपत्तुंइरीए, तिसयरयण-  
अरिअए नानामणिमयडामातंतिए, अंगो बहि अ सण्णे तवणिरअइसवामुयापरधरे, गुहकासे सणि-  
रीअवे पासाओत् जाव (हरिमणिअरे अमिअवे) पडिअवे ।

तत्पदवान् मेघकुमार के माता-पिता ने मेघकुमार को बहुत कलाओं में पंडित यावन् विकाल-पारी हुआ देखा । देख कर आठ उत्तम प्रासाद बनवाए । वे प्रासाद बहुत ऊँचे थे । अपनी उज्ज्वल कान्ति के समूह में हँसते हुए से प्रतीत होते थे । मणि, सुवर्ण और रत्नों की रचना में विचित्र थे । वायु से फहराती हुई घोर विजय की सूचित करने वाली बैजयन्ती पताकाओं से तथा छत्रातिच्छत्रों (एक दूसरे के उपर रहे हुए छत्रों) में युक्त थे । वे इतने ऊँचे थे कि उनके गिलर आकाशतल का उल्लंघन करते थे । उनकी जालियों के मध्य में रत्नों के पंजर ऐसे प्रतीत होते थे, मानो उनके नेत्र हों । उनमें मणियों और कनक की भूमिकाएँ (स्तूपिकाएँ) थी । उनमें साक्षात् भयवा चित्रित किये हुए शतपत्र घोर पुण्डरीक कमल विकसित हो रहे थे । वे तिलक रत्नों एवं भद्र चन्द्रों—एक प्रकार के सोपानों से युक्त थे, भयवा भित्तियों में चन्दन आदि के आलेख (हाथे) से चित्रित थे । नाना प्रकार की मणिमय मालाओं से ससंकृत थे । भीतर घोर बाहर से चिक्ने थे । उनके प्रागम में सुवर्णमय रुचिर बालुका बिछी थी । उनका स्पर्श मुसप्रद था । रूप बड़ा ही गोभन था । उन्हें देखते ही चित्त में प्रसन्नता होनी थी । यावत् [वे महल दर्शनीय सुन्दर एवं] प्रतिरूप थे—अत्यन्त मनोहर थे ।

१०३—एवं च जं महं चवर्णं कारेत—अनेकलं मनयसंनिविष्टं लोलद्विडम्-सालभंजियां ध्रुवागम-मुक्य बह्वेद्या-तोरण-वररूप-सालभंजिया-मुसिलिष्ठ-विस्तिष्ठ-लट्ठ-संठित-पसरप-वेद-लिय-अंम-नाणामणि-कणम-रयणसंचितउज्जलं घट्टसम-मुविमल-निचिय-रमणिगज-भूमिभागं ईहा-मिय० जाव' मसिचित' लंभुगय-बह्वेद्यापरिगयाभिरामं विरजाहरजमलजुलजुलं पिय अरुची-सहस्र-मालणीय' लघगसहस्रकलिय' मिसमाणं मिमिसमाणं चक्रुल्लोपणलेसं मुहकासं सस्तिरीयकवं लंघण-रयणपूमिमां नाणाविहृषंघमनघंटा-पड्या-परिमंजियागतिरं घवलमरीधिकवय' विनिभूम्यंत्तं लाउहलोहमहियं जाव' गंधवट्टिभूयं पासादीयं हरिसल्लिगं अभिहवं पडिहवं ।

घोर एक महान् भवन (मेघकुमार के लिए) बनवाया गया । वह अनेक सैकड़ों स्तंभों पर बना हुआ था । उसमें लीलायुक्त अनेक पुतलियों स्थापित की हुई थी । उसमें ऊँची घोर सुनिमित्त बच्चरत्न की वेदिका थी घोर तोरण थे । मनोहर निमित्त पुतलियों सहित उत्तम, मोटे एवं प्रशस्त वैभूय रत्न के स्तंभ थे, वे विविध प्रकार के मणियों सुवर्ण तथा रत्नों से संचित होने के कारण उज्ज्वल दिखाई देते थे । उनका भूमिभाग विलकुल सम, बिशाल, पक्का और रमणीय था । उस भवन में ईहा-मृग, वृषभ, वृण, मनुष्य मकर आदि के चित्र चित्रित किए हुए थे । स्तंभों पर बनी बच्चरत्न की वेदिका से युक्त होने के कारण रमणीय दिखाई पड़ता था । समान थोड़ी में स्थित विद्याधरो के युगल यत्र द्वारा चलते दीव पड़ते थे । वह भवन हजारों किरणों से व्याप्त घोर हजारों चित्रों से युक्त होने से देदीप्यमान घोर प्रतीव देदीप्यमान था । उसे देखते ही दर्शक के मन में उसमें चिपक में जाते थे । उसका स्पर्श मुसप्रद था और रूप शोभा सम्पन्न था । उसमें सुवर्ण, मणि एवं रत्नों की स्तूपिकाएँ बनी हुई थी । उसका प्रधान शिखर नाना प्रकार की, पाँच बलों की एवं घटाओं सहित पताकाओं से मुशोभित था । वह चट्टी घोर देदीप्यमान किरणों के समूह को फैला रहा था । वह लिपा था, धुला था और चंदोवे से युक्त था । यावत् वह भवन गंध की वर्ती जैसा जान पड़ता था । वह चित्त को प्रसन्न करने वाला, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप था—अतीत मनोहर था ।



उत्तेहि बत्तीसबद्धएहि माइएहि उवगिज्जमाणे उवगिज्जमाणे उवत्तालिज्जमाणे उवत्तालिज्जमाणे सह-करिस-रस-रस-गंध-बिडले भाणुत्सए कामभोगे पच्चण्णमवभाणे विरहति ।

तत्पश्चात् मेघकुमार श्रेष्ठ प्रागाद के ऊपर रहा हुआ, मानो मृदंगों के मुख फूट रहे हों, इस प्रकार उत्तम स्त्रियों द्वारा किये हुए, बत्तीसबद्ध नाटकों द्वारा गायन किया जाता हुआ तथा ग्रीडा करता हुआ, मनोज शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंध की विपुलता वाले मनुष्य सम्बन्धी कामभोगों को भोगता हुआ रहने लगा ।

भगवान् का भागवन्

१०८—तेणं कात्तेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे पुट्वाणुपुट्वा घरमाणे गामाणुगामे ब्रह्मज्जमाणे सुहंहुहेणं विहरमाणे जेणामेव रायगिहे नगरे गुणत्तिए चेइए जाव<sup>१</sup> विहरति ।

उस काल और उस समय मे श्रमण भगवान् महावीर घनुरम में चलते हुए, एक गाँव से दूसरे गाँव जाते हुए, मुखे-मुखे विहार करते हुए, जहाँ राजगृह नगर था और जहाँ गुणदीप नामक चैत्य था, यावत् [वहाँ पधारे । पधार कर यथोचित स्थान ग्रहण किया । ग्रहण करके] ठहरे ।

१०९—तए णं से रायगिहे नगरे सिघाडग-तिग-चउवव-वच्चर-वउम्मुह-महापह-पहेसु महया बहुजणसहेति वा (जणवूहे ति वा, जणबोले ति वा, जणकसकले ति वा, जणुम्मीति वा, जणुवकलिया ति वा, जणसग्गिवाए ति वा,) जाव<sup>२</sup> बह्वे उग्गा भोगा जाव<sup>३</sup> रायगिहस नगरस्स मग्गमग्गभेण एगदिसि एगामिमुहा निग्गच्छंति । इमं च णं मेहे कुमारे उप्पि पासाववरगए कुट्टमाणोहं भुयं गमस्स-एहि जाव भाणुत्सए कामभोगे भुंजमाणे रायमग्गं च धालोएमाणे एवं च णं विरहति ।

तत्पश्चात् राजगृह नगर में शृंगारक-सिघाड के प्रकार के मार्ग, तिराहे, चौराहे, चत्वर चतुर्मुख, पथ, महापथ आदि में बहुत में भोगों का शोर होने लगा । यावत् [लोग इकट्ठे होने लगे, लोग धर्म्यवत् और व्यक्त वाली में बातें करने लगे, भीड़ हो गई, लोग इधर-उधर से आकर एक स्थान पर जमा होने लगे] बहुतेरे उग्रकुल के, भोग कुल के तथा अन्य सभी लोग यावत् राजगृह नगर के मध्य भाग में होकर एक ही दिशा में, एक ही ओर मुख करके निकलने लगे । उस समय मेघकुमार अपने प्रागाद पर था । मानों मृदंगों का मुख फूट रहा हो, इस प्रकार गायन किया जा रहा था । यावत् मनुष्य सबंधी कामभोग भोग रहा था और राजमार्ग का अवलोकन करता-करता विचर रहा था ।

मेघकुमार की जिज्ञासा

११०—तए णं से मेहे कुमारे ते बह्वे उग्गे भोगे जाव<sup>४</sup> एगदिसिणिमुहे पासति पासित्ता कंचु-इज्जपुरिसं सहावेति, सहावित्ता एवं वयासी—‘किं ण भो देवाणुप्पिया ! धज्ज रायगिहे नगरे इवमहेति-वा, इवमहेति वा, एवं रुह-सिक्ख-वेसमण-नाग-जव्व-अय-मई-तसाय-रव्व-वेतिय-पव्वय-उज्जाण-तिरिज-त्ताइ वा ? जम्भो णं बह्वे उग्गा भोगा जाव<sup>५</sup> एगदिसि एगामिमुहा निग्गच्छंति ?’

तब वह मेघकुमार उन बहुतेरे उग्रकुलीन भोगकुलीन यावत् सब लोगों को एक ही दिशा में

मुक्त किये जाते देवता है । देवता का कर्तव्य पुण्य का वर्णन है और देवता का उपासक बनना है—  
 देवानुप्रिय ! क्या आज राजगृह नगर में इन्द्रमहोरग या मातृ गिरि-  
 यात्रा आदि नहीं है कि जिसके निमित्त यह उपजुप्त के, भोग्युप्त का तथा सत्य लोग एक ही दिशा  
 में, एकामिमुख होकर जा रहे हैं । परन्तु देवानुप्रिय ! श्रमण भगवान् महावीर धर्म-नीति की प्राप्ति  
 करने वाले, तीर्थ की स्थापना करने वाले यहाँ आये हैं । पधार गुरु है, गगनगुप्त हुए हैं और इनो  
 राजगृह नगर में, गुणशील चैत्य में यथायोग्य अवसर की याचना करके यावत् विरह रहे हैं ।

कचुकी का निवेदन

१११—तए न मे कचुइजपुरिसे समगग्न भगवघो महावीरस गहिपागमगगितीए सो  
 कुमार एवं वयासी—सो गनु देवानुप्रिया 'आज रावनिहे नगरे इहमेहेन का आज गिरिजतापो का  
 जं ए उगा जाव' एगविनि एगामिमुहा निगच्छति, एवं गनु देवानुप्रिया ! समने भग  
 महावीरे आइगरे तिगघरे इहमागते, इह संपत्ते, इह समोगहे, इह भेव रावनिहे नगरे गुणनिगत, बे  
 अहापडि जाव विरहति ।

तब उस कचुकी पुण्य में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के धर्मपथ का वृत्तान्त जानकर  
 मेघकुमार को इस प्रकार कहा—देवानुप्रिय ! आज राजगृह नगर में इन्द्रमहोरग या मातृ गिरि-  
 यात्रा आदि नहीं है कि जिसके निमित्त यह उपजुप्त के, भोग्युप्त का तथा सत्य लोग एक ही दिशा  
 में, एकामिमुख होकर जा रहे हैं । परन्तु देवानुप्रिय ! श्रमण भगवान् महावीर धर्म-नीति की प्राप्ति  
 करने वाले, तीर्थ की स्थापना करने वाले यहाँ आये हैं । पधार गुरु है, गगनगुप्त हुए हैं और इनो  
 राजगृह नगर में, गुणशील चैत्य में यथायोग्य अवसर की याचना करके यावत् विरह रहे हैं ।

११२—तए नं से मेहे कचुइजपुरिसेस भंतिए एमटं सोच्छा निगम हट्टुट्टे कोइ-  
 विघपुरिसे सहावेति, सहावित्ता एवं वयासी—'निगमेव सो देवानुप्रिया ! आउगयं आतरहं  
 जुतामेव उवट्टवेह ।'

तह ति उवजेंति ।

तत्पश्चात् मेघकुमार कचुकी पुरुष से यह बात सुनकर एव हृदय में धारण करके, हृष्ट-मुष्ट  
 होता हुआ कीटुम्बिक पुरुषों की बुलवाता है और बुलवाकर इस प्रकार कहता है—हे देवानुप्रिय !  
 शीघ्र ही चार पटाओं वाले अश्वरथ को जोत कर उपस्थित करो ।

वे कीटुम्बिक पुरुष 'बहुत अच्छा' कह कर रथ जोत लाते हैं ।

मेघ की भगवत्-उपासना

११३—तए नं से मेहे न्हाए जाव' सव्वालंकारविभूतिए आउगयं आतरहं बुद्धे समाने  
 सकोरंमल्लसदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं महया मड-चड मर-विघ-परियास-संपरिवुडे रायनिहसस  
 नगरसस मज्झंमज्जेणं निगच्छति । निगच्छित्ता जेणामेव गुणसितए चेइए तेणामेव उवागच्छति ।  
 उवागच्छित्ता समणसस भगवघो महावीरसस छत्तातिछत्तं पडगातिपडगं विज्जाहरचारणे जंमए य

देवे प्रोक्षमाणे उत्पद्यमाणे वासति । वासिता चाउगंधाभो घ्रातरहाभो पक्षोदहति । पक्षोदहिता समनं भगवं महावीरं पंचविह्रेणं अभिगमेनं अभिगच्छति । संज्ञा—

- (१) सचित्ताणं द्रव्याणं विउत्तरणयाए ।
- (२) अचित्ताणं द्रव्याणं अविउत्तरणयाए ।
- (३) एगताद्वियउत्तरासंगकरणेणं ।
- (४) चक्षुस्पासे अंजलिपगहेणं ।

(५) मनसो एयसोकरणेणं । जेणामेव समणे भगवं महावीरे तेणामेव उवागच्छति । उवागच्छता समनं भगवं महावीरं तिकसुत्तो घायाहिणं पयाहिणं करेति । करिता वंदइ, नमंसइ, वंदिता नमंसिता समणस्स भगवधो महावीरस्स गच्छासन्ने गाइडूरे सुस्सुसमाणे नमंसमाणे पंजलि-पउठे अभिमुहे विणएणं पउनुवासइ ।

तत्पश्चात् मेघकुमार ने स्नान किया । [कीनुक, मंगल, प्रायश्चित्त आदि किया] सर्व प्रलकारों ने विभूषित हुआ । फिर चार घंटा वाले अस्वरण पर भावुक हुआ । कोरट वृक्ष के पत्तों की माला वाले छत्र को धारण किया । सुमटों के विपुल समूह वाले परिवार में घिरा हुआ, राजगृह नगर के बीचों बीच होकर निकला । निकलकर जहाँ गुणशील नामक चौर था, वहाँ आया । आकर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के छत्र पर छत्र और पताकाओं पर पताका आदि प्रतिशर्माँ को देखा तथा विद्याधरो, चारण मुनियों और जू भक्त देवों को नीचे उतरते एवं ऊपर चढ़ते देखा । यह सब देखकर चार घंटा वाले अस्वरण से नीचे उतरा । उतर कर पाँच प्रकार के अभिगम करके श्रमण भगवान् महावीर के सम्मुख पला । वह पाँच अभिगम इन प्रकार हैं—

- (१) पुण, पान आदि सचित्त द्रव्यों का त्याग ।
- (२) वस्त्र, भामुपण आदि अचित्त द्रव्यों का अत्याग ।
- (३) एक पाटिका (हुपट्ट) का उत्तरासंग ।
- (४) भगवान् पर दृष्टि पड़ते ही दोनों हाथ जोड़ना ।
- (५) मन को एकाग्र करना ।

यह अभिगम करके जहाँ श्रमण भगवान् महावीर थे, वहाँ आया । आकर श्रमण भगवान् महावीर को दक्षिण दिशा से आरम्भ करके (तीन बार) प्रदक्षिणा की । प्रदक्षिणा करके भगवान् की स्तुति रूप वन्दन किया और काय से नमस्कार किया । वन्दन-नमस्कार करके श्रमण भगवान् महावीर के अत्यन्त समीप नहीं और अति दूर भी नहीं ऐसे समुचित स्थान पर बैठकर, धर्मोपदेश सुनने की इच्छा करता हुआ, नमस्कार करता हुआ, दोनों हाथ जोड़े, सम्मुख रह कर, विनयपूर्वक प्रभु की उपासना करने लगा ।

भगवान् की देशना

११४—सए णं समणे भगवं महावीरे मेहुकुमारस्स तीसे य महतिमहात्थियाए, मग्गए विचित्तं धम्ममाइवउइ, जहा जीवा वज्जंति, मुच्चंति, जह य संकिलिस्संति

माणिपद्मा, जाय' परिषा पडिगया ।

तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर ने मेघकुमार को और उग महती परिपद् को, परिपद् के मध्य में स्थित होकर विचित्र प्रकार के श्रुतधर्म और चारित्र धर्म का कथन किया । जिस प्रकार जीव कर्मों में बद्ध होते हैं, जिस प्रकार मुक्त होते हैं और जिम प्रकार मंजनेय को प्राप्त होते हैं, यह सब धर्मकथा श्रौपपातिक सूत्र के अनुसार कह लेनी चाहिए । यावन् धर्मदेनाना गुनकर परिपद् धर्मान् जन-समूह वापिम सौट गया ।

प्रवर्ग्या का संकल्प

११५—तए णं मेहे कुमारे समणस्स भगवद्यो महावीरस्स अंतिए धम्मं सोत्तवा जित्तम्म हट्ठमुट्ठे सत्तणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ नमंसइ, वंतिता नमंसित्ता एवं वयासी—‘सहहामि णं भंते । निग्गयं पावयणं, एवं पत्तयामि णं, रोएमि णं, धम्ममुट्ठेमि णं भंते । निग्गयं पावयणं, एवमेयं भंते ! तहमेयं भंते ! अवित्तहमेयं भंते ! इच्छियमेयं भंते ! पडिच्छियमेयं भंते ! इच्छियपडिच्छियमेयं भंते ! से जहेव तं सुम्मे यवह । अं नवरं देवानुत्पिया ! धम्मपापियतो आपुच्छामि, तस्मो पच्छा मुंटे अवित्ता णं पथइस्सामि ।’

‘अहामुहं देवानुत्पिया ! मा पडिधंय करेह ।’

तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर के पास से मेघकुमार ने धर्म श्रवण करके और उसे हृदय में धारण करके, हृष्टपुष्ट होकर श्रमण भगवान् महावीर को तीन बार दाहिनी ओर से आरम्भ करके, प्रदक्षिणा की । प्रदक्षिणा करके वन्दन-नमस्कार किया । वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—‘भगवन् ! मैं निर्ग्रन्थप्रवचन पर श्रद्धा करता हूँ, उसे सर्वोत्तम स्वीकार करता हूँ । मैं उस पर प्रसीति करता हूँ । मुझे निर्ग्रन्थ प्रवचन इच्छता है, अर्थात् जिनशासन के अनुसार आचरण करने की अभिलाषा करता हूँ, भगवन् ! मैं निर्ग्रन्थप्रवचन को अंगीकार करना चाहता हूँ, भगवन् ! मैंने इसकी ऐगा ही है (जैसा आप कहते हैं), यह उसी प्रकार का है, अर्थात् सत्य है । भगवन् ! मैंने इसकी इच्छा की है, पुनः पुनः इच्छा की है, भगवन् ! यह इच्छित और पुनः पुनः इच्छित है । यह वैसा ही है जैसा आप कहते हैं । विशेष बात यह है कि हे देवानुत्पिय ! मैं अपने माता-पिता की आज्ञा से लूँ, मत्तदपान् मुण्डित होकर शीशा ग्रहण करूँगा ।’

भगवान् ने कहा—देवानुत्पिय ! जिसमें तुझे सुग उपजे वह कर, उसमें विलम्ब न करना ।’

विवेचन—धर्म मुख्यतः श्रवण का नहीं किन्तु आचरण का विषय है । अतएव धर्मश्रवण का पत्र मदनुज्ञा आचरण होना चाहिए । राजकुमार मेघ ने पहली बार धर्मदेनाना श्रवण को और उसमें उसके आचरण की समझती प्रेरणा प्राप्त की । बड़े ही भावपूर्ण एवं दृढ़ शब्दों में वह निर्ग्रन्थधर्म के प्रति अपनी आन्तरिक श्रद्धा निवेदन करता है, सामान्य पाठक को उसके उद्गारों में पुनर्जति का आभास हो सकता है, किन्तु यह पुनर्जति दीर्घ नहीं है, उसकी तीव्रतर भावना, प्रगाढ़ श्रद्धा और धर्म के प्रति मनुष्यों ममदण की गहरी साधना की अभिव्यक्ति है ।

मेघ जब भगवान् से प्रवर्ग्या ग्रहण करने का विचार प्रकट करता है तो भगवान् उसी मध्यस्थ

भार का परिचय देते हैं जो उनके जीवन में निरन्तर परिवर्तमान रहता था। एक राजकुमार भी मलय का राजकुमार विष्णुव अगोकार करने को नामाधिन है, दुग्गे भी मलयान् का धर्मविद् ही रहता है। दुग्गे के विष्णु निष्पन्न बनाने का प्रयोजन क्या है? निष्पन्न बनाने से द्वाजान् धीर एकाध साधना में कृष्ण से कृष्ण रसापात्र ही उत्पन्न हो सकता है। फिर भी बागमों में विनी ध्यति को निष्पन्न कर में दीक्षित धीर र्थाह्न करने हैं—

(१) गापु विचार करता है कि यह मध्य धामा मगार-मगार में निरने का धर्मिह् इमे पयप्रदत्तन की भावप्रवृत्ता है। पयप्रदत्तन के बिना वेपारा भटक प्राणा। इम प्रकार के ने, वदगापूर्वक, धरनी साधना में विज्ञेय गहन करके भी उमे निष्पन्न रूप में पट्टन कर मने हैं।

(२) दुग्गा बागम है धामन की निरन्तर प्रवृत्ति। गुर-निष्पन्न की परम्परा धाम् भगवान् का धामन धिरवाय तक आता रहता है। इस परम्परा के बिना धामन धाम् नहीं रह

यही कारण है कि भगवान् ने प्रथम जो 'अहमगुहं देवाभुत्पिदा' बट्टर मेधनुमार का गर ही दीक्षित होता छोड़ दिया, फिर 'मा पश्चिधं करेह' बट्ट कर दीक्षित होने के लिए ह्म भी कर दिया।

माना-पिता के मध्य मन्त्राविदेव

११६—तए च ते मेरे कुयारे गयनं भगव महावीरं बंदि, नमंनति, बंदिता म जेगामेव आठगंठे धामरहू तेगामेव उवागवदह। उवागविदितता आठगंठे धामरहू दुवहह, महुवा महुवहगरवहरेण राधगिहम मगररत पयप्रदत्तनं जेणेव तए मयवे तेगामेव उव उवागविदितता आठगंठेधो आतरहाधो पयप्रदत्तह। पयप्रदत्तहिता जेगामेव धम्माविपरी उवागवदह। उवागविदितता धम्माविपरीणं पापवदहं करेह। बरित्ता एवं वयामी—'एवं तए धामो ! मए समनस मयवमो महावीरस धंतिए धम्मे निमंते, ते वि य मे धम्मे पश्चिधिए धमिदहए।'।

तत्पश्चात् मेधनुमार ने श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन किया, धर्मात् उनकी म् नमस्कार किया, स्तुति-नमस्कार करके जहाँ बार घंटाघों वाता प्रदरय था, वहाँ धामा धार घंटाघों धामे धन-रथ पर धाव्ड हुआ। धाव्ड होकर महान् गुप्तरी धीर वडे ताम परिवार के साथ गजगृह के बीचों-बीच होकर धामे घर धामा। धार घंटाघों धामे धन उतरा। उतरकर जहाँ उनके माना-पिता थे, वहाँ पहुँचा। पहुँच कर माना-पिता के पैरों में दिया। प्रणाम करके उसने हम प्रकार कहा—'हे माना-पिता ! मैंने श्रमण भगवान् महावीर के धर्म श्रवण किया है और मैंने उम धर्म की इच्छा की है, धार-धार इच्छा की है। वह मुझे

११७—तए च तम मेहस धम्माविपरी एवं वयामी—'यमो मि तुमं जाया ! संपुधो जाया ! वयामी मि तुमं जाया ! अं चं तुमं समनस भगवमो महावीरस धंतिए धम्मे नि वि य ते धम्मे इधिए पश्चिधिए धमिदहए।'।

तब मेधनुमार के माना-पिता हम प्रकार बोले—'पुत्र ! तुम धर्म हो, पुत्र ! तुम पूरे हो, हे पुत्र ! तुम धर्माधी हो कि तुमने श्रमण भगवान् महावीर के निरट धर्म श्रवण किया है



११८—तए नं से मेंहे कुमारे धम्मगिरिरो शोभं नि तव्ने नि एवं वज्जोद्वरं वु  
धम्मयाप्पो ! मए समणस्स भगवधो महावीररुण धरिण् धम्मं निगंते । ते नि ध नं मे धम्मं गिण्,  
पडिच्छिए, धमिरुहए । तं इच्छामि न धम्मयाप्पो ! मुञ्जेहि धम्ममनुज्जाणं समाने तवणस्स वरस्सो  
महावीररुण धरिण् मुञ्जे भवित्ता न धम्मयाप्पो धम्मगारिणं पणइहाण ।

तत्पदवान् मेघकुमार माता-पिता मे दुमरी बार धोर मीमरी बार इग पकार बहो मता—हे  
माता-पिता ! मैंने श्रमण भगवान् महावीर मे गर्म श्रमण किया है । उन गर्म की मीने इच्छा की है,  
बार-बार इच्छा की है, वह मुझे रचिकर हुआ है । धाएण हे माता-पिता ! मैं धाणी धनुमति प्राप्त  
करके श्रमण भगवान् महावीर के समीप मुग्ध होकर, गृह्याग त्याग कर धम्मगारिणी की प्रशंसा  
अंगीकार करना चाहता हूँ-मुनिदीक्षा लेना चाहता हूँ ।

माता का शोक

११९—तए नं सा धारिणी देवी तमणिद्वं सत्तं धरिणं धम्ममनुजं धम्मनामं धम्ममनुजं कर्त्त  
गिरं सोध्वा निस्सम्प इमेणं एयादयेणं भणोमाणनिणं महया पुत्तदुक्खेणं धम्ममुत्ता तमाणी सेयाध-  
रोमकूव-पगसंत-विमोणगाया सोयमरपयेविपंगी नितोया होणविमणययणा करयल-भलिय न  
कमलमाला सवसण-ओसुण-दुवससरोरा लावणमनुज-निच्छाय-मयतिरीया पतिडिलमूल-  
पडंतलुमिय-संखुनिपयधससस-धम्मट्ठउत्तरिज्जा सुमासविकिण्णकेसहत्वा मुक्खावसणट्ठवेयससं  
परमुनियत्त ध्व चंपगसया निवसलमहिम ध्व इंसट्ठो विमुक्कसंपिबंयणा कोट्टिमततंसि सव्वेहि  
धत्तंति पडिया ।

तब धारिणी देवी इस अनिष्ट (अनिच्छिन्न), धरित्रय, धमनोज (धमप्रशान्त) और धमएण  
(मन को न रुचने वाली), पहले कभी न सुनी हुई, कठोर वाणी को सुनकर और हृदय में धारण करके  
महान् पुत्र-वियोग के मानसिक दुःख से पीड़ित हुई । उसके रोमकूपों में पसीना धाकर अंगों से पसीना  
भरने लगा । शोक की अधिकता से उसके अंग कांपने लगे । वह निस्तेज हो गई । दीन और विमलस्क  
हो गई । हथेली में मली हुई कमल की माला के समान हो गई । 'मैं प्रव्रज्या अंगीकार कल  
चाहता हूँ' यह शब्द सुनने के क्षण में ही वह दुखी और दुर्बल हो गई । वह लावण्यरहित हो गई,  
कान्तिहीन हो गई, श्रीविहीन हो गई, शरीर दुर्बल होने से उसके पहने हुए भलंकार अव्यन्त ढीले हो  
गये, हाथों में पहने हुए उत्तम वलय खिसक कर भूमि पर जा पड़े और चूर-चूर हो गये । उनका  
उत्तरीय वस्त्र खिसक गया । सुकुमार केनपाश बिखर गया । मूर्च्छा के वश होने से चित्त नष्ट हो  
गया—वह वेदोश हो गई । परशु से काटी हुई चपकलता के समान तथा महोत्सव सत्पन्न हो जाने  
के पश्चात् इन्द्रध्वज के समान (शोभाहीन) प्रतीत होने लगी । उसके शरीर के जोड़ ढीले पड़ गये ।  
ऐसी अवस्था होने से यह धारिणी देवी सर्व अंगों से धस्-धड़ाम से पृथ्वीतल (फर्श) पर गिर पड़ी ।

माता-पुत्र का संवाद

१२०—तए नं सा धारिणी देवी सत्तंममोवत्तिवाए तुरियं कंचणभिगार-मुहविणिगय  
सोयसजल-विमलपाराए परिचित्तमाणा निव्यावियगायसट्ठो उक्खेयण-सालविट-धीयणग-अणियवाएण  
उकुत्तिणं धत्तेउरपरिजणेणं धासात्तिवा समानो मुत्तावसित्तनिगासपवडंतंमुत्तधारिहि सिच्चमणं

पद्मोदरे कसुणविमलदीना रोयमाणी कंदमाणी तिप्पमाणी सोयमाणी विलवमाणी मेहं कुमारं एवं वयासी—

तत्पद्मात् वह धारिणी देवी, सभ्रम के साथ शीघ्रता से सुवर्णकलश के मुख से निकली हुई शीतल जल की निमल धारा से सिंचन की गई अर्थात् उस पर टंडा जल छिड़का गया। प्रत्येक उसका शरीर शीतल हो गया। उत्प्रेषक (एक प्रकार के बॉस के पत्ते) से, तातवृत्त (ताड़ के पत्ते के पत्ते) से तथा बीजनक (जिसकी डंडी अंदर से पकड़ी जाय, ऐसे बाम के पत्ते) से उत्पन्न हुई तथा जलरूपी से युक्त वायु से भन्तःपुर के परिजनों द्वारा उसे आशवासन दिया गया। तब वह होश में आई। तब धारिणी देवी मोतियों की लड़ी के समान अश्रुधारा से अपने स्तनों को सींचने-भिगोने लगी। वह हृदयीय, विमलस्क और दीन हो गई। वह रुदन करती हुई, नन्दन करती हुई, पसीना एवं लार टपकाती हुई, हृदय में जोक करती हुई और विलाप करती हुई मेघकुमार से इस प्रकार कहने लगी—

१२१—तुमं सि णं जाया ! अहं एगे पुत्ते इट्ठे कंते विए मणुत्ते मणामे वेरुत्ते वेसासिए सम्मए बहुमए मणुमए भंडकरं गसमाणे रयणे रयणमुए जीवियउत्सासए, हियमाणं वज्जणे उंबरपुक्कं व कुल्लमे सवणपाए किमं पुण वासणयाए ? नो खलु जाया ! अहं इच्छामो लणमवि विप्पमोणं सहिए । तं भुंजाहि ताव जाया ! विपुले माणुस्सए काममोहे जाव ताव वय जीवामो । तपो अद्धा अहोहि कासगएहि परिणमवए वट्ठिय-कुलवंस-तंतु-कज्जमि निरावयस्से समणस्स भगवमो महावीरस्स भंतिए भुंते भविता भगाराओ अणगारियं पव्वइस्सति ।

हे पुत्र ! तू हमारा इकलौता बेटा है। तू हमें इष्ट है, कान्त है, प्रिय है, मनोश है, मणाम है तथा धैर्य और विश्राम का स्थान है। कार्य करने में सम्मत (माना हुआ) है, बहुत कार्य करने में बहुत माना हुआ है और कार्य करने के पश्चात् भी अनुमत है। आभूषणों की पैटी के समान (रक्षण करने योग्य) है। मनुष्यजाति में उत्तम होने के कारण रत्न है। रत्न रूप है। जीवन के उच्छ्वास के समान है। हमारे हृदय में आनन्द उत्पन्न करने वाला है। गुस्सर के फूल के समान तेरा नाम ध्वज करना भी दुर्लभ है तो फिर दर्शन की तो बात ही क्या है। हे पुत्र ! हम क्षण भर के लिए भी तेरा वियोग नहीं सहन करना चाहते। अतएव हे पुत्र ! प्रथम तो जबतक हम जीवित हैं, तबतक मनुष्य सम्बन्धी विपुल काम-भोगों को भोग। फिर जब हम कालगत हो जाएं और तू परिपक्व उम्र का हो जाय—तेरी युवावस्था पूर्ण हो जाय, कुल-वंश (पुत्र-पौत्र आदि) रूप तनु का कार्य वृद्धि को प्राप्त हो जाय, अब सासारिक कार्य की अपेक्षा न रहे, उस समय तू श्रमण भगवान् महावीर के पास मुण्डित होकर, गृहस्थी का त्याग करके प्रव्रज्या अंगीकार कर लेना।

१२२—तए णं मेहे कुमारे अम्मापिउहि एवं वुत्ते समाणे अम्मापियरं एवं वयासी—  
'तहेव णं तं अम्मयाओ ! जहेव णं तुप्पे मभं एवं वदह-तुमं सि णं जाया ! अहं एगे पुत्ते, तं चेव जाव निरावयस्से समणस्स भगवमो महावीरस्स जाव पव्वइस्सति—एवं खलु अम्मयाओ माणुस्सए मवे अपुत्ते अणियए असासए वसणसउवह्वामिभुत्ते विज्जुत्तयाचंचे अणिच्चे जलवुक्खुपसमाणे कुत्तगजअविट्ठुत्तमिमे संभज्जराण-सारिसे सुविणदं सणोवमे सडण-पडण-विदं सणधम्मं पच्छा, पुरं च

नं अयस्सविप्पजहणिज्जे से के नं जानइ अम्मयाओ ! के पुंविं गमणाए ? के पच्छा गमणाए ? तं इच्छामि नं अम्मयाओ ! तुभेहि अम्मणुन्नाए समाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स जाव पवइस्सए ।

तत्पश्चात् माता-पिता के इस प्रकार कहने पर मेघकुमार ने माता-पिता से कहा—‘हे माता-पिता ! आप मुझे यह जो कहते हैं कि—हे पुत्र ! तुम हमारे दारुणीते पुत्र हो, इत्यादि सब पूर्वक कहना चाहिए, यावत् सासारिक कार्य से निरपेक्ष होकर श्रमण भगवान् महावीर के समीप प्रस्थित होना—सो ठीक है, परन्तु हे माता-पिता ! यह मनुष्यभव ध्रुव नहीं है अर्थात् मृत्यु के समा नियमित समय पर पुनः पुनः प्राप्त होने वाला नहीं है, नियत नहीं है अर्थात् इस जीवन में उभरने होते रहते हैं, यह अशाश्वत है अर्थात् क्षण-विनश्यत है, तथा संकटों व्यसनों एव उपद्रवों में व्याप्त विजली की चमक के समान चंचल है, अनित्य है, जल के बुलबुले के समान है, दूब की नोक लटकने वाले जलबिन्दु के समान है, सन्ध्यासमय के बादलों की छाँटिमा के सदृश है, स्वप्नदर्शन समान है—अभी है और अभी नहीं है, कुष्ठ आदि से सड़ने, तलवार आदि से कटने और दीए के स्वभाव वाला है तथा आगे या पीछे अवश्य ही त्याग करने योग्य है । हे माता-पिता ! अतिरिक्त कौन जानता है कि कौन पहले जाएगा (मरेगा) और कौन पीछे जाएगा ? अतएव हे माता-पिता ! मैं आपकी आज्ञा प्राप्त करके श्रमण भगवान् महावीर के निकट यावत् प्रव्रज्या अंगीकृत करना चाहता हूँ ।’

१२३—तए नं तं मेहं कुमारं अम्मापियरो एवं वयासी—‘इमाओ से जाया ! सरिसिंय सरिसत्तयाओ सरिसध्वयाओ सरिसलायनरूपजोव्वणपुणोव्वेयाओ सरिसेहिन्तो रायकस्सेहि आणियस्सियाओ भारियाओ, तं भुंजाहि नं जाया ! एताहि सद्धि विपुस्से भाणुस्सए कामभोगे, पच्छा भुत्तभोगे समणस्स भगवओ महावीरस्स जाव पवइस्ससि ।’

तत्पश्चात् माता-पिता ने मेघकुमार से इस प्रकार कहा—‘हे पुत्र ! यह तुम्हारा भी समान शरीर वाली, समान त्वचा वाली, समान वय वाली, समान, लावण्य, रूप, जीवन और से सम्पन्न तथा समान राजकुलों से धाई हुई है । अतएव हे पुत्र ! इनके साथ विपुल मनुष्य से कामभोगों को भोगे । तदनन्तर भुत्तभोग होकर श्रमण भगवान् महावीर के निकट यावत् ले लेना ।’

१२४—तए नं से मेहं कुमारं अम्मापियरं एवं वयासी—‘तहेव नं अम्मयाओ ! जं नं तुभे ममं एवं वयह—‘इमाओ से जाया ! सरिसियाओ जाव समणस्स भगवओ महावीरस्स पवइस्ससि’— एवं तसु अम्मयाओ ! भाणुस्सगा कामभोगा यमुई असासया वंतासया पितासया खेसासया मुक्का-मवा सोणियासया बुदसासनीसासा दुदयमुत्त-पुरीस-पूय-यहुपडिपुग्गा उच्चार-पासवण-सेत्त-अन्त-सिपाणग-वंत-पित्त-मुक्क-सोणित्तसंमवा यमुवा अणिया असासया सडण-यडण-विट्ठं सणयम्मा पच्छा पुरं च नं अयस्सविप्पजहणिज्जा । से के नं अम्मयाओ ! जाणंति के पुंविं गमणाए ? के पच्छा गमणाए ? तं इच्छामि नं अम्मयाओ ! जाव पवइस्सए ।’

तत्पश्चात् मेघकुमार ने माता-पिता से इस प्रकार कहा—‘हे माता-पिता ! आप मुझे यह जो कहते हैं कि—हे पुत्र ! तेरी ये भावार्थें समान शरीर वाली हैं इत्यादि, यावत् इनके साथ भोग भोगकर श्रमण भगवान् महावीर के समीप दीक्षा ले लेना; सो ठीक है, किन्तु हे माता-पिता ! मनुष्यों

वे ये कामभोग अर्थात् कामभोग के आधारभूत नर-नारिणों के दारीर धनुषि है, असारवत है मे यमन भरना है, पित्त भरना है, कफ भरना है, धुब भरना है तथा शीतल (दधिर) भरना है। उष्ण-वायु-नि-द्रव्यमाने है, शराव मूत्र, मय घोर पीव मे परिपूर्ण हैं, मम, मूत्र, कफ, नास, यमन, पित्त, घुब और शीतल मे उदाग्र होने वाले हैं। यह धुब नहीं, नियत नहीं, शारव है, गढ़ने, पढ़ने घोर विषय होने के स्वभाव वाले हैं और पहले या पीछे अवश्य ही त्याग करने हैं। हे माता-पिता ! कौन जानता है कि पहले कौन जायगा और पीछे कौन जायगा ? अमाता-पिता ! मैं यावन् अभी दीक्षा ग्रहण करना चाहता हूँ ।

१२५—तए नं तं मेहं कुमारं अम्मापियरो एवं वयासी—‘इमे ते जाया ! अज्जय-पिउवज्जयाणं सुबहू हिरण्णे य सुवण्णे कंते य इत्ते य अग्निमोत्तिए य संल-सिल-एवयात्-रस-संतसारमावतिउंने य असाहि जाव अमत्तमाओ कसवसाओ वणामं डाउं, वणामं मोत्तं, परिमाएउं, तं अणुहोहि ताव जाव जाया ! विपुलं माणुस्तयं इड्डिमवकारसमूहयं, तथो अणुमूयकस्ताने समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए पवइस्तसि ।

तत्पश्चात् माता-पिता ने मेघकुमार से इन प्रकार कहा—‘हे पुत्र ! तुम्हारे पितामह के पितामह और पिता के प्रपितामह से पाया हुआ यह बटुत-सा हिरण्य, सुवर्ण, कांसा, द्रव्य मणि, मोती, शंख, मिना, मृंगा, भाल-रत्न आदि गारभूत द्रव्य विद्यमान हैं। यह इतना है कि पीढ़ियों तक भी समाप्त न हो। इनका तुम सुब दान करो, स्वर्ण भोग करो और बांटो। हे पुत्र ! जितना मनुष्य शम्भुग्री ऋद्धि-नारकार का समुदाय है, उतना सब तुम भोगो। उनके बाद कल्याण होकर तुम अमण भगवान् महावीर के समक्ष दीक्षा ग्रहण कर लेना ।

१२६—तए नं ते मेहे कुमारो अम्मापियरं एवं वयासी—‘तहेव न अम्मयाओ ! पवइह—‘इमे ते जाया ! अज्जय-अज्जय-पिउवज्जयाणं जाव तथो पक्खा अणुमूयकस्ताने पवइह एवं अणु अम्मयाओ ! हिरण्णे य सुवण्णे य जाव सावतेउंने अग्निताहिए चोरमाहिए रायं डाइयताहिए मच्चुताहिए अग्नितामने जाव मच्चुतामने सडय-अइण-विट्ठं सणयमे पक्खा पुरं अवस्तविण्णज्जउंने, ते के नं जाणइ अम्मयाओ ! के जाव वणणाए ? तं इड्डानि नं जाव इताए ।’

तत्पश्चात् मेघकुमार ने माता-पिता ने कहा—हे माता-पिता ! आप जो कहने हैं तो कि—‘हे पुत्र ! यह दादा, पड़दादा और पिता के पड़दादा से आया हुआ यावत उत्तम द्रव्य भोगी और फिर अनुभूत-कल्याण होकर दीक्षा ले लेना’—‘परन्तु हे माता-पिता ! यह हिरण्य यावन् स्वापतेय (द्रव्य) सब धर्मिणाध्य है—इमे धम्मि भस्म कर सकती है, और चुरा सकती है अगहण कर सकती है, हिम्मेदार बंटवारा कर सकते हैं और मृत्यु धाने पर वह धपना नहीं है। इसी प्रकार यह द्रव्य धम्मि के लिए समान है, अर्थात् जैसे द्रव्य उसके स्वामी का है, उसी धम्मि का भी है और इसी तरह चोर, राजा, भागीदार और मृत्यु के लिए भी सामान्य है। यह पहले घोर विषय होने का स्वभाव वाला है। (मरणके) पश्चात् या पहले अवश्य त्याग करने है। हे माता-पिता ! कितने भात है कि पहले कौन जायगा और पीछे कौन जायगा ? अतएव मैं दीक्षा अंगीकार करना चाहता हूँ ।’

१२७—तए नं तस्स मेहस्स कुमारस्स धम्मपियरो जाहे मो संवाएइ मेहं कुमारं बूहि विसयाणुलोमाहिं धाघवणाहिं य पन्नवणाहिं य सन्नवणाहिं य विन्नवणाहिं य, धाघवितए वा पन्नवितए वा, सन्नवितए वा ताहे विसयपटिकूसाहिं संजममउत्थेयकारियाहिं पन्नवणाहिं पन्नवेमाणा एयं वयासी—

सत्यश्चान् मेघकुमार के माता-पिता जब मेघकुमार को विषयों के अनुकूल धाम्नापना (सामान्य रूप से प्रतिपादन करने वाली वाली) में, प्रज्ञापना (विशेष रूप में प्रतिपादन करने वाली वाली) से, सजापना (सबोधन करने वाली वाली) में, विज्ञापना (अनुनय-विनय करने वाली वाली) से, समझाने, बुझाने, सबोधित करने और मनाने में मग्न नहीं हुए, तब विषयों के प्रतिभूल तथा सत्य के प्रति भय और उद्वेग उत्पन्न करने वाली प्रज्ञापना में इस प्रकार कहने लगे—

१२८—एस नं जाया ! निगमंथे पावयणे सच्चे अनुत्तरे केवसिए पडिपुत्ते जेयाउए संसुडं सत्तगत्तणे सिद्धिमग्गे मुत्तिमग्गे निज्जानमग्गे निरुवाणमग्गे सत्थदुक्कलपणीणमग्गे, अहीव एतंतद्धिओए, एउरो इव एतंतधारोए, लोहमया इव अवा चायेयध्या, वालुयाकवसे इव निर-स्ताए, गंगा इव महानरो पडिसोयमग्गा, महासमुदो इव भुयाहिं कुत्तरे, तिषलं कमियस्यं, गदधं संबेयस्यं, अनिपाए थव संचरियस्यं ।

हे पुत्र ! यह निर्गन्ध प्रवचन सत्य (सत्पुरुषों के लिए हितकारी) है, अनुत्तर (सर्वोत्तम) है, कैवलिक-सर्वज्ञकथित अथवा अद्वितीय है, प्रतिपूर्ण अर्थात् मोक्ष प्राप्त कराने वाले गुणों में परिपूर्ण है, नैपायिक अर्थात् न्याययुक्त या मोक्ष की ओर ले जाने वाला है, संसुद्ध अर्थात् सर्वथा निर्दोष है, धार्यकर्त्तन अर्थात् माया आदि शक्तियों का नाश करने वाला है, सिद्धि का मार्ग है, मुक्तिमार्ग (प्राप्त मोक्ष का उपाय) है, निर्याण का (सिद्धि क्षेत्र का) मार्ग है, निर्याण का मार्ग है और समस्त दुर्गों का पूर्णरूपेण नष्ट करने का मार्ग है । जैसे सर्प अपने भक्ष्य को ग्रहण करने में निश्चल दृष्टि रखता है उसी प्रकार इस प्रवचन में दृष्टि निश्चल रखनी पड़ती है । यह छुरे के समान एक धार वाला अर्थात् इसमें दूसरी धार के समान अपवाद रूप क्रियाओं का अभाव है । इस प्रवचन के अनुमान चलना लोहे के जो चबाना है । यह रेत के कंवल के समान स्वादहीन है—विषय सुख से रहित है इसका पालन करना गंगा नामक महानदी के सामने पूर में तिरने के समान फटिन है, भुजंगों महागमुद्र को धार करना है, तीली तलवार पर आक्रमण करने के समान है । महाशिला जैसे भावयन्त्रुओं को गले में बाँधने के समान है । तलवार की धार पर चलने के समान है ।

१२९—ओ सलु कल्पइ जाया ! समणाणं निगमंथाणं धाहाकम्मिए वा, उद्धेसिए वा, कोय वा, ठविए वा, रइयए वा, बुद्धिमक्कलपत्ते वा, कंतारमत्ते वा, वडुलियामत्ते वा, मित्ता मत्ते वा, भूतभोगेणं वा, कंदभोगेणं वा, फलभोगेणं वा, बौयभोगेणं वा, हरियभोगेणं वा मोत्तए पापए वा । तमं थ नं जाया ! सुहसमुच्चिए एणे खेव नं बुहसमुच्चिए । नासं सोयं, नासं उ नासं त्थं, नासं पिवासं, नासं वाइयपित्तिवसिन्निपयसग्गिवाइयविबिहे रोगायंके उक्कावए न कंटए बावोसं परोसहोवत्तणे उडिन्ने सम्मं चहियातितए । अंजाहिं ताव जाया ! माणुसए कामम तथो पच्छा भूतभोगी समणस्स मगवघो महावीरस्स जाव पव्वइस्ससि ।

हे पुत्र ! निर्गन्ध धमनों को धायाकर्त्ता, मोक्षनिष्ठ, मोक्षजन (मरीद कर बनाया हुआ)

मण्डित (गायु के लिए रख छोड़ा हुआ), श्विन (मोड़क खादि के पुराने को पुन गायु के लिए मोड़क खादि रूप में तैयार बिना हुआ), दुग्धिमल (गायु के लिए दुग्धिका के मल बनाया हुआ मोड़क), अन्तर्मल (गायु के निमित्त घरस्थ में बनाया खाहार), बर्देनिवा भक्त (बर्दे के ममय उपाध्य में खर बनाया मोड़क), प्दानभक्त (दण्ड गृहस्थ भीरोम होने की कामना में दे, बहु भोजन). खादि दिन खाहार दण्ड करना नहीं बनना है।

इसी प्रकार पुन का भोजन, बंद का भोजन, पन का भोजन, शानि खादि बीजों का भोजन तथा एगि का भोजन करना भी नहीं बनना है।

इसके अतिरिक्त हे पुन ! नू गुग भोगने योग्य है, दुग गहने योग्य नहीं है। नू गरी गहने में सवें नहीं है, गरी गहने में मसवें नहीं है। भूत नहीं गह सकता, प्याम नहीं गह सकता, याग, पित्त, 'द' और मज्जितान में होने वाले शिविध रोमी (बोड़ खादि) को तथा घागरी (घघागक मरण उत्पन्न करने वाले गुम खादि) को, ऊँचे-नीचे इन्द्रिय-प्रतिबुद्ध बघनी की, उत्पन्न हुए बाईम परीपही को और गगली को मसव प्रहार नहीं कर सकता। घगएव हे नाम ! नू मनुष्य सम्बन्धी कामयोगों में भोग। बाद में भुक्तभोग दोसर धमल भगवान् महावीर के निकट प्रव्रज्या भंगीकर करना।

१३०—तए नं ते मेहे कुमारं सम्माविद्धि एवं वृत्ते समाने सम्माविपरं एवं वयासी—'तदेव नं तं सम्मायासी ! जं नं तुमे मम एवं वयह—'एत नं आया ! निगथि पावयने सच्चे अनुसरे० पुनरवि तं चेव काव तघी पय्या भुत्तमोगी समएतत भगवघो महावीरस जाय पयइरसति।' एवं तनु सम्मायासी ! निगथि पावयने बीबाणं कापरणं कापुरिसाणं इत्तेगवडिबद्धाणं परसोग-निज्जवाणं कुरगुद्धे पावयज्जणस, एते चेव नं धीरसः । निज्जपववगियस एवं किं कुक्करं करएवए ? तं इध्मासि नं सम्मायासी । तुमेहि धममनुजाए समाने समणस भगवघो महावीरस जाय पयइरसए ।

तरसत्ता भागा-पिता के इस प्रकार कहने पर मेघपुमार ने माता-पिता से इस प्रकार कहा—हे माता-पिता ! धार मुझे यह जो कहने है सो ठीक है कि—हे पुन ! यह निर्धन्य प्रवचन मय्य है, सर्वोत्तम है, खादि पूर्वांक बचन गही दोहरा सेना चाहिए; यावन् बाद में भुक्तभोग होकर प्रव्रज्या भंगीकार कर लेना। परन्तु हे माता-पिता ! इस प्रकार यह निर्धन्य प्रवचन बलीय-हीन सहन करने, वापर-वित्त की स्थिरता में रहित, दुग्धिम, इस लोक सम्बन्धी विषयगुण की घमिलाया करने वाले, परलोक के गुण की इच्छा न करने वाले सामान्य जन के लिए ही दुष्कर है। धीर एवं दृढ मसव्य वाले पुन की इसका पालन करना कठिन नहीं है। इसका पालन करने में कठिनाई क्या है ? भगएव हे माता-पिता ! भागरी अनुमति पाकर मैं धमग भगवान् महावीर के निकट प्रव्रज्या ग्रहण करना चाहता हूँ।

एक श्विन का राज्य

१३१—तए नं तं मेहे कुमारं सम्माविपरो जाहे मो संघइनि वहीहि बित्तिपाणुलोमाहि य विगपवडिइताहि य घापवणाहि य पग्गवणाहि य सम्मवणाहि य विम्वहाहि य घापवितए वा, पग्गवितए वा, सम्मवितए वा विम्वितए वा, ताहे अकम्मए चेव मेहे' कुमारं एवं वयासी—'इच्छामो ताव आया । एगदिवसमवि ते रायतिरि पातितए ।'

तत्पश्चात् जब माता-पिता मेघकुमार को रिपयों के अनुतून और रिपयों के प्रतिनिधु बहू-सी आख्यापना, प्रज्ञापना और विज्ञापना में गम्भाने, बुझाने, सम्बोधन करने और विज्ञप्ति करने में समर्थ न हुए, तब इच्छा के विज्ञा भी मेघकुमार में दृग् प्रहार बोले—‘हे पुत्र ! हम एक दिन भी तुम्हारे राज्यलक्ष्मी देखना चाहते हैं । अर्थात् हमारी इच्छा है कि तुम एक दिन के लिए राजा बन जाओ ।’

१३२—तए ण से मेहे कुमारो अम्मापियरमणुवत्तमाणे सुत्तिणीए संघट्ठइ ।

तब मेघकुमार माता-पिता (को इच्छा) का अनुसरण करना हुआ मीन रह गया ।

राज्याभिषेक

१३३—तए णं सेणिए राया कोडुं बियपुरित्ते सद्दावेइ, सद्दाविस्सा एवं वयासी—लित्पामेव सो देवानुत्तिपा ! मेहरस्स कुमारस्स महत्थं महग्घं महरिहं विउलं रायामित्तेयं उवट्ठवेहि । तए णं ते कोडुं बियपुरित्ता जाय (महत्थं महग्घं महरिहं विउलं रायामित्तेयं) उवट्ठवेहि ।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों-मेवकों को बुलवाया और बुलवा कर ऐसा कहा—‘देवानुत्तिपो ! मेघकुमार का महान् अर्थ वाला, बहुमूल्य एवं महान् पुरुषों के योग्य विपुल राज्याभिषेक (के योग्य सामग्री) तैयार करो ।’ तत्पश्चात् कौटुम्बिक पुरुषों ने यावत् (महार्थ, बहुमूल्य, महान् पुरुषों के योग्य, विपुल) राज्याभिषेक की सब सामग्री तैयार की ।

१३४—तए णं सेणिए राया बहूहि गणनायग-दंडनायगेहि य जाय<sup>१</sup> संपरिवुडे मेहं कुमारं पट्टतएणं सोवग्गिमयाणं कलसाणं, एवं हप्पमयाणं कलसाणं, मल्लिमयाणं कलसाणं, सुवग्ग-रत्थमयाणं कलसाणं, सुवग्ग-मणिमयाणं कलसाणं, हप्प-मणिमयाणं कलसाणं, सुवग्ग-रत्थ-मणिमयाणं कलसाणं, सोमेज्जणं कलसाणं सव्वोदएहि सव्वमट्ठियाहि सव्वपुक्केहि सव्वपंधेहि सव्वमत्तेहि सव्वोत्तहिहि य, सिद्धस्य एहि य, सव्विदुए सव्वजुईए सव्वबलेणं जाय कुंडुमि-निम्पोस-णादियरवेणं महया महया रायामित्तेणं अमिस्सिचइ, अमिस्सिचिस्सा करयल जाय परिग्गाहिंयं दसनहं सिरसायत्तं मयए अंजनि कट्टु एवं वयासी ।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा ने बहुत से गणनायकों एवं दंडनायकों आदि से परिवृत होकर मेघकुमार की, एक सौ आठ सुवर्ण कलशों, इसी प्रकार एक सौ आठ चाँदी के कलशों, एक सौ प्राट मणिमय कलशों, एक सौ प्राट स्वर्ण-रजत के कलशों, एक सौ प्राट स्वर्ण-मणि के कलशों, एक सौ प्राट रजत-मणि के कलशों, एक सौ प्राट स्वर्ण-रजत-मणि के कलशों और एक सौ प्राट मिट्टी के कलशों—इस प्रकार आठ सौ चौमठ कलशों में सब प्रकार का जल भरकर तथा सब प्रकार की मृत्तिका से, सब प्रकार के पुष्पों से, सब प्रकार के गंधों से, सब प्रकार की मालाओं से, सब प्रकार की धोपधियों से तथा गरमों से उन्हें परिपूर्ण करके, सब गमूढि, धृति तथा सब सैन्य के साथ, दुंडुभि के निषेध की प्रतिध्वनि के शब्दों के साथ उच्चकोटि के राज्याभिषेक से अभिविषित किया । अभिषेक करने श्रेणिक राजा ने दोनों हाथ जोड़ कर [मन्त्रक पर अंजलि घुमाकर] यावत् इस प्रकार कहा—

१३५ ‘अय जय गंदा ! जय जय मद्दा ! जयगंदा ! मद्दं ते, अजियं जिणेहि, जियं पासयाहि,

जिममग्ने वसाहि, अजियं जिणेहि सत्तपवञ्जं, जियं च पात्तेहि मित्तपवत्तं. जाव इंदो इव देवाणं, चमरो इव अमुराणं, धरणो इव नागणं चंदो इव ताराणं, भरहो इव मणुषाणं रायगिहस्स नगरस्स अग्नेति च वत्तणं गामागरनगर जाव खेद-कम्बट-वोणमुह-मडव-पट्टण-आसम-निगम-संवाह-संनिवेशाण आहेवच्चं जाव पोरेवच्चं सामित्तं मट्ठिंसं महत्तरगतं आणाईसरसेणावच्चं कारेमाणे पासेमाणे महायाहय-नट्ट-गोन-वाइय-संतो-तल-ताल-वुडिय-धण-मुदंग-पट्ट-पयाइयरवेणं विउत्ताइ भोगभोगाइ भू-ज-पाणे विहराहि' ति कट्ठ जयजयसइ पठंजंति ।

तए णं से मेहे राया जाए महाया जाव' विहरइ ।

'हे नन्द ! तुम्हारी जय हो, जय हो । हे भद्र ! तुम्हारी जय हो, जय हो । हे जगन्मन्द (जगत् को आनन्द देने वाले) ! तुम्हारा भद्र (कल्याण) हो । तुम न जीते हुए को जीतो भीर जीते हुए का पालन करो । जितों-आचारवानों-के मध्य में निवास करो । नहीं जीते हुए मन्त्रपक्ष को जीतो । जीते हुए मित्रपक्ष का पालन करो । यावत् देवों में इन्द्र, अमुरों में चमरेन्द्र, नागों में धरण, ताराओं में चन्द्रमा एवं मनुष्यों में भरत वज्री को भांति राजगृह नगर का तथा दूसरे बहुतेरे ग्रामों, आकरों, नगरों यावत् [खेद, कम्बट, द्रोणमुख, मडव, पट्टन, आश्रम, निगम, संवाह—] भीर समिवेशों का आधिपत्य यावत् [नेतृत्व आदि करते हुए विविध वार्यों, गीत, नाटक आदि का उपभोग करते हुए] विचरण करो ।' इस प्रकार कहकर श्रेणिक राजा ने जय-अयकार किया ।

तत्पश्चात् मेघ राजा हो गया भीर पर्वतों में महाहिमवन्त की तरह घोभा पाने लगा ।

१३६ तए णं तस्स मेहस्स रण्णो अम्मावियरो एवं वयासी—'मघ जाया ! किं वसयामी ? किं पयच्छामी ? किं वा ते हिमइच्छिए सामग्ये (मंते) ?

तत्पश्चान् माता-पिता ने राजा मेघ से इस प्रकार कहा—'हे पुत्र ! बताओ, तुम्हारे किस अनिष्ट को दूर करें अथवा तुम्हारे इष्ट-जनो को क्या दें ? तुम्हें क्या दें ? तुम्हारे चित्त में क्या चाह-विचार है ?

संयथोपकरण की भाँति

१३७ तए णं से मेहे राया अम्मावियरं एवं वयासी—'इच्छामि णं अम्मयाभो ! कुत्तिपाव-एणाओ रयहरणं पडिगहं च उवणेह, कासवयं च सदावेह ।'

तब राजा मेघ ने माता-पिता से इस प्रकार कहा—'हे माता-पिता ! मैं चाहता हूँ कि कुत्तिकापण (जिममें सब जगह की सब वस्तुएँ मिलती हैं, उस अलौकिक देवाधिष्ठित दुकान) में रजोहरण और पत्र भगवा दीबिए और काश्यप-नापित को बुलवा दीबिए ।

१३८ तए णं से सेणिए राया कोड्ढिम्पपुरिसे सदावेइ । सदावेत्ता एवं वयासी—'गच्छह णं सुब्भे देवाणुप्पिया ! सिरिधराओ तिन्नि सयसहस्साइं गहाय थोहि सयसहस्सेहि कुत्तिपावणाओ रयहरणं पडिगहणं च उवणेह, सयसहस्सेणं कासवयं सदावेह ।'

तए णं ते कोड्ढिम्पपुरिसा सेणिएणं रण्णा एवं युत्ता समाणा हट्ठुट्ठा सिरिधराओ तिन्नि



ममस्यमाद महाय कृत्तिपावणाधो दोहि सयसहस्रोहि रयहरणं पडिगहं च उवणेन्ति, समाने कामवयं महावेन्ति ।

ममस्यमान् श्रीगुरु राजा ने अपने कीटुम्बिक पुरषों को बुलवाया । बुलवाकर इनका बड़ा देवानुग्रहो' तुम जाओ, श्रीगुरु (गजाने) से तीन साग स्वर्ण-मोहरे लेकर दो नगों बुद्धिमानों म रजोहरण घोर पात्र ने घाघो गया एक साग लेकर नार्ई को बुला लाओ ।

ममस्यमान् श्रीगुरु राजा श्रीगुरु के ऐसा कहने पर हृष्ट-मुष्ट होकर दोनों ही राजा साग लेकर बुद्धिमानों से दो साग से रजोहरण घोर पात्र लाये और एक साग मोहरे देकर नार्ई को बुलवाया ।

हीना की कैलासी

॥१॥ ममस्यमे कामवयं नेत्र कीटु बिजगुरिसेहि सहाविए समाने हट्टे जाय [हृष्टमुष्ट निज सागरिण आरु हृष्टिस्वर्णविमानमामिदिय] पहाय कामवयिकसमे कामकोउममंसलपायविदिते मुद्राव ममस्यमान् कामवयं पदपत्रविशिष्ट घनामहागामरनालकियसरीरे जेनेय सेनिए राधा तेनां हृष्टमुष्ट । उवणेन्ति । नेनिय राय करमममंजनि कट्टु एवं वयासी—सविसहं नैशानुगित क म ममस्यमान् ।

राजा ने कैलासी राजा कामवय एवं वयासी—महद्वाहि नं तुमं देवानुत्तिपा ! गुरि राधा विदिते हृष्टमुष्ट । नेनिय पहायामाण पोलीय मुहं वयंता मेहान पुषा कट्टुमममंजनि कट्टु एवं वयासी ।

ममस्यमान् कामवयं हट्टे जाय [हृष्टमुष्ट हुवा पावर उमा] ममस्यमान् कामवयं पदपत्रविशिष्ट घनामहागामरनालकियसरीरे जेनेय सेनिए राधा तेनां हृष्टमुष्ट । उवणेन्ति । नेनिय राय करमममंजनि कट्टु एवं वयासी—सविसहं नैशानुगित क म ममस्यमान् ।

ममस्यमान् कामवयं पदपत्रविशिष्ट घनामहागामरनालकियसरीरे जेनेय सेनिए राधा तेनां हृष्टमुष्ट । उवणेन्ति । नेनिय राय करमममंजनि कट्टु एवं वयासी—सविसहं नैशानुगित क म ममस्यमान् ।

ममस्यमान् कामवयं पदपत्रविशिष्ट घनामहागामरनालकियसरीरे जेनेय सेनिए राधा तेनां हृष्टमुष्ट । उवणेन्ति । नेनिय राय करमममंजनि कट्टु एवं वयासी—सविसहं नैशानुगित क म ममस्यमान् ।

ममस्यमान् कामवयं पदपत्रविशिष्ट घनामहागामरनालकियसरीरे जेनेय सेनिए राधा तेनां हृष्टमुष्ट । उवणेन्ति । नेनिय राय करमममंजनि कट्टु एवं वयासी—सविसहं नैशानुगित क म ममस्यमान् ।

१४१ तए नं तरत मेहरम कुमारस्त माया महारहेनं हंसतन्त्रनेनं पडताइएणं घगवेते पडिइएणं । पडिइएणं मुरमिना मंगेशएणं पडताइएणं, पडताइएणं तरतेनं गोतीमचरणेनं पडताइएणं दनपति, दनदत्ता सेयाए पोतीए बंधेइ, बंधिता रयणतपुमगयंति पडिपडि, पडिपडिता मंगताए पडिपडि, पडिपडिता हार बारिधार-तिम्बुधार-दिग्गमुत्तवति-पगताइं धंगुं विनिम्बुमपानी विनिम्बुमपानी रोयमानी रोयमानी कंदमानी कंदमानी वितवमानी वितवमानी एवं वपाती—'एग नं घगहं मेहरम कुमारस्त पडताइएणं य उरगवेणु य पतवेणु य निहोणु य धनेणु य अनेणु य पावणीणु य पडिइएणं इतिनं भविरतइ ति वट्टु उत्तोमापने ठवेइ ।

उग समय मेघकुमार की माता ने उन बेटी को बहुतस्य घोर हंग के बिन बाने उरगम वस्त्र में पहना दिया । पहना करके उन्हें गुणधिन मण्डोक में छोड़ा । फिर तम गोतीम चन्दन उन पर लिपटा । लिपट कर उन्हें रवेन वस्त्र में बांधा । बांध कर रान की द्विद्विषा में रखा । रन कर उन द्विद्विषा की मंगुता (पेटी) में रखा । फिर जन की धार, निगुंठी के पूस एवं दूटे हुए मोतियों के हार के गमान प्रभु धारा प्रवाहित करनी, करनी-रोनी-रोनी, घाफ्फन करनी-करनी घोर बिलाप करनी-करनी इन प्रकार बहने लगी—'मेघकुमार ने बेटी का यह दर्शन राग्य प्राप्ति घादि प्रभुदम के घवगर पर, उगव (प्रियममाणम) के घवगर पर, प्रनव (पुत्रजग घादि) के घवगर पर, त्रिपयो के घवगर पर, इ-उगहोगव घादि के घवगर पर, नागपूजा घादि के घवगर पर तथा बापिकी पुरिमा घादि पर्वों के घवगर पर हूँ प्रतिम दर्शन रूप होगा । नापर्यं यह है कि इन बेटी का दर्शन, वेशरहित मेघकुमार का दर्शन रूप होगा ।' इन प्रकार बहकर धारिणी ने यह पेटी धरने निरगने के नीचे रग ली ।

१४२ तए नं तरत मेहरम कुमारस्त घमाविपरी उत्तरावचकमयं सोहातनं रमावेति । मेहं कुमारं बोधं वि तबधं वि सेयवीपएह कलसेहि ब्रूवेति, ब्रूवेत्ता पडताइएणं मंगताइएणं मायाइं वूहेति, वूहिता तरतेनं गोतीमचरणेनं मायाइं धनूतिवेति, धनूतिविता नातानीतातवाय-योगं जाय [ वरपट्टमगयं कुमलनरपयंतिं वरतमातावेतवं देवावरियकणगतविपंतकर्म ] हंसतन्त्रनेनं पडताइएणं निवमेति, निवमिता हारं विण्डति, विण्डिता घट्टहारं विण्डति, विण्डिता एगावति मुत्तावति कणावति रयणावति वालवं पायपलवं कट्टाइं सुदिगाइं केऊराइं धंगमाइं दसमुदिमाणतयं वट्टिमुत्तयं कट्टलाइं वट्टावति रयणवकं मडं विण्डति, विण्डिता दिव्यं मुमणदामं विण्डति, विण्डिता वट्टरमतपमुंघिणं मंघे विण्डति ।

तत्तरपातु मेघकुमार के माता-पिता ने उत्तराभिमुख विहासन रखाया । फिर मेघकुमार को दो-तीन बार ध्वेन घोर पीन घर्षण पीपी घोर मोने के कलनों से नहलाया । नहला कर एंदांर घोर घत्पन्त कोमल मंगकापाय(गुणधिन कपायले रग से रगे) वस्त्र से उसके अंग पीछे । पीछकर गरग गोतीम चन्दन में घरीर पर बिलेपन किया । बिलेपन करके नासिका के निदवात की वायु से भी उड़ने योग्य—मति घारीक [थंछ पट्टन में निमित, कुपन जनों द्वारा प्रगसित, घव के मुग से निवतने बाने पेल के समान कोमल, कुमल कारीगरों ने जिनके कितारे स्वर्ण-मचित रिये है] तथा हंग-नरग वाना (हंग के चिल्ला वाला प्रववा हंस के गरुड दवेठ) वस्त्र पहनाया । पहनाकर घट्टारह नई का हार पहनाया, नौ झई का घट्टार पहनाया, फिर एकावली, मुक्तावली, कनकावली,

रत्नावली, प्रालंब (कंठी) पादप्रलम्ब (पंखे तक लटकने वाला आभूषण), कड़े, तुट्टिक (भुजा का आभूषण), केयूर, अंगद, दसों उंगलियों में दस मुद्रिकाएँ, कदोरा, कुंडल, भूडामणि तथा रत्नमय मुकुट पहनाये। यह सब अलंकार पहनाकर पुष्पमाला पहनाई। फिर दंदर में पकाए हुए चने में गुग्गुलु तेल की गंध शरीर पर लगाई।

विशेष—दंदर-मिट्टी के घड़े का मुँह कपड़े से बाँध कर अग्नि की प्राँय से तपाकर तैला किया गया तेल अग्न्यन्त गुग्गुलुयुक्त होता है और उसका गुणकारी तत्त्व प्रायः मुरक्षित रहता है।

१४३ त ए णं तं येहं कुमारं गंठिम-वेडिम-पूरिम-संधाहमेणं चउव्विहेणं मत्सेणं कप्पसकं पिय अलं कियमिभूसिमं करेन्ति ।

तत्पश्चात् मेघकुमार को सूत से गूथी हुई, पुष्प आदि से वेडी हुई घास की सलाई आदि से पुर्ण की गई तथा वस्तु के योग से परस्पर सघात रूप की हुई—इस तरह चार प्रकार की पुष्पमालाओं में कल्पयुक्त के समान अलंकृत और विभूषित किया।

२४४ त ए णं से सेणिए राया कोडुं विपपुरित्ते सहायेइ, सद्दाविता एवं ययासी—‘सत्त्वाने भो देवानुविष्या । अनेगलंमसयसन्निविट्ठं सोलट्ठियसालभंजियाणं ईहामिग-उसम-सुरप-नर-मपा-विहग-वासग-किन्नर-रुद-सारभ-चमर-कुंजर-यणसय-पउमसय-मसिचित्तं पंटावलिमहुर-मणहररं सुव-कंत-वरिसणिज्जं निउणोचिममिसिमिसंतमणि-रयणपंठियाजालपरिचित्तं खंभुगयवहरवैड्यापरिगग-मिरामं विउजाहरजमसंतजुत्तं पिय अचचीसहस्समासणीयं हयगसहस्सकलियं मिसमाणं निमिसमत्तं यवत्ततोपणत्तेसं गुहफासं सत्तिरीयहयं तियं सुरियं अयसं वेइयं पुरिससहस्समाहिं सीरं उवट्ठवेह ।’

तत्पश्चात् राजा श्रेष्ठिक ने कीटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर कहा—देवानुविधो ! त्वम शीघ्र ही एक निविडा तैयार करो जो अनेक सैकड़ों स्तंभों से बनी हो, जिनमें त्रीडा करती हुई पुनर्विनी बनी हो, ईशमृग (अष्टिमा), वृषभ, तुरग-घोड़ा, नर, मगर, विहग, सर्प, किन्नर, रुद (बाहे मृग), सारभ (मष्टावद), चमरी माय, कुञ्जर, वनमता और वपलता आदि के चित्रों की रचना से युक्त हो, जिनमें घटिप्रां के समूह के मधुर और मनोहर शब्द हो रहे हों, जो शुभ, मनोहर और दमनीय हो, जो सुगन्धकारीगरी द्वारा निर्मित देदीप्यमान मणियों और रत्नों की सुंदरता के समूह से युक्त हो, इनमें पर बनी हुई वेडिका से युक्त होने के कारण जो मनोहर दिनाई देनी हो, जो विविध विद्याधर-युगलों में गोभिन हो, विविध मृगों की हजार फिरणों से गोभिन हो, इन प्रकार हजारों रत्नों वाली, देदीप्यमान, अनिनाय देदीप्यमान, जिसे देगते नेत्रों को तृप्ति न हो, जो सुगन्ध रसों वाली हो, मधुर स्वस्व वाली हो, गोघ्न स्वर्णि अपन और घटिनाय चपल हो, यथां विने सीधगापुत्र से जाना जाय और जो एक हजार पुरुषों द्वारा बहन की जानी हो।

१४५ त ए णं से कोडुं विपपुरित्ता हट्टनुट्ठा जाव उवट्ठवेन्ति । त ए णं ते मेहे कुमारो तीरं रुद्ध, रुद्धिमा सोऽमणवरणं पुरावाविमं मन्निमजे ।

ये कीटुम्बिक पुरुष हट्ट-नुट्ट होकर यावत् निविडा (पावकी) उत्पन्न करते हैं । तत्पश्चात्

मेघकुमार शिविका पर आरुढ़ हुआ और गिहामन के गाम पहुँचकर पूर्वदिशा की ओर मुग्न करके बैठ गया ।

१४६ तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स माया ष्हाया कयवत्तिकम्मा जाव घप्पमहाघामरणासं-  
क्रियसरीरा सीयं दुहहति । दुहहिता मेहस्स कुमारस्स दाहिणे पासे भद्रासनंति निसीयति ।

तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स ग्रंथपाई रयहरणं च पट्टिगहं च गहाय सीयं दुहहद, दुहहिता  
मेहस्स कुमारस्स यामे पासे भद्रासनंति निसीयति ।

तत्पश्चात् जो स्नान कर चुकी है, बलिकर्म कर चुकी है यावत् धरप और बहुमूल्य आभरणों  
से शरीर को अलंकृत कर चुकी है, ऐसी मेघकुमार की माता उम शिविका पर आरुढ़ हुई । आरुढ़  
होकर मेघकुमार के दाहिने पाश्वर्ग में, भद्रासन पर बैठी ।

तत्पश्चात् मेघकुमार की धायमाता रजोहरण और पात्र लेकर शिविका पर आरुढ़ होकर  
मेघकुमार के बायें पाश्वर्ग में भद्रासन पर बैठ गई ।

१४७ तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स चिट्ठमो एगा धरतण्णी सिगारागारचारवेसा संगय-गय-  
हसिय-मणिय-चेट्ठिय-विसास-संसायुत्ताय-निउण्णुत्तोययारकुत्ता, घामेतग-जमल-जुपल-चट्ठिय-  
अभुग्गय-वीण-रङ्गय-संठियपमोहरा, हिम-रयमकुम्भेनुपगासं सकोरंटमस्तवामघवत्तं घायवत्तं गहाय  
सलीलं ओहारेमाणी ओहारेमाणी चिट्ठं ।

तत्पश्चात् मेघकुमार के पीछे शृंगार के आगार रूप, मनोहर वेप वाली, सुन्दर गति, हास्य,  
वचन, चेष्टा, विनास, सलाप (पारस्परिक वार्तालाप) उरलाप (वर्णन) करने में कुशल, योग्य उपचार  
करने में कुशल, परस्पर मिले हुए, समर्थणी में स्थित, गोल, जैव, पुष्ट, प्रीतिजनक और उत्तम आकार  
के स्तनों वाली एक उत्तम तरुणी, हिम (वर्ण) चाँदी कुन्दपुष्प और चन्द्रमा के समान प्रकाश वाले,  
कोरट के गुप्ती की माला में युक्त घवल ध्वज की हाथों में धामकर लीलापूर्वक खड़ी हुई ।

१४८ तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स दुवे धरतण्णीओ सिगारागारचारवेसाओ जाव  
कुत्ताओ सीयं दुहहति, दुहहिता मेहस्स कुमारस्स उमओ पासं माणामणि-कण्ण-रयण-महरिहत-  
पणिज्जुज्जलविचित्तदंडाओ विल्लिमाओ मुहुमयरदोहवालाओ संल-कुन्द-रय-रयम-महियफेणपुंजसन्नि-  
गासाओ धामराओ गहाय सलीलं ओहारेमाणीओ ओहारेमाणीओ चिट्ठंति ।

तत्पश्चात् मेघकुमार के समीप शृंगार के आगार के समान, सुन्दर वेप वाली, यावत् उत्तित  
उपचार करने में कुशल दो श्रेष्ठ तरुणियाँ शिविका पर आरुढ़ हुईं । आरुढ़ होकर मेघकुमार के दोनों  
पाश्वर्गों में, विविध प्रकार के मणि सुवर्ण रत्न और महान् जनों के योग्य, अथवा बहुमूल्य तपनीयमय  
(रक्तवर्ण सुवर्ण, वाले) उज्ज्वल एवं विचित्र दंडी वाले, चमचमाते हुए, पतले उत्तम और लम्बे वाली  
वाले, संल कुन्दपुष्प जलकण रजत एवं मंथन किये हुए धमृत के फेन के समूह सरीसृ (श्वेत वर्ण वाले)  
दो चामर धारण करके लीलापूर्वक वीजती-वीजती हुई खड़ी हुईं ।

१४९ तए णं तस्स मेहकुमारस्स एगा धरतण्णी सिगारागारचारवेसा जाव कुत्ता सीयं

व दुरुहद । दुरुहिता मेहस्त कुमारस्त पुरतो पुरस्त्रिमेणं संरूपम-गडर-वेदतिथ-विममरं तारिं  
हाय चिट्ठद ।

तत्पदवात् मेघकुमार के समीप शृंगार के आगार रूप गान् उगिता उपना वस्ते में कुण  
का उत्तम तरणी यावत् निविका पर आरुद हुई । आरुद होकर मेघकुमार के पास पूर्व रिना है  
नमुद नन्दकान्त मणि वज्रस्त धीर वेदगंगम निमंन देही माने पमे को प्रहण करने गड़ी हुई ।

१५० तए णं तस्स मेहस्त कुमारस्त एगा वरतरणी जाय सुन्दरा सीयं दुरुहद, दुरुहिता  
मेहस्त कुमारस्त पुद्बदविल्लणेणं सेयं रययामय विमलमलितपुमं मत्तगयमहामुहाकिइसमानं जिगा  
गहाय चिट्ठद ।

तत्पदवात् मेघकुमार के समीप एक उत्तम तरणी यावत् सुन्दर रूप वाली निविका पर  
आरुद हुई । आरुद होकर मेघकुमार से पूर्वदक्षिण-ग्रामेय-दिशा में श्वेत रजतमय निमंन जन ने  
परिपूर्ण, मदमाते हाथी के बड़े मुख के गमान आकृति वाले शृंगार (भरारी) को प्रहण करने  
खड़ी हुई ।

१५१ तए णं तस्स मेहस्त कुमारस्त विद्या कोडु'वियपुरिसे सहावेद, सहाविता एवं वयामी-  
'खिप्पामेव सो देवानुप्पिया । सरिसघाणं सरिसत्तयार्णं सरिसवयार्णं एगामरणगहिपनिज्जोयं  
कोडु'वियवरतरणाणं सहस्सं सहावेह ।' जाव सहायेन्ति ।

तए णं कोडु'वियवरतरणपुरिसे सेणियस्त रत्तो कोडु'वियपुरिसेहि सहाविद्या समाना ह्वा  
वहाया जाव एगामरणगहिपनिज्जोया जेणामेव सेणिए राया तेणामेव उवागच्छति । उवागच्छिता  
सेणियं रायं एवं वयासो—'संसिह णं देवानुप्पिया । जं णं अग्गेहि करणिज्जं ।

तत्पदवात् मेघकुमार के माता-पिता ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया । बुला कर इस प्रकार  
कहा—'देवानुप्रियो ! वीघ्र ही एक सरीसृप, एक सरीसृप त्वचा (कान्ति) वाले, एक सरीसृप उभ्र वाले  
तथा एक गरीसृप आभूषणों से समान वेप धारण करने वाले एक हजार उत्तम तरण कौटुम्बिक पुरुषों  
को बुलाओ ।' यावत् उन्होंने एक हजार पुरुषों को बुलाया ।

तत्पदवात् श्रेणिक राजा के कौटुम्बिक पुरुषों द्वारा बुलाये गये वे एक हजार थे।  
तदन सीवर हृष्ट-नुष्ट हुए । उन्होंने स्नान किया, यावत् एक से आभूषण पहन कर आमान पीता  
पट्टी । फिर जहाँ श्रेणिक राजा था, वहाँ आये । आकर श्रेणिक राजा से इस प्रकार बोले—  
देवानुप्रिय ! हमें जो करने योग्य है, उसके लिए आभा दीजिए ।

१५२ तए णं से सेणिए तं कोडु'वियवरतरणसहस्सं एवं वयासो—'गच्छह णं देवानुप्पिया'  
मेहस्त कुमारस्त पुरित्तसहासवाहिणं सीयं परिबहेह ।

तए णं तं कोडु'वियवरतरणसहस्सं सेणिएणं रण्णा एवं वुत्तं संतं हट्ठं मुट्ठं तत्ता मे।  
कुमारस्त पुरित्तसहासवाहिणं सीयं परिबहति ।

तत्पदवात् श्रेणिक राजा ने उन एक हजार उत्तम तरण कौटुम्बिक पुरुषों से कहा—

देवानुप्रियो ! तुम जाओ और हजार पुरुषों द्वारा वहन करने योग्य मेघकुमार की पालकी को वहन करो ।

तत्पश्चात् वे उत्तम तरण हजार कौटुम्बिक पुरुष श्रेणिक राजा के इस प्रकार कहने पर दृष्ट-नुष्ट हुए और हजार पुरुषों द्वारा वहन करने योग्य मेघकुमार की निविका को वहन करने लगे ।

१५३ तएणं तस्स मेहस्स कुमारस्स पुरिससहस्सवाहिणिं सोमं दुह्मस्स समाणस्स इमे अट्ठट्ठमंगलया तत्पडमयाए पुरतो ग्रहाणुपुत्थोए संपट्ठिया । संजहा—(१) सोत्थिय (२) तिरिचरछ (३) नंदियायत्त (४) वट्टमाणग (५) मद्दासन (६) कलस (७) मत्थ (८) दप्पण्या जाय' बह्वे अत्तरियया जाय कामरियया भोगरियया सामरियया किम्बितिया कारोदिया कारवाहिया संखिया चरियया नंगलिया मुहमंगलिया अट्टमाणा पुसमाणया खंडियमणा ताहि इट्ठाहि जाय' अणवरयं अभिणंबता य एवं ययासी ।

तत्पश्चात् पुरुषसहस्रवाहिनी निविका पर मेघकुमार के धारुण होने पर, उसके सामने सर्वप्रथम यह घाट भगनद्रव्य अनुग्रम मे चले धर्यान् चलाये गये । वे इस प्रकार हैं—(१) स्वस्तिक (२) श्रीवत्स (३) नदावत्त (४) वर्धमान (तिकोरा या पुरुषारूढ पुरुष या पाँच स्वस्तिक या विशेष प्रकार का प्रासाद), (५) भद्रासन (६) कलस (७) मत्थ और (८) दर्पण । बहुत से धन के अर्थी (दायक) जन, कामार्थी, भोगार्थी, सामार्थी भांड आदि, कापालिक भयवा ताम्बूलबाहक, करो से पीड़ित, शीघ्र जाने वाले, चान्त्रिक—चक्र नामक शस्त्र हाथ मे लेने वाले या कुंभार-लेली आदि, लागलिक—गले मे हूल के आकार का स्वर्णभूषण पहनने वाले, मुखमागलिक—मीठी-मीठी बातें करने वाले, वर्धमान—अपने कर्मे पर पुरुष को विठाने वाले, पूयमानव—मागध—स्तुतिपाठक, खण्डिक—गण—छात्रसमुदाय उसका दृष्ट प्रिय मधुर वाणी से अभिन्दन करते कहने लगे ।

१५४ 'जय जय जंदा ! जय जय भद्रा ! जयजंदा ! महं ते, अजियाइं जिणाहि इंदियाइं, जिंयं च पालेहि समणधम्मं, जियविघोसिं य वसाहि तं देव ! सिद्धिमग्गे, निहणाहि रागदोसमल्ले तवेणं पिहपणियवट्टकच्छे, मद्दाहि य अट्टकम्मसत्तु भाणेणं उत्तमेणं सुखकेणं अयमपतो, पाचय वित्तिमिर-मणुत्तरं केवलं नाणं, गच्छ य मोवसं परमपयं सासयं च अयत्तं हंता परोसहचमु'णं समीघो परोसहोवसगणं, धम्मं ते अविघयं भवत' सि कट्ठ पुणो पुणो मंगलजयअयसहं पवजंति ।

हे नन्द ! जय हो, जय हो, हे भद्र, जय हो, जय हो ! हे जगत् को धानन्द देने वाले ! तुम्हारा कल्याण हो । तुम नहीं जीती हुई पाँच इन्द्रियों को जीती और जीते हुए (प्राप्त किये) साधुधर्म का पालन करो । हे देव ! विघ्नो को जीत कर सिद्धि मे निवास करो । धैर्यपूर्वक कमर कस कर, तप के द्वारा राग-द्वेष रूपी भस्त्रों का हनन करो । प्रमादरहित होकर उत्तम शुक्ल ध्यान के द्वारा घाट कर्म रूपी शय्या का मर्दन करो । अज्ञानान्धकार से रहित सर्वोत्तम केवल ज्ञान को प्राप्त करो । परीपह रूपी सेना का हनन करके, परीपहों और उपसर्गों से निर्भय होकर आश्वत एव भ्रमल परमपद रूप मोक्ष को प्राप्त करो । तुम्हारे धर्मसाधन मे विघ्न न हो । इस प्रकार कह कर वे पुनः पुनः मंगलमय 'जयजय' शब्द का प्रयोग करने लगे ।

[illegible]

1. התאחדות העובדים - התאחדות העובדים הכללית  
 2. התאחדות העובדים - התאחדות העובדים הכללית  
 3. התאחדות העובדים - התאחדות העובדים הכללית  
 4. התאחדות העובדים - התאחדות העובדים הכללית  
 5. התאחדות העובדים - התאחדות העובדים הכללית  
 6. התאחדות העובדים - התאחדות העובדים הכללית  
 7. התאחדות העובדים - התאחדות העובדים הכללית  
 8. התאחדות העובדים - התאחדות העובדים הכללית  
 9. התאחדות העובדים - התאחדות העובדים הכללית  
 10. התאחדות העובדים - התאחדות העובדים הכללית

१०. ... ..  
... ..  
... ..

[illegible]

तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर ने मेघकुमार के माना-गिता द्वारा इस प्रकार बड़े जाने र इस धर्म (यान) को मध्यन् प्रकार ने स्वीकार किया ।

तत्पश्चात् मेघकुमार श्रमण भगवान् महावीर के पास से उत्तरपूर्व धर्मात् ईशान दिशा के गये गये । आकर स्वयं ही आभूषण, माना और धर्तकार (वस्त्र) उतार दाने ।

१५८ तए णं से मेहेकुमारस्त माया हंततवत्तणेणं पडमाइएणं धामरण-मत्तात्तंकारं विवदइ । परिबिदत्ता हार-आरिपार-सिबुवार-दिशमुत्तावतिपगामाईं धंगुणि विनिम्मुपमाणी विनिम्मु-माणी रोयमाणी रोयमाणी कंडमाणी कंडमाणी विलवमाणी विलवमाणी एवं वयासीः—

‘अइययं जाया । धइययं जाया । परववविषयं जाया । धत्ति व णं घट्ठे नो पमाएययं । अहं वि णं एमेव मागे भवउ’ ति वट्ठु मेहस्त कुमारस्त धम्माविपरो समणं भगवं महावीरं वंदंति संभंति, वंदित्ता भमंतिता आमेव वंति पाउअद्दुया तामेव वंति पडिगया ।

तत्पश्चात् मेघकुमार की माना ने हन के सलग याने धर्मात् धवल और मुकुल वस्त्र में आभूषण, माना और धर्तकार पहन लिये । पहन करके हार, जन की धारा, निगुंडी के पुष्प और टूटे हुए मुक्तावली-हार के समान अथ टुकड़ानी हुई, रोगी-रोगी, आश्रयन करनी-करती और विलाप करनी-करती इस प्रकार बहने लगी—

‘हे यान! प्राप्त चारित्र्ययोग में यतना करना, हे पुत्र ! अप्राप्त चारित्र्ययोग के लिए घटना करना—प्राप्त करने का यत्न करना, हे पुत्र ! पराश्रम करना । समय—साधना में प्रमाद न करना, हमारे लिए भी यही मार्ग ही, धर्मात् भविष्य में हमें भी समय अगीकार करने का सुयोग प्राप्त हो ।’

इस प्रकार बह कर मेघकुमार के माना-गिता ने श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन नमस्कार किया । वन्दन नमस्कार करके त्रिम दिशा से आये थे, उसी दिशा में लौट गये ।

इत्यादि

१५९ तए णं से मेहे कुमारे सममेव वंअमुट्ठियं लोयं करेइ । करित्ता जेणामेव समणं भगवं महावीरे तेणामेव उवागवदइ । उवागविदत्ता समणं भगवं महावीरं तिबन्नुतो आयाहिणं पयाहिणं करेइ । करित्ता वंदइ, नमंतिइ, वंदित्ता भमंतिता एवं वयासी—

‘आसित्ते णं भंते ! लोए, पसित्ते णं भंते ! लोए, आसित्तपसित्ते णं भंते ! लोए जराए मरणेण व । ते जहानासए केई माहावई आमारंसि भिमायमाणंसि ते तस्य भंते भवइ अस्वभारे मोत्तसुदए, तं गहाय आयाए एगंतं अववकमइ, एत मे निरवारिए समणे वग्धा पुरा हियाए सुहाए लमाए निस्सेसाए आनुगामिपत्ताए भवित्तइ । एवामेव मम वि एणे आयाभंते इट्ठे कंते पिए मणुंभे मणामे, एत मे निरवारिए समणे संतारवोष्पेयकरे भवित्तइ । तं इच्छामि मां देवानुत्पियाहिं सममेव पञ्चावियं, सममेव मुंडावियं, सेहावियं, सिक्खावियं, सममेव आघार-गोवर-विजय-येणइय-चरण-करण-जाया-मायावत्तिवं धम्ममाइरित्तयं ।’

तत्पश्चात् मेघकुमार ने स्वयं ही पंचमुष्टि लोच किया । लोच करके जही श्रमण भगवान् महावीर थे, वही आया । आकर श्रमण भगवान् महावीर को तीन बार दाहिनी ओर से आरम्भ करके प्रदक्षिणा की । फिर वन्दन-नमस्कार किया और कहा—



भगवन् ! यह ससार जरा और मरण से (जरा-मरण रूप अग्नि से) प्रादीप्त है, यह सार प्रदीप्त है । हे भगवन् ! यह ससार प्रादीप्त-प्रदीप्त है । जैसे कोई गाथापति अपने घर में अन्न का जाने पर, उस घर में जो अल्प भार वाली और बहुमूल्य वस्तु होती है उसे ग्रहण करके स्वयं एतान् में चला जाता है । वह सोचता है कि—‘अग्नि में जलने से बचाया हुआ यह पदार्थ मेरे लिए बलि पीछे हित के लिए, मुख के लिए, क्षमा (समर्थता) के लिए और भविष्य में जलने के लिए होगा । इसी प्रकार मेरा भी यह एक आत्मा रूपी भांड (वस्तु) है, जो मुझे दृष्ट है, स्पर्श है, प्रिय है, मनोज्ञ है और अतिशय मनोहर है । इस आत्मा को मैं निकाल लूँगा—जरा मरण के अग्नि में भस्म होने से बचा लूँगा, तो यह ससार का उच्छेद करने वाला होगा । अतएव मैं चाहता हूँ कि देवानुप्रिय (प्राप) स्वयं ही मुझे प्रव्रजित करे—मुनिवेष प्रदान करे, स्वयं ही मुझे मुक्ति के मेरा लोच करे, स्वयं ही प्रतिलेखन आदि सिखावे, स्वयं ही सूत्र और अर्थ प्रदान करके शिक्षा दे, सब ही ज्ञानादिक आचार, गोचरी, विनय, वैनयिक (विनय का फल), चरणसत्तरी, करणसत्तरी, मन्त्र-मात्रा और मात्रा (भोजन का परिमाण) आदि स्वरूप वाले धर्म का पररूपण करे ।

विशेषण—मूलपाठ में आए चरणसत्तरी और करणसत्तरी का तात्पर्य है चरण के सत्तर में और करण के सत्तर भेद । साधु जिन नियमों का निरन्तर सेवन करते हैं, उनकी चरण या चरणगुण कहते हैं और प्रयोजन होने पर जिनका सेवन किया जाता है वे करण या करणगुण कहलाते हैं । चरण के सत्तर भेद इस प्रकार हैं—

सय-समणधम्म-संजम-येयावच्चं च खंमगुत्तीघो ।

नाणाइतिथं तव-कोहनिगाहाइ चरणमेयं ॥

—प्रोधनिपुंक्तिभाष्य, गाथा १

अर्थात् पाँच महाव्रत, दस प्रकार का क्षमा आदि श्रमणधर्म, सत्तर प्रकार का संयम, आचार आदि बारह प्रकार का वैयावृत्त्य, नौ श्रद्धाचर्यगुप्तियाँ तीन ज्ञान-दर्शन-चारित्र्य की धाराधना, बारह प्रकार का तप, बार प्रकार का कपायनिग्रह ।

करण के सत्तर भेद इस प्रकार हैं—

विडवितोही तविई, भावण-पडिमा य इंदियनिरोही ।

पडितेहण-गुत्तीघो, अजिगगहा चैव करणं तु ॥

—प्रोधनिपुंक्तिभाष्य, गाथा १

आहार, वस्त्र, पात्र और शय्या (उपाश्रय) की विगुह गयेवणा, पाँच समितियों, अतिथि आदि बारह भावना, बारह प्रतिमाएँ, पाँच इन्द्रियनिग्रह, पच्चीस प्रकार की प्रतिलेखना, तीन गुप्तियाँ और बार प्रकार के अभिग्रह ।

१६० तए नं समणे भगवं महावीरे सयमेव पर्यावेइ, सयमेव धायार जाव धम्ममाइवण-एवं देवानुत्तिमा । गंमयं बिट्ठिययं गिसीययं तुयट्ठिययं भूजिययं मासिययं, एवं उट्ठाए उट्ठाए पान्तिह भूण्हि जीवेहि सत्तेहि संजमेयं संजमिययं, अस्ति च नं भट्ठे जी वमाएययं ।

तए नं से मेहे कुमारे समणस्स भगवघो महावीरस्स संतिए इमं एयाह्वं यधिमयं उट्ठाए



१६२ तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स अयमेयाहवे अज्झत्थिए जाय [चितिए वणिग्गं मणोगते संकप्पे] समुप्पज्जित्था—'एवं खलु अहं सेजियस्स रत्तो पुत्ते, धारिणीए देवीए अत्तमे जाय' सयणयाए, न जया ण अहं अगारमज्जे यत्तामि, तया णं मम समणा निग्गंया अगारमि परिजाणंति, सबकारेति, संमाणेति, अट्ठाइं हेऊइं पत्तिणाइं कारणाइं वागरणाइं पाइरंति, इत्थं कताहि यग्गुहं प्राप्तयेन्ति, संसयेन्ति, जप्पमिइं च णं अहं भुंहे अविता अगाराणी अणगायं पाया, तप्पमिइं च णं मम समणा नो आढायंति जाय नो संसयन्ति । अयुत्तरं च णं मम समणा निग्गंया तले पुत्तरत्तायत्तकालतमयंति वायणाए पुच्छणाए जाव<sup>२</sup> महासियं च णं रत्ति नो संचाएमि इत्थं निमित्तायेत्तए । त सेयं तलु मज्झ कल्लं पाउप्पमायाए रयणीए जाव<sup>३</sup> तेयता जत्तं समं अं महावीरं आमुच्छित्ता पुणरवि अगारमज्जे यत्तिस्सए' ति कट्ठु एवं संपेहेइ । संपेहिता अट्ठुत्तुत्तुत्तु मानसगए निरपपट्ठिवियं च णं तं रयणिं लयेइ, अविता कल्लं पाउप्पमायाए सुविमलए रयणीं जाव तेयता जत्तं जेणेयं समणे मयं महावीरे तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तिबलुत्तो आगहिं पयाहिं करेइ । करित्ता वंदइ नमंत्तइ, वंदित्ता नमंस्सित्ता जाव<sup>४</sup> पज्जुयात्तइ ।

यय मेघकुमार के मन में इस प्रकार का अध्ययमाय [चिन्तन, प्रायित एवं मानसिक संन्यास] उत्पन्न हुआ—'मैं भौतिक राजा का पुत्र और धारिणी देवी का अग्रज (उदरजात) मेघकुमार हूँ । मैं [इष्ट, वांछा, प्रिय, मनोज्ञ मन्त्रादि] मेरा दान तो दूँ ] गूलर के पुष्प के समान मेरा नाम अथग कर' भी सुनंभ है । जब मैं घर में रहता था, तब अथग, निरन्ध्र मेरा आदर करते थे, 'यह कुमार ऐसा ही' इस प्रकार जानने से गम्भार-गम्भार करते थे, जीयादि पदार्थों को, उन्हें सिद्ध करने वाले हेतुओं को, इसी वी, कारणों की ओर ध्याकरणों (प्रश्न के उत्तरों) को कहते थे और बार-बार कहते थे । इसी प्रकार बाणी में मेरे माथ आया-मलाग करते थे । किन्तु जब मैं मैंने मुड़ित होकर, गृहस्थ ग निराश्रय गाधु-दीक्षा भगीषार की है, तब मैं लेकर गाधु मेरा आदर नहीं करते, यावत् आता गया नहीं करने । निम पर भी वे अथग निरन्ध्र पहली ओर पिछली रात्रि के समय वाचना पुनः आदि के लिए जाने-आने मेरे गम्भार की लापने हैं और मैं इतनी लम्बी रात भर में सोने की भीष गवा । अतएव अथ रात्रि के प्रमाण रूप होने पर यावत् तेज से जाग्रतस्थान होने पर (मूर्ति के व पश्चात्) अथग भगवान् महावीर से आज्ञा लेकर पुन गृहस्थ में बसना ही मेरे लिए अशक्य है । अथकुमार ने ऐसा विचार किया । विचार करके आर्ष ध्यान के कारण दुःख से पीड़ित और शान्त दुःख स्थान की प्राप्ति होकर मेघकुमार ने वह रात्रि मरक की भाँति व्यतीत की । रात्रि व्यतीत करके जाग्रत होने पर, मूर्ति के तेज से जाग्रतस्थान होने पर, जहाँ अथग भगवान् महावीर थे, वहाँ आया । अथग की वर आदरिणी प्रदक्षिणा की । प्रदक्षिणा करके भगवान् को वन्दन किया, नमस्कार किया । व दान-नमस्कार करके यावत् (न बहुत निश्चय न बहुत दूर-समुचित स्थान पर स्थित होकर) भगवान् की पदपूजा करने लगा ।

विशेषण—गाधु-दीक्षा आश्रय की मूर्ति प्रतीक है । उसमें गृहस्थावस्था की गणना-प्रमाण के अनुसार वह स्थिति भी प्रकार का भेद नहीं होता । आश्रमों में उल्लेख विचार है कि यहाँ भी अथग के दान की भी दान यदि बहुत दीर्घ हो जाता है और उसके पश्चात् अथग वर करने के लिए होता है जो वह दान पश्चात् अथग पुराविद्या के दान के दान की भी उन्नी प्रकार

प्रथम अध्यायन : उत्तिष्ठान्नान्न ]

चन्दन-नमस्कार करता है जैसे अन्य उल्लेख मुनियों को । इस प्रकार माधु की दृष्टि में भी  
का मुख्य नहीं होता, केवल आत्मिक संभव—रत्नत्रय का ही महत्त्व होता है । दूसरी नीति  
मेघ मुनि को मोने के लिए स्थान दिया गया था ।

१६३ तए नं 'मेहा' इ तमणे भगवं महावीरे मेहं कुमारं एवं वयासी—ते नूनं  
राघो पुनरस्तावत्तत्तत्तममसि तममेहि निगमेहि वायनाए पुनरुणाए जाव' महासि  
नो संपाएमि मुहुसमहि आदि निमित्तावेत्तए' तए न तुभं मेहा ! इमे एवास्वे  
समुप्पिअएवा—'अवा नं अहं अगारमग्गे वतामि तवा नं मम तमणा निगंघा आडाय  
परिवाचंति, अप्पमिहं च नं मुंहे वदित्ता अगाराओ अणगारिमं' पववामि, तप्पमिहं  
तमणा नो आडायंति, जाव' नो परिवाचंति । अतुत्तरं च नं तमणा निगंघा राघो  
वायनाए जाव पाय-रव-गुंदिअं करेमि । तं सेव सनु मम कहलं पाउप्पमादाए समणं भगवं  
आपुत्तिता पुनरवि अगारमग्गे आवसित्तए' ति कट्टु एवं तवेहेति । संपेहिता अट्टदुह  
नासे जाव निरवपदिक्खियं च नं तं रयणि मवेति । तवित्ता जेणामेव अहं तेणामेव हव  
ते नूनं मेहा ! एत अट्टे तमट्टे ?'  
'हंता अट्टे तमट्टं !'

तत्पश्चात् 'हे मेघ' इस प्रकार सम्बोधन करके श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने मेघ  
से इस प्रकार कहा—'हे मेघ ! तुम रात्रि के पहले घोर निद्रा में बाल के भ्रमण पर श्रमण नि  
के वाचना पृच्छना आदि के लिए आवागमन करने के कारण, सम्प्रो रात्रि पर्यन्त घोड़ी देर के  
भी आग नहीं मोच मके । मेघ ! तब तुम्हारे मन में इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ—  
गृहवास में निवास करता था, तब श्रमण निर्धन्य मेरा आदर करते थे यावत् मुझे जानते थे,  
जब मैंने मुक्ति होकर, गृहवास में निरुक्त कर साधुना की दीक्षा ली है, तब मैं श्रमण निर्धन्य  
मेरा आदर करते हैं, न मुझे जानते हैं । इसके अतिरिक्त श्रमण रात्रि में कोई वाचना के लिए य  
(पृच्छना आदि के लिए) जाते-आते मेरे बिस्तर को साधते हैं यावत् मुझे पैंरो की रज से भरते  
अतएव मेरे लिए यही श्रेयस्कर है कि कम प्रमात् होने पर श्रमण भगवान् महावीर से पूछ कर  
पुनः गृहवास में अतने सन्तुष्ट ।' तुमने इस प्रकार विचार लिया है । विचार करके आत्म-ध्यान के का  
दुःख में पीड़ित एवं संकल्प—विकल्प से युक्त मानस बाने होकर नरक की तरह (वेदना में) रा  
व्यतीत की है । रात्रि ध्यानांत करके क्षीघ्रतापूर्वक मेरे पास आए हो । हे मेघ ! यह अर्थ समर्थ है  
मेरा यह कथन गाय है ?

मेघनुमार ने उत्तर दिया—जो हाँ, यह अर्थ समर्थ है—प्रभो ! आपका कथन वयाध है ।

प्रतिबोधः पूर्वमवधारण

१६४ एवं सनु मेहा ! तुभं इओ तच्चे अईए भवगहणे वेयइडगिरिपायमुले यणपरोहि  
निश्चितिपणामपेअं सेए संखलसउज्जस-विमल-निम्मल-वह्निघण-नोत्तोरकेण-रयणिपर (दगरप-  
रयणिपर) प्ययासे सत्तुसोहे जवायए वसपरिणाहे सत्तंगपइट्ठिअ सोमे समिए मुक्खे पुरतो उदगो  
सप्पुत्तियसिरे गुहासणे पिट्ठओ वराहे अइयाकुच्छी अलंकारकुच्छी पत्तंवल्लोवराहरकरे धणपट्ठगि

वितित्ठपुट्टे अस्तीण-पमाणजुत्त-वट्टिया-पीवर-गत्तावरे अस्तीण-पमाणजुत्तपुट्टे पडिपुत्त-मुक्ता-  
मुम्मचलणे पंडुर-मुचिसुद्ध-निद्ध-णिरुवहय-विमतिनहे छट्ठंते मुमेरुप्पमे नामं हरियराया होतया ।

भगवान् बोले—हे मेघ ! तममे पहले अनीत तीमरे भव मे बैताद्वय पवन के पादपुत्र ने  
(नयहटी मे) नुम गजराज थे । वनचरा ने तुम्हाग नाम 'मुमेरुप्रभ' रक्खा था । उम मुमेरुप्रभ का वन  
स्वन था । मग के दन (चूंग) के समान उज्ज्वल, विमल, निर्मल, दही के धक्के के समान, गार के  
दूध के फेन के समान (या गाय के दूध और मसूर के फेन के समान) और चन्द्रमा के समान (या  
जनकण और चांदी के मसूर के समान) रूप था । यह मात हाय ऊँचा और नो हाय लम्बा था ।  
मध्यभाग दम हाय के परिमाण वाला था । चार पैर, मूँड, पूँछ और जननेन्द्रिय—यह मात आ  
प्रतिष्ठित ध्यान भूमि को स्पर्श करने थे । मीम्व, प्रमाणोपेन अर्गो वाला, गुन्दर रूप वाला, आने मे  
ऊँचा, ऊँच समतल वाला, गुभ या मुग्ध आसन (स्फुट आदि) वाला था । उसका विद्युत् भाग बारा  
(चूकर) के समान नीचे भुका हुआ था । इसकी वन बकरी की कूंग जैसी थी और वह छिद्रहीन  
थी—उममे गट्टा नही पडा था तथा लम्बी नही थी । वह लम्बे उदर वाला, लम्बे होठ वाला और  
मशी मूँड वाला था । उसकी पीठ मीचे हुए धनुष के पृष्ठ जैसी आकृति वाली थी । उसके प्र  
धनय धनी भागि मिले हुए, प्रमाणयुक्त, गोल एवं पुष्ट थे । पूँछ चिपकी हुई तथा प्रमाणोपेन की  
पैर बाल जैमे परिपूर्ण और मनोहर थे । बीगो नागून स्वेत, निर्मल, चिकने और निरपह्न थे । आ  
दीन थे ।

१६५ तप न मुम मेहा । कर्हिह हयोहि य हरियणीह य लोदट्टएहि य लोदट्टएहि  
कलमेहि य कलमियाहि य लोद मंवरिक्खे हरियमहसत्तायए वेमए पागट्ठी पट्टवए कूहए वंसा  
वट्टए आनेमि य कट्ठं एवमत्ताणं हरियकलमाणं आहेवक्खं जाव पोरेवक्खं तामितं तट्ठि  
मत्तरत्तल आणाईमर-मेणावक्ख वारेमाणो वातेमाणे विहरति ।

हे मेघ ! कही नुम वट्ट मे हायियो, हयिनियों लोदुकों (कुमार धवम्मा वाले हायिनें  
लोदुकाया वनभा ( हावी के वक्को) और कलमिकायो मे परिव्रज होकर एक हजार हायिनें  
आने, आनेहीन आया, प्रमाणक (नाम मे लगाने वाले) युधपनि और युध की वृद्धि करते वाले  
इनके परिमाण आद कट्ट-मे आने हयो के वक्को का आधिपत्य करते हुए स्वामित्व, नेटून व  
हूँ यह उमका पावन-रक्षण करने हुए विचारण कर रहे थे ।

१६६ तप न मुम मेहा । निक्खयमसे मइ वममिए कंवरई मोहत्तमीमे अविम्व  
कावळेअविम्व कर्हिह हयोहि य आच मंवरिक्खे वेमपुगिरियायपूसे गिरोगु य, वरोगु य, कुरोगु य,  
वहरागु य उट्ठोमगु य, विट्ठोमगु य, विवरागुगु य, गट्ठागु य, वसममेगु य, विममेगु य, कट्ठागु य,  
वट्टट्टममेगु य लोमगु य विट्ठोमगु य, टंकेगु य, कूहेगु य, निहरेगु य, पडमारुगु य, मंकेगु य,  
कोलेगु य कल्लमगु य कल्लवु य, वल्लमइगु य, वल्लराईगु य, जहोमगु य, जहोक्कडेगु य, जूहेगु य लपेगु  
य कंठेगु य कोक्कणिमोमगु य, कोट्टियागु य, गुआमियागु य, मरेगु य, लारपनियागु य, लारव-  
र-वट्टगु य कल्लममे विट्ठिहरे कर्हिह हयोहि य आच लोद मंवरिक्खे कट्ठिविहत्तलपव-  
वट्टवट्टममे विट्ठिहरे कल्लममे विहरति ।

हे मेघ ! नुम निक्खय मसे मइ वममिए कंवरई मोहत्तमीमे अविम्व  
कावळेअविम्व कल्लममे विट्ठिहरे कल्लममे विहरति ।

मैथुनप्रिय, कामभोग से प्रवृत्त और कामभोग की तृष्णा वाले थे । बहुत-से हाथियों वगैरह से परिवृत होकर वंताडध पर्वत के पादमूल में, पर्वतों में, दरियों (विशेष प्रकार की गुफाओं) में, कुहरां (पर्वतों के प्रतरो) में, कदराओं में, उम्भरों (प्रपातों) में, झरनों में, विहरों (नहरों) में, गडहों में, पर्वतों (तलैयाँ) में, चिस्लतों (कीचड़ वाली तलैयाँ) में, कटक (पर्वतों के तटों) में, कटपल्लवों (पर्वत की समीपवर्ती तलैयाँ) में, तटों में, प्रतवों में, टकों (विशेष प्रकार के पर्वतों) में, कूटों (नीचे चौड़े और ऊपर मँकड़े पर्वतों) में, पर्वत के शिखरों पर, प्राग्भारों (कुछ झुके हुए पर्वतों के भागों) में, मंचों (नदी आदि को पार करने के लिए पाटा डाल कर बनाए हुए कच्चे पुलों) पर, काननों में, वनों (एक जाति के वृक्षों वाले बगीचों) में, वनखंडों (अनेक जातीय वृक्षों वाले प्रदेशों) में, वनों की श्रेणियों में, नदियों में, नदीकक्षां (नदी के समीपवर्ती वनों) में, यूषों (बानर आदिकों के निवास स्थानों) में, नदियों के समस्थलों में, वापियों (बीकौर बावड़ियों) में, पुष्कराणियों (गोल या कमल वाली बावड़ियों) में, दीपिकाओं (सम्बी बावड़ियों) में, गुंजालिकाओं (वक्र बावड़ियों) में, सरोवरों में, सरोवरों की पत्तियों में, सरः-सर पत्तियों (जहाँ एक सर से दूसरे सर में पानी जाने का मार्ग बना हो ऐसे सरों की पत्तियों) में, वनचरों द्वारा तुम्हें विचार (विचरण करने की छूट) दी गई थी । ऐसे तुम बहुसंख्यक हाथियों आदि के साथ, नाना प्रकार के सरपल्लवों, पानों और घास का उपभोग करते हुए निर्भय, और उद्बेगरहित होकर सुख के साथ विचरते थे—रहते थे ।

१६७ त ए न तुमं मेहा ! अग्रया कयाई पाउस-वरिसारत-सरय-हेमंत-वसतेसु कमेण पचसु उऊमु समइवकतेसु, गिम्हकातसमयंसि जेट्ठापूलमासे, पायवयंससमुट्ठिएणं सुवकतण-पत्त-कयवर-माइत-संजोगहीविणं महासमंकरेणं हुपवहेणं यणदवजासासंपलितेसु वणतेसु, धूमाजलामु विसामु, महाधायवैणेणं संपट्टिएसु, छिम्मजालेसु भावयमाणेसु, पोत्तस्सवेसु प्रतो प्रतो भिगयमाणेसु, मयकहियविणिबुद्धिमियकहमनदीविपरगजिण्णपाणीयंतेसु वणतेसु मियारक-वोण-कंथिय-रवेसु, लर-कस-प्रणिट्ठ-रिट्ठवाहित-विद्धुमणेसु दुमेसु, तहावस-मुक्क-पवल-पयडियजिम्म-तात्तुयससमुत्तित्तुं-परिससंघेसु ससंतेसु, गिम्ह-उम्ह-उम्हवाय-सरकसमचंडमाइय-सुवकतण-पत्त-कयव-पाउलि-ममंतदित्त-संमंतसावपाउल-मिगतण्हावडिस्सिहपट्टेसु गिरिवरेसु, संबट्टिएसु तस्स-मिय-पसव-सिरोसवेसु, अवदा-नियवयणविवरणित्तालियगमोहे, महंतसुं बडियपुम्भकमे, संकूचिययोर-पोवरकरे, ऊत्थियत्तंभुले, पीणा-इपविरसरडिमसहेणं कोडयंतेव चंवरत्तलं, पायदहरणं कंययंतेव सेइणित्तलं, विणिग्गुयमाणे य सोयारं, सम्मभो समंता वल्लिवियाणाहं छिदधाने, खल्लसहस्साहं तथे सुवह्णिणोत्तायंते, विणट्ठरट्ठे इव गरवरिण्णे, वायाइठे इव पोए, मंडलवाए इव परिम्ममंते, अमिबल्लणं अमिबल्लणं लिङ्गियरं पम्भमाणं पम्भमाणे, बहूहि हत्थोहि य जावं सद्धि विसोविसि विप्पलाइत्था ।

तत्पश्चात् एक बार कदाचित् प्रावृद्ध, वर्षा, शरद, हेमन्त और वसन्त, इन पाँच ऋतुओं के क्रमशः व्यतीत हो जाने पर ग्रीष्म ऋतु का समय आया । तब ज्येष्ठ मास में, वृक्षों की आपस की रगड़ से उत्पन्न हुई तथा सूखे घास, पत्तों और कचरे से एव वायु के वेग से प्रदीप्त हुई अत्यन्त भयानक अग्नि से उत्पन्न वन के दामानल की ज्वालाओं से वन का मध्य भाग सुलग उठा । दिखाएँ धुएँ से व्याप्त हो गई । प्रवण्ड वायु-वेग से अग्नि की ज्वालाएँ दूट जाने लगी और चारों ओर गिरने लगी । पोले वृक्ष भीतर ही भीतर जलने लगे । वन-प्रदेशों के नदी-नालों का जल मृत मृगादिक के शवों से

पड़ने लगा, खराब हो गया। उनका कीचड़ तोड़ने में ध्यान हो गया। उनके किनारों का पानी सूख गया। भूगर्भ की दीनता पूर्वक ध्यान करने लगे। उत्तम वृक्षों पर स्थित वाक ध्यान करी और अनिष्ट शब्द काव-काव करने लगे। उन वृक्षों के अग्रभाग अग्निरूपों के कारण सूखे के मयल लाल दिखाई देने लगे। पक्षियों के समूह प्यास में पीड़ित होकर गंग खीने करते, जितना पानी तानु से बाहर निकाल करके तथा मुँह फाड़कर माग लेने लगे। शीष्मकाग की उष्णता, सूर्य के ताप, ध्यान करी एवं प्रचंड वायु तथा सूर्य धाम के पत्तों और कनरों में मुक्त बवंडर के कारण भाग-दौड़ करने वाले, मदनोन्मत्त एवं घबराएँ सिंह आदि द्वापदी के कारण पर्वत धाकुन-आकुल हो उठे। ऐसा प्रतीत होने लगा मानो उन पर्वतों पर मृगप्लवा न्य पट्टवध बंधा हो। प्रास को प्राप्त मृग, मय्य पशु और सरीसृप इधर-उधर तड़पने लगे।

इस भयानक भयमर पर, हे मेघ ! तुम्हारा अर्थात् तुम्हारे पूर्वमय के गुमेम्भम नामक हाथी का मुख धिक्कर पड़ गया। जिह्वा का अग्रभाग बाहर निकल आया। बड़े-बड़े दोनों कान मय से स्तर और व्याकुलता के कारण शब्द ग्रहण करने में तत्पर हुए। बड़ी और मोटी सूँड़ गिकुड़ गई। उनमें पूछ-ऊँची करली। पीना (मच्छा) के समान विरस भरटि के शब्द-चोत्कार से वह प्राकाशनय के फोड़ता हुआ सा, सीत्कार करता हुआ, चहुँ ओर सर्वत्र घेनो के समूह को छेदता हुआ, प्रस्र को बहुसंख्यक सहस्रो वृक्षों को उखाड़ता हुआ, राज्य से भ्रष्ट हुए राजा के समान, वायु में डोलने लु जहाज के समान और बवंडर (वगहूँ रे) के समान इधर-उधर भ्रमण करता हुआ एवं बार-बार सी ध्यागता हुआ, बहुत-से हाथियों [हयनियों, लोट्टकों, लोट्टिकाओं, कलशों तथा कलभिकाओं] के साथ दिशाघ्रां और विदिनाशों में इधर-उधर भागदौड़ करने लगा।

१६८—तस्य नं तुमं मेहा ! जुमने जराजगरियवेहे आउरे भंभिए विवांसिए दुबले हि नट्टुइए सुददिसिए सयामो जूहामो विप्वहणे वणश्चजात्तापारद्धे उण्हेण य, तण्हाए य, दुहाए परभमहाए समाणे भोए तथे तसिए उच्चिमे संजायमए सत्त्वमो समंता आघावमाने परिघावम एणं च नं महं मरं अपीदयं पंकवहुलं अतिरिथेणं पणियपाए उहन्तो ।

हे मेघ ! तुम वहाँ जीर्ण, जरा से जर्जरित देह वाले, व्याकुल, भूखे, प्यासे, दुबले, घबरे-म गहिरें तथा दिट्-मूट होकर अपने यूथ (भुड)से विखुड गये। वन के दायानल की उबालापी पराभूत हुए। गर्मी से, प्यास में और भूख में पीड़ित होकर भय से घबड़ा गए व्रस्त हुए। तुम्हें धानन्द-रग चुप्क हो गया। इस विपत्ति से कैसे छुटकारा पाऊँ, ऐसा विचार करके उद्विग्न हुए। पूरी तरह भय उत्पन्न हो गया। अतएव तुम इधर-उधर दौड़ने और नुब दौड़ने लगे। इसी समय जलवाला और कीचड़ की अधिकता वाला एक बड़ा मरोवर तुम्हें दिखाई दिया। उसमें पानी पीने के लिए बिना पाट के ही तुम उतर गये।

१६९—तस्य नं तुमं मेहा ! तोरमइएए पाणियं वसंवत्ते अंतरा चैव सेयं ति विसन्ने । तस्य नं तुमं मेहा ! पाणियं पाइस्सामि ति कट्ठु हत्थं पसारेति, से वि य ते हाथे उतां न पावेइ । तए नं तुमं मेहा ! पुणरपि कायं पक्खट्ठरिस्सामि ति कट्ठु वसियतरायं पंकंति सुत्ते ।

हे मेघ ! वहाँ तुम बिनादे में मो दूर चले गये, परन्तु पानी तक न पहुँच पाये और बीच ही में कीचड़ में डल गये।

हे मेघ ! 'मैं पानी पीऊँ' ऐसा सोचकर यहाँ तुमने अपनी गूँठ फँसाई, मगर तुम्हारी गूँठ पानी न पा सकी । गय हे मेघ ! तुमने पुन 'शरीर को कीचड़ में बाहर निकालूँ' ऐसा विचार कर मारा तो कीचड़ में घोर मारे पँच गये ।

१७०—तएवं तुमं मेहा ! अग्नया कषाड एगे विरनिज्जुद्धे गयवरजुवाणए सयासो ब्रूहासो ऽवरण-रंतमुमत-प्यहारेहि बिपरद्धे सयासो तं येव महद्धं पाणीयं पाएजं समोपरेइ ।

तएवं तं कसमए तुमं पातति, पातित्ता तं पुग्गवेरं समरइ । समरित्ता भामुदत्तं द्दुं कुमिए णिबिणए मिनिमित्तेपाप्मे जेणेव तुमं तेणेव उवागच्छइ । उवागच्छित्ता तुमं तिबसेहि वतमुत्तेहि वत्तसो पिट्ठसो उवपुमइ । उवपुमित्ता पुग्गवेरं निज्जाएइ । निज्जाइत्ता हट्ठमुद्वे पाणियं विवइ । त्ता कामेयं शिनि पाउवपुए तामेयं शिनि पडिगए ।

गलपधान् हे मेघ ! एक बार वही तुमने एक नीजवान खेँड़ हाथी को मूँड, पैर और दाँत की मूँचों में प्रहार करके मारा था और अपने मूँड में ने बहुत समय पड़े निकाल दिया था । वह भी पानी पीने के लिए उसी गधेवर में उतरा ।

उम नीजवान हाथी ने तुम्हें देखा । देखने ही उसे पूर्व वैर का स्मरण हो आया । स्मरण तो ही उगमे त्रोघ के चित्त प्रकट हुए । उसका त्रोघ बड़ गया । उगने रोड़े रूप धारण किया और त्रोघाग्नि में जल उठा । घतण्व वह तुम्हारे पास आया । आकर तीक्ष्ण दाँत लगी मूँचों से तीन र तुम्हारी पीठ बीच की और बीच कर पूर्व वैर का बदला लिया । बदला लेकर हट्ट-मुद्व होकर नी पीया । पानी पीकर जग दिना से प्रवट हुआ था—प्राया था, उम दिया में थापि मीठ गया ।

१७१—तएवं तव मेहा ! शरीरमंति वेयणा पाउवपिरिया उज्जत्ता विजत्ता तिउत्ता कवत्तहा ए [पगाडा चंडा दुग्गत्ता] कुरहियात्ता, पित्तज्वरपरिणमशरीरे दाहवक्कंतीए यावि विहरिया ।

तएवं तुमं मेहा ! तं उज्जत्तं जाव [विजत्तं कवत्तं पगाडं चंडं दुग्गत्तं] कुरहियात्तं सत्तराहं विपं रणं वेणुमि; तयोमं वायसयं परमाजं पातइत्ता घट्टपसट्टकुहट्टे कासमात्ते कासं किक्खइ हेव कुड्डीये मारहे वात्ते दाहिणकुमारहे गंगाए महण्णदीए दाहिणे कूत्ते विभगिरिवायमूत्ते एगेणं भत्तवर-हरिपणा एगाए गयवरकरेणूए बुच्चित्ति गयकलमए जणिए । तएवं सा गयकलमिया णवण्हं तारणं वमजमासम्मि तुमं पयाया ।

तलपधान् हे मेघ ! तुम्हारे शरीर में वेदना उत्पन्न हुई । वह वेदना ऐसी थी कि तुम्हें तनिक भी न थी, यह सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त थी और त्रिभुजा थी (मन वचन काय की तुलना करने लगी थी, प्राणी उम वेदना में तुम्हारे तीनों योग सम्म हो रहे थे) । वह वेदना कठोर यावत् बहुत प्रवण्ट थी, दुस्मद् थी । उम वेदना के कारण तुम्हारा शरीर पित्त-ज्वर से व्याप्त हो गया और शरीर में दाह उत्पन्न हो गया । उम समय तुम इस बुरी हालत में रहे ।

गलपधान् हे मेघ ! तुम उम उज्ज्वल-वेचन बना देने वाली यावन् [विपुल, कंकड़, प्रगाढ़ वट, दुग्गमय एवं दुग्गह वेदना को मान-दिन रात पर्यन्त भोग कर, एकसौ बीस वर्ष की प्राप्ति भोगकर, तत्प्राप्त के वशीभूत एवं दुःख से पीड़ित हुए । तुम काल भाम में (मृत्यु के भवसर पर) काल



करके, इसी जम्बूद्वीप के भरतशेख में, दक्षिणार्ध भरत में, गंगा नामक महानदी ने दक्षिणी दिशा पर, विन्ध्याचल के समीप एक मन्दोदरान् श्रेष्ठ गंधहस्ती में, एक श्रेष्ठ हृषिनी की कुंभ में हारी के बच्चे के रूप में उत्पन्न हुए। तत्पश्चान् उग हृषिनी ने नौ मास पूर्ण होने पर वयस्य मास में कुंभे जन्म दिया।

१७२—तए न तुमं मेहा ! गम्भवासाधो विष्णुब्रह्मे समाने गयकलभए यावि होरा, तत्पत्तरत्तसूमातए जामुमणा-रत्तपारिजतय-सवत्तारस-सरसकुं-कुम-संभ्रमरागवन्ने इट्ठे निपत्त वड्ढणो गणिद्यायारकणह-कोट्य-हृद्यो धणगेहृत्थिसयसंपरिवुद्धे रम्भेसु गिरिकाण्णेसु सुहसुहेणे विहासि

तत्पश्चात् हे मेघ ! तुम गर्भावास से मुक्त होकर गजकनभक (छोटे हाथी) भी हो गए। न कमल के समान लाल श्रीर मुकुमार हुए। जवानुमुम, रक्त वर्ण पारिजात नामक वृक्ष के पुत्र, लाल रम, सरस कुं-कुम धीर सन्ध्याकालीन बादलों के रंग के समान रक्तवर्ण हुए। अपने मूषपति के हुए। गणिकाओं जैसी युवती हृषिनियों के उदर-प्रदेश में अपनी सूँड डालते हुए काम-बीडा में बैठ रहने लगे। इस प्रकार सैकड़ों हाथियों से परिवृत होकर तुम पर्वत के रमणीय काननों में सुख विचरने लगे।

१७३—तए नं तुमं मेहा ! उम्भुक्कयालभाये कोट्यणगमणुपत्ते जूहवड्ढणा कात्थसंजुत्तेणं तं जूह सयमेव पडिज्जजसि।

हे मेघ ! तुम बाल्यावस्था को पार करके यौवन को प्राप्त हुए। फिर मूषपति के का को प्राप्त होने पर—मर जाने पर, तुम स्वयं ही उस मूष को वहन करने लगे अर्थात् धू हो गये।

१७४—तए न तुमं मेहा ! वणयरोहि निष्कत्तिपनामधेज्जे जाव<sup>१</sup> चउदंते मेत्थप्पे हृत्थि होराया। तए नं तुमं मेहा ! सत्तंगपडिट्ठए तहेव जाव<sup>२</sup> पडिहये। तए नं तुमं मेहा सत्तज्जूहसस पाहेवच्चं जाव<sup>३</sup> अभिरमेत्था।

तत्पश्चात् हे मेघ ! वनचरो ने तुम्हारा नाम मेरुप्रभ रक्खा। तुम चार दाँतों वाले हृषि हुए। हे मेघ ! तुम मात अंगों से भूमि का स्पर्श करने वाले, आदि पूर्वोक्त विशेषणों से युक्त गुन्दर रूप वाले हुए। हे मेघ ! तुम वहा सात सौ हाथियों के मूष का अधिपतिरव, स्वामित्व, आदि करते हुए तथा उनका पालन करते हुए अभिरमण करने लगे।

हृत्थि-वच में आनिरमण

१७५—तए नं तुमं अप्रया कवाडि गिम्हकात्तसमयंसि जेट्ठामूल वणदव-जालापा वणंतेसु गुप्पमाज्जसामु दिसामु जाव<sup>४</sup> भंडलवाए व्व परिक्कमंते भीए तत्थे जाव<sup>५</sup> संजायमए हृषोहि य जाव वत्तनिपाहि य तद्धि संपरिवुद्धे सव्वधो समंता विसोदिंसि विष्पलाइराया।

१. प्र. घ. १९४

२. प्र. घ. १९४

३. प्र. घ. १९४

४. प्र. घ. १९४

५. प्र. घ. १९५

तए नं तव मेहा ! तं यणदवं पातित्ता अयमेयाहवे अज्झत्थिए जाव' समुप्पज्जित्था—'कांह नं मग्गे मए अयमेयाहवे अग्गिसंभवे अणभूयपुब्बे ।' तए नं तव मेहा ! लेस्साहि विमुज्झमाणीहि, अज्झत्ताणेणं सोहणेणं, सुभेणं परिणामेणं, तयावरणज्जाणं कम्भाणं खयोवसमेणं, ईहापोह-मग्गण-गवेसणं करेमाणस्स सन्निपुब्बे जाइस्सरणे समुप्पज्जित्था ।

तब एक बार कभी धीप्प काल के अवसर पर ज्येष्ठ मास में, वन के दावानल की ज्वालाओं से वन-प्रदेश जलने लगे । दिग्राएँ धूम से व्याप्त हो गईं । उस समय तुम बक्कडर की तरह इधर-उधर भागदौड़ करने लगे । भयभीत हुए, व्याकुल हुए धीर बहुत डर गए । तब बहुत से हाथियों यावत् हथिनियों आदि के साथ, उनसे परिवृत होकर, चारों घोर एक दिशा में दूसरी दिशा में भागे ।

हे मेघ ! उस समय उस वन के दावानल को देखकर तुम्हें इस प्रकार का अध्यवसाय, चिन्तन एवं मानसिक विचार उत्पन्न हुआ—'लगतता है जैसे इस प्रकार की अग्नि की उत्पत्ति मैंने पहले भी कभी अनुभव की है ।' तत्पश्चान् हे मेघ ! विभुद्व होता हुई मेघपाघो, शुभ अध्यवसाय, शुभ परिणाम और जातिस्मरण को प्राप्त करने वाले (मतिज्ञानावरण) कर्मों का क्षयोपशम होने से ईहा, अपोह, मार्गणा और गवेपणा करते हुए तुम्हें सजी जीवों को प्राप्त होने वाला जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ ।

१७६—तए नं तुमं मेहा ! एयमट्ठं सम्मं अभिसमेसि—'एवं अलु भया अईए बोच्चे नवागहणे इहेव जंहुदीधे दीधे माअहे वासे वेवडुगिरियायमूले जाव' सुहसुहेणं विहरइ, तए नं मया अयमेयाहवे अग्गिसंभवे समणुमूए ।' तए नं तुमं मेहा ! तस्सेव विवसस्स पच्चावरणुकाल-समयंति नियणं जूहेणं सडि समन्तागए यावि होत्था । तए नं तुमं मेहा ! सत्तुस्सेहे जाव' सग्गिजाइस्सरणे चउत्ते मेरुप्पमे नाम हाथी होत्था ।

तत्पश्चान् मेघ ! तुमने यह अर्थ—वृत्तान्त सम्यक् प्रकार से जान लिया कि—'निश्चय ही मैं व्यतीत हुए दूसरे भव में, इसी अम्वूदीप नामक द्वीप में, भरतक्षेत्र में, वैताड्य पर्वत की तलहटी में मुखपूर्वक विचरता था । वहाँ इस प्रकार का महान् अग्नि का सभय-प्रादुर्भाव मैंने अनुभव किया है ।' तदन्तर हे मेघ ! तुम उस भव में उसी दिन के अन्तिम प्रहर तक अपने यूप के माथ विचरण करते थे । हे मेघ ! उसके बाद शत्रु हाथी की भार से मृत्यु को प्राप्त होकर दूसरे भव में सात हाथ ऊँचे यावत् जातिस्मरण से युक्त, चार दाँत वाले मेरुप्रभ नामक हाथी हुए ।

१७७—तए नं तुज्झं मेहा ! अयमेयाहवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—'तं सेय' अलु मम इयाणं गंगाए महानदीए वाहिणिल्लंति कलंति विभगिरियायमूले दग्गिसंजायकारणट्ठा सएण जूहेणं महालयं मंडलं घाइत्तए' ति कट्ठ एवं संपेहेसि । सपेहिता सुहं सुहेणं विहरसि ।

तत्पश्चान् हे मेघ ! तुम्हें इस प्रकार का अध्यवसाय-चिन्तन, सकल्प उत्पन्न हुआ कि—'मेरे लिए यह श्रेयस्कर है कि इस समय गंगा महानदी के दक्षिणी किनारे पर विन्ध्याचल की तलहटी में, दावानल से रक्षा करने के लिए अपने यूप के साथ एक बड़ा मंडल बनाऊँ ।' इस प्रकार विचार करके तुम मुखपूर्वक विचरने लगे ।



विशेष प्रथमात्माउत्तेज साधय-मयतकरणेणं प्रथमहिमवणरवेण जासालोविषनिद्रपुमंधकारमीमो  
प्रापयासोपमहंतु ब्रह्मपुनरुत्तमो धातु-विषयोर-पीवरकरो मयवत-मयतदितनयनो वेगेण महामेहो  
य पवणोत्तिममहत्तरको, जेनेव कछो ते पुरा इवगिमयभीयहिमवेणं प्रथमवतनपत्तरको इवलो-  
हेतो इवगिततानकारणद्वारा एजेव मंदते तेनेव पहारेव समभाए । एवको ताव एत गयो ।

हे मेघ ! तुम गुग्गुलु गर्वाय मे वत रहे थे कि अनुग्रह मे कमतिनियों के वन का विनाश करने  
वाला, कुंद धीर सोभ के पुष्पों की मयूषि मे गगनप्र तथा ध्वज्यन् हिम याना हेमन्त ऋतु ध्वतीन हो  
गया धीर धमिनय धीष्म काम धा पट्टया । उग मयय तुम वनों मे विचरण कर रहे थे । वही पीड़ा  
करते समय वन की हृदिनिमी तुम्हारे उग्र विविध प्रकार के कमली एक पुष्पों का प्रहार करती थी ।  
तुम उग ऋतु में उग्रप्र पुष्पों के बने चारर जंगे बर्गों के धाभूयगा मे मडिन धीर मनीहर थे । मद के  
बाग्य विविधित गदरपत्ती को झाड़ करने वाले तथा भरते हुए गुग्गुलु मदनल मे तुम गुग्गुलुमय  
वन गये थे । हृदिनिमी मे पिये रहते थे । मय तरह मे ऋतुमन्वर्गा धीमा उग्रप्र हुई थी । उग धीष्म-  
काय मे मूर्ध की प्रसर विरलें पड़ रही थी । उग धीष्म ऋतु ने ध्वंष्ट वृक्षों के शिखरों को ध्वज्यन्  
पुष्प बना दिया था । वह बड़ा ही भयकर प्रतीत होता था । घट्ट करने वाले भूगार नामक पक्षी  
भयानक घट्ट कर रहे थे । पत्र, काष्ठ, तृण धीर कचरे को उड़ाने वाले प्रनिवृत्त पवन मे प्राकाशतल  
धीर वृक्षों का मयूष ध्यात्वा हो गया था । वह ब्रह्मरों के बारण भयानक दीर्घ पटना । ध्याम के  
कारण उग्रप्र वेदनादि दोषों मे ग्रस्त हुए धीर दगो कारण इधर-उधर भटकते हुए द्वापदों (शिकारी  
जगमी गनुषों) मे मुक्त था । हेमने मे ऐसा भयानक धीष्म ऋतु, उग्रप्र हुए दावानल के कारण धीर  
प्रथिव दावन हो गया ।

यह दावानल, वायु के संचार के कारण फैला हुआ धीर विविधित हुआ था । उसके घट्ट का  
प्रकार धावप्रिक भयकर था । वृक्षों मे गिरने वाले मधु की धाराओं मे निश्चिन्त होने के कारण वह  
ध्वज्यन् वृद्धि को प्राप्त हुआ था, धावने की ध्वनि मे गरिध्यात्वा था । वह ध्वज्यन् कमली हुई  
विनगरियों मे युक्त धीर धूम की बतार मे व्याप्त था । सिकारी द्वापदों के प्राणों का घट्ट करने वाला  
था । इस प्रकार तीव्रता को प्राप्त दावानल के कारण वह धीष्म ऋतु धावन्त भयकर दिमाई  
देती थी ।

हे मेघ ! तुम उग दावानल की ज्वालाओं मे प्राच्छादित हो गये, दह गये—दह्दहानुसार  
गमन करने में समर्थ हो गये । धुएँ के कारण उग्रप्र हुए धावकार मे भयभीत हो गये । धमिन के  
ताप की देगने मे तुम्हारे दोनों कान धरपट्ट के तुब के समान स्तब्ध रह गये । तुम्हारी मोटो धीर  
बड़ी गूँठ मिकुड़ गई । तुम्हारे लमकते हुए नेत्र भय के कारण इधर-उधर फिरने—देवने लगे । जैसे  
वायु के कारण महामेघ का विन्मार हो जाता है, उसी प्रकार वेग के कारण तुम्हारा स्वरूप विसृष्ट  
दिमाई देने लगा । पहले दावानल के भय मे भीतहृदय होकर दावानल से अपनी रक्षा करने के लिए,  
त्रिग दिशा मे तृण के प्रदेश (मूल आदि) धीर वृक्ष आदि हटाकर सफाचट प्रदेश बनाया था धीर  
त्रिग वह मडल बनाया था, उधर ही जाने का तुमने विचार किया । वही जाने का निश्चय किया ।

यह एक गम है; अर्थात् किसी-किमी धाचार्य के मतानुसार इस प्रकार का पाठ है ।

(दूसरा गम इस प्रकार है, अर्थात् अन्य धाचार्य के मतानुसार पूर्वोक्त पाठ के स्थान पर यह  
पाठ है जो प्रागे दिया जा रहा है—)

१८१—तए नं तुमं मेहा ! अग्नया कयाइं कमेणं पंचसु उउसु समइवकंतेसु गिम्हकालममरंनि जेट्ठामूले मासे पायव-संपंस-समुट्ठिएण जाव संवट्टिएसु मिध-पसु-पविल-सिरोसिवेसु दिसोदिसि विप्पना-माणेसु तेहि बहूहि हरथोहि य सद्धि जेणेव मंडले तेणेव पहारेत्थ गमणाए ।

हे मेघ ! किमी अ-य समय पांच ऋतुएँ व्यतीत हो जाने पर ग्रीष्मकाल के अवसर पर, जेठ मास में, वर्षा की परम्पर की रगड़ से उत्पन्न हुए दावानल के कारण यावन् अग्नि फैल गई और मृत्, पशु पक्षी तथा मरीकृप आदि भाग दौड़ करने लगे । तब तुम बहुत-से हावियों आदि के साथ जहाँ वह मड़ल था, वहाँ जाने के लिए दौड़े ।

१८२—तए नं अण्णे यहवे सोहा य, यग्घा य, विगया, वोविघा, अच्छा य, रिद्धतरच्चा य, पारागया य, सरमा य, सिघाला, विराला, मुण्हा, कोत्ता, ससा, कोकंतिपा, चित्ता, वित्तवा, पुण्यपविट्ठा अग्निमयविद्धुपा एगममो विलघममेणं चिट्ठंति ।

तए नं तुम मेहा ! जेणय से मंडले तेणेव उवागच्छसि, उवागच्छता तेहि बहूहि तेहि जाव विलसएहि य एगममो विलघममेणं चिट्ठंति ।

उम मड़ल में अण्य बहुत में गिह, वाय, भेडिया, द्वीपिक (बीते), रीछ, तरच्छ, पारामर, पारभ, भृगाय, विट्ठान, इयान, शूकर, सरगोश, सोमडी, चित्र और विल्लल आदि पशु अग्नि के अग्न में पयरा कर पहले ही आ पुगे थे और एक मास विलघमं से रहे हुए थे अर्थात् जैसे एक दिन में बहुत में मर्कटें टगाटन भरे रहते हैं, उमो प्रकार उम मड़ल में भी पूर्वोक्त प्राणी ठमाठम भरे थे ।

तए नं तुम मेहा ! तुम जहाँ मड़ल था, वहाँ घाये और आकर उन बहुतसंख्यक मिह दावन् विपयवज आदि के साथ एक जगह विमघमं में ठहर गये ।

अधुवया वा वम

१८३—तए नं तुमं मेहा ! पाएणं गत्तं कंडुइस्तानि ति कट्ठु पाए उवियत्ते, तंनि वणं पनरनि आभेहि वममभेहि सत्ताहि वणोनिउज्जमाणे पणोनिउज्जमाणे ससए अणुपविट्ठे ।

तए नं तुम मेहा ! गायं कंडुइस्ता पुणरवि वायं पडिनिवत्तमिस्तानि ति कट्ठु तं ससए अणुपविट्ठ वाननि, वानिता वाणानुंरवयाए सुवाणुकंपयाए जीवाणुकंपयाए सत्ताणुकंपयाए से पाए पनरा वेव मयाएहि, ओ वेव नं निवियत्ते ।

तए नं तुम मेहा ! तए वाणानुंरवयाए जाव सत्ताणुकंपयाए संसारे परित्तीए, माणुस्माउ विवट्ठे ।

अधुवया हे मेघ ! तुमने पैर में चरोंर भृत्राऊँ लगा मोनकर एक पैर उपर उठाया । इसी वजह से गायों की हड्डि उगड़ में, अन्य वनवाण प्राणियों द्वारा प्रेरित-प्रक्रियाया हुआ एक शनक प्रसिद्ध हो गया ।

अधुवया हे मेघ ! तुमने पैर में बांध कर मोना कि मैं पैर नीचे रखूँ, परन्तु दावज को पैर की जगह में घुसा हुआ होगा । देखकर डी-डरादि प्राणियों की अनुकम्पा में, वनस्पति रूप पशु की अनुकम्पा में अर्थात् उन जीवों की अनुकम्पा में तथा वनस्पति के निवाय क्षेत्र पार ग्यावर मरुओं की अनुकम्पा में वह पैर झुका हो उठेगा तथा नीचे नहीं गेगा ।

हे मेघ ! तब उस प्राणानुकम्पा यावत् (भूतानुकम्पा, जीवानुकम्पा तथा) तुमने ससार परीत किया और मनुष्यायु का बन्ध किया ।

विवेचन—साधारणतया प्राण, भूत, जीव और मत्त्व शब्द एकार्थक है तथा ही एक विशिष्ट प्रकृति होती है और उस पर गहराई से विचार करने पर एकार्थक भिन्न अर्थ वाले प्रतीत होने लगते हैं । इसके अनिरुक्त कही-कही रुद्धि भयवा परिमर्श भी शब्दों का विशिष्ट अर्थ नियत होता है । प्राण, भूत आदि शब्दों का यहाँ जो विशिष्ट अर्थ दिया गया है वह शास्त्रोक्त रुद्धि के साधारण पर मरम्मत चाहिए । ऐसा न किया जाय तो 'भूतानुकम्पा' आदि तीन शब्द निरर्थक हो जाएँगे । किन्तु यह भी स्मरण रखना प्रागम्य में क्वचित् विभिन्न देशीय शिष्यों की सुगमता के लिए पर्यायवाचक शब्दों का प्रयोग होता है ।

जीवानुकम्पा एक शुभ भाव है—पुण्य रूप परिणाम है और वह शुभकर्म के बन्ध होता है । यही कारण है जिससे मेरुप्रभ हाथी ने मनुष्यायु का बन्ध किया जो एक प्रकृति है ।

शशक एक कोमल काया वाला छोटे कद का प्राणी है—भोला और भद्र । उसे सहज रूप में प्रीति उपजती है । प्रागम्योक्त विभाजन के अनुसार शशक पञ्चेन्द्रिय होने से प्राणना मे भ्राता है । उसकी अनुकम्पा जीवानुकम्पा कही जा सकती है । हाथी के चित्त में प्रति अनुकम्पा उत्पन्न हुई थी । फिर मूल पाठ में प्राणानुकम्पा, भूतानुकम्पा और सत्त्वानुकम्पा उत्पन्न होने का उल्लेख कैसे आ गया ? इस प्रश्न का समाधान यह प्रतीत होता है कि शशक के अनुकम्पा का जो भाव उत्पन्न हुआ, वह शशक तक ही सीमित नहीं रहा-विकसित हो व्यापक बनता गया और समस्त प्राणियों तक फैल गया । उन्नी व्यापक दया-भावना की प्रवृत्ति हाथी ने मनुष्यायु का बंध किया ।

१८४—तए नं से वनद्वये ब्रह्माद्विजाई राईदियाई तं वनं भामेइ, भामेसा निट्ठिए, उ उवसंते, विग्गहाए धावि होरथा ।

तत्पश्चात् वह दावानल ब्रह्माई अहीरात्र पर्यन्त उस वन की जला कर पूर्ण हो गया, उ हो गया, उपमान्त हो गया और बुरा गया ।

१८५—तए नं ते बहवे सोहा य जाव चित्तसा य तं वनद्वयं निट्ठियं जाव विग्गहाए पासंति, पासिन्ता अग्निमयविष्णुमुक्का तण्हाए य धुहाए य परवमाहया समाणा तमो मंडला पडिनिबलमंति । पडिनिबलमंतिता सव्वमो समंता विष्णुसरिथा ।

तब उन बहुत से सिंह यावत् चित्तलक आदि पूर्वोक्त प्राणियों ने उस वन-दावानल को पूरा हुआ यावत् बुझा हुआ देखा और देखकर वे अग्नि के भय से मुक्त हुए । वे व्यास एवं भूख से पीड़ित होते हुए उस मंडल से बाहर निकले और निकल कर सब दिशाओं और विदिशाओं में फैल गए ।

१८६—तए नं सुमं मेहा ! जूने सारासाराणि...

हुं जिए पिचासिए अतपामे अचले अपरबकमे अनेकमने वा ठाणुगंहे येणेन विष्णुसरिस्तामि ति ॥२३॥  
राए पसारमाणे विजुहुए विव रयगनिरिपडामारे घरनिपतंसि सध्वंभेहि य सन्निवइए ।

हे मेघ ! उस समय तुम जीर्ण, जरा मे जर्जरित शरीर वाले, निगिन एवं मनो वाली बमरी से व्याप्त मात्र बाने, दुर्बल, थके हुए, भूगे-व्यागे शारीरिक शक्ति मे हीन, महारा न होने मे निर्वन, सामर्थ्य से रहित और चलने-फिरने की शक्ति से रहित एवं ठूठ की भाँति स्तब्ध रह गये । 'अ वेग मे चलूँ' ऐसा विचार कर ज्यों ही पैर पसारा कि विद्युत् मे आपात पाये हुए रजतगिरि के निगर के समान सभी अंगो से तुम धडाम मे धरती पर गिर पड़े ।

पुनर्जन्म

१८७—तए न तव मेहा ! शरीरगति येवणा पाउअभूया उज्जला जाय (विजला कण्ठश पगाढा चंडा दुक्खा दुरहियासा । पित्तज्वरपरिगयशरीरे) दाहवषकंतिए यायि विहरसि । तए न तुमं मेहा । तं उज्जलं जाव दुरहियासं तिन्नि राइंदिवाइं येवणं येएमाणे विहरिस्ता एणं वाससयं परमाउं पालइत्ता इहेव जंबुहीये दीधे भाइहे वासे रापनिहे नपरे सेनियस्स रग्गे धारिणीए बेवीए हुत्तिमि कुमारत्ताए पच्चायाए ।

तत्पश्चात् हे मेघ ! तुम्हारे शरीर मे उत्कट [विपुल, कर्कश—कठोर, प्रगाढ़, दुःखमय और दुस्सह] वेदना उत्पन्न हुई । शरीर पित्तज्वर से व्याप्त हो गया और शरीर में जलन होने लगी । तुम ऐसी स्थिति में रहे । तब हे मेघ ! तुम उस उत्कट यावत् दुस्सह वेदना को तीन रात्रि-दिवस पर्यन्त भोगते रहे । अन्त मे सौ वर्ष की पूर्ण आयु भोगकर इसी जम्बू द्वीप नामक द्वीप मे भारतवर्ष मे राजगृह नगर मे श्रेणिक राजा की धारिणी देवी की कृत्व में कुमार के रूप में उत्पन्न हुए ।

मनु उवाच

१८८—तए न तुम मेहा ! अणुपुष्पेणं गम्भवासाधो निवसंते समाने उम्भुवकासमाये जोध्दणमणपत्ते मम अंतिए मुंहे भवित्ता अगाराधो अणगारियं पचइए । तं जइ जाव तुमे मेहा ! तिरिबलजोणिम-मायमुवागए णं अण्डिलइ-सम्मत्तरयणलंभे णं ॥ वाए पाणाणुक्कपयाए जाव अंतरा वेव संघारिए, नो वेव णं निवसित्ते, किमंण पुण तुमं मेहा ! इयाणि विपुलकुलसमुम्भवे णं निवहूप-सरीर-वंतलइपंविदिए णं एवं उट्ठान-वत्त-वीरिय-पुरिसमार-परवकम-संजुत्ते णं मम अंतिए मुंहे भवित्ता अगाराधो अणगारियं पचइए समाने समानाणं निगंधाणं राधो पुववरत्तावरत्ताकत्त ममयंसि थायणाए जाव धम्माणोपेयचित्ताए य उच्चारस्स वा वासवणस्स वा अइगच्छमाणानां निगध्दमाणानां य हृत्पसंघट्टणाणि य पायसंघट्टणाणि य जाव रयरेणुगंडणाणि य नो सम्मं सहि न्मसि, तित्तिविससि, अहियासेसि ?

तत्पश्चात् हे मेघ ! तुम घनुरम मे गम्भवास मे बाहर आये—तुम्हारा जन्म हुआ था—वाक्पथा मे मुक्त हुए और सुवाक्पथा को प्राप्त हुए । तब मेरे निकट मुंडित होकर गृहवास (मुक्त हो) अनगार हुए । तो हे मेघ ! जब तुम नियंचयोनि रूप पर्याय को प्राप्त थे और जब तुम मय्यव-रत्न का लाभ भी नहीं हुआ था, उस समय भी तुमने प्राणियों की अनुकम्पा से प्रेरित हो

## प्रथम अध्यायन : उत्तिष्ठतात ]

वत् अपना पैर धरती ही रक्खा था, नीचे नहीं टिकाया था, नो किंग है मे  
 ताल कुल में जन्मे हो, तुम्हें उपचात में रहित नगरी प्राप्त हुआ है । प्रा  
 मने दमन किया है और उत्थान (विशिष्ट नार्मलिक चेटा), वन (   
 पात्मचल) पुरुषकार (विशेष प्रकार का अभिमान) और पराक्रम (क  
 र्वाप) से युक्त हो और मेरे समीप मुझ होकर गृहवास का त्याग कर  
 हूँ और विद्युत् की रात्रि के समय श्रमण निर्धन्य वाचना के लिए यात्रा  
 नया उच्छाद-प्रसन्न के लिए जाने-जाते थे, उम समय तुम्हें उनके हा  
 पों हुआ, यावत् राजको में तुम्हारा नगरी भर गया उम नम मय्यक् प्रका  
 रना धुंध हुए सहन न कर गके ! अदीनभाव से निनिक्षा न कर मके । और  
 र सहन न कर सके ।

१८६—तए नं सस्त येहस्त अणवारस्त, समणस्त भगवधो म  
 तेष्वा नित्तम मुनेहि परिणामेहि, वस्त्येहि अजभवसाणां, सेस्ताहि  
 निज्जाणं कम्मणं लघोवससेणं ईहावोह-मगण-गवेमणं करमाणस्त सन्निपु  
 एयमट्ठं तम्मं प्रमितमेह ।

तत्पश्चात् मेघकुमार अनगरी को श्रमण भगवान् महावीर के पास  
 कर, पुन परिणामी के कारण, प्रगस्त अजभवसायी के कारण, विगुड होने  
 और जातिभरण को धावत करने वाले ज्ञानावरण कम के क्षोपपणम के का  
 और गवेपणा करते हुए, सभी जोकों को प्राप्त होने वाला जातिभरण जान  
 मुनि ने अपना पूर्वोक्त वृत्तान्त मय्यक् प्रकार से जान लिया ।

पुनः प्रथम

१८७—तए नं से हे कुमारे समणेणं भगवधो महावीरेण संम  
 सवेगे आणंदं सुपुनमुहे हरिसवसेण धाराहयकदंबकं विव सपुस्तसियरोमक  
 वंदह, नममह, वडित्ता, नमंसित्ता एवं वयासी—'अज्जत्पनिर्दं नं भते ।  
 अयसेते काए समणानं निगमंवाणं नितट्ठे' नि कट्ठु पुणरवि समण भग  
 वडित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—'इहद्धामि नं भते । इयानि सयमेव दोर  
 मुंडाविमं जाव' सयमेव धायारगोयरं जावामावावत्तियं धम्ममाइक्खियं

तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर के द्वारा मेघकुमार को पूर्व व  
 दुगुना सवेग प्राप्त हुआ । उसका मुख आनन्द के धामुधो में परिपूर्ण  
 मेघधारा में ग्राह्य कदंबपुष्प की भाँति उसके रोमांच विकसित हो गये  
 मय्यीय दो वस्त्र लिये उपासना किया । बन्दन-नमस्कार करके इस प्र



नमस्कार करके इस भाँति कहा—‘भगवन् ! मेरी इच्छा है कि अब आप स्वयं ही दूसरी बार पुनः प्रव्रजित करें, स्वयं ही मुंडित करें, यावत् स्वयं ही जानादिक आचार, गोचर-गोचरी के लिए प्रणामात्रा—विण्डविमुद्धि आदि समयमात्रा तथा मात्रा—प्रमाणयुक्त आहार ग्रहण करना, इत्यादि सगंधाने श्रमणधर्म का उपदेश द !’

१६१—तए नं समणे भगवं महावीरे मेहं कुमारं समयमेव पञ्चायेद् जाव जावामावर्त्तिं धम्ममाइवण्ड—‘एवं देवानुप्पिया ! संतथ्यं, एवं चिट्ठियथं, एवं गितोपथं, एवं सुपट्ठियथं, भंजियथं, एवं भासियथं, उट्ठाप उट्ठाप पाणाणं भुवाणं जीवाणं सत्ताणं संजमेणं संजमियथं !’

तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर ने मेघकुमार को स्वयमेव पुनः दीक्षित किया, बार-बार स्वयमेव यात्रा-मात्रा रूप धर्म का उपदेश दिया । कहा—‘हे देवानुप्रिय ! इस प्रकार गमन करने चाहिए अर्थात् युगपरिमित भूमि पर दृष्टि रखा कर चलना चाहिए । इस प्रकार अर्थात् वृत्ती प्रमार्जन करके गढा होना चाहिए, इस प्रकार अर्थात् भूमि का प्रमार्जन करके बैठना चाहिए, इस प्रकार अर्थात् धारी एवं भूमि का प्रमार्जन करके क्षयन करना चाहिए, इस प्रकार अर्थात् निर्वाण आहार करना चाहिए, और इस प्रकार अर्थात् भाषासमितिपूर्वक बोलना चाहिए । तावथानं रत्तं न कर प्राणी, भूतां, जीवां और मत्त्वो को रक्षा रूप संयम में प्रवृत्त रहना चाहिए । तात्पर्य यह है कि भूमि को प्रत्येक किया बतना के साथ करना चाहिए ।’

१६२—तए नं ते मेहे समणस्स भगवधो महावीरस्स अयमेवाह्वं धम्मियं उवत्तं तथं पटिण्णह, पटिण्णस्स तह चिट्ठइ जाव संजमेणं संजमइ ।

तए न ते मेहे अणगारे जाण् इरियासमिण्, अणगारधम्मधो भाणियधो ।

तत्पश्चात् सप्त भूमि न श्रमण भगवान् महावीर के इस प्रकार के इस धार्मिक उद्देश को समझ प्रकार से जगजाग किया । अगीकार करके उगी प्रकार बर्ताव करने लगे यावत् समय के उद्देश करने लगे ।

सब मेघ ईर्ष्यामिनि आदि में युक्त धनगार हुए । यहाँ शीघ्रपातक मूल के अनुसार धनगार का भक्षण करने कहना चाहिए ।

विशेषण—धैर्यात्मिक मूल में शक्ति धनगार के स्वल्प का सक्षिप्त सार इस प्रकार है—

‘इति आदि पाँचो समितियों के अनिरिक्त मनममिनि, वचनममिनि, कायममिनि से युक्त ईर्ष्या में मूल ईर्ष्या का मोहन करने वाला—इन्द्रियविषयो में राग-द्वेषरहित, भूमि (न भूय) अर्थात् ब्रह्मचर्यवश आगी, सखागीय, धर्म, क्षमाशील, त्रिनेन्द्रिय, शोभन (सौन्दर्य), विद्वत्त्व, उच्चतम बुद्धि की भूमि में रहित, अनीया, श्रमणधर्म में मध्यम प्रकार में रह, ईर्ष्या और ईर्ष्या-पदार्थों को सम्पूर्ण रूप से विचरने वाला जो होना है वहाँ मन्त्रा मायु है ।’

१६३—तए न ते मेहे अणगारे समणस्स भगवधो महावीरस्स धम्मिण् एवाह्वणं वेत्तं कण्ठपुण्ड्रकं वचनं अणं उट्ठइ, पटिण्णस्स तह चिट्ठइ जाव संजमेणं संजमइ ।

तत्पश्चात् उन मेघ मुनि ने श्रमण भगवान् महावीर के निकट रह कर तथाप्रकार के स्वविर  
यो मे सामायिक से धारम्भ करके ग्यारह अंगनास्त्रों का अध्ययन किया । अध्ययन करके बहुत से  
।म, बेला, सेला, चोला, पचोला आदि से तथा अर्धमासश्रमण एवं मासरासण आदि तपस्या से  
रा को भावित करते हुए वे विचरने लगे ।

२ और प्रतिपावहन

१६४—तए नं समणे भगवं महावीरे रायगिहाधो नगराग्रो पुणसित्ताग्रो वेइयाग्रो  
जिक्कमइ । पडिजिक्कमित्ता वेहिया जणवपविहारं विहरइ ।

तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर राजगृह नगर से, पुणसित्तक वेश्य से निकले । निकल कर  
र जनपदों में विहार करने लगे—विचरने लगे ।

१६५—तए नं से मेहे श्रमणारे धनवया कयाइ समणं भगवं महावीरं वंइ, नमंसइ, वंदित्ता  
सित्ता एवं वयासी—‘इच्छामि नं भंते ! तुम्हेहि श्रमणगुणाए समाने मासियं भिक्खुपडिभं  
संपजिज्जातं नं विहरित्तए ।’

‘महामुहं देवानुप्पिया । मा पडिखंधं करेह ।’

तत्पश्चात् उन मेघ श्रमणार ने किसी अन्य समय श्रमण भगवान् महावीर को वन्दना की,  
स्कार किया । वन्दना-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—‘भगवन् ! मैं आपकी अनुमति पाकर एक  
। की मर्यादा वाली भिक्षुप्रतिमा को समीकार करके विचरने की इच्छा करता हूँ ।’

भगवान् ने कहा—‘देवानुप्पिय ! तुम्हें जैसे सुख उपजे वंसा करो । प्रतिबन्ध, अर्थात् इच्छित  
। का विघात न करो—विलम्ब न करो ।’

१६६—तए न से मेहे समणेणं भगवया महावीरेणं श्रमणगुणाए समाने मासियं भिक्खुपडिभं  
संपजिज्जातं नं विहरइ । मासियं भिक्खुपडिभं घहासुसं घहाकर्णं घहागणं सम्मं काएणं कासेइ,  
इ, सोहेइ, तीरेइ, किट्टेइ, सम्मं काएणं कासित्ता पातितता सोहेत्ता तीरेत्ता किट्टेत्ता पुणरवि  
णं भगवं महावीरं वंइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर द्वारा अनुमति पाए हुए मेघ श्रमणार एक मास की भिक्षु-  
।मा मंगीकार करके विचरने लगे । एक मास की भिक्षुप्रतिमा को यथामूल्य—मूल के अनुसार, कल्प  
(चार) के अनुसार, मार्ग (ज्ञानादि मार्ग या लायोपदमिक भाव) के अनुसार सम्यक् प्रकार से काय  
रहण किया, निरन्तर सावधान रहकर उसका पालन किया, पारणा के दिन गुरु को देकर शेष वचा  
वन करके शोभित किया, अथवा अनिष्टकारों का निवारण करके शोचन किया, प्रतिमा का काल पूर्ण  
जाने पर भी किंचित् काल अधिक प्रतिमा में रहकर तीर्थ किया, पारणा के दिन प्रतिमा सम्बन्धी  
यों का कथन करके कीर्त्तन किया । इस प्रकार समीचीन रूप से काया से स्पर्श करके, पालन  
के, शोभित या शोभित करके, तीर्थ करके एवं कीर्त्तन करके पुनः श्रमण भगवान् महावीर को  
दन-नमस्कार किया । वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—

१६७—‘इच्छामि जं भंते ! तुभ्येहि अश्मन्नुप्राए समाने बोमासियं मिबलुपडिमं उवसंपग्गित्ता विहरित्तए ।’

‘अहामुहं देवानुप्पिया । मा पडिबंथं करेह ।’

जहा पढमाए अमिताओ तहा बोच्चाए तच्चाए चउरणाए पंचमाए छम्मासिमाए सतमा-  
य्याए पढमसत्तराईदियाए बोच्चसत्तराईदियाए तइय सत्तराईदियाए अहोराईदियाए वि  
गराईदियाए वि ।

‘भगवन् ! आपकी अनुमति प्राप्त करके मैं दो मास की दूसरी मिश्रप्रतिमा अंगीकार करके  
वचरना चाहता हूँ ।’

भगवान् ने कहा— ‘देवानुप्रिय ! जैसे मुख उपजे वंसा करो । प्रतिबन्ध मत करो ।’

जिस प्रकार पहली प्रतिमा में आलापक कहा है, उसी प्रकार दूसरी प्रतिमा दो मास की,  
तीसरी तीन मास की, चौथी चार मास की, पाँचवी पाँच मास की, छठी छह मास की, सातवी सात  
मास की, फिर पहली अर्थात् आठवी सात अहोरात्र की, दूसरी अर्थात् नौवीं भी सात अहोरात्र की,  
तीसरी अर्थात् दसवी भी सात अहोरात्र की, और ग्यारहवी तथा बारहवी प्रतिमा एक-एक अहोरात्र  
की कहना चाहिए । (मेघ मुनि ने इन सब प्रतिमाओं का यथाविधि पालन किया ।)

उप तपश्चरण

१६८—तए जं से मेहे अणगारे बारस मिबलुपडिमाओ सम्मं काएणं कासेत्ता पासेत्ता सीहेत्ता  
सीरेत्ता किट्टेत्ता पुणरपि वंइइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—‘इच्छामि जं भंते ! तुभ्येहि  
अश्मन्नुप्राए समाने गुणरयणसंघच्छरं तयोकम्मं उवसंपग्गित्ता जं विहरित्तए ।’

‘अहामुहं देवानुप्पिया । मा पडिबंथं करेह ।’

तपश्चरणां मेघ अनगर ने बारहों मिश्रप्रतिमाओं का सम्यक् प्रकार में काय से स्पर्श करके  
पालन करके, शोधन करके, तीर्ण करके और कीर्तन करके पुनः श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन  
नमस्कार किया । वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार कहा— ‘भगवन् ! मैं आपकी आज्ञा प्राप्त करके  
गुणरत्नमवतार नामक तपश्चरण अंगीकार करना चाहता हूँ ।’

भगवान् बोले—‘हे देवानुप्रिय ! जैसे गुण उपजे वंसा करो । प्रतिबन्ध मत करो ।’

विशेषण—गुणरत्नमवतार नामक तप में तेरह मास और सत्तरह दिन उपवास के होने  
और निहत्तर दिन पारणा के । इस प्रकार सोलह मास में इस तप का अनुष्ठान किया जाता है  
तपस्या का यह इस प्रकार है—

मास	तप	तपोदिन	पारणादिवस	कुल दि
१	उपवास			१०
२	वेत्ता	१५	१५	३०
३	नेत्ता	२०	१०	३२
४	चीना	२४	८	३०
		२४	६	

५	पक्षीना	२५	५	३०
६	घट्ट उपवास	२४	४	२८
७	माग उपवास	२१	३	२४
८	घाट उपवास	२४	३	२७
९	नौ उपवास	२७	३	३०
१०	दश उपवास	३०	३	३३
११	ग्यान्ह उपवास	३३	३	३६
१२	बारह उपवास	३४	२	३६
१३	तेरह उपवास	३६	२	३८
१४	चौदह उपवास	३८	२	४०
१५	पंद्रह उपवास	३०	२	३२
१६	सोणह	३२	२	३४
		४०७	७३	४८०

जिग भास मे जिनने दिन कम है, उनमें अगले भाग मे से उतने दिन अधिक समझ लेने चाहिए इसी प्रकार जिग भाग मे अधिक है, उनके दिन अगले भाग मे सम्मिलित कर देने चाहिए ।

१६६—तए जं से मैहै अगगारे पदम मातं अउरचं अउरयेणं अगिबिलत्तेणं तबोकम्मेणं दिवा ठाणुबहुइए सुरामिमुहै आयावणभूमोए आयावेमाणे रत्ति बीरासनेणं अवाउइएणं ।

बीषं मातं अगिबिलत्तेणं तबोकम्मेणं दिवा ठाणुबहुइए सुरामिमुहै आयावणभूमोए आयावेमाणे, रत्ति बीरासनेणं अवाउइएणं । तबचं मातं अट्टमं अट्टमेणं अगिबिलत्तेणं तबोकम्मेणं दिवा ठाणुबहुइए सुरामिमुहै आयावणभूमोए आयावेमाणे रत्ति बीरासनेणं अवाउइएणं ।

अउरचं मातं दसमंदममेणं अगिबिलत्तेणं तबोकम्मेणं दिवा ठाणुबहुइए सुरामिमुहै आयावणभूमोए आयावेमाणे रत्ति बीरासनेणं अवाउइएणं । पंचमं मातं बुवासमं बुवासमेणं अगिबिलत्तेणं तबोकम्मेणं दिवा ठाणुबहुइए सुरामिमुहै आयावणभूमोए आयावेमाणे रत्ति बीरासनेणं अवाउइएणं एवं ललु एएणं अमिसायेणं अट्टे बोहमं बोहसमेणं, मसमे सोससमं सोससमेणं, अट्टमे अट्टारसमं अट्टारसमेणं, तबमे बीमतिमं बीमतिमेणं, दसमे कावीसइमं कावीसइमेणं, एवकारसमे अउरचं सइमं अउरचंसइमेणं बारसमे एरवीसइमं एरवीसइमेणं, तेरसमे अट्ठावीसइमं अट्ठावीसइमेणं चौहममे तीसइमं तीसइमेणं पंचदसमे बत्तीसइमं बत्तीसइमेणं, सोसममे माते अउत्तीसइमं अउत्तीसइमेणं अगिबिलत्तेणं तबोकम्मेणं दिवा ठाणुबहुइएणं सुरामिमुहै आयावणभूमोए आयावेमाणे राहं बीरासनेणं य अवाउइएणं य ।

तत्पश्चात् मेघ अगगार पहुँचे महीने में निरन्तर अनुसंधान कर्यात् एकान्तर उपवास की तपस्या के माघ विचरने लगे । दिन में उत्कट (गोदोहन) आसन से रहते और आत्मपना लेते बी भूमि में सूर्य के सम्मुख आतापना लेते । रात्रि में प्रावरण (बस्त्र) से रहित होकर बीरासन में स्थित रहते थे ।

इसी प्रकार दूसरे महीने निरन्तर अष्टमव्रत तप—वेला, तीसरे महीने अष्टमव्रत (तेला) तथा चौथे भाग में दशम व्रत (बीला) तप करते हुए विचरने लगे । दिन में उत्कट आसन से स्थित रहते, सूर्य के सामने, आतापना भूमि में आतापना लेते और रात्रि में प्रावरण रहित होकर बीरासन में रहते ।

पौचव मास मे द्वादशमे—द्वादशमे (पंचोले-पचोले) का निरन्तर तप करने लगे । दिन में उकड़ प्रागन से स्थित होकर, सूर्य के मन्मुख, आतापना भूमि में आतापना लेते घोर रात्रि में प्रावरण रहित होकर वीरागन मे रहते थे ।

द्वि प्रकाश आतापक के साथ छठे मास में छह-छह उपवास का, सातवें मास मे सात-सात उपवास का, आठवें मास मे आठ-आठ उपवास का, नौवें मास में नौ-नौ मास का, दसवें मास मे दस-दस उपवास का, ग्यारहवें मास मे ग्यारह-ग्यारह उपवास का, बारहवें मास मे बारह-बारह उपवास का, तेरहवें मास मे तेरह-तेरह उपवास का, चौदहवें मास में चौदह-चौदह उपवास का, पंद्रहवें मास में पंद्रह-पंद्रह उपवास का घोर मोलहवे मास में सोलह-सोलह उपवास का निरन्तर तप करते हुए विनश्यते लगे । दिन मे उकड़ प्रागन मे सूर्य के मन्मुख आतापनाभूमि में आतापना लेते थे घोर रात्रि में प्रावरणरहित होकर वीरागन मे स्थित रहते थे ।

विवेचन - दोनों पैर पृथ्वी पर टेक कर मिहासन या कुर्सी पर बैठा जाय घोर शर में गिरागन या कुर्सी हटा नी जाय मो जो आसन बनता है यह वीरासन कहलाता है ।

२००—तप जं से मेहे धनगारे गुणरयणसंवच्छरं तयोक्तं महासुतं जाय' समं काण्य पागेह, पागेह, तोरेह, तोरेह, बिट्टेह, महासुतं महाकपं जाय किट्टेता समणं भगवं महावीरं ब्राह्म, नमस्य, ब्रह्मा नमसिना ब्रह्मि पट्टट्टमवतमकुवात्तसेहि मासद्वमासत्तमणेहि विचित्तेहि त्तोक्तमेहि आवाण भावेभावे ब्रह्मरह ।

इस प्रकार मेघ धनगार ने गुणरयणमवतार नामक तपःकर्म का मूल के अनुगार, कण्य के अनुगार तथा मार्ग के अनुगार मन्मुख प्रकार से जाय द्वारा स्पर्श किया, पालन किया, गोधिन या गोभिनि बिना तथा गोभिनि बिना । मूल के अनुगार घोर कण्य के अनुगार यावत् कीर्तन करके धनगार भगवान् महावीर को बन्दन बिना, नमस्कार किया । वन्दन-नमस्कार करके बहुत मे पट्टमभन, पट्टमभन, दसमभन, द्वादसमभन आदि तथा अर्धमागनमग्न तप मागमग्न आदि विचित्र प्रकार के तपस्वगत करके आत्मा को भाविन करने हुए विनश्यते लगे ।

२०१—तप जं से मेहे धनगारे तेण उरत्तेणं विगुत्तेणं सहितरीणं पवत्तेणं पागहिणं बलात्तेणं मिहेल वत्तेणं मन्मुखेण उरत्तेणं उदारणं उत्तमेणं महागुमावेणं ततोक्तमेणं मुखे भक्ते लुक्के निमित्ते निमित्ते विट्टिदिट्टिमाग्न पट्टट्टमवतमकुवात्तसेहि विचित्तेहि त्तोक्तमेहि आवाण भावेभावे ब्रह्मरह ।

कोईकोई कहत है, जोबकोईने किट्टेह, मांनं मानिता गिलापह, मांनं मासमांने गिलापह, काय ब्रह्मात्मनि नि दिनापह ।

मन्मुख के धनगार उन उरत्त-मन्मुख, विगुत्त-दीर्घाजीन होने के कारण विनश्यते, बलात्तेणं मिहेल वत्तेणं मन्मुखेण उरत्तेणं उदारणं उत्तमेणं महागुमावेणं ततोक्तमेणं मुखे भक्ते लुक्के निमित्ते निमित्ते विट्टिदिट्टिमाग्न पट्टट्टमवतमकुवात्तसेहि विचित्तेहि त्तोक्तमेहि आवाण भावेभावे ब्रह्मरह ।

तपःकर्म से सुष्क-नोरम शरीर वाले, भूखे, रुधिर, मांस रहित और रधिररहित हो गए । उठते-बैठते उनके हाड़ कड़कड़ाने लगे । उनकी हड्डियाँ केवल चमड़े से ढकी रह गईं । शरीर कृश और नसों से व्याप्त हो गया ।

वह अपने जीव के बल से ही चलते एवं जीव के बल से ही खड़े रहते । भाषा श्रोतकर पक जाते, धात करते-करते पक जाते, यहाँ तक कि 'मैं बोला गा' ऐसा निचार करते ही पक जाते थे । तत्पर्यय यह है कि पूर्वोक्त उग्र तपस्या के कारण उनका शरीर अत्यन्त ही दुर्बल हो गया था ।

२०२—से जहानामए इंगालसगडियाइ वा, कट्ठसगडियाइ वा, पलसगडियाइ वा, तिल-सगडियाइ वा, एरंडकट्ठसगडियाइ वा, उण्हे विग्गा सुक्का समानी ससहं गच्छइ, ससहं बिट्ठइ, एवामेव मेहे अणगारे ससहं गच्छइ, ससहं बिट्ठइ, उबधिए तवेण, अवधिए मंससीणिण, हुयासणे इव मामरानिपरिच्छन्ने, तवेण सेएणं तवतेयसिरीए षईव षईव उवसोमेमाणे उवसोमेमाणे बिट्ठइ ।

जैसे कोई कोयले से भरी गाड़ी हो, लकड़ियों से भरी गाड़ी हो, मूले पत्तों से भरी गाड़ी हो, तिलों (तिल के डठ्ठों) से भरी गाड़ी हो, अथवा एरंड के काष्ठ से भरी गाड़ी हो, धूप में डाल कर सुखाई हुई हो, अर्थात् कोयला, लकड़ी पत्तों आदि सब सुखा लिये गये हो और फिर गाड़ी में भरे गये हों, तो वह गाड़ी खडगाह की आवाज करती हुई चलती है और आवाज करती हुई टहरती है, उसी प्रकार भेष अन्नहार आदिकों की खडखडाहट के साथ चलते थे, और खडखडाहट के साथ खड़े रहते थे । वह तपस्या में तो उपचित-वृद्धिप्राप्त थे, मगर भाम और वधिर में अपचित-ह्रास को प्राप्त हो गये थे । वह भस्म के समूह में आच्छादित अग्नि की तरह तपस्या के तेज से देदीप्यमान थे । वह तपस्तेज की लक्ष्मी में अतीव दीप्तायमान हो रहे थे ।

२०३—तेणं कासेणं तेणं समएणं समणे अगवं महावीरे आइगरे तिरमपरे जाव' पुब्बानुपूर्विक चरमाणं, गामानुगामं कूडसज्जमाणे सुहंसुहेणं बिहरमाणे, जेणामेव रामगिहे नगरे जेणामेव गुणसिलए खेइए तेणामेव उमागच्छइ । उवागच्छिता महापठिक्खं उगहं उगिगिह्तिता संजमेणं तवसा अप्पानं भावेमाणे बिहरइ ।

उस काल और उस समय में अमरु भगवान् महावीर धर्म की प्राप्ति करने वाले, तीर्थ को स्थापना करने वाले, यावत् अनुक्रम से चलते हुए, एक भ्रम से दूसरे भ्रम की पार करते हुए, मुख-पूर्वक विहार करते हुए, जहाँ राजगृह नगर था और जहाँ गुणजील चैत्य था, उसी जगह पधारे । पधार कर यथोचित अवग्रह (उपाश्रय) की आशा लेकर समय और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे ।

समाधिमरण

२०४—तए जं तस्स मेहस्स अणगारस्स राओ पुब्बरत्तावरत्ताकालसमयंति धम्मज्ञागरिये जागरमाणस्स अयमेयाख्ये अज्झरियए जाव (चित्तिए, पत्थिए मणोगए संकप्ये) समुत्पज्जिरया :—

'एवं सलु ग्रहं इमेणं उरासेणं तहेव जाव' मासं भासिस्सामि ति गित्तामि, तं अरिय ता मे

पाँचवें मास में द्वादशम—द्वादशम (पंचोले-पंचोले) का निरन्तर तप करने लगे । दिन में उकड़ आसन से स्थित होकर, मूर्ध्न्य के सम्मुख, आतापना भूमि में आतापना लेते और रात्रि में प्रावरण-रहित होकर वीरासन से रहते थे ।

इसी प्रकार आतापक के साथ छठे मास में छह-छह उपवास का, सातवें मास में मान-मान उपवास का, आठवें मास में आठ-आठ उपवास का, नौवें मास में नौ-नौ मास का, दसवें मास में दम-दम उपवास का, ग्यारहवें मास में ग्यारह-ग्यारह उपवास का, बारहवें मास में बारह-बारह उपवास का, तेरहवें मास में तेरह-तेरह उपवास का, चौदहवें मास में चौदह-चौदह उपवास का, पन्द्रहवें मास में पन्द्रह-पन्द्रह उपवास का और सोलहवें मास में सोलह-सोलह उपवास का निरन्तर तप करते हुए विचरने लगे । दिन में उकड़ आसन में मूर्ध्न्य के सम्मुख आतापनाभूमि में आतापना लेते और रात्रि में प्रावरणरहित होकर वीरासन से स्थित रहते थे ।

विशेष—दोनों पैर पृथ्वी पर टेक कर सिंहासन या कुर्सी पर बैठा जाय और बायें पैर सिंहासन या कुर्सी हटा ली जाय तो जो आसन धनता है वह वीरासन कहलाता है ।

२००—तए नं से मेहे धनगारे गुणरघनसंवत्सरं तथोक्तं ग्रहामुत्तं जाय' सत्यं काएण फासेइ, पालेइ, सोहेइ, तीरेइ, किट्ठेइ, ग्रहामुत्तं ग्रहाकर्णं जाय किट्ठेत्ता समणं भगवं महावीरं वंर, भमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता बहूहि छट्ठमसमसुबालसेहि भासइमाससमणेहि विचिसेहि तथोक्तमेहि अत्थानं भावेमाणे विहरइ ।

इस प्रकार मेष धनगार ने गुणरघनसंवत्सर नामक तपःकर्म का सूत्र के अनुसार, कल्प के अनु-गार तथा मार्ग के अनुसार सम्यक् प्रकार से काय द्वारा स्पर्श किया, वालन किया, शोधित या शोभित किया तथा कीर्तित किया । सूत्र के अनुसार और कल्प के अनुसार यावत् कीर्तन करके धर्मण भगवान् महावीर को वन्दन किया, नमस्कार किया । वन्दन-नमस्कार करके बहुत से पण्डित, ब्रह्मचर्य, दशमभवन, द्वादशमभवन आदि तथा धर्ममाससमण एवं माससमण आदि विचित्र प्रकार के तपस्वरण करके आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे ।

२०१—तए नं से मेहे धनगारे तेणं उरातेणं विपुलेणं सत्तिरीएणं पयत्तेणं पयत्तिएणं कल्लानेणं तिसेणं धमंणं मंगलेणं उदग्गेणं उदारएणं उत्तमेणं महाणुभावेणं तथोक्तमेणं सुखे भुक्ते सुखे निमंसे निस्सोणिए किड्किडिवाभूए षट्ठिचम्मामणइ कित्ते धमणिसंतए जाए पावि होएथा ।

जीवन्निवेणं गच्छइ, जीवन्निवेणं चिट्ठइ, मासं मासित्ता गित्तायइ, मासं मासमाणे गित्तायइ, मासं भातिग्गामि सि गित्तायइ ।

अन्यथा—मेष धनगार उम उराय-प्रधान, विपुल-दीर्घकालीन होने के कारण विष्णु, मधीर—शोभागम्य, गुरु द्वारा प्रदान भयवा प्रयत्नमाध्य, बहुमानपूर्वक गृहीत, कल्याणकारी-मोक्षदायक, शिव-मुक्ति के कारण, धर्म-धन प्रदान करने वाले, मांगल्य-नापविनाशक, उदय-नीच-उदार-निष्ठाम होने के कारण शीतल वाते, उत्तम-प्रज्ञानाधिकार में रहित और महान् प्रभाव वाले

तपःकर्म से पुष्क-मोक्ष कारीर बाने, भूमि, रक्ष, भाग रहित और गधिररहित हो गए । उठने-बैठने उनके हाथ बढ़कड़ने लगे । उनकी हड्डियाँ बेकम चमड़े से मड़ी रह गईं । कारीर कृम और नमी से भ्याज हो गया ।

वह भगने जीव के बस में ही चलते गए जोव के बस में ही मड़े रहने । भाषा बोलकर पक जाते, पाग करते-करते पक जाते, यहाँ तक कि 'मैं बोलूँगा' ऐसा विचार करने ही पक जाते थे । तात्पर्य यह है कि पूर्वोक्त उग्र तपस्या के कारण उनका शरीर अत्यन्त ही दुर्बल हो गया था ।

२०२—ते अहानामए इंगतसगडियाइ वा, कट्टतसगडियाइ वा, वतसगडियाइ वा, तिल-सगडियाइ वा, एरंडकट्टसगडियाइ वा, उण्हे डिग्गा मुक्का समानी समहं गच्छइ, समहं चिट्ठइ, एवामेव मेहे धनगारे समहं गच्छइ, समहं चिट्ठइ, उवच्चिए तवेणं, धवच्चिए संततोणिएणं, हुयासणे इय मासरातिपरिक्खन्ने, तवेणं तेएणं तवत्तेयसिरीए छविं छविं उवत्तोमेमाणं उवत्तोमेमाणं चिट्ठइ ।

जैसे कोई कोयले में भरी गाड़ी हो, लकड़ियों में भरी गाड़ी हो, मूंगें पत्तों में भरी गाड़ी हो, तिलों (तिल के डंठलों) में भरी गाड़ी हो, चमड़ा एरंड के काष्ठ से भरी गाड़ी हो, धूप में शाल केर गुलाई हुई हो, अर्पाय कोयला, लकड़ी पत्तों छादि गूब भुगा लिये गये हो और फिर गाड़ी में भरे गये हो, तो वह गाड़ी लड़गड़ की आवाज करती हुई चलती है और आवाज करती हुई ठहरती है, उसी प्रकार केव धनगार हाथों की लड़गड़हाट के साथ चलते थे, और लड़गड़हाट के साथ रुकते रहते थे । वह तपस्या में तो उपचिन्त-वृद्धिप्राप्त थे, मगर मान और शक्ति में अपचिन्त-ज्ञान को प्राप्त हो गये थे । वह भस्म के गमूह में घाघ्छादिन अग्नि की तरह तपस्या के तेज में देवीयमान थे । वह तपस्सेज की मन्त्री में अतीव शोभायमान हो रहे थे ।

२०३—तेणं कालेण तेणं समएणं समणे अण्वं महावीरे वाइगरे निरयदरे जाव' पुष्पाणुपुष्पि चरमाणं, गामाणुगामं बूडवजमाणं मुहंमुहेणं बिहरमाणं, जेणामेव रायगिहे मगरे जेणामेव गुणतिलए बिहए तेणामेव उवागच्छइ । उवागच्छिता महापडिक्खं उगहं उगिणित्ता संजमेणं तवत्ता धप्पाणं भाविमाणं बिहरइ ।

उस काल और उस समय में अमण भगवान् महावीर धर्म की प्राप्ति करने वाले, तीर्थ को स्थापना करने वाले, यावान् अनुत्तम में चलते हुए, एक ग्राम से दूसरे ग्राम को पार करते हुए, मुख-पूर्वक विहार करते हुए, जहाँ राजगृह नगर था और जहाँ गुणशील चर्य था, उन्हीं जगह पधारे । पधार कर यमोचित अवग्रह (उपाश्रय) की प्राप्ति लेकर मध्य और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे ।

समाप्तिमरण

२०४—तए कं तस्स मेहस्स धनगारस्स राओ पुष्परसावरसकालतपयंसि धम्मज्ञागरिमं जागरमाणस्स धयमेयाक्खे धग्गहियए जाव (चित्तिए, परिहए मणोगए संकल्पे) समुत्पज्जिरया :—

'एवं सत्तु अहं इमेणं उरालेणं तदेव जाव' भासं मासिस्तानि ति मित्तामि, तं अरिय ता मे





पथिए मनोए मंकले) समुत्पजिअरवा—एवं समु अहं इमेणं धीरासेणं जाव जेणव अहं तेणव हउमगाए । ते जूणं मेहा । अट्ठे समट्ठे ?

‘हंता पथिए ।’

‘अहामुहं देवाणुत्पिया ! मा पट्ठिअं करेह ।’

‘हे मेघ’ इस प्रकार संबोधन करते श्रमण भगवान् महावीर ने मेघ घनगार से इन भांति कहा—‘निश्चय ही हे मेघ ! रात्रि मे, मध्यरात्रि के समय, धर्म जागरणा जागते हुए, तुम्हें इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ है कि—इस प्रकार निश्चय ही मैं इस प्रधान तप के कारण दुर्वल हो गया हूँ, इत्यादि पूर्वोक्त यहाँ कह लेना चाहिए यावत् तुम सुरन्त मेरे निकट आए हो । हे मेघ ! क्या यह अर्थ समर्थ है ? अर्थात् यह बात गलत है ?

मेघ मुनि बोले—जी हाँ, यह अर्थ समर्थ है ।’

तत्र भगवान् ने कहा—‘देवानुत्प्रिय ! जैसे मुण उपजे बंधा करो । प्रतिबध न करो ।

२०७—तए णं से मेहे अणगारे समणेणं भगवया महावीरेणं धवभुणुमाए समाणे हट्ठ जाव हिएए उट्ठाए, उट्ठेइ, उट्ठाए उट्ठेता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिण करेइ, करिस्ता बंदइ, नमंसइ, बंदिता नमंसित्ता सधमेव पंच महववयाइं आरहेइ, आरहिता गोपमाइ समणे निग्गये निग्गयीओ य आमेइ, आमेत्ता य तहाट्ठेहि कइहिं हेरेहिं तडिं विपुलं पववयं सणियं सणियं बुद्धइ, बुद्धिता सधमेव मेहघणसअिगासं पुदविसत्तापट्ठयं पडिसेहेइ, पडिसेहिता उच्चार-पातवणमूमे पडिसेहेइ, पडिसेहिता इममां पारमं संवरइ, संवरित्ता ववमंसं पारमं बुद्धइ, बुद्धिता पुरायाभिमुहे संवणियं कनित्तये करयत्तपरिमहियं तिरसावत्तं अयए अंजलिं कट्ठ एवं वयासी :—

‘अमोऽप्यु णं अरिहंताणं भगवन्ताणं जाव’ संवत्ताणं, अमोऽप्यु णं सधणत्त भगवओ महावीरत्त जाव’ संवाविउक्कामत्त मम धम्मावरियत्त । वंभामि णं भगवन्तं तरणयं इहगए, पातउ मे भगवं सत्थगए इहगयं’ ति कट्ठु बंदइ नमंसइ, बंदिता नमंसित्ता एवं वयासी :—

तत्पश्चात् मेघ घनगार श्रमण भगवान् महावीर की आज्ञा प्राप्त करके हट्ट-नुष्ट हुए । उनके हृदय में आनन्द हुआ । वह उत्थान करके उठे घोर उठकर श्रमण भगवान् महावीर को तीन बार दक्षिण दिशा में आरम्भ करके प्रदक्षिणा की । प्रदक्षिणा करके वन्दना की, नमस्कार किया । वन्दना-नमस्कार करके स्वयं ही पाँच महाव्रतों का उच्चारण किया घोर गीतम आदि साधुओं को तथा माधवियों को समाया । गमा कर तथास्य (चारित्रवान्) घोर योगबहन आदि किये हुए स्थिर सन्तो के साथ घीरे-घीरे विपुल नामक पर्वत पर आरुढ़ हुए । आरुढ़ होकर स्वयं ही सधन मेघ के ममान पृथ्वी-मिलापट्टक की प्रतिवेचना की । प्रतिवेचना करके दर्भ का मयारा बिछाया घोर उस पर आरुढ़ हो गये । पूर्व दिशा के मन्मुख पश्चामन से बैठकर, दोनों हाथ जोड़कर घोर उन्हें भस्तक से स्पर्श करके (अंजलि करके) इस प्रकार बोले—

‘अरिहन्त भगवन्तो को यावत् सिद्धि को प्राप्त सब तीर्थकरों को नमस्कार हो । मेरे धर्माचारों

जीवन उनमें परिगणित है। देखना भी इस जीवन की कामना करते हैं। अतएव निराशा, ख मन में उमग उठी तभी इसका अन्त नहीं किया जा सकता। समयमीन माधक मनुष्यगरी के माध्यम में आत्महित गिद्ध करना है और उमी उद्देश्य से इसका संरक्षण भी करता है। परंतु स ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाए कि जिम ध्येय की पूर्ति के लिए शरीर का संरक्षण किया जाता, उस ध्येय की पूर्ति उममें न हो सके, बल्कि उम ध्येय की पूर्ति में बाधक बन जाए तब उसा परित्याग कर देना ही श्रेयस्कर होना है। प्राणान्तकारी कोई उपगर्ग प्रा जाए, दुष्प्रति के बाग जीवन का अन्त समीप जान पड़े, वृद्धावस्था घयवा असाध्य रोग उत्पन्न हो जाए तो इस अवस्था हाय-हाय करते हुए—आर्त्ताध्यान के बन्धीभूत होकर प्राण त्यागने की अपेक्षा समाधिपूर्वक स्वेय से शरीर को त्याग देना ही उचित है। शरीर हमें त्याग इसकी अपेक्षा यही बेहतर है कि हय स्वयं शरीर को त्याग दे। ऐसा करने से पूर्ण शान्ति और अगण्ड समभाव बना रहता है।

समाधिमरण अगोकार करने से पूर्व साधक को यदि अवसर मिलता है तो वह उनके नि तैयारी कर लेता है। वह तैयारी संलेखना के रूप में होती है। काय और कयायों की बुरा मो कृदातर करना संलेखना है। कभी-कभी यह तैयारी बारह बयं पहले में प्रारंभ हो जाती है।

ऐसी स्थिति में समाधिमरण को आत्मघात समझना विचारहीनता है। पर-घात की प्रति आत्मघात भी जिनायम के अनुसार घोर पाप है—नरक का कारण है। आत्मघात कयाय केना प्रवेश में किया जाता है जब कि समाधिमरण कयायों की उपशान्ति होने पर उच्चकोटि के समभाव की अवस्था में ही किया जा सकता है।

मेघ मुनि का शरीर जब समय में पुरुषार्थ करने में सहायक नहीं रहा तब उन्होंने पादपोषगमन समाधिमरण ग्रहण किया और उस जर्जरित देह से जीवन का अन्तिम साय प्राप्त किया।

२०५—एयं संपेहेड संपेहिता कल्लं पाउत्पमायाए रयणीए जाव<sup>३</sup> जसंते जेजेव समणे भगवं महावीरे तेजेव उवागच्छइ। उवागच्छिता समणं भगवं महावीरं तिवलुत्तो आयाहिणं पयाहिणं बरेइ, करिस्ता बंदइ भमंसइ, बंदिता नमंसित्ता नच्चासने माइवूरे सुस्सुसमाने नमंसमाने अभिमुहे विणएयं पंजमिउडे पग्गुवासइ।

मेघ मुनि ने इस प्रकार विचार किया। विचार करके दूसरे दिन रात्रि के प्रभान रूप में परिणत होने पर यावत् सूर्य के जागृत्यमान होने पर जहाँ श्रमण भगवान् महावीर थे, वहाँ पहुँचे। पहुँच कर श्रमण भगवान् महावीर को तीन बार दाहिनी ओर से आरम्भ करके प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा करके वदना की, नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार करके न बहुत समीप और न बहुत दूर योग्य स्थान पर रह कर भगवान् की सेवा करते हुए, नमस्कार करते हुए, सन्मुख विनय के साथ दोनों हाथ जोड़कर उपासना करने लगे अर्थात् बैठ गए।

२०६—मेहे त्त समणे भगवं महावीरे मेहं अणगारं एवं वयासो—‘ते नूनं तव मेहा ! राघो पुत्थरत्तावरत्तासत्तमयं’ति धम्मजागरियं जागरमाणस्त अयमेयाक्ये अगग्गियए जाव (चितिए,

२१०—तए नं से मेहे अणगारे समणसग भगवधो महावीरसस तहाव्वाणं बेराण संतिए सामाइयमाइयाइं एवकारससंगाइं अहिज्जिता बहुपडिपुग्गाइं बुवाससवरिताइं सामानपरियामं पाउजिता सासियाए संसेहणाए अण्णाणं भोसेसा सट्ठ मसाइं अणसणाए देहसा आलोइयपडिबसंते उडिपसस्से समाहिपस्से आणुपुग्गेवं कालगए ।

तत्पदवात् यह मेघ अनगार अमण भगवान् महावीर के तथाकथ स्थविरों के सत्रिकठ सामायिक आदि प्यारह व मों का अध्ययन करके, लगभग बारह वर्ष तक चारित्र्य पर्याय का पालन करके, एक माग की ममेतना के द्वारा आत्मा (अपने शरीर) को क्षीण करने, अनशन से गांठ भक्त छिंद कर पर्याप्त सीस दिन उपवास करके, आलोचना-प्रतिश्रमण करके, माया मिथ्यात्व और निदान शक्त्यों को हटा कर गमाधि की प्राप्ति होकर अनुत्तम के कालधर्म को प्राप्त हुए ।

२११—तए नं बेरा भगवत्तो मेहं अणगारं अणुपुग्गेवं कालगयं पासेमि । वासित्ता परिनिब्बानवसित्तं काउस्समं करेमि, करित्ता मेहस्स अमारभंजयं गेयहि । वेसित्ता विउत्ताओ पव्वमाओ सणियं सणियं पव्वोरहंमि । पव्वोअहिता जेणामेव गुणतिसए वेइए, जेणामेव समणे भगवं महावीरे तेणामेव उवागएयंमि । उवागएयत्ता समणं भगवं महावीरं वंदेति नमंसंमि, वंसित्ता नमंसित्ता एवं वयासी :—

तत्पदवात् मेघ अनगार के साथ गये हुए स्थविर भगवत्तो ने मेघ अनगार को क्रमशः कालगत देखा । देखकर परिनिर्वाणनिमित्तक (मुनि के मृत्यु देह को परछने के कारण से किया जाने वाला) कायोत्तमं किया । कायोत्तमं करने में मेघ मुनि के उपकरण ग्रहण किये और विपुल पर्वत से धीरे-धीरे नीचे उतरे । उतर कर जहाँ गुणगीत श्रम या और जहाँ श्रमण भगवान् महावीर थे वहीं पहुँचे । पहुँच कर श्रमण भगवान् महावीर की वन्दना की नमस्कार किया । वन्दना-नमस्कार करने इस प्रकार बोले :—

२१२—एवं तसु देवानुत्पियाणं अंतेवासी मेहे अणगारे पणइमइए जाव (पणइउवसते पणइ-पतणुकोह-माण-माया-लोहे मिउमहुवसंपण्णे अस्सोणे) विणोए । से नं देवानुत्पिणीहं अमणग्ग्गाए समणे गोवमाइए समणे निग्गंथे निग्गंथोओ व लामेत्ता अन्हेहि सट्ठि विउत्तं पव्वयं सणियं सणियं बुक्कइ । बुक्कइत्ता समयेव मेघअणसनिग्गाणं पुढविंसित्तापट्ठपं पडित्तेहेइ । पडित्तेहिता नत्तपाण-पडिमाइविणत्ते अणुपुग्गेवं कालगए । एम नं देवानुत्पिया ! मेहस्स अणगारसस आमारभंजए ।

आप देवानुत्प्रिय के अन्तेवासी (दिग्व्य) मेघ अनगार स्वभाव से भद्र और यावत् [स्वभावतः उपनान्त, स्वभावतः मंद क्रोध, मान, माया, लोभ वाले, प्रतिशय मृदु, संयमलीन एवं] विनीत थे । यह देवानुत्प्रिय (आप) से अनुमति लेकर गौतम आदि माधुष्ठा और साध्वियों को खता कर हमारे साथ विपुल पर्वत पर धीरे-धीरे आरुढ़ हुए । आरुढ़ होकर स्वयं ही सघन मेघ के समान कृष्णवर्ण पृथ्वीशिलापट्टक का प्रतिलेखन किया । प्रतिलेखन करके भक्त-पात्रक प्रत्याख्यान कर दिया और अनुत्तम से कालधर्म को प्राप्त हुए । हे देवानुत्प्रिय ! यह है मेघ अनगार के उपकरण ।

यावत् सिद्धिगति को प्राप्त करने के इच्छुक श्रमण भगवान् महावीर को नमस्कार हो। वहाँ (गुणशील चैत्य में) स्थित भगवान् को यहाँ (विजुलागल पर) स्थित मैं वन्दना करता हूँ। वहाँ स्थित भगवान् यहाँ स्थित मुझको देंगे। इस प्रकार कहकर भगवान् को वन्दना की; नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार करके इस प्रकार कहा।

२०८—पुण्ड्रं पि यं न मए समसुत्तं मगवधो महावीरस्स अंतिए सव्वे पाणाइयं पच्चवखाए, मुसायाए अदिघादाणे मेहुणे परिग्गहे कोहे माणे माया सोहे वेज्जे बोसे कलहे धम्मवत्थं पेसुमे परपरिवाए अरइ-रई मायामोसे मिच्छादंसणसत्ते पच्चवखाए ।

इयाणि पि यं न अहं तस्सेय अंतिए सव्वं पाणाइयायं पच्चवखामि जाव मिच्छादंसणसत्तं पच्चवखामि । सव्वं असण-पाण-खाइम-साइमं वज्जिहं पि आहारं पच्चवखामि जावज्जीवाए । अंतिए य इमं सरीरं इट्ठं कत्तं पियं जाव' (मणुणं मणामं वेज्जं वेस्सासियं सम्मयं बहुमयं अनुमयं भंडकरंडगसमाणं, मा नं सोयं, मा नं उण्हं, मा नं खुहा, मा नं पिवासा, मा नं चोरा, मा नं बाना, मा नं बंसा, मा नं मससा, मा नं वाइय-पित्तिय-संभिय-सणियाइय) विविहा रोगायं का परोसहो-सग्गा कुसंतीति कट्टु एयं पि यं नं चरमेहि ऊत्तासनिस्सासेहि योसिरामि ति कट्टु संसेहणा भूतया भूसिए भत्तपाणपडियाइविए पाओवगए कात्तं अणवकंसमाणे विहरइ ।

पहले भी मैंने श्रमण भगवान् महावीर के निकट समस्त प्राणातिपात का त्याग किया है। मृषावाद, भ्रदत्तादान, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान (मिथ्या दोषारोपण करना), पैशुन्य (जुगली), परपरिवाद (पराये दोषों का प्रकाशन), धर्म में चरति, धर्म में रति, मायामृषा (वेप बल कर ठगाना करना) और मिथ्या दर्शनशक्त्य, इन सब अठारह पापपापों का प्रत्याख्यान किया है ।

अब भी मैं उन्हीं भगवान् के निकट सम्पूर्ण प्राणातिपात का प्रत्याख्यान करता हूँ। यावत् मिथ्यादर्शनशक्त्य का प्रत्याख्यान करता हूँ । तथा सब प्रकार के भ्रशन, पाप, खादिम और स्वादिम इन चारों प्रकार के आहार का आजीवन प्रत्याख्यान करता हूँ । और यह शरीर, जो इष्ट है, कान (मनोहर) है और प्रिय है, उसे यावत् [मनोज्ञ, मल्लाम (अतीव मनोज्ञ) धैर्यवान्, विश्रामगार, गम्मत, बहुमत, अनुमत, आभूषणों का पिढारा जैसा है, इसे क्षीत, उष्ण, शुष्क, पिपासा, खोर साँ, ठास, मधुर आदि की बाधा न हो, बात पित्त एवं कफ संबंधी] विविध प्रकार के रोग, शूनादि आतक, बार्डि परीपह और उपसर्ग स्वर्ण करते हैं, अतएव इस शरीर का भी मैं अन्तिम श्वाभोक्षकत्व पर्यन्त परिप्राग करता हूँ ।

इस प्रकार कहकर मनेखना की धंगीकार करके, भत्तपान का त्याग करके, पादपोषणन गमाधिभरण धंगीकार कर मृग्यु की भी कामना न करते हुए मेघ मुनि विचरने लगे ।

२०९—तए नं ते येरा अगवन्तो मेहस्स अणगारस्स अगिसाए वेयावडियं करेगि ।

तव वरं स्वविर भगवन्त्तं ग्यानिरहिन् होकर मेघ अणगार की वैयावृत्य करने लगे ।

उस विजयनामक अनुत्तर विमान मे किन्ही-किन्ही देवों की तेतीस सागरोपम की स्थिति कही है । उनमे मेघ नामक देव की भी तेतीस सागरोपम की स्थिति है ।

२१६—एत न भंते ! मेहे देवे ताम्रो देवल्लोयाघो आउवसएणं, ठिइवलएणं, भववलएणं  
अणंतरं चयं चइत्ता कहि गच्छिहिइ ? कहि उववज्जिहिइ ?

गीतम स्वामी ने पुनः प्रश्न किया—भगवन् ! यह मेघ देव देवलोक से धाम्नु का धर्मात् धाम्नु कर्म के दलिकों का शय करके, धाम्नुकर्म की स्थिति का वेदन द्वारा शय करके तथा भव का धर्मात् देवभव के कारणभूत कर्मों का शय करके तथा देवभव के दारोर का त्याग करके ध्रुववा देवलोक से नयवन करके किस गति मे जाएगा ? किस स्थान पर उत्पन्न होगा ?

अन्ध मे सिद्धि

२१७—गोयमा । महाविदेहे वाते तिग्गिहहिइ, बुग्गिहहिइ, मुच्चिहहिइ, परिनिधवाहिइ,  
सव्वदुवसणाणमंत्तं काहिइ ।

भगवान् ने उत्तर दिया—हे गीतम ! महाविदेह वर्ष मे (जन्म लेकर) निद्धि प्राप्त करेगा—समस्त मनोरथों को सम्पन्न करेगा, केवलज्ञान से समस्त पदार्थों को जानेगा, समस्त कर्मों से मुक्त होगा और परिनिर्वाण प्राप्त करेगा, धर्मात् कर्मजनित समस्त विकारों से रहित हो जाने के कारण स्वस्थ होगा और समस्त दुःखों का अन्त करेगा ।

२१८—एवं सलु जंझु ! समणेणं भगवया महावीरेणं आइयरेणं तित्थयरेणं जाव संपत्तेणं  
अप्पोपात्तमनिमित्तं पडमसस मायउभयणसस अयमट्ठे पग्नत्ते त्ति वेमि ॥

॥ पडमं अउभयणं समत्तं ॥

श्री मुधर्मा स्वामी अपने प्रधान शिष्य जम्बू स्वामी से कहने हैं—इस प्रकार हे जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर ने, जो प्रवचन की भादि करने वाले, तीर्थ की संस्थापना करने वाले यावत् मुक्ति को प्राप्त हुए हैं, प्राप्त (हितकारी) गुरु को चाहिए कि अविनीत शिष्य को उपालभ ने, इस प्रयोजन से प्रथम ज्ञाताध्ययन का यह धर्म कहा है । ऐसा मैं कहना हूँ—धर्मात् तीर्थङ्कर भगवान् ने जैसा कर्माया है, वैसा ही मैं तुमने कहा हूँ !

॥ प्रथम अध्यायन समाप्त ॥

मो—'एवं एतु देवानुत्पिपाषाणं अन्तेवासी मेहे नामं अणगारे, से नं मेहे अणगारे कालमासे कानं  
चा कहि गए ? कहि उववणे ?

'भगवन् ।' इम प्रकार कह कर भगवान् भीतम ने धमए भगवान् महावीर को वन्दना की,  
कार किया । वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार कहा—'देवानुत्पिप्रिय के अन्तेवासी मेघ अनगार ये ।  
वन् ' वह मेघ अनगार काल-माम मे अर्थान् मृत्यु के अवसर पर काल करके किस गति मे गये ?  
र किम जगह उत्पन्न हुए ?

२१४—'गोपमाइ' समणे भगवं महावीरे भगवं गोपमं एवं वयासी—'एवं एतु गोपमा'  
अन्तेवासी मेहे नाम अणगारे पणइमइए जाव' विणीए । से नं तहाएवाणं भेरानं  
निए मामाइयमाइयाइं एक्कारस अगाइ अहिउज्जइ । अहिउज्जता धारस भिणु-  
इमाओ गुणरघणसंवधुरं तयोक्कमं काएण फासेता जाव' किट्टेता मए अमणुनाए समणे  
गोपमाइ भेरे लामेइ । गामिसा तहाएवोहि जाव (कडातणेहि) विउलं पव्वयं वुहइ । बुहइसा  
इममंवारणं संघरइ । मपरिसा इमसंवारोवणए सयमेव पंचमहस्यए उच्चारेइ । बारस बासाइं  
मामणपरिधानं पाउणिसा मासियाए संतेहणाए अण्णाणं भूतिसा सट्ठि मत्ताइं अणतणाए देवेता  
मामोइवपरिधकन्ते उट्ठियमत्ते समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा उट्ठं चंदिम-भूर-गहगण-नववत्त-  
तारा-एवाणं बहइं जोयणाइं बहइं जोयणसयाइं, बहइं जोयणसहससाइं, बहइं जोयणसयगहससाइं,  
बहइं जोयणकोडीओ, बहइं जोयणकोडाकोडीओ उट्ठं इरं उप्पइसा सीहम्मोसाण-तणकुमार-माहि-  
रम-नवण-महागुब्ब-गहसारा-णय-याणया-रण-एवए तिणि म अट्ठारगुत्तरे मेवेअविमाणावातमए  
गोइवइता पिअए महाविमाणे देवताए उववणे ।

हे भीतम ।' इम प्रकार कह कर धमण भगवान् महावीर ने भगवान् भीतम मे इम प्रकार  
कहा । भीतम । मेरा अन्तेवासी मेघ नामक अनगार प्रकृति से भद्र यावन् विनीत था । उसी  
तथागत स्वयिरो मे मामाधिक मे प्रारम्भ करके ग्यारह अंगों का अध्ययन किया । अध्ययन करके  
बारह भिक्षु-प्रतिमाओं का घोर गुणरत्नमयशर नामक तप का काय मे स्पर्श करके यावन् स्वयिरो के माथ  
पर, मेरी छाता लेकर भीतम प्रादि स्वयिरो को समाया । समाकर तयारूप यावन् स्वयिरो के माथ  
विभुषण पर आरोहण किया । दम्भ का मयारा बिछाया । फिर दम्भ के मयारे पर स्थित होकर  
इष्ट ही पाप मज्जाओं का उच्चारण किया । बारह वर्ष तक माधुर्य-वर्षा का पालन करके तप  
काम को मनेतना मे करने शरीर का क्षीण करके, माठ भक्त अनशन मे रोदन करके, प्राचीनता  
प्रतिपत्ति करके शब्दा का निर्मूलन करके, ममाधि को प्राप्त होकर, काल-माम मे मृत्यु को प्राप्त  
करके उत्तर बहइ, मूर्ध, इच्छा, नवध और तारा रूप उपोनिषत्त मे बहूत योजन, बहूत मैत्र  
द्वयन बहूत इच्छा योजन, बहूत माया योजन, बहूत करोडी योजन और बहूत कोडाकोडी योजन  
महेश्वर, उत्तर उत्तर मूर्ध मे ईशान मन्त्रकुमार मातेन्द्र ब्रह्मलोक मान्तर महागुक्त महगार धान  
इच्छा उत्तर उत्तर और बहूत देवताओं का तथा तीन मी अट्ठारह नवध्वेयक के विमानावाग को म  
कर कर विहस मज्ज बहूत महाविमान मे देव के रूप मे उत्पन्न हुआ है ।

२१५—'अथ नं अण्णवइयव देवण तेतोमं मागरोवमाइं टिई वणत्ता । तथ नं मेअम  
देवण तेतोमं अण्णवइयव टिई वणत्ता ।

मिलता ? रोना-रोना पंचक पर गया । धन्य सार्थवाह ने भी सोच की किन्तु जब बालक का (भी पता न लगा तब वह नगर-रक्षकों ( पुनिस-धन ) के पास पहुँचा । नगररक्षक जोरते-मने वही जा पहुँचे वही वह धन्यरूप था—जिसमें बालक का सब बड़ा था । सब को देखकर सब मुन में धमालक 'हाय-हाय' शब्द निकल पड़ा ।

पैरों के निशान देखते-देखते नगर-रक्षक धाने बढ़े तो विजय चौर पास के गधन भ्राड़ियों के प्रदेश में (मानुकाकन्द में) छिपा मिल गया । पकड़ा, गूब और भारी, नगर में गुमाया और रागार में डाल दिया ।

कुछ समय के पदचान् निमी के गुली गाने पर, एक माधारण घटराघ पर धन्य सार्थवाह भी उमी कारागार में बन्द किया गया । विजय चौर और धन्य सार्थवाह-दोनों को एक साथ बेड़ी बन दिया ।

सार्थवाहपत्नी भद्रा ने धन्य के लिए विविध प्रकार का भोजन-पान कारागार में भेजा । य सार्थवाह जब उसका उपयोग करते बंटा तो विजय चौर ने उसका कुछ भाग माँगा । किन्तु य अपने पुनपानक धनु को बाहार-पानी बँधे मिला-मिला करना था ? उमने देने से इन्कार र दिया ।

कुछ समय पदचान् धन्य सार्थवाह की मल-मूत्र विसर्जन की बाधा उत्पन्न हुई । जता कि [ने कहा जा चुका है, विजय चौर और धन्य एक साथ बेड़ी में जकड़े थे । एक के बिना दूसरा चल-र नहीं सकता था । मल-मूत्र विसर्जन के लिए दोनों का साथ जाना अनिवार्य था । जब सार्थवाह विजय चौर ने साथ चलने को कहा तो वह झकड़ गया । बोला—तुमने भोजन किया है, तुम्हीं भोजी । मैं भूखा-प्यासा मर रहा हूँ, मुझे बाधा नहीं है । मैं नहीं जाता ।'

धन्य बिबरा हो गया । थोड़े समय तक उमने बाधा रोकी, पर कब तक रोक्ता ? अन्ततः निष्ठापूर्वक भी उसे विजय चौर की बाहार-पानी में से कुछ भाग देने का वचन देना पड़ा । धन्य ई मार्य नहीं था । जब दूसरी बार भोजन माया तो धन्य ने उसका कुछ भाग विजय चौर को दिया ।

दास बैठक परक बाहार लेकर कारागार जाता था । उसे यह देखकर दुःख हुआ । पर [कर उसने भद्रा सार्थवाही को यह घटना सुनाई । कहा—'सार्थवाह आपके भेजे भोजन-पान का हिस्सा जय चौर को देते हैं ।' यह जान कर भद्रा के क्रोध का पार न रहा । पुन की क्रूरतापूर्वक हत्या रने वाले पापी चौर की भोजन-पान देकर उसका पालन-पोषण करना ! माता का हृदय चौर वेदना व्याप्त हो गया । प्रतिदिन यही क्रम चलने लगा ।

कुछ काल के पदचान् धन्य सार्थवाह को कारागार से मुक्ति मिली । जब वह घर पहुँचा तो भी ने उसका स्वागत-सत्कार किया किन्तु उसकी पत्नी भद्रा ने बात भी नहीं की । वह पीठ फेर र उदास, नित्र बेटी रही । यह देखकर सार्थवाह बोला—मद्रे, क्या तुम्हें मेरी कारागार से मुक्ति च्यी नहीं लगी ? क्या कारण है कि तुम विमुख होकर अपनी धन्यमयता प्रकट कर रही हो ?



## द्वितीय अध्ययन : संघाट

सार : संक्षेप

साधना के क्षेत्र में प्रबल से प्रबल बाधा आसक्ति है। आसक्ति वह मनोभाव है, जो प्राप्ति को पर-पदार्थों की ओर मानाधित बनाता है, आकर्षित करता है और आत्मानन्द की ओर से विमुख करता है। साधना में एकाग्रता के साथ तल्लीन रहने के लिए आसक्ति को त्याग देना प्राथमिक है। स्वयं, रस, गन्ध, रूप और शब्द जब इन्द्रियों के माध्यम से आत्मा ग्रहण करता प्रतीत होता है, तब मन उस जानने के साथ राग-द्वेष का विष मिला देता है। इस कारण प्राप्ति में 'यह इष्ट है, यह अनिष्ट है' इस प्रकार का विकल्प उत्पन्न होता है। इष्ट प्रतीत होने पर उस विषय को प्राप्त करने के लिए उत्सुक हो जाता है। उसका समतुल्योपयोग खण्डित हो जाता है, समाधिभाव क्षीय हो जाता है और वैराग्य नष्ट हो जाता है। ऐसी स्थिति में साधक अपनी मर्यादा से परितो होता जाता है और कभी-कभी उसके पतन की सीमा नहीं रहती।

आसक्ति के इन पतनों को ध्यान में रख कर शास्त्रकारों ने अनेक प्रकार से आसक्ति-रक्षण का उपदेश दिया है। अपने में प्रायशः पृथक् दीखने वाले पदार्थों की बात जाने दीजिए, अपने शरीर के प्रति भी आसक्ति न रहने का विधान किया है। कहा है—

यदि ध्येयतो वि देहंमि, नापहंति समाधयं ।

मुनिब्रन धरने शरीर पर भी समान्य नहीं रहते ।

कहा जा सकता है—यदि शरीर के प्रति समता नहीं है तो साधारण-जानी आदि द्वारा उसका पौरुष-महत्त्व क्यों करने ? इस प्रश्न के समाधान के लिए ही इस अध्ययन की रचना की गई है और एक सुन्दर उदाहरण द्वारा समाधान किया गया है। दृष्टान्त का संक्षेप इस प्रकार है—

राजगृह नगर में धन्य मायैवाहू था। उसकी पत्नी का नाम भद्रा था। धन्य गमृडिवाणी का इन्द्रियमन्त्र था किन्तु निम्नमान था। उसकी पत्नी ने अनेक देवनाभों की मान्यता-मनोनी की मर उन एक पुत्र की प्राप्ति हुई। देवी देवा का फल समझ कर उसका नाम 'देवदत्त' रखा गया।

देवदत्त कुछ बड़ा हुआ तो एक दिन भद्रा ने उसे नहला-धुलाकर और अनेक प्रकार की आभूषणों से सज्जित कर अपने हस्त-केटक पथक को ले जाने के लिए दे दिया। पथक उसे ले गया तो उस पर देवदत्त पर विचित्र-रस स्वर मन्त्री के बातका के साथ ले जाने लगा। देवदत्त का उसे पता हुआ तो वह देवदत्त का विधान निर्देश और नृजम और विजय प्रमत्ता-पामना बताने के लिए देवदत्त को आहूत करके देवदत्त को उदाहरण दे दिया। नगर में बाहर ले जाकर उसे एक स्थान पर छोड़ दिया। देवदत्त ने एक दिन का वक्त दे दिया। बातक के प्राण-मन्त्र उग्र मर ।

इस पथक को बाहर का पत्तन पार्श्व या वह नदीगद था। दृष्ट-उग्र दृष्टने पर मो

वकरियां थी, बहुत धन सोना एवं चांदी थी, उसके यहाँ सूब सेन-देन होता था] घर में बहुत-सा भोजन-पानी तैयार होता था

उस धन्य सार्यवाह को पत्नी का नाम भद्रा था। उसके हाथ पर सुकुमार थे। पाँचो इन्द्रियां हीनता से रहित परिपूर्ण थी। वह स्वस्तिक आदि लक्षणों तथा तिल मसा आदि ध्यजनों के गुणों से युक्त थी। मान, उन्मान और प्रमाण से परिपूर्ण थी। अच्छी तरह उत्पन्न हुए—सुन्दर सब अवयवों के कारण वह सुन्दरांगी थी। उसका आकार चन्द्रमा के समान सौम्य था। वह अपने पति के लिए मनोह्र थी। देखने में प्रिय लगती थी। सुहृदवती थी। मुट्ठी में समा जाने वाला उसका मध्य भाग (कटिप्रदेश) विवस्ति से मुशोभित था। कुंडलों से उसके गडस्थलों की रेखा घिसती रहती थी। उसका मुख पूर्णिमा के चन्द्र के समान सौम्य था। वह शृंगार का आगार थी। उसका वेष सुन्दर था। यावत् [उसकी चाल, उसका हँसना तथा बोलना सुलगत था—मर्यादानुसार था, उसका विलास, धालाप-सलाप, उपचार—सभी कुछ मस्कारिता के अनुरूप था। उसे देखकर प्रसन्नता होती थी। वह वस्तुतः दर्शनीय थी, सुन्दर थी] वह प्रतिरूप थी—उसका रूप प्रत्येक दर्शक को नया-नया ही दिखाई देता था। मगर वह चन्द्या थी, प्रसव करने के स्वभाव में रहित थी। जानु (घुटनों) और कूर्पर (कोहनी) की ही माता थी, धर्मात् सन्तान न होने से जानु और कूर्पर ही उसके स्तनों का स्पर्श करते थे। या उसको गोद में जानु और कूर्पर ही स्थित होते थे—पुत्र नहीं।

७—तत्त नं धणस्स सार्यवाहस्स पंचए नामं दासवेडे होत्था, सार्यगसुंदरं मंसोवधिए बालकीलावणकुसले यावि होत्था।

उस धन्य सार्यवाह का पंचक नामक एक दास-बेटक था। वह सर्वांग-सुन्दर था, माम से पुष्ट था और बालकों को खेलाने में कुशल था।

८—तए नं से धणं सार्यवाहे रायगिहे नगरे बहणं नगरनिगमसेट्टिसर्यवाहाणं अट्टारसह प सेगिप्पेत्तेणीणं बहुसु कज्जेसु य कुट्टेसु य मंतेसु य जाव<sup>१</sup> चखुसुए यावि होत्था। नियगस्स वि य नं कुट्टेसु बहुसु य कज्जेसु जाव चखुसुए यावि होत्था।

वह धन्य सार्यवाह राजगृह नगर में बहुत से नगर के व्यापारियों श्रेष्ठियों और सार्यवाहों के तथा अटारहों श्रेष्ठियों (जातियों) और प्रथेष्ठियों (उपजातियों) के बहुत से कार्यों में, कुटुम्बों में—कुटुम्ब सम्बन्धी विषयों में और मन्त्रणाओं में यावत् चक्षु के समान मार्गदर्शक था और अपने कुटुम्ब में भी बहुत से कार्यों में यावत् चक्षु के समान था।

९—तत्त नं रायगिहे नगरे विजए नामं तवकरे होत्था, पावे चंडालहवे भीमतरवट्कम्मे आरसिय-दित्त-रत्त-नयणे खर-फडस-भहल्ल-विमय-धीमत्तयादिए असंपुडियउट्टे उट्ठप-यङ्गन-संबत-मुट्टए ममर-राहुवन्ने निरणुक्कोसे निरणुत्तावे दारुणे पडमए मिसंसइए निरणुकपे अहिध एगंतविट्ठिए, खुरे व एगंतपाराए, गिट्ठेव धामिसतत्तिलच्छे अग्गिमिव सअमवसो, जलमिव सअवगाही, उक्कंचण-माया-नियडि-कूडकवड-साइ-संपभोगबहुले, जिरनगरविणट्ट-कुट्ठसीलायारचरित्ते, जूयपसंगी, मज्ज-

५—तस्स जं मग्गकयस्स अदूरसामंते एत्थ जं महं एगे मालुकाकच्छ ए यावि होरथा, दिं  
 किण्होमासे जाय [नीले नीलोमासे हरि ए हरिओमासे सो ए सोओमासे णिढे णिढोमासे तिखे  
 तिखोमासे, किण्हे किण्हच्छा ए नीसे नीलच्छा ए हरि ए हरियच्छा ए, सो ए सोयच्छा ए, णि  
 णिद्धच्छा ए, तिखे तिरयच्छा ए, घण-कडिप्रकडिच्छा ए] रम्भे महामेहनिउरंबमू ए बहूहि रक्खेहि  
 गुच्छेहि य गुम्मेहि य सयाहि य यत्तोहि य सणेहि य कुसेहि य एणणुहि य संघने पत्तिच्छने प्र  
 भुसिरे वाहि गंभीरे अणेगवालसयसंकणज्जे यावि होरथा ।

उस भग्न कृप से न अधिक दूर न अधिक समीप, एक जगह एक बड़ा मालुकाकच्छ था ।  
 अजन के समान कृष्ण वर्ण वाला था और कृष्ण-प्रभा वाला था—देताने वालों को कृष्ण वर्ण  
 दिखाई देता था, यावत् [मयूर की गर्दन के समान नील था, नील प्रभा वाला था, तोते की पूँछ  
 समान हरित और हरित प्रभा वाला था । बत्ती आदि से व्याप्त होने के कारण शीत स्पर्श वाला  
 और शीत स्पर्श वाला ही प्रतीत होता था । वह रुख नहीं बल्कि स्निग्ध था एवं स्निग्ध ही प्रतीत होता  
 था । उसके बरणादि गुण प्रकर्षवान् थे । वह कृष्ण होते हुए कृष्ण छाया वाला, इसी प्रकार नील, नील  
 छाया वाला, हरित, हरित छाया वाला, शीत, शीत छाया वाला, तीव्र, तीव्र छाया वाला, प्रो  
 भत्यन्त सघन छाया वाला था] रमणीय और महामेघों के समूह जैसा था । वह बहुत-से वृक्षों, गुच्छों  
 गुल्मी, लताओं, बेलों, वृणों, कुसों (दमों) और टूठों से व्याप्त था और चारों ओर से आच्छादि  
 था । वह अन्दर से पीला अर्थात् विस्तृत था और बाहर से गभीर था, अर्थात् अन्दर दृष्टि का सबा  
 न हो सकने के कारण सघन था । अनेक सैकड़ों हिंसक पशुओं अथवा सर्पों के कारण संकाजनक था

विवेचन—मालुक, वृक्ष की एक जाति है । उसके फल में एक ही गुठली होती है । अथवा  
 मालुक का अर्थ ककडी, फूटककडी आदि भी होता है । उनकी भाड़ी मालुकाकच्छ कहलाती है ।

कभी-कभी ऐसा होता है कि किसी वस्तु का असली वर्ण अन्य प्रकार का होता है किन्तु वह  
 समीपता अथवा बहुत दूरी के कारण वह वर्ण अन्य—भिन्न प्रकार का भासित—प्रतीत होता है  
 मालुकाकच्छ के विषय में ऐसा नहीं था । वह जिस वर्ण का था उसी वर्ण का जान पड़ता था । या  
 प्रकट करने के लिए यहाँ कहा गया है कि यह कृष्ण वर्ण वाला और कृष्णप्रभा वाला था, आदि ।

६—तस्य जं रायगिहे नगरे घण्णे नामं सारथवाहे अइहे दिस्से जाव [विस्सिण्ण-विजल-स  
 णातण-मवण-जाण-वाहणा-इण्णे बहुदासी-दास-गो-महिस्स-मवेत्तगप्पमू ए बहुधण-बहुजायह्व-रा  
 आओग-पओग-सपउत्ते विच्छुड्डिय-] विजसमत्तपाणे । तस्स जं धम्मस्स सारथवाहस्स भद्दा न  
 मारिया होरथा, गुमुमालपाणिपाया अहीणपडिपुण्णपंचविदियसरीरा सबलण-वंजणगुणोववेया माणु  
 णप्पमाण-पडिपुण्णमुजायसरथंगमुं वरंगी सत्तिसोमागारा कंता पियदंसणा सुरुवा करयलपरिमियदि  
 सिपमग्गहा कुं इलुस्सिहपण्णं इलेहा कोमुहरयणिपरपडिपुण्णसोमवयणा तिमारागारचारवेत्ता ३  
 [संगय-मय-हत्तिप-मणिप-विहिय-विस्सास-सलत्तिप-संसाव-निउण-जुत्तोवयार-कुत्तला यासासी  
 हरितणिग्गहा अभिरथा] पडिच्छा वंभा प्रविघाउरी जाणुकोप्परमाया यावि होरथा ।

राजगृह नगर में धन्य नामक सारथवाह था । वह समृद्धिशाली था, तेजस्वी था, [उमके २  
 विनीतों एवं विपुल दाय्या, धामन, यान तथा वाहन थे, बहुमन्यक दास, दासी, गायें, भैंसे ३

अलग-अलग होने के स्थानों, जुआ के अखाडों, मदिरापान के अड्डों, वैद्या के घरों, उनके घरों के द्वारों (चोरों के अड्डों) चोरों के घरों, शृंगाटकों—सिंघाड़े के आकार के मापों, तीन मार्ग मिलने के स्थानों, चौको, अनेक मार्ग मिलने के स्थानों, नागदेव के गृहों, भूतो के गृहों, यक्षगृहों, सभास्थानों, प्याउओ, दुकानों और शून्यगृहों को देखता फिरता था । उनकी मार्गण करता था—उनके विद्यमान गुप्तों का विचार करता था, उनकी गवेयणा करता था, अर्थात् थोड़े जनों का परिवार हो तो चोरी करने में सुविधा हो, ऐसा विचार किया करता था । विषम-रोग की तीव्रता, इष्ट जनों के विपोग, व्यसन-राज्य आदि की घोर से भाये हुए सकट, अम्युदय-राज्यलक्ष्मी आदि के लाभ, उत्सवों, प्रसव-पुत्रादि के लाभ, यदन त्रयोदशी आदि तिथियों, क्षण-बहुत लोको के भोज आदि प्रसंगों, यज्ञ-नाग आदि की पूजा, कौमुदी आदि पर्वणों में, अर्थात् इन सब प्रसंगों पर बहुत से लोग मद्यपान से मत्त हो गए हों, प्रमत्त हुए हों, अमुक कार्य में व्यस्त हों, विविध कार्यों में आकुल-व्याकुल हों, सुख में हों, दुःख में हों, परदेश गये हों, परदेश जाने की तैयारी में हों, ऐसे अवसरों पर वह लोगों के छिद्र का, विरह (एकांत) का और अन्तर (अवसर) का विचार करता और गवेयणा करता रहता था ।

१०—बहिया वि य णं रायगिहस्स नगरस्स आरामेसु य उज्जायेसु य बाबि-पोक्खरिणी-वीहिया-पुंजालिया-सरेसु य सरपत्तिसु य सरसरपत्तियासु य जिण्णुज्जायेसु य मगकूवएसु य मालुपा-कच्छएसु य सुसानेसु य गिरिकार-सेण-उवट्ठानेसु य बहुजणस्स छिहेसु य जाव अन्तरं मगमाणे गवेसमाणे एव व णं विहरइ ।

वह विजय और राजगृह नगर के बाहर भी आरामों में अर्थात् दम्पती के त्रीडा करने के लिए माधवीनतागृह आदि जहाँ बने हों ऐसे बगीचों में, उद्यानों में अर्थात् पुष्पों वाले वृक्ष जहाँ हों और लोग जहाँ जाकर उत्सव मनाते हों ऐसे बागों में, चौकोर बावड़ियों में, कमल वाली पुष्करिणियों में, शोषिकाओ (सम्बो बावड़ियों) में, गुआनिकाओ (वांकी बावड़ियों) में, सरोवरों में, सरोवरों की पत्तियों में, सर-सर पत्तियों (एक तालाब का पानी दूसरे तालाब में जा सके, ऐसे सरोवरों की पत्तियों) में, जीर्ण उद्यानों में, भग्न कूपों में, मालुकाकच्छों की भाड़ियों में, श्मशानों में, पर्वत की गुफाओं में, लयनी अर्थात् पर्वतस्थित पाषाणगृहों में तथा उपस्थानों अर्थात् पर्वत पर स्थित पाषाण-मठों में उपर्युक्त बहुत लोगों के छिद्र आदि देखता रहता था ।

११—ए णं तीसे महाए भारियाए अन्नया कयाई पुव्वरत्तावरत्तकाल-समयंसि कुडुंबजाग-रियं जागरमाणीए अयमेयाकवे अन्नद्विए जाव (चित्तिए पत्थिए मणोगए संकप्पे) समुप्पज्जित्वा—

‘अहं धनेण सत्तयाहेण सद्धिं बहूणि वासाणि सह-परिसर-रस-मंथ-रूपाणि मानुस्सयाइं काममोगाईं पञ्चगुभवमाणी विहरामि । नो वेव णं अहं दारणं वा दारियं वा पयायामि ।

तं धन्माओ णं ताम्रो अम्मयाओ जाव [ संपुण्णाओ णं ताम्रो अम्मयाओ, कयत्थाओ णं ताम्रो अम्मयाओ, कयपुण्णाओ णं ताम्रो अम्मयाओ, कयलवण्णाओ णं ताम्रो अम्मयाओ, कयविहवाओ णं ताम्रो अम्मयाओ ] सुलढे णं मानुस्सए जम्मजीविपफले तासि अम्मयाणं, जासि भाने णियगकुच्छि-संभूयाइं यणदुद्धलुद्धयाइं सहुरसमुल्लावगाइं सम्मणपयंपियाइं यणमुला कवल्लदेसमागं धमिसरमाणाइं मुद्धयाइं यणयं पिबंति । ताम्रो य कोमलकमलोवमेहि हत्थेहि गिण्हिऊणं उच्छंणे निवेसियाइं देगित समुल्लावए पिए सुमहुरे पुणो पुणो मंजुलप्यमणिए ।

सगो भोजनपसंगी, संतपसंगी, वारुणे, हियववारण, साहसिए, संधिच्छेपए, उवहिए, विसंसंवारि,  
 लीपगतिरयमेय-लहृहयसंपउत्ते, परस्स दव्यहरणम्मि निच्चं अणुबद्धे, तिब्बवेरे,

रायगिहस मगरस्स बहूणि अइयमणाणि य निग्गमणाणि य वाराणि य अववारानि य  
 अइमो य संइमो य नगरनिद्धमणाणि य संवट्टणाणि य निव्वट्टणाणि य जयसलपाणि य पाग-  
 गाराणि य वेसागाराणि य तहारट्ठाणाणि (तक्करट्ठाणाणि) य तक्करघराणि य तिघाडणाणि य  
 नयाणि य चउक्काणि य चच्चराणि य नागघराणि य भूयघराणि य जक्खदेउलाणि य समणि य  
 यवाणि य पाणिपसात्ताणि य सुप्रघराणि य आमोएमाणे आमोएमाणे मग्गमाणे गवेसमाणे, बहुमग्ग-  
 तिहेत्तु य विसमेत्तु य विहरेत्तु य यत्तनेत्तु य अम्भुवएत्तु य उस्सवेत्तु य पत्तवेत्तु य तिहोत्तु य एत्तनेत्तु य  
 जग्गेत्तु य पत्तणेत्तु य मत्तपमत्तस्स य वविलत्तस्स य वाउत्तस्स य सुहियस्स स दुवित्तयस्स य रि-  
 सायम य विपवत्तिवस्स य भागं च छिद्दं च विरहं च अत्तरं च माग्गमाणे गवेसमाणे एवं च बं  
 विहरह ।

उग राजगृह मे विजय नामक एक घोर था । वह पाप कर्म करने वाला, चाण्डाल के समान  
 था था, अत्यन्त भयानक घोर क्रूर कर्म करने वाला था । क्रुद्ध हुए पुरुष के समान देशीयमान  
 घोर था उसके नेत्र थे । उगकी दाढ़ी या दाढ़ें अत्यन्त कठोर, मोटी, विकृत घोर बीभत्स (डरावनी)  
 थी । उगके हाँठ आग मे मितते नहीं थे, अर्थात् दाँत बड़े घोर बाहर निकले हुए थे घोर होठ छोटे  
 थे । उगके मस्तक के किश हवा मे उठते रहते थे, बिगरे रहते थे घोर लम्बे थे । यह भ्रमर घोर रातु  
 के समान था था । वह दया घोर गन्धामाग मे रहित था । दाहण (रीढ़) या घोर इन्ही कारण  
 भय उत्पन्न करता था । वह मृगम—नरमयान था । उगे प्राणियों पर अनुकम्पा नहीं थी । वह मो  
 की भाँति गहान्त हृष्ट था था । अर्थात् किसी भी कार्य के लिए परका निश्चय कर लेता था । वह  
 घोर की तरह एक धार था था । अर्थात् जिनके घर घोरी करने का निश्चय करता उगो मे पूरी  
 तरह गमन हो जाता था । वह गिद्ध की तरह माग का योयुष था घोर अग्नि के समान सर्वभक्षी था  
 अर्थात् जिनकी घोरी करता, उगका सर्वस्व हरण कर लेता था । जब के समान सर्वघाही था, अर्थात्  
 नहर पर बड़ी सब वस्तुओं का अपहरण कर लेता था । वह उत्कृष्ट मे (हीन गुण वाली वस्तु को  
 अधिक श्रेष्ठ होने के लिए उत्कृष्ट गुण वाली बनाने मे) वचन (दुमरो को ठगने) मे, माया (पर को  
 धोखा देने की बुद्धि) मे, निहृति (बगुना के समान लोग करने मे), गूट मे अर्थात् तोड़-नाग की बम-  
 उखाड़ा करने मे घोर बचक करने मे अर्थात् बेध घोर भाषा की बदलने मे अग्नि नियुग था । मागि-  
 दान मे अर्थात् उत्कृष्ट वस्तु मे मिलावट करने मे भी नियुग था या अविश्वास करने मे चतुर था ।  
 वह विरहान मे नर मे उत्पन्न कर रहा था । उगका घोर, पावार घोर चरित अत्यन्त दूषित था ।  
 वह दुःख के अत्यन्त घोर अतिशयान मे अनुत्कृष्ट था, अत्यन्त भोजन करने मे गूढ़ था घोर माग मे  
 अनुत्कृष्ट था । माग के हृष्ट का विदारण कर देने वाला, माहृमो अर्थात् परिवर्णन का विचार न करके  
 बर्तन करने वाला अनु जलाने वाला अनु करने करने वाला, विस्वागवापो घोर घाग लगा देने वाला  
 था । मोर के देहदान (देहदान) अर्थात् का भिदन करते उगमे मे दण्ड हरण करने वाला घोर  
 दान पर वाला था । अत्यन्त दण्ड हरण करने मे अनेक नेत्रर रखा था । मोर बँद जाता था ।

वह घोर अत्यन्त नर के वस्तु मे प्रवेश करने के मागी, निहृति के मागी, दण्डान-  
 र दण्डान विरहान विरहान विरहान विरहान, अत्यन्त उगने विरहान की प्रतीति, उगने

१३—एवं संपेहेह, संपेहिता कल्लं जाव<sup>१</sup> जन्ते जेणामेव धण्णे सत्थवाहे तेणामेव उवागच्छइ । उवागच्छिता एवं वयासी—एवं सधु ग्रहं देवानुप्पिया । तुम्हेहि सद्धिं ग्रहं वासाइं जाव<sup>२</sup> वेति सभुत्तावए सुमहरे पुणे पुणे मंजुसप्पमणिए । तं नं ग्रहं ग्रहन्ना भपुग्ना भकयत्तवज्जणा, एतो एगमवि न पत्ता । तं इच्छामि नं देवानुप्पिया । तुम्हेहि भ्रमणुग्नाया समानी विउत्तं भसणं ४ जाव धनुवड्ढेमि, उवाइयं करेत्तए ।

भद्रा ने इस प्रकार विचार किया । विचार करके दूसरे दिन यावत् सूर्योदय होने पर जहाँ धन्य सार्यवाह थे, वही भाई । आकर इस प्रकार बोली—

देवानुप्रिय ! मैंने आपके साथ बहुत वर्षों तक कामयोग भोगे हैं, किन्तु एक भी पुत्र या पुत्री को जन्म नहीं दिया । धन्य स्त्रियो बार-बार भति मयुर वचन वाले उत्साह देती हैं—अपने बच्चों की लोरियाँ गाती हैं, किन्तु मैं भयग्न्य, पुण्य-हीन और लज्जालुहीन हूँ, जिसमें पूर्वोक्त विशेषणों में से एक भी विशेषण न पा सकी । तो हे देवानुप्रिय ! मैं चाहती हूँ कि धापकी आज्ञा पाकर विपुल धनान् आदि तैयार कराकर नाग आदि की पूजा करूँ यावत् उनकी प्रशय निधि की वृद्धि करूँ, ऐसी मनोती मनाऊँ । (पूर्व मूत्र के अनुसार यहाँ भी सब कह लेना चाहिए) ।

भति की अनुभति

१४—तए नं धण्णे सत्थवाहे ग्रहं धारियं एवं वयासी—ममं वि य नं खलु देवानुप्पिए ! एत खेव मणोरहे—कहं नं तुमं धारणं धारियं वा वयाएज्जासि ?' महाए सत्थवाहीए एयमहं' भणुजाणाइ ।

तत्पश्चात् धन्य सार्यवाह ने भद्रा भार्या से इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिये ! निश्चय ही मेरा भी यही मनोरथ है कि किसी प्रकार तुम पुत्र या पुत्री का प्रसव करो—जन्म दो । इस प्रकार कह कर भद्रा सार्यवाही को उम सार्य की भर्मात् नाग, भूत, यक्ष आदि की पूजा करने की अनुमति दे दो ।

देवी की पुत्रा

१५—तए नं सा महा सत्थवाही धण्णेणं सत्थवाहेणं भ्रमणुग्नाया समानी हृदयुदुठ जाव<sup>३</sup> ह्यहिमया विपुलं भसण-पाण-ल्लाइम-साइयं उववज्जइवेइ । उववज्जइवेत्ता सुबहु पुक्क-गंघ-वत्थ-मल्ला-संकारं गेहइ । गेहिता सपाओ गिहाओ निगच्छइ । निगच्छिता रायगिहं नगरं मज्झमज्झेणं निगच्छइ । निगच्छिता जेणेव पोवसरिणो तेणेव उवागच्छइ । उवागच्छिता पुवसरिणो तोरे सुबहुं पुक्क जाव मल्लासंकारं ठयेइ । ठविता पुवसरिणि ओगाहेइ । ओगाहिता जलमज्जणं करेइ, जलकीडं करेइ, करित्ता ण्हाया कययत्तिकम्मा उत्तपडसाडिया जाई तत्थ उप्पत्ताइं जाव (पउमाइं कुमुपाइं णलिणाइं सुमगाइं सोगंधियाइं योडरीयाइं महायोडरीयाइं सयवत्ताइं) सहस्सपत्ताइं ताइं गिहइ । गिहिता पुवसरिणिओ पच्चोहइ । पच्चोहइत्ता तं सुबहुं पुक्कगंधमल्लं गेहइ । गेहिता जेणामेव नागघरए य जाव वेसमणघरए य तेणेव उवागच्छइ । उवागच्छिता तत्थ नं नागवडिमाण य जाव

तं ग्रहं नं ग्रहयन्ता ग्रहयन्ता ग्रहयन्ता एतो एतमपि न पत्ता ।'

धन्य सार्यवाह की भागी मद्रा एत वाग कदाचित् मन्त्रगानि के समय कुटुम्ब सम्बन्धी निन्ता रही थी कि उसे इस प्रकार का विचार [निन्तन, अभिमान एवं मानसिक मन्त्र] उत्पन्न हुआ—  
यह उन वर्षों में मैं धन्य सार्यवाह के साथ मन्द, म्पजं, रम, मन्ध और रूप यह पाणों प्रकार के सम्बन्धी कामभोग भोगनी हुई विचार रही है, परन्तु मैंने एत भी पुत्र या पुत्री को जन्म दिया ।

वे माताएँ धन्य हैं, यावन् [वे माताएँ प्रशस्त पुण्य वाली हैं, वे माताएँ कृतार्थ हैं—पूर्व मनोरथ हैं, वस्तुतः उन माताओं ने पुण्य उपाजंन किया है, उन माताओं के गणन सार्यक हुए हैं, और माताएँ वैभवशालिनी हैं] उन माताओं को मनुष्य-जन्म और जीवन का प्रशस्त—भला कल प्राप्त है, जो माताएँ, मैं मानती हैं कि, अपनी कृप में उत्पन्न हुए, स्नानों का दूध पीने में मुग्ध, मोटे न बोलने वाले, तुतला-तुतला कर बोलने वाले और स्नान के मूत्र में काग के प्रदेश की ओर मरकते न मुग्ध बालकों को स्तनपान कराती हैं । और फिर कमल के समान कोमल हाथों में उन्हें पकड़ अपनी गोद में बिठलाती है और बार-बार अतिशय प्रिय वचन बोलने मधुर उल्लास देती है ।

मैं ग्रहयन्ता हूँ, पुण्यहीन हूँ, कुलशायी हूँ और पापिनी हूँ कि इनमें मैं एक भी (विशेषण) न सकी ।

१२—तं सेयं मम कलसं पाउष्यमायाए रघवीए जाव' जलंते धणं सरयवाहं प्रापुच्छिता जेणं सरयवाहेणं ग्रहमणुनाया समानी सुबहुं विउलं भसन-पाण-लाइम-साइमं उववन्नडावेत्ता सुबहुं क-वश्य-गंध-मल्लालंकारं गहाय बहहिं मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधी-परिजण-महिसाहिं सडि रिखडा जाई इमाई रायमिहस्स नगरस्स बहिया णागाणि य भूपाणि य अबलानि य इवाणि य राणि य दहाणि य सिवाणि य वेसमणाणि य सत्थं नं बहूणं नागपडिमाणं य जाव वेसमणपडिमाणं महिरिहं पुक्कच्चणियं करेत्ता जाणुपायपडियाए एयं बडत्तएः—जइ नं ग्रहं देवानुप्पिया ! बारणं ता रिणं या पयायामि, तो नं ग्रहं तुभं जायं च दायं च मायं च अवलवणिहिं च अणुवड्ढेमि ति कट्ठे ताइयं उवाइत्तए ।

अतएव मेरे लिए यही श्रेयस्कर है कि कल रात्रि के प्रभात रूप में प्रकट होने पर और रौदय होने पर धन्य सार्यवाह में पूछ कर, धन्य सार्यवाह की आज्ञा प्राप्त करके मैं बहुत-सा भक्षण, न, खादिम और स्वादिम आहार तैयार कराके बहुत-से पुण्य वस्त्र गंधमाला और भलंकार ग्रहण करके, बहुसंख्य मित्रों, शातिजनो, निजजनो, स्वजनो सम्बन्धियों और परिजनो की महिलाओं के साथ—उनमें परिवृत होकर, राजगृह नगर के बाहर जो नाम, भूत, यक्ष, इन्द्र, स्कन्द, रुद्र, शिव और भ्रमण आदि देवों के आवाहन है और उनमें जो नाम की प्रतिमा यावत् ब्रह्मण की प्रतिमाएँ हैं, उनकी बहुसंख्य पुण्यादि में पूजा करके घुटने और पैर झुका कर अर्घात् उनकी नमस्कार करके इस प्रकार बहूँ—हि देवानुप्रिय ! यदि मैं एक भी पुत्र या पुत्री को जन्म दूंगी तो मैं तुम्हारी पूजा करूंगी, एवं के दिन दान दूंगी, भोग—द्रव्य के लाभ का हिस्सा दूंगी और तुम्हारी वक्ष्य-निधि की दान करूंगी ।' इस प्रकार अपनी इष्ट वस्तु की याचना करके ।

तए ष सा मदा सत्यवाही अन्नया कपाइ केणइ कासंतरेणं पावग्नसत्ता जाया मावि होरेया ।

तत्पश्चान् भद्रा तार्यवाही शतुर्दशी, अष्टमी, नवमिस्ता और पूर्णिमा के दिन विपुल भोजन, पान, खादिम और स्वादिम भोजन तैयार करना । तैयार करके बहुत से नाम यावत् वंशमरण देवों की मनौनी करती—भोग चढ़ाती थी और उन्हें नमस्कार किया करती थी ।

तदश्चात् वह भद्रा सायंवाही कुछ समय व्यतीत हो जाना पर एकदा कदाचिन् गर्भवती हो गई ।

१७—तए न सोते महाए सारयवाहीए दोसु मासेसु बीइवकतेसु तइए माते वट्टमाणे इमेयाकवे दोहले पाउबन्नुए—धन्नाओ नं ताओ धम्मयाओ जाव<sup>१</sup> कयलवखणाओ नं ताओ धम्मयाओ, जाओ नं विउलं धसन-वाण-साइम-साइमं सुबहुयं पुक्क-वरय-मय-मल्लासकार गहाय भित्त-नाइ-नियण-सयण-सबध-वरियण-महिलियाहि थ सद्धिं संवरिइडाओ रायगिहं नगर मज्झमज्जेणं निगच्छति । मिगच्छित्ता जेणं पुव्वरिणि सेणं उवागच्छति । उवागच्छित्ता पोव्वरिणि भोगांहित, भोगाहिता वहायाओ कयलकम्मयाओ सप्पालकारविमुमियाओ विपुलं धसन-वाण साइम-साइमं पासाएमाणीओ जाव (विमाएमाणीओ परिमाएमाणीओ) पडिम्मेयाणीओ दोहलं विणेगित । एवं सपेहेइ, सपेहिता कल्ल जाव<sup>१</sup> जलते जेणं धणं सारयवाहे तेणं उवागच्छइ । उवागच्छित्ता धणं सारयवाह एवं वयासी—'एवं खलु देवाणिरिया ! भम तस्स गम्मस्स जाव (दोसु मासेसु बीइवकतेसु तइए माते वट्टमाणे इमेयाकवे दोहले पाउबन्नुए-धन्नाओ नं ताओ धम्मयाओ जाव दोहलं) विणेगित; तं इच्छामि नं देवाणिरिया । तस्मेहि धम्मज्जनाया समाणी जाव विहरितए ।

'महामुहं देवाण्यपि ! मा पट्टियमं करेह ।'

तत्पश्चात् भद्रा सार्यवाही को (गर्भवती हुए) दो मास बीत गये । तीसरा मास चल रहा था, तब इस प्रकार का दोहद उत्पन्न हुआ—'वे माताएँ धन्य हैं, यावत् [पुण्यसाक्षिनी हैं, कृतार्थ हैं] तथा वे माताएँ शुभ लक्षण वाली हैं, जो विपुल भ्रजन, पान, खादिम और स्वादिम—यह चार प्रकार का आहार तथा बहुत-सारे पुण्य, वस्त्र, गंध और माला तथा भलकार ग्रहण करके मित्र, जाति निजक, स्वजन, सम्बन्धी और परिजनों की इच्छाओं के साथ परिवृत्त होकर राजगृह नगर के बीचोंबीच होकर निकलती हैं । निकल कर जहाँ पुष्करिणी है वहाँ प्राप्ती है, आकर पुष्करिणी में प्रवगाहन करती हैं, प्रवगाहन करके स्नान करती हैं, बलिर्कर्म करती हैं और सब भलकारों से विभूषित होती हैं । फिर विपुल भ्रजन, पान, खादिम और स्वादिम आहार का आस्वादन करती हुई, विशेष आस्वादन करती हुई, विभाग करती हुई तथा परिभोग करती हुई अपने दोहद को पूर्ण करती हैं ।' इस प्रकार भद्रा सार्यवाही ने विचार किया । विचार करके कल—दूसरे दिन प्रातःकाल मूर्धोदय होने पर धन्य सार्यवाह के पास आई । आकर धन्य सार्यवाह से इस प्रकार कहा—देवानुप्रिय ! मुझे उस गर्भ के प्रभाव से ऐसा दोहद उत्पन्न हुआ है कि वे माताएँ धन्य हैं और सुलक्षणा हैं जो अपने दोहद को पूर्ण करती हैं, आदि । यतएव हे देवानुप्रिय ! आपकी आज्ञा हो तो मैं भी दोहद पूर्ण करना चाहती हूँ ।

मायवाह ने कहा—हे देवानुप्रिये ! जिस प्रकार सुख उपजे वैसा करो । उस में झील मत करो ।



समणपडिमाण म आतोए पणाम करेइ, ईमि मन्नुप्रमइ । पणुप्रमिता सोमहायणं परामुमा ।  
 रामुसित्ता नामपडिमाणो म जाय येतमणपडिमाणो म सोमहायणं पमउजइ, उरगधाराए धम्मुरेइ ।  
 च्छुविलत्ता पम्हलमुकुमालाए गयकासाईए गामाई सुहेइ । सुहिता महरिहं वरयाणहणं व मन्ताणहणं व  
 धारुहणं व धुम्राहणं व धम्राहणं व करेइ । करित्ता धूमं इहइ, इहिता जाणुमणपडिमा पत्रनिगा  
 य धमासी—'जइ न ग्रह दारग वा दारिणं वा पयामामि तो नं ग्रहं जायं य जाय धनुवुइमि ति वट्ट-  
 वाइय करेइ, करित्ता जेणेव पोवत्तरिणी तेणेव उवागएइ । उवागविट्ठा विगुलं असणवाणमाप-  
 ताइम आसाएमाणी जाय (विताएमाणी परिमाएमाणी परिभु जेमाणी एय व नं) विहरइ । त्रिमि  
 राव (भुत्तुत्तरागया वि य न समाणा आयता ओक्का परम-) गुइमुया जेणेव सए गिहे तेने  
 इयगया ।

तत्पश्चात् वह भद्रा सार्यवाही धन्य सार्यवाह ने अनुमति प्राप्ता करने हृष्ट तुष्ट यात्रा  
 मकुलितहृदय होकर विपुल भक्षण, पान, खादिम और स्वादिम तैयार कराती है । तैयार कराए  
 बहुत-से गंध, वस्त्र, माला और भलकारी को ग्रहण करती है और फिर अपने घर में बाहर निकल  
 है । राजगृह नगर के बीचों-बीच होकर निकलती है । निकलकर जहाँ पुष्करिणी थी, वही पहुँच  
 है । वहाँ पहुँच कर उसने पुष्करिणी के किनारे बहुत-से पुष्प, गंध, वस्त्र, मालाएँ और भलकार रख  
 दिए । रख कर पुष्करिणी में प्रवेश किया, जलमंजन किया, जलप्रीडा की, स्नान किया और  
 बलिकर्म किया । तत्पश्चात् ओढ़ने-पहनने के दोनों शीले वस्त्र धारण किये हुए भद्रा सार्यवाही ने वह  
 जो उत्पल-कमल, पद्म, कुमुद, नलिन, सुभग, सौगन्धिक, पुंडरीक, महापुंडरीक, शतपत्र और सहस्र  
 पत्र-कमल थे उन सबको ग्रहण किया । फिर पुष्करिणी में बाहर निकली । निकल कर पहुँचे रक्त  
 हुए बहुत-से पुष्प, गंध माला आदि लिए और उन्हें लेकर जहाँ नागगृह था यावत् वैश्रमणगृह था, व  
 पहुँची । पहुँच कर उसने स्थित नाग की प्रतिमा यावत् वैश्रमण को प्रतिमा पर दृष्टि पड़ते ही उ  
 नमस्कार किया । कुछ नीचे झुकी । मोर-विन्ध्यी लेकर उससे नाग-प्रतिमा यावत् वैश्रमण-प्रतिमा  
प्रमार्जन किया । जल की धार छोड़ कर अभिषेक किया । अभिषेक करके चतुर्द्वार और कोम  
कपाय-रंग वाले सुगंधित वस्त्र से प्रतिमा के अंग पोछे । पीछकर बहुमूल्य वस्त्रों का भारोहन किया-  
वस्त्र पहनाए, पुष्पमाला पहनाई, गंध का लेपन किया, चूर्ण चढ़ाया और शोभाजनक वस्त्रों का ध्या  
किया, यावत् धूप जलाई । तत्पश्चात् घुटने और पैर टेक कर, दोनों हाथ जोड़कर इस प्रकार वहा-

'भगर मैं पुत्र या पुत्री की जन्म दूंगी तो मैं तुम्हारी याग—पूजा करूँगी, यावत् प्रक्षय नि  
 की वृद्धि करूँगी ।' इस प्रकार भद्रा सार्यवाही मनोती करके जहाँ पुष्करिणी थी, वहाँ घाई में  
 विपुल भक्षण, पान, खादिम एवं स्वादिम आहार का आस्वादन करती हुई यावत् विचरने लग  
 भोजन करने के पश्चात् मुचि होकर अपने घर आ गई ।

१ पुत्र-प्राप्ति

१६—अबुत्तर व न भद्रा सार्यवाही चाउहसटठमुहिटठपुन्नमासिणीसु विउलं असण-या  
 'खाइम-साइम उववसडेइ, उववसडित्ता बहवे नागा य जाय' येतमणा य उवायमाणी ममंसमाणी व  
 एयं व न विहरइ ।

ମନୁ ଶାସ୍ତ୍ର ଅନୁସାରେ ମନୁସମାଜର ପ୍ରଥମ ଶ୍ରେଣୀର ଲୋକଙ୍କୁ ବ୍ରାହ୍ମଣମାନେ କହନ୍ତି ।

[illegible]

ନିମ୍ନଲିଖିତ କାର୍ଯ୍ୟକ୍ରମ ଅନୁଯାୟୀ କାର୍ଯ୍ୟକ୍ରମ ପ୍ରସ୍ତୁତ କରାଯିବ ।

[illegible]

‘सत्यमेव जयते’ : वा. रसिहन्त कोट ।

[illegible]

१८—तए नं सा भद्रा सत्यवाही घण्णेणं सत्यवाहेणं अरुमणुन्नाया समानी हट्ठुट्ठा जाव विउलं असणपाणलाइमसाइम जाव उयवलडावेइ, उयवलडावेत्ता ष्हाया जाव (कयवलिकम्मा) उल्लपडसाडगा जेणेव णागघरए जाव<sup>१</sup> धूयं बहइ । बहिस्ता पणामं करेइ, पणामं करेता जेमेव पोवलरिणी तेणेव उवायच्छइ । उवायच्छिता तए नं ताप्रो मित्तनाइ जाव नगरमहिलाप्रो भइ सत्यवाहि सध्वालंकार-विभूसियं करेइ ।

तए नं सा भद्रा सत्यवाही ताहि मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परिजण-नगरमहितियाहि सदि तं विउल असणपाणलाइमसाइम जाव परिभुजेमाणो य दोहलं विणेइ । विणिता जामेव दिनि पाठसूया सामेव दिसि पडिगया ।

तत्पश्चात् अन्य सार्यवाह से आज्ञा पाई हुई भद्रा सार्यवाही हृष्ट-तुष्ट हुई । यावत् विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम तैयार करके यावत् स्नान तथा बलिकर्म करके यावत् पहने और ओढ़ने का पीला वस्त्र धारण करके जहाँ नागायतन आदि थे, वहाँ आई । यावत् धूप जलाई तथा बलिकर्म एवं प्रणाम किया । प्रणाम करके जहाँ पुष्करिणी थी, वहाँ आई । आने पर उन मित्र, ज्ञाति यावत् नगर की स्त्रियो ने भद्रा सार्यवाही को सर्व आभूषणों से अलंकृत किया ।

तत्पश्चात् भद्रा सार्यवाही ने उन मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, सम्बन्धी, परिजन एवं नगर की स्त्रियों के साथ विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम का यावत् परिभोग करके अपने दोहरे को पूर्ण किया । पूर्ण करके जिस दिशा से वह आई थी, उसी दिशा में लौट गई ।

पुत्र-प्राप्त

१९—तए नं सा भद्रा सत्यवाही संपुप्रडोहता जाव<sup>२</sup> तं गर्भं सुहंमुहेणं परिवहइ ।

तएनं सा भद्रा सत्यवाही नयहं मासाणं बहुपडिपुन्नाणं अट्ठट्ठमाण राइदियाणं सुकुमाल-पाणि-पायं जाव सध्वागसुंवरंणं दारग पयाया ।

तत्पश्चात् भद्रा सार्यवाही दोहरे पूर्ण करके सभी कार्य सावधानी से करती तथा पय्य भोजन करती हुई यावत् उम गर्भ को मुलपूर्वक वहन करने लगी ।

तत्पश्चात् उस भद्रा सार्यवाही ने नौ मास सम्पूर्ण हो जाने पर और साठे सात दिन-रात व्यतीत हो जाने पर सुकुमार हाथों-पैरों वाले बालक का प्रगव किया ।

देवदत्त-नामकरण

२०—तए नं तरस दारगत्त अम्मापियरो पडमे दिवसे जातकम्मं करेति, करिस्ता तहेव जाव<sup>३</sup> विउल असणपाणलाइमसाइम उयवलडावेति, उयवलडावेत्ता तहेव मित्तनाइ० भोयावेत्ता अ-मेयाइय भोण गुणनिष्कर्षं नामधेयं करेति—‘अहं नं अहं इमे दारए बहूणं नागपडिमाण य जाव वेतमणपडिमाण य उवाइयल्ले न तं होउ नं अहं इमे दारए वेवदिग्गनामेण ।’

तए नं तरस दारगत्त अम्मापियरो जायं च दायं च मायं च अक्खयनिहि च अनुवह्तेति ।

तत्पश्चात् उम बालक के माना-पिता ने पहले दिन जातकर्म नामक संस्कार किया । करके उगी प्रकार यावत् दूसरे दिन जागरण, तीसरे दिन चन्द्र-भूयंदर्शन, आदि सोकापार किया । दूसरे

सम्बन्धी धनुषि दूर हो जाने पर बारहवें दिन विपुल] भोजन, पान, खादिम और स्वादिम आहार तैयार करवाया । तैयार करवाकर उसी प्रकार मित्र जाति जनों आदि को भोजन कराकर इस प्रकार का गोण भर्षान् गुणनिष्पन्न नाम रक्खा—क्योंकि हमारा यह पुत्र बहुत-सी नाम-प्रतिभाओं यावत् [भूत, यश, इन्द्र, स्कन्द, रुद्र, निख] तथा वैश्रमण प्रतिभाओं की मनीषी करने से उत्पन्न हुआ है, इस कारण हमारा यह पुत्र 'देवदत्त' नाम से हो, भर्षान् इसका नाम 'देवदत्त' रक्खा जाय ।

तत्पश्चात् उम बालक के माता-पिता ने उन देवताओं की पूजा की, उन्हें दान दिया, प्राप्त धन का विभाग किया और भ्रमय निधि की धृष्टि की भर्षान् मनीषी के रूप में पहले जो संकल्प किया था उसे पूरा किया ।

पुत्र का अपहरण

२१—तए नं से पंचए शसचेइए देवदिग्ग दारयस्स बालग्गही जाए । देवदिग्ग दारय कडीए गेण्हइ, गेण्हिता बहूहि डिमएहि य डिमियाहि य दारएहि य बारियाहि य कुमारैहि य कुमारियाहि य सट्ठि संपरिवुडे भमिरमइ ।

तत्पश्चात् वह पंचक नामक दाम चेटक देवदत्त बालक का बालग्राही (वर्णों को खेलाने वाला) नियुक्त हुआ । वह बालक देवदत्त को कमर में से लेता और लेकर बहुत-से वर्णों, बच्चियों, बालकों, बालिकाओं, कुमारों और कुमारिकाओं के साथ, उनसे परिव्रज्य होकर खेलता रहता था ।

२२—तए नं सा भद्दा सत्थवाही भन्नया कयाइ देवदिग्ग दारयं भूयाय' कयवत्तिकम्मं कयकोउय-मंगलपायच्छित्तं सत्थवासंकारविभूतियं करैइ । पंचयस्स शसचेइयस्स हत्थय सि दत्तयइ ।

तए न पंचए शसचेइए भद्दाए सत्थवाहीए हत्थाओ देवदिग्ग दारय कडीए गेण्हइ, गेण्हिता सयाओ गिहाओ पडिणिकसमइ । पडिणिकसमिता बहूहि डिमएहि य डिमियाहि ॥ जाव [दारएहि बारियाहि कुमारैहि] कुमारयाहि य सट्ठि संपरिवुडे जेजेव रायमणे तेजेव उवागच्छइ । उवागच्छिता देवदिग्ग दारयं एगते ठावेइ । ठावित्ता बहूहि डिमएहि य जाव कुमारियाहि ॥ सट्ठि संपरिवुडे पमसे यावि होरया बिहरइ ।

तत्पश्चात् भद्दा मार्थवाही ने किसी समय स्नान किये हुए, वलिकर्म, कौतुक, मंगल और प्रायश्चित्त किये हुए तथा समस्त भनकारों से विभूषित हुए देवदत्त बालक की, दाम चेटक पंचक के हाथ में गोपा ।

पंचक दाम चेटक ने भद्दा मार्थवाही के हाथ से देवदत्त बालक को लेकर अपनी कटि में ग्रहण किया । ग्रहण करके वह अपने घर से बाहर निकला : बाहर निकल कर बहुत-से बालकों, बालिकाओं, वर्णों, बच्चियों, कुमारों और कुमारिकाओं से परिव्रज्य होकर राजमार्ग में आया । आकर देवदत्त बालक की एकान्त में—एक और बिठला दिया । बिठला कर बहुसंख्यक बालकों यावत् कुमारिकाओं के साथ, (देवदत्त की ओर से) असावधान होकर खेलने लगा—खेलने में मगन हो गया ।

हत्या

२३—इमं य नं विजए तवकरे रायगिहस्स भगरस्स बहूणि थाराणि ॥ अथदाराणि य तह्ये

जाय' आभोएमाणे भग्नेमाणे गवेसेमाणे जेणेव देवदिग्ने दारए तेणेव उवागच्छइ । उवागच्छिता देवदिग्ने दारमं सव्वालंकारविभूतियं पासइ । पासिता देवदिग्नेस दारगस्स आभरणालंकारेषु मुच्छिए गच्छिए गिद्धे अज्जभवन्ने पयय दासवेधं पमत्तं पासइ । पासिता दिसालोयं करेइ । करेता देवदिग्ने दारयं गेण्हइ । गेण्हिता कवलंसि अल्लियावेइ । अल्लियाविट्ठा उत्तरिग्जेणं पिहेइ । पिहेत्ता सिमं बुयिं चवलं वेइयं रापगिहस्स नगरस्स अवदारेण निग्गच्छइ । निग्गच्छिता जेणेव जिण्णुज्जाणे, जेणेव मग्गकूयए तेणेव उवागच्छइ । उवागच्छिता देवदिग्ने दारयं जीवियाओ यवरोयेइ । यवरोजिता आभरणालंकार गेण्हइ । गेण्हिता देवदिग्नेस दारगस्स सरीरयं निप्पाण निच्चेट्ठं जीवियविप्पअ मग्गकूयए पक्खिवइ । पक्खिविता जेणेव मालुपाकच्छए तेणेव उवागच्छइ । उवागच्छिता मालुपाकच्छयं अणुपविसइ । अणुपविसिता निच्चले निष्फंदे तुसिणीए दिवसं खियेमाणे चिट्ठइ ।

इसी समय विजय चौर राजगृह नगर के बहुत-से द्वारों एवं अपद्वारों आदि की यावत् पूर्वोक्त कथनानुसार देखता हुआ, उनकी मार्गशा करता हुआ, गवेपणा करता हुआ, जहाँ देवदत्त बालक था, वहाँ आ पहुँचा । प्राकर देवदत्त बालक को सभी आभूषणों से भूषित देवा । देवकर बालक देवदत्त के आभरणों और अलंकारों में मूर्छित (भासक्त-विवेकहीन) हो गया, ग्रथित (नोभ से ग्रस्त) हो गया, गूढ़ (भाकाशायुक्त) हो गया और अध्वुपपन्न (उनमें अत्यन्त तन्मय) हो गया । उसने दास चेटक पयक को वेगवर देवा और चारों ओर दिशाओं का अवलोकन किया—इधर-उधर देवा । फिर बालक देवदत्त को उठाया और उठाकर काख में दबा लिया । ओढ़ने के कपड़े में उसे छिपा लिया—डूक लिया । फिर धीघ्र, त्यग्नि, चपल और उतावल के साथ राजगृह नगर के अपद्वार से बाहर निकल गया । निकल कर जहाँ पूर्ववर्णित जीर्ण उद्यान और जहाँ टूटा-पूटा कुआँ था, वहाँ पहुँचा । वहाँ पशुप कार देवदत्त बालक को जीवन से रहित कर दिया । उसे निर्जीव करके उसके सब आभरण और अलंकार ले लिये । फिर बालक देवदत्त के प्राणहीन और चेष्टाहीन एवं निर्जीव शरीर को उस अन्न बग में पटक दिया । इसके बाद वह मालुपाकच्छ में घुस गया और निश्चल अर्थात् गमनागमनरहित, निस्पन्द-हाथी-पैरों को भी न हिमाता हुआ, और मौन रहकर दिन समाप्त होने की राह देखने लगा ।

**विशेषन**—बालक निगमं में ही सुन्दर और मनोमोहक होते हैं । उनका निर्विकार मोना बेहूरा मन को घनापाग ही अपनी ओर आकर्षित कर लेता है । मगर खेद है कि विवेकहीन माना-दिना उनके प्राकृतिक गौरव से मनुष्य न होकर उन्हे आभूषणों से सजाते हैं । इसमें अपनी भीमगाई प्रकट करने का अहंकार भी छिपा रहता है । जिन्नु वे नहीं जानते कि ऊपर से मादे हुए आभूषणों में गहज गौरव बिहिन होता है और माथ ही बालक के प्राण मंकट में पड़ते हैं ।

बंने-बंने मनोरथों और कितनी-कितनी मनोनियों के पदचान् जन्मे हुए बालक को आभूषणों की शरीरन प्राप्त गवाने पड़े ।

आधुनिक युग में भी मनुष्य के प्राण हरण करना सामान्य-भी बात हो गई है । आभूषणों के कारण घनेको भी प्राणों में हाथ धोना पड़ता है । फिर भी मान्य है कि लोगों का, विशेषतः महिलाओं का आभूषण-मोह छूट नहीं गया है । प्रस्तुत घटना का ध्यान में उल्लेख होता बहुत उपदेशदायक है ।

## द्वितीय अध्यायन : संघाट ]

२४—तए नं से पयए दासचेडे तथो मुहुत्तंतरस्त जेणेव देवदिग्ने दारग  
उवागच्छता देवदिग्ने दारय तंति ठाणसि अपासमाणे रोपमाणे क  
देवदिग्नेदारगस्त सख्यो समता भगवणवसेसणं करेइ । करिता देवदिग्नेस्त दारग  
खुइ वा पजोत्ति वा असममाणे जेणेव तए गिहे, जेणेव घण्णे सारयवाहे तेणेव उवागच्छता  
घण्णे सारयवाहं एवं वपासो—‘एवं खलु सामी । महा सारयवाही देवदिग्ने दारय’  
हरयंति दत्तयइ । तए नं घहं देवदिग्ने दारय कडीए गिण्हामि । गिण्हिता जावै माग  
तं न भग्जइ नं सामी । देवदिग्ने दारए केणइ जीए वा भवहिए वा भवलिसे वा । प  
सारयवाहस्त एयमट्ठं निवेदेइ ।

तत्पश्चात् वह पंचकनामक दास बेटक थोड़ी देर बाद जहाँ बालक देवदत्त प  
वहाँ पहुँचा । पहुँचने पर उसने देवदत्त बालक को उस स्थान पर न देखा । तब वह  
विलाप करता हुआ सब जगह उसकी दूँद-खोज करने लगा । मगर कहीं भी उसे  
स्वर न लगी, छीक धँगरह का शब्द न सुनाई दिया, न पता चला । तब वह जहाँ भ  
जहाँ धन्य सार्थवाह था, वहाँ पहुँचा । पहुँच कर धन्य सार्थवाह से इस प्रकार कहने ल  
भद्रा सार्थवाही ने स्नान किए हुए, बलिकर्म किये हुए, कौतुक, भगल, प्रायश्चित्त कि  
भलकारी से विभूषित बालक को मेरे हाथ में दिया था । तत्पश्चात् मैंने बालक दे  
ले लिया । लेकर (बाहर ले गया, एक जगह बिठलाया । थोड़ी देर बाद वह दिखाई न  
सब जगह उसकी दूँद-खोज की, परन्तु नहीं मालूम स्वामिन् । कि देवदत्त बालक क  
अपने घर ले गया है, चोर ने उसका अपहरण कर लिया है अथवा किसी ने ल  
इस प्रकार धन्य सार्थवाह के पैरों में पड़कर उसने यह वृत्तान्त निवेदन किया ।

२५—तए नं से घण्णे सारयवाहे पंचयदासजेइगस्त एयमट्ठं सोइवा णिसम  
पुत्ततोएणांमिमूए समाने परमुणियत्ते व चंपगपायवे वसति धरणीमलंति सख्योहिं स

धन्य सार्थवाह पंचक दास बेटक की यह बात सुनकर और हृदय में धारण  
शोक से व्याकुल होकर, कुल्हाड़ी से काटे हुए चम्पक वृक्ष की तरह पृथ्वी पर सब  
गिर पड़ा—मूर्छित हो गया ।

गवेषण

२६—तए नं से घण्णे सारयवाहे तथो मुहुत्तंतरस्त आसथे पच्छासपमाणे देव  
सख्यो समता भगवणवसेसणं करेइ । देवदिग्नेस्त दारगस्त कयइ सुइ व वा खु  
असममाणे जेणेव तए गिहे तेणेव उवागच्छता । उवागच्छता महत्तं पाहुंठं रोण्हइ  
असमणित्थं देवेणं पण्यत्तं । उवागच्छता नं भग्जं पण्यत्तं उवागच्छता नं भग्जं

नृत्यनान् धन्य सार्धवाह भोडो देव वाद पादङ्गन हृषा—होज मे घागा, उमने प्राग मानो  
 वापिस लोट, उमने देवदत्त बालक की सब धोर दू ड-गोज की, मगर वही भी देवरग बातर का वा  
 न चला, छीक आदि का शब्द भी न सुन पडा धोर न समानार मिला । तब तब घाने पर पर  
 आया । आकर बहुमूल्य भेंट ली और जहाँ नगररक्षक—नौताना गादि ने, नहीं पहुँच कर यह बहुमूल्य  
 भेंट उनके सामने रखी और इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रियो ! मेरा पुत्र धोर भद्रा भागी का प्राप्पत्र  
 देवदत्त नामक बालक हमें द्रष्ट है, यावत् [काग, प्रिय, मनोज्ञ, मनोरम, मनोहर है] गुनर के पुन के  
 समान उमका नाम श्रवण करना भी दुर्लभ है तो फिर दर्शन का तो कहना ही क्या है !

२७—तए णं ता भद्रा देवदिग्गं ज्हायं सत्त्वासंकारविमुत्तियं पंचगहस हस्ये दत्तपद्, जाव  
 पापवडिए तं भम निवेदे । तं इच्छामि णं देवानुप्रिया । देवदिप्रदारगस्त सत्त्वप्रो समंता मण्ण-  
 गवेसणं कयं (करित्तए-करेह) ।

धन्य सार्धवाह ने घागे कहा—भद्रा ने देवदत्त को स्नान करा कर और समस्त धनधारों में  
 विभूषित करके पयक के हाथ में सौंप दिया । यावत् पयक ने मेरे गँरों में गिर कर मुझमें निवेदन  
 किया । (किस प्रकार पयक बालक को बाहर ले गया, उमने एक स्थान पर बिठाकर स्वयं मेल में  
 वैभान हो गया, इत्यादि पिछला सब घृत्तान्त यहाँ दोहरा लेना चाहिए) तो हे देवानुप्रियो ! मैं  
 चाहता हूँ कि आप देवदत्त बालक की सब जगह भाग्यला गवेपणा करें ।

बिबेचन—यहाँ यह उल्लेखनीय है कि धन्य सार्धवाह नगररक्षकों के समक्ष अपने पुत्र के गुण  
 हो जाने की फरियाद लेकर जाता है तो बहुमूल्य भेंट साप ले जाता है और नगररक्षकों के सामने  
 वह भेंट रखकर फरियाद करता है । अन्यत्र भी प्रागमिक कथाओं में इसी प्रकार का उल्लेख मिलता  
 है । इससे प्रतीत होता है कि रिश्वत का रोग प्राधुनिक युग की देन नहीं है, यह प्राचीन काल में भी  
 था और सभी समयों में इसका अस्तित्व रहा है । अन्यथा ऐसे विषय में भेंट की क्या आवश्यकता  
 थी ? गुम हुए बालक को खोजना नगररक्षकों का कर्त्तव्य है । राजा अथवा शासन की ओर से  
 उनकी नियुक्ति ही इस कार्य के लिए थी ।

धन्य कोई सामान्य जन नहीं था, सार्धवाह था । सार्धवाह का समाज में उच्च एवं प्रतिष्ठित  
 स्थान होता है । जब उस जैसे प्रतिष्ठित व्यक्ति को भी भेंट (रिश्वत) देनी पड़ी तो साधारण जनो की  
 क्या स्थिति होती होगी, यह समझना कठिन नहीं ।

२८—तए णं ते नगरगोतिया घण्णेणं सत्थयाहेणं एवं युत्ता समाना सन्नद्धवद्धवम्मियकवया  
 उप्पोलिय-सरासणवट्टिया जाव (पिण्डमेविज्जा आविद्धविमसवरच्चिपट्टा) गहियाउहपहरणा घण्णेणं  
 सत्थयाहेणं सट्ठि रायगिहस्त नगरस्त बहूणि अद्दगमणाणि य जाव' पवामु य भागणगवेसणं करेमाना  
 रायगिहाधो नगराधो पडिणिक्खमंति । पडिणिक्खमिता जेणव जिण्णज्जाणे जेणव भग्गकूयए तेणव  
 उवागच्छंति । उवागच्छता देवदिग्गस्स दारगस्स सरोरमं निप्पाणं निच्छेदुं जीवविप्पज्जं पासंति ।  
 पातिता हा हा अहो अक्खममिति कट्टु देवदिग्गं दारयं भग्गकूवाधो उत्तारंति । उत्तारिता घण्णस्त  
 सत्थयाहस्त हस्ये णं दसयंति ।

## द्वितीय अध्यायन : सघाट ]

तत्पश्चात् उन नगररक्षकों ने धन्य सार्यवाह के ऐसा कहने पर कवच (वस्त्र) तो उने कसों से बाँधा और शरीर पर धारण किया। धनुष रूपी पट्टिका पर प्रत्यक्षा चढ़े भुजाओं पर पट्टा बाँधा। आयुध (शस्त्र) और प्रहरण (दूर से चलाए जाने वाले तीर) के कये। फिर धन्य सार्यवाह के साथ राजगृह नगर के बहुत-से निकलने के मार्गों यावत् छोटे की खिडकियों, छेड़ियों, किले की छोटी खिडकियों, मोरियों, रास्ते मिसने की जगहों (चौरों के झुंडों) चौरों के घरों, १२ गाटकों—सिपायों के आकार के मार्गों, तीन मार्गों (प्याउमों) आदि में तलाश करते-करते राजगृह नगर से बाहर निकले। निकल कर जहाँ जीए या और जहाँ भग्न कूप था, वहाँ आये। आकर उस कूप में निष्प्राण, निश्चेष्ट एव निर्जीव देव शरीर देखा, देख कर 'हाय, हाय' 'महो भकार्य !' इस प्रकार कह कर उन्होंने देवदत्त कुमार भग्न कूप से बाहर निकाला और धन्य सार्यवाह के हाथों में सौंप दिया।

विजय और का निग्रह

२६—तए णं ते नगरगुप्तिया विजयस्स तवकरस्स पयमयमणुगवद्धमाणा जेणेव मातुयाक णेव उवागच्छंति, उवागच्छिता मातुयाकच्छपं अणुपविसंति, अणुपविसित्ता विजयं तवकर स होइं सगेवेज्जं जीवमाहं गिहंति। गिह्तिता अट्टि-मुट्टि-जाण-कोप्पर-पहारसंगममहियगत्तं करेति रित्ता अवाउडबंधणं करेति। करित्ता देवदिग्गस्स शरयस्स आभरणं गेहंति। गेह्तिता विजय करस्स गोवाए बंधंति, बंधित्ता मातुयाकच्छयाओ पडिनिक्खमंति। पडिनिक्खमित्ता जेणेव रायि रे तेणेव उवागच्छंति। उवागच्छिता रायिहिं नगरं अणुपविसंति। अणुपविसित्ता रायिहिं न पाडग-तिय-चउक्क-चउक्कर-महापह-पहेसु कसप्पहारे य जयप्पहारे य छिवापहारे य निवाएमा राएमाणा छारं च धुलि च कयवरं च उवरि पविकरमाणा पविकरमाणा महया महया सहे तेतेमाणा एवं वदंति :—

तत्पश्चात् वे नगररक्षक विजय और के पैरों के निशानों का अनुसरण करते हुए मातुका-से पहुँचे। उसके भीतर प्रविष्ट हुए। प्रविष्ट होकर विजय और को पचों की साक्षीपूर्वक, चौरों के साथ, गंदन में बाँधा और जीवित पकड़ लिया। फिर अस्थि (हड्डी की लकड़ी) मुष्टि, और कोहनियों पर प्रहार करके उसके शरीर को भग्न और मथित कर दिया—ऐसी मार कि उसका सारा शरीर ढीला पड़ गया। उसकी गंदन और दोनों हाथ पीठ की तरफ बाँध दिए। फिर वालक देवदत्त के आभरण कब्जे में किये। तत्पश्चात् विजय और को गंदन से बाँधा और कच्छ से बाहर निकले। निकल कर जहाँ राजगृह नगर था, वहाँ आये। वहाँ आकर राजगृह प्रविष्ट हुए और नगर के त्रिक, चतुष्क, चत्वर एव महापथ आदि मार्गों में कोडों के प्रहार, आवाज से घोषित करते हुए इस प्रकार कहने लगे—

३०—'एस णं देवाणुप्पिया ! विजए नामं तवकरे जाव' गिद्धे विजय आगिया



यातमारए, तं नो खलु देवानुप्रिया ! एयस्स केइ राया वा रायपुत्ते वा रायमज्जे वा प्रवरस्स ।  
एय्यट्ठे अप्पणो सयाइं कम्माइं अवरोज्झंति' त्ति कट्ठु जेणामेव चारगसात्ता तेणामेव उवागच्छति ।  
उवागच्छत्ता हडिबंधणं करेन्ति, करिस्सा भत्तपाणनिरोहं करेत्ति, करिस्सा तिसम्भं कसप्पहारे य ज्ञा'   
निवाएमाणा निवाएमाणा विहरंति ।

'हे देवानुप्रियो ! (लोगो ! ) यह विजय नामक चोर है । यह गौघ के समान मानभङ्ग, बालघातक है, बालक का हत्यारा है । हे देवानुप्रियो ! कोई राजा, राजपुत्र भयवा राजा का अप्पण इसके लिए अपराधी नहीं है—कोई निष्कारण ही इसे दंड नहीं दे रहा है । इस विषय में इसके पक्ष किये कुकर्म ही अपराधी है ।' इस प्रकार कह कर जहाँ चारकशास्त्रा (कारागार) थी, वहाँ पहुँचे, वहाँ पहुँच कर उसे बेड़ियों से जकड़ दिया । भोजन-पानी बंद कर दिया । तीनों संघाकालों में—प्रातः, मध्याह्न और सूर्यास्त के समय, चाबुको, छड़ियों और कंवा आदि के प्रहार करने लगे ।

### देवदत्त का अन्तिम संस्कार

३१—तए णं ते घण्णे सत्थवाहे भित्त-नाइ-नियग-सयण-संघंघि-परियणेणं सद्धि रोयमाणं कंढमाणे जाय (विलयमाणे) देशदिग्भरस्स दारगस्स सरीरस्स महमा इड्ढोसवकारसमुदएणं नीहायं करेत्ति । करिस्सा बहूइं सोइयाइं मयगकिच्चाइं करेत्ति, करिस्सा केणइ कालंतरेणं अवगयसीए वाय पायि होरथा ।

तत्पश्चात् धन्य सार्धवाह ने मित्र, जाति, निजक, स्वजन, सबंधी और परिवार के साथ रोते-रोते, प्राक्दन करते-करते, यावत् विलाप करते-करते बालक देवदत्त के शरीर का महान् श्रद्धा गरुडार के समूह के साथ नीहरण किया, अर्थात् अग्नि-संस्कार के लिए श्मशान में ले गया । अनेक लौकिक मृतककृत्य—मृतक गवध्री अनेक लोकाचार किये । तत्पश्चात् कुछ समय व्यतीत हो जाने पर वह उन लोक में रहित हो गया ।

### धन्य सार्धवाह का निष्ठ

३२—तए णं ते घण्णे सत्थवाहे धम्मया कयाइ सहससंति रायावराहंति संपलत्ते जाए यायि होरथा । तए णं ते नगरगुत्तिया घण्णं सत्थवाहं गेण्हेत्ति, गेण्हेत्ता जेणेव चारणे तेणेव उवागच्छत्ति । उवागच्छत्ता चारणं अणुपवेसंति, अणुपवेसित्ता विजएणं तत्तकरेणं सद्धि एगयघो हडिबंधणं करेत्ति ।

तत्पश्चात् विभी समय धन्य सार्धवाह को चुगमगोरो ने छोटा-सा राजकीय घरराय बना दिया । तब नगरराजको ने धन्य सार्धवाह को गिरफ्तार कर लिया । गिरफ्तार करके कारागार में ले गये । से जाकर कारागार में प्रवेश किया और प्रवेश करके विजय चोर के साथ एक ही बेड़ी में बांध दिया ।

धन्य के घर में भोजन

३३—तए णं ता भइ। भारिया कस्तं आव<sup>१</sup> जसंते विपुलं घसण-पाण-त्ताइम-साइमं उववत्तइइ, उववत्तइत्ता भोयणविइयं करेइ, करिस्ता भायणाइं पस्सिबइ, पस्सिबित्ता संदिपमुद्धिं करेइ। करिस्ता एणं च गुरमिबारिपडिपुण्णं इगवारयं करेइ। करिस्ता संघयं दासवेइं सदावेइ, सदावित्ता एवं वयात्तो—‘गवत्तं णं तुमं देवानुप्पिया। इमं विपुलं घसण-पाण-त्ताइम-साइमं गहाय चारगसात्ताए धम्मस सयवाहस उववेहि।’

भद्रा भायां ने घग्ने दिन थावन् मूर्ख के जाज्वल्यमान होने पर विपुल घसन, पान, स्वादिम और स्वादिम भोजन तैयार किया। भोजन तैयार करने भोजन रखने का पिटक (बास की छावड़ी) ठोकटाक किया और उसमें भोजन के पात्र रख दिये। फिर उस पिटक को साधित और मुद्रित कर दिया, भर्मान् उस पर रेखा आदि के चिह्न बना दिए और मोहर लगा दी। मुगधित जल से परिपूर्ण छोटा-मा पड़ा तैयार किया। फिर पथक दामचेटक को आवाज दी और कहा—हे देवानुप्रिय ! तू जा। यह विपुल घसन, पान, स्वादिम और स्वादिम लेकर कारागार में धन्य सार्यवाह के पास नि जा।

३४—तए णं से पंघए भदाए सयवाहीए एवं वुत्ते समाने हट्टुट्टे तं भोयणविइयं तं च गुरमि-बरवारिपडिपुण्णं इगवारयं वेण्हइ। वेण्हित्ता सयाओ गिहाओ पडिनिबलमइ। पडिनिबलमित्ता रायगिहे नगरे मग्गमग्गजेण जेणेव चारगसात्ता, जेणेव घग्ने सयवाहे तेणेव उवागवत्तइ। उवागविइत्ता भोयणविइयं ठावेइ, ठावेत्ता उत्संछइ, उत्संछित्ता भायणाइं वेण्हइ। वेण्हित्ता भायणाइं पोवेइ, पोवित्ता ह्रयत्तोयं दलवइ, दलवित्ता घण्णं सयवाहं तेणं विपुत्तेणं घसण-पाण-त्ताइम-साइमेणं परिवेसेइ।

तत्पश्चात् पथक ने भद्रा सार्यवाही के इस प्रकार कहने पर हृष्ट-नुष्ट होकर उस भोजन-पिटक को और उत्तम मुगधित जल में परिपूर्ण घट की ग्रहण किया। ग्रहण करके अपने घर से निवृत्ता। निवृत्त कर राजगृह के मध्य मार्ग में होकर जहाँ कारागार था और जहाँ धन्य सार्यवाह था, वहाँ पहुँचा। पहुँच कर भोजन का पिटक रख दिया। उसे साधित और मुद्रा से रहित किया, भर्मान् उस पर बना हुआ चिह्न हटाया और मोहर हटा दी। फिर भोजन के पात्र लिए, उन्हें छोटा और फिर हाथ घोंने का पानी दिया। तत्पश्चात् धन्य सार्यवाह को वह विपुल घसन, पान, स्वादिम और स्वादिम भोजन परोसा।

भोजन में से विभाग

३५—तए णं से विजए तवकरे घण्णं सयवाहं एवं वयात्तो—‘तुमं णं देवानुप्पिया। मम एवाओ विपुत्ताओ घसण-पाण-त्ताइम-साइमाओ संविजानं करेहि।’

तए णं । घण्णे सयवाहे विजयं तवकरं एवं वयात्तो—‘प्रविद्याइं भइ विजया। एयं विपुलं घसण-पाण-त्ताइम-साइमं कायाणं वा सुणगाणं वा दलएव्वा, उवहुइडियाए वा णं छट्ठेज्जा, नो सेव णं

तव पुत्तघातगस्स पुत्तमारभस्स अरिस्स वेरियस्स पडिणीयस्स पञ्चामितस्स एतो विपुत्तामो प्रव-  
पाण-खादम-साइमाओ संविभागं करेज्झामि ।'

उम समय विजय चोर ने धन्य सार्यवाह से इस प्रकार कहा—'देवानुप्रिय ! तुम मुझे इन विपुल भक्षण, पान, खादिम और स्वादिम भोजन में से संविभाग करो—हिस्सा दो ।'

तब धन्य सार्यवाह ने उत्तर में विजय चोर से इस प्रकार कहा—हे विजय ! भले ही मैं यह विपुल भक्षण, पान, खादिम और स्वादिम काकों और कुत्तों को दे दूंगा अथवा उकरडे में फेंक दूंगा परन्तु तुम्हें पुत्रघातक, पुत्रहन्ता, दास, वैरी (सानुबन्ध बँद वाले), प्रतिकूल आचरण करने वाले एवं प्रत्येक मित्र—प्रत्येक यात्री में विरोधी को इस भक्षण, पान, खाद्य और स्वाद्य में से संविभाग नहीं कहूँगा ।

३६—तए णं धण्णे सत्थवाहे तं विउलं असण-पाण-खाइम-साइमं आहारैइ । आहारित्ता तं पंथयं पडिविसज्जेइ । तए णं से पंथए दासचेहे तं भोगणपिडगं गिण्हइ, गिण्हित्ता जामेव विसि पाउममुर तामेव विसि पडिगए ।

इसके बाद धन्य सार्यवाह ने उस विपुल भक्षण, पान, खाद्य और स्वाद्य का आहार किया । आहार करके पथक को लौटा दिया-रवाना कर दिया । पंथक दास चेटक ने भोजन का वह पिटक लिया और लेकर जिस और से माया था, उसी और लौट गया ।

३७—तए ण तस्स धण्णस्स सत्थवाहस्स तं विपुलं असण-पाण-खाइम-साइमं आहारिदमं समानस्स उच्चार-पासवणे ण उव्वाहित्था ।

तए णं से धण्णे सत्थवाहे विजयं तवकरं एवं वयासी-एहि ताथ विजया । एगंतमदहकमामो, जेए अहं उच्चारपासवणं परिट्ठवेमि ।

तए णं से विजए तवकरे धण्णे सत्थवाहं एवं वयासी-सुख देवानुत्पिया । विपुलं असण-पाण-खाइम-साइमं आहारियस्स अरिय उच्चारै वा पासवणे वा, मम णं देवानुत्पिया । इमेहि बहूहि कत्तपहारैहि य जाथ मयापहारैहि य तण्हाए य छुहाए य परवमवमाणस्स गरिय केइ उच्चारै वा पासवणे वा, तं एवेणं तुमं देवानुत्पिया । एगंते अवक्कमिता उच्चारपासवणं परिट्ठवेमि ।

विपुल भक्षण, पान, खादिम और स्वादिम भोजन करने के कारण धन्य सार्यवाह की मन-भूत की बाधा उत्पन्न हुई ।

तब धन्य सार्यवाह ने विजय चोर से कहा—विजय ! चलो, एकान्त में चलो, जिनमें मैं मन-भूत का त्याग कर सकूँ ।

तब विजय चोर ने धन्य सार्यवाह से कहा—देवानुप्रिय ! तुमने विपुल भक्षण, पान, खादिम और स्वादिम का आहार किया है, अतएव तुम्हें मल और मूत्र की बाधा उत्पन्न हुई है । देवानुप्रिय ! मैं भी इन बहूत आशुकों के प्रहारों से यावन् मना के प्रहारों से तथा प्यास और भूत से पीड़ित हो रहा हूँ । मुझे मन-भूत की बाधा नहीं है । देवानुप्रिय ! जाने की इच्छा हो तो तुम्हीं एकान्त में जाकर मन-भूत का त्याग करो । ( मैं तुम्हारे साथ नहीं चलाऊँगा ) ।

३८. तए णं घण्णे सत्थवाहे विजएणं तक्करेणं एवं वुत्ते समाने तुत्तिणीए संघिट्ठइ । तए णं से घण्णे सत्थवाहे मुहुत्तंतरस्स भत्तिवत्तरागं उच्चारपासवणेणं उक्खाहिज्झमाणे विजयं तक्करं एवं वयासी-एहि ताव विजया । जाव धवक्कमाप्पामी ।

तए णं से विजए घण्णे सत्थवाहं एवं वयासी—'जइ णं तुमं देवानुप्पिया । तप्पो विपुलाम्पो घसण-पाण-त्ताइम-साइमाम्पो संबिमायं करेहि, ततो हं तुम्हेहि सद्धि एणंत्तं धवक्कमाप्पामि ।'

धन्य सार्यवाह विजय चोर के इस प्रकार कहने पर मोन रह गया । इसके बाद, थोड़ी देर में धन्य सार्यवाह उच्चार-प्रत्यवण की भृति तीव्र बाधा से पीड़ित होता हुआ विजय चोर से फिर कहने लगा—'विजय, चलो, यावत् एकान्त में चले ।

तब विजय चोर ने धन्य सार्यवाह से कहा—'देवानुप्रिय ! यदि तुम उस विपुल घनन, पान, खादिम और स्वादिम में से सबिभाग करो भयात् भुभे हिस्सा देना स्वीकार करो तो मैं तुम्हारे साथ एकान्त में चलूँ ।

३९. तए णं से घण्णे सत्थवाहे विजयं एवं वयासी—'एहं णं तुम्हं तप्पो विटलाम्पो घसण-पाण-त्ताइम-साइमाम्पो संबिमायं करिस्सामि ।'

तए णं से विजए घण्णस्स सत्थवाहस्व एयमट्ठं पडिमुणेइ । तए णं से विजए घण्णेणं सद्धि एणंत्ते धवक्कमेइ, उच्चारपासवणं परिट्ठवेइ, भायंते ओक्खे परममुइभूए तमेव ठाणं उवसंक्कमित्ता णं बिहरइ ।

तत्पश्चात् धन्य सार्यवाह ने विजय से कहा—'मैं तुम्हें उस विपुल घनन, पान खादिम और स्वादिम में से सबिभाग कलंगा—हिस्सा दूंगा ।

तत्पश्चात् विजय ने धन्य सार्यवाह के इस प्रर्थ को स्वीकार किया । फिर विजय, धन्य सार्यवाह के साथ एकान्त में गया । धन्य सार्यवाह ने मल-मूत्र का परित्याग किया । फिर जल से स्वच्छ और परम शुचि हुआ । लौट कर अपने उगी स्थान पर आ गया ।

४०. तए णं सा भद्दा कल्लं जाव<sup>१</sup> जलंते विटलं घसण-पाण-त्ताइम-साइमं जाव<sup>२</sup> परिबेसेइ । तए णं णं घण्णे सत्थवाहे विजयस्स तक्करस्स तप्पो विटलाम्पो घसण-पाण-त्ताइम-साइमाम्पो संबिमायं करेइ । तए णं से घण्णे सत्थवाहे पंययं दासवेइ विस्सजेइ ।

तत्पश्चात् भद्दा सार्यवाही ने दूसरे दिन मूर्ख के देदीप्यमान होने पर विपुल घनन, पान, खादिम और स्वादिम तैयार करके (पहले की तरह) पथक के साथ भेजा । यावत् पथक ने धन्य की जिमाया । तब धन्य सार्यवाह ने विजय चोर को उस विपुल, घनन, पान, खादिम और स्वादिम में से भाग दिया । तत्पश्चात् धन्य सार्यवाह ने पथक दास चेतक को रवाना कर दिया ।

भद्दा का कोप

४१. तए णं से पंपए मीयणविट्ठयं गहाय चारयाप्पो पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता रायगिहं नगरं मज्झंमज्जेणं जेणेव सए मेहे, जेणेव भद्दा मारिया, तेणेव उवागच्छइ । उवागच्छित्ता भद्दा

वाहि एवं वयातो—'एवं' मनु देवानुसिण । मन्ने मन्थवाहे तत्र पुनश्चागमस्य जाय'  
ममिस्सस्त तासो विउत्तासो अमम-पान-माइम-माइमासो मंविमामं वरेइ ।

तए णं सा भट्ठा सत्थवाहो पंचयसस्य दामनेइयसस्य संधिं सत्थमरुत्तं मोवसा धामुरत्ता रूढा जाय  
विद्या] मिसिमिसेमाणा घण्हसस मत्थवाहसस्य पच्चोगमापज्जइ ।

पथक भोजन-पिटक लेकर वाराणसी में बाहर निकला । निकलकर राजगृह नगर के  
दोबीच होकर जहाँ अपना घर था घीर जहाँ भट्टा भार्गवी भी नहीं पहुँचा । वहाँ पहुँच कर उमने  
साधवाही में कहा—देवानुसिने ! धन्य साधवाह ने तुम्हारे पुत्र के पापक मायन [पुत्रहन्ता, मनु,  
(सानुबन्ध धरं वाने), प्रतिरुस आचरण करने वाले] दुश्मन को उग विपुल घनन, पान, मांस  
र स्वादिम में से हिस्सा दिया है ।

तब भट्टा साधवाही दाम-चेटक पथक के मुग में मड़ अर्धं गुनकर सतरांग मान हो गई रष्ट  
[कुपित हुई] यावन मिमिमामाणी हुई धन्य साधवाह पर प्रद्वेष करने लगी ।

य का छुटकारा

४२—तए णं घण्णे सत्थवाहे अममया कयाइं मिसि-माइ-विद्यम-सयण-संघि-परिजणेणं सएण  
सत्थसारेणं रायकज्जासो अममणं मोयावेइ । मोयाविता चारमतालासो पडिनिषममइ । पडि-  
ममिस्सता जेणेव अलंकारियसमा तेणेव उवागच्छइ । उवागच्छिता अलंकारियकम्मं करेइ । करिस्सा  
जेणेव पुबलरिणी तेणेव उवागच्छइ । उवागच्छिता अहधोयमट्ठियं नेहइ । नेहिस्सा पोवत्तरणि  
मोगाहेइ । मोगाहिता जलमज्जणं करेइ । करिस्सा गहाए कयवसिकम्मे जाव (कयकोउयमंगल-  
यविच्छत्ते सव्वालंकारविमूसिए) रायगिहं भगरं अणुपविसइ । अणुपविसिता रायगिहसस्य मगरसस्य  
उममज्जणेणं जेणेव सए गिहे तेणेव पहारेइय ममणाए ।

तत्पश्चात् धन्य साधवाह को किसी समय मित्र, जाति, निजक, स्वजन, सम्बन्धी घीर  
रिवार के लोगों ने अपने (धन्य साधवाह के) सारभूत अर्थ से—जुमाना चुका करके राजदंड से मुक्त  
कराया । मुक्त होकर वह कारागार से बाहर निकला । निकल कर जहाँ आलंकारिक सभा (हजामन  
नवाना, नाचून पटयाना आदि शरीर-शृंगार करने की नाई की दुकान) थी, वहाँ पहुँचा । पहुँच  
कर आलंकारिक—कर्म किया । फिर जहाँ पुष्करिणी थी, वहाँ गया । जाकर नीचे की धोने की मिट्टी  
और घीर पुष्करिणी में प्रवगाहन किया, जल से मज्जन किया, स्नान किया, धत्तिकर्म किया, यावत्  
[कीतुक, मंगल प्रायश्चित्त किया] फिर राजगृह में प्रवेश किया । राजगृह नगर के मध्य में होकर जहाँ  
अपना घर था, वहाँ जाने के लिए रवाना हुआ ।

धन्य का सत्कार

४३—तए णं घण्णं सत्थवाहं एज्जमणं पासित्ता रायगिहे नगरे बह्वे निघम-तेट्ठि-सत्थवाहं  
पमइसो आठनि, परिजानंति, सव्कारेति, सम्मार्णेति, अमभुट्ठेति, शरीरकुसलं पुच्छंति ।

तए नं से धण्णे जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ । उवागच्छिता जावि य से तस्य बाहिरिया परिसा भवइ, तंजहा—दासाइ वा, पेसाइ वा, मियपाइ वा, भाइस्तगाइ वा, से वि य नं धण्णं सत्थवाहं एज्जंतं पासइ, पासित्ता पायवडिधाए सेमकुसलं पुच्छति ।

तत्पश्चात् धन्य सार्धवाह को आता देखकर राजगृह नगर के बहुत-से आत्मीय जनो, श्रेष्ठी-जनो तथा सार्धवाह आदि ने उसका आदर किया, सम्मान से बुलाया, वस्त्र आदि से सत्कार किया, नमस्कार आदि करके सम्मान किया, खड़े होकर भान किया और सरोर की कुशल पुछी ।

तत्पश्चात् धन्य सार्धवाह अपने घर पहुँचा । वहाँ जो बाहर की सभा थी, जैसे—दास (दासीपुत्र), प्रंध्य (काम-काज के लिए बाहर भेजे जाने वाले नीकर), भूतक (जिनका बाल्यावस्था से पालन-पोषण किया हो) और ध्यापार के हिस्सेदार, उन्होंने भी धन्य सार्धवाह को आता देखा । देख कर पेरं। ये गिर कर क्षेम, कुशल की पुछा की ।

४४—जावि य से तस्य अम्भंतरिया परिसा भवइ, तंजहा—मायाइ वा, पियाइ वा, मायाइ वा, मणिणीइ वा, सावि य नं धण्णं सत्थवाहं एज्जमानं पासइ, पासित्ता आसणाओ अम्भुद्धेइ । अम्भुद्धेता कंठाकंठियं अवयासिय बाहस्पमोवत्तनं करेइ ।

वहाँ जो आन्तरिक सभा थी, जैसे कि माता, पिता, भाई बहिन आदि, उन्होंने भी धन्य सार्धवाह को आता देखा । देखकर वे आसन से उठ खड़े हुए, उठकर गले से गला मिलाकर उन्होंने हर्ष के आँसू बहाये ।

भद्रा के कोप का उपशमन

४५—तए नं से धण्णे सत्थवाहे जेणेव म्हा भारिया तेणेव उवागच्छइ । तए नं सा म्हा सत्थवाही धण्णं सत्थवाहं एज्जमानं पासइ, पासित्ता जो आहाइ, नो परियाणाइ, अणाडायमाणी अपरिजानमाणी तुत्तिणीया परम्मुही सचिट्ठइ ।

तए नं ॥ धण्णे सत्थवाहे म्हुं भारियं एवं वयासी—किं नं तुवमं देवानुप्पिए, न तुट्ठी वा, न हरिसे वा, नाणं दे वा ? जं मए सएणं अत्थसारेण रायकज्जाओ अप्पाणं विमोइए ।

तत्पश्चात् धन्य सार्धवाह भद्रा भार्या के पास गया । भद्रा सार्धवाही ने धन्य सार्धवाह को अपनी ओर आता देखा । देखकर न उसने आदर किया, न मानो जाना । न आदर करती हुई और न जानती हुई वह मीन रह कर धीर पीठ फेर कर (विमुख होकर) बैठी रही ।

तब धन्य सार्धवाह ने अपनी पत्नी भद्रा से इस प्रकार कहा—देवानुप्रिये ! मेरे घाने से तुम्हें सन्तोष क्यों नहीं है ? हर्ष क्यों नहीं है ? आनन्द क्यों नहीं है ? मैंने अपने सारभूत अर्थ से राजकार्य (राजदण्ड) से अपने भापको छुड़ाया है ।

४६—तए नं म्हा धण्णं सत्थवाहं एवं वयासी—‘कहं नं देवानुप्पिमा ! मम तुट्ठी वा जाव (हरिसे वा) घाणं दे वा मविस्सइ, जेणं तुवमं अम पुत्तयापवत्स जाव पच्चामित्तस तमो विपुत्ताओ अत्तण-पाण-साइम-साइमाओ संविमाणं करेसि ?

तब भद्रा ने धन्य सार्धवाह से इस प्रकार कहा—देवानुप्रिये ! मुझे क्यों मन्तोष, हर्ष और नन्द होगा, जब कि तुमने मेरे पुत्र के घातक यावत् बैरी तथा प्रत्यभिन्न (विजय चोर) को उन मूल भ्रान्त, पान, खादिम और स्वादिम भोजन मे मे विभाग किया—हिंसा दिया ।

४७—तए ण से महुं एयं वयासी—‘नो खलु देवानुप्पिए ! धम्मो त्ति वा, तथो त्ति वा, अपडिकयाइ वा, लोणजत्ता इ वा, नायए ति वा, घाडियए ति वा, सहाए ति वा, सुहि ति वा, सो विपुलाओ धसनपाणलाइमसाइमाओ संविभागे कए, नन्नरथ सरीरचिन्ताए ।

तए ण सा भद्रा धण्णेण सत्थवाहेणं एवं युत्ता समाणो हट्ठतुट्ठा—जाय [चित्तमाणं विद्या जाय रितवसविस्सपमाणहियया] आसणाओ मग्गुत्तेइ, कंठाकंठि अवपासेइ, खेमकुसलं पुरयइ, पुब्बिद्धता आया जाय पावच्चित्ता विपुलाइं भोगभोगाइं भुजमाणी विहरइ ।

तब धन्य सार्धवाह ने भद्रा से कहा—‘देवानुप्रिये ! धर्म समझ कर, तप समझ कर, क्रिये प्रकार का बदला समझ कर, लोकयात्रा-लोक दिलावा समझ कर, न्याय समझ कर या उने अपनायक समझ कर, सहचर समझ कर, सहायक समझ कर भयवा सुहृद (मित्र) समझ कर मैंने उन वपुन, भ्रान्त, पान, खादिम और स्वादिम में से सविभाग नहीं किया है । सिवाय शरीर चिन्ता मल-मूत्र की बाधा) के और किसी प्रयोजन से सविभाग नहीं किया ।’

धन्य सार्धवाह के इस स्पष्टीकरण से भद्रा हट्ट-तुट्ट हुई, [आनन्दितचित्त हुई, हर्ष से उमका हृदय विकसित हो गया] वह भ्रासन से उठी, उसने धन्य सार्धवाह को कठ से लगाया और उतावा कुणाल-क्षेम पूछा । फिर रनान किया, वह यावत् प्रायश्चित्त (तिलक आदि) किया और पाँचों इन्द्रियों के विपुल भोग भोगती हुई रहने लगी ।

विजय चोर की भ्रम गति

४८—तए णं से विजए तवकरे चारगसालाए तेहि बंधेहि वहेहि कसएहारेहि य जाव<sup>१</sup> तवहाए य सुहाए य परउभयमाणे कालमासे कालं किचवा नरएसु नेरइयत्ताए उवयाने । से णं तरथ मेरइए जाए काले कालोमासे जाव (गंभीरलोभहरिसे भीमे उत्तासणए परमकण्ठे लण्णेणं । से णं तरथ निच्चं भीए, निच्चं ताये, निच्चं तसिए निच्चं परममुहसंयत्तं मरगगति-) वेयणं पणवणमवमाणे विहरइ ।

मे णं तथो उवट्ठित्ता धणादीयं धनववगं बीहमयं आउरंत-संसारकंतारं अणुपरियट्ठितइ । तत्पश्चात् विजय चोर कारागार में बन्ध, बध, चाबुको के प्रहार (सत्ता प्रहार कंथा प्रहार) यावत् प्याग घोर भूय में पीड़ित होता हुआ, मृत्यु के अवसर पर काम करके नारक रूप में नरक में उत्पन्न हुआ । नरक में उत्पन्न हुआ वह काला घोर प्रतिपाद्य काला दीप्तता था, [गंभीर, लोभपूर्ण, भदावट्ट भागजनक एवं वर्ण में कामा था । वह नरक में मदैव भयभीत, सदैव त्रस्त और मदैव पदराया हुआ रहता था । मदैव धन्यन्त धनुम [नरक मन्वन्धी] वेदना का अनुभव कर रहा था ।

वह नरक में निश्चय कर घनादि घनन्त दीर्घ मार्ग या दीर्घकाल वाले अनुगति रूप समार-  
कार में पतन करेगा ।

४६—एवामेव अंशु ! जे नं अहं निगंभी वा निगंभी वा आयरिय-उवगभायाणं प्रतिए  
मुं दे मवित्ता आगाराओ धणगारियं पश्चइए समाणे विपुलमणि-मुत्तिय-धण-कण-रपण-सारे ॥  
तुम्ह से बि य एवं चेव ।

श्री गुहर्मा स्वामी धव तक के कयानक का उपमंहार करते हुए अम्बू स्वामी से कहते हैं—हे  
अम्बू ! इसी प्रकार हमारा जो साधु या साध्वी, आचार्य या उपाध्याय के पाग मुण्डित होकर,  
गृहत्याग कर, साधुत्व की दोषा अगोकार करके विपुल मणि भौतिक धन, कनक और मारमूत रत्नों  
में लुब्ध होना है, वह भी ऐसा हो होना है—उसकी दशा भी विजय चोर जैसी होती है ।

स्थविर-आगमन

५०. तेणं कालेणं तेणं समएणं धम्मघोसा नामं येरा भगवंतो जाइसंपन्ना कुलसंपन्ना  
जाइ पुत्थावुत्तुवि चरमाणा जाव गामानुगायं ब्रह्मजमाणा मुहंमुहेणं विहरमाणा जेणं रामगिहे नगरे  
जेणं गुणगित्ते चइए जाव [तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छिता] धरापडिहव उगहं उगिगिहसा  
मज्जेणं तवमा धम्पणं भावेमाणा बिहरति । परित्ता निगमा, धम्मो कहिओ ।

उम काल और उस समय में धर्मघोष नामक स्थविर भगवन्त जाति (मातृपक्ष) में सम्पन्न  
कुल (पितृपक्ष) में सम्पन्न, याचन [बल, रूप, विनय, ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य एवं नाथत्व (द्रव्य और भाव  
में सयुता) में सम्पन्न, भोजस्वी, तेजस्वी, वचस्वी, यशस्वी, श्रेष्ठ मान माया लोभ के विजेता, निद्रा  
और परीपहो की जीत लेने वाले, जीवन की कामना और मरण के भय से ऊपर उठे हुए तपस्वी,  
गुणवान्, चरण-कारण तथा यतिधर्मों का सम्पूर्ण रूप से पालन करने वाले, उदार, उपव्रती, उप-  
तपस्वी, उग्र ब्रह्मचारी, शरीर के प्रति धनामक्त, विपुल तेजोवेदया की शिक्षण कर अपने अन्दर ही  
समाये हुए, चतुर्दश पूर्वों के ज्ञाता, चार जानों के धनी, पाँच भी धनधारों के साथ] अनुग्रह से जन्मते हुए,  
[आमानुषास विचरते हुए और मुगपूर्वक विहार करते हुए] जहाँ राजगृह नगर या और जहाँ  
गुणशील वैश्य था, [वहाँ भाँडे, आकर] यथायोग्य उपाध्यय की याचना करके समय और तप में  
अपनी आत्मा की भावित करते हुए विचरने लगे—रहे । उनका आगमन जानकर परिपद निकली ।  
धर्मघोष स्थविर ने धर्मदेवता दी ।

धम्म की वरुपासना

५१. तए णं तस्स धणस्स सत्थवाहस्स बहुजणस्स प्रतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म इमेपाहवे  
अग्गहियए जाव [विन्तिए परियए मणोगए संकप्पे] समुप्पज्जिअया—“एवं खलु भगवंतो जाइसंपन्ना  
इहमागया, इहं संपत्ता, तं गच्छामि णं येरे भगवंते वंदामि नयंसामि ।”

एवं संपेहि, संपेहिता गृहाए जाव [कयवत्तिकम्मे कयकोउयमंगलपायच्छित्ते] पुट्ठपावेसाइं  
मंगलसाइं यथाइ पवरपरिहिण पायविहार-चारेणं जेणं गुणगित्ते चइए, जेणं येरा भगवतो  
तेणं उवागच्छइ । उवागच्छिता वरइ, नमंसइ । तए णं येरा धणस्स विवित्तं धम्ममाइवत्ति ।



तत्पश्चात् धन्य सार्ववाह को बट्टा में लोगो ने गत धर्म (गुणान्) गुणान् और समझ कर ऐसा मध्यवसाय, अभिलाष, चिन्तन एवं मानसिक संतान्य उत्पन्न हुआ—'उत्तम जति ने मध्व स्वविर भगवान् यही ध्याये हैं, यही प्राप्य हुए हैं—या पढ़ने हैं। तो मैं जाऊँ, स्वविर भगवान् को वन्दन करूँ, नमस्कार करूँ।'।

इस प्रकार विचार करके धन्य ने स्नान किया, [वस्त्रधर्म किया, कौमुद मंगन प्राप्त किया] यावत् शुद्ध—माफ तथा मभा में प्रवेश करने योग्य उत्तम मानसिक धर्म कारण सिधे। फिर पैदल चल कर जहाँ गुणमील पतय या और जहाँ स्वविर भगवान् थे, यही पहुँचा। पढ़ने कर उन्हें वन्दना की, नमस्कार किया। तत्पश्चात् स्वविर भगवान् ने धन्य सार्ववाह को विनिर्धर्म का उपदेश दिया, धर्मात् ऐसे धर्म का उपदेश दिया जो जिनजामन के गिनाय धन्य गुणभ गयी है।

धन्य की प्रवचना और स्वर्णप्राप्ति

५२. त ए णं से घण्णे सत्यवाहे धम्मं शोचसा एवं वयासी—सहहामि णं भंते ! निर्गंघ पावयणं । [पत्तियामि णं भंते ! निर्गंघं पावयणं । रोएमि णं भंते ! निर्गंघं पावयणं । अशुद्धेमि णं भंते ! निर्गंघं पावयणं । एवमेयं भंते ! सहमेयं भंते ! अविशहमेयं भंते । इच्छिममेयं भंते ! पडिच्छिममेयं भंते ! इच्छिय-पडिच्छिममेयं भंते ! से जहेयं तुभे वयहसि कट्टु येरे मगवंते वंदइ नममा, वंदिता नमंतिता] जाय पयइए । जाय बट्टणि वासाणि सामण-परियाणं पाउणिता, भत्त पच्चवत्ताइत्ता मासियाए सत्तेहणाए सट्ठि भत्ताइं अणत्तणाए छेवेइ, छेविता कालमासे कालं किवा सोहम्मे कल्पे वेवत्ताए उवयमं ।

तस्य णं ग्रथेगइयाणं वेवाणं वत्तारि पत्तिमोवमाइं ठिई पन्नत्ता । तस्य णं घण्णस्त देवत्त वत्तारि पत्तिमोवमाइं ठिई पन्नत्ता ।

से ण घण्णे वेये ताम्भी वेवलोयामो आउवलएण ठिइवत्ताएणं भववलएणं अणंतं वयं वइता महाविदेहे वासे तिग्गिह्मिह जायं सव्वदुक्खानमंतं करिहिइ ।

तत्पश्चात् धन्य सार्ववाह ने धर्मोपदेश गुनकर इस प्रकार कहा—'है भगवन् ! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा करता हूँ

[भगवन् ! मैं निर्ग्रन्थप्रवचन पर प्रतीति करता हूँ ।

भगवन् ! मैं निर्ग्रन्थप्रवचन पर रुचि करता हूँ ।

भगवन् ! मैं निर्ग्रन्थप्रवचन का अनुसरण करने के लिए उद्यत होता हूँ ।

भगवन् ! निर्ग्रन्थ प्रवचन ऐसा ही है, भगवन् ! यह सत्य है, भगवन् ! यह अतथ्य नहीं है । भगवन् ! यह मुझे इष्ट है, भगवन् ! यह मुझे पुनः पुनः इष्ट है, यह मुझे इष्ट और पुनः पुनः इष्ट है । भगवन् ! निर्ग्रन्थप्रवचन ऐसा ही है जैसा आप कहते हैं ।' इस प्रकार कह कर धन्य सार्ववाह ने स्वविर भगवन्तों को वन्दन-नमस्कार किया । वन्दन-नमस्कार करके] यावत् वह प्रव्रजित हो गया । यावत् बट्टन वषों तक आगम्य-पर्याय पाल कर, आहार का प्रत्याख्यान करके एक मास की सत्तेमना

करके, अनशन से साठ भक्तों को त्याग कर, कालमाम में काल करके सौधर्म देवलांक में देव के रूप में उत्पन्न हुआ ।

सौधर्म देवलोक में किन्हीं-किन्हीं देवों की चार पत्नियों की स्थिति कही है । धन्यनामक देव की भी चार पत्नियों की स्थिति (आयुष्यमर्यादा) कही है ।

वह धन्यनामक देव आयु के दलकों का क्षय करके, आयुकर्म की स्थिति का क्षय करके तथा भव (देवभव के कारणभूत गति आदि कर्मों) का क्षय करके देह का त्याग करके अनन्तर ही मर्त्यात् बीच में अन्य कोई भव किये बिना ही महाविदेह क्षेत्र में (मनुष्य होकर) मित्रि प्राप्त करेगा यावत् सर्व दुःखों का श्रम करेगा ।

उपसंहार

५३—अहा नं जन्म ! धर्मेणं सत्यवाहेन नो धम्मो ति वा जाय<sup>१</sup> विजयस्स तथकरस्स तथो विपुलाभो भसन-पाण-साइम-साइमाभो संविभाये कए नमस्स सरीरसारवखणट्ठाए, एवामेव जन्म ! जे नं घम्ह निगये वा निर्गयो वा जाय पव्वइए समाने खवणवहाणुंमहण-पुत्त-नप-मल्लालकार-विभूते इमस्स भोरासियसरीरस्स नो वण्णहेउ वा, खवहेउ वा, विसपहेउ वा भसन-पाण-साइम-साइमं माहारमाहारेइ, नमस्स पाण-संतण-चरित्ताणं वहुणयाए । से ण इह सोए खेव बहूणं समणाणं समणीणं सावगाणं य साविगाणं य अरुवणिज्जे जाव (बंदणिज्जे नमंतणिज्जे पूषणिज्जे मवकारणिज्जे सम्मानणिज्जे कल्लाण भंगमं<sup>२</sup> देवमं चेइयं विणएणं) पउजुवसणिज्जे मवइ । परतोए वि य नं नो बहूणि हृष्यच्छेयणाणि य कम्मच्छेयणाणि य नासाच्छेयणाणि य एवं ह्रियवत्पाइणाणि य वसणुत्पाइणाणि य उल्लंघणाणि य वाविहिइ । अणाईयं च नं अणवदग्गं सोह जाव (अइ चाउरंतं संसारकंतारं) खीइवइस्सइ; अहा से धम्मे सत्यवाहे ।

श्री सुधर्मा स्वामी ने जन्म स्वामी से कहा—हे जन्म ! जैसे धन्य सार्यवाह ने 'धर्म है' ऐसा समझ कर या तप, प्रत्युपकार, मित्र आदि मान कर विजय धीर को उस विपुल भसन, पान, स्वादिम धीर स्वादिम में से सविभाग नहीं किया था, मित्राय सरीर की रक्षा करने के, मर्त्यात् धन्य सार्यवाह ने केवल सरीररक्षा के लिए ही विजय को अपने आहार में से हिस्सा दिया था, धर्म या उपकार आदि समझ कर नहीं । इसी प्रकार हे जन्म ! हमारा जो माघु या साध्वी यावत् प्रव्रजित होकर स्नान, उपमर्दन, पुष्प, गन्ध, भाला, अलंकार आदि शृंगार का त्याग करके भसन, पान, स्वादिम और स्वादिम आहार करता है सो इस धीदारिक सरीर के वर्ण के लिए, रूप के लिए या विषय-मुर के लिए नहीं करता । ज्ञान, दर्शन और चारित्र्य की बहृन करने के सिवाय उसका धन्य कोई प्रयोजन नहीं होता । वह साधुओं गार्हव्यों थावकों और थाविकाओं द्वारा इस लोक में धर्चनीय (वन्दनीय, नमस्करणीय, पूजनीय, सत्करणीय, और सम्माननीय होता है । उसे भय्यजन कल्याणमय, मंगलमय, देवस्वरूप और धैत्यस्वरूप मानकर वन्दन करते हैं) वह सर्व प्रकार में उपासनीय होता है । परलोक में भी वह हस्तछेदन (हाथों का काटा जाना), कर्णछेदन और नासिकाछेदन को तथा इसी प्रकार हृदय के उत्पाटन (उखाड़ना) एवं वृणों (अङ्गुलीयों) के उत्पाटन और उद्वन्धन (जैसा बोध कर

सटकाना—फाँसी) आदि वस्तुओं को प्राप्त नहीं करेगा। यह धनार्थ धनार्थ दीर्घमार्ग जाने मंगार  
 श्रद्धा की पार करेगा, जैसे धन्य मार्गार्थ ने किया।

५४—एवं तनु जंघु ! समयेण जाय होचरस नायउभयणरस धयमद्वे वज्जसो ति वेमि।

इस प्रकार हे जंघु ! श्रमण भगवान् महावीर ने प्रतीय ज्ञान-प्रवर्धन का यह अर्थ कहा  
 विवेचन—ध्यानार्थी ने इस अध्ययन के रूपात्म की योजना इस प्रकार की है—उदात्त  
 में जो राजगृह नगर कहा है, उसके स्थान पर मनुष्य क्षेत्र समझना चाहिए। धन्य मार्गार्थ मा  
 प्रतीक है। विजय चोर के स्थान साधु का शरीर है। पुत्र देवदत्त के स्थान पर धनार्थ धनार्थ का  
 का कारणभूत समय समझना चाहिए। जैसे पंचक के प्रसार में देवदत्त का घात हुआ, उसी प्र  
 शरीर की प्रमाद रूप अशुभ प्रवृत्ति में समय का घात होता है। देवदत्त के आभूषणों के स्थान  
 इन्द्रिय-विषय समझना चाहिए। इन विषयों के प्रनोभन में पड़ा हुआ मनुष्य समय का घात  
 डालता है। हृदयधन के समान जीव और शरीर का अभिन्न रूप से रहना समझना चाहिए।  
 के स्थान पर कर्मफल समझना चाहिए। कर्म की प्रवृत्तियों राजपुरुषों के समान हैं। भ  
 अपराध के स्थान पर मनुष्यायु के वध के हेतु समझने चाहिए। उच्चार प्रत्यक्ष की जगह प्रत्युपेक्ष  
 आदि क्रियाएँ समझना चाहिए अर्थात् जैसे आहार न देने से विजय चोर उच्चार—प्रत्यक्ष  
 लिए प्रवृत्त नहीं हुआ उसी प्रकार यह शरीर आहार के बिना प्रत्युपेक्ष आदि क्रियाओं में प्र  
 नहीं होता। पंचक के स्थान पर मुग्ध साधु समझना चाहिए। भद्रा सार्ववाही को आचार्य  
 स्थान पर जानना चाहिए। किसी मुग्ध (भोले) साधु के मुख से जब आचार्य किसी साधु का भवन  
 में शरीर का पोषण करना सुनते हैं, तब वह उस साधु को उपालभ देते हैं। जब वह साधु बतल  
 है कि मैंने विषयभोग आदि के लिए शरीर का पोषण नहीं किया, परन्तु ज्ञान दर्शन चारित्र्य  
 आराधना के लिए शरीर को आहार दिया है, तब मुख को संतोष हो जाता है। कहा भी है—

सिक्ताहणेनु आहार-विरहिणो जं न वट्टए वेहो ।

सम्रा धणो एव विजयं, साहू सं तेण पोसेज्जा ॥

अर्थात्—निराहार शरीर भोग के कारणों-प्रतिक्षेपन आदि क्रियाओं में प्रवृत्त नहीं है  
 अतएव जिस माय में धन्य सार्ववाही ने विजय चोर का पोषण किया, उसी भावना से साधु शरीर  
 पोषण करे।

॥ द्वितीय अध्ययन समाप्त ॥

## तृतीय अध्ययन : अंडक

प

तृतीय अध्ययन का मुख्य स्वर है—जिन-प्रवचन में शंका, काशा या विचिकित्सा न करन उच्च एतिसंकर्षं जित्वाहि पवेद्यम्' अर्थात् बीतराग और सर्वज्ञ ने जो तत्त्व प्रतिपादित किया है, उसमें शंका के लिए कोई अवकाश नहीं है। कथाम और भजान के कारण ही असंशयता है, जिसमें ये दोनों दोष नहीं उसके वचन असत्य हो ही नहीं सकते।

इस प्रकार की मुह्य अन्धता के साथ मुक्ति-साधना के पथ पर अग्रसर होने वाला साधक साधना में पूर्ण सफलता प्राप्त कर सकता है। उसकी अन्धता उसे अपूर्व शक्ति प्रदान करती है अन्धता के बल पर वह सब प्रकार की विघ्न-बाधाओं पर विजय प्राप्त करता हुआ सत्य की ओर धाम बढ़ता जाता है। यही कारण है कि भगवद्दर्शन का प्रथम अंग या लक्ष्य 'अन्धता' कहा गया है।

इसके विपरीत जिसके अन्तःकरण में अपने सत्य अथवा सत्यप्राप्ति के साधनों में शंका नहीं होता, जिसका चित्त डाँवाडोल होता है, जिसकी मनोवृत्ति दुलभुस होती है, प्रथम अन्तरिक बल उत्पन्न ही नहीं होता और यदि वह हो तो भी वह उसका पूरी तरह उपयोग नहीं सकता। इस प्रकार अपूर्व बल और अपूर्व मनोयोग से कार्य की पूर्ण सिद्धि नहीं हो सकती कार्य हो अथवा लोकोत्तर, सर्वज्ञ पूर्ण अन्धता, समग्र उत्साह और परिपूर्ण मनोयोग को उस में आवश्यक है। सम्पूर्ण सफलता-प्राप्ति की यह अनिवार्य बात है।

प्रस्तुत तृतीय अध्ययन में यही सत्य उदाहरण द्वारा और फिर उपसंहार रूप में साक्षात् कृत किया गया है। दो पात्रों के द्वारा अन्धता का सुफल और अन्धता का दुष्परिणाम बताया गया है। संक्षिप्त कथानक इस प्रकार है—

बम्पा नगरी में दो सार्यबाह पुत्र रहते थे। जिनदत्तपुत्र और सागरदत्तपुत्र, इन्हीं सजाग्रतों से उल्लेख किया गया है, उनके स्वयं के नामों का कोई उल्लेख नहीं है। दोनों अभिन्नहृदय मित्र थे। साथ ही रहते थे। विदेशयात्रा हो या दीक्षाग्रहण, सभी प्रसंगों में साथ रहने का उन्होंने किया था। किन्तु चित्तवृत्ति दोनों की एक दूसरे से विपरीत थी।

एक बार दोनों साथी देवदत्ता गणिका को साथ लेकर बम्पा नगरी के सुभूमिभाग उद्यान में चली स्नान करके, भोजन-पानी से निवृत्त होकर, मंजीत-मृत्त्य आदि द्वारा मनोरंजन, आमोद-नरके उद्यान में परिभ्रमण करने लगे। उद्यान से लगा हुआ सघन झाड़ियों वाला एक प्रदेश—कच्छ वहाँ था। वे मालुकाकच्छ की ओर गए ही थे कि एक मयूरी घबराहट और बेचैनी के मर उड़ी और निकट के एक वृक्ष की शाखा पर बैठ कर केका-रव करने लगी। यह दृश्य सार्यबाहपुत्रों को सन्देह हुआ। वे आगे बढ़े तो उन्हें दो अडे दिखाई दिए।

सार्यबाहपुत्रों ने दोनों अडे उठा लिये और अपने घर ले गए—दोनों ने एक-एक किया।

रुद्र का पुत्र शकाशील था। उसने उस अंडे को ले जाकर अपने घर के पहले के  
 गये रंग दिया, जिससे उसकी मयूरिणी अपने अंडों के साथ उसका भी पोषण करती रहें।  
 होता है कि प्राचीन काल में घरों में भी मोर पाले जाते थे।

निशीलता के कारण सागरदत्तापुत्र से रहा नहीं गया। वह उस अंडे के पास गया और  
 उसे लगा-कीन जाने यह अंडा निपजेगा अथवा नहीं? इस प्रकार शंका, काशा और  
 से ग्रस्त होकर उसने अंडे को उलटा, पलटा, उलट फेर कर कानों के पास से गया,  
 बारबार ऐसा करने में अंडा निर्जीव हो गया। उसमें से वन्चा नहीं निकला।

उसे विपरीत जिनदत्तापुत्र श्रद्धासम्पन्न था। उसने विश्वास रक्खा। वह अंडा मयूर-पानकों  
 था। यथामय वन्चा हुआ। उसे नाचना सिखलाया गया। अनेक सुन्दर कलाएं सिगनाई  
 दत्तापुत्र यह देखकर अत्यन्त हर्षित हुआ। नगर भर में उस मयूर-पोत की प्रतिष्ठा हो  
 दत्तापुत्र उसकी यदीकत हजारों-लाखों की बाजियाँ जीतने लगा।

है श्रद्धा और श्रद्धा का परिणाम। जो साधक श्रद्धावान् रहकर साधना में प्रयुक्त होता  
 दग भय में मान-गन्मान की और परभय में मुक्ति की प्राप्ति होती है। इसके विपरीत  
 नाशक दग भय में निन्दा-गर्हा का तथा परभयों में अनेक प्रकार के संकटों, दुःखों, पीड़ा  
 र्शों का पात्र बनता है।



## तच्चं अज्झयणं : अंडे

जम्बू स्वामी का प्रश्न

१—जड़ णं भंते ! समयेणं भगवया महावीरेणं दोच्चेस्स अज्झयणस्स णायामम्मकहणं अयमट्ठे पग्नत्ते, तइअस्स अज्झयणस्स के अट्ठे पणत्ते ?

श्री जम्बू स्वामी अपने गुरुदेव श्री सुघर्मा स्वामी से प्रश्न करते हैं—भगवन् ! यदि श्रमण भगवान् महावीर ने ज्ञाताधर्मकथा के द्वितीय अध्यायन का यह (पूर्वोक्त) अर्थ फर्माया है तो तीसरे अध्यायन का क्या अर्थ फर्माया है ?

सुघर्मा स्वामी का उत्तर

२—एवं खलु जम्बू ! तैणं कालेणं तैणं समएणं चंपा नामं नगरी होत्था, वण्णओ<sup>१</sup> । तीसे णं चंपाए नगरीए बहिया उत्तरपुरच्छिमे दिसीमाए सुभूमिमाए नामं उज्जाणे होत्था । सव्वोडय-पुष्प-फलसमिद्धे सुरम्मे नवणवणे इव सुह-सुरभि-सोयल-च्छायाए समणुबद्धे ।

श्री सुघर्मा उत्तर देते हैं—हे जम्बू ! उस काल और उस समय में चम्पा नामक नगरी थी । उसका वर्णन श्रीपपातिक सूत्र के अनुसार समझना चाहिए । उस चम्पा नगरी से बाहर उत्तरपूर्व दिशा—ईशान कोण में सुभूमिभाग नामक एक उद्यान था । वह सभी ऋतुओं में फूलों-फलों से सम्पन्न रहता था और रमणीक था । नन्दन-वन के समान शुभ था या सुखकारक था तथा सुगन्धयुक्त और शीतल छाया से व्याप्त था ।

मयूरी के अंटे

३—तस्स णं सुभूमिभागस्स उज्जाणस्स उत्तरओ एगदेसम्मि मालुमाकच्छए होत्था, वण्णओ<sup>२</sup> । तस्य णं एया वणमऊरी वो पुट्ठे परियागए पिट्ठुं ओ पंडुरे निश्वणे निरुवहए भिन्नमुट्ठिप्प-माणे मऊरीमंडए पसवइ । पसवित्ता सएणं पक्खवाएणं सारक्खमाणी संगोवेमाणो संबिट्ठेमाणी बिहरइ ।

उस सुभूमिभाग उद्यान के उत्तर में, एक प्रदेश में, एक मालुकाकच्छ था, अर्थात् मालुका नामक वृक्षों का वनखण्ड था । उसका वर्णन पूर्ववत्<sup>३</sup> कहना चाहिए । उस मालुकाकच्छ में एक थोड़ा मयूरी ने पुष्ट, पर्यागत—अनुक्रम से प्रसवकाल को प्राप्त, चावलों के पिंड के समान द्रवत बर्ण वाली, वण अर्थात् छिद्र या धाव से रहित, वायु आदि के उपद्रव से रहित तथा पोसी मुट्ठी के बराबर, दो मयूरी के अंडों का प्रसव किया । प्रसव करके वह अपने पाखों की वायु से उनकी रक्षा करती, उनका संगोपन-सारसंभाल करती और सवेष्टन—पोषण करती हुई रहती थी ।

४—तस्य णं चंपाए नगरीए दुवे सत्थवाहदारगा परिवसंति; संजहा—जिणदत्तपुत्ते य सागर-दत्तपुत्ते य सहजायया सहवट्ठियया सहपंगुकीलियया सहदारदरिसी अन्नमन्नमणुरत्तया अन्नमन्नमणु

यया धन्नमण्णच्छंदाणुवत्तया धन्नमन्नहियइच्छिपकारया धन्नमन्नेगु निहेगु किन्त्वाइं करणिगंज्जं  
च्चणुमवमाणा विहरति ।

उस चम्पानगरी में दो सार्यवाह-पुत्र निवास करते थे । वे दम्भ प्रकट करते थे—जिनकेत का पुत्र  
श्रीर सागरदत्त का पुत्र । वे दोनों साथ ही जन्मे थे, साथ ही बड़े हुए थे, साथ ही घृत में नंने थे, साथ  
ही दारदर्शी-विवाहित हुए थे अथवा एक साथ रहते हुए एक—दूगरे के द्वार को देखने वाले थे—  
साथ-साथ घर में प्रवेष्ट करते थे । दोनों का परस्पर अनुराग था । एक, दूगरे का अनुसरण करता  
था, एक, दूगरे की इच्छा के अनुसार चलता था । दोनों एक दूसरे के हृदय का इच्छित कार्य करते थे  
और एक दूसरे के घरों में कृत्य-नित्यकृत्य और करणीय—नैमित्तिक कार्य—कभी-कभी करते योग्य  
कृत्य करते हुए रहते थे ।

मित्रों की प्रतिज्ञा

५—तए णं तेसि सत्थवाहवारगणं धन्नया कयाइं एगयमो सहियानं समुवागमाणं सत्तिस्सनाणं  
सत्तिविट्ठणं इमेपाह्वे मिहोकाहासमुत्तावे समुत्पज्जितया—‘जणं देवानुत्पिया । अहं सुहं वा दुणं  
वा पण्डज्जा वा विदेसगमणं वा समुत्पज्जइ, तणं अह्मेहि एगयमो समेच्चा निरयिरियं ।’ ति वट्ठु  
धन्नमन्नमेपाह्वं संगारं पडिसुणेत्ति । पडिसुणेत्ता सकम्मसंपज्जा जाया यावि होरपा ।

तत्पश्चात् वे सार्यवाह पुत्र किसी समय इकट्ठे हुए, एक के घर में आये और एक साथ बैठे  
थे, उस समय उनमें आपस में इस प्रकार वार्तालाप हुआ—‘हे देवानुप्रिय ! जो भी हमें सुख, दुःख,  
प्रश्रया अथवा विदेश-गमन प्राप्त हो, उस सब का हमें एक दूसरे के साथ ही निर्वाह करना चाहिए ।’  
इस प्रकार कह कर दोनों ने आपस में इस प्रकार की प्रतिज्ञा अंगीकार की । प्रतिज्ञा अंगीकार करके  
अपने-अपने कार्य में लग गये ।

गणिका देवदत्ता

६—तरप णं खंवाए नयरीए देवदत्ता नामं गणिया परिवसइ, भट्टा जाव (विता विता  
विरियन्न-विडल-मयण-समणासण-जाण-वाहणा बहुषण-आयहव-रयया आभोग-पभोगसंपज्जा विषयि-  
यपउर-मत्तपाणा चउसट्ठिकलापंडिया चउसट्ठिगणियागुणोवयेया अउणत्तोत्तं वित्तेत्तं रत्तमाणी  
एककोत्त-रइगुणप्पहाणा वत्तीसपुरिसोवयार-कुसला जयंगमुत्तपडिओहिंया अट्ठारत्त-देत्तीमासाविसारया  
मिगारागारचारवेत्ता संगय-गय-हत्तिथ-मणिय-विहियवित्तात्त-सत्तियसंलाय-निउणउत्तोववारकुसला  
ऊत्तियभया सहस्सत्तंभा विट्ठन्नदत्त-चामर-वासविमणिया कन्नोरहप्पयाया यावि होरपा, बहूणं गणिया-  
सहस्सत्तं आहेवच्चं जाव (पोरेवच्चं सामित्तं मट्ठित्तं महत्तरगत्तं घाणा-ईसर-सेणावच्चं कारेमाणी  
पात्तेमाणी मट्ठयाऽऽट्ठ-नट्ठ-गोय-वाइय-तंती-तत्त-तालघण-मुहंम-पट्ठपवाइयरवेणं विउत्ताइ भोगभोगां  
अंजमाणी) विहरइ ।

उस चम्पानगरी में देवदत्तानामक गणिका निवास करती थी । वह समृद्ध थी, [विजस्विनी  
थी, प्रख्यात थी । उसके यहाँ विस्तीर्ण और विपुल भवन, शय्या, आसन, रथ आदि यान और भस्त्र  
आदि वाहन थे । स्वर्ण और चांदी आदि धन की बहुतायत थी । लेन-देन किया करती थी । उसके  
यहाँ इतना धन भोजन-पान तैयार होता था कि जीमने के पश्चात् भी बहुत-सा खर्च रहता था,

मतः] वह बहुत भोजन पान वाली थी। चौसठ कलाश्री में पंडिता थी। गणिका के चौसठ गुणों से युक्त थी। उनतीस प्रकार की विशेष फीझाएँ करने वाली थी। कामफ्रीडा के इक्कीस गुणों में कुशल थी। बत्तीस प्रकार के पुष्प के उपचार करने में कुशल थी। उसके सोते हुए नौ अंग (दो कान, दो नेत्र, दो नासिकापुट, जिह्वा, त्वचा और मन) जायत हो चुके थे अर्थात् वह युवावस्था को प्राप्त थी। अठारह प्रकार की देशी भाषाओं में निपुण थी। वह ऐसा सुन्दर वेप धारण करती थी, मानो शृंगार रस का स्थान हो। सुन्दर गति, उपहास, वचन, चेष्टा, विलास (नेत्रों की चेष्टा) एवं ललित संलाप (बात-चीत) करने में कुशल थी। योग्य उपचार (व्यवहार) करने में चतुर थी। उसके घर पर ध्वजा फहराती थी। एक हजार देने वाले को प्राप्त होती थी, अर्थात् उसका एक दिन का शुल्क एक हजार रुपया था। राजा के द्वारा उसे ध्वज, चामर और बाल ध्वजन (विशेष प्रकार का चामर) प्रदान किया गया था। वह कर्णारिष्यनामक वाहन पर आरुढ़ होकर आती जाती थी, यावत् एक हजार गणिकाओं का आधिपत्य करनी हुई रहती थी। (वह उनका नेतृत्व, स्वामित्व, पालन एवं अग्रसरत्व करती थी। सभी को अपनी आज्ञा के अनुसार चलाती थी। वह उनकी मैनाध्यक्षा थी। उनका पालन-पोषण करती थी। नृत्य, गीत और वाद्यों में मस्त रहती थी। तंत्री, तल, तान, घन, मृदंग आदि वाजों की ध्वनि में तूबो वह देवदत्ता विपुल भोग भोग रही थी)।

गणिका के साथ विहार

७—तए णं तैस्ति सप्तधाहृदारगणं अन्नया कयाइ पुष्पावरहकाल-समयसि त्रिमियभुत्तरा-गणायं समाणायं आयतणं कोशलायं परममुद्भयायं मुहासणवरगणायं इमेवाह्वे मिहोक्कासमुत्तावे समुपज्जित्वा-तं सयं जसु अहं देवानुप्पिया ! कल्लं जाव<sup>१</sup> जलंते विपुलं असण-पाण-खाइम-साइमं उवखल्लडित्ता तं विपुलं असण-पाण-खाइम-साइमं धूव-पुप्फ-गंध-वरयं गहाय देवदत्ताए गणिपाए सद्धि सुभूमिमागसस उज्जाणसस उज्जाणसिंरि पक्खणुमवमाणायं विहरित्तए<sup>२</sup> ति कट्ठु अन्नमग्गसस एमट्ठं पडिमुणेत्ति, पडिमुणित्ता कल्लं पाउक्खुए कोट्टु विपुलरित्ते सहावेत्ति, सहावित्ता एवं वयासी—

तत्पचात् वे सार्धवाहपुत्र किसी समय मध्याह्नकाल में भोजन करने के अनन्तर, आवमन करके, हाथ-पैर धीकर स्वच्छ होकर, परम पवित्र होकर सुखद आसनो पर बैठे। उस समय उन दोनों में प्राप्त में इस प्रकार की बात-चीत हुई—‘हे देवानुप्रिय ! अपने लिए यह अच्छा होगा कि कल यावत् सूर्य के देदीप्यमान होने पर विपुल अन्न, पान खादिम और स्वादिम तथा धूप, पुष्प, गंध और वस्त्र साथ में लेकर, देवदत्ता गणिका के साथ, सुभूमिभागनामक उद्यान में उद्यान की गोष्ठा का अनुभव करते हुए विचरें।’ इस प्रकार—कहकर दोनों ने एक दूसरे की बात स्वीकार की। स्वीकार करके दूसरे दिन सूर्योदय होने पर कौटुम्बिक पुष्पो (मेवको) को बुलाकर इस प्रकार कहा—

८—गच्छह णं देवानुप्पिया ! विपुलं असण-पाण-खाइम-साइमं उवखल्लहेह<sup>३</sup>। उवखल्लडित्ता तं विपुलं असण-पाण-खाइम-साइमं धूव-पुप्फ गहाय जेणव सुभूमिमागे उज्जाणे, जेणव णंदा पुक्खरिणी तेणामेव उवागच्छह<sup>४</sup>। उवागच्छित्ता णंदापुक्खरिणीओ अट्ठरसामंते खणामंदवं आहणह<sup>५</sup>। आहणित्ता आसित्त-संमज्जिभोवत्तित्तं जाव [पंचवर्ण-सरसमुत्तमि-पुष्पक-पुष्पजु जीवपारकलियं कालागुरु-पवर-





उस समय देवदत्ता गणिका ने सार्धवाहपुत्रों को माता देखा । देखकर वह हृष्ट-तुष्ट होकर आसन से उठी और उठकर सात-आठ कदम सामने गई । सामने जाकर उसने सार्धवाहपुत्रों से इस प्रकार कहा—देवानुप्रियो ! आज्ञा दीविए, आपके यहाँ आने का क्या प्रयोजन है ?

११—तए णं ते सत्थवाहदारगा देवदत्तं गणियं एवं वयासी—‘इच्छामो णं देवानुप्पिए । सुभेहिं सद्धिं सुभूमिमागस्स उज्जाणस्स उज्जाणत्तिरि पच्चणुमवमाणा विहरित्ते ।’

तए णं सा देवदत्ता तेसि सत्थवाहदारगाणं एयमट्ठं पडिसुणेइ, पडिसुणिता ण्हाया कमवल्लि-कम्मा जाव तिरित्तमाणवेसा जेण्व सत्थवाहदारगा तेण्व समागया ।

तत्पश्चात् सार्धवाह पुत्रों ने देवदत्ता गणिका से इस प्रकार कहा—‘देवानुप्रियो ! हम तुम्हारे साथ सुभूमिभागनामक उद्यान की श्री का अनुभव करते हुए विचरना चाहते हैं ।’

गणिका देवदत्ता ने उन सार्धवाहपुत्रों का यह कथन स्वीकार किया । स्वीकार करके स्नान किया, मंगलकृत्य किया । यावत् सधमी के समान श्रेष्ठ वेष धारण किया । जहाँ सार्धवाह पत्र थे वहाँ आ गई ।

१२—तए णं ते सत्थवाहदारगा देवदत्ताए गणियाए सद्धिं जाणं वुरुहत्ति, वुरुहिता वंपाए नयरीए मज्झमज्झेण जेण्व सुभूमिमागे उज्जाणे, जेण्व नंदापुव्वरिणी तेण्व उवागच्छत्ति । उवागच्छिता पवहुणाओ पच्चोवहत्ति, पच्चोवहत्ति नंदापोव्वरिणि ओगाहित्ति । ओगाहिता जलत्तज्जणं करेत्ति, जलकोटं करेत्ति, ण्हाया देवदत्ताए सद्धिं पच्चत्तरत्ति । जेण्व पूणामंडवे तेण्व उवागच्छत्ति, उवागच्छिता यूणामंडवं अणुपवित्तिता सञ्जालंकारविभूतिया आस्तया बीत्तया सुहात्तणवरगया देवदत्ताए सद्धिं सं विपुलं अत्तण-पाण-खाइम-साइमं धूवपुंफांघवरं आसाएमाणा विसाएमाणा परि-माएमाणा परिभुंजेमाणा एवं च णं विहरत्ति । जिमियभुत्तरागया वि म णं समाणा देवदत्ताए सद्धिं विपुलाइं माणुस्सगाइं कामभोगाइं भुंजेमाणा विहरत्ति ।

तत्पश्चात् वे सार्धवाहपुत्र देवदत्ता गणिका के साथ धान पर आरुढ़ हुए और चम्पा नगरी के बीचों बीच होकर जहाँ सुभूमिभाग उद्यान था और जहाँ नन्दा पुष्करिणी थी, वहाँ पहुँचे । वहाँ पहुँच कर धान (रथ) से नीचे उतरे । उतर कर नदा पुष्करिणी में भवगाहन किया । भवगाहन करके जल-मज्जन किया, जल-क्रीड़ा की, स्नान किया और फिर देवदत्ता के साथ बाहर निकले । जहाँ स्नानागमडप था वहाँ आये । आकर स्नानागमडप में प्रवेष्ट किया । सब अलंकारों से विभूषित हुए, आश्वस्त (स्वस्थ) हुए, विश्वस्त (विश्रान्त) हुए, श्रेष्ठ आसन पर बैठे । देवदत्ता गणिका के साथ उस विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम तथा धूप, पुष्प मध और वस्त्र का उपभोग करते हुए, विशेष रूप से आस्वादन करते हुए, विभाग करते हुए एवं भोगते हुए विचरने लगे । भोजन के पश्चात् देवदत्ता के साथ मनुष्य संबन्धी विपुल काम-भोग भोगते हुए विचरने लगे ।

१३—तए णं सत्थवाहदारगा पुव्वावरह्कात्तसमयंसि देवदत्ताए गणियाए सद्धिं पूणामंडवाओ पडिणिक्खमत्ति । पडिणिक्खमत्तिता हत्थसंगेत्तीए सुभूमिमागे बहुसु आतिघरएसु य कयतीघरेसु य तयाघरएसु य अरुद्धणघरएसु य पेद्धणघरएसु य पत्ताहणघरएसु य मोहणघरएसु य सालघरएसु य आसघरएसु य कुसुमघरएसु य उज्जाणत्तिरि पच्चणुमवमाणा विहरत्ति ।

Figure 1. The effect of the concentration of the *Agaricus bisporus* spores on the growth of *Agaricus bisporus* on the substrate.

के योग्य होता है। पर मय में भी यह बहुत दृढ़ पाता है यावत् [वह बार-बार मूँटा जाता है, बार-बार तर्जना धीरे ताड़ना का भावो होता है, बार-बार बेडियों में जकड़ा जाता है बार-बार घोलना पाता है, उसे बार-बार मानृमरण, पितृमरण, भ्रातृमरण, भगिनीमरण, पत्नीमरण, पुत्रमरण, पुत्रीमरण धीरे पुत्रवधूमरण का दुःख भोगना पड़ेगा।

यह बहुत दरिद्रता, अत्यन्त दुर्भाग्य, अतीव इष्ट विरोग, अत्यन्त दुःख एवं दुर्मनस्कता का भाजन बनेगा। अनादि अनन्त दोषों भाग्य वाले चार गतिरूप सगर-कान्तार में] परिभ्रमण करेगा।

भडा का नृत्य

२१—तए नं से जिणदत्तपुत्तं जेणेव से मऊरीघंडए तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छिता तंति मऊरीघंडयंति निस्सकिए, 'मुवत्तए न मम एव्य कोलावणए मऊरीपोयए भविस्सइ' ति कट्ठु तं मऊरीघंडय' भविस्सणं भविस्सणं नो उव्वत्तइ' जाव नो टिट्ठिपावेइ। तए नं से मऊरीघंडए अणुस्वत्तिजमाने जाव अटिट्ठिपाविजमाने तेणं कालेण तेण समएणं उव्विस्सन्ने मऊरीपोयए एव्य जाए।

(इससे विपरीत) जिनदत्त का पुत्र जहाँ मयूरी का भडा था, वहाँ आया। आकर उस मयूरी के अंडे के विषय में निश्चय रहा। 'मेरे इस अंडे में से प्रोड़ा करने के लिए बहिया गोलाकार मयूरी-बालक होगा' इस प्रकार निश्चय करके, उस मयूरी के अंडे को उसने बार-बार उलटा-पलटा नहीं यावत् बजाया नहीं [हिमाया-भुलाया, छुड़ा नहीं] आदि। इस कारण उलट-पलट न करने से धीरे न बजाने से उस काल धीरे उस समय में अर्थात् समय का परिपाक होने पर वह भडा पूटा और मयूरी के बालक का जन्म हुआ।

२२—तए नं से जिणदत्तपुत्तं तं मऊरीपोययं वासइ, पातित्ता हट्ठुट्ठे मऊरपोसए सहावेइ। सहावित्ता एयं वयासी—तुमहे ने वेवानुप्रियो ! इमं मऊरपोययं बह्हि मऊरपोसणवाउगोहि वध्वेहि अणुपुग्घेणं सारवत्तमाणा संगीवेमाणा संवइवेह, नट्टुस्सणं थ सिक्खत्तावेह।

तए नं से मऊरपोसणा जिणदत्तस्स पुत्तस्स एयमट्ठं पट्ठिसुणेति, पट्ठिसुणिता तं मऊरपोययं मेहंति, मेहंतिता जेणेव तए गिहे तेणेव उवागच्छंति। उवागच्छित्ता तं मऊरपोययं जाव नट्टुहत्तनं सिक्खत्तावेति।

सत्यदत्तात् जिनदत्त के पुत्र ने उस मयूरी के बच्चे की देखा। देख कर हृष्ट-तुष्ट होकर मयूर-पोपको को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा—देवानुप्रियो ! तुम मयूर के इस बच्चे को अनेक मयूर को पोपण देने योग्य पदार्थों से, अनुक्रम से गरक्षण करते हुए और संगोपन करते हुए बड़ा करो और नृत्यकला सिखलाओ।

तब उन मयूरपोपको ने जिनदत्त के पुत्र की यह बात स्वीकार की। उस मयूर-बालक को ग्रहण किया। ग्रहण करते जहाँ अपना घर था वहाँ आये। आकर इस मयूर-बालक को यावत् नृत्यकला सिखलाने लगे।

मलिनता को प्राप्त हुआ। अतएव वह विचार करने लगा कि मेरे डम अंडे में मेरी श्रृंखला करने का मयूरी-बालक उत्पन्न होगा अथवा नहीं होगा ?

इस प्रकार विचार करके वह बार-बार उम अंडे को उद्वर्तन करने लगा अर्थात् नीचे का भाग ऊपर करके फिराने लगा, घुमाने लगा, घागराएँ करने लगा अर्थात् एक जगह से दूसरी जगह रखने लगा, समारण करने लगा अर्थात् बार-बार स्थानान्तरित करने लगा, चलाने लगा, हिलाने लगा, घट्टन—हाथ से स्पर्श करने लगा, क्षोभण—भूमि को ग्रीव कर उममें रखने लगा और बार-बार उसे कान के पास ले जाकर बजाने लगा। तदनन्तर वह मयूरी-अंडा बार-बार उद्वर्तन करने में यावत् [परिवर्तन करने से, घासरण-ससारण करने से, चलाने, हिलाने, स्पर्श करने से, क्षोभण करने से] बजाने से पोचा हो गया—निर्जीव हो गया।

१६—तएव से सागरदत्तपुत्रे सरयवाहदारए अस्तया कयाई जेनेय से मऊरीअंडए सेनेय उवागच्छइ। उवागच्छिता तं मऊरीअंडयं पोचइमेव पासइ। पातिता 'अहो न मम एत कीलावणए न जाए'ति कट्टु अहोयमनसंकपे करतलपहस्यमुहं भट्टट्ठभाणोवणए।

सागरदत्त का पुत्र सार्यवाहदारक किसी समय जहाँ मयूरी का अंडा था वहाँ गया। आकर उस मयूरी—अंडे को उसने पोचा देखा। देखकर 'अहो! यह मयूरी का बच्चा मेरी श्रृंखला करने के योग्य न हुआ' ऐसा विचार करके खेदलिप्तचित्त होकर चिन्ता करने लगा। उसके सब मनोरथ विफल हो गए।

शकाशिला का कुफल

२०—एवमेव समणाउओ। जो अहं निर्गंधो वा निर्गंधो वा आयरिय-उवज्झायाणं अंतिए पवइए समाणे पंचमहग्घएसु, छज्जीवनिकाएसु, निर्गंधे पाययणे संकिए जाव [कंसिए वित्तिगिदल-मायण्णे] कलुससमावग्घे से णं इह भवे चेव बहूणं समणाणं बहूणं समणीणं सावगाणं ताविगाणं हीसनिज्जे त्सिनिज्जे गरिह्णिज्जे परिअयणिज्जे, परलोए वि यणं आयच्छइ बहूणि बंडणाणि य जाव [बहूणि मुंडणाणि य बहूणि तज्जणाणि य बहूणि तातणाणि य बहूणि भंडुबंधणाणि य बहूणि घोसणाणि य बहूणि माइमरणाणि य बहूणि पिइमरणाणि य बहूणि भाइमरणाणि य बहूणि भगिणीमरणाणि य बहूणि भज्जामरणाणि य बहूणि पुत्तमरणाणि य बहूणि धूयमरणाणि य बहूणि सुग्गामरणाणि य, बहूणि दारिहाणं बहूणं दोहग्गाणं बहूणं अप्पियसंवासाणं बहूणं पिअपिअग्गोणं बहूणं दुरल-क्षोमणस्साणं आमागो अविस्सति, अणादियं धं णं अणवयणं दोहमदं चाउरसं संसारकंतां भुज्जो भुज्जो] अणपरिवट्टिस्सइ।

आमुप्पान् थमणो! इस प्रकार जो साधु या साध्वी आचार्य या उपाध्याय के समीप प्रव्रज्या ग्रहण करके पाँच महाव्रतों के विषय में अथवा षट् जीवनीकाय के विषय में अथवा निर्यन्त्र प्रवचन के विषय में संवा करता है [काता-परद्वान की या लौकिक फल की अभिलाषा करता है, या त्रिया के फल में मन्देह करता है] या कलुषता को प्राप्न होता है, वह इसी भय में बहुत-से साधुओं, गांधिव्यों, थावकों और थाविवाधों के द्वारा हीलना करने योग्य-गच्छ से पृथक् करने योग्य, मन से निन्दा करने योग्य, लोक-निन्दनीय, ममता में ही यहाँ (निन्दा) करने योग्य और परिभव (धनार)

के योग्य होता है। पर भव मे भी वह बहुत दंड पाता है यावत् [वह बार-बार मूँडा जाता है, बार-बार तर्जना और तानना का भागी होता है, बार-बार बेडियो मे जकड़ा जाता है बार-बार घोलना पाता है, उसे बार-बार मानुमरण, पितृमरण, भ्रातृमरण, भगिनीमरण, पत्नीमरण, पुत्रमरण, पुत्रीमरण और पुत्रवधूमरण का दुःख भोगना पड़ेगा।

वह बहुत दरिद्रता, अत्यन्त दुर्भाग्य, अतीव इष्ट वियोग, अत्यन्त दुःख एवं दुर्मनस्कता का भाजन बनेगा। अनादि अनन्त दीर्घ मार्ग वाले चार गतिरूप ससार-कान्तार मे परिभ्रमण करेगा।

अडा का मुक्क

२१—तए णं से जिणदत्तपुत्तं जेणेव से मऊरीअंडए तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छिता तंति मऊरीअंडवसि निस्सकिए, 'सुवत्तए णं मम एएय कोलाअणए मऊरीपोयए भविस्सइ' ति कट्टु तं मऊरीअंडव' अमिक्खणं अमिक्खण भी उव्वत्तइ' जाव नो टिट्ठियावेइ। तए णं से मऊरीअंडए अणुत्थत्तिज्जमाने जाव अटिट्ठियाविज्जमाने तेणं कालेण तेण समएणं उभिमन्ने मऊरीपोयए एएय जाए।

(इससे विपरीत) जिनदत्त का पुत्र जहाँ मयूरी का अडा था, वहाँ आया। आकर उस मयूरी के अंडे के विषय में निःशक रहा। 'मेरे इस अंडे मे से कीड़ा करने के लिए बहिया गोलाकार मयूरी-बालक होगा' इस प्रकार निश्चय करके, उस मयूरी के अंडे को उसने बार-बार उलटा-पलटा नहीं यावत् बजाया नहीं [हिलाया-डुलाया, छुआ नहीं] आदि। इस कारण उसलट-पलट न करने से और न बजाने से उस काल और उस समय मे अर्थात् समय का परिपाक होने पर वह अडा पूटा और मयूरी के बालक का जन्म हुआ।

२२—तए णं से जिणदत्तपुत्तं तं मऊरीपोययं वासइ, पासित्ता हट्टुट्टे मऊरपोसए सहावेइ। सहावित्ता एवं वयासी—सुभे जे देवाणुप्पिया। इमं मऊरपोययं बहूहि मऊरपोसणपाउतोहि वव्वेहि अणुपुब्बेणं सारवज्जमाणा संगोवेमाणा संबड्ढेह, नट्टुत्तगं च सिक्खावेह।

तए णं ॥ मऊरपोसणा जिणदत्तस्स पुत्तस्स एयमट्ठं पडिसुणंति, पडिसुणित्ता तं मऊरपोययं गेण्हंति, गेण्हित्ता जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छंति। उवागच्छित्ता तं मऊरपोययं जाव नट्टुत्तगं सिक्खावेति।

तत्पश्चात् जिनदत्त के पुत्र ने उस मयूरी के वच्चे को देखा। देख कर हूट-तुट्ट हाँकर मयूर-पोपको को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा—देवानुप्रियो! तुम मयूर के इस वच्चे को अनेक मयूर को पोषण देने योग्य पदार्थों से, अनुक्रम से मरक्षण करते हुए और संगोपन करते हुए बड़ा करो और नृत्यकला सिखलाओ।

तब उन मयूरपोपकों ने जिनदत्त के पुत्र की यह बात स्वीकार की। उस मयूर-बालक को ग्रहण किया। ग्रहण करके जहाँ अपना घर था वहाँ आये। आकर इस मयूर-बालक को यावत् नृत्यकला सिखलाने लगे।

२३—तए णं ते मऊरपोयए उम्मुक्कवालमाये विप्रायपरिणयमेत्ते जोवणमणपत्ते ससण-  
धंजणगुणोदयेए माणुम्माण-पमाणपडिपुण-पवर-येहण-कत्ताये विमत्तिविश्वे सपचंदए नीलवट्टए  
नच्चणत्तीसए एगाए चत्थुडियाए कयाए समाणीए घणेगाइं मट्ठुत्तसमसाइं केकारवत्ताणि प करेमाने  
विहरइ ।

तत्पश्चात् मयूरी का वह बच्चा बचपन में मुक्त हुआ । उसमें विज्ञान का परिणामन हुआ ।  
युवावस्था को प्राप्त हुआ । लक्षणों और तिल आदि व्यंजनों के गुणों से मुक्त हुआ । जोड़ई का  
मान, स्थूलता रूप उन्मान और लम्बाई रूप प्रमाण में उसके पगों और पिच्छों (पंखों) का मूह  
परिपूर्ण हुआ । उसके पग रंग-बिरंगे हो गए । उनमें मंकड़ों चन्द्रक थे । वह नीले बंठ घाता और  
नृत्य करने का स्वभाव वाला हुआ । एक चुटकी बजाने से अनेक प्रकार के सैंकड़ों केकारव करता  
हुआ विचरण करने लगा ।

२४—तए णं ते मऊरपोसगा तं मऊरपोययं उम्मुक्कवालमायं जाव करेमानं वामित्ता  
तं मऊरपोययं गेहंति । गेहत्ता जिनदत्तस्स पुत्तस्स उवणेत्ति । तए णं ते जिनदत्तपुत्ते ससवह-  
वारए मऊरपोययं उम्मुक्कवालमाय जाव करेमानं वासित्ता हट्ठुत्तुत्ते सेत्ति धित्तं जीवियारिहं वीइमाणं  
जाव [दलपइ, वलइत्ता] पडिविसज्जेइ ।

तत्पश्चात् मयूरपालकों ने उस मयूर के बच्चे को बचपन से मुक्त यावत् केकारव करता हुआ  
देख कर उस मयूर-बच्चे को ग्रहण किया । ग्रहण करके जिनदत्त के पुत्र के पास ले गये । तब  
जिनदत्त के पुत्र सार्धवाहदारक ने मयूर-बालक को बचपन से मुक्त यावत् केकारव करता देखकर,  
हृष्ट-तुष्ट होकर उन्हे जीविका के योग्य विपुल प्रीतिदान दिया । प्रीतिदान देकर विदा किया ।

२५—तए णं ते मऊरपोयए जिनदत्तपुत्तेणं एगाए चत्थुडियाए कयाए समाणीए गंगोता (॥)  
भंगसिरोधरे सेयावणे अवयारियपइत्तपक्खे उवलित्तचंदकाइयकत्ताये केवकाइयसमाणि विमुक्कमाणं  
गक्खइ ।

तए णं ते जिनदत्तपुत्ते तेणं मऊरपोयएणं चंवाए नयरीए तिघाडग जाव [तिग-चउरक-  
चउर-चउम्मुह-महावह] पहेसु सइएहि य साहस्सिएहि य सयसाहस्सिएहि य पनिएहि य जयं करेमाने  
विहरइ ।

तत्पश्चात् वह मयूर-बालक जिनदत्त के पुत्र द्वारा एक चुटकी बजाने पर सागूल के भग के  
समान भर्षात् जंम गिह आदि अपनी पूछ को टेढ़ी करते है उसी प्रकार अपनी गर्दन टेढ़ी करता था ।  
उसके शरीर पर धमीना आ जाता था अथवा उसके नेत्र के कोने खेत वगैरे के हो गये थे । वह जितारे  
पिच्छों बाने दोनों पंखों को शरीर से जुदा कर लेता था अर्थात् उन्हे फैला देता था । वह चन्द्रक  
आदि में मुक्त पिच्छों के मूह को ऊंचा कर लेता था और सैंकड़ों केकारव करता हुआ नृत्य  
करता था ।

तत्पश्चात् वह जिनदत्त का पुत्र उस मयूर-बालक के द्वारा चम्पानगरी के शृंगारिकों [त्रिक,  
धोर, पवर, चतुर्मुख, राजमागं आदि] भागों में सैंकड़ों, हजारों और लाखों की होड़ में विजय  
प्राप्त करता था ।

अनन्तर

२६—एवमेव समणादसौ । जो अर्धं निगम्यो वा निगम्यो वा पश्यद् ए समानं पंचसु महत्त्वेषु  
सुसु जीवनिषाय निगम्ये पावयणे निरसं विष्ट निरसं विष्ट निर्विष्टगिच्छे ते न इह भवे चेव मूहं तम-  
नामं समनोनां जाय' बीहृदरसह । एवं लसु अंबू ! समनेन मगवया महावीरेण नायानं तद्वत्त  
अभ्ययनम अभ्ययनं पश्यते तित्ति ॥

हे धाम्प्यान् श्रमणो ! इसी प्रकार हमारा जो मायु या माध्वो दोशित होकर पांच महावनों  
में, यद् जीवनिषाय में तथा निरस्य-प्रवचन में तथा में रहित, काथा में रहित तथा विविक्तिमा से  
रहित होना है, वह इसी मय में बटु में श्रमणों एव श्रमणियों में मान-मम्मान प्राप्त करके यावत्  
मंगार रूप घटवी को पार करेगा ।

हे जम्बू ! इस प्रकार श्रमण भगवान् महावीर ने ज्ञाता के मृगीय धर्म्ययन का अर्थ  
करमाया है ।

॥ मृगीय धर्म्ययन समाप्त ॥



### चतुर्थ अध्ययन : कूर्म

ਘਾਟ-ਸਪੈਰ

वर्ष द्वादश का नाम कूर्म-आध्ययन है। इसमें आत्मसाधना के पथों को इतिहास के द्वादशका दो कर्मों के उद्गहन के माध्यम में प्रतिपादन की गई है।

राजस्थानी नगरी में गंगा नदी में उत्तर-पूर्व में एक विशाल तालाब था—निर्मल जीतन।  
 न. निम्न। और विभिन्न जाति के बसों में श्याम। तालाब में अनेक प्रकार के मत्स्य पाल  
 मत्स्य पाल जाति के मत्स्य पालों को धारण करने थे। तालाब को लोग 'मृगमाली' कहते थे।

जब वह लड़कियाँ-लड़के खड़े हो जाने पर, लोगों का आवागमन जड़-सा हो गया, तब लड़कियों ने ही दाँव-बाँव लगाकर की गली में निहत्थे। तालाब के आग-पारा पूरने लगे।

[illegible][illegible][illegible][illegible]

शास्त्रकार कहते हैं—जो साधु या साध्वी अनगार-दीक्षा अंगीकार करके अपनी इन्द्रियों का इन्हीं करते उनकी दशा प्रथम कूर्म जैसी होती है। वे इह-परभव में अनेक प्रकार के कष्ट पाते हैं-जीवन से च्युत हो जाते हैं और निन्दा-गर्हा के पात्र बनते हैं। इससे विपरीत, जो साधु या इन्द्रियों का गोपन करते हैं वे इसी भव में सब के वन्दनीय, पूजनीय, अर्चनीय होते हैं और मृत्यु की पार करके सिद्धि लाभ करते हैं।

सात्पर्य यह है कि साधु हो अथवा साध्वी, उसे अपनी सभी इन्द्रियों पर नियंत्रण रखना उनका गोपन करना चाहिए। इन्द्रिय-गोपन का अर्थ है—इन्द्रियों को अपने-अपने विषयों में होने देना। किन्तु सर्वत्र सर्वदा इन्द्रियों की प्रवृत्ति रोकना सम्भव नहीं है। सामने आई वस्तु होने पर भी दृष्टिगोचर हो ही जाती है, बोला हुआ वाक्य श्रोत्र का विषय बन ही जाता है। श्वी अपनी इन्द्रियों को बंद करके रख नहीं सकते। ऐसी स्थिति में इन्द्रिय द्वारा गृहीत में राग-द्वेष न उत्पन्न होने देना ही इन्द्रियगोपन, इन्द्रियदमन अथवा इन्द्रियसंयम कहलाता है। प्रज्ञा के लिए मन को समभाव का अभ्यासी बनाने का सदैव प्रयास करते रहना आवश्यक है।

यही इस अध्ययन का सार-संक्षेप है।

## चउत्थं अज्झयणं : कुम्भे

जम्बू का प्रश्न

१—जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं नायाणं सच्चसस नायअभयणसस प्रयमंते पमनत्ते, चउत्थसस णं नायाणं के अट्ठे पमनत्ते ?

श्री जम्बू स्वामी अपने गुरुदेव श्री सुधर्मा स्वामी में प्रश्न करते हैं—‘भगवन् ! यदि यत्न भगवान् महावीर ने ज्ञात अग के तृतीय अध्ययन का यह (पूर्वोक्त) अर्थ फरमाया है तो नीचे ज्ञात अध्ययन का क्या अर्थ फरमाया है ?’

सुधर्मा का उत्तर

२—एवं खलु जम्बू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं वाणारसी नामं नगरी होरथा,<sup>१</sup> वनप्रो। तं णं वाणारसीए नगरीए बहिया उत्तर—पुरच्छिमे विसिमागे मंगाए महानवीए मयंगतीरहहे नामं होरथा, अणुपुष्प-सुजाय-वण्ण-मंभीर-सीयल-जले अच्छ-विमल-सलिल-पलिच्छग्ने संछन्नपल-पुष्क-पल यत्तुल्लपल-पडम-कुमुद-नलिन-सुमग-सोमंघिय-पुं डरीय-महापुं डरीय-सयपल-सहससपल-केसर-पुष्कोर्वा पासाईए वरिसणिज्जे अमिहवे पडिहवे ।

श्री सुधर्मा स्वामी, जम्बू स्वामी के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहते हैं—हे जम्बू ! उस श्रीर उस समय में वाणारसी (वनारस) नामक नगरी थी । यही उसका वर्णन श्रीपदातिक सूत्र नगरी-वर्णन के समान कहना चाहिए ।

उस वाणारसी नगरी के बाहर उत्तर-पूर्व दिशा अर्थात् ईशान कोण में, गगनामक महा श्रीर मृतगगातीरहृदनामक एक हृद था । उसके अनुक्रम से सुन्दर सुसोभित तट थे । उमका गहरा श्रीर क्षीतल था । हृद स्वच्छ एवं निर्मल जल से परिपूर्ण था । कमलिनियों के पत्तो भी-पूर्वों की पाण्डुरियों से आच्छादित था । बहुत से उत्पलो (नीले कमलों), पद्मो (लाल कमलों), कुमुदो (चन्द्रविकामी कमलों), नलिनों तथा मुभग, सीमंधिक, पुण्डरीक, महापुण्डरीक, शतपत्र, सहस्रपत्र आदि कमलों से तथा केसरप्रधान अन्य पुष्पों से समृद्ध था । इस कारण वह आनन्दजनक, दर्शनीय, अभिरूप श्रीर प्रतिरूप था ।

३—सस्य णं बहूणं मच्छाण य कच्छपाण य गाहाण य मगराण य सुंसुमारान य सइयाण य साहसियाण य सपसाहसियाण य जूहाइं निवमयाइं निदब्बिग्गाइं सुहंनुहेणं अनिरममाणां अनिरममाणाइं विहरंति ।

उम हृद में सैकड़ों, सहस्रों श्रीर लाखों, कच्छों, गाहों, मगरो श्रीर सुंसुमार जाति के जलचर जीवों के समूह भये थे रहित, उद्वेग से रहित, सुखपूर्वक रमते-रमते विचरण करते थे ।

४—तस्स णं मयंगतीरहहस्स भद्ररसाम्भे एत्थ णं महं एगे मालुयाकच्छए होत्था,<sup>१</sup> वस्सो णं बुवे पावसियालगा परिवसंति-यावा चंदा रोदा तस्सिच्छा साहसिया लोहिपपाणी आमिसत्थ मसाहारा आमिसप्पिया आमिसलोला आमिसं गवेसमाणा रत्ति विद्यालचारिणो दिपा पच्छं वे चिट्ठंति ।

उस मृतगंगातीर हृद के समीप एक बड़ा मालुकाकच्छ था । उसका वर्णन द्वितीय अध्ययन अनुसार यहाँ कहना चाहिए । उस मालुकाकच्छ में दो पापी शृगाल निवास करते थे । वे पाप करण करने वाले, चट (भोधी) रौद्र (भयकर) इष्ट वस्तु को प्राप्त करने में दत्तचित्त और साहस उनके हाथ अर्थात् धनले पर रक्तरजित रहते थे । वे मास के अर्घी, मासाहारी, मासप्रिय ए लोभुष थे । मास की गवेषणा करते हुए रात्रि और सन्ध्या के समय घूमते थे और दिन में छिपे थे ।

का निर्गमन

५—तए णं तामो मयंगतीरहहामो अमया कयाइं सूरियंसि चिरायमिवंसि तुलियाए संभा रलमानुसंसि णिसंतपडिणिसंसंसि समाणंसि बुवे कुम्भगा आहारथो आहारं गवेसमाणा सणिय यं उत्तरंसि । तस्सेव मयंगतीरहहस्स परिवरेत्तेणं सव्वमो सर्मता परिघोलेमाणा परिघोलेमाणा त कप्पेमाणा बिहरंसि ।

तत्पश्चात् किसी समय, सूर्य के बहुत समय पहले अस्त हो जाने पर, सन्ध्याकाल व्यतीत हो पर, जब कोई विरल मनुष्य ही चलते-फिरने थे और सब मनुष्य अपने-अपने घरों में विश्राम कर थे अथवा सब लोग चलते-फिरने से विरक्त हो चुके थे, तब मृतगंगातीर हृद में से आहार के तलापी दो कछुए बाहर निकले । वे मृतगंगातीर हृद के आसपास चाने और फिरते हुए अपनी निविका करते हुए विचरण करने लगे, अर्थात् आहार की खोज में फिरने लगे ।

शृगाल

६—सपाणंतरे च णं ते पावसियालगा आहारथो जाव आहारं गवेसमाणा मालुयाकच्छयाओ णिबल्लमंति । पडिणिवल्लमिस्ता जेणेव मयंगतीरे बहू तेणेव उवगच्छंति । उवापच्छिता तस्सेव तीरहहस्स परिवरेत्तेणं परिघोलेमाणा परिघोलेमाणा विसि कप्पेमाणा बिहरंसि ।

तए णं ते पावमियाला ते कुम्भए पासंसि, पासिस्ता जेणेव ते कुम्भए तेणं पहारेत्थ गमणाए ।

तत्पश्चात् आहार के अर्घी यावत् आहार की गवेषणा करते हुए वे (पूर्वोक्त) दोनों पापी ल मालुकाकच्छ से बाहर निकले । निकल कर जहाँ मृतगंगातीरनामक हृद था, वहाँ आए । उसी मृतगंगातीर हृद के पास इधर-उधर चारों ओर फिरने लगे और आहार की खोज करते विचरण करने लगे—आहार की तलाश करने लगे ।

तत्पश्चात् उन पापी स्त्रियारों ने उन दो कछुओं को देखा । देखकर जहाँ दोनों कछुए थे, वहाँ के लिए प्रवृत्त हुए ।

६ अ. सूत्र ५

७—तए न ते कुम्भगा ते पावसियासए एउजमाणे पार्गति । पावसिता मीता तस्या तमिग उव्विगमा संजातमया हृत्थे य पाए ॥ गोवाप्पो य सएहि मएहि काएहि साहरंनि, साहरिता विजया निष्फदा तुत्तिणीया संबिट्ठंति ।

तत्पश्चात् उन कटुघो ने उन पापी गियरो को भाता देगा । देगकर वे डरे, त्राम को हुए, भागने लगे, उद्रेग को प्राप्त हुए श्रीर बहुत भयभीत हुए । उन्होंने अपने हाथ पर मोर घोंघ अपने शरीर में गोपित कर लिया—छिपा लिया । गोपन करने निश्चय, निस्पन्द (हलन-न रहित) श्रीर मोन—मान्त रह गए ।

शृंगाली की बालाकी

८—तए न ते पावसियासया जेनेय ते कुम्भगा तेनेय उवागवत्तंति । उवागच्चित्ता ते ॥ सव्वघो समंता उव्वत्तेगि, परियत्तेगि, घासारेगि, संसारेगि, चासेगि, घट्टेगि, कंढेगि, ली नहेहि आलुपंति, बंतेहि य अक्खोडेति, नो चेय नं संघाएंति तेति कुम्भगाणं शरीरस पाव पवाहं वा, वावाहं वा उप्पाएत्तए छविच्छेयं वा करेत्तए ।

तए न ते पावसियासया एए कुम्भए बोच्चं पि सक्कं पि सव्वघो समंता उव्वत्तेति, जाव नो वेज नं संघाएंति करेत्तए । ताहे संता संता परितंता निव्विग्गना समाणा सणियं सणियं पक्खोसव्वंति, एगंतमव्वकमंति, निज्जला निष्फदा तुत्तिणीया संबिट्ठंति ।

तत्पश्चात् वे पापी सियारो जहाँ वे कलुए थे, वहाँ आए । आकर उन कटुघों को सब तरफ से फिराने-धुमाने लगे, स्थानान्तरित करने लगे, सरकाने लगे, हटाने लगे, चसाने लगे, स्पर्श करने लगे, हिलाने लगे, क्षुब्ध करने लगे, नाखुनों से फाड़ने लगे श्रीर दातों से चीखने लगे, किन्तु उन कटुघों के शरीर को थोड़ी बाधा, अधिक बाधा या विशेष बाधा उत्पन्न करने में प्रयत्न उनकी चमड़ी छेदने में समर्थ न हो सके ।

तत्पश्चात् उन पापी सियारों ने इन कटुघों की दूसरी बार श्रीर तीसरी बार सब ओर से घुमाया-फिराया, किन्तु यावत् वे उनकी चमड़ी छेदने में समर्थ न हुए । तब वे श्रान्त हो गये—शरीर में थक गए, शान्त हो गए—मानसिक श्लानि को प्राप्त हुए श्रीर शरीर तथा मन-दोनों से थक गए तथा शब्द को प्राप्त हुए । धीमे-धीमे पीछे लौट गये, एकान्त में चले गये श्रीर निश्चल, निस्पन्द तथा मूक होकर ठहर गये ।

अमयत पूर्व की बुद्धि

९—तए न एगे कुम्भए ते पावसियासए चिरंगए बूरगए जाणित्ता सणियं सणियं एगं पायं निष्कम्मइ । तए न ते पावसियासया तेणं कुम्भएणं सणियं सणियं एगं पायं नीणियं पासंति । पासित्ता ताए उव्विट्ठए गईए सिग्यं अवसं तुरियं चंडं जइणं वेगिइ जेनेय ते कुम्भए तेनेय उवागवत्तंति । उवागच्चित्ता तस्स नं कुम्भगसस तं पायं नहेहि आलुपंति, बंतेहि अक्खोडेति, तयो पक्खा मंसं य सोणियं य आहारेति, आहारित्ता तं कुम्भगं सव्वघो समंता उव्वत्तेति जाव नो चेय नं संघाइति करेत्तए, ताहे बोच्चं पि अव्वकमंति, एवं चत्तारि वि पाया जाव सणियं सणियं गीवं नीणेइ । तए न ते पावसियासया तेणं कुम्भएणं गीवं नीणियं पासंति, पासित्ता सिग्यं अवसं तुरियं चंडं नहेहि ।

रतेहि कथातं विहाहेति, विहाहेति तं कुम्भमं जीविषाघो बहरोवेति, बहरोवेति तं यं च सोमिणं च धाहतेति ।

उन दोनों बालुओं में से एक बालु ने उन पापी गियारों को बहुत समय पहले घोर दूर गया जान कर धीरे-धीरे अपना एक पैर बाहर निकाला ।

तत्पश्चात् उन पापी गियारों ने देखा कि उग बालु ने धीरे-धीरे एक पैर निकाला है । यह देखकर वे दोनों उत्फुल्ल गति से धीम्र, धाम, रश्मि, शर, जलमुक्त घोर वेगमुक्त रूप में जहाँ वह बालु था, वहाँ गये । आकर उन्होंने बालु का वह पैर माथों में बिछारकर किया घोर दानों से मोहा । तत्पश्चात् उगने माग घोर रक्त का साधारण किया । साधारण करके वे बालु को उमट-मुमट कर देखने लगे, बिन्तु यावत् उगनी अमरी देखने में समर्थ न हुए । तब वे दूसरी बार हट गए—दूर चले गए । इसी प्रकार आरों पैरों के विषय में कहना चाहिए । तालव्य यह है कि भूगालों के दूसरी बार चले जाने पर बालु ने दूसरा पैर बाहर निकाला । पाग ही छिपे भूगालों ने यह देखा तो वे पुनः भग्न कर सा गए घोर बालु का दूसरा पैर सा गए । दोन दो पैर घोर घीवा शरीर में छिपी होने से उनका कुछ भी न बिगाड़ सके । तब निराश होकर भूगाल फिर एक घोर चले गए घोर दिय गए । जब कुछ देर हो गई तो बालु ने अपना तीसरा पैर बाहर निकाला । भूगालों ने यह देखकर फिर आश्चर्य कर दिया घोर वह तीसरा पैर भी सा गया । एक पैर घोर घीवा फिर भी बची रही । भूगाल उगे न काह सके । तब वे फिर एकान्त में जाकर स्थित गये । तत्पश्चात् बालु ने चौथा पैर बाहर निकाला घोर सभी भूगालों ने हमला बोल कर यह चौथा पैर भी सा लिया । इसी प्रकार कुछ समय अनन्त होने पर उग बालु ने घीवा बाहर निकाली । उन पापी गियारों ने देखा कि बालु ने घीवा बाहर निकाली है । यह देख कर वे धीम्र ही उमके समीप आए । उन्होंने माथों में बिछारण करके घोर दानों में मोह कर उसने कपाल को घमन कर दिया । घमन करके बालु को जीवन-रहित कर दिया । जीवन-रहित करके उगने माग घोर कपिर का साधारण किया ।

निष्पन्नं

१०—एकमेव समणाजगो ! जो अहं निष्पन्नो वा निष्पन्नी वा वापरिवउवज्जमायाणं धंति ए पव्वइए समाने पंच य से इंदियाइं अगुत्ताइं मवति, ते जं इह भवे वेव बहूणं समणाणं बहूणं समणीणं तावगाणं ताविगाणं हीलजिज्जे परतोए वि य नं आगच्छइ बहूणि दहणाणि जायं अणुपरिवट्टइ, जहा कुम्भए अगुत्तिरिए ।

इसी प्रकार है आयुष्मन् धर्मणो ! हमारे जो निर्धन्य धर्मवा निर्धन्य भाषार्थ या उपाध्याय के निरुद्ध दीक्षित होकर पत्नीं दम्पितों का गोपन नहीं करते हैं, वे इसी भय से बहुत माधुमो, गाम्पिषी, धावकी, धाविकामी द्वारा हीलना करने योग्य होते हैं, घोर परलोक में भी बहुत दह पाते हैं, यावत् घमन ममार में परिभ्रमण करते हैं, जैसे अपनी इन्द्रियो—अर्गों का गोपन न करने वाला यह कालुषा मृगु को प्राप्य हुआ ।

## पञ्चम अध्ययन : शैलक

सार : सक्षेप

द्वारका नगरी में बार्हगव तीर्थंकर भगवान् श्रिष्टनेमि का पदार्पण हुआ। वामुदेव अपने बृहत् परिवार के साथ प्रभु की उपासना और धर्मदेजना श्रवण करने पहुँचे। द्वारका नगरी भी पीछे न रहे। साक्षान् तीर्थंकर भगवान् के मुग-गन्ध में प्रवाहित होने वाले बबन कील भव्य प्राणी वक्षित रहना चाहता ?

द्वारका में थावच्चा नामक एक सम्पन्न गृहस्थ महिला थी। उमरा इतनीता पुत्र था के नाम से ही अभिहित होता था। वह भी भगवान् की धर्मदेजना श्रवण करने पहुँचा। व सुनी और वैराग्य के रंग में रंग गया। माता ने बहुत समझावा, साजीजी की, किन्तु था अपने निश्चय पर अटल रहा। अन्त में विवश होकर माता ने दीक्षा-महोत्सव करने का किया, जिसे उसने मौनभाव से स्वीकार किया।

थावच्चा छत्र, चामर आदि भांगने कृष्ण महाराज के पास गई तो उन्होंने स्व और से महोत्सव मनाने को कहा। थावच्चापुत्र के वैराग्य की परीक्षा करने के स्वयं उमरा गए। सोलह हजार राजाओं के राजा, अर्द्ध भरत क्षत्र के अधिपति महाराज श्रीकृष्ण का से थावच्चा के घर जा पहुँचना उनकी प्रसाधारण महत्ता और निरहंकारिता का द्योतक है। को थावच्चापुत्र की परीक्षा के पश्चात् जब विश्वास हो गया कि उसका वैराग्य आन्तरिक है तो उन्होंने द्वारका नगरी में ग्राम घोषणा करवादी—'भगवान् श्रिष्टनेमि के निकट मैं वामा के आश्रित जनो के पालन-पोषण-संरक्षण का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व वामुदेव वह जो दीक्षित होना चाहे, निश्चिन्त होकर दीक्षा ग्रहण करे।

घोषणा सुनकर एक हजार पुरुष थावच्चापुत्र के साथ प्रव्रजित हुए। कालान्तर में थावच्चा पुत्र अनगर, भगवान् श्रिष्टनेमि की अनुमति लेकर अपने साथी एक मह्य मुनियों के साथ देशान्तर में वृषक विचरण करने लगे।

विचरण करते-करते थावच्चापुत्र सौगन्धिका नगरी पहुँचे। वहाँ का नगर-संघ मुदर्शन वर्ध सांख्यधर्म का अनुयायी और शुक्र परिव्राजक का शिष्य था, तथापि वह थावच्चापुत्र की धर्मदेजना श्रवण करने गया। थावच्चापुत्र और मुदर्शन श्रेष्ठी के बीच धर्म के मूल आधार को लेकर मत-हूमा जिसका विवरण इस अध्याय में उल्लिखित है। संवाद से सन्तुष्ट होकर मुदर्शन ने निर्गम-प्रवचन धर्मात् जिनधर्म को अंगीकार कर लिया।

शुक्र परिव्राजक को जब इस घटना का पता चला तो वह मुदर्शन को पुनः प्रश्न पत्र बनाने के विचार में सौगन्धिका नगरी में आया। मुदर्शन डिगा नहीं। दोनों धर्माचार्यों—शुक्र और थावच्चापुत्र—में धर्मवर्चा का आघोषण हुआ। शुक्र अपने शिष्यों के साथ थावच्चापुत्र के समीप पहुँचे। दोनों की चर्चा तो हुई किन्तु उसे कोई तार्त्विक चर्चा नहीं कहा जा सकता। शुक्र ने शरीर के बाह्य में थावच्चापुत्र की फँगने का प्रयास किया मगर थावच्चापुत्र ने उसका गूढ़ अभिप्राय समझा

अध्यायन कीमत के साथ उत्तर दिए । प्रश्नोत्तरों का उन्नेय भूत पाठ में आया है । अन्त में शुक परिव्राजक, चावन्नापुत्र के शिष्य बन गए । शुक के भी एक हजार शिष्य थे । उन्होंने भी अपने गुरु का अनुसरण किया—वे भी साथ ही दीक्षित हो गए ।

शुक अतः एक बार किसी समय शैलकपुर पधारे । वहाँ का राजा शैलक पहले ही चावन्नापुत्र के उपदेश में श्रमणोपासक धर्म अंगीकार कर चुका था । इस बार वह अपने पाँच सौ शिष्यों के साथ दीक्षित हो गया । उसका पुत्र मधुक राजगद्दी पर बैठा ।

शैलक मुनि साधुनर्या के अनुसार देश-देशान्तरों में विचरण करने लगे । उनके गुरु शुक मुनि तब विद्यमान नहीं थे—मिदिनाभ कर चुके थे । शैलक राजर्षि का सुगो में पला मुकीमल शरीर साधु-जीवन की कठोरता को सहन नहीं कर सका । शरीर में दाद-ग्राह हो गई, पित्तज्वर रहने लगा, जेठके कारण वे तीव्र वेदना में पीड़ित हो गए । भ्रमण करते-करते शैलकपुर में पधारे । उनका पुत्र मधुक राजा उपासना के लिए उपस्थित हुआ । उसने राजर्षि शैलक के रोगग्रस्त शरीर को देखकर यथोचित चिकित्सा करवाने की प्रार्थना की । शैलक ने स्वीकृति दी । चिकित्सा होने लगी । विष्मय का विषय है कि चिकित्सकों ने उन्हें मद्यपान का परामर्श दिया और वे मद्यपान करने भी लगे ।

मद्यपान जब अध्यायन का रूप ग्रहण कर लेता है तो व्यक्ति कितना ही विवेकशाली और किसी भी पक्ष पर प्रतिष्ठित क्यों न हो, उसका अध्यायन हुए बिना नहीं रहता । राजर्षि मद्यपान के कुप्रभाव से साधुत्व को भूल गए और सतत भोजन एवं मद्यपान में मस्त रहने लगे । वहाँ से अध्ययन जाने का विचार तक न आने लगा । तब उनके माथी मुनियों ने एकत्र होकर, एक अतः एक को, जो गृहस्थावस्था में उनका मुख्य भत्री था, उनकी सेवा में छोड़कर स्वयं विहार कर जाने का निर्णय किया । वे विहार कर गए, राजर्षि वहीं जमे रहे ।

कार्तिकी बीमासी का दिन था । शैलक आहार-पानी करके और नूद मदिरापान करके मुख्यपूर्वक सोये पड़े थे । उन्हें आचमन किया करने का स्मरण तक न था । पथक मुनि चानुर्मसिक प्रनिश्चमण करने को उद्यत हुए और शैलक के चरणों से अपने मस्तक का स्पर्श किया । शैलक की निद्रा सग हो गई और वे शीघ्र में प्राग वकूला हो उठे । पथक को कटु और कठोर शब्द कहने लगे । पथक मुनि ने क्षमा-प्रार्थना करते हुए कार्तिकी बीमासी की बात कही ।

राजर्षि की धर्म-चेतना जागृत हो उठी । सोचा-राज्य का परित्याग करके मैंने साधुत्व अंगीकार किया और अब ऐसा प्रमत्त एवं शिथिलाचारी हो गया है ! साधु के लिए यह सब अशोभन है ।

दूसरे ही दिन उन्होंने शैलकपुर छोड़ दिया । पथक मुनि के साथ विहार कर चले गए । यह समाचार जानकर उनके सभी शिष्य-साथी मुनि उनके साथ आ मिले ।

अन्तिम समय में सभी मुनियों ने सिद्धि प्राप्त की ।

इस अध्ययन में मुनि-जीवन एवं उनके पारस्परिक संबंध कैसे हैं, इस के संबंध में गहरी भीमासी एवं विचारणा करने की सामग्री विद्यमान है ।



## पञ्चम अध्यायन : शैलक

सार : संक्षेप

द्वारका नगरी में यादवों की तीर्थंकर भगवान् भरिष्ठनेमि का पदार्पण हुआ। वामदेव हुए अपने बृहन् परिवार के साथ प्रभु की उपासना और धर्मदेशना श्रवण करने पहुँचे। द्वारका के नगरी भी पीछे न रहे। साक्षात् तीर्थंकर भगवान् के मुग-चन्द्र में प्रवाहित होने वाले वचनामृत में कौन भव्य प्राणी वंचित रहना चाहता ?

द्वारका में थावच्चा नामक एक सम्पन्न गृहस्थ महिला थी। उसका इकलौता पुत्र थावच्चापुत्र के नाम से ही अभिहित होता था। वह भी भगवान् की धर्मदेशना श्रवण करने पहुँचा। धर्मदेशना सुनी और वैराग्य के रंग में रंग गया। माता ने बहुत समझाया, आजीजी की, किन्तु थावच्चापुत्र अपने निश्चय पर अटल रहा। अन्त में विवश होकर माता ने दीक्षा-महोत्सव करने का प्रस्ताव किया, जिसे उसने मौनभाव से स्वीकार किया।

थावच्चा छत्र, चामर आदि मागने कृष्ण महाराज के पास गई तो उन्होंने स्वयं अपनी ओर से महोत्सव मनाने को कहा। थावच्चापुत्र के वैराग्य की परीक्षा करने वे स्वयं उसके घर पर गए। सोलह हजार राजाओं के राजा, अर्द्ध भरत क्षेत्र के प्रधिपति महाराज श्रीकृष्ण का सहज रूप से थावच्चा के घर जा पहुँचना उनकी असाधारण महत्ता और निरहंकारिता का द्योतक है। श्रीकृष्ण को थावच्चापुत्र की परीक्षा के पश्चात् जब विश्वास हो गया कि उसका वैराग्य आन्तरिक है, तब ही तो उन्होंने द्वारका नगरी में ग्राम घोषणा करवा दी—“भगवान् भरिष्ठनेमि के निकट दीक्षित होने वालों के आश्रित जनो के पालन-पोषण-संरक्षण का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व वामदेव वहन करेंगे। जो दीक्षित होना चाहे, निश्चिन्त होकर दीक्षा ग्रहण करे।

घोषणा सुनकर एक हजार पुरुष थावच्चापुत्र के साथ प्रव्रजित हुए। कालान्तर में थावच्चापुत्र अनेकार, भगवान् भरिष्ठनेमि की अनुमति लेकर अपने साथी एक सहज मुनियों के साथ देश-देशान्तर में पृथक् विचरण करने लगे।

विचरण करते-करते थावच्चापुत्र सौगन्धिका नगरी पहुँचे। वहाँ का नगर-सौंदर्य गुदरान् मद्यपि सांख्यधर्म का अनुयायी और मुक्त परित्राजक का शिष्य था, तथापि वह थावच्चापुत्र की धर्मदेशना श्रवण करने गया। थावच्चापुत्र और गुदरान् श्रेष्ठी के बीच धर्म के मूल आधार को लेकर मवाद हुआ जिसका विवरण इस अध्यायन में उल्लिखित है। सवाद से सन्तुष्ट होकर गुदरान् ने निरर्थक प्रवचन धर्मात् जिनधर्म को अंगीकार कर लिया।

मुक्त परित्राजक को जब इस घटना का पता चला तो वह गुदरान् को पुनः अपना अनुयायी बनाने के विचार से सौगन्धिका नगरी में आया। गुदरान् डिगा नहीं। दोनों धर्माचार्यों—मुक्त और थावच्चापुत्र—में धर्मचर्चा का आयोजन हुआ। मुक्त अपने शिष्यों के साथ थावच्चापुत्र के समीप पहुँचे। दोनों की चर्चा तो हुई किन्तु उमें कोई तार्किक चर्चा नहीं कहा जा सकता। मुक्त ने शब्दों के बल पर थे थावच्चापुत्र को पैमाने का प्रयोग किया मगर थावच्चापुत्र ने उसका शूद्र अभिप्राय समझा

अत्यन्त कौशल के साथ उत्तर दिए। प्रश्नोत्तरो का उल्लेख मूल पाठ में आया है। अन्त में गुरु परिश्रान्त, पावच्छापुत्र के शिष्य बन गए। गुरु के भी एक हजार शिष्य थे। उन्होंने भी अपने गुरु का अनुसरण किया—वे भी साथ ही दीक्षित हो गए।

गुरु अनगार एक बार किसी समय शैलकपुर पधारे। वहाँ का राजा शैलक पहले ही पावच्छापुत्र के उपदेश में धम्मलोपासक धर्म अंगीकार कर चुका था। इस बार वह अपने पाँच सौ भिक्षुओं के साथ दीक्षित हो गया। उसका पुत्र महुक राजगद्दी पर बैठा।

शैलक मुनि साधुचर्या के अनुसार देश-देशान्तरो में विचरण करने लगे। उनके गुरु गुरु मुनि तब विद्यमान नहीं थे—सिद्धि प्राप्त कर चुके थे। शैलक राजपि का सुख में पला मुकुमल शरीर साधु-जीवन की कठोरता को सहन नहीं कर सका। शरीर में दाद-खाज हो गई, पित्तज्वर रहने लगा, जिसके कारण वे तीव्र वेदना में पीड़ित हो गए। भ्रमण करते-करते शैलकपुर में पधारे। उनका पुत्र महुक राजा उपासना के लिए उपस्थित हुआ। उसने राजपि शैलक के रोगग्रस्त शरीर को देखकर यथोचित चिकित्सा करवाने की प्रार्थना की। शैलक ने स्वीकृति दी। चिकित्सा होने लगी। विस्मय का विषय है कि चिकित्सकों ने उन्हें मद्यपान का परामर्श दिया और वे मद्यपान करने भी लगे।

मद्यपान जब व्यसन का रूप ग्रहण कर लेता है तो व्यक्ति कितना ही विवेकशाली और किसी भी पद पर प्रतिष्ठित क्यों न हो, उसका अधःपतन हुए बिना नहीं रहता। राजपि मद्यपान के कुप्रभाव से साधुत्व को भूल गए और सरस भोजन एवं मद्यपान में मस्त रहने लगे। वहाँ से अग्रयण जाने का विचार तक न आने लगा। तब उनके साथी मुनियों ने एकत्र होकर, एक अंतगार पथक को, जो गृहस्थावस्था में उनका मुख्य मंत्री था, उनकी सेवा में छोड़कर स्वयं विहार कर जाने का निर्णय किया। वे विहार कर गए, राजपि वहीं जमे रहे।

कार्तिकी चौमासी का दिन था। शैलक आहार-पानी करके और नूब मंदिरापान करके सुप्तपूर्वक सोये पड़े थे। उन्हें आवश्यक क्रिया करने का स्मरण तक न था। पथक मुनि चातुर्मासिक प्रतिक्रमण करने को उद्यत हुए और शैलक के चरणों से अपने मस्तक का स्पर्श किया। शैलक की निद्रा भंग हो गई और वे क्रोध में आग बबूला हो उठे। पथक को कटु और कठोर शब्द कहने लगे। पथक मुनि ने क्षमा-प्रार्थना करते हुए कार्तिकी चौमासी की बात कही।

राजपि की धर्म-चेतना जागृत हो उठी। सोचा-राज्य का परित्याग करके मैंने साधुत्व अंगीकार किया और अब ऐसा प्रमत्त एवं सिधिलाचारी हो गया हूँ! साधु के लिए यह सब अशोभन है।

दूसरे ही दिन उन्होंने शैलकपुर छोड़ दिया। पथक मुनि के साथ विहार कर चले गए। यह समाचार जानकर उनके सभी शिष्य-साथी मुनि उनके साथ आ मिले।

अन्तिम समय में सभी मुनियों ने सिद्धि प्राप्त की।

इस अध्यायन में मुनि-जीवन एवं उनके पारस्परिक संबंध कैसे हैं, इस के संबंध में गहरी भीमामा एवं विचारणा करने की सामग्री विद्यमान है।

## पंचमं अञ्जयणं : सेलए

प्रारम्भ

१—जइ जं भंते ! तमणेणं भगवया महावीरेणं खउरयस्त नायउभयणस्त भयमट्टे पणत्ते,  
पंचमस्त जं भंते ! नायउभयणस्त के भट्टे पणत्ते ?

जम्बू स्वामी श्री सुधर्मा स्वामी से प्रश्न करते हैं—भगवन् ! यदि भ्रमण भगवान् महामोर  
ने चौथे ज्ञात-अध्ययन का यह अर्थ कहा है तो भगवन् ! पंचम ज्ञात-अध्ययन का क्या अर्थ कहा है ?

द्वारका नगरी

२—एवं खलु जंबू ! तेषं कालेषं तेषं समएणं चारवती नामं नगरी होरया, पाईण-परीणाया  
उदीण-वाहिणविशिषया नवजोयणविशिषया दुवात्तसजोयणायामा धणवइ-मइ-निम्मिया चामीपर-वर-  
पायारणागामणि-पंचवण-कविसीतगसोहिया धलयापुरिसंकासा पमुइय-वक्कीलिया पच्चवत्त देवतोप-  
भूया ।

श्री सुधर्मा स्वामी उत्तर देते हैं—हे जम्बू ! उस काल और उस समय में द्वारवती (द्वारका)  
नामक नगरी थी । वह पूर्व-पश्चिम में लम्बी और उत्तर-दक्षिण में चौड़ी थी । नौ मोजन चौड़ी और  
चारह मोजन लम्बी थी । वह कुवेर की मति से निर्मित हुई थी । सुवर्ण के अष्टाक प्रकार के और पंच-  
रंगी नामा मणियों के बने ऋग्वेद से शोभित थी । धनकापुरी—इन्द्र की नगरी के समान सुन्दर और  
पड़ती थी । उसके निवासी जन प्रमोदयुक्त एवं खीड़ा करने में तत्पर रहते थे । वह साक्षात् देवलो-  
क सरीखी थी ।

रैवतक पर्वत

३—तीसे जं चारवईए नगरीए बहिषा उत्तरपुरच्छिमे दिसीमाए रैवतगे नामं पव्वए होरया-  
सुगे गगनतलमणुतिहंतसिहरे लाणाविहगुच्छ-गुम्म-सया-वत्ति-परिणए हंस-मिग-मऊर-कोव-सारस-  
वधकयाय-मयणसार-कोइलकुलोचयेए धनेगतइग-वियर-उच्छरय-पवाय-पडमार-सिहरपउरे अछ्छरगण-  
देव-संघ-चारण-विज्जाहर-मिहणसंविक्खिने निच्चवणए वसार-वरओर-पुरिसतेसोवकवसवगाण सोडे  
गुभगे विपदंतेणं गुरुये पासाईए वरिसणिज्जे अभिहये पट्टिहये ।

उस द्वारका नगरी के बाहर उत्तरपूर्व दिशा अर्थात् ईशान कोण में रैवतक (गिरनार)  
नामक पर्वत था । वह बहुत ऊँचा था । उसके शिखर गगन-तल को स्पर्श करते थे । वह नाना प्रकार  
के गुच्छों, गुम्बों, मत्तियों और वलियों से व्याप्त था । हंस, मृग, मयूर, कौब, सारस, वनराज,  
मदनमारिका (मैना) और कोयल आदि पक्षियों के झुंडों से व्याप्त था । उसमें धनेक तट और मंड-  
रीम थे । बृहत्तरुमक गुफाएँ थी । झरने, प्रपात, प्राग्भार (कुछ-कुछ नये हुए गिरिप्रदेय) और तिवर  
थे । वह पर्वत क्षणराधों के समूहों, देवों के समूहों, चारण मुनियों और विद्याधरों के मिथुनों (जोशों)

से युक्त था । उसमें दशरथ बंश के समुद्रविजय आदि धीर पुरुषों के, जो कि नेमिनाथ के साथ होने के कारण तीनों लोकों में भी अधिक बलवान् थे, नित्य नये उत्सव होते रहते थे । वह पर्वत सीम्य, भुभग देवने थे प्रिय, गुरुष, प्रमत्ता प्रदान करने वाला, दर्शनीय, धर्मरूप तथा प्रतिरूप था ।

विवेचन—यद्यपि द्वारवती नगरी, रंजितक गिरि धीर धगते मूर्त्ति में वर्णित नन्दनवन आदि मूत्र-रचना के काल में भी विद्यमान थे, तथापि भूतकाल में जिम पदार्थ की जो स्थिति-धरण्या धमवा पर्याय थी वह वर्तमान काल में नहीं रहनी । यों तो समय-समय में पर्याय का परिवर्त्तन होता रहता है किन्तु दीर्घकाल के पश्चात् तो इतना बड़ा परिवर्त्तन हो जाता है कि वह पदार्थ नवीन-सा प्रतीत होने लगता है । भगवान् नेमिनाथ के समय की द्वारवती धीर भगवान् महावीर के धीर उसके भी पश्चात् की द्वारवती में धामूल-चूत परिवर्त्तन हो गया था । इसी दृष्टिकोण से मूर्त्ति में इन स्थानों के लिए भूतकाल की किन्ना का प्रयोग किया गया है ।

४—सहस्र जं देवयगस्य अक्षरसामंते एरथ य जंक्षणवणे नामं उज्जाणे होरथा समोवय-पुष्क-फलसमिद्धे रश्मे मंङ्गणवणप्पमासे पासार्हए हरिसज्जमे अमिरथे पडिहवे ।

सहस्र जं उज्जाणहस बहुमज्जमाणे सुरप्पिए नामं जससाययणे होरथा विधे, वन्नमो ।

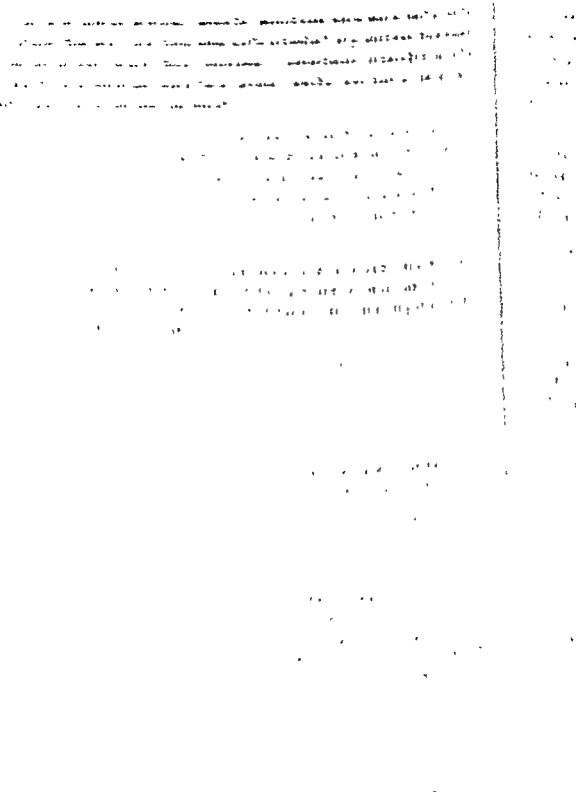
उम रंजितक पर्वत से न अधिक दूर धीर न अधिक समीप एक नन्दनवन नामक उद्यान था । वह सब ऋतुओं सबंधी पुष्पों धीर फलों में समृद्ध था, मनोहर था । (मुनेक पर्वत के) नन्दनवन के समान धानन्दप्रद, दर्शनीय, धर्मरूप तथा प्रतिरूप था ।

उस उद्यान के ठीक बीचोंबीच सप्त का दिव्य आयतन था । यहीं यथायतन का वर्णन प्रोप-पानिक सूत्र के अनुसार कह लेना चाहिए ।

धीहृण-वर्णन

५—सहस्र जं आरवर्हए मयरीए कण्ठे नामं वामुदेवे राया परिवसह । तं जं सत्थ समुद्रविजय-पामोवलाणं वसह्णं वसाराणं, असदेवपामोवलाणं पंचह्णं महावीराणं, उगसेणपामोवलाणं सोलसह्णं राईसहस्राणं, पञ्चुणपामोवलाणं अद्घुणाणं कुमारकोट्ठीणं, संबपामोवलाणं सट्ठीए बुद्धसहस्रीणं, धीरसेणपामोवलाणं एवरकोसाए धीरसाहस्रीणं, महासेनपामोवलाणं छप्पन्नाए बसधगसाहस्रीणं, दप्पिणीपामोवलाणं वत्तीसाए महितासाहस्रीणं, ध्रजंजसेणपामोवलाणं ध्रजेणगणं गणिथासाहस्रीणं, ध्रजेति थ बहूणं ईसर-तलवर जाव [माहंविज-कोट्ठुं विज-इम-सेट्ठि-सेणावह] सत्थवाहपमिईणं वेयहट्ट-गिरिसावरपेरंतसस य दाहिणहट्टमरहसस य आरवर्हए मयरीए आहेयवच्चं जाव [पेरेवच्चं सामित मट्ठितं महत्तरगत्तं आणाईसर-सेणावच्चं कारेमाणे] पासोमाणे विहरह ।

उम द्वारका नगरी में महाराज कृष्ण नामक वामुदेव निवास करते थे । वह वामुदेव वहाँ समुद्रविजय आदि दश दशरथों, बलदेव आदि पाँच महावीरों, उग्रसेन आदि सोलह हजार राजाधर्मों, प्रद्युम्न आदि साढ़े तीन करोड़ कुमारों, शम्भु आदि साठ हजार दुर्दान्त योद्धाओं, धीरसेन आदि इक्कीस हजार पुरुषों-महान् पुरुषार्थ वाले जनो, महासेन आदि छप्पन हजार बलवान् पुरुषों, हकिमणी आदि बत्तीस हजार रानियों, धनंजसेना आदि अनेक सहस्र गणिकाओं तथा अन्य बहुत-से ईश्वरों



तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव चतुरंगिणी सेना के साथ विजय नामक उत्तम हाथी पर ग्राह्य होकर जहाँ थावच्चा गाथापत्नी का भवन था वही आये । आकर थावच्चापुत्र से इस प्रकार बोले—

हे देवानुप्रिय ! तुम मुडित होकर प्रव्रज्या ग्रहण मत करो । मेरी भुजाओं की छाया के नीचे रह कर मनुष्य संबंधी विपुल कामभोगों को भोगो । मैं केवल देवानुप्रिय के धर्मार्थ तुम्हारे ऊपर होकर जाने वाले वायुकाय को रोकने में तो समर्थ नहीं हूँ किन्तु इसके सिवाय देवानुप्रिय को (तुम्हें) जो कोई भी मामान्य पीडा या विशेष पीडा उत्पन्न होगी, उस सब का निवारण करूँगा ।

१८—तए नं से थावच्चापुत्तं कष्टेनं वासुदेवेण एव वृत्ते समाने कष्टं वासुदेवं एवं वपासी—  
'अहं तुम देवानुप्रिया ! मम जीवितकरण मच्छु' एवमार्थं निवारयति, जरं वा सरीररुचिनि-  
तिणि सरीरं ग्रहवपमणि निवारयति, तए नं अहं तव बाहुव्यापारिगहिण विडसे मानुस्सए काम-  
भोगे भुंजमाणे विहरामि ।

तब कृष्ण वासुदेव के इस प्रकार कहने पर थावच्चापुत्र ने कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार कहा—'देवानुप्रिय ! यदि आप मेरे जीवन का अन्त करने वाले भाते हुए मरण को रोक दें और शरीर पर आश्रमण करने वाली एवं शरीर के रूप-सौन्दर्य का विनाश करने वाली जरा को रोक सकें, तो मैं आपकी भुजाओं की छाया के नीचे रह कर मनुष्य संबंधी विपुल कामभोग भोगता हुआ विवश हूँ ।'

१९—तए नं से कष्टे वासुदेवे थावच्चापुत्तं एवं वृत्ते समाने थावच्चापुत्तं एवं वपासी—  
'एए नं देवानुप्रिया ! कुरइकमणिग्रा, जो छलु सक्का सुबसिणावि देवेण वा निवारितए णण्णम  
अप्पणो कामवसएणं ।'

तत्पश्चात् थावच्चापुत्र के द्वारा इस प्रकार कहने पर कृष्ण वासुदेव ने थावच्चापुत्र से इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिय ! मरण और जरा का उत्पन्न नहीं किया जा सकता । अतीव बलशाली देव अथवा दानव के द्वारा भी इनका निवारण नहीं किया जा सकता । हाँ, अपने द्वारा उपार्जित पूर्व कर्मों का क्षय ही इन्हें रोक सकता है ।'

२०—'तं इच्छामि नं देवानुप्रिया ! अग्गण-मिच्छत-अवरिह-कत्ताय-सविपस्स अत्तणो  
कम्मवत्थं करित्तए ।'

(कृष्ण वासुदेव के कथन के उत्तर में थावच्चापुत्र ने कहा—) 'तो हे देवानुप्रिय ! इसी कारण मैं अज्ञान, मिथ्यात्व, अविरति और, कपाम द्वारा संविज, अपने आत्मा के कर्मों का क्षय करना चाहता हूँ ।'

विवेचन—श्रीकृष्ण वासुदेव भगवान् भरिष्ठनेमि के परम भक्त और गृहस्थावस्था के आत्मीय जन भी थे । थावच्चा गाथापत्नी को अपनी ओर से दीक्षासत्कार करने का वचन दे चुके थे । फिर भी वे थावच्चापुत्र को दीक्षा न लेकर अपने संरक्षण में लेने को कहते हैं । इसका तात्पर्य थावच्चापुत्र की मानसिक स्थिति को परखना ही है । वे जानना चाहते थे कि थावच्चापुत्र के अन्तर में वास्तविक वंशधर है अथवा नहीं ? किंवा गार्हस्थ्य उर्वेग के कारण हाँ तो वह दीक्षा लेने का मनोरथ नहीं कर



उम काल और उस समय में शुक्र नामक एक परिव्राजक था । वह ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, ऐतरेयवेद तथा यष्टितंत्र (सांख्यशास्त्र) में कुशल था । माध्यम्युत के शास्त्रों के धर्म में कुशल था । पांच यमों (अहिंसा आदि पांच महाधर्मों) और पांच नियमों (शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और दानध्यान) में युक्त दम प्रकार के शौचमूलक परिव्राजक-धर्म का, दानधर्म का, शौचधर्म का और शौचमूलक का उपदेश और प्रकृष्ट कर रहा था । गेह में रहे हुए थोड़ा वस्त्र धारण करता था । निद्रा, श्रद्धा-अभ्यस्त, मयूरविच्छ का छत्र, धर्मानिक (काष्ठ का एक उपकरण), अकुश (वृद्ध के पते कोढ़ने का एक उपकरण) पवित्री (ताम्र धातु की बनी अगुठी) और कैमरी (प्रमार्जन करने का वस्त्र-रथ), यह सारा उपकरण उसके हाथ में रहते थे । एक हजार परिव्राजकों से परिवृत्त वह शुक्र परिव्राजक जहां शौचधिका नगरी थी और जहां परिव्राजकों का आवास (मठ) था, वहां आया । पाँच परिव्राजकों के उस मठ में उसने अपने उपकरण रने और सांख्यमत के अनुसार अपनी आत्मा को भावित करना हुआ विचारने लगा ।

३२—तए नं शौचधियाए सिधाइन-तिग-अडबक-अडवर (अडमूह-महापह-पहेसु) बहूजशो प्रमममनस एवमाइबलड-एवं लसु सुए परिस्वायए इह हृद्यमागए जाव बिहरइ । परिता निगया । सुदंतशो निगए ।

तब उस शौचधिका नगरी के श्रु गाटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर, चतुर्भुज, महापय, पथों में घनेक मनुष्य एकत्रित होकर परस्पर ऐसा कहने लगे—'निश्चय ही शुक्र परिव्राजक यहाँ आये हैं यावत् आत्मा को भावित करते हुए विचरते हैं।' तात्पर्य यह कि शुक्र परिव्राजक के आगमन की गली-गली और चौराहों में चर्चा होने लगी । परिपद निकली । सुदर्शन भी निकला ।

शुक्र की धर्मवैतान

३३—तए नं से सुए परिस्वायए शीसे परिताए सुदंतणस्त य अमैति च बहूजं संस्त्राणं परि-कहेइ—'एवं लसु सुदंतणा । अहं शौचमूलए धम्म पन्नस्ते । से वि य सोए बुविहे पणस्ते, संजहा—इयसोए य भावसोए य । इयसोए य उडएणं मट्टियाए य । भावसोए इयसोए य मनेहि य । नं नं अहं देवानुप्पिया । किंवि असुई भवइ, तं सर्वं तज्जो पुटवीए आतिप्पइ, तसो पड्ढा सुदंण वारिणा पड्ढा-लिगइ, तसो तं असुई सुई भवइ । एवं लसु जीवा जलामितेयपुमप्पाणो अविघ्णेणं तणां गच्छंति ।

तए नं से सुदंतणं सुयस्त अंतिए धम्मं सोइवा हट्ठे, सुयस्त अंतियं शौचमूलयं धम्मं गेहइ, गेहइता परिस्वायए विपुत्तेण अत्तण-पाण-साइम-साइम-वत्थेणं पड्डितमेमाणे जाव बिहरइ । तए नं से सुए परिस्वायए शौचधियाओ नगरीओ निगच्छइ, निगच्छिता अहिवा जगववविहारं बिहरइ ।

तत्परश्चान् शुक्र परिव्राजक ने उस परिपद को, सुदर्शन को तथा अन्य बहुत-से श्रोताओं को संक्षिप्तमत का उपदेश दिया । यथा-हे सुदर्शन ! हमारा धर्म शौचमूलक कहा गया है । यह शौच दो प्रकार का है—द्रव्यशौच और भावशौच । द्रव्यशौच जल से और मिट्टी से होता है । भावशौच धर्म से और मंत्र से होता है । हे देवानुप्रिय ! हमारे मत के अनुसार जो कोई वस्तु भगुचि होती है, वह सब नत्काले पृथ्वी (मिट्टी) से मात्र दी जाती है और फिर सुद जल से धो ली जाती है । तब भगुचि, शुचि हो जाती है । इसी प्रकार निश्चय ही जीव जलस्नान से अपनी आत्मा को पवित्र करके बिना विघ्न के स्वयं प्राप्त करते हैं ।



तत्पश्चात् गुरुदेव गुरु परिश्रम के धर्म को प्रमाण करने लगे हुए। उन्हीं गुरु दीक्षामूलक धर्म को स्वीकार किया। स्वीकार करने परिश्रमको ही विपुल धन प्राप्त हो स्वादिम धीर वस्त्र मे प्रतिनिधित्व करना हुआ धर्मोत्पन्न धन प्राप्त करने का तत्पश्चात् यह गुरु परिश्रम को प्रमाण करने में सक्षम किया। फिर कर जनार-विहार विचरने लगा—देव-देवताओं के समस्त करने लगा।

बावच्छापुत्र का आगमन

३४—तेजं कासेजं तेजं तमएणं बावच्छापुत्रं नामं धनगारे सहस्रेणं धनगारेणं । पुण्याणुपुत्यं धरमानं, गामाणुगामं बुद्धजमानं, गुहं गुहेणं विहरमानं जेणेष सोगधिया नगरी, नीलासीए उज्जाजे, तेजेश समोसठे ।

उक्त काल धीर उक्त समय में बावच्छापुत्र नामक धनगार एक हजार साधुओं के साथ धनुषम से विहार करते हुए, एक ग्राम में दूसरे ग्राम जाने हुए धीर गुणे-गुणे विचरते हुए जहाँ सोगधिका नामक नगरी थी धीर जहाँ नीलासीक नामक उद्यान था, वहाँ पधारे ।

बावच्छापुत्र-गुरुदेवसत्वाद्

३५—परित्ता निगया । गुहंसतो वि निगए । बावच्छापुत्रं नामं धनगार प्राप्तिं पयाहिणं करेइ, करित्ता यंदइ, नमंसइ, वंसित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—‘गुह्माणं किमुए धम्मे वयस्ते ? तए णं बावच्छापुत्रे सुवत्तणेणं एवं वुत्तं समानं गुहंसतं एवं वयासी—‘गुहंसता ! विणयूत्ते धम्मे पणस्ते । से वि य विणए कुविहे पणस्ते, संजहा-अगारविणए य धनगारविणए म । तए णं जे से अगारविणए से णं वंधं अणुवयाइ, सत्तसिक्खावयाइ, एवकारस उवातगपडिमाओ । तए णं जे से अणगारविणए से णं वंधं महवयाइ वन्तत्ताइ, संजहा-सखाओ पाणाइवायाओ वेरमणं, सखाओ मुसावायाओ वेरमणं, सखाओ अदिग्गादाणाओ वेरमणं, सखाओ मेहुणाओ वेरमणं, सखाओ परिण-हाओ वेरमणं, सखाओ राइभोयणाओ वेरमणं, जाव मिच्छावंसणसत्ताओ वेरमणं, वमविहे पच्चवलाणं, वारस मिक्खुपडिमाओ, इस्सेएणं कुविहेणं विणयमूलएणं धम्मेणं अणुपुत्रेणं अट्ठकम-पगडीओ खवेत्ता लोमगपड्ढाणे भवति ।

बावच्छापुत्र धनगार का आगमन जानकर परिषद् निकली । गुरुदेव भी निकला । उसने बावच्छापुत्र धनगार को दक्षिण तरफ से आरम्भ करके प्रदक्षिणा की । प्रदक्षिणा करके वन्दना की, नमस्कार किया । वन्दना-नमस्कार करके वह इस प्रकार बोला—‘आपके धर्म का मूल क्या है ?

तब गुरुदेव के इस प्रकार कहने पर बावच्छापुत्र धनगार ने गुरुदेव से इस प्रकार कहा— हे गुरुदेव ! (हमारे मत में) धर्म विनयमूलक कहा गया है । यह विनय (चारित्र्य) भी दो प्रकार का कहा है—अगार-विनय अर्थात् गृहस्थ का चारित्र्य और धनगारविनय अर्थात् मुनि का चारित्र्य । इनमें जो अगारविनय है, वह पाँच अणुवत्, अर्थात् क्षिप्तवत् और ग्यारह उपसक्त-प्रतिमा रूप है । धनगार विनय पाँच महावत् रूप है, यथा-समस्त प्राणतिपात (हिंसा) से विरमण, समस्त मृषावादे से विरमण, समस्त अदत्तादान से विरमण, समस्त मधुन से विरमण और समस्त परिग्रह से विरमण

१. यह विनयवर्णन ४० महावीर के काल की अपेक्षा से है ।

इसके प्रतिरिक्त समस्त रात्रि-भोजन से विरमण, यावत् समस्त मिथ्यादर्शन शत्य से विरमण, दम् प्रकार का प्रत्याख्यान भीर वारह भिसुप्रतिमाएँ । इस प्रकार दो तरह के विनयमूलक धर्म से, ऋषयः घाठ कर्मप्रवृत्तियों को शाय करके जीव लोक के अग्रभाग में—भोज में प्रतिष्ठित होते हैं ।

विवेचन-प्रस्तुत सूत्र में श्रुतों का जो उल्लेख किया गया है, वह भी महावीर-शामन को अपेक्षा में ही समझना चाहिए जैसा कि पहले कहा जा चुका है । 'अ गमुत्ताणि' में मुनिश्री नयमल जी ने उल्लिखित पाठ के स्थान पर निम्नलिखित पाठ दिया है और परम्परागत उल्लिखित सूत्रपाठ का टिप्पणी में उल्लेख किया है—

'तस्य णं जे से अणारविणए से एणं चाउज्जामिए निहिदम्मि, तस्य णं जे से अणुगारविणए से एणं चाउज्जामा, तं जहा-सब्बाओ पाणाइवायाओ वेरमणं सब्बाओ मुसावायाओ वेरमणं, सब्बाओ अदिण्णादाणाओ वेरमणं, सब्बाओ बहिद्वादाणाओ वेरमणं ।' अरिष्टनेमि के शासन की दृष्टि से यह पाठ अधिक सगत है । प्रस्तुत कथानक का सम्बन्ध भ० अरिष्टनेमि के काल के साथ हो है ।

३६—तए णं यावच्चापुत्ते सुदंसणं एवं वयासी—'तुम्हे णं सुदंसणा ! किपूतए धम्मि पणत्ते ?'

'प्रम्हाणं देवानुगियया ! सोयमूले धम्मि पणत्ते, जाव' सगं मच्चुत्ति ।'

तत्पश्चात् यावच्चापुत्र ने मुदर्शन से कहा—सुदर्शन ! तुम्हारे धर्म का मूल क्या कहा है ?

(मुदर्शन ने उत्तर दिया—) देवानुप्रिय ! हमारा धर्म शौचमूलक कहा गया है । वह शौच दो प्रकार का है—द्रव्यशौच और भावशौच । द्रव्यशौच जल और मिट्टी से तथा भाव-शौच दर्म और मन से होता है । अशुचि वस्तु मिट्टी से साजने से शुचि हो जाती है और जल से धो ली जाती है । तब अशुचि शुचि हो जाती है ।] इस धर्म में जीव स्वर्ग में जाते हैं । (शुक का पूर्ववर्णित उपदेश महा पूरा दोहरा लेना चाहिए ।)

३७—तए णं यावच्चापुत्ते सुदंसणं एवं वयासी—'सुदंसणा ! से जहानामए केई पुरिसे एणं महं रहिरकयं वत्थं रहिरेणं चैव धोवेज्जा, तए णं सुदंसणा । तस्स रहिरकयस्स रहिरेणं चैव पवत्ता-लिज्जमाणस्स अरिय काइ सोही ?

'णो तिणट्ठे समट्ठे ।'

तब यावच्चापुत्र अनंगार ने सुदर्शन से इस प्रकार कहा—हे सुदर्शन । जैसे कुछ भी नाम वाला कोई पुरुष एक बड़े रुधिर से लिप्त वस्त्र को रुधिर से ही धोए, तो हे सुदर्शन । उस रुधिर से ही धोमे जाने वाले वस्त्र की कोई शुद्धि होगी ?

(सुदर्शन ने कहा)—यह अर्थ समर्थ नहीं, अर्थात् ऐसा नहीं हो सकता—रुधिर से लिप्त वस्त्र रुधिर से शुद्ध नहीं हो सकता ।

३८—एवामेव सुदंसणा ! तुमं पि पाणाइवाएण जाव<sup>२</sup> मिच्छादंसणसत्तेणं नत्थि सोहो, जहा तस्स रहिरकयस्स वत्थस्स रहिरेणं चैव पवत्तालिज्जमाणस्स नत्थि सोहो ।

‘सुदंशना ! से जहानामए केइ पुरिसे एगं महं रहिरकयं वत्यं सज्जियाखारेणं प्रणुतिना,  
अणुलिपिता पयणं आरहेइ, आरहिता उण्ह गारहेइ, गारहिता तथो पच्छा सुद्धेणं वारिणा धोवेइ,  
से नूणं सुदंशना ! तस्स रहिरकयस्स वत्यस्स सज्जियाखारेणं अणुलितस्स पयणं आरहिणम्  
उण्हं गारहिणस्स सुद्धेणं वारिणा पक्खालिज्जमाणस्स सोही भवइ ?’

‘हंता भवइ ।’

एवामेव सुदंशना ! अहं पि पाणाइवायधेरमणेणं जाय मिच्छादंशणतत्सयेरमणेणं प्रिय  
सोही, जहा वि तस्स रहिरकयस्स वत्यस्स जाय सुद्धेणं वारिणा पक्खालिज्जमाणस्स प्रतिय सोही ।  
सुदर्शन का प्रतिबोध

इसी प्रकार हे सुदर्शन ! तुम्हारे मतानुसार भी प्राणातिपात से यावत् मिथ्यादर्शनान्त्य के  
गुडि नहीं हो सकती, जैसे उस रुधिरलिप्त और रुधिर से ही धोये जाने वाले वस्त्र की गुडि  
नहीं होती ।

हे सुदर्शन ! जैसे यथानामक (कुछ भी नाम वाला) कोई पुरुष एक बड़े रुधिरलिप्त वस्त्र  
को सज्जी के खार के पानी में भिगोवे, फिर पाकस्थान (चूल्हे) पर चढ़ावे, चढ़ा कर उष्णता ग्रहण  
करावे (उबाले) और फिर स्वच्छ जल से धोवे, तो निश्चय हे सुदर्शन ! वह रुधिर से निप्त वस्त्र,  
सज्जीखार के पानी में भीग कर चूल्हे पर चढ़ कर, उबल कर और गुद जल से प्रक्षालित होकर  
गुद हो जाता है ?

(सुदर्शन कहता है—) हाँ, हो जाता है ।’

इसी प्रकार हे सुदर्शन ! हमारे धर्म के अनुसार भी प्राणातिपात के विरमण से यावत्  
मिथ्यादर्शनान्त्य के विरमण में गुडि होती है, जैसे उस रुधिरलिप्त वस्त्र की यावत् गुद जल में धोये  
जाने पर गुडि होती है ।

३६—तस्य णं सुदंशने संबुद्धे थावच्चापुसं संबइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयामी—  
‘इच्छामि णं भंते ! धम्मं तोव्वा जानित्तए, जाव समणोवासए जाए अहिमयमोवाजीये जाव परि-  
साभिमामे विहरइ ।

तत्पश्चात् सुदर्शन को प्रतिबोध प्राप्त हुआ । उसने थावच्चापुत्र को वन्दना की, नमस्कार  
किया । वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार कहा—‘भगवन् ! मैं धर्म सुनकर उठे जानना धर्मात्  
अंगीकार करना चाहता हूँ ।’ यावत् (थावच्चापुत्र अनंगार ने धर्म का उपदेश किया) वह धर्मोपदेश  
श्रवण करके श्रमणोपागमक हो गया, जीवाजीव का जाता हो गया, यावत् निषंग्य श्रमणों को आहार  
आदि का दान करना हुआ विचरने लगा ।

दुष्ट का वृत्तरागवन

४०—तए णं तस्स सुवस्स परिक्खायणस्स इमीत्ते कहाए सद्धट्ठस्स समाणस्स अयमेवाए  
आव [अभ्ररिपए विनिए परिपए मणोमए संकप्पे] समुप्पज्जित्था—एवं सत्तु सुदंशनेणं सोपपामं  
विप्यव्हाय विणपमुने यम्मे परिहवन्ते । तं तोयं सत्तु मम सुदंशणस्स दिट्ठि वामेसए, पुणरवि तोपपुमए  
यम्मे आघवित्तए ति वट्ठु एवं सपेहेइ, संपेहिता परिक्खायणतहस्सेणं सद्धि जेणव तोगंयिमा तपरी

अनेव परिखायमावसहे तेनेव उवागच्छद्, उवागच्छिता परिखायमावसहंति भञ्जितेव करेद्, करिता पाउरसवपपरिहिए पविरसपरिखायनेणं तद्धि संपरिवृष्टे परिखायमावसहामो पश्चिणिषलमद्, पश्चिणिषलमिता तोगंधियाए नगरीए मग्गमग्गहेणं अनेव सुदसणरस गिहे, अनेव सुदंसणे तेनेव उवागच्छद् ।

तत्पश्चात् शुक्र परित्राजक को इस वया (घटना) का धर्म धर्मान् समाचार जान कर इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ—'मुदर्शन ने शीघ्र-धर्म का परित्रायाम करके विनयमूल धर्म अंगीकार किया है । अतएव मुदर्शन की दृष्टि (धृष्टा) का वसन (त्याग) कराना और पुनः शीघ्रमूलक धर्म का उपदेश करना मेरे लिए अयोग्य होगा ।' उसने ऐसा विचार किया । विचार करके एक हजार परित्राजकों के साथ जहाँ शीघ्रधिका नगरी थी और जहाँ परित्राजकों का मठ था, वहाँ आया । आकर उसने परित्राजकों के मठ में उपकरण रक्खे । तदनन्तर गुरु ने रक्खे वस्त्र धारण किये हुए वह थोड़े परित्राजकों के साथ, उनसे घिरा हुआ परित्राजक-मठ से निकला । निकल कर शीघ्रधिका नगरी के मध्यभाग में होकर जहाँ मुदर्शन का घर था और जहाँ मुदर्शन था, वहाँ आया ।

४१—तए नं सुए परिखायए सुदंसणं अणमग्गुत्थं वासित्ता एवं वयासी—'तुमं नं सुदंसणा । अणमा ममं एज्जमाणं वासित्ता अणमग्गुत्थे जाव (पच्छुग्गच्छति आहामि) वंसति, इयामि सुदंसणा । तुमं ममं एज्जमाणं वासित्ता जाव (मो अणमग्गुत्थे, मो पच्छुग्गच्छति, मो आहामि) नो वंसति, तं कस्स नं तुमे सुदंसणा । इमेमाक्खे विणयमूलधम्मं पडिक्खाने ?

तव मुदर्शन ने शुक्र परित्राजक को आता देता । देवकर वह खड़ा नहीं हुआ, सामने नहीं गया, उगका धादर नहीं किया, उसे जाना नहीं, वन्दना नहीं की, किन्तु मोन रहा ।

तव शुक्र परित्राजक ने मुदर्शन को न लडा हुआ देवकर इस प्रकार कहा—हे मुदर्शन ! पहले तुम मुझे आता देवकर खड़े होने थे, सामने आते और धादर करते थे, वन्दना करते थे, परन्तु हे मुदर्शन ! अब तुम मुझे आता देवकर [न खड़े हुए, न सामने आए । न धादर किया] न वन्दना की तो हे मुदर्शन ! (शीघ्रधर्म त्याग कर) किसके समीप तुमने विनयमूल धर्म अंगीकार किया है ?

४२—तए नं तं सुदंसणं मुएणं परिखायएणं एवं वुत्ते सामाणे आसणामो अणमग्गुत्थे, अणमग्गुत्था करपत्त (परिगहियं तिरसावत्तं मरवए अंजलि कट्टु) सुयं परिखाययं एवं वयासी—'एवं सल्लु देवानुप्पिमा । अरहमो अरिदठ्ठनेमिस्स अन्तेवासी यावच्छापुत्ते नामं अणगारे जाव इहमागए, इह चेय नीतातोए उज्जाने विहरद्, तस्स नं अंतिए विणयमूले धम्मं पडिक्खाने ।

तत्पश्चात् शुक्र परित्राजक के इस प्रकार कहने पर मुदर्शन आसन से उठ कर खड़ा हुआ । उसने दोनों हाथ जोड़े मस्तक पर अंजलि की और शुक्र परित्राजक से इस प्रकार कहा—देवानुप्पि । अरिहत अरिदठ्ठनेमि के अन्तेवासी यावच्छापुत्र नामक अणगार विचरते हुए यावत् यहाँ आये हैं और यही नीताशोक नामक उद्यान में विचर रहे हैं । उनके पास से मैंने विनयमूल धर्म अंगीकार किया है ।

४३—तएव ते सुए परिश्रवात् सुदंशनं एवं तपानो—तं तद्व्याप्तो नं गुरुमना । तत्र धर्मापरित्यक्तं धावच्छाप्तुमस्मिन्नपि पात्रमवयमो । इमाहं न न त्वात्वाहं धर्माहं हेतुं विनिर्वाह कारणाद् वागारणाद् पुनराहो । तज्ज एव मे ते इमाह धर्माहं जाय तामरह, तएवं धर्मं वांति नमसामि । अहं मे ते इमाह धर्माहं जाय (हेतुं विनिर्वाहं कारणाद् वागारणाद्) नो वातोऽहं तएवं अहं एह हि चैव धर्माहं हेतुं विनिर्वाहं विनिर्वाहं कस्मिन्मामि

तत्पदानां गुरु परिश्रवात् ने सुदंशनं मे दम परार नता—हे सुदंशन ! त्वं तम गुरुते धर्माचारं धावच्छाप्तुं मे ममोप दकट हो—यत्न धीर इन धर्मों को, हेतुओं को, प्रश्नों को, कारणों को तथा व्याकरणों को पूछ । 'अगर वह मेरे इन धर्मों, हेतुओं, प्रश्नों, कारणों धीर व्याकरणों का उत्तर दे तो मैं उन्हें बन्दना करूँगा, नमस्कार करूँगा । धीर यदि वह मेरे इन धर्मों या गुरु व्याकरणों को नहीं कहेंगे—इनका उत्तर नहीं देने तो मैं उन्हें इन्हीं धर्मों तथा हेतुओं धार्मिक में निरन्तर कर दूँगा ।

विशेषण—गुरु मे अर्थ, हेतु प्रश्न धीर व्याकरण पूछने का तथैव किया गया है । इनमें से 'अर्थ' शब्द अनेकार्थक है । फीसकार कहते हैं—

अर्थः स्याद् विषये मोक्षे, साध्याद्य-प्रयोजने ।

व्यवहारे धने सास्त्रे, वस्तु-हेतु-निवृत्तिषु ॥

अर्थात् अर्थ शब्द इन अर्थों का वाचक है—विषय, मोक्ष, शब्द का वाच्य, प्रयोजन, व्यवहार, धन, सास्त्र, वस्तु, हेतु धीर निवृत्ति । इन अर्थों में से यहाँ अनेक अर्थ धटित हो सकते हैं किन्तु अग्नि धुकः धीर धावच्छाप्तु के सवाद का जो उल्लेख है, उनके आधार पर 'शब्द का वाच्य' अर्थ विशेषतः सगत लगता है । 'कुलस्था, सरित्तयवा' आदि शब्दों के अर्थ को लेकर ही सवाद होता है ।

'हेतु' दर्शनशास्त्र में प्रयुक्त होने वाला विविष्ट शब्द है । माध्य के होने पर ही होने वाला धीर साध्य के बिना न होने वाला हेतु कहलाता है, यथा—अग्नि के होने पर ही होने वाला धीर अग्नि के बिना नहीं होने वाला धूम, अग्नि के अस्तित्व के ज्ञान में हेतु है ।

बिन्नी कार्य की उत्पत्ति में जो साधन हो वह कारण है । जैसे-धूम (धुँआ) कारन की उत्पत्ति में अग्नि कारण है ।

व्याकरण का अर्थ है—वस्तु स्वरूप को स्पष्ट करने वाला वचन । यही व्याकरण से अभिप्राय है—उत्तर ।

धुक-धावच्छाप्तु-संवाद

४४—तएवं ते सुए परिश्रवाद्यसहस्रेणं सुदंशजेन च सेट्टिणा सद्धि जेनेव नीतासीए उज्जाणे, जेनेव धावच्छाप्तुत्ते अणगारे तेजेव उवागच्छद् । उवागच्छिता धावच्छाप्तुत्तं एवं वपासी—'जत्ता से भंते । जणजिजं ते ? अवावाहं पि ते ? कासयं विहारं ते ?

तएवं ते धावच्छाप्तुत्ते सुएणं परिश्रवायेणं एवं वृत्ते समाणे सुयं परिश्रवायनं एवं वपासी—'तया ! जत्ता वि मे, जणजिजं पि मे, अवावाहं पि मे, कासयविहारं पि मे ।'

तत्पदधात् यह धुक परिव्राजक, एक हजार परिव्राजकों के धीर सुदंशन सेठ के साथ जहाँ नीतासीक उद्यान था, धीर जहाँ धावच्छाप्तु अणगार थे, वहाँ आया । आकर धावच्छाप्तु ने कहने

सुया—‘भगवन् ! तुम्हारी यात्रा चल रही है ? यापनीय है ? तुम्हारे अव्यावाय है ? और तुम्हारा प्रामुक विहार हो रहा है ?

तब धावच्चापुत्र ने मुक परिव्राजक के इस प्रकार कहने पर मुक ने कहा—हे मुक ! मेरी यात्रा भी हो रही है, यापनीय भी चल रहा है, अव्यावाय भी है और प्रामुक विहार भी हो रहा है ।

४५—तएवं से सुए धावच्चापुत्रं एवं वयासी—किं भंते ! जत्ता ?

‘सुया ! जं नं मम भाण-वंसण-धरित्त-तव-संजममाइएहि ओएहि जोयणा से तं जत्ता ।’

‘से किं तं भंते ! जवणिज्जे ?

‘सुया ! जवणिज्जे बुविहे पणत्ते, तंजहा—इ’दियजवणिज्जे य नोइ’दियजवणिज्जे य ।’

‘से किं तं इ’दियजवणिज्जे ?’

‘सुया ! जं नं मम सोइ’दिय-वविण्णिय-धाणिदिय-जिणिमदिय-फासिदियाइ निरवह्याइ’ वसे वट्टंति, से तं इ’दियजवणिज्जे ।’

‘से किं तं नोइ’दियजवणिज्जे ?’

‘सुया ! जम्मं कोह-माण-माया-लोभा लोणा, उवसेता, नो उदयति, से तं नोइ’दियजवणिज्जे ।’

तत्पश्चात् मुक ने धावच्चापुत्र ने इस प्रकार कहा—‘भगवन् ! आपकी यात्रा क्या है ?

(धावच्चापुत्र—) हे मुक ! ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य, तप, और मयम आदि योगों से पदकाय [पाष स्थावरकाय—पृथ्वीकाय, अक्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, और छुटे वनकाय—द्वीन्द्रिय ने पंचेन्द्रिय तक] के जीवों की यत्ना करना हमारी यात्रा है ।

मुक—‘भगवन् ! यापनीय क्या है ?’

धावच्चापुत्र—मुक ! यापनीय दो प्रकार का है—इन्द्रिय-यापनीय और नोइन्द्रिय-यापनीय ।

मुक—‘इन्द्रिय-यापनीय किसे कहते हैं ?’

‘मुक ! हमारी श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुर्इन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय बिना किसी उपद्रव के बसीभूत रहती है, यही हमारा इन्द्रिय-यापनीय है ।’

मुक—‘नो-इन्द्रिय-यापनीय क्या है ?’

‘हे मुक ! क्रोध मान माया और मोह रूप कषाय क्षीण हो गये हों, उपजात हो गये हों, उदय में न आ रहे हों, यही हमारा नोइन्द्रिय-यापनीय कहलाता है ।’

४६—‘से किं तं भंते ! अव्यावाहं ?’

‘सुया ! जम्मं मम वाइय-वित्तिय-सिन्धिय-सन्निवाइया विविहा रोपायंका णो उदरैरिति, से तं अव्यावाहं ।’

‘से किं तं भंते ! फासुयविहारं ?’

‘सुया ! जम्मं भारामेसु उज्जाणेसु देवउसेसु समसु यवासु इत्थि-पस-पंगविबज्जिणायसु वसहोसु पाइहारियं पीड-फलस-सेज्जा-संचारयं उग्गिण्हितां नं विहरामि, से तं फासुयविहारं ।’

५०—‘एगे भवं ? दुवे भवं ? अणेगे भवं ? अक्खए भवं ? अय्यए भवं ? अयट्ठए भवं ?  
अणेगभूयभावमविए वि भवं ?

‘सुया ! एगे वि अहं, दुवे वि अहं, जाय अणेगभूयभावमविए वि अहं ।’

‘से केणट्ठेणं भंते ! एगे वि अहं जाय अणेगभूयभावमविए वि अहं ?

‘सुया ! दवट्ठयाए एगे अहं, नाणदंसणट्ठयाए दुवे वि अहं, पएसट्ठयाए अक्खए वि अहं,  
अव्वए वि अहं, अवट्ठए वि अहं, उवओगट्ठयाए अणेगभूयभावमविए वि अहं ।

शुक परिव्राजक ने पुनः प्रश्न किया—आप एक हैं ? आप दो हैं ? आप अनेक हैं ? आप  
अक्षय हैं ? आप अक्षय हैं ? आप अवस्थित हैं ? आप भूत, भाव और भावी वाले हैं ?

(यह प्रश्न करने का परिव्राजक का अभिप्राय यह है कि अगर धावच्चापुत्र अनगार आत्मा  
को एक कहेंगे तो श्रोत्र आदि इन्द्रियों द्वारा होने वाले ज्ञान और शरीर के अवयव अनेक होने से  
आत्मा की अनेकता का प्रतिपादन करके एकता का खंडन करूंगा । अगर वे आत्मा का द्विव स्वीकार  
करेंगे तो ‘ग्रहम्—मैं’ प्रत्यय से होने वाली एकता की प्रतीति से विरोध बतलाऊंगा । इसी प्रकार  
आत्मा की नित्यता स्वीकार करेंगे तो मैं अनित्यता का प्रतिपादन करके उसका खंडन करूंगा । यदि  
अनित्यता स्वीकार करेंगे तो उसके विरोधी पक्ष की अंगीकार करके नित्यता का समर्थन करूंगा ।  
अगर परिव्राजक के अभिप्राय को असफल बनाते हुए, अनेकान्तवाद का आश्रय लेकर धावच्चापुत्र  
उत्तर देते हैं—)

‘हे शुक ! मैं द्रव्य की अपेक्षा से एक हूँ क्योंकि जीव द्रव्य एक ही है । (यहां द्रव्य से एकत्व  
स्वीकार करने से पर्याय की अपेक्षा अनेकत्व मानने में विरोध नहीं रहा ।) ज्ञान और दर्शन की  
अपेक्षा में मैं दो भी हूँ । प्रदेशों की अपेक्षा से मैं अक्षय भी हूँ, अव्यय भी हूँ, अवस्थित भी हूँ ।  
(क्योंकि आत्मा के लोकाकाश के बराबर असंख्यात प्रदेश हैं और उनका कभी पूरी तरह क्षय नहीं  
होना, छोटे में प्रदेशों का भी व्यय नहीं होता, उसके असंख्यात प्रदेश सदैव अवस्थित—कायम रहते  
हैं—उनमें एक भी प्रदेश की मूलता या अधिकता कदापि नहीं होती ।) और उपयोग की अपेक्षा में  
अनेक भूत (अतीत कालीन), भाव (वर्तमान कालीन) और भावी (भविष्यत् कालीन), भी हूँ, अर्थात्  
अनित्य भी हूँ । तालपर्यं यह है कि उपयोग आत्मा का गुण है, आत्मा में कश्चित् अभिन्न है, और वह  
भूत, वर्तमान और भविष्यत् कालीन विषयों की जानता है और सदैव पलटता रहता है । इस प्रकार  
उपयोग अनित्य होने में उगमें अभिन्न आत्मा भी कश्चित् अनित्य है ।

विशेषण—यही मुख्य रूप में आत्मा का कश्चित् एकत्व, अनेकत्व, नित्यत्व और अनित्यत्व  
प्रतिपादन किया गया है, किन्तु जैनदर्शन के अनुसार और वास्तविक रूप से जगत् के सभी पदार्थों  
पर यह कथन पड़ित होता है । ‘उपपन्नेद वा, विगमेद वा, भुवेद वा,’ यह तीर्थंकरों की मूलवाणी है  
इसका अभिप्राय यह है कि समस्त पदार्थों का उत्पाद होता है, विनाश होता है और वे ध्रुव-नित्य  
भी रहते हैं । यही वाचक उमाश्वानि कहते हैं—‘उत्पादव्ययप्रोक्ष्ययुक्तं सत्’ । अर्थात् प्रायेण पदार्थ  
त्रिमयी होता है, उत्पाद, व्यय और प्रोक्ष्यय है । ये तीनों त्रिमये एक साथ, निरन्तर—क्षण-क्षण  
नहीं होंगे कोई अस्तिव्यवस्थित पदार्थ ही नहीं सरना ।

सहन प्रदन हो सकता है कि नित्यता और अनित्यता परस्पर विरोधी धर्म हैं तो एक साथ एक ही पदार्थ में किस प्रकार रह सकते हैं ?

उत्तर इस प्रकार है—प्रत्येक पदार्थ-वस्तु के दो पहलू हैं—द्रव्य और पर्याय । ये दोनों मिल कर ही वस्तु कहलाते हैं । द्रव्य के बिना पर्याय और पर्याय के बिना द्रव्य होता नहीं है । उदाहरणार्थ—आत्मा द्रव्य है और वह किसी न किसी पर्याय के साथ ही रहती है । द्रव्य और पर्याय परस्पर भिन्न भी हैं और अभिन्न भी हैं । इनमें से वस्तु का द्रव्यास्य शाश्वत है, इस दृष्टि में वस्तु नित्य है । पर्याय-अन्य पलटता रहता है, अतएव पर्याय की दृष्टि में वस्तु अनित्य है । हमारा अनुभव और प्राधुनिक विज्ञान इस सत्य का समर्थन करता है ।

सामान्य और विशेष धर्म प्रत्येक पदार्थ के अभिन्न भग हैं । इनमें से सामान्य को प्रधान रूप से दृष्टि में रख कर जब पदार्थों का निरीक्षण किया जाता है तो उनमें एकरूपता प्रतीत होती है और जब विशेष को मुख्य करके देखा जाता है तो जिसमें एकरूपता प्रतीत होती थी उन्हीं में भिन्नता-भिन्नता जान पड़ती है । अतः सामान्य की अपेक्षा एकरव और विशेष की अपेक्षा भिन्नकरव सिद्ध होता है ।

शुक की प्रवचन

५१—एतन् गं से सुए संक्रुद्धे थावच्चापुत्तं वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—  
'इच्छामि गं भंते ! तुहमे अंतिए केवलपग्नत्तं धम्मं नित्तमित्ते । धम्मकहा माणियव्वा ।

तए गं से सुए परिणामए थावच्चापुत्तस्स अंतिए धम्मं सोच्चा नित्तम्म एवं वयासी—  
'इच्छामि गं भंते ! परिणामगमहस्सेणं सद्धिं संपरिवुद्धे देवानुप्पियणं अंतिए मुंटे भवित्ता पव्वइत्तए ।'

'अहामुहं देवानुप्पिया !' जाव उत्तरपुरव्विद्धमे विसीमाणे तिवंडयं जाव' घाउरत्तामो य एगंते एडेइ, एवित्ता सममेव सिंह उप्पाडेइ, उपाडित्ता जेणेव थावच्चापुत्तं अणगारे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता थावच्चापुत्तं अणगारं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता थावच्चापुत्तस्स अणगारस्स अंतिए मुंटे भवित्ता जाव पव्वइए । सामाइयमाइयाइ' चोइमपुव्वाइ' अहिज्जइ । तए गं थावच्चापुत्तं सुयस्स अणगारसहस्सं सीसत्ताए विमरइ ।

थावच्चापुत्र के उत्तर में शुक परिव्राजक को प्रतिबोध प्राप्त हुआ । उसने थावच्चापुत्र को वन्दना की, नमस्कार किया । वन्दना और नमस्कार करके इस प्रकार कहा—'भगवन् ! मैं आपके पाम से केवलीप्ररूपित धर्म मुनने की अभिलाषा करता हूँ । यहाँ धर्मकथा का वर्णन श्रोत्रपातिक सूत्र के अनुसार समझ लेना चाहिए ।

तत्पश्चात् शुक परिव्राजक थावच्चापुत्र से धर्मकथा सुन कर और उसे हृदय में धारण करके इस प्रकार बोला—'भगवन् ! मैं एक हजार परिव्राजकों के साथ देवानुप्रिय के निकट, मुंजित होकर प्रव्रजित होना चाहता हूँ ।'

थावच्चापुत्र अणगार बोले—'देवानुप्रिय ! जिस प्रकार मुख उपजे वैसे करो ।' यह सुनकर



यावत् उत्तरपूर्व दिशा में जाकर शुक परिव्राजक ने त्रिदंड आदि उपकरण यावत् गेह से ले कर एकान्त में उतार डाले । अपने ही हाथ से शिखा उखाड़ ली । उखाड़ कर जहाँ यावच्चापुत्र भनगर थे, वहाँ आया । आकर वन्दन-नमस्कार किया, वन्दन-नमस्कार करके मुंहित होकर यावत् यावच्चापुत्र भनगर के निकट दीक्षित हो गया । फिर सामायिक से आरम्भ करके चौदह पूर्वा का ज्ञान किया । तत्पश्चात् यावच्चापुत्र ने शुक को एक हजार भनगर (जो उसके साथ दीक्षित हुए थे) शिष्य के रूप में प्रदान किये ।

सायबबाबु की मूर्ति:

५२—तए णं यावच्चापुत्ते सोगंधियाधो नयरीधो नीतासोपाधो पडिनिक्कमइ । पडिनिक्कमिस्सा बहिया जणवपयिहारं विहरइ । तए ण से यावच्चापुत्ते भ्रणगरसहस्सेणं सट्ठि संपरिवट्ठे जेणं पुंडरीए पयए तेणेय उवागच्छइ । उवागच्छिता पुंडरीयं पययं सणियं सणियं बुहहइ । बुहहिया मेघपणत्तमिगासं देयसन्निवायं पुट्ठविसिप्तापट्ठं जाय (पडिसेहेइ, पडिसेहिस्सा ज्जाव संतेहणा-भूमन-भूमिणं मत्तपाणपडिप्पाइविए) पाप्पोवगमण समणवग्ने ।

भूनिष्पन्नं भूतपाण्यपि विद्यते (पाण्यवगमनं समनुवर्त्तते) ।  
तएव न संतः पायश्चात्तु बहूनि वासाणि सामान्यपरिधाय पाञ्चजिन्ता मांसिषा संसेह्या  
गन्धिभक्ताः प्रणतया द्येहिता जायन्ते वल्लभानां दंतर्षणं समुत्पादयित्वा तस्मिन् पक्षे सिद्धं बुद्धं भुत्तं  
प्रसंगे परिनिर्वाद्ये गन्धदुष्पत्पहीने ।

मगधेशान् यावन्नापुत्र धनमार सौमधिका नगरी से भीर नीलासोक उद्यान में बाह्य  
निर्वाण । निर्वान कर जनपदविहार प्रमाण् विभिन्न देशों में विचरण करने लगे । तपस्वान् क  
यावन्नापुत्र (धन) अन्तिम समय मगधजट समझ कर) हजार साधुओं के साथ जहाँ पुण्डरीक-  
धान् जन गर्वन था, वहाँ धामे । भावर धीरे-धीरे पुण्डरीक पर्यंत पर आरुह हुए । आरुह होकर  
उत्तरी मेघघटा के समान श्याम भीर जहाँ देवों का आगमन होता था ऐसे पृथ्वीनिवासिक  
प्रतिगमन किया । प्रतिगमन करके मन्वेगता धारण कर आहार-पानी का त्याग कर उस निवास  
पर आरुह होकर यावन् पादरोगमन धनगन सहगु किया ।

नन्दबालू वर धारकबालुन बहुत लयी तर धामधनपयैय पाल कर, एक मान की गनस करके नाउ अलौ का धनदान करके सोवन केवल ज्ञान और केवल दर्शन प्राप्त करके मिष्ट दूध, दूध, ममान बमो मे मुक्त दूध, ममान का धन किया, परिनिर्वाण प्राप्त किया तथा सर्व दुःख मुक्त दूध ।

## ਸੰਖੇਪ ਰਾਹਤਾ ਦੀ ਵੇਖਣਾ

२३—अतः नं मुनि सन्मया कयाई जेनेत्र सेगनपुरे मयरे, जेनेत्र मुमुक्षिमार्गे उग्रमाने ते  
 लक्ष्मीनिष्ठः । बहिना निम्नया, सेमघो निम्नपद्वि । धम्म सोवणा जं नवरं—देवानुत्तिया । पवन  
 कोवणाई बंध बहिनाई धातुपद्वि, संयुं च कुमारं वज्रे टावेवि, तद्यो पयसा देवानुत्तियानं ध  
 मुं हे बहिना काटाराको धम्मनारिं धव्यदावि ।”

[illegible]

तत्पश्चात् शुक धनगर किसी समय जहाँ शैलकपुर नगर था और जहाँ सुभ्रमिभागनामक उद्यान था, वहाँ पधारे । उन्हें वन्दना करने के लिए परिपक्व निकली । शैलक राजा भी निकला । धर्मोपदेश सुनकर उसे प्रतिबोध प्राप्त हुआ । विशेष यह कि राजा ने निवेदन किया—‘हे देवानुप्रिय ! मैं पंचक आदि पाँच सौ मंत्रियों से पूछ लूँ—उनकी अनुमति से लूँ, और मंडुक कुमार को राज्य पर स्थापित कर दूँ ।’ उसके पश्चात् आप देवानुप्रिय के समीप मुद्रित होकर गृहवास में निकलकर धनगर दोषा अंगीकार करेगा ।’

यह सुनकर, शुक धनगर ने कहा—‘जैसे सुन उपजे वंसा करो ।’

५४—तए नं से सेलए राया सेलनपुरं नयरं धनपवित्तइ, धनपवित्तिला जेनेव सए गिहे, जेनेव बाहिरिया उवट्ठाणताला तेनेव उवागच्छइ, उवागच्छिता सीहासणं सत्तिसत्ते ।

तए नं से सेलए राया पंचयपामोवत्ता वंच मंतिसए सहावेइ, सहावेत्ता एवं वयासी—एवं जलु देवानुप्पिया ! मए सुयस्स मंतिए घम्मे नित्ते, से वि य घम्मे मए इच्छिए पडिच्छिए अमिरइए । अहं नं देवानुप्पिया ! संसारमयडक्खिगे जाव (जीए जम्म-जर-मरणणं सुयस्स धनगरस्स मंतिए मुंहे भवित्ता अगाराओ अणगारिणं) पक्खयामि । सुम्मे नं देवानुप्पिया ! कि करेह ? कि वसेह ? कि वा ते हियइच्छिए ति ?

तए नं तं पंचयपामोवत्ता सेलनं राय एवं वयासी—‘अइ नं तुम्हे देवानुप्पिया ! संसार-मयडक्खिगे जाव पक्खयह, अट्ठाणं देवानुप्पिया ! किमन्ने बाहारे वा भासंवे वा ? अम्हे वि य नं देवानुप्पिया ! संसारमयडक्खिगा जाव पक्खयामो, जहा देवानुप्पिया ! अहं बहुलु कज्जेसु य कारणेसु य जाव (कुडुबेसु य मतेसु य गुम्भेसु य रहस्सेसु य निच्छएसु य आपुच्छणिज्जे पडिपुच्छणिज्जे मैट्टी पमाणं बाहारे भासंवेणं चक्खं, मैट्टीसु पमाणसु बाहारसु धालंबलसु चक्खंसु) तथा नं पक्खइवाण वि समाणानं बहुलु जाव चक्खंसु ।’

तत्पश्चात् शैलक राजा ने शैलकपुर नगर में प्रवेश किया । प्रवेश करके जहाँ अपना घर था और जहाँ बाहर की उपस्थानताला (राजमंथा) थी, वहाँ आया । आकर तिहामन पर आसीन हुआ ।

तत्पश्चात् शैलक राजा ने पंचक आदि पाँच सौ मंत्रियों को बुलाया । बुलाकर इस प्रकार कहा—‘हे देवानुप्रियो ! मैंने शुक धनगर से धर्म सुना है और उस धर्म की मैंने इच्छा की है । वह धर्म मुझे दवा है । अतएव हे देवानुप्रियो ! मैं संसार के भय से उद्दिग्ध होकर [जन्म-जरा-मरण से भयभीत होकर, शुक धनगर के समीप मुद्रित होकर गृहत्याग करके धनगर—] दीक्षा ग्रहण कर रहा हूँ । देवानुप्रियो ! तुम क्या करोगे ? कहाँ रहोगे ? तुम्हारा हित और अभिलषित क्या है ? अथवा तुम्हारी हादिक इच्छा क्या है ?’

तब वे पंचक आदि मंत्री शैलक राजा से इस प्रकार कहने लगे—‘हे देवानुप्रिय ! यदि आप संसार के भय से उद्दिग्ध होकर यावत् प्रवर्जित होना चाहते हैं, तो हे देवानुप्रिय ! हमारा दूसरा (पृथ्वी की तरह) आधार कौन है ? हमारा (रस्सी के समान) धर्म है देवानु-प्रिय ! हम भी संसार के भय से उद्दिग्ध होकर दीक्षा अंगीकार कर रहे हैं । यदि आप यहाँ गृहस्थावस्था में, बहुत से कायों में, कुटुम्ब संबंधी, रहस्यमय बातों में, कोई भी निश्चय करने में, एक बार और वा-’

धीर चक्षुरूप-मार्गदर्शक हैं। मेरी-प्रमाण आधार धारणन एवं नेत्र समान हैं यावत् मान मार्गदर्शक हैं, उसी प्रकार दीक्षित होकर भी आप बहुत-से-तारों में यावत् पशुभूत (मार्गप्रदर्शक) होते।

५५—तए नं ते सेलगे पंचगपामोषते पंच मंतिमए एवं वयासी—‘जइ नं देवानुप्पिया ! तुने संसारभयउत्थिगा जाय पद्ययह, तं गच्छह नं देवानुप्पिया ! तएगु तएगु कुडुंवेगु जेठे पुते कुडुंयमज्ज ठायेत्ता पुरिस-सहस्सवाहिणीओ सीवाओ बुट्टा समाणा मम मंतिपं पाउमयहं’ति। तहेय पाउमयंति ।

तत्पश्चात् शैलक राजा ने पयक प्रभूनि पांन मी मंत्रियों से इस प्रकार कहा—‘हे देवानुप्रियो ! यदि तुम संसार के भय में उद्भिन्न हुए हो, यावत् दीक्षा ग्रहण करना चाहते हो तो, देवानुप्रियो ! जाओ और अपने-अपने कुटुम्बों में अपने-अपने ज्येष्ठ पुत्रों को कुटुम्ब के मध्य में स्थापित करके पत्नी परिवार का समस्त उत्तरदायित्व उन्हें सौंप कर हजार पुरुषों द्वारा सहन करने योग्य शिविकाओं पर ग्राह्य होकर मेरे समीप प्रकट होओ—आओ ।’ यह सुन कर पांन सी मंत्री अपने-अपने घर धरे गये और राजा के आदेशानुसार कार्य करके शिविकाओं पर ग्राह्य होकर वापिस राजा के पास प्रकट हुए—जा पहुँचे ।

५६—तए न से सेलए राया पंच मंतिसयाई पाउमभवभाणाई पासइ, पासिता हड्डुदे कोडुंयिपपुरिते सहावेइ, सहावेत्ता एवं वयासी—‘लिप्पामेव ओ देवानुप्पिया ! मंडुपस्स कुमारस्स महरयं जाव<sup>१</sup> रामामिसेयं उवट्ठवेह<sup>२</sup> ।’ अमिसिचइ जाव राया जाए, जाय विहरइ ।

तत्पश्चात् शैलक राजा ने पांच सी मंत्रियों को अपने पास धाया देता । देखकर हट्ट-मुट्ट होकर कीटुम्बिक पुरुषों को बुलाया । बुलाकर इस प्रकार कहा—‘देवानुप्रियो ! शीघ्र ही मट्ट कुमार के महान् मर्य वाले राज्याभिषेक की तैयारी करो ।’ कीटुम्बिक पुरुषों ने वीता ही किया । शैलक राजा ने राज्याभिषेक किया । मट्ट कुमार राजा हो गया, यावत् सुखपूर्वक विचरने लगा ।

५७—तए नं ते सेलए मंडुयं रायं आपुवइइ । तए नं ते मंडुए राया कोडुंयिपपुरिते सहावेइ, सहाविता एवं वयासी—‘लिप्पामेव सेलमपुरं नयरं आसित्त जाव<sup>३</sup> गंधवट्ठिभूयं करेह प कारवेह य, करित्ता कारवित्ता एवमाणत्तिपं पच्चप्पिणह ।’

तए नं ते मंडुए दोषयं वि कोडुंयिपपुरिते सहावेइ, सहाविता एवं वयासी—‘लिप्पामेव सेलमगस्स रण्णो महरयं जाव<sup>३</sup> निवल्लमणामिसेयं जहेय मेहस्स तहेय, जवरं पउमावई बेवी अयकेते पडिच्छइ । तये वि पडिगहं गहाय सीयं दुक्कंति, अवसेसं तहेय, आव सामादपमाइयाई एक्कारससं घंगाई पहिगइ, अहिज्जिता बह्णिं चउरय जाय एट्ठम-दसम-दुवात्तसेहि मासइमासलमणेहि अप्पणं भावेमाणे विहरइ ।

तत्पश्चात् नैयक ने मट्ट कुमार राजा में दीक्षा लेने की आज्ञा मांगी । तब मट्ट कुमार राजा ने कीटुम्बिक पुरुषों को बुलाया । बुलाकर इस प्रकार कहा—‘शीघ्र ही शैलकपुर नगर की स्वच्छ धोर सिंघन करने गुग्गु की बट्टी के समान करो धीर कराओ । ऐसा करके धीर कराकर यह आज्ञा मुझे वापिस गोपी अर्थात् आज्ञानुसार कार्य हो जाने की मुझे सूचना दो ।

बहुक राजा न दुवारा कीटुम्बक पुरपा का बुलाया । बुलाकर इस प्रकार कहा—  
 'हाराजा के महान् अर्थ वाले (बहुव्ययसाध्य) यावन् दीक्षाभिषेक की तैयारी करो ।'  
 'हारे के प्रकरण में प्रथम अध्ययन में कहा था, उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिए ।'  
 'पद्मावती देवी ने शैलक के अग्रजकुल ग्रहण किये । सभी दीक्षार्थी प्रतिग्रह-पात्र आदि  
 न पर आरुढ़ हुए । शेष वर्णन पूर्ववत् समझना चाहिए । यावन् राजर्षि शैलक ने  
 'यिक से आरम्भ करके ग्यारह अंगों का अध्ययन किया । अध्ययन करके बहुत से  
 'ता, चीना, पचोता, अर्धमाससमण, माससमण आदि तपस्वरण करते हुए]

र  
 णं से सृए सेलवस्त अनगारस्त ताई पंचमपासोबलाई पंच अनगारतयाई सीससाए

सृए अग्रया कयाई सेलगपुराओ नगराओ सुभूमिमागाओ उज्जानाओ पडिनिबलमइ,  
 हिया अनवविवहारं बिरइ ।

सृए अनगारे अग्रया कयाई तैणं अनगारसहस्तेणं सद्धि संपरिवुडे पुग्वाणपुग्धि  
 मं बिरमाणे जेणव पु'डरीए पचए जाव (तैणव उवागच्छइ, उवागच्छता पु'डरीय'  
 यं बुक्कहइ, दुहहिता मेघघणसग्निगासं देवसग्निवायं पुडविसितापट्टयं पडिसेहेइ,  
 तैहणा-भूतणाभूतिए नत्तपाण-पडियाइविलए पाओवगमणंभुवन्ने ।

सृए बहूणि वासाणि सामणपरिचानं पाउणिता, मासियाए संसेहण.ए अताणं  
 ताई अनसणाए छेदिता जाव केवलवरनागदसन समुप्याडेता तओ पच्छा सिद्धे  
 ररिणिबुडे सब्बदुबलपहीणे) ।

शुक अनगार ने शैलक अनगार को पथक प्रभूति पाच सौ अनगार सिध्य रूप में

मुनि किसी समय शैलकपुर नगर से और मुभूमिभाग उद्यान से बाहर निकले ।  
 में बिचरने लगे ।

वह शुक अनगार एक बार किसी समय एक हजार अनगारों के साथ अनुक्रम से  
 उपाम बिहार करते हुए अपना अन्तिम समय समीप आया जानकर पु'डरीक पर्वत  
 [पु'डरीक पर्वत पर पधार कर धीरे-धीरे उस पर आरुढ़ हुए । सचन मेघों के  
 र देवगण जहाँ उतरते हैं ऐसे पृथ्वी शिलापट्टक का प्रतिवेक्षण किया, यावत्  
 र-पानी का परिस्वाग करके, एक मास की संलक्षना से आत्मा को भावित करके  
 करके केवलज्ञान केवलदर्शन प्राप्त करके सिद्ध (बुद्ध, मुक्त, अन्तकृत, परिनिवृत्त  
 ने रहित) हो गए ।

तस्स सेलगस्त रापरित्तस्स तेहि अंतेहि य, पंतेहि य, तुच्छेहि य, सुहेहि य, अरसेहि

क की क्षमाप्रार्थना

६७—तए नं से पंचए सेलएण एवं युत्तं समाने भीए साथे तसिए करघसपरिगृह्यं निगम-  
तं मत्थए अंजनि कट्टु एय ययागो—‘अहं नं भंते ! पंचए कयकाउत्तमो देवसियं पडिअन्न  
डिक्कते, चाउम्मासिय पडिक्कते चाउम्मासियं तामेमाने देवानुप्पियं वंभमाने सीसेनं वानु  
घट्टेमि । त लमंतु ण देवानुप्पिया । लमंतु मेज्जराहं, तुमं नं देवानुप्पिया । नाडभुजो ए  
रणयाए’ सि कट्टु सेलय अणगारं एयमट्ठं सम्मं विणएणं भुजो भुजो लामेइ ।

शैलक ऋषि के इस प्रकार कहने पर पंचक मुनि भयभीत हो गये, प्राग यो भीर नेत्र से  
प्राप्त हुए । दोनों हाथ जोड़कर मस्तक पर अंजलि करके कहने लगे—‘भगवन् ! मैं पयक हूँ । मैंने  
नियोत्सर्ग करके देवसिक प्रतिग्रमण किया है और चीमामी प्रतिग्रमण करता हूँ । अतएव बीमामी  
आमुणा देने के लिए प्राप्त देवानुप्रिय को चन्दना करते समय, मैंने अपने मस्तक से प्राप्त करणों का  
त्पन्न किया है । सो देवानुप्रिय ! क्षमा कीजिए, मेरा अपराध क्षमा कीजिए । देवानुप्रिय ! फिर ऐसा  
नहीं करूंगा ।’ इस प्रकार कह कर शैलक अनगार को सम्यक् रूप से, विनयपूर्वक इस प्रार्थना (अपराध)  
के लिए वे पुनः पुनः खमाने लगे ।

शैलक का पुनर्जागरण

६८—तए नं से सेलयस्स रायरिसिस्स पंचएणं एवं युत्तस्स अयमेयाक्ये अज्झरियए आ  
समुपजिअथा—‘एवं लल्लु अहं रज्जं च जाय ओसत्तो जाय उउबद्धपीठ-कलक-सेज्जा-संधारए पमत्ते  
विहरामि । त नो लल्लु कप्पइ समणाणं निगंघाणं पासंथाणं जाइ विहरित्तए । तं सेयं लल्लु मे कत्तं  
मंडवं रायं प्रापुच्छित्ता पाडिहारियं पीठकलकसेज्जासंधारयं पच्चप्पिणित्ता पंचएणं अणगारेण सदि  
यहिंया अज्झुज्जएण जाय जणययविहारेणं विहरित्तए ।’ एवं संपेहेइ, संपेहित्ता कत्तं जाय विहरइ ।

पंचक के द्वारा इस प्रकार कहने पर उन शैलक राजर्षि को इस प्रकार का यह विचार उत्पन्न  
हुआ—‘मैं राज्य प्रादि का त्याग करके भी यावत् अवसन्न-आलसी प्रादि हो कर दोष काल में भी  
पीठ कलक प्रादि रख कर विचार रहा हूँ—रह रहा हूँ । अथन निग्रंथों को पाशवंद-निमित्ताचारी  
होकर रहना नहीं कल्पता । अतएव कल महुक राजा से पूछ कर, पडिहारी पीठ, कलक, सम्मा और  
संस्तारक वापिस देकर, पंचक अनगार के साथ, बाहर अभ्युद्यत (उग्र) विहार से विचारना ही मेरे  
लिए श्रेयस्कर है ।’ उन्होंने ऐसा विचार किया । विचार करके दूसरे दिन यावत् उसी प्रकार करते  
विहार कर दिया ।

६९—एयामेव समणाउत्तो ! ओ निगंघो वा निगंघो वा ओसत्तने जाय संधारए पमत्ते  
विहरइ, ते ण इहसोए चेव बहूणं समणाणं बहूणं समणीणं बहूणं सावयाणं बहूणं साविद्याणं होलजिउत्ते,  
संसारो भाणिपथो ।

हे भ्रातृमन् अमरशो ! इसी प्रकार जो साधु या साध्वी आलसी होकर, संस्तारक प्रादि के  
विषय में प्रमादी होकर रहता है, वह इसी लोक में बहुत-से अमरणों, बहुत-सी धमणियों, बहुत-से आक्षेपों  
और बहुत-सी आश्रयों की हीनता का पात्र होता है । यावत् वह चिरकाल पर्यन्त संसार-अमरण  
करता है । यही संसार-परिभ्रमण का विस्तृत वर्णन पूर्ववत् कह लेना चाहिए ।

अनगारी का निषेध

७०—तए च ते पञ्चगवज्जा एवं छगगारसया इमीते कहाए सट्टठा तमाणा छन्नमन्नं सहावेति, सहाविता एवं वयासी—'तेसए रायरिसी पंचमएणं कहिया जाव विहरइ, तं सेय' एतु रेधानपिपा ! छहं सेमय' उवसंपग्गिस्ताण विहरितए ।' एवं सवेहेनि, तवेहिता सेमय' रायरिसि उवसंपग्गिस्ता चं बिहरंति ।

तत्पश्चात् पञ्च को छोड़कर पांच भी अनगारी (धर्मात् ४६६ मुनियों) ने यह व्रतान्न खाया । जब उन्होंने एक दूगरे को बुलाया । बुलाकर इस प्रकार कहा—'नीलक राजपि पञ्च मुनि के साथ बाहर जाकर उष विहार कर रहे हैं तो हे देवानुप्रियो ! छह हमें नीलक राजपि के समीप बस कर विषयता उचित है ।' उन्होंने ऐसा बिचार किया । विचार करके राजपि नीलक के निकट जाकर बिचरने लगे ।

७१—तए च ते सेमयपामोक्ता एवं छगगारसया कट्टणि कासाणि सामम्मपरिधाग पाउणित्ता जेमेइ पोइरीए पक्कए तेनेव उवागवग्गंति । उवागविदत्ता जहेव चावक्कापुत्ते तहेव सिद्धा ।

उपसंहार

तत्पश्चात् नीलक प्रभृति पांच भी मुनि बहुत वर्षों तक गद्यम पर्याय पात्र कर जहाँ पुंइरीक-शत्रुजय पर्वत था, वहाँ आये । चाकर चावक्कापुत्त की भोति मिट्ट हुआ ।

७२—एवमेव समणाउतो ! ओ निगंघी का निगंघी का जाव' विहरितसइ०, एव एतु जप्पु ! समणेणं मगक्का महावीरेणं पंचमस्स नायउअयणरस अयमट्ठे पग्गत्ते ति वेमि ॥

इसी प्रकार है धामुप्पन् अमणी ! ओ माधु या माध्या इस तरह विषयेण वह इस लोक में बहुतबड़क माधुघो, माध्वियो, ध्यायको धीर धाविकाओ के द्वारा धर्मेनीय, वन्दनीय, नमनीय, पूजनीय शम्करणीय धीर सम्माननीय होगा । बम्पाए, मगल, देव धीर नेत्य स्वल्प होगा । विनयपूर्वक उपासनीय होगा ।

परलोक में उसे हाथ, बान एवं नासिका के छेदन के, हृदय तथा वृणों के उखाटन के एक पांगी छादि के दुःख नहीं भोगने पड़ेगे । अनादि अनन्त धानुर्गतिक संगार-काम्यार में उसे परिभ्रमण नहीं करना पड़ेगा । वह शिष्टि प्राप्त करेगा ।

हे जम्पु ! अमण भगवान् महावीर ने पांचवें ज्ञात-अध्ययन का यह ग्रंथ कहा है । उनके कथनानुसार मैं कहता हूँ ।

## पष्ठ अध्ययन : तुम्बक

सक्षेप

छठा अध्ययन म्वन सार-सक्षेपमय है। उसका सार मयना मक्षिप्त रूप मलग मे निम्ने की श्यकता नही है। तथापि जो बोली अपनाई गई है उगे मशुण्ण रगने के लिए किंवित् निम्ना श्यक है।

प्रस्तुत अध्ययन मे जो प्रश्नोन्तर है, ये राजगृह नगर मे सम्पन्न हुए। राजगृह नगर भगवान् श्रीर के विहार का मुख्य स्थल रहा है।

गौतम स्वामी ने जीवो की गुरुता श्रीर लघुता के विषय में प्रश्न किया है। श्वयहारनय की श्रुति से गुरुता अधःपतन का कारण है श्रीर लघुता ऊर्ध्वगति का कारण है। किन्तु यहाँ जीव को श्रुति-लघुता का ही विचार किया गया है। भगवान् का उत्तर सोदाहरण है। तूँ के का उदाहरण श्रुति समझाया गया है। जीव तूँ के के समान है। अष्ट कर्मप्रकृतियाँ मिट्टी के आठ लेपों के समान हैं। श्रुति का जलाशय के समान है। जैसे मिट्टी के आठ लेपों के कारण भारी हो जाने से तूँ का जलाशय के समान है। जलभाग में घला जाता है श्रीर लेप-रहित होकर ऊर्ध्वगति करता है—ऊपर घा जाता है। इसी प्रकार संसारी जीव आठ कर्म-प्रकृतियों से भारी होकर नरक जैसी अधोगति का प्रतिपि बनता है। जब सब एव निर्जरा की उत्कृष्ट साधना करके इन कर्मप्रकृतियों से मुक्त हो जाता है, तब अपने अमोक्ष ऊर्ध्वगमन स्वभाव से लोक के अग्रभाग पर जाकर प्रतिष्ठित हो जाता है।

'लोयग्गपइट्ठाणा भवति' इस वाक्याश द्वारा जैन परम्परा की मान्यता तो चोतित किया गया है। मोक्ष के विषय में एक मान्यता ऐसी है कि मुक्त जीव अनन्त काल तक, निरन्तर ऊर्ध्वगमन करता ही रहता है, कभी कभी रुकता नहीं। इस मान्यता का इस वाक्याश के द्वारा निषेध किया गया है।

एक मान्यता यह भी है कि मुक्त जीव की स्वतन्त्र सत्ता नहीं रहती, एक विराट् सत्ता में उसका विलीनीकरण हो जाता है। मुक्त जीव अपनी पृथक् सत्ता गंवा देता है। इस मान्यता का भी विरोध हो जाता है। मुक्त जीव लोकमग्न पर प्रतिष्ठित रहते हैं, उन की पृथक् सत्ता रहती है, यही मान्यता ममोचीन है।

## छट्ठं अज्झयणं : तुंबए

णं भते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेण पचमस्स नायज्झयणस्स ण्ठठस्स णं भते ! नायज्झयणस्स समणेणं जाव संपत्तेणं के ण्ठठे पणत्ते ?'

स्वामी ने मुधर्मा स्वामी से प्रदन किया—भगवन् ! यदि थमए यावन् सिद्धि को हावीर ने पाँचवें ज्ञाताध्ययन का यह अर्थ कहा है (जो आपने फर्माया) तो हे ! अध्ययन का यावन् सिद्धि को प्राप्त थमण भगवान् महावीर ने क्या अर्थ कहा है ?

बल्लु जंभू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे णामं नगरे होत्था । तत्थ णं रायगिहे राया होत्था । तस्स ण रायगिहस्स धहिया उत्तरपुररिपमे दिसीभाए एत्थ ण ए होत्था ।

स्वामी ने जम्बू स्वामी के प्रदन के उत्तर में कहा—जम्बू ! उस काल थीर उस मक नगर था । उस राजगृह नगर में थ्रेणिक नामक राजा था । उस राजगृह रपूर्व दिशा में—ईशान कोण में गुणगीलनामक चैत्य (उद्यान) था ।

१ भागमन

कालेणं तेण समएण समणे भगवं महावीरे पुब्बाणुपुब्बि चरमाणे जाव जेजेव रायगिहे लए वेइए तेणोव ममोसठे । भहापट्टिकवं उगहं गिगिहत्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं परिसा निगगया, सेणिमो वि निगगयो, धम्मो कहिमो, परिसा पडिगया ।

धीर उस समय में थमए भगवान् महावीर अनुश्रव से विचरते हुए, यावन् जहाँ थीर जहाँ गुणगील चैत्य था, वहाँ पधारे । यथायोग्य अवग्रह ग्रहण करके समय सा को भावित करते हुए विचरते लगे । भगवान् को वन्दना करने के लिए परिपद् राजा भी निकला । भगवान् ने धर्मदेना दी । उसे सुनकर परिपद् वापिस चली

मरन

कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवमो महावीरस्स जेट्ठे अतिवासी इंदभूई नामं भगवमो महावीरस्स अदूरसामंते जाव' सुवकज्झाणोवगए विहरइ ।

इदभूई नामं अणगारे जायसट्ठे जाव एत्थं ययासी—कहं णं भते ! जीवा भुत्थत्तं वमागच्छंति ?'



उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर के शिष्य इन्द्रभूतिनामक अनगण भगवान् महावीर में न अधिक दूर और न अधिक समीप स्थान पर रहे हुए यावत् निमित्त नम ध्यान में लीन होकर विचर रहे थे ।

तत्पश्चात् जिन्हे श्रद्धा उत्पन्न हुई है ऐसे इन्द्रभूति अनगण ने श्रमण भगवान् महावीर स्वानुसंग प्रकाश प्रदान किया—'भगवन् ! किस प्रकार जीव शीघ्र ही गुरुता भ्रमवा लघुता को प्राप्ति दे ?'

भगवान् का समाधान

५—'गोयमा ! मे जहानामए केइ पुरिसे एगं महं सुषकं तुषं निच्छिद्दं निरवहमं इमेहि कुमेहि वेदेइ, वेदित्ता मट्टियासेवेणं लिपइ, उण्हे वलपइ, वलइत्ता सुषकं समानं वोच्चं पि वडमहि य कुमेहि य वेदेइ, वेदित्ता मट्टियासेवेणं लिपइ, लिपित्ता उण्हे सुषकं समानं तच्चं पि वडमहि य कुमेहि य वेदेइ, वेदित्ता मट्टियासेवेणं लिपइ । एवं सत्तु एण्णयाएणं अंतरा वेदेमाणे, अंतरा निवेमाणे, अंतरा सुवचयेमाणे जाय अट्ठहि मट्टियासेवेहि सालिपइ, अत्थाहमत्तारमपोरिसियंति उज्जमि पबिणयेज्जा । से जूणं गोयमा ! से तुषे तेसि अट्ठण्हं मट्टियासेवेणं गुरुययाए मारिययाए गय-मारिययाए उप्पि सनितमइवइत्ता अहे धरणिमलपइद्वाणे भवइ ।

एवमेव गोयमा ! जीवा वि पाणाइवाएणं जाय (मुसावाएणं अविष्णावाणेणं मेढुणेणं परिण-हेण जाय) निवत्ताइतणसत्तेणं अणुपुत्थेणं अट्ठकम्मपगडोओ समज्जिज्जति । तासि गयययाए मारिययाए गयमारिययाए कायमासे कासं किच्चा धरणिमलमइवइत्ता अहे मरगतलपइद्वाणा भवंति । एवं सत्तु गोयमा ! जीवा मरवत्सं हव्थामागच्छति ।

गीतम् । यथानामक—बुद्ध भी नाम वात्ता, कोई पुरुष एक बड़े, मूंगे, छिद्ररहित और अक्षरहित मूंगे का दम (दाभ) में और कुण (दूब) में लपेटे और फिर मिट्टी के लेप में लीये, फिर पून में भर दे । मूंगे जाने पर दूबगी बार दम और कुण में लपेटे और फिर मिट्टी के लेप लीये दे । लीये कर पून में मूंगे जाने पर तीसरी बार दम और कुण में लपेटे और लपेट कर मिट्टी का लेप बजा दे । मूंगा में । इसी प्रकार, इसी उपाय में बीच-बीच में दम और कुण में लपेटता जाय, बीच-बीच में लेप बजाना जाय और बीच-बीच में सुलाना जाय, यावत् छाट मिट्टी के लेप उग मूंगे पर बजाने । फिर उसे सपाट, त्रिको त्रिको न जा सके और अशीरपिक (जिसे पुरुष की ऊँचाई से नापा न जा सके) जल में डाल दिया जाय । तो निश्चय ही है गीतम् । वह मूंगा मिट्टी के छाट लेपों के कारण मुहता को प्राप्त होकर, भारी होकर तथा गुरु एवं भारी होकर ऊपर रहे हुए, जल को पार करके नीचे धरती में लय भाग में स्थित हो जाता है ।

इसी प्रकार है गीतम् । जीव भी प्राणानिष्ठान में मृदावाद में, अदलादान में, मेढुन और परिदण में पुरुष निरवहमं शरीर में यथात् अक्षररूप वाक्स्थानको के सेवन में समानः साट कर्म-प्रवृत्ति का उत्पन्न करने है । उन कर्मप्रवृत्तियों को मुहता के कारण, भारीपन के कारण और मूंगे के भार के कारण मृत्तु के समान मृत्तु का प्राप्ति होकर, इस पृथ्वी-जल को लाय कर नीचे लय-जल में स्थित होने है । इस प्रकार गीतम् । जीव शीघ्र गुरुत्व को प्राप्ति होने है ।

६—मनुष्यं गोपमा ! से तुंवे तंमि पडमिन्नुगतिं मट्टियासेवति नित्तं ति कुट्टियंति परित्तं-  
येमि ईमि परणियत्तामो उप्पइत्ता नं विट्ठइ । तयानंतरं च नं दोच्च पि मट्टियासेवे जाय (तित्तं  
कुट्टिए परित्तं ईमि परणियत्तामो) उप्पइत्ता नं विट्ठइ । एवं ललु एएणं उवाएणं तेमु मट्ठमु  
मट्टियासेवेमु तित्तं ॥ जाय विमुक्कंयणं अहे परणियत्तमइवइत्ता उप्पि सत्तित्ततपइत्ताणे मयइ ।

अब हे गौतम ! उम मूषे का पहला (ऊपर का) मिट्टी का नेप गोना हो जाय, गल जाय  
धोर परित्तं (नष्ट) हो जाय तो वह तू वा पूखीतल से बुद्ध ऊपर धाकर टहरता है । तदनन्तर  
दूसरा मृत्तिकात्रेण गोना हो जाय, गम जाय, धोर हट जाय तो तू वा बुद्ध धोर ऊपर धा जाता है ।  
इस प्रकार, इस उपाय से उन धाटो मृत्तिकात्रेणों के नीचे हो जाने पर यावत् हट जाने पर तू वा निर्वेप,  
बधनमुक्त होकर धरणीतल में ऊपर जब की मनह पर धाकर स्थित हो जाता है ।

७—एवमेव गोपमा ! जीवा वाणाइवायवेरमणेणं जाय मिश्रदार्ढतण-सत्तलवेरमणेणं धनु-  
पुण्येणं मट्ठकम्मवगइओ एवेत्ता गगणत्तसमुप्पइत्ता उप्पि सोयगपइत्ताणा मवति । एवं ललु गोपमा !  
जीवा लहुयत्तं हवइमागइति ।

इसी प्रकार, हे गौतम ! प्राणानिर्विरमण यावत् मिथ्यादर्शनसत्यविरमण से अर्थात् अन्तः  
पातों के त्याग में जीव तमसा धाट कर्मप्रवृत्तियों का दाय करके ऊपर प्राकृततल की ओर उठ कर  
सौकाय भाग में स्थित हो जाने हैं । इस प्रकार हे गौतम ! जीव शीघ्र सयुग्म की प्राप्ति करते हैं ।  
अवमहार

८—एवं ललु जंझु ! समणेणं मगवया महावीरेणं छट्ठस्म नायरम्मयणत्तं अयमट्ठे वप्पत्ते ।  
ति वेमि ।

श्री गृध्रमां स्वामी मध्यम का उपमहार करते हुए कहते हैं—इस प्रकार हे जम्बू ! अमण  
भगवान् महावीर ने छठे ज्ञान-मध्यम का यह धर्म कहा है । वही मैं तुमने कहा है ।

॥ छट्ठा मध्यम समाप्त ॥

## सप्तम अध्ययन : रोहिणीज्ञात

सार: संक्षेप

राजगृह नगर में सार्धवाह धन्य के नार पुत्र थे—धनपाल, धनदेव, धनगोप और धनभिर। चारों विवाहित हो चुके थे। उनकी पत्नियों के नाम अनुग्रह से इस प्रकार थे—उज्जिता या उज्जिता भोगवती, रक्षिका और रोहिणी।

धन्य सार्धवाह बहुत दूरदर्शी थे—भविष्य का विचार करने वाले। उनकी उम्र जब परिपक्व हो गई तब एक बार वे विचार करने लगे—‘मैं वृद्धावस्था में प्रसन्न हो गया हूँ। मेरे पदचातु कुटुम्ब की सुख्यवस्था कैसे कायम रहेगी? मुझे अपने जीवन-काल में ही इसकी व्यवस्था कर देनी चाहिए। इस प्रकार विचार कर धन्य ने मन ही मन एक योजना निश्चित कर ली।

योजना के अनुसार उन्होंने एक दिन अपने जातिजनों, संबंधियों, मित्रों आदि को आमंत्रित किया। भोजनादि से सब का सरकार-सन्मान किया और तत्पश्चात् अपनी चारों पुत्रवधुओं को सब के समक्ष बुलाकर चावलो के पाच-पाच दाने देकर कहा—‘मेरे मांगने पर वे पांच दाने वापिस सौंपना।’

पहली पुत्रवधू उज्जिता ने विचार किया—बुढ़ापे में श्वसुरजी की मति भारी गई जान पड़ती है। इतना बड़ा समारोह करके यह तुच्छ भेट देने की उन्हें सूझी! इस पर तुरंत यह कि मांगने पर वापिस लौटा देने होंगे। कोठार में चावलो के दानों का ढेर लगा है। मांगने पर उनमें से दे दूंगी।’ ऐसा विचार करके उसने वे दाने कचरे में फेंक दिए।

दूसरी पुत्रवधू ने सोचा—‘भले ही इन दानों का कुछ भूख्य न हो तथापि श्वसुरजी का यह प्रसाद है। फेंक देना उचित नहीं।’ इस प्रकार विचार करके उसने वे दाने खा लिये।

तीसरी ने विचार किया—‘अत्यन्त व्यवहारकुशल, अनुभवी और समृद्धिशाली वृद्ध श्वसुर ने, इतने बड़े समारोह में ये दाने दिए हैं। इसमें उनका कोई विशिष्ट अभिप्राय होना चाहिए। अतएव इन दानों की गुरक्षा करना, इन्हें जतन से सभात रखना चाहिए।’

इस प्रकार सोच कर उसने उन्हें एक डिबिया में रख लिया और सदा उनकी सार-सभात रखने लगी।

चौथी पुत्रवधू रोहिणी बहुत बुद्धिमती थी। वह समझ गई कि दाने देने में कोई गूढ़ रहस्य निहित है। यह दाने परीक्षा की बगोटी बन सकते हैं।

उसने पांच दाने अपने मायके (पितृगृह-पीहृर) भेज दिए। उसकी सूचनानुसार मायके वालों ने उन्हें मेन में धरलवा बाँट दिया। प्रतिवर्ष बारबार योने से दाने बहुत हो गए—कोठार भर गया।

इस घटना की पाँच वर्ष की अवधि हो गई। तब धन्य सार्धवाह ने पुनः पूर्ववत् समारोह आयोजित किया। अग्रेष्ठ पक्षे नियमित किया था उन सब की पुनः निमंत्रित किया। सब का भोजन-

पान, गंध-माना आदि से सत्कार किया । तत्पश्चात् पहले की ही भांति पुत्रवधूओं को सब के समक्ष बुला कर पाच-पाच दाने, जो पहले दिए थे, वापिस मांगे ।

पहली पुत्रवधू ने कोठार में से लाकर पाच दाने दे दिए । धन्य सार्यबाहू ने जब पूछा कि क्या ये वही दाने हैं या दूसरे ? तो उसने सत्य वृत्तान्त कह दिया । मुन कर सेठ ने कुपित होकर उसे घर में भाड़ने-बुहारने आदि का काम सौंपा । कहा-तुम इसी योग्य हो ।

दूसरी पुत्रवधू ने कहा—'आपका दिया प्रसाद समझ कर मैं उन दानों को खा गई हूँ ।' सार्य-बाहू ने उमके स्वभाव का अनुमान करके उसे भोजनशाला सब्जी कार्य सौंपा ।

तीसरी पुत्रवधू ने पाँचों दाने सुरक्षित रखे थे, अनएव उसे कोषाध्यक्ष के रूप में नियुक्त किया ।

चौथी पुत्रवधू ने कहा—पिताजी, वे पाच दाने गाड़ियों के बिना नहीं आ सकते । उन्हें लाने की कई गाड़िया चाहिए !

जब धन्य सार्यबाहू ने स्पष्टीकरण मांगा तो उसने सारा ब्योरा मुना दिया । गाड़िया भेजी गईं । दानों का ढेर आ गया । धन्य यह देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए । सब के समक्ष रोहिणी की भूरि-भूरि प्रशंसा की । उसे गृहस्वामिनी के गौरवपूर्ण पद पर प्रतिष्ठित किया । कहा—'तू प्रग'सनीय है बेटी' ! तेरे प्रताप से यह परिवार सुखी और समृद्धिवाली रहेगा ।

शास्त्रकार हम उदाहरण की धर्म-शिक्षा के रूप में इस प्रकार घटित करते हैं—

जो व्रती व्रत ग्रहण करके उन्हें त्याग देते हैं, वे पहली पुत्रवधू उज्ज्वला के समान इह-परभव में दुखी होते हैं । सब की भवहेलना के भाजन बनते हैं ।

जो साधु पाच महाव्रतों को ग्रहण करके सासारिक भोग-उपभोग भोगने के लिए उनका उपयोग करते हैं, वे भी निदा के पात्र बन कर भवभ्रमण करते हैं ।

जो साधु तीसरी पुत्रवधू रसिका के सदृश अगीकृत पाँच महाव्रतों की भलीभांति रक्षा करते हैं, वे प्रशंसा-पात्र होते हैं और उनका भविष्य मंगलमय होता है ।

जो साधु रोहिणी के समान स्वीकृत संयम की उत्तरोत्तर वृद्धि करते हैं, निर्मल और निर्मल-तर पालन करके संयम का विकास करते हैं, वे परमानन्द के भागी होते हैं ।

यद्यपि प्रस्तुत अध्ययन का उपसंहार धर्मशिक्षा के रूप में किया गया है और धर्मशास्त्र का उद्देश्य मुख्यतः धर्मशिक्षा देना ही होता है, तथापि उसे समझाने के लिए जिस कथानक की योजना की गई है वह गार्हस्थिक—पारिवारिक दृष्टि से भी बहुत महत्त्वपूर्ण है । 'योग्य योग्येन योजयेत्' यह छोटी-सी उक्ति अपने भीतर विशाल अर्थ सभाये हुए है । प्रत्येक व्यक्ति में योग्यता होती है किन्तु उस योग्यता का सुपरिणाम तभी मिलता है जब उसे अपनी योग्यता के अनुरूप कार्य में नियुक्त किया जाए । मूलभूत योग्यता से प्रतिकूल कार्य में जोड़ देने पर योग्य से योग्य व्यक्ति भी अयोग्य सिद्ध होता है । उच्चतम कोटि का प्रखरमति विद्वान् बड़ई-मुपार के कार्य में अयोग्यतम बन जाता है ।

मगर 'योजकस्तत्र दुर्लभ' अर्थात् योग्यतानुसृत योजना करने वाला कोई फिरना ही होता है। साधनबाह् उन्ही विरल योजकों में से एक था। अपने परिवार की सुधयस्या करने के लिए जिस सूक्ष्म-यूक्त से काम लिया वह सभी के लिए मार्गदर्शक है। सभी इस उदाहरण में सीखने से लोकोत्तर कार्यों की सफलता के साथ सम्पन्न कर सकते हैं।

उदाहरण से स्पष्ट है कि प्राचीन काल में संयुक्त परिवार की प्रथा थी। वह अनेक हितों से उपयोगी और सराहनीय थी। उससे आत्मीयता की परिधि विस्तृत बनती थी और सहजता आदि सदगुणों के विकास के अवसर सुलभ होते थे। आज यद्यपि शासन-नीति, विदेशी प्रभाव, तज्जन्य सकीर्ण मनोवृत्ति के कारण परिवार विभक्त होते जा रहे हैं, तथापि इस प्रकार के उदाहरण से हम बहुत लाभ उठा सकते हैं।

चारों पुत्रवधुओं ने बिना किसी प्रतिवाद के मौन भाव से अपने स्वसुर के नियंत्रण को स्वीकार लिया। वे भले मौन रही, पर उनका मौन ही मुखरित होकर पुकार पुकार कर, हमारे कानों तक अनेकानेक स्पृहणीय संदेश—सदुपदेश मुना रहा है।



## सत्तमं अञ्जयणं : रोहिणीराण

१—जह णं भंते ! समणं जाव सपत्ते णं छट्ठस्स नायज्जयणस्स अयमद्धे पण्णत्ते, सत्तमहं  
ते ! नायज्जयणस्स के छट्ठे पण्णत्ते ?

सार्यवाह

श्री जम्बू स्वामी ने मुघर्मा स्वामी से प्रश्न किया—'भगवन् ! यदि यावत् निर्वाणप्राप्त  
भगवान् महावीर ने छठे ज्ञात-अध्ययन का यह (पूर्वोक्त) अर्थ कहा है तो भगवन् ! सातवें  
अध्ययन का क्या अर्थ कहा है ?

२—एवं खलु जंझु ! तेणं कालेणं तेणं समणं रायगिहे नामं नयरे होत्था । सत्थ णं रायगि  
सेणिए नामं राया होत्था । तस्स णं रायगिहस्स जयरस्स बहिया उत्तरपुरिच्छिमे दिसीभाप  
मभागे उज्जाणे होत्था ।

सत्थ णं रायगिहे नयरे घण्णे नामं सत्थवाहे परिवसइ अइडे जाव<sup>१</sup> अपरिमुए । तस्स णं  
सत्थवाहस्स अहा नामं भारिया होत्था, अहोणपंछिद्विपसरोरा जाव<sup>२</sup> सुहवा ।

श्री मुघर्मा स्वामी उत्तर देते हैं—जम्बू ! उस काल और उस समय में राजगृहनामक नगर  
उस राजगृह नगर में श्रेष्ठिक राजा था । राजगृह नगर के बाहर उत्तर पूर्वदिशा-ईशान कोण  
भूमिभाग उद्यान था ।

उस राजगृह नगर में धन्य नामक सार्यवाह निवास करता था, वह समृद्धिशाली था, [उसके  
बहुत शय्या, अमिन, भवन, यान, वाहन थे, दाम, दासियाँ, पार्यें, भैंसे थी, सोना-चाँदी, धन  
] वह किसी से पराभूत होने वाला नहीं था । उस धन्य सार्यवाह का भद्रानामक भार्या थी ।  
वै पार्वी इन्द्रियाँ और शरीर के अवयव परिपूर्ण थे, यावत् [उमकी चाल हास्य, भाषण सुसगत  
मर्मादानुकूल था ! उसे देखकर प्रसन्नता होती थी, अभिरूप एवं प्रतिरूप थी । वह सुन्दर रूप  
] थी ।

३—तस्स णं धनस्स सत्थवाहस्स पुत्ता अहाए भारियाए अत्तारि सत्थवाहदारया  
१, संजहा—घनपाले, घनदेवे, घनगोवे, घनरक्षिए ।

तस्स णं पण्णस्स सत्थवाहस्स अउज्झं पुत्ताणं भारियाओ अत्तारि सुण्हाओ होत्था, संजहा—  
रूपा, भोगवइया, रक्षिया, रोहिणिया ।

उस धन्य सार्यवाह के पुत्र और भद्रा भार्या के आत्मज (उदरजात) चार सार्यवाह-पुत्र थे ।  
नाम इस प्रकार थे—धनपाल धनदेव, धनगोप, धनरक्षित ।

ये पल्ला सालीण पडिपुण्णा चिट्ठंति, तं जया णं ममं तामो इमे पंच सालिप्रवणए जाएम्मा,  
ण ग्रहं पल्लंतराग्रो ग्रन्ने पंच-सालिप्रवणए गहाय दाहामि' ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहितां  
सालि-प्रवणए एगंते एडेइ, एडिता सकम्मसंजुता जाया यायि होएया ।

तत्पश्चात् उम उज्झिका ने धन्य मार्थवाह के इस अर्थ-भादेश को 'नहन्ति—बहुन प्रत्या' प्र-  
कार कहकर अंगीकार किया । अंगीकार करके धन्य मार्थवाह के हाथ में पाँच सालि-  
प्रवण (चावल के दाने) ग्रहण किये । ग्रहण करके एगान्न में गई । यही जाकर उसे इस प्रकार सा-  
चार, चिन्तन, प्रार्थन एवं मानसिक सकल्प उत्पन्न हुआ—'निश्चय ही पिता (श्वशुर) के बोझ  
प्राप्ति से भरे हुए बहुत मे पत्य (पाला) विद्यमान हैं । मो जब पिता मुझे यह पाँच सालि प्रवण  
देगे, तब मैं किसी पत्य से दूसरे सालि-प्रवण लेकर दे दूंगी ।' उसने ऐसा विचार किया । विचार  
करके उस पाँच चावल के दानों को एगान्न में डाल दिया और डाल कर अपने काम में लग गई ।

८—एवं भोगवइयाए वि, णवरं सा छोल्लेइ, छोल्लित्ता भणुगिलइ, भणुगिलित्ता सकम्म-  
जुता जाया । एवं रविलया वि, णवरं मेण्हइ, मेण्हित्ता इमेयारुवे वरुअरियाए जाव समुत्तरिया—  
एवं खलु ममं तामो इमस्स मित्ताइ० चउण्हं सुण्णाणं कुलघरवगस्स य पुरमो सदावेत्ता एवं वयासी—  
एवं णं पुत्ता ! मम हएयाग्रो जाव पडिनिज्जाएअसि' ति कट्टु मम हएयंति पंच सालिप्रवणए  
सलपइ, तं भवियव्वमेस्य कारणेणं ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहितां ते पंच सालिप्रवणए सुद्धं वत्ते  
पयइ, बंधित्ता रयणकरंडियाए पविलवेइ, पविलवित्ता उसीत्तामूले ठायेइ, ठावित्ता तित्तं वडि-  
जागरमाणी पडिजागरमाणी विहरइ ।

इसी प्रकार दूसरी पुत्रवधू भोगवती को भी बुलाकर पाँच दाने दिये, इत्यादि । विशेष यह है  
कि उसने यह दाने छीले और छील कर निगल गई । निगल कर अपने काम में लग गई ।

इसी प्रकार तीसरी रक्षिका के सम्बन्ध में जानना चाहिए । विशेषता यह है कि—उसने वह  
दाने लिए । लेने पर उसे यह विचार उत्पन्न हुआ कि—मेरे पिता (श्वशुर) ने भिन्न जाति प्रादि के  
तथा चारों बहूओं के कुलगृह वर्ग के सामने मुझे बुलाकर यह कहा है कि—'पुत्री ! तुम मेरे हाथ से  
यह पाँच दाने लो, यावत् जब मैं मागू तो लौटा देना । यह कह कर मेरे हाथ में पाँच दाने दिए हैं ।  
तो इसमें कोई कारण होता चाहिए ।' उसने इस प्रकार विचार किया । विचार करके वे चावल के  
पाँच दाने सुद्ध यत्न में बाँधे । बांध कर रत्नों की डिवियों में रख लिए रख कर सिरहाने के नीचे  
स्थापित किए । स्थापित करके प्रातः मध्याह्न और मायंकाल—इन तीनों संव्यासों के समय उनकी  
गार-मग्गभाव करती हुई रहने लगी ।

९—तए णं से धण्णे सरववाहे तस्सेय मित्ता० जाव चउरिय रोहिणोय सुण्हं सदावेइ । सदावेत्ता  
जाव 'तं भवियाव एय कारणेण, तं सेव खलु मम एए पंच सालिप्रवणए सारवत्तमाणीए  
मंगोवेमाणीए मवइत्तमाणीए' ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहितां कुलघरपुरिसे सदावेइ, सदावेत्ता  
एवं वयासी—

तत्पश्चात् धन्य मार्थवाह ने उन्हीं मित्रों प्रादि के मध्य जोयो पुत्रवधू रोहिणी को बुलाया ।

‘तुमने न देवानुत्पिया ! एए पांच सालिग्रहलए गेन्हह, गेन्हिता पइमपाउसंति महावृद्धि-  
निवइयंसि समानंसि पुहुपां केयारं सुपरिकम्मियं करेह । करिता इमे पांच सालिग्रहलए  
वावेत्ता दोइयं पि तच्चं पि उवत्तयनिकलए करेह, करेत्ता वाडिपरित्येयं करेह, करिता सारवत्तेमाणा  
माणा अणुपुत्थेणं संवइइह ।’

तत्पश्चात् धन्य सायंवाह ने उन्ही मित्रों आदि के समस्त चौथो पुत्रवधू रोहिणी को बुलाया ।  
उसने भी वंगा ही कहकर पांच दाने दिये । यावत् उसने सोचा—‘इस प्रकार पांच दाने देने में  
जरूर होना चाहिए । घतएव मेरे लिए उचित है कि इन पांच चावल के दानों का संरक्षण  
संगोपन करे और इनको बूझ न सके ।’ उसने ऐसा विचार किया । विचार करके अपने कुलगृह  
(सीहर) के पुरुषों को बुलाया और बुलाकर इस प्रकार कहा—

‘देवानुत्पियो ! तुम इन पांच सालि-ग्रहतां को ग्रहण करो । ग्रहण करके पहली वर्षा ऋतु में  
वर्षा के प्रारम्भ में जब तूफान वर्षा हो तब एक छोटी-सी बयारी को अच्छी तरह साफ करना ।  
फिरके ये पांच दाने दो देना । बोकुर दो-तीन बार उत्तप-निक्षेप करना अर्थात् एक जगह से  
कर दूसरी जगह रोपना । फिर बयारी के चारों ओर बाड़ लगाना । इनकी रक्षा और संगोपना  
हूए अनुक्रम में इन्हें बढाना ।

१०—तए णं ते कीडुम्बिया रोहिणीए एवमट्ठं पडिमुणेंति, पडिमुणिता ते पच सालि-ग्रहलए  
। गेन्हिता अणुपुत्थेण सरवत्तंसि, संगोयंसि विहरंसि ।

तए णं ते कीडुम्बिया पइमपाउसंति महावृद्धिकापसि निवइयंसि समानंसि पुहुपां केयारं  
कम्मियं करेति, करिता ते वंच सालिग्रहलए वयति, वयिता दोइयं पि तच्चं पि उवत्तयनिकलए  
। करिता वाडिपरित्येयं करेति, करिता अणुपुत्थेण सारवत्तेमाणा संगोवेमाणा तवइइमाणा  
ति ।

तत्पश्चात् उन कीडुम्बिक पुरुषों ने रोहिणी के आदेश को स्वीकार किया । स्वीकार करके  
चावल के पांच दानों को ग्रहण किया । ग्रहण करके अनुक्रम से उनका संरक्षण, संगोपन करते हुए  
लगे ।

तत्पश्चात् उन कीडुम्बिक पुरुषों ने वर्षा ऋतु के प्रारम्भ में महावृष्टि पड़ने पर छोटीसी  
साफ की । पांच चावल के दाने बोये । बोकुर दूसरी ओर तीसरी बार उनका उत्तप-निक्षेप  
करके बाड़ का परिक्षेप किया—बाड़ लगाई । फिर अनुक्रम से संरक्षण, संगोपन और संवर्धन  
हूए विचरने लगे ।

११—तए णं ते सालि-ग्रहलए अणुपुत्थेण सारवत्तज्जमाणा संगोविज्जमाणा सवड्डिज्जमाणा  
पाया, किण्हा किण्होमासा जाय । निउरंभमूया पासादीया दंसणीया अमिक्खा पडिक्खा ।

तए णं ते साली पत्तिया वत्तिया (तइया) गम्मिया पसुया आययमंथा खोराइया यट्ठफला  
परियागया सल्लइया पत्तइया हरियपव्वकंडा जाया यावि होत्था ।



तत्पश्चात् सर्राजत, संगोपित और गवधित किए जाते हुए वे शालि-प्रशत अनुपम मे-  
(के पीछे) हो गये । वे दयाम कान्ति बाने यावत् निकुरंभभूत—गमूह रूप होकर प्रगमता प्रगता  
वाले, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप हो गये ।

तत्पश्चात् उन शालि पीछे में पत्ते भ्रा गये, वे वनित-गोन हो गये, छान बाने ही  
गभित हो गये—डोडी लग गई, प्रभूत हुए—पत्तों के भीतर में दाने बाहर भ्रा गये, गुण्य बाने  
बद्धफल—बधे हुए फल वाले हुए, पक गए, तैयार हो गये, सत्यकित हुए—पत्ते गूँस जाने के  
सलाई जैसे हो गए, पत्रकित हुए—विरले पत्ते रह गए और हरितगर्वकाण्ड—नीली तान ब  
गए । इस प्रकार वे शालि उत्पन्न हुए ।

१२—तए नं ते कोडुंघिया ते सालीए पत्तिए जाय सत्तए पत्तए जानित्ता  
णयमञ्जणएहिं प्रसिपएहिं तुणेति । तुणित्ता करयसमसिए करेति, करित्ता पुणति, तस्य नं वं  
सूयाणं प्रखंडाणं प्रकोटियाणं छडुछडापूयाणं सालीणं मागहए पत्थए जाए ।

तत्पश्चात् उन कौटुम्बिक पुरुषों ने वह शालि पत्र वाले यावत् शलाका वाले तथा वि  
वाले जान कर तीखे और पजाये हुए (जिन पर नयी धार चढ़वाई हो ऐसे) हँसियों (दात्रो)  
काटकर उनका हथेलियों से मर्दन किया । मर्दन करके साफ किया । इससे वे चोखे-निर्मल, सुवि  
भ्रखंड और अस्फुटित-बिना टूटे-पूटे और सूप से भटक-भटक कर साफ किये हुए हो गए ।  
देश में प्रसिद्ध एक प्रस्थक प्रमाण हो गये ।

विशेष—दो प्रसई की एक पसई, दो पसई की एक सेतिका, चार सेतिका का ए  
और चार कुडव का एक प्रस्थक होता है । यह भगवद् देश का तत्कालीन माप है ।

१३—तए नं ते कोडुंघिया ते साली नवएसु घटएसु पविलवन्ति, पविलवित्ता उ  
उर्वसिपित्ता लद्धिममुद्दिए करेति, करित्ता कोट्टागारस्स एगवेत्तंसि ठावेति, ठावित्ता सार  
संगोवेमाणा विहरति ।

तत्पश्चात् कौटुम्बिक पुरुषों ने उन प्रस्थ-प्रमाण शालि-प्रदातों को नवीन घडे में भरा । भर  
कर उसके मुत्त पर मिट्टी का लेप कर दिया । लेप करके उसे लाघिन-मुद्रित किया—उस पर लीन  
लगा दी । फिर उसे कोठार के एक भाग में रख दिया । रख कर उसका रक्षण और आगोपन  
करने लगे ।

१४—तए नं ते कोडुंघिया शोच्चम्मि वासारत्तंसि पढमयाउत्तंसि महापुट्टिकायसि निवइयसि  
एवहागं केवार गुपरिकम्मियं करेति, करित्ता ते साली वयति, शोच्चं पि तच्चं पि उवसयनिएए जाव  
तुणेति जाय पतणतसमसिए करेति, करित्ता पुणति, तस्य नं सालीणं बह्वे कुडए जाए । जात्र  
एगवेत्तंसि ठावेति, ठावित्ता सारवलेमाणा संगोवेमाणा विहरति ।

तत्पश्चात् उन कौटुम्बिक पुरुषों ने दूसरी वर्षा ऋतु में वर्षाकाल के प्रारंभ में महापुट्ट  
पटने पर एक छोटी ब्यारी को साफ किया । साफ करके वे शालि बो दिये । दूसरी बार और तीसरी  
बार उनका उद्योप-निधोप किया, यावत् नुनाई की-उगड़े काटा । यावत् पंरों के तपुबों से उनका

देन किया, उन्हें माफ किया। अब घाति के बहुत-से कुड़ब हो गए। यावत् उन्हें कोठार के एक कोण में रख दिया। कोठार में रख कर उनका संरक्षण और संगोपन करते हुए विचरने लगे।

१५—तए नं ते कोट्टुविद्या तत्त्वसि वासारत्तंसि महावृद्धिकायंसि बहवे केयारे सुपरिकम्मिए परेति, जाव सुणेति, सुणिता संवहंति, संवहिता सत्तयं करेति, करिता भत्तेति, जाव बहवे कुम्मा जाया।

तए नं ते कोट्टुविद्या सासी कोट्टागारंसि पण्यवन्ति, जाव विहरति। चउथे वासारत्ते बहवे कुम्भसया जाया।

तत्परवान् उन कीटुम्बिक पुरुषों ने तीसरी बार वर्षाऋतु में, महावृष्टि होने पर बहुत-सी बयारियां बरन्दी तरह माफ कीं। यावत् उन्हें बोकर काट लिया। काटकर भारा बांध कर बहन किया। बहुत कर्मके सानिहान में रक्खा। उनका मर्दन किया। यावत् अब वे बहुत-से कुम्भ प्रमाण घाति हो गये।

तत्परवान् उन कीटुम्बिक पुरुषों ने वह घाति कोठार में रखे, यावत् उनकी रक्षा करने लगे। चौथी वर्षा ऋतु में इसी प्रकार करने से सैकड़ों कुम्भ प्रमाण घाति हो गए।

परीक्षारिणाम

१६—तए नं तस्स पण्यस्स पचमयंसि संवच्छरसि परिणममाणंसि पुग्गएसावरत्तकालसमयंसि इनेपाकवे भग्गम्मिए जाव तमुपज्जिज्जायाः—एयं सत्तु मम इधो भईए पंचमे संवच्छरे चउण्हं मुण्हणं परिक्खणट्टयाए ते पंच सालिक्खत्ता हत्थे दिग्गमा, तं सेयं सत्तु मम कत्तं जाव जत्ते पंच सालिक्खत्ताए परिजाइत्ताए। जाव जाणामि ताव काए किं सारक्खिया वा संगोविया वा सवड्डिया वा? जाव ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहिता कत्तं जाव जत्ते विपुलं सत्तं पाणं खाइमं साइमं मित्तणाइ० चउण्हं य मुण्हणं कुलपरवगग जाव सम्माणिता तस्सेव मित्तणाइ० चउण्हं ॥ मुण्हणं कुलपरवगगस पुरभो जेदं उज्जिमं सहावेइ। सहाविता एवं वयासी—

तत्परवान् जब पाँचवीं वर्षे चल रहा था, तब धन्य मार्थेवाह को मध्य रात्रि के समय इन प्रकार का विचार यावत् उत्पन्न हुआ—

मैंने इससे पहले के—प्रतीत, पाँचवें वर्ष में चारों पुत्रवधुओं को, परीक्षा करने के निमित्त, पाँच चावल के दाने उनके हाथ में दिये थे। तो कल यावत् मूर्खोदय होने पर पाँच चावल के दाने माँगना मेरे लिए उचित हुआ। यावत् जानूँ तो सही कि किमने किस प्रकार उनका संरक्षण, संगोपन और गवर्धन किया है? धन्य मार्थेवाह ने इस प्रकार का विचार किया। विचार करके दूसरे दिन मूर्खोदय होने पर विपुल भयान, पान, खादिस और स्वादिस वनवाया। मित्रों, भातिजनों आदि तथा चारों पुत्र-वधुओं के कुलपटुवर्ग के समक्ष जेटी पुत्रवधू उज्जिमका को बुलाया और बुलाकर इस प्रकार कहाः—

१७—‘एयं सत्तु ग्रहं पुत्ता। इधो भईए पचमसि संवच्छरंसि इमस्स मित्तणाइ० चउण्हं मुण्हणं कुलपरवगगस य पुरभो तव हत्थंसि पंच सालिक्खत्ताए वत्तयामि, जया नं ग्रहं पुत्ता। एए

पंच सालिग्रहणए जाएज्जा तथा न तुम मम इमे पंच सालिग्रहणए पडिनिज्जाएति ति एट्ठं !  
हत्थंसि दत्तयामि, ते नूनं पुत्ता । अट्ठे समट्ठे ?

‘हंता, अरिय ।’

‘तं न पुत्ता ! मम ते सालिग्रहणए पडिनिज्जाएहि ।’

‘हे पुत्री ! अतीत-विगत पाँचवे सवत्सर मे अर्थात् धवरो पाँच वर्यं पहले इन्ही निज्जातिजनो आदि तथा चारो पुत्रवधुओं के कुलगृहवर्ग के सामने मैंने तुम्हारे हाथ में पाँच सालिग्रहण दिये थे, और यह कहा था कि—हे पुत्री ! जब मैं ये पाँच सालिग्रहण मागूँ, तब तुम मेरे वे पाँच सालिग्रहण मुझे वापिस सौंपना । तो यह अर्थ समर्थ है—यह बात मर्य है ?’

उज्झिका ने कहा—‘हा, सत्य है ।’

धन्य सार्धवाह बोले—तो हे पुत्री ! मेरे यह सालिग्रहण वापिस दो ।’

१८—तए नं सा उज्झिका एयमट्ठं धण्हस्स सत्थवाहस्स पडिमुण्हे, पडिमुणिता जेणं कोट्टामारं तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छत्ता पत्ताओ पंच सालिग्रहणए गेण्हइ, गेण्हत्ता तेणेव पंच सत्थवाहे तेणेव उवागच्छइ । उवागच्छत्ता धण्हं सत्थवाहं एयं ययासी—‘एए नं ते पंच सालिग्रहण त्ति कट्ठु, धण्हस्स सत्थवाहस्स हत्थंसि ते पंच सालिग्रहणए दत्तयइ ।

तए नं धण्णे सत्थवाहे उज्झियं सवहसावियं करेइ, करित्ता एयं ययासी—‘किं नं पुत्ता एए चेय पंच सालिग्रहणए उवाहु अग्ने ?’

तत्पश्चात् उज्झिका ने धन्य सार्धवाह की यह बात स्वीकार की । स्वीकार करके ज कोठार था वही पहुँची । पहुँच कर पत्य में से पाँच सालिग्रहण ग्रहण किये और ग्रहण करके ध सार्धवाह के समीप आकर बोली—ये हैं वे पाँच सालिग्रहण ।’ यो कहकर धन्य सार्धवाह के हाथ पाँच सालि के दाने दे दिये ।

तब धन्य सार्धवाह ने उज्झिका को सीमा दिनाई और कहा—‘पुत्री ! क्या वही मेरा ध के दाने हैं अथवा मे दूसरे हैं ?’

१९—तए नं उज्झिका धण्हं सत्थवाहं एयं ययासी—‘एयं खलु तुभे तामो ! इमो घईए पंच संवत्तरे इमस्स मित्तणाइं घउण्ह य सुण्हानं कुलघरवगस्स जाय’ विहराहि । तए नं ग्रहं ! एयमट्ठं पडिमुणेमि । पडिमुणिता ते पंच सालिग्रहणए गेण्हामि, एणंतमयवकमामि । तए न इमेपाहवे अग्रहणिए जाव समुप्पिज्जत्ता—एयं खलु तामानं कोट्टामारंसि<sup>१</sup> तक्कमत्तंजुत्ता । त खलु तामो ! ते चेय पंच सालिग्रहणए, एए नं अग्ने ।’

तब उज्झिका ने धन्य सार्धवाह से इस प्रकार कहा—हे तात ! इसने पहले के पाँचवें वा इन मित्रो एव जातिजनो के तथा चारों पुत्रवधुओं के कुलगृहवर्ग के सामने पाँच दाने देकर ‘इ सरक्षण संगोपन और संवर्धन करती हुई विचरना’ ऐसा आपने कहा था । उस समय मैंने आ

बात स्वीकार की थी । स्वीकार करके वे पाँच शालि के दाने ग्रहण किये और एकान्त में चली गई । तब मुझे इस तरह का विचार उत्पन्न हुआ कि—पिताजी (श्वसुरजी) के कोठार में बहुत से शालि भरे हैं, जब मायेंगे तो दे दूँगी । ऐसा विचार करके मैंने वह दाने फेंक दिये और अपने काम में लग गई । अतएव हे तात ! ये बहो शालि के दाने नहीं हैं । ये दूसरे हैं ।

२०—तएणं से घण्णे उज्झियाए अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म आसुरस्से जाय मिसि-मिसेमाणे उज्झियं तस्स मित्ताइनियय-सयण-संबंधि-परियणस्स चउण्ह मुण्हाणं कुलघरवगस्स य पुरस्सो तस्स कुलघरस्स छादज्झियं च छाणुज्झियं च कयवरज्झियं च संपुच्छियं च सम्मज्झिअं च पाउवदाइयं च ण्हाणावदाइयं च बाहिरयेसणकारि च ठवेइ ।

तत्पश्चात् घन्य सार्यंवाह उज्झिका से यह अर्थ सुनकर और हृदय में धारण करके क्रुद्ध हुए, कुपित हुए, उग्र हुए और क्रोध में आकर मिसमिसाने लगे । उन्होंने उज्झिका का उन मित्रों ज्ञाति-जनो आदि के तथा चारों पुत्रवधुओं के कुलगृहवर्ग के सामने कुलगृह की राख फेंकने वाली, छाणे डालने या थापने वाली, कचरा फाड़ने वाली, पैर धोने का पानी देने वाली, स्नान के लिए पानी देने वाली और बाहर के दासी के कार्य करने वाली के रूप में नियुक्त किया ।

२१—एवामेव समणाउसो ! जो अहं निर्माणो वा निर्मयी वा जाव (आयरिय-उज्झिकायाण अंतिए मुडे भविता अगाराओ अणवारियं) पवइए पंच य से महवयाइं उज्झियाइं सर्वति, से णं इह भवे चेव बहूणं समणानं, बहूणं समणीणं, बहूणं सावयानं, बहूणं साविधानं हीलणिजे जाव अणुपरियट्ठिस्तइ । जहा सा उज्झिया ।

इसी प्रकार हे आयुष्मन् धमणो ! जो हमारा साधु अथवा माध्वी यावत् आचार्य अथवा उपाध्याय के निकट गृहत्याग करके और प्रव्रज्या लेकर पाँच (दानों के समान पाँच) महाव्रतों का परित्याग कर देता है, वह उज्झिका की तरह इसी भव में बहुत से धमणो, बहुत-सी धमणियों, बहुत से आध्वी और बहुत-सी आध्विकाओं की अवहेलना का पात्र बनता है, यावत् जनन संसार में पर्यटन करेगा ।

२२—एवं भोगवइया वि<sup>२</sup> । नवरं तस्स कुलघरस्स कंडंतियं कोट्टंतियं पीसंतियं च एवं चंतियं च रंतियं च परिबेसंतियं च परिभायंति<sup>३</sup> च अग्निभरियं पेसणकारि महानतिणि ठवेइ ।

इसी प्रकार भोगवती के विषय में जानना चाहिए । (उसने प्रसाद समझ कर दाने खा लेने की बात कही) विशेषता यह है कि (वह पाचों दाने खा गई थी, अतएव उसे) खादने वाली, कूटने वाली, पीसने वाली, आते में दल कर घान्य के छिलके उतारने वाली, राधने वाली, परोसने वाली, त्योहारों के प्रसंग पर स्वजनों के घर जाकर ल्हावणी बांटने वाली, घर में भीतर की दासों का काम करने वाली एवं रमोईदारिन का कार्य करने वाली के रूप में नियुक्त किया ।

२३—एवामेव समणाउसो ! जो अहं समणो वा समणी वा पंच य से महवयाइं कोडियाइं भवति, से णं इह भवे चेव बहूणं समणानं, बहूणं समणीणं, बहूणं सावयानं, बहूणं साविधानं जाव<sup>३</sup>

पंच शालिग्रहण ए जाएउजा तथा नं तुम मम इमे पंच शालिग्रहण पडिनिज्जाएमि नि रत्तुं ।  
हरथंसि इत्यमि, ते नूनं पुत्ता । अट्ठे ममट्ठे ?'

‘हंता, अरिय ।’

‘तं न पुत्ता ! मम ते शालिग्रहण पडिनिज्जाएहि ।’

‘हे पुत्री ! अनीन-विगत पाँचवें गारुडर में अर्थात् अरुणें पाँच वर्ष पहले इन्हीं नि-  
शालिग्रहण शालि तथा चारों पुत्रवधुओं के कुलगृहवर्ग के गमना मेंने तुम्हारे हाथ में पाँच शालि-  
दिये थे, और यह कहा था कि—हे पुत्री ! जब मैं ये पाँच शालिग्रहण मांगूँ, तब तुम मेरे दे-  
शालि अथवा मुझे यापिम सोपना । तो यह अर्थ गमन है—यह बात गलत है ?’

उज्झिका ने कहा—‘हा, सत्य है ।’

धन्य सार्धवाह बोले—तो हे पुत्री ! मेरे यह शालि अथवा यापिम दो ।’

१८—तए नं सा उज्झिका एयमट्ठं धण्हस सत्थवाहस पडिसुणेइ, पडिसुणिता  
कोट्टागारं तेनेय उवागच्छइ, उवागच्छिता पत्तामो पंच शालिग्रहण ए गेण्हइ, गेण्हिता ते-  
सत्थवाहे तेनेय उवागच्छइ । उवागच्छिता धण्हं सत्थवाहं एवं वयासी—‘एए नं ते पच शा-  
लि कट्ठु, धण्हस सत्थवाहस हरथंसि ते पंच शालिग्रहण ए वसयइ ।’

तए नं धण्हे सत्थवाहे उज्झिकं सत्थवाहस करेइ, करिता एवं वयासी—‘  
एए चेय पंच शालिग्रहण ए उडाहु अग्ने ?’

तत्पश्चात् उज्झिका ने धन्य सार्धवाह की यह बात स्वीकार की । स्वीकार  
कोठार या वहाँ पहुँची । पहुँच कर पत्य में से पाँच शालि-ग्रहण ग्रहण किये और अ-  
सार्धवाह के समीप आकर बोली—ये हैं वे पाँच शालि-ग्रहण । मैं कहकर धन्य सार्धवा-  
पाँच शालि के दाने दे दिये ।

तब धन्य सार्धवाह ने उज्झिका को सोचद दियाई और कहा—‘पुत्री ! त-  
के दाने हैं अथवा ये दूसरे हैं ?’

१९—तए नं उज्झिका धण्ह सत्थवाह एवं वयासी—‘एवं सत्तु सुग्गे ताप्पो !  
संवच्छरे इमस्स मित्तणाइ० अउण्ह ॥ सुण्हानं कुलधरवागसस जाव’ विहराहि ।  
एयमट्ठं पडिसुणेमि । पडिसुणिता ते पच शालिग्रहण ए गेण्हामि, एणंतमयसकमा-  
इमेवाहये अज्झत्थिए जाव सत्तुप्पिज्जत्था—एवं सत्तु तावाणं कोट्टागारंसि० ॥  
सत्तु ताप्पो ! ते चेय पच शालिग्रहण ए, एए न अग्ने ।’

तब उज्झिका ने धन्य सार्धवाह से इस प्रकार कहा—हे तास ! इससे प-  
इन मित्रों एवं शालिग्रहण के तथा चारों पुत्रवधुओं के कुलगृहवर्ग के गमने  
संरक्षण संगीपन और सवर्धन करती हुई विचरना’ ऐसा आपने कहा था । उ

तत्पश्चात् धन्य सार्यवाह रक्षिका ने यह धर्म सुनकर हृदित घोर सन्तुष्ट हुआ। उसे धन पर के हिरण्य की, (माधुर्य की) वागा धादि बर्तनों की, दूध-रेतकी धादि मूत्रवान् वस्त्रों की, निपुण धन, धान्य, वनक रत्न, मणि, मुक्ता, शङ्ख, मिला, प्रवाल, साम-रत्न धादि स्वायत्त (गम्पति) की माण्डागारिणी (महारी के रूप में) नियुक्त कर दिया।

२७—एवामेव समपात्रतो ! जाय पंच य से महत्त्ववाह रक्षिकायाई भवति, ते न इह मये वेव बहूय समपात्रं, बहूयं समपात्रं बहूयं सावपात्रं बहूयं साविपात्रं सवर्वाणस्ते, जहा जाय ते रक्षितया।

इसी प्रकार हे धायुष्मन् धर्मों। यावत् (दीक्षित होकर) हमारा जो माधु या माध्वी पांच महावर्तों की रक्षा करना है, वह इसी भव में बहूय में सामुद्रो, बहूय में सावित्री, बहूय में श्रावको होना है, जैसे यह रक्षिका।

२८—रोहिणीया वि एवं वेव। नयरं—‘तुभ्ये ताद्यो। मम शुक्लद्वयं सगङ्गासागङ्गं वताहि, जेन ग्रहं तुभ्यं ते पंच तालिप्रवत्तए पदिनिज्जाएमि।’

तए नं से धण्णे सार्यवाहे रोहिणी एवं वयासी—‘बहू नं तुय मम पुत्ता। ते पच तालिप्रवत्तए सगङ्गासागङ्गं निज्जाइरसमि ?

तए नं ता रोहिणी धण्णं एवं वयासी—‘एव सत्तु ताद्यो। इद्यो तुभ्ये पंचमे संवत्तरे इमस्स नित जाय’ बह्वे कुं मत्ताया जाया, तेनेव वमेणं। एवं सत्तु ताद्यो ! तुभ्ये ते पंच तालिप्रवत्तए सगङ्गासागङ्गं निज्जाएमि।

रोहिणी के विषय में भी ऐसा ही कहना चाहिए। विशेष यह है कि—जब धन्य सार्यवाह ने समगे पांच दाने मांगे तो उगने कहा—‘तान ! आप मुझे बहूय-से पात्र गादिया दो, जिससे मैं आपकी वह पांच तालि के दाने लोटाऊँ।’

तब धन्य सार्यवाह ने रोहिणी से कहा—‘पुत्री ! तू मुझे वह पांच तालि के दाने गाडा-गाड़ी में भर कर बंसे देगी ?’

तब रोहिणी ने धन्य सार्यवाह से कहा—‘तान ! इसमें पहने के पांचवें वर्ष में इन्ही मित्रों ज्ञातिजनों धादि के समस्त आपने पांच दाने दिये थे। यावत् वे भव संकटों कुम्भ प्रमाण हो गये हैं, हे तान ! मैं आपको वह पांच तालि के दाने गाडा-गादियों में भर कर देती हूँ।’

२९—तए नं धि धण्णे सार्यवाहे रोहिणीयाए शुक्लद्वयं सगङ्गासागङ्गं वसवद्, तए नं रोहिणी शुक्ल सगङ्गासागङ्गं गहाय जेनेव तए कुलपरे तेनेव उवागच्छद्, उवागच्छिता कोट्टागारे विहाडिद्, जेनेव तए गिहे जेनेव धण्णे सार्यवाहे तेनेव उवागच्छद्।

तए नं रायगिहे नयेर तिपाङ्ग जाय (तिग-चउवड-वच्चर-चउम्मुह-महायह-यहेणु) बहूजणो नममं एवमाइवत्तए—‘धने नं वेवानुत्पिया। धण्णे सार्यवाहे, जस्स नं रोहिणीया शुक्ला, जीए नं



## आठवाँ अध्ययन : मल्ली

र—संक्षेप

प्रस्तुत अध्ययन का कथानक महाविदेह क्षेत्र से प्रारंभ होता है, किन्तु उसकी अन्तिम परिणति भरत क्षेत्र में हुई है। इसमें वर्तमान अवसर्पिणी काल के उन्नीसवें तीर्थंकर, प्रथमा कहना चाहिए तीर्थंकारी भगवती मल्ली का उद्बोधक जीवन अंकित किया गया है। पाठकों की सुविधा के लिए उसका संक्षिप्त सार-स्वरूप इस प्रकार है—

महाविदेह क्षेत्र की सलिलावती विजय की राजधानी वीतशोका थी। वहाँ के राजा का नाम बल था। किसी समय राजधानी में स्वयिरो का भागमन हुआ। धर्मदेशना प्रवण करके राजा ने अपना सुखद राज्य और एक सहस्र राजारानियों की मोह-मगता त्याग कर मुनिधर्म में दीक्षित हो गया। तीव्र तपश्चर्या करके समस्त कर्मों को ध्वस्त कर मुक्त हुआ।

बल राजा का उत्तराधिकारी उनका पुत्र महाबल हुआ। अचल, धरण आदि अन्य छह राजा उसके परम मित्र थे, जो साथ-साथ जन्मे, खेलते और बढ़े हुए थे। उन्होंने निश्चय किया था कि छह में, दुःख में, विदेश यात्रा में और दोषा में हम एक दूसरे का साथ देंगे। एक बार महाबल मार में विरक्त होकर मुनि-दीक्षा लेने को तैयार हुए तो उनके साथी भी अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार मार हो गए। सभी ने उत्कृष्ट साधना की—घोर तपश्चर्या की और जयन्त नामक अनुत्तर विमान में वर्षर्षा में जन्म लिया।

इस बीच एक अनहोनी घटना घटित हो गई। साधु-प्रवस्था में महाबल मुनि के मन में कपट-भाव उत्पन्न हो गया। सातों मुनियों का एक-सी तपस्या करने का निश्चय था, मगर छह मुनि तुर्यभक्त करते तो महाबल मुनि पष्ठभक्त कर लेते। वे पष्ठभक्त करते तो महाबल अष्टभक्त कर लेते। इस तपस्या का फल यह हुआ कि छह मुनियों को देव-वर्षा में किञ्चित् मूल्य बत्तीस सारोपम की प्राप्ति हुई तो महाबल मुनि को पूर्ण बत्तीस सारोपम की स्थिति प्राप्त हो गई। यही उन्होंने तीर्थंकर-नामकर्म का वंघ किया।

किन्तु कोई राजा हो या रंक, महामुनि हो या सामान्य गृहस्थ, कर्म किसी का लिहाज नहीं करते। कपट-सेवन के फलस्वरूप महाबल ने स्त्रीनामकर्म का वंघ कर लिया। जयन्त विमान से जब वे च्युत होकर मनुष्य-वर्षा में अवतरित हुए तो उन्हें इसी भरतक्षेत्र में मिथिला-नरेश कुंभ की हारानी प्रभावती के उदर से कन्या के रूप में जन्म लेना पड़ा। उसका नाम 'मल्ली' रखा गया।

तीर्थंकरों का जन्म पुरुष के रूप में होता है किन्तु मल्ली कुमारी का जन्म महिला के रूप में हुआ। इतिहास की एक अद्भुत और आश्चर्यजनक घटना है।

मल्ली कुमारी के छह अन्य साथी इससे पूर्व ही विभिन्न प्रदेशों में जन्म ले कर अपने-अपने प्रदेशों के राजा बन चुके थे। उनके नाम इस प्रकार हैं—





मंगनी धरतीकार कर दी थी। अतएव वे सब मिल कर कुंभ राजा के साथ युद्ध करने के लिए गए थे। परस्पर में परामर्श करके ही वे एक साथ बढ़ आए थे। कुंभ ने छद्म राजाओं का मामला था। योरता के साथ संधान किया, मगर धरेसा घना क्या भाड़ फोड़ सकता है? आखिर कुंभ अस्त्रिष्ट हुमा धीर लोट कर घपने महत में घा गया। वह धरयन्त महरे विषाद में डूब गया—किर्कत ध्य- हो गया।

उसी समय राजकुमारी अपने पिता कुंभराज को प्रणाम करने गई। मगर कुंभ चिन्ता में ऐसे मग्न थे कि उन्हें उसने घाने का भान ही नहीं हुआ। तब कुमारी मल्ली ने गहरी चिन्ता का कारण पूछा। कुंभराज ने उसे समस्त वृत्तान्त कह सुनाया।

मल्ली कुमारी ने इसी प्रसंग के लिए अपनी प्रतिमा बनवा कर सारी तैयारी कर रखी थी। पना में कहा—घाघ चिन्ता रयागिए धीर प्रत्येक राजा के पास गुप्त रूप से दूत भेज कर कहला लीजिए कि घाघकी ही मल्ली कुमारी दी जाएगी। घाघ गुप्त रूप से सन्ध्या समय राजमहल में घा जाइए। उन सब को जागीदार गृहों में प्रलग-घलग ठहरा दीजिए।

कुंभ राजा ने ऐसा ही किया। छद्म राजा मल्ली कुमारी का वरण करने की लालसा में गर्भगृहों में घा पहुँचे। प्रभात होने पर सबने मल्ली की प्रतिमा को देखा और सन्न लिया कि यही कुमारी मल्ली है। सब उसी की धीर अनिमेष दृष्टि से देखने लगे। तब मल्ली कुमारी वहाँ पहुँची और प्रतिमा के मस्तक के छिद्र को उपाड़ दिया। छिद्र को उपाड़ते ही उसमें से जो दुर्गन्ध निकली वह प्रसन्न हो गई। सभी राजा उमते पयरा उठे। सबने अपनी अपनी नाक दबाई और मुँह बिगाड़ लिया। विषयासक्त राजाओं को उद्बुद्ध करने का यही उपयुक्त अवसर था। मल्ली कुमारी ने नाक-मुँह बिगाड़ने का कारण पूछा। सभी का एक ही उत्तर था—मनह्य बदबू!

तब राजकुमारी ने राजाओं में कहा—देवानुप्रियो! इस प्रतिमा में भोजन-पानी का एक-एक पिण्ड डालने का ऐसा अनिष्ट एवं अनोख परिणाम हुमा तो इस भौतिक शरीर का परिणाम कितना असुख, अनिष्ट और अनोख न होगा! यह शरीर तो मल, मूत्र, मास, रश्मि आदि की पैली है। इस के प्रत्येक द्वार से गंदे पदार्थ भरते रहते हैं। सड़ना-गलना इस का स्वभाव है। इस पर से पमदी की चादर हटा दी जाए तो यह शरीर कितना सुन्दर प्रतीत होगा! यह बीलों-कीवों का भय घन जाएगा। इसका प्रसली बीमरन रूप प्रकट हो जाएगा! तो मल-मूत्र की इस पैली पर आप क्या मोहित हो रहे हैं!

इस प्रकार संबोधित करके मल्ली कुमारी ने पूर्वजन्मों का वृत्तान्त उन्हे कह सुनाया। किस प्रकार वे सब साथ दोलित हुए थे, किस प्रकार उसने कपटाचरण किया था, किस प्रकार वे सब देवपर्याय में उत्पन्न हुए थे, इत्यादि सब कह सुनाया।

मल्ली द्वारा पूर्वभवाँ का वृत्तान्त सुनते ही छद्म राजाओं को जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया। सब संबुद्ध हो गए। तब गर्भगृहों के द्वार उन्मुक्त कर दिए गए। समग्र बातावरण में अनुराग के स्थान पर विराग छा गया। उसी समय राजकुमारी ने दीक्षा अंगीकार करने का संकल्प किया।

1. The first group of students, who were given the traditional lecture, showed a significant increase in knowledge from pre-test to post-test, but the increase was not statistically significant.

7. 4. 3

*Glad to hear from you*

†

1

[illegible]

2004

1994

•

104

79.

71 72

Figure 1

•

1999

10

1

73.

†

1

## अट्ठमं अज्झयणं : मल्ली

आशेष

१—अइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं सत्तमस्स नायग्गमणस्स भयमट्ठे पत्तं  
अट्ठमस्स णं भंते ! के अट्ठे पत्तत्ते ?

जम्बू स्वामी ने श्रीगुधर्मा स्वामी से प्रश्न किया—‘भगवन् ! यदि त्वमए भगवान् महावी  
ने सातवें जात-अध्ययन का यह अर्थ कहा है (जो आपने मुझे सुनाया), तो आठवें अध्ययन का क्या अ  
रथ है ?’

२—एयं एत्तु जंघू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव अंबुदीवे बोधे महाविदेहे वासे मंदरस्स  
पश्चिमस्स पक्कस्सिमैणं, निसदस्स वासहरपश्चिमस्स उत्तरेणं, सीयोयाए महानईए वाहिणेणं, सुहावहस्स  
वक्खारपस्वस्स पक्कस्सिमैणं, पक्कस्सिमलवणत्तमुदस्स पुरब्धिमेण एय णं सलिलावती नामं विजय  
पत्तत्ते ।

श्री गुधर्मा स्वामी ने उत्तर देते हुए कहा—‘हे जम्बू ! उस काल और उस समय में, इस  
जम्बूद्वीप नामक द्वीप में, महाविदेहनामक वर्ष (क्षेत्र) में, मेरु पर्वत से पश्चिम में, निपघनाम  
वर्षधर पर्वत से उत्तर में, सीतोदा महानदी से दक्षिण में, सुखावहनामक वक्खार पर्वत से पश्चिम में  
और पश्चिम लवण समुद्र से पूर्व में—इस स्थान पर, सलिलावतीनामक विजय कहा गया है ।

३—तस्स णं सलिलावतीविजए बीयसीगा नामं रायहाणी पण्णसा-नवजोपणविरियस्स  
जाय’ पक्कवर्षं देवलोगमुया ।

तीसरे णं बीयसीगाए रायहाणीए उत्तरपुरस्सिमे विसिमाए एय णं इंदकु ने नामं उज्जाणे  
होस्सा ।

तस्य णं बीयसीगाए रायहाणीए बले नामं राया होस्स । तस्स धारिणीपामोवर्षं देवितहस्स  
उवरोये होस्सा ।

उस सलिलावती विजय में बीतशोका नामक राजधानी कही गई है । वह नौ योजन चौड़ी,  
यावत् (भारह योजन लम्बी) साक्षात् देवलोक के समान थी ।

उम बीतशोका राजधानी के उत्तरपूर्व (ईशान) दिशा के भाग में इन्द्रकुम्भनामक उद्यान था ।

उस बीतशोका राजधानी में वत्तनामक राजा का । बल राजा के अन्तःपुर में धारिणी प्रभृति  
एक हजार देवियाँ (रानियाँ) थी ।

महाबल का जन्म

४—तए नं सा धारिणी देवी अन्नया कयाइ सीहं मुनिने पासित्ता नं पडिबुद्धा जाव<sup>१</sup> महाने नामं दारए जाए, उम्भकवालभावे जाव भोगसमत्थे । तए नं तं महबलं अम्माविपरी सतिमिन्नं कमलसिरीवामोवलाणं पंचहं रायवरकन्नासयाणं एगदिवसेणं पाणि नेण्हायेंति । पंच पासायनना पंचसप्पो दापो जाव<sup>२</sup> विहरइ ।

वह धारिणी देवी किसी समय स्वप्न में सिंह को देखकर जागृत हुई । यावत् ययामन महाबलनामक पुत्र का जन्म हुआ । वह बालक भ्रमशः बाल्यावस्था को पार कर भोग भोगने में मग्न हो गया । तब माता-पिता ने समान रूप एक बय बाली कमलश्री आदि पाँच सौ श्रेष्ठ राजकुमारों के साथ, एक ही दिन में, महाबल का पालिश्रहण कराया । पाँच सौ प्रासाद आदि पाँच-पाँच सौ क दहेज दिया । यावन् महाबल कुमार मनुष्य संवधो कामभोग भोगता हुआ रहने लगा ।

५—तेणं कालेण तेणं समएणं धम्मघोसा नामं थेरा पंचहि अणगारसएहि सडि संपरिपु पुग्गणुपुग्गि चरमाणे, गामाणुगामं दूइज्जमाणे, सुहंसुहेणं विहरमाणे जेणेव इंवकुंभे नाम उग्गस तेणेव समोसडे, संजमेणं तयसा अप्पाणं भावेमाणे विहरंति ।

उस काल और उस समय में धर्मघोषनामक स्वविर पाच सौ शिष्यो—अनगारो के स परिपूत होकर अनुक्रम से विचरते हुए, एक ग्राम से दूसरे ग्राम गमन करते हुए, सुसे-गुसे विहार क हुए जहाँ इन्द्रकुम्भनामक उद्यान था, वहाँ पधारे और समय एवं तप से आत्मा को भावित करते वहाँ ठहरे ।

बल की बीधा और निर्वाण

६—परित्ता निग्गया, यलो वि राया निग्गप्पो, धम्मं सोव्वा एसम्म जं मयवं महबलं कु रउत्ते टावेइ, टावित्ता तयमेव वसे राया थेराणं अतिए पवइए, एक्कारतामंगधिप्पो, धूणि वात तामण्यपरिघायं पाउगित्ता जेणेव धादपथ्वए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मासिएणं स अयाणेणं केवलं पाउगित्ता जाव तिठे ।

स्वविर मुनिराज को मन्दना करने के लिए जनसमूह निकला । बल राजा भी निर धर्म सुगहर राजा की वैराग्य उत्पन्न हुआ । विशेष यह कि उगने महाबल कुमार को राज्य पर प्रति विधा । प्रतिष्ठित करने स्वयं ही बल राजा ने आकर स्वविर के निकट प्रश्रया अगीकार की प्यारट भगो के वेला हुए । बहुत वयो तक समय पाल कर जहाँ चारुपवंत था, वहाँ गये । एक का निर्जल धनदान करने केवलमान प्राप्त करके यावन् तिष्ठ हुए ।

राजा बह्मराज

७—तए न बम्मनिरी अन्नया कयाइ सीहं मुनिने पासित्ता नं पडिबुद्धा, जाव वा बूमारो जापो, सुवराया मावि होत्था ।

तन्मयात् अन्नया कदाचित् बम्मनी स्वप्न में सिंह को देखकर जागृत हुई । (यावत् बह्मराज कुमार का जन्म हुआ । वह सुवराज भी हो गया ।

८—तस्मिन् नं महत्त्वस्तस्मिन् रथो इमे धृष्यिष्य बालवयंसंगा रायाणो होत्या, तंजहा—(१) अयत्ते २) घरणे (३) पूरणे (४) वसु (५) वेतमणे (६) अभिचन्दे, सहजाया सहवद्विषया सहपंसु-  
लितया सहारदरिसी अणमणमणुरस्ता अणमणमणुत्वयया अणमणच्छदानवत्तया अण-  
णहियइच्छिपकारया अणमण्णेमु रज्जेसु किञ्चाइं करणिञ्चाइं पच्चणुमवमाणा विहरंति ।

तए णं तेति रायाणं अणया क्याइं एगयओ सहियाणं समुवागयानं सणिसण्णाणं  
णिगिद्विटाणं इमेयाह्वे मिहोक्कहासमुत्तावे समुप्पज्जित्वा-अण्णं देवानुप्पिया ! अहं सुहं वा  
बलं वा पव्वयजा वा विदेसगमणं वा समुप्पज्जइ, तण्णं अग्हेहि एगयओ समेच्चा गित्थरिपयवे ति  
ददु अणमणस्सेयमट्ठं पडिसुणेति । सुहंमुहेणं विहरंति ।

उस महाबल राजा के यह छहों राजा बालमित्र थे । वे इस प्रकार—(१) अक्षय (२) घरण  
३) पूरण (४) वसु (५) वैश्रमण (६) अभिचन्द्र । वे साथ ही जन्मे थे, साथ ही वृद्धि को प्राप्त हुए  
; साथ ही धूल में खेले थे, साथ ही विवाहित हुए थे, एक दूसरे पर अनुराग रखते थे, एक-दूसरे का  
नुसरण करते थे, एक-दूसरे के अभिप्राय का आदर करते थे, एक-दूसरे के हृदय की अभिलाषा के  
नुसार कार्य करते थे, एक-दूसरे के राज्यों में काम-काज करते हुए रह रहे थे ।

एक बार किसी समय वे सब राजा इकट्ठे हुए, एक जगह मिले, एक स्थान पर आसीन हुए ।  
व उनमें इस प्रकार का वार्तालाप हुआ—‘देवानुप्रियो ! जब कभी हमारे लिए मुल का, दुःख का  
‘रज्या—दीक्षा का अथवा विदेशगमन का प्रसंग उपस्थित हो तो हमें सभी अवसरों पर साथ ही  
हूँता चाहिए । साथ ही आत्मा का निस्तार करना—आत्मा को सत्तार-सागर से तारना चाहिए’  
। मा निष्पन्न करके परस्पर में हम अर्ध (वात) को अगीकार किया था । वे सुखपूर्वक रह रहे थे ।

हाबल की दीक्षा

६—तेणं कालेणं तेणं समएणं धम्मपोसा थेरा जेणेव इंदकुंभे उज्जाणे तेणेव समोसडा, परिसा  
वगाया, सहलो वि राया निग्गमो । धम्मो कहिधो । महत्त्वत्तेणं धम्मं सोच्चा—अं नवरं  
‘राणुप्पिया ! धृष्यिष्य बालवयंसंगे आपुच्छामि, बलमइं च कुमारं रज्जे ठावेमि, जाध धृष्यिष्य  
‘बालवयंसंगे आपुच्छइ ।

तए णं ते धृष्यिष्य बालवयंसंगे महत्त्वत्तं रायं एवं वयासी—‘जइ णं देवानुप्पिया ! तुम्मे पव्वयह,  
अहं के अग्ने आहारे वा ? जाध आत्तवे वा ? अग्हे वि य णं पच्चयामो ।

तए णं ते महत्त्वत्ते राया धृष्यिष्य बालवयंसंगे एवं वयासी—‘जइ णं देवानुप्पिया ! तुम्मे मए  
द्वि (जाध) पव्वयह, तस्रो णं तुम्मे गच्छइ, जेट्ठपुत्तं सएहि मएहि रज्जेहि ठावेह, पुरिससहस्सवाह-  
तोमो सोयाओ दुक्कडा समाणा पाउम्भवह । तए णं ते धृष्यिष्य बालवयंसंगे जाध पाउम्भवंति ।

उस काल और उस समय में धर्मघोष नामक स्थविर जहाँ इन्द्रकुम्भ उत्थान था, वहाँ पधारे ।  
रिपद् बदमा करने के लिए निकली । महाबल राजा भी निकला । स्थविर महारात्र ने धर्म कहा—  
‘मोपदेश दिया । महाबल राजा को धर्म श्रवण करके वैराग्य उत्पन्न हुआ । विशेष यह कि राजा  
‘कहा—हे देवानुप्रियो ! मैं अपने छहों बालमित्रों से पूछ लेता हूँ और बलभद्र कुमार को राज्य पर  
थापित कर देता हूँ, फिर दीक्षा अगीकार करूँगा ।’ इस प्रकार कहकर उसने छहों बालमित्रों से पूछा ।

तब वे छहों बाल-मित्र महाबल राजा से कहने लगे—देवानुप्रिय ! यदि तुम प्रयत्नित होते हो तो हमारे लिए अन्य कोन-सा आधार है ? यावत् [अथवा आत्मबल है] हम भी दीक्षित होने हैं ।

तत्पश्चात् महाबल राजा ने उन छहों बालमित्रों से कहा—देवानुप्रियो ! यदि तुम मेरे साथ [यावत्] प्रयत्नित होते हो तो तुम जाओ और अपने-अपने ज्येष्ठ पुत्र को अपने-अपने राज्य पर प्रतिष्ठित करो और फिर हजार पुरुषों द्वारा बहन करने योग्य निषिकाओं पर मारुड होकर यहाँ प्रकट होओ । तब छहों बालमित्र गये और अपने अपने ज्येष्ठ पुत्रों को राज्याभिषेक करके यावत् महाबल राजा के समीप आ गये ।

१०—तए नं से महश्बले राया छप्पिय बालवयंसए पाउम्भूए पासइ, पासित्ता हट्ठुत्ते कोडु'मियपुरिते सहायेइ, सहावित्ता एवं वयासी—'गच्छह नं तुभं देवानुप्रिया ! बलमद्दस कुमारस महया महया रायाभित्तेणं भमित्तिवेह ।' ते वि सहेय जाव बलमद्द कुमारं भमित्तिवेत ।

तब महाबल राजा ने छहों बालमित्रों को आया देखा । देखकर वह हर्षित और संतुष्ट हुआ । उसने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर कहा—'देवानुप्रियो ! जाओ और बलमद्द कुमार का महान् राज्याभिषेक से अभिषेक करो ।' यह आदेश सुनकर उन्होंने उसी प्रकार किया यावत् बलमद्द कुमार का अभिषेक किया ।

११—तए नं महश्बले राया बलमद्द कुमारं भापुच्छइ । तसो नं महश्बलपामोवत्ता छप्पिय बालवयंसए सद्धि पुरितसहससयाहिणि सिवियं दुल्ला वीवसीयाए रायहाणीए मज्झमज्झेणं निगच्छति । निगच्छित्ता जेजेव इवक'भं उज्जाणं जेजेव थेरा मगवंतो तेजेव उवागच्छति । उवागच्छित्ता ते वि स सममेव पंचमुट्ठियं सोयं करंति, करिशा जाव पववन्ति, एवकारस भंयाइं अहिज्जिता बह्महि चउत्तप-छट्ठट्ठमेहिं अण्णाणं भावेणाणा जाव विहरंति ।

तत्पश्चात् महाबल राजा ने बलमद्द कुमार से, जो अब राजा हो गया था, दोदा की आशा ली । फिर महाबल भचल आदि छहों बालमित्रों के साथ हजार पुरुषों द्वारा बहन करने योग्य निषिका पर मारुड होकर, वीतलीका नगरी के बीचोबीच होकर निकले । निकल कर जहाँ इन्द्रकुम्भ उद्यान था और जहाँ स्पष्टिर भगवन्त थे, वहाँ आये । आकर उन्होंने भी स्वयं ही पंचमुष्टिक लोभ किया । लोभ करके यावत् दीक्षित हुए । ग्यारह अंगों का अध्ययन करके, बहुत से उपवास, वेसा, तेसा, आदि तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे ।

१२—तए नं तेष महश्बलपामोवत्ताणं सतत्तहं अणगाराणं अण्णाया कयाइ एगवसो सहियाणं इमेपाहवे मिहो कहासमुत्तावे समुत्पज्जितया—'जं नं अण्हं देवानुप्रिया ! एते तवोक्कमं उव-संपज्जितता नं विहरइ, तं नं अण्हेंहि सव्वेहि सद्धि तवोक्कमं उवसंपज्जितता नं विहरिशाए' ति वट्ठ-अण्णमण्णस एवमट्ठं पडिमुत्तेति, पडिमुत्तेता बह्महि चउत्तप जाव [छट्ठट्ठम-वत्तम-पुआसत्तेहिं मामड-मामत्तमोहिं] विहरंति ।

तत्पश्चात् वे महाबल आदि सातों अनगार किसी समय एकट्ठे हुए । उत समय उनमें परस्पर रग प्रकार बातचीत हुई—हे देवानुप्रियो ! हम सोचों में से एक जिस तप को अंगीकार करके विचरे हम सब को एव साथ वही तप-विद्या ग्रहण करके विचरना उचित है । अर्थात् हम सार्वा एक हो

प्रकार की तपस्या किया करेंगे ।' इस प्रकार कहकर मन्त्रे यह बात अंगीकार की । अंगीकार करके प्रत्येक चतुर्थभक्त, बेला, सेला, चोला, पचोला, मासगमण, धर्ममासगमण—एक-भी तपस्या करते हुए विचरने लगे ।

महावत का भावाचार

१३—तएवं से महामन्त्रे धनगारे इमेण कारणेणं इतिष्णामगोत्रं कर्म निर्वर्तितम्—अइ जं ते महामन्त्रे वज्रा ॥ धनगारा चउत्तं उवसंपग्गित्ता जं विहरंति, तप्पो से महामन्त्रे धनगारे छट्ठं उवसंपग्गित्ता जं विहरइ । अइ जं ते महामन्त्रे वज्रा धनगारा छट्ठं उवसंपग्गित्ता जं विहरंति, तप्पो से महामन्त्रे धनगारे छट्ठं उवसंपग्गित्ता जं विहरइ । एवं छट्ठं तो दसमं, अइ दसमं तो बुवात्तसमं ।

तत्पश्चात् उन महावत धनगार ने इस कारण ने स्त्रीनामगोत्र कर्म का उपार्जन किया— यदि वे महावत को छोड़ कर दोष छह धनगार चतुर्थभक्त (उपवास) ग्रहण करके विचरते, तो महावत धनगार (उन्हें बिना कहे) षष्ठभक्त (बेला) ग्रहण करके विचरते । अगर महावत के सिवाय छह धनगार षष्ठभक्त अंगीकार करके विचरते तो महावत धनगार छठमभक्त (सेला) ग्रहण करके विचरते । इसी प्रकार वे छठमभक्त करते तो महावत दशमभक्त करते, वे दशमभक्त करते तो महावत द्वादशभक्त, कर लेते । (इस प्रकार अपने साथी मुनियों से छिपा कर-कपट करके महावत अधिक तप करते थे ।)

तीर्थंकर नामकर्म का उपार्जन

१४—इमेहि य बीलाएहि य कारणेहि आसेविपबहुत्तोएहि तिरययरनामगोत्रं कर्म निर्वर्तितम्, संजहा—

अरिहत-सिद्ध-प्रवचन-गुरु-धेर-बहुस्नुए-तवस्तीसु ।  
वत्तमया य तंति, अमिबल जालोवप्पो ये य ॥ १ ॥  
संतन-विणए भावत्तए य सीलव्वए निरइयारं ।  
सणत्तव-सवच्चियाए, वेयावक्के समाही य ॥ २ ॥  
अपुब्बनाणगहणे, सुयमसी पवयणे पभावणया ।  
एएहि कारणेहि, तिरययरत्तं सहइ बीवी ॥ ३ ॥

(महावत ने) स्त्रीनाम गोत्र के अतिरिक्त इन कारणों के एक बार और बार-बार सेवन करने से तीर्थंकर नामगोत्र कर्म का भी उपार्जन किया । वे कारण यह हैं—

(१) अरिहत (२) सिद्ध (३) प्रवचन—श्रुतज्ञान (४) गुरु—धर्मोपदेशक (५) स्थविर अर्थात् साठ वर्ष की उम्र वाले जातिस्थविर, समवायागादि के ज्ञाता श्रुत-स्थविर और बीस वर्ष की दीक्षा वाले पर्याय-स्थविर, यह तीन प्रकार के स्थविर साधु (६) बहुश्रुत—दूसरों की अपेक्षा अधिक श्रुत के ज्ञाता और (७) तपस्वी—इन सातों के प्रति वत्सलता धारण करना अर्थात् इनका योगोचित सत्कार—सम्मान करना, गुणोत्कीर्ण करना (८) बारबार ज्ञान का उपयोग करना (९) दर्शन-सम्पत्तव की विपुलता, (१०) ज्ञानादिक का विनय करना (११) छह भावश्यक करना (१२) उत्तरगुणों और मूलगुणों का निरतिचार पालन करना (१३) सणत्तव अर्थात् क्षण-एक क्षण



प्रमाण काल में भी मन्त्रेण भावना एव ध्यान का गेहन करना (१४) तथा करना (१५) साधन-मुक्ति को उचित दान देना (१६) नगा-नगा ज्ञान घटाना करना (१७) समाधि—मुख धारि को मन्त्र उपजाना (१८) वेद्यापूज्य करना (१९) शून्य की भक्ति करना प्रीति (२०) परमेश्वर को प्रभावना करना, इन योग कारणों से जीव तीर्थंकरत्व की प्राप्ति करता है। नागार्जुन यह है कि इन योग कारणों से महाबल मुनि ने तीर्थंकर नामकर्म उत्पन्न किया।

महाबल आदि की तपस्या

१५—तएव ते महाबलपामोक्षता सप्त अनगार मागिचं मिश्रपुपडिमं उपसंप्रजिता नं विहरंति, जाय एगराद्वयं मिश्रपुपडिमं उपसंप्रजिता नं विहरंति।

तत्पश्चात् वे महाबल आदि सातों अनगार एक माग की पहली भिक्षु-प्रतिमा अंगीकार करते विचरने लगे। यावत् बारहवीं एक रात्रि की भिक्षु प्रतिमा अंगीकार करके निगदने लगे। (यह यावत् शब्द से बोध की दृष्टि भिक्षु प्रतिमाएं दृष्ट प्रकार समझनी चाहिए—दूगरी दो मास की, तीसरी तीन मास की, चौथी चार मास की, पाँचवीं पाँच मास की, छठी छह मास की, सातवीं सात मास की, आठवीं आठ ग्रहोरात्र की, नौवीं सात ग्रहोरात्र की, दसवीं सात ग्रहोरात्र की और ग्याहवीं एक ग्रहोरात्र की। इस प्रकार सब मिनकर बारह भिक्षु-प्रतिमाएँ हैं।)

१६—तएव ते महाबलपामोक्षता सप्त अनगार लुङ्गणं सीहनिष्कीर्णं तथोक्तं उपसंप्रजिता नं विहरंति, संजहा—चउथं करेति, करिता सव्यकामगुणियं पारंति, पारिता, छट्ठं करेति, करिता चउथं करेति, करिता छट्ठं करेति, करिता छट्ठं करेति, करिता दसमं करेति, करिता छट्ठं करेति, करिता दुवालसमं करेति, करिता दसमं करेति, करिता चाउडसमं करेति, करिता दुवालसमं करेति, करिता सोलसमं करेति, करिता चोडसमं करेति, करिता छट्ठारसमं करेति, करिता सोलसमं करेति, करिता बीसइमं करेति, करिता छट्ठारसमं करेति, करिता चोडसमं करेति, करिता सोलसमं करेति, करिता छट्ठारसमं करेति, करिता चोडसमं करेति, करिता सोलसमं करेति, करिता दुवालसमं करेति, करिता चाउडसमं करेति, करिता दसमं करेति, करिता दुवालसमं करेति, करिता छट्ठं करेति, करिता दसमं करेति, करिता छट्ठं करेति, करिता चउथं करेति, करिता छट्ठं करेति, करिता चउथं करेति। सव्यस्य सव्यकामगुणियं पारंति।

तत्पश्चात् वे महाबल प्रभृति सातों अनगार क्षुल्लक सिंहनिष्कीर्ण नामक तपस्वरण अंगीकार करके विचरने लगे। यह तप इस प्रकार किया जाता है—

सर्वप्रथम एक उपवास करे, उपवास करके सर्वकाम गुणित (विषय आदि सभी पदार्थों को ग्रहण करने के साम) पारणा करे, पारणा करके दो उपवास करे, फिर एक उपवास करे, करके तीन उपवास (छट्ठमभक्त) करे, करके दो उपवास करे, करके चार उपवास करे, करके तीन उपवास करे, करके पाँच उपवास करे, करके चार उपवास करे, करके छह उपवास करे, करके पाँच उपवास करे, करके सात उपवास करे, करके छह उपवास करे, करके आठ उपवास करे, करके सात उपवास करे,

करके नौ उपवास करे, करके घाट उपवास करे, करके नौ उपवास करे, करके सात उपवास करे, करके घाट उपवास करे, करके छह उपवास करे, करके सात उपवास करे, करके पाँच उपवास करे, करके छह उपवास करे, करके चार उपवास करे, करके पाँच उपवास करे, करके तीन उपवास करे, करके चार उपवास करे, करके दो उपवास करे, करके तीन उपवास करे, करके एक उपवास करे, करके दो उपवास करे, करके एक उपवास करे, सब जगह पारणा के दिन मर्म नामगुणित पारणा करके उपवासों का पारना समझना चाहिए ।

विवेचन :—मिह की जोड़ा के समान तप मिहनिष्कीर्ण कहलाता है । जैसे मिह चलता-मलता पीछे देगता है, इसी प्रकार त्रिग तप में पीछे के तप की धारणा करके आगे का तप किया जाता है और इसी क्रम में आगे बढ़ा जाता है, वह मिहनिष्कीर्ण तप कहलाता है । इस तप की स्थापना ग्रंथों में निम्न प्रकार है—

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०	४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८	४९	५०	५१	५२	५३	५४	५५	५६	५७	५८	५९	६०	६१	६२	६३	६४	६५	६६	६७	६८	६९	७०	७१	७२	७३	७४	७५	७६	७७	७८	७९	८०	८१	८२	८३	८४	८५	८६	८७	८८	८९	९०	९१	९२	९३	९४	९५	९६	९७	९८	९९	१००
---	---	---	---	---	---	---	---	---	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	-----

१७—एवं सत्तु एता सुहृन्महीहनिबकीर्णस्य तपोकर्मस्य पदमा परिवाही छहि भासेहि सप्तहि य ग्रहोरसेहि य ग्रहागुता जाव धाराहिया भवइ ।

इस प्रकार इस शुष्क मिहनिष्कीर्ण तप की पहली परिपाटी छह मास और सात ग्रहोरात्रों में मूल के मनुगार भावत् धाराधित होती है । (इसमें १५४ उपवास और तेनीस पारणा किये जाते हैं ।)

१८—तथाप्यतरं शोषणा परिवाही चउत्थं करंति, नवरं विगइवजं पारंति । एवं तच्छा वि परिवाही, नवरं पारणं भवेत्तार्थं पारंति । एवं चउत्था वि परिवाही, नवरं पारणं ध्यायविलेपं पारंति ।

गल्पनात् इसी परिपाटी में एक उपवास करते हैं, इत्यादि सब पहले के समान ही समझ लेना चाहिए । विवेचना यह है कि इसमें विकृति रहित पारणा करते हैं अर्थात् पारणा में घी, तेल, दूध, दही आदि विषय का सेवन नहीं करते । इसी प्रकार तीसरी परिपाटी भी समझनी चाहिए । इसमें विवेचना यह है कि अनेपहत (अनेपमिश्रित) से पारणा करते हैं । चौथी परिपाटी में भी ऐसा ही करते हैं किन्तु उसमें ध्यायविलेप से पारणा की जाती है ।

१९—तए जते महाबलपामोयला सप्त धनगरा सुहृन्महीहनिबकीर्णस्य तपोकर्मं दोहि संवधरेति ग्रहागुता ग्रहोरसेहि ग्रहागुता जाव धाराहिया, जेणव धरे भगवते तेणव उयागच्छति, उयागच्छता धरे भगवते बंभंति भगवति, बंभित्ता नमसित्ता एवं वयातो—

तत्पदवान् वे महाबल आदि सात धनगर शुष्क (सत्तु) मिहनिष्कीर्ण तप की (चारों

परिपाटी गृहित) दो वर्ष और पट्टार्ग्य ग्रहोरात्र में, भूप के कननानुगाम यान् तीर्थकर को दशरं  
प्राराधन करके, जहा स्थविर भगवान् थे, वहाँ भागे । आकर उन्होंने वन्दना की, नमस्कार किया।  
वन्दना-नमस्कार करके द्वा प्रणाम बोले—

२०—इच्छामो णं भंते । महात्मं सीहनिष्कीलियं तथोक्तम् तथेय जहा सुगुणं, नरं  
घोत्तोसइमाघो नियतए, एगाए सेव परिवाडोए कासो एगेणं संवच्छरेणं एहि मातोहि पट्टारत्तेहि  
ग्रहोरात्रेहि समप्येइ । सधं पि सीहनिष्कीलियं एहि वातोहि, वोहि य मातोहि, बारतोहि य ग्रहोरात्रेहि  
समप्येइ ।

‘भगवन् । हम महत् (बड़ा) सिंहनिष्कीलित नामक तपकर्म करना चाहते हैं यदि । बहुत  
क्षुल्लक सिंहनिष्कीलित तप के समान ही जानना चाहिए । विशेषता यह है कि इसमें नौनीम भक्त वर्ष  
सोलह उपवास तक पहुँचकर बापिम लौटा जाता है । एक परिपाटी एक वर्ष, छह मास और ग्रहा  
ग्रहोरात्र में समाप्त होती है । सम्पूर्ण महासिंहनिष्कीलित तप छह वर्ष, दो मास और बारह ग्रहो  
में पूर्ण होता है । (प्रत्येक परिपाटी में ५५८ दिन लगते हैं, ४६७ उपवास और ६१ पारणा होते हैं)

२१—तए णं ते महब्बलपामोवला सत्त भणगारा महात्मं सीहनिष्कीलियं ग्रहामुत्तं वा  
प्राहाहेत्ता जेणेव थेरे भगवन्ते तेणेव उवागच्छन्ति, उवागच्छता थेरे भगवन्ते वदन्ति नमंसंति, वी  
नमंसित्ता बह्णि चउत्थ जाय विहरन्ति ।

तत्पश्चात् वे महाबल प्रभृति सातों मुनि महासिंहनिष्कीलित तपकर्म का सूत्र के अनु  
यायत् प्राराधन करके जहा स्थविर भगवान् थे, वहाँ भाते हैं । आकर स्थविर भगवान् को व  
करते हैं, नमस्कार करते हैं । वन्दना और नमस्कार करके बहुत से उपवास, बेला, तेला आदि  
हुए विचरते हैं ।

समाधिमरण

२२—तए णं ते महब्बलपामोवला सत्त भणगारा तेणं उरासेणं सुवका भुवला<sup>१</sup> जहा ला  
मधरं थेरे आपुच्छित्ता चारुपध्वं (यवसारपध्वं) बुरुहन्ति । बुरुहिता जाय<sup>२</sup> दोमासिमाए संसेहणाए  
सबीस मत्तसयं भणसणं, चउरासीइ वाससयसहस्साइं सामणपरियायं पाउणति, पाउणिता सुवसीइ  
पुधसयसहस्साइं सत्ताउयं वासइत्ता जयन्ते विमाणे देवताए उववन्ना ।

तत्पश्चात् वे महाबल प्रभृति भनगार उस प्रधान तप के कारण पुत्रः अर्थात् माग-रक्त में  
होन तथा रुक्ष अर्थात् निरतिज हो गये, भगवतीसूत्र में कथित स्कदक मुनि (या इसी अग वे  
वर्णित मेघ मुनि के गृष्ट्य उनका वर्णन समझ लेना चाहिए ।) विशेषता यह है कि स्कदक मुनि ने  
भगवान् महावीर से आशा प्राप्त की थी, पर इन सात मुनियों ने स्थविर भगवान् से आशा ली ।  
आशा लेकर चारु पर्वत (चारु नामक वडास्कार पर्वत) पर आहूट हुए । आहूट होकर यावत् दो मास  
की भलेसना करके—एक सौ बीस भक्त का भनशन करके, चौरासी लाख वर्षों तक समय का पालन  
करके, चौरासी लाख पूर्व का कुल आयुष्य भोगकर जयन्तनामक तीसरे अनुत्तर विमान में देव-पर्वत  
में उरपन्न हुए ।

२३—तए नं धरमेगइयाणं देवानं वत्तीसं सागरोवमाइं ठिईं पन्नत्ता । तए न महम्म  
यज्जाणं इहं देवानं वेत्तुणाइं वत्तीसं सागरोवमाइं ठिईं, महम्मलस देवस पडिपुण्णाइं वत्ती  
सागरोवमाइं ठिईं पन्नत्ता ।

उग जयन विमान में बितनेक देवों की वत्तीस मागरोवम की स्थिति बही गई है । उनमें  
महाबल को छोड़कर दूसरे छह देवों की कुछ कम वत्तीस मागरोवम की स्थिति और महामल देव की  
पूरे वत्तीस मागरोवम की स्थिति हुई ।

पुनर्ग्रन्थ

२४—तए न ते महम्मलसवज्जा एत्थि य देवा अयंताधो देवतोगाधो धाउवत्तएणं ठिइवत्तए  
भवत्तएणं धनंतरं धयं चइत्ता इहेव अंबुदोवे बीवे मागहे वासे विमुद्धविहमाइवत्तएणं रावकुत्तएणं पत्ते  
पत्तेयं कुमारत्ताए वत्तावाया । तंजहा—

- पडिबुद्धो इत्तागाराया १,  
चंद्रच्छाए अंगराया २,  
संघे कातिराया ३,  
एत्थी कुणात्ताहिवाई ४,  
अदीनत्तत्तु कुट्टराया ५,  
जित्तत्तत्तु पंचालाहिवाई ६ ।

तएवचात् महाबल देव के निवास छहों देव जयन्त देवलोका से, देव सबधा धातु का क्षय होने  
से, देवलोका में रहने रूप स्थिति का क्षय होने से और देव सबधा भव का क्षय होने से, अन्तर रहित  
शरीर का त्याग करके अथवा व्युत्पन्न होकर इसी जम्बूद्वीप में, भरत वर्ष (क्षेत्र) में विमुद्ध माता-पिता  
के वश वाते राजपुत्रों में, अलग-अलग कुमार के रूप में उत्पन्न हुए । वे इस प्रकार—

(१) प्रविमुद्धि इत्ताकु वज का अथवा इत्ताकु देव का राजा हुआ । (इत्ताकु देव को कौमल  
देव भी कहते हैं, जिसकी राजधानी अयोध्या थी) ।

(२) चंद्रच्छाव अंगदेव का राजा हुआ, जिसकी राजधानी चम्पा थी ।

(३) तीसरा गल कापी देव का राजा हुआ, जिसकी राजधानी वाणारसी नगरी थी ।

(४) रक्षित कुणाल देव का राजा हुआ, जिसकी नगरी श्रावस्ती थी ।

(५) अदीनत्तत्तु कुट्टदेव का राजा हुआ, जिसकी राजधानी हस्तिनापुर थी ।

(६) जित्तत्तत्तु पंचाल देव का राजा हुआ, जिसकी राजधानी कापिल्यपुर थी ।

मत्सी कुमारी का जन्म

२५—तए नं ते महम्मलस देवे तिहि नार्णेहि समधो उच्चट्टाणद्विएसु गहेसु, सोमासु दिसासु  
वित्तिमिरासु विमुद्धासु, जइएसु सज्जेसु, पयाहिणापुकुत्तंसि भूमिसत्त्वित्ति मावत्तंसि पयायंसि, निष्फन्न-  
सत्तमेइणोयंसि कात्तंसि, यमुद्धपक्कीसिएसु जणवएसु, धट्टरत्तकालत्तसमयंसि अम्मित्तीनवत्तत्तेणं

गमुवागएणं, जे से हेमंताणं चउत्थे मासे, धठ्ठमे पक्खे फग्गुणसुद्धे, तस्स णं फग्गुणसुद्धसं वड्ढि-  
लेण जयंताओ विमाणाओ वत्तीससागरोवमट्ठिइयाओ घणंतरे चयं चइत्ता इहेव जंतुओ रो-  
रहे वासे मिहिलाए रअप्पहाणेए कुंभयस्स रग्गो पमावईए देवीए कुंभसिं प्राहारवस्संणीए  
रीरववक्कंतीए भयववक्कंतीए गग्गसत्ताए वक्कंते ।

तत्पश्चात् वह महाबल देव तीन जानां—मति, श्रुत और अवधि से मुक्त होकर, जब मन्त्र  
ह उच्च स्थान पर ग्हे हुए थे, सभी दिशाये मौष्प—उत्पात से रहित, वितिमिर—अधकार से रहित  
और विमुद्ध—धूल आदि से रहित थी, पक्षियों के शब्द आदि रूप शकुन विजयकारक थे, वायु दक्षिण  
और प्रोत चल रहा था और वायु अनुकूल अर्थात् शीतल मंद और सुगंध रूप होकर पृथ्वी पर प्रसर  
रहा था, पृथ्वी पर धान्य निष्पन्न हो गया था, इन कारण लोग अत्यन्त हर्षयुक्त होकर भीडा कर  
हे थे, ऐसे समय में अष्टे रात्रि के अवसर पर, भद्रिनी नक्षत्र का चन्द्रमा के साथ योग होने पर,  
मन्त्र श्रुतु के चौथे मास, आठवें पक्ष अर्थात् फाल्गुन मास के शुक्ल पक्ष में, चतुर्थी तिथि के पश्चात्  
साग-रात्रिभाग में, वत्तीस सागरोपम की स्थिति वाले जयन्त नामक विमान में, अनन्तर, शरीर त्याग  
कर, इसी जम्बू-द्वीप नामक द्वीप में भरत क्षेत्र में, मिथिला नामक राजधानी में, कुंभ राजा की  
प्रभावती देवी की कूल में देवगति समधी प्राहार का त्याग करके, वैक्रिय शरीर का त्याग करके  
एव देवभव का त्याग करके गर्भ के रूप में उत्पन्न हुआ ।

२६—तं रघणि च णं पमावई देवी तंति तारितगंसि वासभवणंसि सयणिरजंसि जाव'  
प्रदरत्तकालसमयंसि सुत्तजागरा ओहीरमाणी ओहीरमाणी इमेयाह्वे उराले कहलाने सिवे घणे  
मंगल्ले सत्तिरीए चउत्तमहासुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धा । तंजहा—  
गय-वमह-सीह-प्रमितेय-वाम-सत्ति-विणयर-भय-कुंभे ।

पउमसर-सागर-विमाण-रयणुच्चय-सिंह च ॥

तए ण सा पमावई देवी जेणंय कुंभए राया तेणंय उवागच्छइ, उवापच्छित्ता जाव' प्रतार-  
कहणं, सुमिणपाठगपुच्छा जाव' विहरइ ।

उम रात्रि में प्रभावती देवी उस प्रकार के उस पूर्ववर्णित (प्रथम अध्ययन में कथित) वान  
भवन में, पूर्ववर्णित रात्रि पर यावत् अर्ध रात्रि के समय, जब न गहरी मोई थी न जाग ही रही थी,  
बार-बार उग्र रही थी, तब इस प्रकार के प्रधान, कल्याणरूप, शिव-उपादयरहित, धन्य, मांगनिक  
और गंधीक शौदह महास्वप्न देव कर जागी । ये शौदह स्वप्न इस प्रकार हैं—(१) गज (२) वृषभ  
(३) सिंह (४) अभिगंक (५) पुष्पमासा (६) चन्द्रमा (७) सूर्य (८) ध्वजा (९) कुम्भ (१०) पशुपुक्त  
शरीवर (११) सागर (१२) विमान (१३) राजा की रात्रि (१४) भूभरहित भगिन ।

ये शौदह स्वप्न देखने के पश्चात् प्रभावती रानी जहाँ राजा कुम्भ थे, वहाँ गई । प्राकर  
पनि में स्वप्नों का वृत्तान्त कहा । कुम्भ राजा ने स्वप्नपाठकों को बुलाकर स्वप्नों का फल पूछा ।  
यावत् प्रभावती देवी हृदि एव गनुष्ट होकर विहरने लगी ।

२७—तए णं तीते पमावईए देवीए सिंहं मासानं बहुपडिपुज्जानां इमेयाह्वे डोहते

पाउभूय—‘यन्नाग्रो णं ताग्रो भम्मयाग्रो जाग्रो णं जल-यलयमासुरप्पणं दसद्वक्खणेणं मल्लेणं भत्थुय-पच्चत्थुय’सि सयणिज्जंसि सग्निस्सग्नाग्रो सग्निवन्नाग्रो य विहरंति । एणं च महं तिरिदामगंडं । पाटल-मल्लिय-चंपय-असोग-पुन्नाग-महवग-दमनग-अणोज्ज-कोज्जय-कोरंट-पत्तवरपउरं परमसुहकास-दरिसणिज्जं महया गंधदुणि मुयंतं अग्घायमाणोग्रो ओहलं विणेति ।

तत्पश्चात् प्रभावती देवी को तीन मास बराबर पूर्ण हुए तो इस प्रकार का दोहद (मनोरथ) उत्पन्न हुआ—‘वे माताएं धन्य हैं जो जल और यल में उत्पन्न हुए, देदीप्यमान, अनेक, पचरंगे पुष्पां से आच्छादित और पुन पुन आच्छादित की हुई शय्या पर भुजपूर्वक बंठी हुई और मुख से सोई हुई विचरती हैं । तथा पाटला, मासती, चम्पा, अशोक, पुनाग के पूलो, महवा के पत्तो, दमनक के पूलो निर्दोष शतपत्रिका के पूलो एवं कोरंट के उत्तम पत्तों से गुंथे हुए, परममुखदायक स्पर्ग वाले, देखने में सुन्दर तथा अत्यन्त सौन्दर्य छोड़ने वाले श्रीदामकाण्ड (सुन्दर माया) के समूह को सू धती हुई अपना दोहद पूर्ण करती हैं ।

२३—तए णं तीसे पमावई देवीए इमेयाहवं ओहल पाउभूयं पासित्ता अहासग्निहिया वाणमंतरा देवा सिप्पामेव जलपलय-मासुरप्पभूयं दसद्वक्खनमल्लं कुंभगसो य भारगसो य कुंभगहस रण्णो भवणंसि साहरंति । एणं च णं महं तिरिदामगंडं जाव<sup>१</sup> गंधदुणि मुयंतं उवणेति ।

तत्पश्चात् प्रभावती देवी को इस प्रकार का दोहद उत्पन्न हुआ देख कर—जान कर समीपवर्ती वाल-अन्तर देवी ने शीघ्र ही जल और यल में उत्पन्न हुए यावत् पाँच वर्ण वाले पुष्प, कुम्भो और भारो के प्रमाण में अर्थात् बहुत से पुष्प कुम्भ राजा के भवन में लाकर पहुँचा दिये । इनके अनिरुक्त सुखप्रद एक सुगन्ध फैलाता हुआ एक श्रीदामकाण्ड भी लाकर पहुँचा दिया ।

विशेषण—माता की इच्छा का देवी द्वारा इस प्रकार पूर्ति करना सर्वस्य तीर्थकर के प्रसाधारण और सर्वोत्कृष्ट पुण्य का प्रभाव है ।

२४—तए णं सा पमावई देवी अलपलयमासुरप्पभूएण मल्लेण ओहलं विणेइ । तए णं सा पमावई देवी पत्तयओहला जाव विहरइ ।

तए णं सा पमावई देवी नवहं मासानं अट्ठद्वमाणं य रत्तिदियानं जे से हेमंताणं पढमे मासे ओच्छे पक्खे म्हासिरसुद्धे, तस्स णं मागसिरसुद्धस्स एकारसीए पुब्बरत्तावरत्तकालसमयंसि अस्सिणी-नक्खतं णं जोगमुवागएणं उच्चट्ठाणगएणु गहेसु जाव<sup>२</sup> यमुइयपक्खीसिएसु जणवएसु आरोयारोयं एणुणवीसइमं तत्पपरं पयाया ।

तत्पश्चात् प्रभावती देवी ने जल और यल में उत्पन्न देदीप्यमान पचवर्ण पूलो की माला से अपना दोहला पूर्ण किया । तब प्रभावती देवी प्रशस्तदोहला होकर विचरने लगी ।

तत्पश्चात् प्रभावती देवी ने नौ मास और साडे सात दिवस पूर्ण होने पर, हेमन्त ऋतु के प्रथम मास में, दूसरे पक्ष में अर्थात् मार्गशीर्ष मास के शुक्ल पक्ष में, मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष की एकादशी के दिन, मध्य रात्रि में, अश्विनी नक्षत्र का चन्द्रमा के साथ योग होने पर, सभी ग्रहों के उच्च स्थान

२४. होमिद (ममा दिनात् मोक्ष—उत्पादरहित, विविध-प्रकार में रहित और निरु-  
 त्त में रहित) को वातु दधिनायक—धनुस्त्र या, विजयकारक मानुन हो रहे थे जब देव के रूप  
 में दिना होकर जाता कर रहे थे ] ऐसे समय में, धारोम-धारोमपूर्वक प्रयात् दिना दिने  
 दिना के उत्पन्न होकर को जन्म दिया ।

३०. जैन धर्म में समस्त धर्मोपदेशकायको अष्ट विंशतिमारीको मन्त्रोपदेश  
 अष्ट विंशतिमारी समस्त धर्मोपदेशकाय । नवरं मिहिनाए मयरी कंमरायम भवति  
 ३१. ३२. ३३. ३४. ३५. ३६. ३७. ३८. ३९. ४०. ४१. ४२. ४३. ४४. ४५. ४६. ४७. ४८. ४९. ५०. ५१. ५२. ५३. ५४. ५५. ५६. ५७. ५८. ५९. ६०. ६१. ६२. ६३. ६४. ६५. ६६. ६७. ६८. ६९. ७०. ७१. ७२. ७३. ७४. ७५. ७६. ७७. ७८. ७९. ८०. ८१. ८२. ८३. ८४. ८५. ८६. ८७. ८८. ८९. ९०. ९१. ९२. ९३. ९४. ९५. ९६. ९७. ९८. ९९. १००.

३१. ३२. ३३. ३४. ३५. ३६. ३७. ३८. ३९. ४०. ४१. ४२. ४३. ४४. ४५. ४६. ४७. ४८. ४९. ५०. ५१. ५२. ५३. ५४. ५५. ५६. ५७. ५८. ५९. ६०. ६१. ६२. ६३. ६४. ६५. ६६. ६७. ६८. ६९. ७०. ७१. ७२. ७३. ७४. ७५. ७६. ७७. ७८. ७९. ८०. ८१. ८२. ८३. ८४. ८५. ८६. ८७. ८८. ८९. ९०. ९१. ९२. ९३. ९४. ९५. ९६. ९७. ९८. ९९. १००.

कमल का गर्भ गौरवर्ण होता है, मन्त्री का वर्ण प्रियमृ के समान इयाम् था । अतः यह विशेषण भी उपयुक्त प्रयोग नहीं होता । अन्तु ये दोनों वाचाए प्रक्षिप्त हैं । इसी कारण इनमें उल्लिखित मय विशेषण मन्त्री में घटित नहीं होते । हिन्ही-हिन्हा प्रतियों में ये विशेषण पाये भी नहीं जाते । अथवा 'वरकमलगर्भ' का अर्थ बम्बूरी समझना चाहिए । कम्बूरी के वर्ण की उपमा प्रतिष्ठ हो सकती है, किन्तु प्राचा-शास्त्र की दृष्टि में यह अर्थ चिन्तनीय है ।

३२—तए नं सा मन्त्री विदेहवररायकम्ना उम्भुवकासमाया जाव [विष्णुवरिणामेता जोरवमणुपसा] कवेण य ओरवणेण य सावणेण य अईव अईम उकिट्टा उकिट्टवरीरा जाया यावि होरमा ।

मत्स्यवान् विदेहराज की वह छठ कन्या (मन्त्री) वाग्वावस्था में मुक्त हुई यावन् (गमकदार हुई, मोहनवय की प्राप्ति हुई) तथा रुद्र, मोहन और नाकण्य ने धर्तीव-धर्तीव उत्कृष्ट और उत्कृष्ट शरीर धारी हो गई ।

३३—तए नं सा मन्त्री विदेहवररायकम्ना देवुनकाससयजामा ते द्रपि य रायाणी विपुलेण घोहिणा आभोएमाणी आभोएमाणी विहरइ, तजहा-रडिबुडि जाव [इवलागराय, चंदक्याय, अंगराय, दणि कुणालाहिबई मर्ग कासिराय, अशोकसत्तु कड-राय] जिवसत्तु पंचालाहिबई ।

मत्स्यवान् विदेहराज की वह उत्तम कन्या मन्त्री कुड कम् गयी वर्ण की हो गई, तब वह उन (पूर्व के नायक) एहों राजाओं को अपने विपुल अवधिमान से जाननी-देखनी हुई रहने लगी । ये इस प्रकार-प्रतिबुद्धि यावत् [इरावाराज, अम्बुकाय अंगराज, अश कासीराज, अशिम कुणालराज, अशोकसत्तु कुराराज] तथा पंचाल देश के राजा जिनगन्तु की बार-बार देखनी हुई रहने लगी ।

मोहनगृह का निर्माण

३४—तए नं सा मन्त्री विदेहवररायकम्ना कोहु बिमपुरिते सहवेइ, सहविता एव वयासी—'मरुद्रु नं देवानुप्पिया । अतोवणिमाए एमं महं मोहनपरं करेह अनेवत्तमसयसमिबिट्ट । तस्य नं मोहनपरस बहुमज्जेतमाए द्र गमपरए करेह । तेनि न गमपरणं बहुमज्जेतमाए जासपरस करेह । तस्य नं जासपरस बहुमज्जेतमाए मणिपेटियं करेह ।' ते वि तहेव जाव पच्चप्पिणंति ।

मत्स्यवान् विदेहराज की उत्तम कन्या मन्त्री ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया—बुलाकर कहा—देवानुप्रिया ! आपो और अशोकवाटिका में एक बड़ा मोहनगृह (मोह उत्पन्न करने वाला अनिष्टाय रमणीय घर) बनाओ, जो अनेक संकटों सम्मों से बना हुआ हो । उस मोहनगृह के एकदम मध्य भाग में छद्म गर्भगृह (कमरे) बनाओ । उन छद्म गर्भगृहों के ठोक बीच में एक जालगृह (जिसके चारों ओर जाली लगी हो और उसके भीतर की वस्तु बाहर वाले देख सकते हो ऐसा घर) बनाओ । उग जालगृह के मध्य में एक मणिमय पीठिका बनाओ । यह सुनकर कौटुम्बिक पुरुषों ने उसी प्रकार गर्व निर्माण कर आना वापिस सौंपी ।

३५—तए नं मत्तो मणिपेटियाए उर्वार अप्पणो सरित्थं सरित्तत्थं सरित्तत्थं सरित-सावन्न-ओरवण-गुगोवडेव कज्जमई मःवयविट्टई पडिमं जं विपुलं



असनं पाणं साइमं साइमं आहारैः, तस्यो मणुष्याश्चो असन-पाण-साइम-साइमाश्चो कल्लकस्ति एवम्  
पिण्डं गहाय तीसे कणगमईए मथयच्चिहुए जाव पडिमाए मथयंसि पविलवमाणो विहरइ ।

नत्पद्मात् उस मल्ली कुमारी ने मणिपीठिका के ऊपर अपनी जैसी, अपनी जैसी त्वचा  
अपनी सरीसी उग्र की दिखाई देने वाली, समान लावण्य, यौवन और गुणों से युक्त एक मुद्रा  
प्रतिमा बनवाई । उस प्रतिमा के मस्तक पर छिद्र था और उस पर कमल का ढक्कन था । इस प्रा-  
की प्रतिमा बनवा कर जो विपुल अन्न, पान, साद्य और स्वाद्य वह खाती थी, उस मनोज्ञ अन्न र-  
गाद्य और स्वाद्य में से प्रतिदिन एक-एक पिण्ड (कवल) लेकर उस स्वर्णमयी, मस्तक में छेद करने  
यावत् प्रतिमा में, मस्तक में से डालती रहती थी ।

३६—तए नं तीसे कणगमईए जाव मथयच्चिहुए पडिमाए एणमेगंसि पिण्डे पविलवमाणे  
पविलवमाणे पडमुत्पलविहारेणं पिण्डे । तस्यो गंधे पाउठमवइ, से जहानामए सहिमडेई वा जाइ [कोरो  
इ वा, गुणहमडे इ वा, मज्जारमडे इ वा, मणुस्समडे इ वा, महिसमडे इ वा, मूसगमडे इ वा, मासो  
इ वा, हरिषमडे इ वा, सोहमडे इ वा, वायमडे इ वा, विगमडे इ वा, वीविगमडे इ वा । व-  
कुहिय-पिण्ड-दुरमियण-दुडिमगंधे किमिजाताउलसंसत्ते असुइ-विसीण-विगय-वीमवइइरिगिणे  
अवेमारुवे तिया ?

नो इणट्टे समट्ठे । एतो अणिट्ठतराए वेव अकंसतराए वेव अप्वियतराए वेव अमणु-  
तराए वेव ] अमणामतराए ।

नत्पद्मात् उग स्वर्णमयी यावत् मस्तक में छिद्र वाली प्रतिमा में एक-एक पिण्ड डाल-  
कर कणम का अन्न रस देती थी । इसमें उसमें ऐसी दुर्गन्ध उत्पन्न होती थी जैसे ताँ के मृत् कौर  
की ही, मावत् गाव के मृत् कनेवर, दुस के मृत् कनेवर, मार्जार (विलाव) के मृत् कनेवर मनुष्य के  
मृत् कनेवर, मटिय के मृत् कनेवर, दूगी प्रसार मूषक (घूँहे), अदव, हस्ती, गिह, व्याघ्र, बृ-  
(भटिया) या डींग के मृत् कनेवर की हो और वह भी मरने के पश्चात् सड़े गये, दुर्गन्ध एवं दुर्गन्ध  
बाँध, बीड़ी के मण्डू जिनमें विनयिता रहे हों, जो अनुचित, विकृत तथा देशने में योग्य हों । वा-  
उग प्रतिमा में वे ऐसी—कनेवर की मृत् के समान दुर्गन्ध निकलनी थी ?

नही, पर अर्थ समर्थ नहीं, अर्थात् वह दुर्गन्ध ऐसी नहीं थी वरन् उमने भी अधिक अति-  
उमने भी अधिक अकर्मनीय, उमने भी अधिक अशुभ, उमने भी अधिक अमनोरम और उमने भी  
अधिक अशुभ दुर्गन्ध उत्पन्न होती थी ।

तथा अविशुद्ध

३७—तेण वायेण तेणं समणं जोसवे नाम जणवए होरथा । तस्य नं ताणेण नाम नो  
होन्था । तस्य नं उमरपुराणिवे दिमोमाण एण्य नं महुं एणे नागघरए होरथा दिखे तस्ये तस्यो-  
सतिहिकादिहे ।

उन वाय और उन समय में कौशलनामक देव था । उसमें सावेण नामक नगर था । उन  
नगर में उमर पुरा (दोहरा) दिमा में एक नागघर (नागदेव की प्रतिमा से युक्त भेद्य) था । वही था ।

ग, तस्य पा प्रयात् नागदेव का कन्य न तस्य मित्र होना था, उमको मेवा मकन होती थी और वह देवाधिष्ठित था ।

३८—तस्य नं नगरे पडिबुद्धो नाम इषसागराया परिवसद्, तस्य पडमावई देवी, सुबुद्धो रमस्वे साम-रंङ भेद-उपपवाच-नीतिमुपउत्त-नयविहण्ण जाव' रजग्धुरावितए होरपा ।

उम गातेन नगर में प्रतिबुद्धि नामक दुःखाकु वन का राजा निवास करता था । पचावती मकी पटरानी थी, सुबुद्धि घमास्य था, जो नाम, इष्ट, भेद और उपप्रदान नीतियों में कुशल था गावन् राज्यधुरा की चिन्ता करने वाला था, राज्य का मचासन करता था ।

३९—तए नं पडमावईए घग्गया कयाई नागज्जए यावि होरपा । तए नं सा पडमावई रागज्जममुवद्धिदं जायिता जेणेव पडिबुद्धो राया तेजेव उवागच्छद्, उवागच्छिता करयल० जाव परिगहिं रत्तणहं तिरतावत्तं मसए धंजनि बट्टु जएणं विजएणं वडावेडु' वडावेसा एणं वयासी—एवं एतु सामी ! मम कल्लं नागज्जमए यावि भविस्सद्, तं इच्छामि न सामी ! तुभेहिं घग्गमुग्गया ममाणी नागज्जमयं ममितए, तुभे वि नं सामी ! मम नागज्जमसि समोसरह ।

किन्ती समय एक बार पचावती देवी की नागपूजा का उत्सव था। तब पचावती देवी नागपूजा का उत्सव थाया जानकर प्रतिबुद्धि राजा के पास गई। पास जाकर दोनों हाथ जोड़कर (मैं) नगों की एक पट्टे, मन्मक पत्र अजनि करके इस प्रकार बोली—'स्वामिन् ! कल मुझे नाग-पूजा करनी है । घनएव घापकी घनुमति पाकर मैं नागपूजा करने के लिए जाना चाहती हूँ । वामिन् ! आप भी मेरी नागपूजा में पधारी, ऐसी मेरी इच्छा है ।'

४०—तए नं पडिबुद्धो पडमावईए देवीए एयवट्ठं पडिमुणेइ । तए नं पडमावई पडिबुद्धिणा रणा घग्गमुग्गया हट्टुद्धा कीडु' विग्गपुरिसि सहावेड, सहायिता एवं वयासी—'एवं एतु देवानुप्पिया ! म कल्लं नागज्जमए भविस्सद्, तं तुभे मातागारे सहावेह, सहायिता एवं वयह—

तब प्रतिबुद्धि राजा ने पचावती देवी की यह बात स्वीकार की । पचावती देवी राजा की अनुमति पाकर हगित और मनुष्ट हुई । उसने कीटुम्भिक पुरयो की बुलाया और कहा—देवानुप्पिया ! कल मेरे नागपूजा होगी, तो तुम मातागारों को बुलाओ और उन्हें इस प्रकार कहो—

४१—एवं एतु पडमावईए देवीए कल्लं नागज्जमए भविस्सद्, तं तुभे नं देवानुप्पिया ! तथलपयामुरप्पभूयं दसट्ठवग्गं मल्लं नागघरयंसि साहरह, एणं च नं महं तिरिदामगं उवणेह । ए नं जलपययामुरप्पभूयं दसट्ठवग्गेणं मल्लेणं णाणाविहमसिमुविरहयं करेह । तंसि मत्तिसि हंस-मय-मऊर-कोच-सारस-चक्रवाक्य-मयणसास-कोइलकुलोववेयं ईहामिय जाव' सत्तिचित्तं महगयं महिरहं वपुलं पुक्कमं वव विरएह । तस्य नं बह्ममग्गवेसमाए एणं महं तिरिदामगं जाव' गंयद्धुणि मुयं तं ल्लोयं मि घोसवेह । घोसंजिता पडमावई देवि पडिवालेमाणा पडिवालेमाणा चिट्ठह ।' तए नं ते तेडु' विया जाव चिट्ठंति ।

निश्चय ही पद्मावती देवी के कम नागपूजा होगी । पद्मावती देवानुप्रियो ! तुम नगर स्थल में उदय हुए पावो रामों के नाना पूजा नागपूजा में तो पावो और फिर भीरुवत् (शोभन मानाओं का स्वरूप) बना कर पावो । नागपूजा में जो भीरुवत् रूप में उदय होते हैं पांच वर्षों के पुत्रों में विविध प्रकार की रचना करने उमे मनाओ । उम रचना में हंस, मृग, मय, शीघ्र, मारग, मयसार मदनमान (मैना) और कोटिों के समूह में युक्त तथा ईशान, रुद्र, तुरग आदि की रचना याने चित्र बनाने मनायमान, मयान् अनों के योग और विनायक एक पुष्पमण्डप बनाओ । उम पुष्पमण्डप के मध्य भाग में एक मयान् और मय के समूह को एक घाला श्रीदामवाण्ड उत्प्लोच (छा) पर मटाओ । मटानाकर पद्मावती देवी की राह देवने दे देहरो । तत्पश्चात् वे कीटुम्बिक पुरुष इसी प्रकार कार्य करके मारत् पद्मावती की राह देवने । नागपूजा में देहरे हैं ।

४२—तए नं सा पद्मावती देवी वत्स कोटुम्बिकपुरिते सहावेड, सहाविता एवं वदती लिप्तामेव ओ देवानुप्रियो ! सागेय नगरं सन्मितरवाहिरियं आसित-सन्मिज्जयोवसितं व पच्चप्पिणंति ।

तत्पश्चात् पद्मावती देवी ने दूसरे दिन प्रातःकाल मूर्खदय होने पर कीटुम्बिक पुरी बुलाकर कहा—‘हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही सन्मितर नगर में भीतर और बाहर पानी मीची, व करो और लिपाई करो ।’ यावत् (सुगन्धित करो, सुगन्ध की गोली जैसा बनाओ) वे कीटु पुरुष उसी प्रकार कार्य करके आज्ञा यापित लोटाते हैं ।

४३—तए नं सा पद्मावती देवी ओरुधं पि कीटुम्बिकपुरिते सहावेड, सहाविता एवं वदती लिप्तामेव देवानुप्रियो ! सट्टकरणजुत्तं जायं जुत्तामेव उवट्टवेह । तए नं ते वि उवट्टवेति ।

तए नं सा पद्मावती अंतो अतेउरंसि वहाया जाव पम्मियं जाणं हुट्टा ।

तत्पश्चात् पद्मावती देवी ने दूसरी बार कीटुम्बिक पुरुषों को बुलाया । बुलाकर इस पहा—‘देवानुप्रियो ! शीघ्र ही सट्टकरण में युक्त (द्रुतगामी अथवा जाने) यावत् रथ को ज उपस्थित करो ।’ तब वे भी उसी प्रकार रथ उपस्थित करते हैं ।

तत्पश्चात् पद्मावती देवी अन्त पुर के अन्दर स्नान करके यावत् [बलिकर्म, कीटु, मग्न] प्रायश्चित्त करके धार्मिक (धर्म कार्य के लिए काम में आने वाले) यान पर अर्थात् रथ पर आरुह हुई ।

४४—तए नं सा पद्मावती नियमपरिपालसंपरिवहता सागेय नगरं मज्झमज्जेणं निज्जत्ता निज्जत्ता जेणेव पुबलरिणि तेणेव उवागच्छेड । उवागच्छेत्ता पुबलरिणि ओगाहेड । ओगाहित्त जलमज्जणं जाव [करेड, करिस्ता जलकीडं करेड, करेता वहाया वयसलिकम्मा] परम-सुदुग्गा उत्सपडमाहण जाई तस्य उत्पसाई जाव [पद्माई कुमुदाई जलियाई सुमगाई सोमंघियाई पौडरीयाई म्हापौडरीयाई सयवत्ताई सहसपत्ताई ताई] गेहूड । नेणित्ता जेणेव नागधरए तेणेव पहारेत्त गमणाए ।





राईसर जाव' गिहाइ छणपडिमनि, तं छतिष न तुमे कहिनि एरिगए तिरिदामगंडे सिद्धुमे, नारिसए न इमे पउमावईए देबोए तिरिदामगंडे ।

तत्पश्चात् प्रतिबुद्धि राजा उम श्रीदामकाण्ड को बहुत देर तक देखता रहा । देवर उम श्रीदामकाण्ड के विषय में उसे घाश्चर्य उत्पन्न हुआ—उने देवर कहता रहा गया । उमने सुबुद्धि भ्रमात्म्य में इस प्रकार कहा -

'हे देवानुप्रिय ! तुम मेरे दीत्य-कार्य में—तुम के रूप में बहुतों पैसों, पारसों, नगों पारस सन्निवेशों आदि में भूमते हो और बहुत में राजाघा एव ईश्वरी [नगर, माउतिर, सोदुम्बिक इभ्य, थं प्ठी, सेनापति] आदि के गूहों में प्रवेश करते हो, तो गया तुमने ऐसा सुन्दर श्रीदामकाण्ड पहले कही देखा है, जैसा पद्मावती देवी का यह श्रीदामकाण्ड है ?

४८—तए न सुबुद्धी पडिबुद्धि राय' एवं वयासी—एवं सतु सामी । महं भनया कयां तुम्ह दोखेणं मिहितं रायह्राण गए, तस्य नं मए कुंमगस्त रणो पूयाए पमावईए देबोए सतमाए मल्लीए विदेहवररायकम्नाए संवच्छरपडितेहणयसि बिरये तिरिदामगंडे बिद्धुमुमे । तस्त न तिरिदामगंडस्त इमे पउमावईए तिरिदामगंडे सयसहस्तइमं वि कलं न छाघइ ।

तब सुबुद्धि भ्रमात्म्य ने प्रतिबुद्धि राजा में कहा—'स्वामिन् ! मैं एक बार किसी समय घातके दीत्यकार्य से मिथिला राजधानी गया था । वहाँ मैंने कुंभ राजा की पुत्री और प्रभावती देवी की आत्मजा विदेह की उत्तम राजकुमारी मल्ली के सयसर प्रतिवेतन उत्सव (जन्मगाठ के महोत्सव) के समय दिव्य श्रीदामकाण्ड देखा था । उम श्रीदामकाण्ड के सामने पद्मावती देवी का यह श्रीदामकाण्ड शतसहस्र—लाखवा अश भी नहीं पाता—लाखे अश की भी बराबरी नहीं कर सकता ।'

४९—तए नं पडिबुद्धी राया सुबुद्धि भ्रमच्च एवं वयासी—'केरिसिमा नं देवानुप्पिया । मल्ली विदेहवररायकम्ना जस्त नं संवच्छरपडितेहणयसि तिरिदामगंडस्त पउमावईए देबोए तिरिदामगंडे सयसहस्तइम पि कलं न छाघइ ?

तए नं सुबुद्धी भ्रमच्चे पडिबुद्धि इत्तागुरायं एवं वयासी—'एवं सतु सामी ! मल्ली विदेहवररायकप्रगा सुपडिटियकुम्मुप्रमचारचरणा, वयसो ।

तत्पश्चात् प्रतिबुद्धि राजा ने सुबुद्धि मंत्री से इस प्रकार कहा—'देवानुप्रिय ! विदेह की थं प्ठ राजकुमारी मल्ली कैसी है ? जिसकी जन्मगाठ के उत्सव में बनाये गये श्रीदामकाण्ड के सामने प्रभावती देवी का यह श्रीदामकाण्ड लाखवा अश भी नहीं पाता ?'

तब सुबुद्धि मंत्री ने इत्तागुराज प्रतिबुद्धि में कहा—'स्वामिन् ! विदेह की थं प्ठ राजकुमारी मल्ली सुप्रतिष्ठित और कष्टुए के समान जन्त एवं सुन्दर चरण वाली है । इत्यादि वार्ता जवूदीय प्रसूति आदि के अनुसार जान लेना चाहिए ।

५०—तए नं पडिबुद्धी राया सुबुद्धिस्त भ्रमच्चस्त संतिए एयमट्ठं सोच्चा जिसम्म तिरिदामगंडे

मगंढजगिण्यहासे दूयं सहवेह, सहविता एवं ययासी—‘गच्छाहि नं तुयं देवान्पिया ! मिहिलं रायहाणि, तरय नं कुम्भगस्त रण्णो धूय पयावईए देवोए अत्तयं भस्सि विदेहवरायकण्णं मम मारियताए वरेहि, जइ वि न सा सय रज्जसुंका ।

तत्पश्चात् प्रतिबुद्धि राजा ने मुबुद्धि प्रमात्य में यह धर्म्य (वात) मुनकर धीर हृदय में धारण करके धीर धीरामकाण्ड की बात से हर्षित (प्रमुदित-अनुरक्त) होकर दूत को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा—‘देवानुप्रिय ! तुम मिथिला राजधानी जाओ। वहाँ कृ भ राजा की पुत्री, पयावती देवी की प्रामया धीर विदेह की प्रधान राजकुमारी मल्ली की मेरी पत्नी के रूप में मगनी करो। फिर भले ही उनके लिए मारा राज्य मुक्त—मूल्य रूप में देना पड़े।

विवेचन—इस पाठ से साधारण होता है कि प्राचीन काल में कन्या ग्रहण करने के लिए मुक्त देना पड़ता था। प्रत्य स्पर्ता में भी अनेक बार ऐसा ही पाठ प्राठा है। यह कन्याविश्रय का ही एक रूप था जो हमारे समाज में कुछ वर्षों पूर्व तक प्रचलित था। अब पलटा पलट गया है धीर कन्या-विश्रय के बदले वर-विश्रय की पूर्णित प्रथा चल पड़ी है। यो यह एक सामाजिक प्रथा है किन्तु धार्मिक जीवन पर इसका गभीर प्रभाव पड़ता है। साधारण धाय से भी मनुष्य अपनी उदरपूर्ति कर सकता है धीर तन ढक सकता है। उसके लिए धनीति धीर धर्म में सर्वोपार्जन की आवश्यकता नहीं, किन्तु वर सरोहने धर्मान् विवश होकर दहेज देने के लिए धनीति धीर धर्म का प्राचरण करना पड़ता है। इस प्रकार इस कुप्रथा के कारण धनीति धीर धर्म की समाज में वृद्धि होती है।

५१—तए नं से दूए पडिबुद्धिणा रण्णा एवं वुत्ते समणे हट्टुट्ठे पडिमुण्डे, पडिमुण्णेत जेणव सए गिहे, जेणव चाउघंठे आसरहे तेणव उवागच्छइ, उवागच्छिता चाउघंठे आसरहं पडिक्कपावेइ, पडिक्कपायिता वुत्ते जाइ हयमय [रह-पवरजोहकालियाए चाउरगिणीए सेणाए सडि संपरिवुडे] मह्यमज्झमरेणं साएयाओ निग्गच्छइ, निग्गच्छिता जेणव विदेहजणवए जेणव मिहिला रायहाणी तेणव प्हारेशय ममणाए ।

तत्पश्चात् उस दूत ने प्रतिबुद्धि राजा के इस प्रकार कहने पर हर्षित धीर मनुष्य होकर उसकी आज्ञा अंगीकार की। अंगीकार करके जहाँ अपना घर था धीर जहाँ चार घंटो वाला भद्रव-रथ था, वहाँ आया। आकर (आंग, पीछे धीर अयल-जगल में) चार घंटो वाले भद्रव-रथ को तैयार कराया। तैयार करवाकर उस पर आरुढ़ हुआ। यावत् घोड़ों, हाथियों (रथो, उत्तम योद्धाओं से युक्त चतुरगिणी सेना के साथ) धीर बहुत से मुभटो के समूह के साथ साकेत नगर से निकला। निकल कर जहाँ विदेह जनपद था धीर जहाँ मिथिला राजधानी थी, वहाँ जाने के लिए प्रस्थान किया—चल दिया।

विवेचन—धीरामकाण्ड की धर्मा में से मल्ली कुमारी के अनुपम सौन्दर्य की बात निकली। राजा को मल्ली कुमारी के प्रति अनुराग उत्पन्न हुआ। इस अनुराग का तात्कालिक निमित्त श्रीरामकाण्ड ही भयवा मल्ली के सौन्दर्य का वर्णन, किन्तु मूल धीर अन्तरण कारण पूर्वभव की प्रीति के संस्कार ही समझना चाहिए। मल्ली कुमारी जब महावत के पूर्वभव में थी तब उनके छह बाल्यमित्रों में इस भव का यह प्रतिबुद्धि राजा भी एक था।

मल्ली कुमारी घटित होने वाली इन सब घटनाओं को पहले से ही अपने अतिशय ज्ञान से





म मे विद्या, ज्ञानिजना, निजजना स्वजना, मरुतो जना एव परिव्रजो को जिमाया,  
मनुमति मी । मनुमति मेकर पादो-नाडे बोले । जीव कर चम्पा नगरी के बोचांचोच  
मनेने । निज कर जहा मभोर नामक पापपट्टन (कन्दरपाह) था, वहाँ प्राये ।

उवाचविदुता तगहिनागशियं मोयति, मोदुता योयवहणे सज्जेति, सज्जिता गनिमरस  
मेरुजस य परिशोरुजस य चउरिउहस नंइगस जरेति, भरिता तंउचाय य समिवस  
मुत्तरस य प्रयस य गोरगस य उइयस य उइयमायणाय य सोसहाण य नेतज्जाण  
रुहस य पावरणाय य गहरणाय य अनेनि च बहण योयवहणपाउमाचं इइवाचं  
न । भरिता सोहणति तिहि-करण-नकरत-पुहुतति विपुलं अलण यान पाइमं ताइमं  
उववववाविता मित-माह-नियम-मयण-मवधि-परिमणं प्रापुइदुति, प्रापुविदुता जेणेव  
उवाचवदुति ।

नामक पापपट्टन में घाहर उ-हाने पादो-नाडे छोड़ दिए । छोड़कर जहाज सज्जित  
करके गनिम, परिम, मेरु पोर परिकरेण—चार प्रकार का भाइ भरा । भरकर उसमें  
नेम, घो, गोरग (घड़ा), पानी, पानी के जलन, घोषण, भण्ड, पाम, लकड़ी, बरत,  
और जहाज में रखने योग्य अन्य वस्तुएँ जहाज में भरी । भर कर प्रसन्न निधि, करण,  
सं में घसन, पान, पाव पोर स्वाद्य मेवार करवाया । मेवार करवा कर मित्रों, ज्ञानि-  
स्वजना, मरुभिन्दी एव परिव्रजा तो जिमा कर उनमें मनुमति ली । मनुमति लेकर  
स्थान भा, वहाँ (ममुद किनारे) प्राये ।

तए ण तेति प्ररहणवपामोवणा ज्ञाय [सज्जिता-नावा] याणियणानं परिमणा ज्ञाय  
कताहि विदाहि मज्जणाहि मज्जामाहि सोरामाहि] वप्पुहि अमिनेवंता य अमितं वणमाणा  
—'अज्ज । ताय । जाय । माउल । माइनेज्ज । मगवया समुदेण अमिरसिउज्जमाणा  
माणा अरं ओवहु, अहुं च भे, पुणरहि सज्जट्ठे कपकग्गे अणहसमगे नियवं धरं  
सामो' ति कट्ठु ताहि सोमाहि निज्जाहि बोहाहि सविवाताहि वप्पुमाहि विट्ठोहि  
मुहुतमेत सविदुति ।

जाउ उन प्रह्वनक प्रादि यावत् नौका-यष्टिकों के परिव्रज (परिवार के लोग) यावत्  
प्रिय, मनोज्ञ, मनोरम एव उदार) यचना से अभिनन्दन करते हुए घोर उनकी प्रशंसा  
प्रकार बोले—

यं (विनामह) ! हे तात ! हे भ्रात ! हे मामा ! हे भागिनेय ! आप इस भगवान्  
पुनः रक्षण किये जाते हुए फिरजीवी हो । आपका ममल हो । हम आपको धर्म का  
ट कार्य मन्त्र करके, निर्दाय-विना किसी विघ्न के घोर ज्यों का त्यों घर पर आया  
म प्रकार रह कर सोम, स्नेहमय, दीर्घ, पिपासा वालो—सतृप्य पोर अश्रुप्लावित  
देवते के लोग मुत्तमान अर्थात् थोड़ी देर तक वही मड़े रहे ।

तमो समानिएमु पुक्कवलिक्कमेसु, डिन्नेसु सरस-रत्तचवण-वहर-पंचंगुलितमेसु, अणुविल-  
सुएसु समुद्वाएसु संतारिमासु यलमवाहासु, अतिएसु सिएसु अण्णमेसु, पट्टरवाइएसु

तूरेसु, जइएसु सखसउणेसु, महिएसु रायउरसासणेसु, महया उविकद्वसीहनाय जाय [बोत-वनस]  
 रवेणं पवसुभिय-महासमुद-रखनूयं पिय मेद्वणि करेमाणा एगसिति जाय [एगामिमुहा प्रहस-  
 पामोवला संजुता-नाया] याजियगा नाय बुहडा ।

तत्पदचात् नौका मे पुणवनि (पूजा) गमाप्त होने पर, गरम रक्तपदन का पावो जलित  
 का धापा (छपा) लगाने पर, भूप मेई जाने पर, समुद्र हो चागु को पूजा हो जाने पर, बनस  
 (सन्धे काष्ट-बल्ले) यथास्थान गभात कर रग लेने पर, श्वेत पता हाणं उपर फहरा देने पर, कने  
 की मधुर ध्वनि होने पर, विजयकारक सब शत्रुन होने पर, यात्रा के लिए राजा का प्रादेशपत्र  
 हो जाने पर, महान् श्रीर उत्कृष्ट सिहनाद यावत् [कलकल] ध्वनि से, प्रत्यन्त शुभ्य हुए महामु  
 की गर्जना के समान पृथ्वी को शब्दमय करते हुए एक तरफ मे [एगामिमुय होकर वे प्रहस  
 आदि सांघात्रिक नौका वणिक्] नौका पर चड़े ।

५८—तम्रो पुस्तमाणयो वषकमुवाहु—‘हं मो ! सन्धेसिमवि प्रस्थतिओ, उवट्टियाई वल्ल  
 नाई, पडिहयाई सन्धपावाइ, जुत्तो पूसो, विजयो मुहुत्तो मयं देसकासो ।’

तम्रो पुस्तमाणवेणं वषकमुवाहिए हट्टतुट्टा कुक्षिधार-कम्मधार-गमिज्जसंजतायावा  
 णियगा वावारिसु, तं नावं पुन्नुच्छंणं पुण्णमुहि यंणोहितो मुंचंति ।

तत्पदचात् वन्दीजन ने इस प्रकार वचन कहा—‘हे व्यापारियो ! तुम सब को मयं की विनि  
 हो, तुम्हे कल्याण प्राप्त हुए है, तुम्हारे समस्त पाप (विघ्न) नष्ट हुए हैं । इस समय पुण्य वष  
 चन्द्रमा से युक्त है श्रीर विजय नामक मुहूर्त्त है, अतः यह देश श्रीर काल यात्रा के लिए उत्तम है ।

तत्पदचात् वन्दीजन के द्वारा इस प्रकार वाक्य कहने पर हट्ट-तुष्ट हुए कुक्षिधार-नौका के  
 बगल मे रहकर बल्ले चलाने वाले, कर्णधार (खिबेया), गर्भज-नौका के मध्य मे रहकर छोटे-मो  
 कार्य करने वाले श्रीर वे सांघात्रिक नौकावणिक् अपने-अपने कार्य मे लग गये । फिर भाओ  
 परिपूर्ण मध्य भाग वाली श्रीर बगल से परिपूर्ण अग्रभाग वाली उस नौका को बन्धनो से मुक्त किया

५९—तए णं सा नाया विमुक्कयंणया पवणवलसमाहया उस्सिमसिया विततपवसा  
 पड्डजुयई गगासलिल-तिवससोपवेगेहं सखुग्गमाणी संखुग्गमाणी उम्मी-तरंग-मासासहससाइ समतिव  
 माणी समतिच्छमाणी कइयएहं ग्रहोरत्तिहं सवणसमुदं अणेगाइं जोयणसयाइं भोगाडा ।

तत्पदचात् वह नौका बन्धनो से मुक्त हुई, एवं पवन के बल से प्रेरित हुई । उम पर सर्व  
 कपडे का पाल चढ़ा हुआ था, अतएव ऐसी जान पडती थी जैसे पर फंलाए कोई गड्ढ-गुवती हो  
 वह गगा के जल के तीव्र प्रवाह के वेग से शुभ्य होती-होती, हजारो मोटी तरंगो श्रीर छोटी तर  
 के समूह को उल्लपन करती हुई शुभ्य ग्रहोरात्रो (दिन-रातो) मे सवणसमुद्र मे कई सो दोन  
 दूर तक चली गई ।

६०—तए णं तेनि ग्रहणनगपामोवणानं संजत्तानायावाणियगणं सवणसमुदं अणेगाइं जोय  
 सयाइं भोगाडाणं समानाण बहई उप्पाइयसयाइं पाउवमुयाइं । तंजहा—

तत्पश्चात् कई सौ योजन नवरा-नमुद्र में पहुँचे हुए उन अर्हन्तक आदि सायात्रिक नौका वलियों की बहुत से संकड़ों उत्पात प्रादुर्भूत होने लगे । वे उत्पात इस प्रकार थे—

६१—प्रकाले गज्जिण, प्रकाले विज्जुण, प्रकाले यणियसहे, अनिवत्तणं धागाते देवताधो पचन्ति, एणं च णं महं पितायक्यं पासति ।

प्रकाल में गर्जना होने लगी, प्रकाल में विजनी चमकने लगी, प्रकाल में मेघों को गभीर गड़गड़ाहट होने लगी । बार-बार आकाश में देवता ( मेघ ) नृत्य करने लगे । इसके प्रतिरिक्त एक साइ जेने पिपाच का रूप दिखाई दिया ।

६२—तात्तज्जं विषं गयाहिं बाहाहिं मत्तिमुत्तममहिस्सकालं, भरिय-मेह्वन्न, संबोद्धं, निग-यगवंतं, निस्सालियजमतजुयत्तजोहं, प्राऊत्तिप-वयणगद्धेसं, चीणचिपिटिनासिय, विगयभुगभुगभुमयं, पज्जोयग-वित्तपवत्तुराणं, उत्तासणं, विस्सालवच्छ, विस्सालकुच्छि, पलंबहुच्छि, पवत्तिमयत्तिप-पयत्तिमयत्तं, पणचमणं, अप्पोडत्त, अनिवत्तं, अमिगज्जंत, बहुसो बहुसो मट्टट्टहासे विणिम्मुपंतं नीनुप्पलगतत्तुत्तिप-अवत्तिक्तुमुप्पणासं पुरधारं अत्ति गहाय अनिमुहपायपपाणं पासति ।

वह पिपाच ताड़ के समान लंबी जाँघों वाला था और उसकी बाहुएँ आकाश तक पहुँची हुई थीं । वह कज्जन, कालि गूँहे और भैंस के समान काला था । उसका वलं जलभरे मेघ के समान था । उसके होठ लम्बे थे और दाँतों के अग्रभाग मुख से बाहर निकले हुए थे । उसने अपनी एक-सी दो जीभें मुँह में बाहर निकाल रखी थी । उसके गाल मुँह में बसे हुए थे । उसकी नाक छोटी और चपटी थी । भुँकुटि डरावनी और अत्यन्त बक्र थी । नेत्रों का वर्ण जुयनू के समान चमकता हुआ लाल था । दैन्ते बालों को घोर त्राम पहुँचाने वाला था । उसकी छाती चौड़ी थी, कुक्षि विस्तार और लम्बी थी । हँसते और चलते समय उसके अक्यव ढीले दिखाई देते थे । वह नाच रहा था, आकाश की मामी फोड़ रहा था, सामने घा रहा था, गर्जना कर रहा था और बहुत-बहुत ठहाके मार रहा था । ऐसे काले कमल, भैंस के सींग, नील, झलसी के फूल के समान काली तथा धुरे की धार की तरह तीक्ष्ण तलवार लेकर आते हुए पिपाच को उन वलियों ने देखा ।

६३—तए णं ते अरहण्णमवज्जा सज्जाणावाणियया एयं च णं महं तात्तपिमायं पासति—  
तात्तज्जं, विषं गयाहिं बाहाहिं, फुट्टसिरं ममर-णिमर-वरमासरासि-महिस्सकालं, भरियमेह्वणं, मुप्पणहं, कालसरिसजोहं, संबोद्धं धवत्त-बहु-अत्तिट्ठ-तिक्ख-पिर-चीण-कुटिल-डाढोवगुदवयणं, विक्कोत्तिप-धारासिजुयत्त-समसरित्त-तणुमवच्चल-गलंतरससोत्त-चवत्त-फुरफुरत्त-निस्सालियगज्जोहं अय-यत्तिप-महत्तल-विगय-चीमच्छ-तात्तपगतत्त-रत्ततालुयं हिपुलुय-समक्कंवरवित्तं थ अज्जणगिरिस्स, अग्गिजात्रुगित्तवयणं प्राऊत्तिप अक्खत्तम्म-उट्ठगंद्धेसं चीणचिपिटि-वक्क-भग्गणासं, रोसाय-यम-पमेत्त-पादप-निट्ठर-सर-कस्सभुत्तिरं, ओभुग्गणासिपुडं पाट्ठम्मड-रइय-ओसणपुहं, उट्ठमुहकन्न-सक्कुत्तिप-महत्त-विगय-लोम-संसात्तग-संबत्त-चत्तिमक्कन्नं, पिगलदिप्पंतत्तोयणं, निउडित्तिपनिडात्तं नरसरिमात्त-परिणट्ठिचिद्धं, विचित्तोणत्तमुवद्धपरिकरं अवहोत्तंत-पुप्फुयायत्त-सत्त्वविचट्टय-ओपुंवर-नज्ज-ससरद्ध-विरइयविचित्तवेपथ्पमात्तिपाणं, ओमक्कर-कण्हसप्पथमयमेत्तत्तत्तकम्मपुंरं, मज्जार-सियात्त-लइयपयं, वित्तपुपुयंतपूपकपकुत्तत्तिरं, धट्ठारवेण ओमं, नयक्कर, कायरज्जणहिमयफोडण, वित्तमट्टट्ट-

हासं विणिग्मुयंत, यसा-रहिर-गूय-मत-मतमसिणपोरचडतणं, उत्तासणयं, यिसातवाधं, देण्डा  
 मिःनणह-मुह-नयण-कःनं वरवाय-चित्तवसोणवरुणं, सरस-रहिर-गयचम-यितत-ऊसविट-वाहुर  
 ताहि ष पर-फरस-असिणट-अणिठठ-वित्त-अनुम-अप्पिय-अकतवागूहि य तरउपतं पासति ।

(पर्यं वर्णित तालपिशाच का ही यहां विशेष वर्णन किया गया है । यह दूसरा वर्णक पाई है)

तत्पश्चात् ग्रहंनरु के सिवाय दूसरे साधारण नौकावर्णिकों ने एक बड़े तालपिशाच को  
 देखा । उसकी जाघे तांड वृक्ष के समान लम्बी थी और बाहुएँ मानव तल पहचो हुईं वृक्ष समान  
 थी । उसका मस्तक फूटा हुआ था, अर्थात् मस्तक के केंद्र बिचारे थे । यह भ्रमरा के समूह, उन्नत  
 उड़द के डेर और भेंस के समान काला था । जल से परिपूर्ण मेघों के समान श्याम था । इसके  
 नाज़न सूप ( छाजले ) के समान थे । उसकी जीभ हल के फाल के समान थी—अर्थात् वाहन पर  
 प्रमाण अग्नि में तपाए गये लोहे के फाल के समान लाल चमकमाती और लम्बी थी । उसके शरीर  
 लम्बे थे । उसका मुख घबल, गोल, पृथक्-पृथक्, तीखी स्थिर, मोटी और टेढ़ी दाढ़ो से व्याप्त था ।  
 उसके दो जिह्वाओं के अग्रभाग बिना म्यान की धारदार तलवार-गुगल के समान थे, पतले थे, चमकीले  
 थे, उनमें से निरन्तर सार टपक रही थी । वह रस-लोलुप थे, चंचल थे, लपलपा रहे थे और मुख से  
 बाहर निकले हुए थे । मुख फटा होने से उसका लाल-लाल तालु गुला दिखाई देता था और वह रस  
 विकृत, बीभत्स और सार भराने वाला था । उसके मुख से अग्नि की ज्वालाएँ निकल रही थीं ।  
 अतएव वह ऐसा जान पड़ता था, जैसे हिमालय से व्याप्त अजनगिरि की गुफा रूपी बिल हो । सिद्ध  
 हुए मोठ (चरस) के समान उसके गाल सिकुड़े हुए थे, अथवा उसकी इन्द्रियाँ, शरीर की चमड़ी, होठ  
 और गाल—सब सल वाले थे । उसकी नाक छोटी थी, चपटी थी, टेढ़ी थी और भग्न थी, अर्थात्  
 ऐसी जान पड़ती थी जैसे लोहे के घन से कूटपोट दी गई हो । उसके दोनों नधुनों (नासिकागुदों)  
 शोध के कारण निकलता हुआ स्वासवायु निष्ठुर और अत्यन्त कर्कश था । उसका मुख मनुष्य  
 के घात के लिए रचित होने से भीषण दिखाई देता था । उसके दोनों कान चपल और लम्बे  
 उनकी दाफुली ऊँचे मुख वाली थी, उन पर लम्बे-लम्बे और विकृत बाल थे और वे कान नेत्र के पास  
 की हड्डी (शस्त्र) तक की छूते थे । उसके नेत्र पीले और चमकदार थे । उसके ललाट पर भृङ्गटि च  
 थी जो बिजली जैसी दिखाई देती थी । उसकी ध्वजा के चारों ओर मनुष्यों के मुंडों की माला  
 लिपटी हुई थी । विचित्र प्रकार के गोनस जाति के सर्पों का उसने बस्तर बना रखा था । उसने श्व  
 उधर फिरते और फुफकारने वाले सर्पों, बिच्छुओं, गोहों, चूहों, नकुनों और गिरगिटों की विविध  
 प्रकार की उत्तरासण जैसी माला पहनी हुई थी । उसने भयानक फन वाले और धमधमाते हुए  
 काले साँपों के लम्बे लटकते कुंडल धारण किये थे । अपने दोनों कंधों पर जिलाय और सियार  
 थे । अपने मस्तक पर देदीप्यमान एव धू-धू ध्वनि करने वाले उल्लू का मुकुट बनाया था । वह घटा  
 शब्द के कारण भीम और भयकर प्रतीत होता था । कायर जनों के हृदय को दलन करने वाला  
 चीर देने वाला था । वह देदीप्यमान घट्टहास कर रहा था । उसका शरीर चर्बी, रक्त, मवाद, म  
 और मल से मलिन और लिप्त था । वह प्राणियों को घास उत्पन्न करता था । उसकी छाती चौ  
 थी । उसने थोष्ठ व्याघ्र का ऐसा चित्र-विचित्र चमड़ा पहन रखा था, जिसमें (व्याघ्र के) ना  
 (रोम) मुख, नेत्र और कान आदि अवयव पूरे और साफ दिखाई पड़ते थे । उसने ऊपर उठाये  
 दोनो हाथों पर रस और दधिर से लिप्त हाथी का चमड़ा फैला रखा था । वह पिशाच नौका पर

हुए लोगों की, अत्यन्त कठोर, स्नेहहीन, अनिष्ट, उत्तापजनक, स्वरूप से ही प्रमुख, अभिय तथा अक्रान्त—अनिष्ट स्वर वाली (अमनोहर) वाणी से तर्जना कर रहा था। ऐसा भयानक पिशाच उन लोगों को दिखाई दिया।

**विवेचन—**उल्लिखित पाठ में ताल पिशाच का दिन दहलाने वाला चित्र अंकित किया गया है। पाठ के प्रारम्भ में 'अरहण्णगवज्जा मज्झत्ताणावावाणिग्गा' पाठ आया है। इसका आशय यह नहीं है कि ग्रहंश्रक के सिवाय अन्य वणिकों ने ही उस पिशाच को देखा। वस्तुतः ग्रहंश्रक ने भी उसे देखा था, जैसा कि आगे के पाठों से स्पष्ट प्रतीत होता है। किन्तु 'ग्रहंश्रक के सिवाय' इस वाक्यांश का सम्बन्ध मूल सूत्रा ६४ वं के साथ है। अर्थात् ग्रहंश्रक के सिवाय अन्य वणिकों ने उस भीषणतर सकट के उपस्थित होने पर क्या किया, यह बतलाने के लिए 'ग्रहंश्रकवज्जा' पद का प्रयोग किया गया है। उस सकट के अवसर पर ग्रहंश्रक ने क्या किया, यह मूल सूत्रा ६५ वं में प्रदर्शित किया गया है।

अन्य वणिकों से ग्रहंश्रक की भिन्नता दिखलाना मूलकार का अभीष्ट है। भिन्नता का कारण है—ग्रहंश्रक का श्रमणोपासक होना, जैसा कि मूल ५३ में प्रकट किया गया है। सच्चे श्रावक में धार्मिक दृढ़ता किस सीमा तक होती है, यह घटना उसका स्पष्ट निदर्शन कराती है।

६४—तं तालपिशाचकं एज्जमाणं पासंति, पासित्ता मीया संजायमया अन्नमन्नस्स कायं समसुरगेमाणा बहूणं ईदाणं य खंदाणं य रुद्ध-सिध-वेसमण-णागणं मूयाणं य ज्वलणं य अज्जकोट्ट-किरियाणं य बहूणि उवाइयसयाणि ओवाइयमाणा ओवाइयमाणा चिट्ठसि ।

ग्रहंश्रक को छोड़कर शेष नौकावणिक तालपिशाच के रूप को नौका की ओर घाता देख कर डर गये, अत्यन्त भयभीत हुए, एक दूसरे के शरीर से बिपट गये घोर बहुत से इन्धो की, स्कन्दो (कालिकेय) की तथा रुद्ध, शिव, वैश्रमण और नामदेवो की, भूतो की, यक्षो की, दुर्गा की तथा कोट्टक्रिया (महिषवाहिनी दुर्गा) देवी को बहुत-बहुत मेकड़ो मनोनिपां मनाने लगे।

६५—तए णं से अरहन्णए समणोवासए तं दिव्वं पिसायककं एज्जमाणं पामइ, पासित्ता अमीए अतथे अचलए अंसंभंते अणाउसे अणुविग्गे अमिण्णमुहराय-अणयणण्णे अदीनविमणमाणसे पोषवहणस्स एगदेसंमि अयंतेणं भूमि पम्भज्जइ, पम्भज्जिता ठाणं ठाइ, ठाइस्ता करवसपरिगहियं सिरसावत्त मयए अंजलि कट्टु एवं वयासी—

'नमोऽय ण अरहंताणं भगवंताणं जाव' ठाणं संपसाथं जइ णं अहं एतो उवसगाओ मुंचामि तो मे कप्पइ पारित्तए, अहं णं एतो उवसगाओ ण मुंचामि तो मे तहा पच्चवखाएयध्वे' रित कट्टु सागारं भत्तं पच्चवखाइ ।

ग्रहंश्रक श्रमणोपासक ने उस दिव्य पिशाचरूप को घाता देखा। उसे देख कर वह तनिक भी भयभीत नहीं हुआ, त्रास को प्राप्त नहीं हुआ, चलायमान नहीं हुआ। मग्नान्त नहीं हुआ, व्याकुल नहीं हुआ, उड्डिग्न नहीं हुआ। उसके मुख का राग और नेत्रों का वर्ण बदला नहीं। उसके मन में दीनता या विभ्रता उत्पन्न नहीं हुई। उसने पीतवह्न के एक भाग में जाकर वस्त्र के छोर से भूमि का प्रमार्जन किया। प्रमार्जन करके उस स्थान पर बैठ गया और दोनों हाथ जोड़ कर इस प्रकार बोला—

हासं विणिम्युयंतं, वसा-रुहिर-पूय-मंस-मलमल्लिणपोचचडतणुं, उत्तासणयं, विसालवधं, वेदं  
मिन्नणह-मुह-नयण-कंसं वरधध-चित्तवत्तीणवरुणं, सरस-रुहिर-गयचम्म-वितत-ऊसविट-भाणुं  
ताहि य सर-फरस-असिणद्ध-अणिटठ-दित्त-असुम-अप्पिय-अकंतवग्गुहि य तज्जयतं पासति ।

(पवं वर्णित तालपिशाच का ही यहां विशेष वर्णन किया गया है । यह दूसरा वर्णन पाठ

तत्पश्चात् ग्रहन्तक के सिवाय दूसरे सायात्रिक नौकावर्णिकों ने एक बड़े तानपिशाच  
देता । उसकी जाड़े ताड़ वृक्ष के समान लम्बी थी और बाहुएँ आकाश तक पहुँची हुई सूख  
थी । उसका मस्तक पूटा हुआ था, अर्थात् मस्तक के केश बिखरे थे । वह भ्रमरों के समूह  
उड़ने के ढेर और भैंस के समान काला था । जल से परिपूर्ण मेघों के समान श्याम था ।  
नागून मूष ( छाजले ) के समान थे । उसकी जीभ हल के फाल के समान थी—अर्थात् बाज  
प्रमाण अग्नि में तपाए गये लोहे के फाल के समान लाल चमचमाती और लम्बी थी । उसके  
लम्बे थे । उसका मुख घबल, गोल, पृथक्-पृथक्, तीखी स्थिर, मोटी और टेढ़ी दाढ़ों से व्याप्त  
उसके दो जिह्वाओं के अग्रभाग बिना म्यान की धारदार तलवार-युगल के समान थे, पतले थे,  
थे, उनमें निरन्तर लार टपक रही थी । वह रस-लोलुप थे, चंचल थे, लपलपा रहे थे और मुँह  
बाहर निकले हुए थे । मुख फटा होने से उसका लाल-लाल तालु गुला दिखाई देता था और वह  
पिच्छत, बीभत्स और लार भराने वाला था । उसके मुख से अग्नि की ज्वालाएँ निकल रही  
थी। वह ऐसा जान पड़ता था, जैसे हिमालू से व्याप्त अजनमिरि की गुफा रूपी बिल हो । नि  
हुए मोठ (धरम) के समान उसके गाल सिकुड़े हुए थे, अथवा उसकी इन्द्रियाँ, शरीर की चमड़ी,  
और गाल—मच ताल वाले थे । उसकी नाक छोटी थी, चपटी थी, टेढ़ी थी और भ्रम थी,  
ऐसी जान पड़ती थी जैसे लोहे के धन से कूटपीठ दी गई हो । उसके दोनों नयुनों (नासिकायुग्म)  
भोष के कारण निकलता हुआ श्वासवायु निष्ठुर और अत्यन्त कर्कश था । उसका मुख मनुष्य  
के धान के लिए रचित होने से भोषण दिखाई देता था । उसके दोनों कान चपल और लम्बे  
उनकी धनुसी उँचे मुग वाली थी, उन पर लम्बे-लम्बे और विकृत बाल थे और वे कान नेत्र के  
की हृष्टी (गाल) तक की गूँते थे । उसके नेत्र पीले और गमकदार थे । उसके ललाट पर भृश  
थी जो बिजली जैसी दिखाई देती थी । उसकी ध्वजा के चारों ओर मनुष्यों के मुँह की  
जिनसी हुई थी । विविध प्रकार के गोमय जाति के मर्षों का उसने बस्तर बना रखा था । उसने  
उपर चिहने और कृत्रिमरूपेण बाने मर्षों, बिन्दुमर्षों, गोहों, भूहों, नकुलों और गिरगिटों की  
प्रकार की उत्तरासम जैसी माना पहुँची हुई थी । उसने भयानक फल वाले और धमधमा  
कानि गाँस के लम्बे लटवने कुटन धारण किये थे । अपने दोनों कंधों पर विलास और विचार  
थे । अपने मानक पर देदीप्यमान एक पू-पू ध्वनि करने वाले उल्लू का मुकुट बनाया था । वह प  
सद के कारण भीम और भयंकर प्रतीत होता था । कायर जनों के हृदय को दलन करने वा  
और देने वाला था । वह देदीप्यमान घट्टाँग कर रहा था । उसका शरीर चर्बी रक्त, मसल,  
और मसल अग्नि और अग्नि था । वह प्राणियों को त्राम उत्पन्न करता था । उसकी छाती  
थी । उसने खेद व्याघ्र का ऐसा चित्र-विचित्र चमड़ा पहन रखा था, त्रिगमे (व्याघ्र के)  
(राज) मुख नेत्र और कान घाँटि घबराह भूर और माक दिखाई पड़ने थे । उसने ऊपर उठा  
दानी हाथ पर लाल और रुहिर न रिये हाथों का चमड़ा पहना रखा था । वह पिशाच नौका

भाव उत्पन्न नहीं कर सकना । तुम्हारी जो थड़ा (इच्छा) हो मो करो ।  
 हर धर्मान् उम पिशाच को चुनौती देकर ग्रहप्रक निर्भय, अपरिवर्तित मुक्त के  
 ना, दैत्य घोर मानसिक पीद में रहित, निश्चल, निस्पन्द मोन और धर्म-

दिव्य पिशाचरूपे ग्रहहर्जनं सन्नखीवासय बोद्धं वि तच्छं वि एवं वधासी—  
 प्रबलीकविमलमानसे निश्चले निष्कवे तुसिणीए धम्मज्झाणोवगए विहरइ ।  
 ध्य पिशाचरूप ग्रहप्रक धमणोपामक से दूसरी बार और फिर तीसरी बार  
 !’ इत्यादि कहकर पूर्ववत् धमकी दी । यावत् ग्रहन्नक ने भी वही उत्तर  
 मानसिक वेद में रहित निश्चल, निस्पन्द, मोन और धर्मध्यान में लीन  
 को धमकी का तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ा ।

दिव्य पिशाचरूपे ग्रहहर्जनं धम्मज्झाणोवगयं पासइ, पासिस्ता वसियतराणं  
 ग्रहं धंगुलमाहि गिण्हइ, गिण्हिता सत्तट्ठत्त (ता) साइं जाव ग्रहहर्जनं एवं  
 !’ अपस्मियपरिचया । जो तलु कण्ड तब सोत्तव्यय-गुण-वेरमण-पचव-  
 जाव धम्मज्झाणोवगए विहरइ ।

ध्य पिशाचरूप ने ग्रहन्नक को धर्मध्यान में लीन देखा । देखकर उसने और  
 पोतवहून को दो उगलियों से ग्रहण किया । ग्रहण करके सात-पाठ  
 को की जैबाई तक ऊपर उठाकर ग्रहन्नक ने कहा—‘घरे ग्रहन्नक । सीत  
 भूके सीतन्न, गृणप्रत, विग्मण, प्रत्याख्यान तथा पीपध घावि का त्याग  
 इत्यादि सब पूर्ववत् समझना चाहिए । किन्तु इस प्रकार कटुने पर भी  
 धमना न हुआ और धर्मध्यान में ही लीन बना रहा ।

पिशाचरूपे ग्रहहर्जनं जाहे तो संखाएइ निम्नधाओ पावयणाओ चासितए वा  
 मत्तए वा ताहे जवसंते जाव निम्पिण्णे तं पोयवहून तणियं सणियं उवरि  
 शिवं पिशाचरूपे पडिसाहरइ, पडिसाहरित्ता दिव्य देवहवं विउत्तवइ,  
 इथंने सल्लिलिगियाइं जाव [वसइवण्णाइं वरयाइ पवर] परिहिण  
 वधासी—

पाचरूप जब ग्रहन्नक को निर्ग्रन्थ-प्रवचन से चलायमान, क्षुभित एवं  
 नहीं हुआ, तब वह उपशान्त हो गया, यावत् मन में वेद को प्राप्त हुआ ।  
 को धीरे-धीरे उतार कर जल के ऊपर रखा । रखकर पिशाच के दिव्य  
 से समेट लिया और दिव्य देव के रूप की विक्रिया की । विक्रिया करके,  
 को की छद्मधर्म की ध्वनि से मुक्त पचवर्ण उत्तम वस्त्र धारण करके  
 इस प्रकार कहा—

‘अरिहन्त भगवन’ यात्रा गिद्ध को प्राप्त प्रभु को नमस्कार है (इस प्रकार ‘नमो’ पुनः ‘रा’ पाठ उच्चारण किया) । फिर कहा—‘यदि मे इस उपासने में मुक्त हो जाऊँ तो मुझे यह काशी में करना कल्पना है, और यदि इस उपासने में मुक्त न होऊँ तो यही प्रत्याख्यान कल्पना है, प्रयासोन्मग्न पारना नहीं कल्पना ।’ इस प्रकार कह कर उमने मागारी धनधान ग्रहण कर लिया ।

६६—तए न से विसायक्ये जेणैव अरहन्तए समणोवासए तेणैव उवागच्छइ, उवागच्छता अरहन्तए एवं वयासी —

‘हं भो अरहन्तगा ! अवतियपवतियया ! जाय [दुरंतपंतलवतणा ! होणपुण्णचाउत्तिमा ! सत्ति-हिरि-पिड-कित्ति] परिचज्जिया ! जो खलु कप्पइ तय सील-व्यय-गुण-वेरमण-वच्चवत्ताण-सोक-पोषवासाइ चालित्तए वा एव खोभेत्तए वा, लज्जित्तए वा, भज्जित्तए वा, उज्जित्तए वा, परिच्छित्तए वा । तं जइ णं तुमं सीलव्ययं जाय ण परिच्छयसि तो ते अहं एव पोषयहणं बोहिं प्रगुत्तिमाइं णहामि, गेण्हत्ता सत्तट्ठतलप्पमाणमेत्ताइं उइठ वेहासे उब्बिहामि, उब्बिहत्ता पंतो वनत्ति णच्छोलेमि, जेणं तुमं अट्ट-बुहट्ट-वसट्ठे असमाहिपस्से अकाले चेव जीवियाओ वयरोविज्जति ।’

तत्पश्चात् वह पिशाचरूप वही आया, जहाँ मर्दभक्त श्रमणोपासक था। आकर मर्दभक्त ने इस प्रकार कहने लगा—

‘अरे अप्राथित’—मीत—की प्रार्थना (इच्छा) करने वाले ! यायन् [कुलधली ! प्रभागिनी-काली चौदस के जन्मे !, लज्जा कीर्ति बुद्धि और लक्ष्मी से] परिचजित ! तुझे शीलव्रत—अनुष्ठान, गुणव्रत विरमण-रागादि की विरति का प्रकार, नवकारसी आदि प्रत्याख्यान और पोषधोषवान में चलायमान होना अर्थात् जिस भागे से जो व्रत ग्रहण किया हो उसे बदल कर दूसरे भागे से कर लेना, शोभयुक्त होना अर्थात् ‘इस व्रत को इसी प्रकार पालूँ या त्याग दूँ’ ऐसा सोच कर शुब्ध होना, एक देश से लण्डित करना, पूरी तरह भग करना, देशविरति का संबंध त्याग करना कल्पना नहीं है। परन्तु तू शीलव्रत आदि का परित्याग नहीं करता तो मैं तेरे इस पीतवहन को दो उगलियों पर उठाए लेता हूँ और सात-आठ तल की ऊँचाई तक आकाश में उछाल देता हूँ और उछाल कर इसे जल के अन्दर डुबाए देता हूँ, जिससे तू आर्त्त-ध्यान के वशीभूत होकर, असमाधि को प्राप्त होकर जीवन से रहित हो जायगा—मीत का आस वन जायगा ।’

६७—तए णं से अरहन्तए समणोवासए तं देवं मणसा चेव एवं वयासी—‘अहं वं देवानुप्पिया ! अरहन्तए णामं समणोवासए अहिमयज्जीवाजोवे, नो खलु अहं सक्का केणइ देवेण वा जाय [दाणवेण वा जपेण वा रक्खसेण वा किन्नरेण वा किंपुरिसेण वा महोरगेण वा गंधावेण वा] निग्गयाओ पावयणाओ चालित्तए वा खोभेत्तए वा विपरिणामेत्तए वा, तुम णं जा सउठ करेहिं हित कट्ठु अणोए जाय’ अस्मिन्मुहरागणयणवन्ने अवेणविमणमाणसे निच्चले निष्कंदे तुत्तिणोए धम्मरञ्जणोवणए विहरइ ।

तब मर्दभक्त श्रमणोपासक ने उम देव को मन ही मन इस प्रकार कहा—‘देवानुप्रिय ! मैं मर्दभक्त नामक श्रायक हूँ और जड़-चेतन के स्वरूप का ज्ञाता हूँ (मुझे कुछ ऐसा-वैसा प्रज्ञान था







हे देवानुग्रिय ! मैंने जाना । जानकर ईशान कोण में जाकर उत्तर बैक्रिय शरीर बनाने के लिए बैक्रिय समुद्रपात किया । तत्पश्चात् उत्कृष्ट यावत् शीघ्रता वाली देवमति मे जहा लवण समुद्र था और जहां देवानुग्रिय (तुम) थे, वहा मैं आया । आकर मैंने देवानुग्रिय को उपसर्ग किया । भगर देवानुग्रिय भयभीत न हुए, घाम को प्राप्त न हुए । अतः देवेन्द्र देवराज ने जो कहा था, वह प्रथं सत्य सिद्ध हुआ । मैंने देखा कि देवानुग्रिय को श्रद्धि-गुण रूप समृद्धि, द्युति-तेजस्विता, मय, शारीरिक बल यावत् पुरुषकार, पराक्रम लब्ध हुआ है, प्राप्त हुआ है और उसका भली-भाति सेवन किया गया है । तो हे देवानुग्रिय ! मैं आपको गमाना हूँ । आप धाम प्रदान करने योग्य हैं । हे देवानुग्रिय ! अब फिर कभी मैं ऐसा नहीं करूंगा ।' इस प्रकार कहकर दोनों हाथ जोड़कर देव ग्रहन्तक के पायां मे मिर गया और इस घटना के लिए बार-बार विनयपूर्वक क्षमायाचना करने लगा । क्षमायाचना करके ग्रहन्तक को दो कु डल-युगल भेंट किये । भेंट करके जिस दिशा से प्रकट हुआ था, उसी दिशा में लौट गया ।

७२—तए णं से अरहन्तए निदयसगमिति कट्टु, पडिमं पारेइ । तए ण ते अरहन्तगवामोवला जाव [संज्ञतानावा] वाणिगगा दधितणानुकलेण भाएणं जेणव गंभीरए पोप्रपट्टणे तेणव उवागच्छति, उवागच्छिता पोयं संयंति, संयिता समदिसागडं सज्जेति, सज्जिता तं गणिमं धरिमं मेउजं पारिच्छेजं सगदिसागडं सकामेति, संकामिता सगदिसागडं जोएति, ओइत्ता जेणेव मिहिला नगरी तेणव उवागच्छति, उवागच्छिता मिहिलाए रायहाणीए बहिया अणुउत्तणंति सगदिसागडं मोएन्ति, ओइत्ता मिहिलाए रायहाणीए तं महत्थं महत्थं महत्तरिहं विउलं रायरिहं पाहुडं कुं डलजुयलं च मेण्हुंति, मेण्हुता मिहिलाए रायहाणीए अणुपविसंति, अणुपविसिता जेणव कुं भए राया तेणव उवागच्छति, उवागच्छिता करयल जाव [परिगहियं तिरसायलं मत्थए अंजेति] कट्टु, त महत्थं दिव्धं कुं डलजुयलं उवणेति जाव पुरमो ठवेति ।

तत्पश्चात् ग्रहन्तक ने उपसर्ग टल गया जान कर प्रतिमा पारी धर्षात् कायोत्सर्ग पारा । तदनन्तर वे ग्रहन्तक आदि यावत् नीकावणिक् दक्षिण दिशा के यनुकूल पवन के कारण जहां गम्भीरनामक पातपट्टन था, वहा आये । आकर उस पीत (नौका या जहाज) को रोका । रोक कर गाड़ी-गाड़ी तैयार किये । तैयार करके बड़े गणिम, धरिम, मेय और परिच्छेज भाइ को गाड़ी-गाड़ी मे भरा । भरकर गाड़ी-गाड़ी ओंते । जोतकर जहा मिथिला नगरी थी, वहा आये । आकर मिथिला नगरी के बाहर उत्तम उद्यान मे गाड़ी-गाड़ी छोड़े । छोड़कर मिथिला नगरी में जाने के लिए वह महान् धर्य वाली महामुल्य वाली, महान् जनों के बोध्य, विपुल और राजा के योग्य भेंट और-कुं डलों की जोड़ी ली । लेकर मिथिला नगरी मे प्रवेश किया । प्रवेश करके जहा कुम्भ राजा था, वहा आये । आकर दोनों हाथ जोड़कर, भस्तर पर बजलि करके वह महान् धर्य वाली भेंट और वह दिव्य कुं डलयुगल राजा के समीप ले गये, यावत् राजा के सामने रख दिया ।

७३—तए णं कुमए राया तेति सज्जतयानं नावावाणिगगणं जाव' पडिच्छइ, पडिच्छिता मल्लि विदेहवररायकमं सहावेइ, सहाविता तं दिव्धं कुं डलजुयलं मल्लोए विदेहवररायकमनाए पिणइइ, पिणद्धिता पडिविसज्जेइ ।

तत्पश्चात् कुम्भ राजा ने उन नौकावणिकों की वह बहुमूल्य भेंट यावत् अंगोकार सा  
अंगोकार करके विदेह की उत्तम राजकुमारी मल्ली को बुलाया । बुलाकर वह दिव्य कुण्डल  
विदेह की श्रेष्ठ राजकुमारी मल्ली को पहनाया । पहना कर उसे विदा कर दिया ।

७४—तए नं से कुम्भ राजा ते अरहन्गपामोक्षे जाय वाणिज्यो विपुलेण प्रसन्न-पाम-नरु-  
साहमेण वर्य-गंध-मल्लातकारेण जाय [सवकारेइ सम्माणेइ सवकारिता सम्मानिता] ननु  
वियरेइ, वियरित्ता रायमग्गमोगाडे ॥ आवासे वियरेइ, वियरित्ता पडिविसजेइ ।

तत्पश्चात् कुम्भ राजा ने उन अर्हन्गक आदि नौकावणिकों का विपुल प्रदान पादितेन  
वस्त्र, गंध, माला और अलंकार से सज्जित किया । उनका शुल्क माफ कर दिया । राजमन्त्र  
उनको उत्तारा दिया और फिर उन्हें विदा किया ।

७५—तए नं अरहन्गसंजत्तमा जेणेय रायमग्गमोगाडे आवासे तेणेव उवागच्छति  
उवागच्छत्ता भंडयवहरणं करेति, करित्ता पडिभंडं गेण्हति, गेण्हित्ता सगडिसागडं मरेति, मेरे  
मंभोरए पोपवट्टणे तेणेव उवागच्छति, उवागच्छत्ता पोपवट्टणं सज्जेति, सज्जित्ता भंडं संक्रामेति  
वविण्णानुक्कलेण याएण जेणेय चपाए पोयट्ठाने तेणेव उवागच्छति, उवागच्छत्ता पोयं संवेति, संवेत्ता  
सगडिसागडं सज्जेति, सज्जित्ता तं गणिमं धरिमं मेज्जं पारिच्छेज्जं सगडिसागडं सकामेति, सकामेत्ता  
जाय<sup>१</sup> महामपाठुं दिव्यं च कुंडलनुपलं गेण्हति, गेण्हित्ता जेणेय चंदच्छाए अंगराया तेणेव उवागच्छति,  
उवागच्छत्ता तं महामं जाय<sup>२</sup> उवणेति ।

तत्पश्चात् ये अर्हन्गक आदि सायात्रिक वणिक्, जहां राजमार्ग पर आवास था, वहां जाय  
आकर भाण्ड का व्यापार करने लगे । व्यापार करके उन्होंने प्रतिभांड ( सोदे के बदले में दूसरा  
मोटा ) मरोदा । मरोद कर उनके गाड़ी-गाड़े भरे । भरकर जहां गम्भीर पोतवट्टन था, वहां जाय  
आकर के पोतवट्टन मज्जाया—तैयार किया । तैयार करके उसमें सब भांड भरा । भरकर दक्षिण दिशा  
के मनुजल वायु के कारण जहां चम्पा नगरी का पोतस्थान (चन्दरगाह) था, वहां आये । आकर वहां  
को रोक कर गाड़ी-गाड़े ठीक किये । ठीक करके गणिम, धरिम, मेय और पारिच्छेय—चार प्रकार का  
भांड उनमें भरा । भरकर यावत् वज्रमूल्य भेंट और दिव्य कुण्डलनुपल ग्रहण किया । ग्रहण करके  
जहां अंगराय चंदच्छाय था, वहां आये । आकर यह बहुमूल्य भेंट राजा के सामने रखी ।

७६—तए नं चंदच्छाए अंगराया तं दिव्यं महामं च कुंडलनुपलं पडिच्छइ, पडिच्छित्ता  
अरहन्गपामोक्षे एवं वयासी—‘तुणे नं देवानुप्पिया ! बहणि मामागरं जाय सन्निवेशइ आहि  
सवणसमुदं च दन्निवणं पडिच्छत्तं पोदवट्टणेहि ओगाहेह, तं अरिययाइ मे केइ कहि विये  
विट्ठुवइ ?’

तत्पश्चात् चंदच्छाय अंगराय ने उस दिव्य एवं महामूल्यवान् कुण्डलनुपल ( पादिते )  
को हार दिया । को हार करके उन अर्हन्गक आदि में दस प्रकार कहा—‘हे देवानुप्पियो ! प्राप्त  
से दासी, दासरी आदि में भ्रमन करने हो तथा बार-बार लवणसमुद्र में जहाज द्वारा प्रवेश  
हो तो आपने पहले किसी जगह कोई भी पादनय देगा ?’



रूप में घोड़न में और लावण्य में उत्कृष्ट थी और उत्कृष्ट शरीर वाली थी । उस सुबाहु बालिका  
 किमी नमय चातुर्मासिक स्नान ( जलप्रीडा ) का उत्सव आया ।

८०—तए नं से रूपी कृणात्ताहिवई सुबाहुए बारियाए चाउम्मासियमज्जनणं उरुदा  
 जाणइ, जाणित्ता कोट्टु बिम्बपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—'एवं एतु देवानुप्पिया । सु  
 बारियाए कल्ल चाउम्मासियमज्जनणं भविस्सइ, तं कल्लं तुक्के नं रायमगमोमाइति वयास  
 ( पुष्कमंडयसि ) जलघलपयसद्ववण्णमल्लं साहरेह, जाव [ एं महं सिरिवामगं गंधउनि पु  
 उल्लोयसि घोतएह । तेवि तहेव ] भोतइति ।

तब गुणात्ताधिएनि रुक्मिराजा ने सुबाहु बालिका के चातुर्मासिक स्नान का उत्सव  
 जाना । जानकर कोट्टुबिम्बर पुरुषों को बुलाया । बुलाकर इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्पियो !  
 सुबाहु बालिका के चातुर्मासिक स्नान का उत्सव होगा । अतएव तुम राजमार्ग के मध्य में, पुरुष  
 ( पुष्क-मण्डप में ) जन और धन में उत्पन्न होने वाले पाँच वर्णों के पूल सामो और एक मुग  
 याग श्रीशमकाण्ड ( मुनीभिर्मा मातामो का ममूह ) छन में लटकाओ ।' यह आज्ञा सुनकर  
 कोट्टुबिम्बर पुराण ने इसी प्रकार कार्य किया ।

८१—तए न रूपी कृणात्ताहिवई सुवम्मगारसेणि सद्दावेइ, सद्दावित्ता एव वयासी  
 ( विषामेव भी देवानुप्पिया । रायमगमोमाइति पुष्कमंडयसि जाणाविहपंचवण्णहि तंवेहि व  
 धारिणइ । तान वट्टमज्जरेगमाए पट्ठं एह ।' इत्ता जाव पच्चप्पिणति ।

रायमगमोमाइति पुष्कमंडयसि जाणाविहपंचवण्णहि तंवेहि व  
 धारिणइ । तान वट्टमज्जरेगमाए पट्ठं एह ।' इत्ता जाव पच्चप्पिणति ।

८२—तए न रूपी कृणात्ताहिवई हवियगधवरणए चाउरंगिणोए सेणाए महस  
 चउरए व उरुदावउरिणिपनधनेउरपरिषाममपरिवडे मुसाहुं बारियं पुरधो कट्टु जेणं राय  
 केवड पुष्कमंडउमड उरागच्छइ, उरागच्छिता हवियगधामो पच्चोवड, पच्चोवडिता पु  
 कच्छोवड, कच्छोवडिता भेदाममवरणए पुरवामिमुहे सन्निसने ।

रायमगमोमाइति पुष्कमंडयसि जाणाविहपंचवण्णहि तंवेहि व  
 धारिणइ । तान वट्टमज्जरेगमाए पट्ठं एह ।' इत्ता जाव पच्चप्पिणति ।

८३—तए न रूपी कृणात्ताहिवई सुबाहु बारियाए चाउम्मासियमज्जनणं उरुदा  
 जाणइ, जाणित्ता कोट्टु बिम्बपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—'एवं एतु देवानुप्पिया । सु  
 बारियाए कल्ल चाउम्मासियमज्जनणं भविस्सइ, तं कल्लं तुक्के नं रायमगमोमाइति वयास  
 ( पुष्कमंडयसि ) जलघलपयसद्ववण्णमल्लं साहरेह, जाव [ एं महं सिरिवामगं गंधउनि पु  
 उल्लोयसि घोतएह । तेवि तहेव ] भोतइति ।

ए नं से इष्यो राया मुवाहुं वारियं धके निवेसेह, निवेसित्त मुवाहुए वारियाए क्वेण य जोरवणेण य रावणेण य जायविहूए वरितपरं सहावेड, सहावित्ता एवं यमासी—'तुमं नं देवानुप्रिय ! मम तेरवेणं बहूणि गामागरनगर जाय सन्निवेसाई साहूवसि, बहूण य राईसर जाय सत्यवाहपनिईणं गेहाणि धणुपविससि, तं धरियमाहं से कसइ रण्णो वा ईसरस वा कहिंचि एवारिसए मज्जणा वेदठमुम्भे, जोरिसए न इमीते मुवाहुवारियाए मज्जणए ?'

तत्पश्चात् घन्तपुर की स्त्रिया न मुवाहु कुमारी को उग पाट पर बिठवाया । बिठला कर दोर घोर गीत धर्यान् चारो घोर मोने धादि के कलसो मे उगे स्नान कराया । स्नान करा कर सब अंगकारो मे विभूजि किया । फिर पिला के घरयो मे प्रणाम करने के लिए नाई ।

तब मुवाहु कुमारी दक्षिण राजा के पास आई । धाकर उमने पिता के घरलों का स्पर्श किया ।

उग गमय दक्षिण राजा ने मुवाहु कुमारी को अपनी गोद मे बिठा लिया । बिठा कर मुवाहु कुमारी के कण, पौवन घोर लावण्य को देखने मे उमे विस्मय हुआ । विस्मित होकर उसने वर्षधर ने बुलाया । बुलाकर इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिय ! तुम मेरे दीर्घ काय से बहुत-से धामो, शकरी, नगरो यावत् सन्निवेसां मे धनम्प करने हो घोर मनेक राजासां, राजकुमारो यावत् सार्धवाहो गोदि के गृहां में प्रवेश करते हो, तो तुमने वही भी किसी राजा या ईश्वर (धनवान्) के यही ऐसा मज्जनक (स्नान-महोत्सव) पहने देगा है, जेगा इस मुवाहु कुमारी का मज्जन-महोत्सव है ?'

८४—तए नं से वरितघरे इप्पि करघनपरियाहियं निरतावत्तं मत्थए धंजति कट्ठए एवं दासी—एवं लम्पु सामी ! झहं धमवा सुम्भे नं दोरवेणं मिहित मए, तस्य नं मए कुंमगरस रण्णो मुपाए, पमावईए देवीए धतपाए मत्तोए विदेहराघरकप्रपाए मज्जणए विट्ठे, तस्स नं मज्जणगसत्तं नि मुवाहुए वारियाए मज्जणए तपसहससइमं पि कल म धायेइ ।

तरङ्गवान् वर्षधर ( घन्तपुर के ग्राहक पट्ट-विशेष ) ने दक्षिण राजा से हाथ जोड़ कर आसन पर हाथ पुमाकर जेजनिबद्ध होकर इस प्रकार कहा—'हे स्वामिन् ! एक बार मैं आपके दूत के रूप में मिथिला गया था । मैंने वहाँ कुञ्ज राजा की पुत्री घोर प्रभावती देवी की प्रमजा विदेहराज की उत्तम कन्या मत्ती का स्नान-महोत्सव देखा था । मुवाहु कुमारी का यह मज्जन-उत्सव उस मज्जनमहोत्सव के लागवे अग को भी नहीं पा सकता ।

८५—तए नं से इष्यो राया वरितपरस धंतिए एयमट्ठं सोध्वा णित्तम सेसं तहेव मज्जण-मज्जियहासे दूतं सहावेड । सहावेत्ता एवं यमासी—जेणेव मिहिता नयरो तेणेव पहारेत्थ गमणाए ।

तत्पश्चात् वर्षधर ने यह बात सुनकर घोर हृदय मे धारण करके, मज्जन-महोत्सव का ज्ञात सुनने से जनि हर्ष (धनुराय) वाले दक्षिण राजा ने दूत को बुलाया । जेय सब वृत्तात पहने के प्रान गमभन्ना । दूत को बुलाकर इस प्रकार कहा—(मिथिला नयरो मे जाकर मेरे लिए मत्ती कुमारी को भेजनी करो । बढने में सारा राज्य देना पड़े तो उसे भी देना स्वीकार करना, आदि) यह सुनकर दूत मिथिला नगरी जाने को रवाना हो गया ।

मीराजी शय

८६—तेणं कालेणं तेणं समएणं कासी नामं जणवए होत्था । तस्य णं वाणारसी नाम  
परी होत्था । तस्य ण संखे नामं राया कासीराया होत्था ।

उन काल और उस समय में काशी नामक जनपद था । उस जनपद में वाणारसी नामक  
परी थी । उसमें काशीराज शयनामक राजा था ।

८७—तए णं तीसे मत्तीए विदेहरायधरकम्मगाए अन्नया कयाई तस्स दिव्वस्स कुंइ-  
पलस्स सधी विसंघडिए यावि होत्था ।

तए ण कुंभए राया मुवण्णगारसेणी सद्दावेह, सद्दावित्ता एवं वयासी—‘तुम्हे णं देवानुप्पिया !  
मस्स दिव्वस्स कुंइलजुपलस्स संधि संधाडेह ।

एक बार किसी समय विदेहराज की उत्तम कन्या मत्ती के उस दिव्य कुण्डल-युगल का जोड़  
पुन गया । तब कुम्भ राजा ने मुवण्णकारों को श्रेणी को बुलाया और कहा—‘देवानुप्पियो ! इस दिव्य  
कुण्डल-युगल के जोड़ को माध दो ।’

८८—तए ण सा मुवण्णगारसेणी एयमट्ठं तहं स्ति पडिमुणेह, पडिमुणित्ता तं दिव्यं कुंइ-  
जुपल गेह्णह, गेह्णित्ता जेणेव मुवण्णगारभित्तिपाओ तेणेव उवागच्छह । उवागच्छित्ता मुवण्णगार-  
भित्तिपाओ जियेतेह, जियेत्तिता बह्णहि भाएहि य जाव [ उवाएहि य उप्पत्तिपाहि य वेणइपाहि य  
कम्मिपाहि य पारिणामिपाहि य बुद्धोहि ] परिणामेमाणा इच्छति तस्स दिव्वस्स कुंइलजुपलस्स  
संधि पडित्ते, नो वेय णं संचाएत्ति संधित्तेह ।

तत्पश्चात् मुवण्णकारों की श्रेणी ने ‘तथा-ठीक है’, इस प्रकार कह कर इस धर्म को स्वीकार  
दिया । स्वीकार करके उन दिव्य कुण्डल-युगल को ग्रहण किया । ग्रहण करके जहाँ मुवण्णकारों के  
स्थान ( धोत्रार रसने के स्थान ) थे, वही माधे । आ करके उन स्थानों पर कुण्डल-युगल रखा । रा  
कर उठने [ यानी ने, उपाया ने, श्रोतृत्विकी, वैनविकी, कामिकी एवं पारिणामिकी बुद्धियाँ ]  
उन कुण्डल-युगल का परिणत करने हुए उसका जोड़ माधना चाह, परन्तु उन्हें माधने में सफल  
न हो सके ।

८९—तए ण सा मुवण्णगारसेणी जेणेव कुंभए तेणेव उवागच्छह, उवागच्छित्ता करवण-  
जाव वट्ठावेत्ता एवं वयासी—‘एवं सजु माओ ! अज्ज तुम्हे अम्हे सद्दावेह । सद्दावेत्ता जाव संधि  
संधाडित्ता एवमावत्ति पच्चप्पिमह । तए णं अम्हे तं दिव्यं कुंइलजुपल गेह्णामो । जेणेव मुवण्णगार-  
भित्तिपाओ जाव नो संचाएओ संधाडित्तेह । तए ण अम्हे माओ ! एयस्स दिव्वस्स कुंइलजुपल  
सरिणं कुंइलजुपल पडेओ ।’

तत्पश्चात् वह मुवण्णकार श्रेणी, कुम्भ राजा के पास आई । आकर दोनों हाथ जोड़ कर  
और उचित श्रद्धा से राजा के इस प्रकार निवेदन किया—‘स्वामिन् ! आज माधने हमें  
आ बुलाया था । तुना हमें वह दिव्य दिया था कि कुण्डल-युगल की मूर्ति माध कर मेरी प्रा  
करने को कहा था । इस दृष्टि वह दिव्य कुण्डल-युगल दिया । हम अपने स्थानों पर गये, बहुत उपाय



किये, परन्तु उस संधि की जोड़ने के लिए शक्तिमान् न हो सके। अतएव (भाषकी भाषा हो तो) हे स्वामिन् ! हम इस दिग्ग कुण्डलपुगल नगीचा दूसरा कुण्डलपुगल बना दें।'

६०—तए नं से कुंनए राधा तोसे सुवण्णगारसेणीए द्यतिए एवमट्ठ सोच्चा तिसम्म पामुवत्ते, तिवत्तिपं मिउत्ति निक्खत्ते माहट्टु एव वयासी—

‘मे के नं तुम्हे कलायण भवह ? जे न तुम्हे इमस्स कुण्डलपुगलसो नो संधाएह संधि संधाहेत्तए ?’ ते सुवण्णगारे निव्वित्तए प्रापवेह ।

स्वर्णकारों का काम मुन का धीर हृदयगम करके कुंभ राजा कूट हो गया। लताट पर तीन सतबट डाल कर इस प्रकार कहने लगा—‘धरे ! मुम कंमे मुनार हो जो इस कुण्डलपुगल का जोड़ भी साथ नहीं मचने ? अपना मुम साथ बडे मूर्ख हों। ऐसा कहकर उन्हें देशनिर्वासन की आज्ञा दे दी।

६१—तए न ते सुवण्णगारा कुंभेण रण्णा निव्वित्तया धाणत्ता समाना जेणंवे साइं साइं तिहाइं तेणंवे उवाणच्छत्ति, उवाणच्छत्ता मभम्मसोवणरणमायाए मिहत्ताए रामहाणीए मज्झमज्जेणं निव्वत्तमंति । निव्वत्तमत्ता विदेहस्स जणयवस्स मज्झमज्जेण जेणंवे कासी जणवए, जेणंवे वाणारसी नगरी तेणंवे उवाणच्छत्ति । उवाणच्छत्ता धाणुज्जाणत्ति तण्णोसागडं मोएत्ति, मोइत्ता महत्थं जाव पाहुं मेव्हंति, मेव्हत्ता वाणारसीए नगरीए मज्झमज्जेण जेणंवे सखे कासीराया तेणंवे उवाणच्छत्ति, उवाणच्छत्ता करमत्तं जाव वट्ठावेत्ति, वट्ठावित्ता पाहुं पुरयो ठावेत्ति, ठावित्ता संहरायं एयं वयासी :—

तत्पश्चात् कुंभ राजा द्वारा देशनिर्वासन की आज्ञा पाये हुए वे स्वर्णकार अपने-अपने घर प्राये। आकर अपने भाइ, पान घोर उपकरण आदि लेकर मिथिला नगरी के बीचोबीच होकर निकले। निकल कर विदेह जनपद के मध्य में होकर जहाँ कासी जनपद या घोर जहाँ वाणारसी नगरी थी, वहाँ प्राये। वहाँ आकर भय (उत्तम) उत्तान में गाड़ी-गाडे छोडे। छोड़ कर महान् मर्ष वाले राजा के योग्य बहुमूल्य उपहार लेकर, वाणारसी नगरी के बीचोबीच होकर जहाँ कासीराय पास था वहाँ प्राये। आकर दोनों हाथ जोड़ कर यावत् जय-विजय शब्दों से वधाया। वधाकर वह उपहार राजा के सामने रखा। रखा कर शय राजा ने इस प्रकार निवेदन किया—

६२—‘अहे नं सामी ! मिहत्ताओ नगरीओ कुंमएणं रण्णा निव्वित्तया धाणत्ता समाना इहं हवमागया, तं इच्छामो नं सामी । तुम्हं बाहुच्छायापरिणहिया निमया निरुव्विमा सुहं सुहेणं परिवत्तिउं ।’

तए नं सखे कासीराया ते सुवण्णगारे एयं वयासी—‘किं न तुम्हे वेवाणुप्पिया । कुंमएणं रण्णा निव्वित्तया धाणत्ता ?’

तए नं ते सुवण्णगारा संज एयं वयासी—‘एव ललु सामी । कुंमएस्स रण्णो ध्याए पमावईए देवीए भत्तयाए मत्तोए कुंउत्तजुयत्तसस संधी विसंघट्टिए । तए नं से कुंमए सुवण्णगारसेणि सहावेह, सहावित्ता जाव निव्वित्तया धाणत्ता ।’

‘हे स्वामिन् ! राजा कुंभ के द्वारा मिथिला नगरी में निर्मामित हुए हम सोचे वही घाघे हैं।  
स्वामिन् ! हम घाघको भुजाघी को दद्या में प्रदत्त करने हुए अर्थात् घाघके मरणात् में रह कर  
नभय घोर उद्वेगग्रहित होकर सुख-आन्तिपूर्वक निराग करता चाहते हैं।’

तब काशीराज घाघ ने उन सुवर्णकारों से कहा—‘देवानुप्रियो ! कुंभ राजा ने तुम्हें देव-  
नैकासे की आज्ञा क्यों दी ?’

तब सुवर्णकारों ने घाघ राजा से इस प्रकार कहा—‘स्वामिन् ! कुंभ राजा की पुत्री घोर  
प्रभावती देवी की आत्मजा मल्ली कुमारी के कुण्डनयुगल का जोड़ गुप्त गया था ; तब कुंभ राजा ने  
सुवर्णकारों को श्रेणी को बुलाया । बुलाकर यावत् (उमें साधने के लिए कहा । हम उसे प्रत्येक उपाय  
करके भी साध नहीं सके, अतः ) देशनिर्वासन की आज्ञा दे दी ।

६३—तए नं से संते सुवर्णगारे एव ययासी—केरिसिया नं देवानुप्पिया ! कुंभगस्स पमा  
पमावईए देवीए प्रसया मल्ली विदेहरायवरकन्ना ?’

तए न ते सुवर्णगारा संखराय एवं ययासी—णो तल्लु सामी ! अग्गा काई तारिसिया देवकन्ना  
वा जाव [असुरकन्ना वा नागकन्ना वा जवलकन्ना वा गन्धर्वकन्ना वा रायकन्ना वा] जारिसिया  
नं मल्ली विदेहरायवरकन्ना ।

तए नं कुं उल्लजुअलजणियहासे दूतं सहावेइ, जाव तहेय पहारेस्य गमणाए ।

तत्पश्चात् घाघ राजा ने सुवर्णकारों से कहा—‘देवानुप्रियो ! कुंभ राजा की पुत्री घोर  
प्रभावती की आत्मजा मल्ली विदेहराज की श्रेष्ठ कन्या कैसी है ?’

तब सुवर्णकारों ने घाघराज से कहा—‘स्वामिन् ! जैसी विदेहराज की श्रेष्ठ कन्या मल्ली है,  
वैसी कोई देवकन्या अथवा असुरकन्या, नागकन्या, यक्षकन्या, गन्धर्वकन्या भी नहीं है, कोई  
राजकुमारी भी नहीं है ।’

तत्पश्चात् कुण्डल की जोड़ी से जनित हर्ष वाले घाघ राजा ने दूत को बुलाया । इत्यादि सब  
वृत्तान्त पूर्णपत् जानता अर्थात् घाघ राजा ने भी मल्ली कुमारी की मंगनी के लिए दूत भेज दिया घोर  
उससे कह दिया कि मल्ली कुमारी के शुल्क रूप में सारा राज्य देना पड़े तो दे देना । दूत मिथिला  
जाने को रवाना हो गया ।

राजा अदीनशतु

६४—तेणं कालेणं तेणं समएणं कुडजणवए होत्था, हस्तिणाउरे नवरे, प्रदीनसत्तू नामं  
राया होत्था, जाव [रज्जं पत्तासमाणे] विहरइ ।

उस काल घोर उस समय में कुशनामक जनपद था । उसमें हस्तिनापुर नगर था । प्रदीनशतु  
नामक वही राजा था । यावत् वह (राज्यशासन करता मुखपूर्वक) विचरता था ।

६५—तत्थ नं मिहिलाए कुंभगस्स पुत्ते पमावईए अत्तए मल्लीए प्राणुजावए मल्लविणए  
नाम कुमारे जाव’ जुयराया यावि होत्था ।

तए न मन्तस्मिन्ने कुमारो धनया कोटु विमपुरितो सदावेद, सदाविता एव यमासी—'गच्छह  
 नं सुभे मम पदरचनंति एमे भहं चित्तसभं करेह धनेमसमसयसन्निविट्ठ, एयमाणत्तियं पच्चप्पि-  
 नह, ते वि तहेव परचप्पिजति ।

उस मिथिला नगरी में कुंभ राजा का पुत्र, प्रभावती महारानी का भात्मज और मल्लो  
 कुमारी का धनुज मन्वदिप्रनायक कुमार था । वह युवराज था ।

किन्ती समय एक बार मन्तस्मिन् कुमार ने कीटुम्विक पुश्या को बुलाया । बुला कर इस प्रकार  
 कहा—तुम जायीं धीर धरे प्रमद वन (धर के उद्यान) में एक बड़ी चित्रसभा का निर्माण करो, जो  
 संकष्टो स्तम्भों में युक्त हो, इत्यादि । यावत् उन्होंने ऐसा ही करके, चित्रसभा का निर्माण करके आज्ञा  
 वापिस लौटा दो ।

६६—तए नं मन्तस्मिन्ने कुमारो चित्तगरसेणि सदावेद, सदाविता एवं यमासी—'सुभे नं  
 वेसानुप्पिया ! चित्तसभं हाव-भाव-वितास-विज्जोय-कत्तिएहि क्वेहि चित्तेह । चित्तिता जाव  
 पच्चप्पिजह ।

तए नं ता चित्तगरसेणी तह त्ति पडिमुज्जंइ. पडिमुज्जिता जेणव समाइं गिहाइं, तेणव  
 उवागच्छ, उवागच्छिता तूतिवायो वःनए य मेण्हंति, मेण्हता जेणव चित्तसभा तेणव उवागच्छति,  
 उवागच्छिता मणुववितति, मणुवविततिता भूमिमाणे विरचिति (विहिंसति), विरचितता (विहिंसिता)  
 भूमि सज्जति, सज्जिता चित्तसभं हावमाय जाव चित्तेउ पयसा यावि होत्सा ।

तत्पश्चात् मन्तस्मिन् कुमार ने 'चित्रकारों की श्रेणी को बुलाया । बुला कर इस प्रकार  
 कहा—'देवानुप्रियो ! तुम लोग चित्रसभा को हाव, भाव, विलास और विज्योक से युक्त रूपों से  
 (चित्रों से) चित्रित करो । चित्रित करके यावत् मेरी आज्ञा वापिस लौटाओ ।'

तत्पश्चात् चित्रकारों की श्रेणी ने 'तथा-बहुन टीक' इस प्रकार कह कर कुमार को आज्ञा  
 शिरोधार्य की । फिर वे धपने-धपने घर गये । घर जाकर उन्होंने तूतिकारों की धीर रग लिए ।  
 लेकर जहाँ चित्रसभा थी वहाँ धाए । धाकर चित्रसभा में प्रवेश किया । प्रवेश करके भूमि के भागों  
 का विभाजन किया । विभाजन करके धपनी-धपनी भूमि को सज्जित किया—तैयार किया—चित्रों के  
 योग्य बनाया । सज्जित करके चित्रसभा में हाव-भाव धादि से युक्त चित्र अंकित करने में लग गये ।

विवेचन—हाव-भाव धादि माधारणतया स्त्रियों की चेष्टाओं को कहते हैं । उनका परस्पर  
 अन्तर यह है—हाव धर्मात् सुग का विकार, भाव धर्मात् चित्त का विकार, विलास धर्मात् नेत्र का  
 विकार और विज्योक धर्मात् दृष्ट धर्म की प्राप्ति में उत्पन्न होने वाला अभिमान का भाव । युवराज  
 मन्तस्मिन् ने इन सभी शृंगार रस के भावों को चित्रित करने का आदेश दिया ।

६७—तए नं एगस्स चित्तगरस्स इमेवाहया चित्तगरसद्धी त्त्वा पत्ता धम्मिसमन्नागमा—  
 जस्स नं दुपयस्स वा चउप्पयस्स वा अपयस्स वा एगवेसमवि पासइ, तस्स नं वेसानुसारेणं तपायुह्वं  
 द्यं निरवसेइ ।

उन चित्रकारों में से एक चित्रकार को लेगी चित्रकार तन्धि (महाधारण योग्यता) तन्ध



र प्रवेश किया। प्रवेश करके हाव, भाव, विलास और विम्बोक से युक्त रूपों (चित्रों) को ता-देखता जहाँ विदेह की थोँठ राजकन्या मल्ली का, उसी के अनुरूप चित्र बना था, उसी ओर लगा।

उस समय मल्लदिन्न कुमार ने विदेह की उत्तम राजकुमारी मल्ली का, उसके अनुरूप बना चित्र देखा। देख कर उसे इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ—‘अरे, यह तो विदेहवर-राजकन्या तो है!’ यह विचार धाते ही वह लज्जित हो गया, झोड़ित हो गया और व्यदित हो गया, यद्यत् प्रत्यन्त लज्जा उत्पन्न हुई। अतएव वह धीरे-धीरे वहाँ से हट गया—पीछे लौट गया।

१०१—तए नं मल्लदिन्नं भ्रमभाई पञ्चोत्सवकत पातित्ता एवं वयासी—‘कि नं तुमं पुता ! जए बीडिए विप्रदे सणियं सणियं पञ्चोत्सवकद् ?’

तए नं से मल्लदिन्ने भ्रमभाइ एवं वयासी—‘जुत्त नं भ्रमो ! मम जेट्ठाए भगिणीए वभूयाए लज्जनिज्जाए मम चित्तगरणिम्बत्तिय सभ भणपवित्तिए ?’

तत्पश्चात् हटते हुए मल्लदिन्न को देख कर धाय माता ने कहा—‘हे पुत्र ! तुम लज्जित, त ओर व्यदित होकर धीरे-धीरे हट क्यों रहे हो ?’

तब मल्लदिन्न ने धाय माता से इस प्रकार कहा—‘माता ! मेरी गुरु और देवता के समान भगिनी के, जिससे मुझे लज्जित होना चाहिए, सामने, विचकारो की बनाई इस सभा में प्रवेश का क्या योग्य है ?’

१०२—तए न भ्रमभाई मल्लदिन्न कुमारं एव वयासी—‘नो खलु पुता ! एत मल्ली हुवरामकन्या चित्तगरणं तयाभूत्ते रुके निवत्तिए ।

तए नं मल्लदिन्ने कुमारे भ्रमभाईए एयमट्ठ सोच्चा जितम्म धामुत्ते एवं वयासी—‘केसो ! चित्तगरणं अपरिधयपरिधिए जाव [वुरंतपतलक्खणं होणपुण्ण-वाउड्हिए तिरि-हिरि-दिह-त-]परिवज्जिए जेण मम जेट्ठाए भगिणीए गुरुदेवपभूयाए जाव निवत्तिए ? त्त कट्ठु तं चित्तगरं हं भाणवेइ ।

धाय माता ने मल्लदिन्न कुमार से इस प्रकार कहा—‘हे पुत्र ! निश्चय ही यह साक्षात् विदेह उत्तम कुमारी मल्ली नहीं है किन्तु विचकार ने उसके अनुरूप (हवह) चित्रित की है—उसका बनाया है।

तब मल्लदिन्न कुमार धाय माता के इस कथन को सुन कर ओर हृदय में धारण करके इस क्रुद्ध हो उठा और बोला—‘कौन है वह विचकार मीठ की इच्छा करने वाला, यावत् पधणी, हीन काली चतुर्दशों का जन्मा एव लज्जा बुद्धि आदि से रहित] जिसने गुरु और देवता के मन मेरी अपेक्ष भगिनी का यावत् यह चित्र बनाया है ? इस प्रकार कह कर उसने विचकार का करने की आज्ञा दे दी।

१०३—तए नं सा चित्तगरसेणो इमीत्ते कहाए लट्ठु समाणा जेणैव मल्लदिन्ने कुमारे व उवागच्छइ । उवागच्चित्ता करयत्तपरिगहियं जाव वट्ठावेइ, वट्ठावित्ता एवं वयासी—

‘एवं खलु सामो ! तस्स चित्तगरस्स इमेदारुवा चित्तगरलट्ठो लट्ठा पत्ता भवित्तमन्नायया,

प्रसन्नं पुण्यरसं या जायते निश्च्युतेति, तं मां नं सामी ! तुभ्यं तं चित्तगरं वज्रं प्राणवेह । तं नं सामी ! तस्त्वं चित्तगररसं श्रुत्वा तयापुनश्च वज्रं निश्च्युतेह ।'

तत्पश्चान् चित्रकारो को वह श्रेणी इम कथा-वृत्तान्त को सुनकर मोर समझ कर र. मन्दिन कुमार था वही भाई । भाकर दोनों हाथ जोड़ कर यावत् मस्तक पर अर्पित करके सु. को प्रार्थना । वधा कर इम प्रकार कहा —

स्वामिन् ! निश्चय ही उस चित्रकार को इस प्रकार की चित्रकारी लब्धि लब्ध हुई, प्राण !  
 जो प्रभुत्व में घाई है कि वह जिस किसी द्विपद प्रादि के एक अवयव को देखता है, प्राण ! वह उसे  
 भाग्य ही प्राप्त करना देना है। अतएव हे स्वामिन् ! आप उस चित्रकार के वष को प्राप्त न  
 हो जाय । हे स्वामिन् ! आप उम चित्रकार को कोई दूसरा योग्य दंड दे दीजिए ।

१०८-तत्पुं सं ते मस्तदिग्ने तस्स चित्तगरस्स संडासगं छिवावेइ, निविसयं धामोइ ।  
 ते तत्पुं च चित्तगरं मस्तदिग्नेणं निविसयं ध्याणत्ते समाणे सभंठमत्तोवगरणमायाए मिहित्तो  
 मयरीओ चित्तउमइ, चित्तचित्ता त्रिवेहं जणययं मज्झमज्झणं जेणव हृत्थिणाउरे नउरे, जेव  
 क्काउमवत्, जेव च चलोममत्तु राया, तेणव उयागउमइ, उयागचित्ता भंउनिवयेयं करेइ, करित्त चित्त-  
 चणत्त मउमइ, मउचित्ता मज्झोत्तु त्रिवेहारायवरकम्मणाए पायंमुत्तुणुत्तारेणं कयं निविसयेइ, निविसित्त  
 चणत्तमवत्तु पुत्तइ, पुत्तमइत्ता मत्ताय जाय पात्तुं मेणइ, मेणित्ता हृत्थिणापुरं मयरे मज्झमज्झण  
 जेव च चलोममत्तु राया तेणव उयागउमइ । उयागचित्ता तं करयत्त जाय यत्तावेइ, यत्ताचित्ता पात्तुं  
 उमवइ, उचित्ता चित्त चित्तु तामो । मिहित्तामो रायहाणीओ कम्मणस्स रण्णो पुत्तेण पमाउरे  
 इति च ॥ १०८ ॥ चित्तचित्तेणं मज्झोत्तु निविसयं ध्याणत्ते समाणे इह हृत्थिमायाए, तं इत्थामि च तामो ।  
 पुत्त च पुत्तः उचित्तचित्तु मत्ताय चित्तचित्तु ।

उपरोक्त विवरणों के आधार पर निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं—

[illegible]

• • • • •

की घाजा दी, इस कारण मैं सोचा यही घाया है । हे स्वामिन् ! घापकी बाहुओं की छाया में परिगृहीत होकर यावत् मैं यहीं वनना चाहता हूँ ।

१०५—तए नं से घदीनसत्तू राया तं चित्तगरदारयं एवं वयासी—'किं नं तुमं देवानुप्रिया ! मल्लदिग्नेनं निम्बिसए घाणत्ते ?'

तत्पश्चात् घदीनसत्तू ने चित्रकारपुत्र ने इन प्रकार कहा—'देवानुप्रिय ! मल्लदिग्ने कुमार ने मुझें किस कारण देग-निर्वासन की घाजा दी ?'

१०६—तए नं से चित्तगरदारए घदीनसत्तराय एवं वयासी—'एवं सत्तु तामो ! मल्लदिग्ने कुमारे घण्णया कयाई चित्तगरसेणि सहावेइ, सहावित्ता एवं वयासी—'तुम्हे न देवानुप्रिया ! मम चित्तसभं' तं ज्ञेयं सभं भाणियस्व, जाअ मम सहासयं दिशवेइ, दिशवित्ता निम्बिसयं घाणवेइ, तं एवं सत्तु तामो ! मल्लदिग्नेनं कुमारेणं निम्बिसए घाणत्ते ।'

तत्पश्चात् चित्रकारपुत्र ने घदीनसत्तू राजा ने कहा—'हे स्वामिन् ! मल्लदिग्ने कुमार ने एक बार किसी समय चित्रकारों की श्रेणी को बुला कर इन प्रकार कहा था—'हे देवानुप्रियो ! तुम मेरी चित्रमभा को चित्रित करो,' इत्यादि मय वृत्तान्त पूर्ववत् बहना चाहिए, यावत् कुमार ने मेरा सहासक कटवा लिया । कटवा कर देग-निर्वासन की घाजा दे दी । इन प्रकार हे स्वामिन् ! मल्लदिग्ने कुमार ने मुझे देग-निर्वासन की घाजा दी है ।'

१०७—तए नं घदीनसत्तू राया तं चित्तगरं एवं वयासी—'ते केरिसए नं देवानुप्रिया ! तुमे मल्लीए तदाणुक्खे क्वे निम्बिसिए ?'

तए नं से चित्तगरं कसत्तरायो चित्तकलमं धोणंइ, धीवित्ता घदीनसत्तू स उवणंइ, उवणित्ता एवं वयासी—'एव नं तामो ! मल्लीए विदेहरायवरकम्माए तयाणुक्खस्स क्वस्स केइ भागार-भाव-पडोयारे निम्बिसिए, को सत्तु सक्का केणइ देवण वा जाव [वाणवेण वा जक्खेण वा रक्खसेण वा किन्नरेण वा द्विपुरिसेण वा महोरसेण वा ययस्सेण वा] मल्लीए विदेहरायवरकम्माए तयाणुक्खे क्वे निम्बिसिए ।'

तत्पश्चात् घदीनसत्तू राजा ने उस चित्रकार से इन प्रकार कहा—'देवानुप्रिय ! तुमने मल्ली कुमारी का उमकं मनुष्य चित्र कंठा बनाया था ?'

तय चित्रकार ने अपनी कंठ में से चित्रफलक निकाला । निकाल कर घदीनसत्तू राजा के पास रख दिया और रग कर कहा—'हे स्वामिन् ! विदेहराज की श्रेष्ठ कन्या मल्ली का उमकी के मनुष्य यह चित्र मैंने कुछ भाकार, भाव और प्रतिबिम्ब के रूप में चित्रित किया है । विदेहराज की श्रेष्ठ कुमारी मल्ली का द्विवह रूप तो कोई देव, [यश, राघव, किन्नर, किम्बुरूप, महोरग तथा गंधर्व] भी चित्रित नहीं कर सकता ।

१०८—तए नं घदीनसत्तू राया पडिक्खजणिघहासे दूयं सहावेइ, सहावित्ता एवं वयासी—'तदेव जाव पहारेय मण्णए ।'

तत्पश्चात् त्रिव को देवदत्त हूँ उन्मत्त हूँ के कारण धरोनगत् राजा ने तू को बुलाया। बुला कर इस प्रकार कहा - (अने निम्न मन्त्री कृपा को मंगनी करने के लिए हुए भेजा) इन्हीं सब वृत्तान्त पृथक् कहना चाहिए। या तू इन मिथिना जाने के लिए राजा हो गया।

राजा जितशत्रु

१०६—तेण कालेण तेणं समणं पंचाने जगत्तु. कविस्से पुरे नगरे होत्था। तत्त्व जियसत्तु, णामं राया होत्था पंचात्ताहिचई। तस्स णं जियसत्तुस्स धारिणीपामोसं बैविस्सं सोरोहे होत्था।

उस काल और उस समय में पंचाननामक जनपद में काम्पित्यपुरनामक नगर था। वही जितशत्रु नामक राजा था, वही पंचाल देश का अधिपति था। उस जितशत्रु राजा के प्रान्तपुर में एक हजार रानियाँ थी।

११०—तए णं मिहिलाए चोवला नामं परिष्वाइया रिउम्भेय जाय [यजुम्भेय-सामवेय-प्रह्वणयेय-इतिहासपंचमाणं निधंदुद्युदाणं सगोर्वगाणं सरत्तसाणं चउण्हं देवाणं सारगा जाय इमण-एसु सुपरिणिट्ठिया] यावि होत्था।

तए णं सा चोवला परिष्वाइया मिहिलाए यहुणं राईसर जाय सत्यवाहपनिईणं पुरमो वाणधम्मं च सोयधम्मं च तित्था नित्थेयं च प्रायवेमाणो पणवेमाणो पक्खेमाणो उवदंसेमाणो बिहरइ।

मिथिला नगरी में चोवला (चोला) नामक परित्राजिका रहती थी। वह चोवला परित्राजिका मिथिला नगरी में बहुत-से राजा, ईश्वर (ऐश्वर्यशाली धनाढ्य या युवराज) यावत् सावंधाह प्रादि के सामने दानधर्म, दौचधर्म, और तीर्थस्नान का कथन करती, प्रज्ञापना करती, प्ररूपण करती और उपदेश करती हुई रहती थी।

१११—तए ण सा चोवला परिष्वाइया अन्नया कवाई तिदंडं च कुंइयं च जाय पाउरत्तापो य गिण्हइ, गिण्हत्ता परिष्वाइयायसहाओ पडिणिक्खपइ, पडिणिक्खमिता पविरत्तपरिष्वाइया सई संपरिष्वा मिहितं रायहाणि मज्झमज्झेण जेणो कुंभगस्स रण्णो भवणे, जेणो कण्णतेउरे, जेणो मल्लो विदेहरायकन्ना, तेणो उवागच्छइ। उवागच्छिता उदयपरिकातिपाए, बम्भोयार पवत्तु माए निसियाए निसीयति, निसीइत्ता मस्तीए विदेहरायवरकन्नाए पुरमो वाणधम्मं च जाय बिहरइ।

तत्पश्चात् एक बार किसी समय वह चोवला परित्राजिका त्रिदण्ड, कुंडिका यावत् धातु (मैरु) में रंगे वस्त्र लेकर परित्राजिकाओं के मठ से बाहर निकली। निकल कर थोड़ी परित्राजिकाओं से घिरी हुई मिथिला राजधानी के मध्य में होकर जहाँ कुम्भ राजा का भवन था, जहाँ कन्याओं का प्रान्तपुर था और जहाँ विदेह की उत्तम राजकन्या मस्ती थी, वहाँ आई। प्राकर भूमि पर पानी छिड़का, उस पर दाब बिछाया और उस पर आसन रख कर बैठी। बैठ कर विदेहवराजकन्या मल्लो के सामने दानधर्म, दौचधर्म, तीर्थस्नान का उपदेश देती हुई विचरने लगी—उपदेश देने लगी।



भाटवा अध्यायन : मल्ली ]

११२—तए न सा मल्ली विदेहरायवरकन्ता चोखलं परिखाइय एवं वयासी  
 चोरखे ! किमूलए धम्मे पन्नते ?  
 तए नं सा चोखता परिखाइया मल्लि विदेहरायवरकन्त एवं वयासी—अहं नं देव  
 सोयमूलए धम्मे पण्णवेमि, ज नं अहं किचि अमुई भवइ, तं उवएण य मट्टियाए य जाव  
 सयं गच्छामो ।’

तव विदेहराजवरकन्ता मल्ली ने चौकता परिव्राजिका से पूछा—‘चौकता ! तुम  
 का मूल क्या कहा गया है ?’

तव चौकता परिव्राजिका ने विदेहराज-वरकन्ता मल्ली को उत्तर दिया—‘देवानुप्रि  
 गोचमूलक धर्म का उपदेश करती हूँ । हमारे मत में जो कोई भी वस्तु अमुचि होती है, उसे  
 गिर मिट्टी से छुड़ किया जाता है, यावन् [पानी में धोया जाता है, ऐसा करने से अमुचि दूर  
 चि हो जाती है । इस प्रकार जीव जन्माभिपेक से पवित्र हो जाते हैं ।] इस धर्म का पालन क  
 र निविघ्न स्वर्ग जाते हैं ।’

११३—तए नं मल्ली विदेहरायवरकन्ता चोखलं परिखाइय एवं वयासी—‘चोखला  
 नामए केइ पुरिते रहिरकथं वत्थ रहिरेण चंय घोवेग्गा, अरिय न चोखला ! तत्स रहिरक  
 यवत्स रहिरेण घोवमाणत्स काई सोहो ?’  
 ‘णो इणट्ठे समट्ठे ।’

तत्पश्चात् विदेहराजवरकन्ता मल्ली ने चौकता परिव्राजिका से कहा—‘चौकता ! ज  
 कोई अमुक नामधारी पुरुष रुधिर से निम्न वस्त्र को रुधिर से ही धोवे, तो हे चौकता ! उस रुधि  
 निम्न और रुधिर में ही धोये जाने वाले वस्त्र की कुछ शुद्धि होती है ?’

परिव्राजिका ने उत्तर दिया—‘नहीं, यह अर्थ समय नहीं, अर्थात् ऐसा नहीं हो सकता ।’

११४—‘एयामेव चोखला ! तुम्हे न पाणाइवाएणं जाव<sup>१</sup> विच्छादसणत्तेणं नरिय काई  
 ही, जहा व तत्स रहिरकपत्स वत्थत्स रहिरेण घोवमाणत्स ।’

मल्ली ने कहा—‘इसी प्रकार चौकता ! तुम्हारे मत में प्राणान्तिपात (हिंसा) से यावत्  
 न्यायार्गमशक्य से अर्थात् भठारह पापों के सेवन का निषेध न होने से कोई शुद्धि नहीं है, जैसे  
 र से निम्न और रुधिर से ही धोये जाने वाले वस्त्र की कोई शुद्धि नहीं होती ।’

११५—तए नं सा चोखला परिखाइया मल्लीए विदेहरायवरकन्ताए एवं वत्ता समाणा  
 रा कतिया विइगिच्छिया भेयसमावणा जाया यावि होत्या । मल्लीए णो सचाएइ किचिवि  
 .....समाइविखतए, तुत्तिणीया संचिट्ठइ ।

तत्पश्चात् विदेहराजवरकन्ता मल्ली के ऐसा कहने पर उस चौकता परिव्राजिका को शका  
 उत्पन्न हुई, काक्षा (अन्य धर्म की आकांक्षा) हुई और विचिकित्सा (अपने धर्म के फल में शका) हुई



जहाँ जितनू राजा था, वहाँ पाई । पाकर भीतर प्रवेश किया । प्रवेश करके जय-विजय के शब्दों में जितनू का अभिनन्दन किया—उगे वधायी ।

उग समय जितनू राजा ने चोखा परित्राजिका को छाते देगा । देतकर सिंहासन से उठा । उठकर चोखा परित्राजिका का मन्दार किया । मन्मात किया । सत्कार-सन्मान करके ध्यान के लिए निमग्न किया—बैठने को आसन दिया ।

११८—तए नं सा चोखा उदगपरिक्कासियाए जाय [रत्नोवरि पञ्चापुपाए] भित्तियाए निविसइ, जियसत्तु रायं रउजे य जाय [रट्टे य कोसे य कोट्टाणारे य बसे य वाहुणं य पुरे य] छतेउरे य हुसलोवंतं पुषइइ । तए नं सा चोखा जियसत्तुम् रण्णे वाणपम्मं य जाय' विहरइ ।

तत्पश्चात् यह चोखा परित्राजिका जल छिड़कर शयन शाल पर बिछाए अपने पासन पर बैठी । फिर उसने जितनू राजा, पात्र [राष्ट्र, कोम, कौठार, बल, वाहन, पुर तथा] धन्त-पुर के कृपल-समाचार पूछे । इसके बाद चोखा ने जितनू राजा को दानधर्म आदि का उपदेश दिया ।

११९—तए नं ते जियसत्तु छप्पणी ओरोहंति जाय विम्हिए चोखं परिक्काइयं एवं वधामी—'तुमं नं देवानुप्पिया । वट्ठणि मामागर जाय अइसि, वट्ठण य राईसरनिहाइं वणुपविसिंति, तं परिययाइं ते कम्म वि रण्णे वा जाय [ईसरइस वा कहिहि] एरितए ओरोहे विट्ठपुब्बे जारिसए नं इमे मह उचरोहे ?'

तत्पश्चात् यह जितनू राजा अपने रत्नाल मे अर्पण रत्नवाय की रानियों के सौन्दर्य आदि में विस्मयगुक्त था, (अपने धन्त-पुर की सर्वोत्कृष्ट मानता था) मत. उसने चोखा परित्राजिका से पूछा—'हे देवानुप्पिये ! तुम बहुत-से गाथा, भाकरों आदि में मायत्तु पर्यटन करती हो और बहुत-से राजाओं एवं ईश्वरों के धरो में प्रवेश करती हो तो कही किसी भी राजा आदि का ऐसा धन्त-पुर तुमने कभी पहले देखा है, जैसा मेरा यह धन्त पुर है ?'

१२०—तए नं सा चोखा परिक्काइया जियसत्तु जा एवं वृत्ता समानी ईसि अयहसियं करइ, करिसा एवं वधामी—'एवं य तरितए नं तुमे देवानुप्पिया ! तइस अगइइइइइइइ ।'

'केस नं देवानुप्पिए ! ते अगइइइइइइइ ?'

'जियसत्तु ! ते जहानामए अगइइइइइइइ सिया, ते न तए जाए तएय वट्ठे, अण्णं अगइं वा तसामं वा इहं वा सरं वा सागरं वा अयासमाने एवं अण्णइ—'अयं खेव अगइं वा जाय सागरे वा ।'

तए नं तं कूयं अण्णं सामुदए वट्ठुरे हव्यमागए । तए नं से कूयवट्ठुरे तं सामुदवट्ठुरं एवं वधामी—'ते केस नं तुमं देवानुप्पिया ! कत्तो वा इह हव्यमागए ?'

तए नं से सामुदए वट्ठुरे तं कूयवट्ठुरं एवं वधामी—'एवं सत्तु देवानुप्पिया ! अहं सामुदए वट्ठुरे ।'

तए नं से कूयवट्ठुरे तं सामुदयं वट्ठुरं एवं वधामी—'केयहासए नं देवानुप्पिया ! ते समुद्रे ?'

तए णं से सामुद्दए बबुदुरे तं कूबबबुदुरं एवं वयासी—'महालए णं देवानुप्पिया ! समुद्दे !

तए णं से कूबबबुदुरे पाएणं तीहं कडडेइ, कट्टिता एवं वयासी—'एमहालए णं देवानुप्पिया ! से समुद्दे ?'

'णो इणट्ठे समट्ठे, महालए णं से समुद्दे ।'

तए णं से कूबबबुदुरे पुरच्छिमिल्लामो तोरामो उप्पिडित्ता णं गच्छइ, गच्छित्ता एवं वयासी—  
एमहालए णं देवानुप्पिया ! से समुद्दे ?

'णो इणट्ठे समट्ठे ।' सहेव ।

तब चौखला परित्राजिका जितशत्रु राजा के इस प्रकार कहने पर थोड़ी मुस्कराई । जित  
मुस्करा कर बोली—'देवानुप्रिय ! इस प्रकार कहते हुए तुम उस कूप-मण्डूक के समान बत  
पड़ते हो ।'

जितशत्रु ने पूछा—'देवानुप्रिये ! कौन-सा वह कूपमण्डूक ?'

चौखला बोली—'जितशत्रु ! यथानामक अर्थात् कुछ भी नाम वाला एक कूप का मेंढक था  
वह मेंढक उसी कूप में उत्पन्न हुआ था, उसी में बढ़ा था । उसने दूसरा कूप, तालाब, तट, क  
अथवा समुद्र देखा नहीं था । अतएव वह मानता था कि यही कूप है और यही सागर है—इ  
सियाय और कुछ भी नहीं है ।

तत्पश्चात् किसी समय उस कूप में एक समुद्री मेंढक अचानक आ गया । तब कूप के म  
ने कहा—'देवानुप्रिय ! तुम कौन हो ? कहाँ से अचानक यहाँ आये हो ?'

तब समुद्र के मेंढक ने कूप के मेंढक से कहा—'देवानुप्रिय ! मैं समुद्र का मेंढक हूँ ।'

तब कूपमण्डूक ने समुद्रमण्डूक से कहा—'देवानुप्रिय ! वह समुद्र कितना बड़ा है ?'

तब समुद्री मण्डूक ने कूपमण्डूक से कहा—'देवानुप्रिय ! समुद्र बहुत बड़ा है ।'

तब कूपमण्डूक ने अपने पैर से एक लकीर खींची और कहा—'देवानुप्रिय ! क्या इ  
बड़ा है ?'

समुद्री मण्डूक बोला—'यह अर्धं समर्थं नहीं, अर्थात् समुद्र तो इससे बहुत बड़ा है ।'

तब कूपमण्डूक पूर्व दिशा के किनारे से उछल कर दूर गया और फिर बोला—'देवानुप्रिय !  
वह समुद्र क्या इतना बड़ा है ?

समुद्री मेंढक ने कहा—'यह अर्धं समर्थं नहीं, समुद्र तो इससे भी बड़ा है । इसी प्र  
(इसमें भी अधिक बूढ़-बूढ़ कर कूपमण्डूक ने समुद्र की विनाशिता के विषय में पूछा, मगर स  
मण्डूक हर बार उम्मी प्रकार उत्तर देता गया ।)

१२१—एवामेव तुभं पि त्रियसत्तु ! अग्नेति बहूणं राईतर जाय सत्ययाहपनिर्णिं नय  
मनिनि वा पुं वा मुहं वा प्रपाममाणे जाणेमि—आरितए मम चेव नं घोरोहे तारितए णो प्रप  
त एव समु त्रियसत्तु ! मिहिताए नयरोए कुंमगस पया पनावईए सत्तया मत्तो नामं दिओ

देवकन्ता या जारिसिया मल्ली । विदेहवररायकणाए छिण्णस्त वि पायंगुदुगस्त  
सयसहस्रसहस्रं पि कत्तं न भग्यइ ति कट्टु जामेव दिसं पाउभूया तामेव दिसं पडिगया ।  
‘इसी प्रकार हे जितसन् । हमारे बहुत ने राजाओं एव ईश्वरो यावत् साय  
पत्नी, भगिनी, पुत्री भयवा पुत्रवधू तुमने देती नहीं । इसी कारण समझते हो कि  
मन्तःपुर है, वंसा दूसरे का नहीं है । हे जितसन् । मिथिला नगरी में कुम्भ राजा क  
प्रभावती की आत्मजा मल्ली नाम की कुमारी रूप और जीवन में तथा लावण्य में जैसे  
उत्कृष्ट शरीर वाली है, वंसी दूसरी कोई देवकन्या वर्गह भी नहीं है । विदेहराज की  
के काटे हुए पंर के अगुल के लाखवे अक्ष के बराबर भी तुम्हारा यह भ्रम  
है ।’ इस प्रकार कह कर वह परिव्राजिका जिम दिना से प्रकट हुई थी—घाई थी, उ  
लौट गई ।

१२२—तए नं जियसत्तू परिम्वाइयाजनिगहासे दूयं सहावेइ, सदाविस्ता जा  
मणाए ।

तत्पश्चान् परिप्राजिका के द्वारा उत्पन्न किये गये हर्ष वाले राजा जितसन्  
गाया । बुलाकर पहले के समान ही सब कहा । यावन् वह दूत मिथिला जाने के लिए  
गा ।

निवेदन—इस प्रकार मल्ली कुमारी के पूर्वभ्रम के साथी छोड़ो राजाओं ने अपने-अ  
कुमारी की भगिनी करने के लिए अपने-अपने दूत रवाना किये ।  
दूतों का सर्वेक्षण

१२३—तए नं तेसि जियसत्तू पामोक्खान धण्हं राईणं दूया जेणेव मिहिला तेणेव प  
गमणाए ।  
इस प्रकार उन जितसन् प्रभृति छोड़ो राजाओं के दूत, जहाँ मिथिला नगरी थी वहाँ जा  
लिए रवाना हो गये ।

१२४—तए नं छप्पि य दूयगा जेणेव मिहिला तेणेव उवागच्छति, उवागच्छिता मिहि  
मगुग्गमाणि पत्तयं पत्तयं संघावारनिवेस करेति, करिता मिहितं रायहाणि मणुपविसंति ।  
पविसिन्ता जेणेव कुम्भए राया तेणेव उवागच्छति, उवागच्छिता पत्तयं पत्तयं करयत्तं परिग  
राणं साणं राईणं वयणाई निवेदेति ।

तत्पश्चान् उहाँ दूत जहाँ मिथिला थी, वहाँ आये । आकर मिथिला के प्रधान उद्यान में त  
मलग-मलग पड़ाव डाले । फिर मिथिला राजधानी में प्रवेश किया । प्रवेश करके कुम्भ राजा  
स आये । आकर प्रत्येक-प्रत्येक ने दोनों हाथ जोड़े और अपने-अपने राजाओं के वचन निवेद  
ये—सन्देश कहे । (मल्ली कुमारी की माँग की) ।

कुम्भ राजा उन दूतों से यह बात सुनकर एकदम क्रुद्ध हो गया। [छट् घोर आ  
दात पीसते हुए] यावत् सलाह पर तीन मन डाल कर उसने कहा—'मे तुम्हें (छट् घोर  
राजा को) विदेहराज की उत्तम कन्या मल्ली नहीं देता।' ऐसा कह कर छहों दूतों का सम्मान न करके उन्हें पीछे के द्वार से निकाल दिया।

कुम्भ राजा उन दूतों से यह बात सुनकर एकदम क्रुद्ध हो गया। [छट् घोर आ  
दात पीसते हुए] यावत् सलाह पर तीन मन डाल कर उसने कहा—'मे तुम्हें (छट् घोर  
राजा को) विदेहराज की उत्तम कन्या मल्ली नहीं देता।' ऐसा कह कर छहों दूतों का सम्मान न करके उन्हें पीछे के द्वार से निकाल दिया।

१२६—तए णं जियसत्तुपामोवत्ताणं छण्हं राईणं वूया कुंभएणं राणा इनां  
असम्मानिया अयदारेणं निच्छुमावेइ, तं न वेइ णं सामी ! कुंभए राया मल्लि विदेहराज  
जेनेव सगा सगा रायाणो तेनेव उवागच्छंति । उवागच्छता करपसपरिगहिं एवं वयासो—

कुम्भ राजा के द्वारा असत्कारित, असम्मानित और अपद्वार (पिछले द्वार) में निकल  
छहों राजाओं के दूत जहाँ अपने-अपने जनपद थे, जहाँ अपने-अपने नगर थे और जहाँ अपने  
राजा थे, वहाँ पहुँचे। पहुँच कर हाथ जोड़ कर एवं मस्तक पर अंजलि करके इस प्रकार बतूने स—

१२७—एव एतु सामी ! अहं जियसत्तुपामोवत्ताणं छण्हं राईणं वूया जमगसमं वेइ  
मिहिला जाय अयदारेणं निच्छुमावेइ, तं न वेइ णं सामी ! कुंभए राया मल्लि विदेहराज  
साण साणं राईणं एयमदं निवेवंति ।

'इस प्रकार हे स्वामिन् ! हम जितयानु बगैरह छह राजाओं के दूत एक ही साथ  
मिथिला नगरी थी, वहाँ पहुँचे। मगर यावत् राजा कुम्भ ने सत्कार-सम्मान न करके हमें अपद्वार  
निकाल दिया। सो हे स्वामिन् ! कुम्भ राजा विदेहराजवरकन्या मल्ली आप को नहीं देता।' दूतों  
अपने-अपने राजाओं से यह अर्थ-वृत्तान्त निवेदन किया।

पुत्र की तयारी

१२८—तए ण ते जियसत्तुपामोवत्ता छप्पि रायाणो तेति वूयाणं अंतिए एयमदं तोव  
निसम्म प्रागुत्ता अणमण्णस वूमसपेत्तं करेति, करिस्ता एवं वयासो :—

'एवं एतु देवान्पिया ! अहं कुंभराज जत्त' (जुत्त) नेहिस्तए' ति कट्ठु अणमण्णस एयमदं  
देवान्पिया ! अहं कुंभराज जत्त' (जुत्त) नेहिस्तए' ति कट्ठु अणमण्णस एयमदं  
परिगुत्ता आया सण्णता हसियसपरमया सकोरंटमल्लदामे' छत्तेणं परिज्जमाने  
चामराहि बोइज्जमाना महयाहय-गय-रह-परजोह-कलियाए' छत्तेणं परिज्जमाने  
सध्वोए जाय बुद्धिनाइपरवेण सएहि नगरेहितो निगमः' छत्तेणं परिज्जमाने  
मिताइता जेनेव मिहिला तेनेव पहारेव गमणाए ।

तत्पश्चात् वे जितशत्रु बगैरह छोड़ो राजा उन दूतों ने इस प्रथम को मुनक  
एकदम कुपित हुए । उन्होंने एक दूतों के पास दूत भेजे और इस प्रकार कहाया-  
हम छोड़ो राजाओं के दूत एक साथ ही (मिथिला नगरी में पहुँचे और प्रपमानित  
निष्ठात दिये गये । प्रपण्ड है देवानुग्रिय । हम लोगों को कुम्भ राजा की ओर प्रया  
करना) चाहिए ।' इस प्रकार वह कर उन्होंने एक दूतों की बात स्वीकार की । स्वी  
क्रिया (वस्त्रादि धारण किये) सप्रद हुए धर्मान् कवच प्रादि पहन कर तैयार हुए ।  
पर प्रारुत हुए । कोरट वृद्ध के पूता की माला वाला छत्र धारण किया । श्वेत चाम  
जाने लगे । बड़े-बड़े घोड़े, हाथिया, रथों और उत्तम योद्धाओं सहित चतुरगिणी से  
होकर, गवें श्रद्धि के साथ, यावत् दुर्दुर्भिन बो शत्रु के साथ प्रपने-प्रपने नगरों में निक  
एक जगह इकट्ठे हुए । इकट्ठे होकर जहाँ मिथिला नगरी थी, वहाँ जाने के लिए तैयार

१२६-तए नं कुम्भए राया इमीसे कहाए सङ्गठे समाने बलवाज्यं सहावे  
बं शयासो-‘सिप्पामेव भो देवानुप्पिया । हयगयरहपयरजोहकलियं’ सेण सन्ना  
। चरिणंति ।

तत्पश्चात् कुम्भ राजा ने इस कथा का प्रथम जान कर धर्मान् छोड़ राजाओं की  
‘तार जान कर प्रपने सैनिक कर्मचारी (सेनापति) को बुलाया । बुला कर कहा-‘हैं दे  
प्र ही घोड़े, हाथियों, रथों और उत्तम योद्धाओं से युक्त चतुरगिणी सेना तैयार करो  
‘पति ने सेना तैयार करके आज्ञा वापिस लौटाई धर्मान् के’ तैयार हो जाने की सूचना

१२७-तए नं कुम्भए राया कहाए सण्णउं हसिपत्तं पवरगए सकोरेंडमस्तवामे  
। जमानेणं सेयवरचामराहि [वीइजमाने-महया हय-सय-रह-पवरजोहकलियाए सेव  
। मुदे सप्पिणीए जाव दुर्दुर्भिनाइयरवेण] मिहितं रायहाणि मग्गंमग्गं वि  
सिद्धता विरेहं जणवयं मग्गंमग्गं जेणैव देसपत्ते तेणैव उवागच्छइ, उवागच्छिता व  
करेइ, करिता नियसत्तु पामोवसा छप्पि य रायाणो पडिवालेमाने जुग्गसज्जे पडिचिह्ण

तत्पश्चात् कुम्भ राजा ने स्नान किया । कवच धारण करके सप्रद हुआ । श्वेत छत्र  
पर प्रारुत हुआ । कोरट के पूता की माला वाला छत्र धारण किया । उसके ऊपर श्वेत  
श्वेत चामर बोरे जाने लगे । यावत् [विधान घोड़े, हाथियों, रथों एवं उत्तम योद्धाओं से  
चतुरगिणी सेना के साथ पूरे ठाठ के साथ एवं दुर्दुर्भिननाद के साथ] मिथिला राजधानी के म  
होकर निकला । निकल कर विदेह जनपद के मध्य में होकर जहाँ प्रपने देस का प्रन्त (सीमा-  
था, वहाँ प्राया । भाकर वहाँ पड़ाव डाला । पड़ाव डाल कर जितशत्रु प्रभृति छोड़ो राजाप्र  
प्रतीक्षा करता हुआ, युद्ध के लिए मज्ज होकर ठहर गया ।

पुत्र प्रारम्भ

१२८-तए नं ते त्रियसत्तु पामोवसा छप्पि य रायाणो जेणैव कुम्भए तेणैव उवागच्छ  
उवागच्छिता कुम्भएणं रण्णा सद्धिं संपत्तया यावि होस्या ।

तत्पश्चात् ते जितशत्रु प्रभृति छद्मो राजा, जहाँ कुम्भ राजा था, वहाँ मा पहुँचे। प्राज्ञ  
कुम्भ राजा के साथ युद्ध करने में प्रयत्न हो गये—युद्ध छिड़ गया।

कुम्भ भी पराजय

१३२—तए नं ते जियसत्तुपामोवत्ता छप्पि रायाणो कुंमयं रायं हय-महिप-पवरवोरपा-  
निवडिय-चिधद्वय-प्पडाणं किच्छप्पाणोवगयं विसो विसि पडिसेहिति।

तए नं ते कुंमए राया जियसत्तुपामोवत्तेहि छहि राईहि हयमहिप जाय पडिसेहिए समाने  
प्रस्थामे प्रचले प्रवोरिए जाय [अपुरिसवकार-परवक्रमे] प्रधारणिज्जमिति कट्टु सिधं तुरियं जा  
[धवलं चंडं जडणं] वेइयं जेणेय मिहिला नयरी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता मिहित प्रणुपविमइ,  
प्रणुपविसित्ता मिहिलाए दुयाराइं पिहेइ, पिहित्ता रोहसज्जे चिट्ठइ।

तत्पश्चात् उन जितशत्रु प्रभृति छद्मों राजाओं ने कुम्भ राजा का हनन किया अर्थात् उसके  
सैन्य का हनन किया, मथन किया अर्थात् मान का मदन किया, उसके मनुजुत्तम योद्धाओं का पान  
किया, उसकी चिह्न रूप ध्वजा और पताका को छिन्न-भिन्न करके नीचे गिरा दिया। उसके प्राण  
संकट में पड़ गये। उसकी सेना चारों दिशाओं में भाग निकली।

तब वह कुम्भ राजा जितशत्रु आदि छद्म राजाओं के द्वारा हत, मानमंदित यावत् जिसकी  
सेना चारों ओर भाग खड़ी हुई है ऐसा होकर, सामध्यंहीन, बलहीन, पुरुषार्थ-पराक्रमहीन, स्वरा के  
साथ, यावत् [तेजी से, जल्दी-जल्दी एव] वेग के साथ जहाँ मिथिला नगरी थी, वहाँ आया। मिथिला  
नगरी में प्रविष्ट हुआ और प्रविष्ट होकर उसने मिथिला के द्वार बन्द कर लिये। द्वार बन्द करके इन्ने  
का रोध करने में सज्ज होकर ठहरा—किले की रक्षा करने के लिए तैयार हो गया।

मिथिला का घेराव

१३३—तए नं ते जियसत्तुपामोवत्ता छप्पि रायाणो जेणेव मिहिला तेणेव उवागच्छति,  
उवागच्छिता मिहिलं रायहाणि निस्संचारं निरुच्चारं सम्बभो समंता ओवंमिता नं चिट्ठंति।

तए नं कुंमए राया मिहिलं रायहाणि इदं जाणित्ता अरुभंतरियाए उवट्ठाणसात्ताए सीहाण  
यरगए तेसि जियसत्तुपामोवत्ताणं छहं राईणं छिट्ठाणि य विवरणि य मम्मणि य अलममाणे बहूहि  
आएहि य उपाएहि य उप्पित्तिमाहि य ४ बुद्धीहि परिणामेमाणे परिणामेमाणे किंचि प्रायं ॥ उवा  
या अलममाणे ओहयमणसंकपे जाव [करयत्तपत्तयमुहे अट्टउभाणोवगए] भियायइ।

तत्पश्चात् जितशत्रु प्रभृति छद्मों नरेश जहाँ मिथिला नगरी थी, वहाँ आये। आकर मिथिल  
राजधानी को मनुष्यों के गमनागमन से रहित कर दिया, यहाँ तक कि कोट के ऊपर से भी आवागमन  
रोक दिया अथवा मज त्यागने के लिए भी आना-जाना रोक दिया। उन्होंने नगरी को चारों ओर  
घेर लिया।

तत्पश्चात् कुम्भ राजा मिथिला राजधानी को घिरी जान कर आभ्यन्तर उपस्थानपात्र  
(प्रन्दर की सभा) में श्रेष्ठ सिंहासन पर बैठा। वह जितशत्रु आदि छद्मों राजाओं के छिद्रों को, विवर  
को घोर मर्म को वा नहीं सका। अतएव बहुत से आधो (यत्नों) से, उपायों से, तथा मोत्यत्तिकी प्राप्ति  
प्राप्त प्रकार की बुद्धि से विचार करते-करते कोई भी आया या उपाय न पा सका। तब उसके मन



मकल्य शोण हो गया, यावत् वह हथेली पर मुग रगछर भातं ध्यान करने लगा—चिन्ता में डूब गया ।

मल्ली कुमारी द्वारा चिन्ता संबन्धी प्रश्न

१३४—इसमें कि जे मल्ली बिदेहरायवरकन्ना ज्हाया जाय जहाँहि लुज्जाहि परिधुडा जेणेव कुंभए राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता कुंभगत पायगहण करेइ । तए जे कुंभए राया मल्लि बिदेहरायवरकन्ने जो प्राडाइ, जो परियाणाइ, तुसिणीए लछिहुइ ।

इधर बिदेहरायवरकन्ना मल्ली ने स्नान किया, (चस्त्राभूषण धारण किये) यावत् वद्वत-सी कूकड़ा घादि दामियों से परिबृत होकर जहाँ कुंभ राजा या, वहाँ घाई । घाछर उतने कुंभ राजा के चरण ग्रहण किये-पेर धुए । तब कुंभ राजा ने बिदेहरायवरकन्ना मल्ली का आदर (स्वागत) नहीं किया, अस्वस्थ गहरी चिन्ता में व्यथित होने के कारण उसे उसका आना भी मान्य नहीं हुआ, अतएव वह भीन ही रहा ।

१३५—तए जे मल्ली बिदेहरायवरकन्ना कुंभ राय एवं बयासी—‘तुम्हे जे ताभो ! प्रणया मर्म एउजमाणे जाय’ निवेसेह, कि जे तुम्भ छउज ओहयमनसंकथे जाय<sup>१</sup> भियायह ?’

तए जे कुंभए राया मल्लि बिदेहरायवरकन्ने एयं बयासी—‘एयं सनु पुत्ता ! तब कज्जे जियसत्तुपामोखेहि छहि राईहि बूया सवेसिया, ते जे मए अलबकारिया त्राय<sup>२</sup> निबुछा । तए जे ते जियसत्तुपामोखला तेसि बूयाणं अतिए एयमठ सोच्चा परिकुविया समाणा मिहिलं रायह्राणि निरसंवारं जाय<sup>३</sup> चिहुमि । तए जे अहं पुत्ता ! तेसि जियसत्तुपामोखलाणं छहं राईणं अंतराणि अलममाणे जाय<sup>४</sup> भियामि ।

तत्पश्चात् बिदेहरायवरकन्ना मल्ली ने राजा कुंभ से इस प्रकार कहा—‘हे तात ! दूसरे समय मुझे प्राती देय कर भाप यावत् मेरा आदर करते थे, प्रसन्न होते थे, मोद में बिठलाते थे, परन्तु क्या कारण है कि आज भाप प्रवहृत मानसिक मकल्य वाले होकर चिन्ता कर रहे हैं ?’

तब राजा कुंभ ने बिदेहरायवरकन्ना मल्ली से इस प्रकार कहा—‘हे पुत्री ! इस प्रकार तुम्हारे लिए—तुम्हारी मंगनी करने के लिए जितसन्तु प्रभृति छह राजाओं ने दूत भेजे थे । मैंने उन दूतों को अपमानित करके यावत् निकतवा दिया । तब वे जितसन्तु वगैरह राजा उन दूतों से यह वृत्तान्त सुनकर कुपित हो गये । उन्होंने मिथिला राजधानी को गमनागमनहीन बना दिया है, यावत् चारो ओर घेरा डाल कर बैठे हैं । अतएव हे पुत्री ! मैं उन जितसन्तु प्रभृति वरेशों के अन्तर-दिद भादि न पाता हुआ यावत् चिन्ता में हुआ हूँ ।

चिन्तानिवारण का उपाय

१३६—तए जे सा मल्ली बिदेहरायवरकन्ना कुंभ राय एवं बयासी—‘मा जे तुम्हे ताभो ! ओहयमनसंकथे जाय भियायह, तुम्हे जे ताभो ! तेसि जियसत्तुपामोखलाणं छहं राईणं पत्तेयं पत्तेयं रहसियं दूपसपेते करेह, एयमेणं एवं बयह—‘तब वेमि मल्लि बिदेहरायवरकन्ने’ ति कटटु संभाकास-

मन्त्री तुमारी ने पूर्वभ्रम का स्मरण कराते हुए धामे कहा—‘उम प्रकार हे देवानुप्रियो ! तुम और हम उमके पक्षके के नीमरे भर में, पश्चिम महाविदेहार्ण में, गतिताली त्रिय में, कीकता नामक राजधानी में महायन आदि मानो—मित्र राजा थे । हम मातो सात जन्मे ये सार्वनाथ ही दीक्षित हुए थे ।

हे देवानुप्रियो ! उम समय इम कारण में मैंने स्त्रीनामगोत्र कर्म का उपाजन किया था—अगर तुम लोग एक उपवास करके विनरते थे, तो मैं तुम में दियाकर देता करती थी । इतनी सब वृत्तान्त पूर्ववत् समझना चाहिए ।

१४३—तए णं तुम्हे देवानुप्पिया ! कात्तमासे कात्तं हिच्चा जयंते विमाणे उवयण्णा । तस्स णं तुम्हे देवुणाइं वत्तीसाइं सागरोपमाइं ठिइं । तए णं तुम्हे तामो देवतोयामो अणंतरं चयं वत्ताइहेव जंयुहीये दीये जाव साइं साइं रज्जाइं उयसंपज्जिता णं विहरह ।

तए णं ग्रहं देवानुप्पिया ! तामो देवतोयामो आउक्कएणं जाय दादियत्ताए पच्चायाया :-

किथ तयं पम्हट्ठं, जं थ तया भो जयंत पवरम्मि ।

वृत्त्या समयनिवद्धं, वेया ! तं संमरह जाइं ॥ १ ॥

तत्पश्चात् हे देवानुप्रियो ! तुम कालमास में काल करके—यथासमय देह त्याग कर जन्म विमान में उत्पन्न हुए । वहाँ तुम्हारी कुछ कम वत्तीस सागरोपम की स्थिति हुई । तत्पश्चात् तुम उन देवलोक से अनन्तर (सीधे) शरीर त्याग करके—चय करके—इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप में उतरे हुए, यावत् अपने-अपने राज्य प्राप्त करके विचर रहे हो ।

मैं उस देवलोक से आयु का क्षय होने पर कन्या के रूप में आई हूँ—जन्मी हूँ ।

‘क्या तुम वह भूल गये ? जिस समय हे देवानुप्रियो ! तुम जयन्त नामक अनुत्तर विमान में वास करते थे ? वहाँ रहते हुए ‘हमें एक दूसरे की प्रतिबोध देना चाहिए’ ऐसा परस्पर में सकेत किया था । तो तुम उस देवभव का स्मरण करो ।’

१४४—तए णं तेति जियसत्त पामोक्कणां छुहं रायाणं मत्तोए विदेहरायवरकन्हाए अंतिए एयमट्ठं सोद्धा निस्सम्म सुभेणं परिणामेणं, पसत्थेणं अरुक्कवसाणेणं, तेसाहि विमुक्कमाणीहि, तथाव-णिज्जाणं कम्माणं यमोयसमेणं ईहा-युह-मग्गण-गवेसणं करेमाणाय सज्जिणुव्वे जाइस्सणे सप्पुप्पने । एयमट्ठं सम्मं अमित्तमागच्छंति ।

तत्पश्चात् विदेहराज की उत्तम कन्या मल्ली से पूर्वभ्रम का यह वृत्तान्त सुनने और दृश्य में धारण करने से, शुभ परिणामों, प्रसन्न अध्यवसायो, विमुक्त होती हुई लक्ष्मणों और जातिस्मरण की आच्छादिन करने वाले कर्मों के क्षयोपशम के कारण, ईहा—अपोह (सद्भूत—प्रसद्भूत धर्मों की पर्यालोचना) तथा मार्गणा और गवेसणा—विशेष विचार करने में जितना प्रभृति छोटी राजाओं की ऐसा जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ कि जिससे ये सजी अवस्था के अपने पूर्वभ्रम को देख सकें । इस ज्ञान के उत्पन्न होने पर मल्ली कुमारी द्वारा कथित अर्थ—वृत्तान्त को उन्होंने सम्यक् प्रकार से जान लिया ।



राज्य में, और अपने-अपने प्रदेशों को राज्य पर प्रविष्ट करे। प्रविष्टा कर द्वारा पुनः द्वारा वहन करने योग्य निरिच्छा पर प्राप्त होया। प्राप्त होकर भरे मणों प्राप्ति।

१४६- तए ण ते जियसत्तुपामोवणा मत्तिरस सरहमो एयमट्ठं पडिगुणंति ।

तत्पश्चात् उन जितपादु प्रभृति राजाओं ने मल्ली भरिहत् के दग धर्म (धन) हो प्रवेश किया।

१४७-तए णं मल्ली सरहा ते जियसत्तुपामोवणे गहाय जेणय कुंभए राया तेमंज ता गच्छइ । उवागच्छिता कुंभगस्त पाएसु पादेइ ।

तए णं कुभए राया ते जियसत्तुपामोवणे विगुलेणं ससन-पान-साइम-साइमेणं पुक्क-वप-वप-मल्लालंकारेणं सबकारेइ, सम्मानेइ, सबकारेता सम्मानंता पडिगित्तरेइ ।

तत्पश्चात् मल्ली भरिहत् उन जितपादु वगैरह को साथ लेकर जहाँ कुम्भ राजा था, वहाँ आई। आकर उन्हें कुम्भ राजा के शरणों में नमस्कार कराया।

तब कुम्भ राजा ने उन जितपादु वगैरह का विपुल ससन, पान, सादिम और स्वादिम वे तथा पुष्प, वस्त्र, गध, माल्य और सलकारों से शरदार किया, सम्मान किया। शरदार-सम्मान करके उन्हें विदा किया।

१४८-तए णं जियसत्तुपामोवणा कुंभएण रण्णा विसग्गिया समाणा जेणय साईंसा रज्जाईं, जेणय नयराईं, तेणय उवागच्छंति । उवागच्छिता सपाईं सपाईं रज्जाईं उवसंरज्जिता विहरंति ।

तत्पश्चात् कुम्भ राजा द्वारा विदा किये हुए जितपादु आदि राजा जहाँ अपने-अपने राज्य थे, जहाँ अपने-अपने नगर थे, वहाँ आये। आकर अपने-अपने राज्यों का उपभोग करते हुए विचरने लगे।

१४९-तए ण मल्ली सरहा 'संवच्छरायसाने निषयमिस्सामि' ति मणं पहादेइ ।

तत्पश्चात् भरिहत् मल्ली ने अपने मन में ऐसी धारणा की कि—'एक वर्ष के अन्त में मैं दीक्षा ग्रहण करूँगी।'।

१५०-तेणं कालेणं तेणं समएणं सबक्खस आसनं चलइ । तए णं सबक्खे वेविदे देवराया आसनं चितियं पासइ, पासित्ता ओहि पउंजइ, पउंजित्ता मत्ति सरहं ओहिणा आमोएइ, आमोइता इमेयारूपे अउभरियए जाव [चितिए परियए मणोगते संकप्पे] समुप्पज्जित्थाः—'एयं खलु जवुदोदे दोये भारहे पासे निहिलाए रायहाणीए कुंभगस्त रण्णो (धुआ)मल्ली सरहा निषयमिस्सामि ति मणं पहादेइ ।

उस काल और उस समय में शक्रेन्द्र का आसन चलायमान हुआ। तब देवेन्द्र देवराज शक्र ने अपना आसन चलायमान हुआ देखा। देख कर अवधिज्ञान का प्रयोग किया—उपयोग लगाया।

उपयोग लगाने पर उसे ज्ञात हुआ—नब इन्द्र की मम में ऐसा विचार। चिन्तन, एवं ख्याल हुआ कि जम्बूद्वीप नामक द्वीप में, भारतवर्ष में, मिथिला राजधानी में कुम्भ राजा की पुत्री मल्ली परिहृत ने एक वर्ष के पश्चात् 'दीक्षा लूनी' ऐसा विचार किया है।

१५४—‘तं ज्योतिषं तीक्ष्णचक्षुष्यप्र-मणायमाणं सत्कालं देविदेवं देवरायणं, सरहंताणं भगवताणं निशस्त्रमणायणं इमेवाह्वं प्रत्यसंपयाणं वसित्तए । तं जहा—

तिष्णेत्र य कोडिसया, घट्टासीड च होति कोडीयो ।

घसिहं च सयसहस्सा, इदा दसयति सरहाण ॥

(शक्र ने घामे विचार किया—) ता अनीन काम, वत्तमान काल घोर अविष्यत् काल के तब देवेन्द्र देवराजों का यह परम्परागत आचार है कि—तीर्थकर भगवत जब दीक्षा अंगीकार करने को हों, तो उन्हें इतनी मर्ष—सम्पदा (दान देने के लिए) देनी चाहिए। यह इस प्रकार है—

‘तीन सौ करोड़ (तीन घन) घट्टासी करोड़ और घसरी लाख द्रव्य (स्वर्ण मोहरें) इन्द्र परिहृतों को देते हैं।’

१५५—एवं सपेहेड, संपेहिता वेसमणं देव सहायेड, सहाविता एव वयासी—‘एवं अनु देवानुप्पिया ! जंबूद्वीपे दीये भारहे वासे जाव घसीहं च सयसहस्साहं दत्तइत्तए, तं, गच्छह णं देवानुप्पिया ! जंबूद्वीपे दीये भारहे वासे कु भगवणवणति इमेवाह्वं प्रत्यसंपयाणं साहराहि, साहरिता लिप्पामेव मम एयमाणतियं पच्चप्पिणाहि ।’

शक्र ने ऐसा विचार किया। विचार करके उसने वैश्रमण देव को बुलाया और बुला कर कहा—‘देवानुप्पिय ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में, भारतवर्ष में, यावत् [मल्ली परिहृत ने दीक्षा लेने का विचार किया है, अतएव] तीन सौ घट्टासी करोड़ और घसरी लाख स्वर्ण मोहरें देना उचित है। मैं हूँ देवानुप्पिय ! तुम जाओ और जम्बू द्वीप में, भारतवर्ष में कुम्भ राजा के भवन में इतने द्रव्य का संहरण करो—इतना धन लेकर पहुँचा दो। पहुँचा करके शीघ्र ही मेरी यह आज्ञा वापिस लौं।’

१५६—तए णं से वेसमणं देवे सत्केण देविदेवं देवरत्ता एवं वुत्तं समाणे हट्ठुदुट्ठे करणत्त जाय’ पडिमुत्तेड, पडिमुणित्ता जंमए देवे सहायेड, सहाविता एवं वयासी—‘गच्छह णं तुम्हे देवानुप्पिया ! जंबूद्वीपं दीयं भारहं वास मिहितं रायहाणि, कुं भगवस्स रण्णो मवणंति तिप्पेव य कोडिसया, घट्टासीयं च कोडीयो घसीहं च सयसहस्साहं प्रत्यसंपयाणं साहरह, साहरिता मम एयमाणतियं पच्चप्पिणह ।’

तत्पश्चात् वैश्रमण देव, शक्र देवेन्द्र देवराज के इस प्रकार कहने पर हट्ट-मुट्ट हुआ। हाथ जोड़ कर उसने यावत् मस्तक पर अंजलि धुमाकर आज्ञा स्वीकार की। स्वीकार करके जूँभक देवों को बुलाया। बुलाकर उसने इस प्रकार कहा—‘देवानुप्पियो ! तुम जम्बूद्वीप में भारतवर्ष में और मिथिला राजधानी में जाओ और कुम्भ राजा के भवन में तीन सौ घट्टासी करोड़ घसरी लाख मर्ष सम्प्रदान का संहरण करो, अर्थात् इतनी सम्पत्ति वहाँ पहुँचा दो। संहरण करके यह आज्ञा मुझे वापिस लौटाओ।’

१५७—तए ण ते जन्मगा देवा वेसमणेणं जाव [एवं बुत्ता समाणा] पडिमुणेतो उव्व-  
पुरच्छिदम दिसोभाग अक्कममि, अक्कममि जाव [वेउड्वियसमुग्घाएणं समोहणति, समोहणति  
सतेज्जाइ जोयणाइ दड निसिरति जाव] उत्तरवेउड्वियाइं ख्वाइं विउड्वंति, विउड्विता हर  
उरिउट्ठाए जाव' वोड्वयमाणा जेणेय जंबुद्वीपे दीपे, भारहे वासे, जेणेव मिहिता रायहापो, देवे  
कु नगमग रण्णो भवणे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छिता कुंभगस्स रण्णो भवणंसि तिप्पि कोट्ठिग  
जाय साहरति। साहरिता जेणेव वेसमणे देवे तेणेव उवागच्छति, उवागच्छिता इत्थ  
जाय पच्छपिणति।

नन्दाघ्नान् वे जू भक्त देव, वैश्रमण देव की आज्ञा मुनकर उत्तरपूर्व दिशा में गये। जहाँ उत्तरार्धत्रय [ वैश्रय गमुद्घात किया, समुद्घात करके संख्यात योजन का दंड निकाला], फिर उत्तर वैश्रय रूपा की विकुर्वणा की। विकुर्वणा करके देव सम्बन्धी उत्कृष्ट गति से जाते हुए यहाँ जम्बूद्वीपनामक द्वीप था, भरत क्षेत्र था, जहाँ मिथिला राजधानी थी और जहाँ कुम्भ राजा का भवन था, वहाँ पहुँचे। पहुँच कर कुम्भ राजा के भवन में तीन सौ करोड़ प्रादि पूर्वोक्त द्रव्य मगाने पढ़ा दी। पढ़ा कर वे जू भक्त देव, वैश्रमण देव के पास आये और उसकी आज्ञा वापिस ली।

विषेयन—गृधरी का एक नाम 'यमुन्धरा' भी है। यमुन्धरा का शब्दार्थ है—यमु मर्याद धन को धारण करने वाली। 'पदे पदे निधानानि' कहावत भी प्रसिद्ध है, जिसका आशय भी यही है कि इन गृधरी में जगह-जगह निधान-गजान भरे पड़े हैं। जम्भक देव प्रवधिज्ञानो होते हैं। उन्हें ज्ञान होता है कि वही-वही किनासा द्रव्य गड़ा पड़ा है। जिन निधानों का कोई स्वामी नहीं बच रहता, जिनका नामगोचर भी निश्चय हो जाना है, जिनके यत्न में कोई उत्तराधिकारी नहीं रहता, जो निदान धारामिक हैं, उनमें से जम्भक देव इतना द्रव्य निकाल कर तीर्थंकर के वर्षादान के लिए उनके यत्न में पट्टपाने हैं।

१५८—तए नं ते वसमने देवे जेणेव सक्के देविदे देवराया तेणेव उयागच्छइ । उयागच्छिना करपन जाव पचवप्पिणइ ।

नन्ददास वृत्तं यथमन देव जहाँ गङ्ग देवेन्द्र देवराज था, वहाँ प्राया । साकर दोताँ ॥  
 ५१४ हर साबू उनने इन्द्र की माता वाणिम मोंगी ।

१२६—तएव मन्त्रो घट्टा कृत्ताकृत्ति जाय मागहृद्यो वायरातो ति यद्वृण सत्ताहृद  
 घट्टाहृद य पवित्राय य पवित्राय य करोडियाय य कथडियाय ॥ एवमेव द्विरणकोटि षट्ठ य प्रमृष्टा  
 तन्महृत्ताइ इमेराक य घट्टमयरातं वचयु ।

[illegible]

घाटनी ध्वजस्त : मन्त्री ]

१६०—तए च ते कुम्भ राधा विहिमाए राधहाजीए तए तए त  
महापगतावाघो करेइ । तए च बहुषे मनुवा रिग्यनइ-वस-वेवणा रि  
साइम उववमरेति । उववमरेति ने अहा घागएति तजहा—पविषा वा, पवि  
कएरिया वा, वातइया वा, गिराया वा, तम म तहा घातापरत योसरम  
विनुम मत्तव वासं घाइम माइम परिचाएमाणा परिवेतेमाणा विहरनि ।

गणेशवात् कुम्भ राजा ने भी विहिता राजधानी में मन्त्र मन्त्र घण्टा  
उपनगरा में, गिरि गिरि घण्टा महामार्ग में तथा घण्टा घण्टा क्वाली में, देवी  
घादि स्वार्ना-स्वाना में बहून-मो भोजनमा वाई वनआई । उन भोजनमावा  
चुई—घन, भाद—भोजन, घोर वन-मुन्द दिया जाता था, विनुम घनन वा  
भोजन बनाये थे । उना करके जो योग जेने अम घाते जाते थे जेने कि म  
घाने जाने), पविष्क (मुमार्तिर), करोटि (वगान-मोपदी) निकर भोज मागने  
बोलीन या वगान वन घागए करने रावे। वागएदी (मागु, बाग, मन्वावी)  
घाद-मगन देकर, रिधाम देकर घोर मुन्द घामन पर विहता कर विनुम  
रवाय दिया जाता था, वगोमा जाता था । वे मनुष्य वही भोजन घादि देने हुए

१६१—तए च विहिमाए तिघाठम जाह' बहुजनी घणममणस्त  
वेवाकृषिया ! कुम्भमम रणो मकेनति तमकामगुणिय किमिदिदं विनुम  
बहुम मममाण मे जाह परिवेतिमरेइ ।

वरवरिया योसिरइइ, किमिदिदं विमरे बहुविहीम ।  
गुर-घगुर-देवे-वामन-नरिदमहिमान निवममने ।

गणेशवात् निधिता राजधानी में भू वाटक, चिक, पीक आदि मार्गों  
म प्रहार बहुने मने—'हे देवानुग्रियो ! कुम्भ राजा के भवन में मर्ककामगुणि  
मुन्दर कप, रम, गध घोर स्वर्ग वाता—मनोवाइछा रग-वर्माय वाता तथा  
वाता विनुम घनन, गान, गादिम घोर स्वार्मि घाहार बहून-ने अमणो घ  
जाता है । वातमें वह है कि कुम्भ राजा द्वारा जमह-त्रण भोजनमावाएँ गुन  
देने की मर्मा-मली में मर्कक चर्चा होने लगी ।

'वैमानिक, भवनगति, ज्योतिष्क घोर वनपर देवी तथा नरेन्द्रो ।  
राजाघो द्वारा पुजित तीर्थंकरों की दीक्षा के घवनर पर वरवरिया की घोषण  
वाचकों की घवेष्ट दान दिया जाता है । घर्षा-गुर तुम्हे क्या चाहिए, तुम्हे  
पूछ-पूछ कर वाचक की दण्ड के घनुमार दान दिया जाता है ।

१६२—तए च मत्तो घरहा संवधरेणं तिमि कोडितया घट्ठासीइ  
घ तमसहस्ताई इमेवाकृषं घत्यसपमाणं दतइत्ता निवममामि ति मणं वहादेइ ।

उन समय घरिहत मत्ती ने तीन घी करोड घट्ठाती करोड घरसी ल

१६३—तेजं कालेणं तेजं समणं लोमतिपा वेगं बंमलोए कप्पे रिट्ठे विमानरवो सएहि सएहि विमानोहि, सएहि सएहि पासायवडिसएहि, पत्तेयं पत्तेयं चउहि सामाजियसाहसोहि, तिं परिसाहि, सत्ताहि अणिएहि. सत्ताहि अणियाहियईहि, सोलताहि आयररवरवेयसाहसोहि, अनेइ यहाँहि लोमतिएहि देवोहि गोड्ड सपरिवड्डा महयाहयनट्टोययाइय जाय [तंतो-तत-तात-नुडिअ-मुडग-पडुप्पयाइय-] रवेणं भुंजमाणा विहरंति । तंजहा —

सारस्सयमाइच्चा, वण्ही यरणा य गहुतोया य ।

तुत्तिपा अश्वावाहा, अग्निच्चा येव रिट्ठा य ॥

उस काल और उग गमय में लोकान्तिक देव ब्रह्मलोक नामक पांचवें देवतारू—स्वर्ग में, अरिष्ट नामक विमान के प्रसृत—पाथे में, अपने-अपने विमान में, अपने-अपने उत्तम प्रासादों में, प्रत्येक-प्रत्येक चार-चार हजार सामानिक देवों से, तीन-तीन परिपदां से, सात-सात घनीकी में, सात-सात घनीकाधिपतियों (सिनापतियों) से, सोलह-सोलह हजार आरम्भरक्षक देवों से तथा अन्य अनेक लोकान्तिक देवों से युक्त—परिवृत होकर, तूय और मे वजायें जाते हुए [तन्वी, तल, तान, मृदक, घन, मृदग आदि वाद्यों] नृत्यों—गीतों के शब्दों के साथ दिव्य भोग भोगते हुए विचार रहे थे । उन लोकान्तिक देवों के नाम इस प्रकार हैं ।—(१) सारस्वत (२) वह्नि (३) आदित्य (४) वरुण (५) गर्दतोय (६) तुषित (७) अव्यावाध (८) आग्नेय (९) रिष्ट ।

१६४—तए णं तैस्स लोयंतिपाणं देवाणं पत्तेयं पत्तेयं आसणाइं चत्तंति, तहेव जा अरहंताण निबल्लममाणं संघोहणं करेतए त्ति तं गच्छामो णं अहे वि मल्लिस्स अरहमो संघोहं करेमो ।' त्ति कट्ठु एवं संपेहेति, संपेहिता उत्तरपुरच्चियं विसीमायं येउत्थियसमुधाएणं समोहणित्ति, समोहणित्ता संखिज्जाइं जोयणाइं एवं जहा जंमया जाय<sup>१</sup> जेणेय मिहिला रायहाणी, जेणेव कुंमल्ल रण्णो नवणं, जेणेय मल्ली अरहा, तेणेय उवागच्छति, उवागच्छित्ता अंतलिमत्तपडियमा संखिज्जियाइ जाय [बमद्वयणाइ] यथाइ पयरपरिहिया करयत्त<sup>२</sup> ताहि इट्ठाहि जाय<sup>३</sup> एवं ययातो—

तत्पश्चात् उन लोकान्तिक देवों में से प्रत्येक के आसन चलायमान हुए—इत्यादि उनी प्रकार जानना प्रधातु आसन चलित होने पर उन्होंने अवधिज्ञान का उपयोग लगाकर मल्ली ग्रहण के प्रग्रया के मकल्प को जाना । फिर विचार किया कि—दीक्षा लेने की इच्छा करने वाले तीर्थंकरों को सम्बोधन करना हमारा आचार है; अतः हम जाएँ और अरहन्त मल्ली को सम्बोधन करें; ऐसा लोकान्तिक देवों ने विचार किया । विचार करके उन्होंने ईशान दिशा में जाकर वैश्व समुद्रपात के विधिपा की—उत्तर वैश्व्य शरीर धारण किया । समुद्रपात करके सख्यात योजन उल्लघन करके, जूँभक देवों की तरह जहाँ मिथिला राजधानी थी, जहाँ कुम्भ राजा का भवन था और जहाँ मल्ली नामक ग्रहण थे, वहाँ भाये । आकरके—अधर में स्थित रह कर घुंघरुओं के शब्द सहित गाया

१. लोकांतिक देवों के विषय में लोकांतर प्रभवदेश गुरि ने लिया है—'अचित् दग्धिपा एते ध्यात्वा जे. धरमाभिरु स्थाना ज्ञानुमारणेवमभिरिहा ।' अर्वात् बही-रही लोकान्तिक देवों के दश भेद कहे हैं किन्तु धन स्थानाय मूत्र के अनुसार ही वहाँ भेदों का कवन किया है ।—स्वानाद्भुत गृ. १६०, सिद्धचर्यादि-प्रचारकमिति—संस्कृतम् ।



वा अध्ययन : मल्ली ]

च धर्षण के] श्रेष्ठ वस्त्र धारण करके, दोनों हाथ जोड़कर, इष्ट [कान्त, प्रिय, मनोज्ञ, श्रत्यन्त  
 ओहर] यावत् वासी से इस प्रकार बोले—

१६५—‘युष्माहि मयवं ! लोगनाहा ! पवत्तेहि धम्मतिथं, जीवाणं हिय-सुह-निस्सेयसकरं  
 विस्सइ’ सि कट्ठु शेच्चं पि तच्चं पि एवं वयंति । वइत्ता मस्सि भरहं वंदंति नमंसंति, वंविता  
 मंतिता जामेव विसि पाउब्भूया तामेव विसि पडिगया ।

‘हे लोक के नाथ ! हे भगवन् ! ब्रह्मो-बोध पाओ । धर्मतीर्थ की प्रवृत्ति करो । वह धर्मतीर्थ  
 तीर्थों के लिए हितकारी, सुखकारी और निश्चयसकारी (मोक्षकारी) होगा ।’ इस प्रकार कह कर  
 तीसरी बार और तीसरी बार भी इसी प्रकार कहा । कहकर भरहन्त मल्ली को वन्दना की, नमस्कार  
 किया । वन्दना और नमस्कार करके जिस दिशा से आये थे, उसी दिशा में लौट गए ।

विशेषण—तीर्थंकर अनेक पूर्वभवों के सत्संस्कारों के साथ जन्म लेते हैं । जन्म से ही, यहाँ  
 तक कि गर्भावस्था से ही उनमें अनेक विधिपटताएँ होती हैं । वे स्वयंबुद्ध ही होते हैं । किसी अन्य से  
 बोध प्राप्त करने की आवश्यकता उन्हें नहीं होती । फिर लौकान्तिक देवों के आगमन की और  
 प्रतिबोध देने की आवश्यकता क्यों होती है ? इस प्रश्न का उत्तर प्रकारान्तर से मूल पाठ में ही आ  
 गया है । तीर्थंकर की प्रतिबोध की आवश्यकता न होने पर भी लौकान्तिक देव अपना परम्परागत  
 आचार समझ कर आते हैं । उनका प्रतिबोधन करना वस्तुतः तीर्थंकर भगवान् के वराध्य की  
 सराहना करना माय है । यही कारण है तीर्थंकर का दीक्षा ग्रहण करने का सकल्प पहले होता है,  
 लौकान्तिक देव बाद में आते हैं ।

तीर्थंकर के संकल्प के कारण देवों का आसन चलायमान होना अब आश्चर्यजनक घटना नहीं  
 रहा है । परामनोविज्ञान के अनुसार, आज वैज्ञानिक विकास के युग में, यह घटना सुसम्भव है ।  
 इससे तीर्थंकर के श्रयन्त सुदृढ एवं तीव्रतर सकल्प का अनुमान किया जा सकता है ।

१६६—तए णं मल्ली भरहा तेहि लोगतिएहि देवेहि संबोहिए समाने जेणेव धम्मपियरो  
 तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छत्ता करयल—‘इच्छामि णं धम्मपाओ ! सुभेहि धम्मगुण्णाए समाने  
 मुंहे भविता जाव (मगाराओ मणगारिय) पवइत्तए ।’

‘ग्रहामुहं देवानुप्पिया ! मा पडिबंधं करेह ।’

तत्पश्चात् लौकान्तिक देवों द्वारा सम्बोधित हुए मल्ली भरहन्त माता-पिता के पास आये ।  
 आकर दोनों हाथ जोड़कर मस्तक पर अञ्जलि करके कहा—‘हे माता-पिता ! आपकी आज्ञा प्राप्त  
 करके मुझित होकर गृहत्याग करके अनगार-प्रव्रज्या ग्रहण करने की मेरी इच्छा है ।’  
 तब माता-पिता ने कहा—‘हे देवानुप्पिये ! जैसे सुख उपजे वंसा करो । प्रतिबन्ध-विलम्ब  
 मत करो ।

१६७—तए णं कुंभए राया कोट्ठं विजपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—‘विप्पामेव  
 अट्ठसहस्सं सोवण्णियाणं जाव अट्ठसहस्साणं भोमेज्जाणं कलसाणं ति । धण्यं च महत्थं जाव (महायं  
 महरिहं विउलं) तित्थयराजिसेयं उवट्ठेह ।’ जाव उवट्ठवेंति ।

१७२-राज कुम्भ राजा ने कोडुम्बिक पुरुषों को बुलाया । तब कुम्भ राजा—'सोघ ही कुम्भिक  
घाट मण्डिर रत्न दाता । तब कुम्भ राजा घाट रत्न दाता । सो घाट रत्न दाता । मण्डिर रत्न  
मण्डिर-मण्डिर रत्न दाता । मण्डिर रत्न दाता । मण्डिर रत्न दाता । मण्डिर रत्न दाता । मण्डिर रत्न  
मण्डिर के रत्न दाता । मण्डिर के रत्न दाता । मण्डिर के रत्न दाता । मण्डिर के रत्न दाता । मण्डिर के रत्न दाता ।  
योग्य मण्डिर रत्न दाता । मण्डिर के रत्न दाता । मण्डिर के रत्न दाता । मण्डिर के रत्न दाता । मण्डिर के रत्न दाता ।  
पुरुषों ने देखा ही किन्तु, मण्डिर रत्न दाता को मण्डिर रत्न दाता । मण्डिर रत्न दाता ।

१६८—तेन कामेन तेन ममत्वेन तमरे अगुंरिदे जाय अन्नुपपन्नमना प्रागया ।

उम कान्ध और उम ममत्वं तमरे नामक अगुंरिदे ने गहर अन्नुपपन्नमना प्रागया । मण्डिर  
अर्थात् चोमठ दन्त गढ़ी या गढ़ी ।

१६९—तए णं सक्के वेविदे देवराया आभिगोणिण् देवे सहावेइ, सहावित्ता एवं वयासी-  
'सिप्पामेव अट्टसहस्सेण सोयण्णिमाणं कलसाणं जाय अण्ण च त विउत्तं उवट्ठवेह ।' जाय उवट्ठवेति । वेति  
कलसा ते चेव कलसे अणुपविट्ठा ।

तय देवेन्द्र देवराज शक्र ने आभिगोणिक देवों को बुलाया । बुलाकर दण्ड प्रकार गढ़ी—सोघ  
ही एक हजार घाट स्वर्णकलस आदि यात्रा दूतरी अभिरुद्ध के योग्य मामग्री उपस्थित करो । यह  
सुन कर आभिगोणिक देवों ने भी तय मामग्री उपस्थित की । वे देवों के कलसा उन्हीं मनुष्यों के  
कलसों में (देवी माया से) समा गये ।

१७०—तए णं से सक्के वेविदे देवराया कुंभराया य मल्लि अरहं सोहासणत्ति पुराणानिदुं  
निवेसेइ, अट्टसहस्सेण सोयण्णिमाणं जाय अग्निनिचइ ।

तत्पश्चात् देवेन्द्र देवराज शक्र और कुम्भ राजा ने मल्लि अरहन्त को सिंहासन के ऊपर  
पूर्वाभिमुख आसीन किया । फिर मुखर्ण आदि के एक हजार घाट पूर्वोक्त कलसों से यावत् उनका  
अभिषेक किया ।

१७१—तए ण मल्लिहत्त भगवन्नो अग्निसेए वट्टमाणे अग्नेवइया देवा मिहित च सग्निहत्तं  
बाहिरिय जाय अग्निमो समता आघावन्ति परिघावन्ति ।

तत्पश्चात् जब मल्लो भगवान् का अभिषेक हो रहा था, उस समय कोई-कोई देव मित्रिका  
नगरी के भीतर और बाहर यावत् सब दिशाओं-विदिशाओं में दौड़ने लगे—इधर उधर किरने लगे ।

१७२—तए णं कुंमए राया दोच्चं वि उत्तरावधकमणं सोहासणं रयावेइ जाय सधवात्तंकार-  
विभसिपं करेइ, करित्ता कोडुम्बियपुरिसे सहावेइ । सहावित्ता एवं वयासी—'सिप्पामेव मणोरम सीं  
उवट्ठवेह ।' ते वि उवट्ठवेति ।

तत्पश्चात् कुम्भ राजा ने दूसरी बार उत्तर दिशा में सिंहासन रखवाया यावत् भगवान् मल्लो  
को सर्व अलकारों से विभूषित किया । विभूषित करके कोडुम्बिक पुरुषों को बुलाया । बुलाकर दण्ड  
प्रकार कहा—'सोघ ही मणोरमा नाम की सिंघिका (तेवार करके) लाओ ।' कोडुम्बिक पुरुष मणोरमा  
सिंघिका—पालकी ले आए ।

१७३—तए न सक्के देविदे देवराया घानियोगिए सहावेइ, सहाबिता एव वयासी—‘जिप्पामेय घणेरत्तमं जाव मनोरमं सोयं उवट्ठवेह ।’ जाव सावि सोया त चेव सोयं घणुपविट्ठा ।

तत्पश्चात् देवेन्द्र देवराज शक ने घाभियोगिक देवां को बुलाया । बुलाकर उनसे कहा—  
‘गोघ्न हो घनेर तम्भों वाली यात्रु मनोरमा नामक सिविका उपस्थित करो ।’ तब वे देव भी मनोरमा सिविका लाये घोर वह सिविका भी उगो मनुष्या की सिविका में ममा गई ।

१७४—तए नं मत्तो घरहा सीहासणाघो घम्भूट्टेइ, घम्भूट्टत्ता जेणव मनोरमा सीया तेणव उवापच्छइ, उवागच्छता मनोरम सोयं घणुपयाहिणी करेमाणा मणोरमं सोय दुक्कहइ । दुक्कहिता सीहासणवरगए पुररघानिमुहे तन्निस्तन्ने ।

तत्पश्चात् मन्त्री घरहन्त मिहामन में उडे । उठकर जहा मनोरमा सिविका थी, उधर भाये । घाकर मनोरमा सिविका को प्रदक्षिणा करके मनोरमा सिविका पर घाहइ हुए । घाहइ होकर पूर्व दिशा की घोर मुक्त करके मिहामन पर विराजमान हुए ।

१७५—तए नं कुमए राया घट्ठारस सेजिप्पसेणीसी महावेइ । सहाबिता एव वयासी—  
‘तुम्हे नं देवानुपिया ।’ जहाया जाव (कवचित्कम्मा कयकोउघमंवलपावदिप्पता) सत्थात्तंकार-  
विभूतिया मल्लिस्स सोयं परिवहह ।’ तेवि जाव परिवहति ।

तत्पश्चात् कुम्भ राजा ने घट्ठारह जातियां—उपजातियां को बुलाया । बुला कर कहा—  
‘हे देवानुपियो ! तुम लोग इनान करके वाक्त् [वचिकमं करके तथा कौतुक, मगल एव प्रायश्चित्त करके तथा मर्मे भलकारों से विभूषित होकर मन्त्री कुमारी की सिविका वहन करो ।’ वाक्त् उन्होंने सिविका वहन की ।

१७६—तए नं सक्के देविदे देवराया मणोरमाए दविरिणित्तं उवरित्तं बाहं गेहइ, ईसाने उत्तरित्तं उवरित्तं बाहं गेहइ, चमरे वाहिणित्तं हेदिट्ठत्तं, बत्तो उत्तरित्तं हेदिट्ठत्तं । अवसेसा देवा जहारिहं मणोरमं सोयं परिवहति ।

तत्पश्चात् शक देवेन्द्र देवराज ने मनोरमा सिविका की दक्षिण तरफ की ऊपरी बाहा ग्रहण की (वहन की), ईमान द्द ने उत्तर तरफ की ऊपरी बाहा ग्रहण की, चमर ने दक्षिण तरफ की निचली बाहा ग्रहण की । दोप देवां ने यथायोग्य उस मनोरमा सिविका को वहन किया ।

१७७—पुत्तिव उविलत्ता मानुस्सेहि, तो हट्ठरोमकूवेहि ।

पच्छा यंहति सोय, ममुरिदमुरिदनामंदा ॥ १ ॥

चलच्चलक उत्तपरा, सच्छदविजम्बियानरणघारी ।

देविददानविदा, बहन्ति सोय जिणिरस्स ॥ २ ॥

मनुष्यों ने सर्वप्रथम वह सिविका उठाई । उनके रोमकूप (रंगटे) हथों के कारण विकस्वर हो रहे थे । उसके बाद ममुरेन्द्रो, मुरेन्द्रो घोर नागेन्द्रो ने उसे वहन किया ॥१॥

चलायमान चपल कुण्डलों की धारण करने वाले तथा अपनी दच्छा के अनुसार बिक्रिया से

बनाये हुए पाभरणा को धारण करने का ११-२१ घोर शस्त्रों के निरन्तर हो निरिक्त रहने की ।

१७८—तए न मल्लिस्त भरहसो मणोरमं लोभं बुद्धस्त इमे अट्टमंगमगा महामुखे  
एव निगमो जहा जमालिस्त ।

तत्पश्चात् मल्ली भरहत् जब मणोरमा निरिक्ता पर भास्व दुष्ट, उक्त समस्त उनके प्राण का  
घात मगत प्रमुख में चले । भगवतोभूत भ वर्णित जमाति के निगमन की तरफ गयी मल्ली भरह  
के निगमन का वर्णन समझ लेना चाहिए ।

विवेचन—मूत्र में जिन घात मगनों का उल्लेख है, वे इस प्रकार हैं—(१) सन्निह,  
(२) श्रीयता, (३) नदिकावत् (नन्दावत्), (४) यद्धमानक, (५) भद्रामन, (६) कन,  
(७) मत्स्य घोर (८) दण्ड ।

सीधंकर के यक्षस्थल में उठे हुए मध्यम के घातार का विशेष प्रकार का चित्त शीघ्र  
कहा जाता है । प्रत्येक दिशा में गय कोण वाला माधिया नदिकावत् है । शराव (मिहोरे) से  
यद्धमानक कहते हैं । एक विशेष प्रकार का मुसल गिद्दामन भद्रामन है । कनस, मत्स्य घोर दण्ड  
प्रसिद्ध है ।

जमालि के निष्क्रमण का वर्णन भगवतोभूत में है । प्रस्तुत शास्त्र में प्रथम मध्यम में वर्णित  
मेघकुमार के निष्क्रमण से भी उसे समझा जा सकता है ।

१७९—तए नं मल्लिस्त भरहसो निवृत्तममाणस्त अप्येहगया देवा निहितं राक्षसं  
प्रमितर-बाहिर मासियसंमण्डित-संमद-सुह-रस्यंतरायणबीहितं करेति जाय परिधायति ।

तत्पश्चात् मल्ली भरहत् जब दीक्षा धारण करने के लिए निकले तो किन्ही-किन्ही देवों ने  
मिथिला राजधानी में पानी सींच दिया, उसे साफ कर दिया और भीतर तथा बाहर की विधि करके  
यावत् चारों ओर दीड़ धूप करने लगे । (यह सब वर्णन राजप्रदानीय आदि सूत्रों से जान लेना  
चाहिए ।)

१८०—तए नं मल्ली भरहा जेनेव सहस्रसंख्येण उज्जाणे, जेनेव असोयवरपायवे तेनेव  
उवागच्छइ, उवागच्छिता सोयामो पच्चोरुहइ, पच्चोरुहिता आभरणालंकारं मोयइ । तए नं  
पभावती हंसलवण्णं पडसाइएणं आभरणालंकारं पडिच्छइ ।

तत्पश्चात् मल्ली भरहत् जहाँ सहस्राभवन नामक उद्यान था, घोर जहाँ श्रेष्ठ असोक वृक्ष  
था वहाँ गये । आकर सिविका से नीचे उतरे । नीचे उतरकर समस्त आभरणों का त्याग किया ।  
प्रभावती देवी ने हंस के चित्त वाली अपनी साड़ी में वे आभरण ग्रहण किये ।

१८१—तए नं मल्ली भरहा सयमेव पंचमुट्ठितं लोभं करेइ । तए नं सबके देवदेवे देवराज  
मल्लिस्त केसे पडिच्छइ । पडिच्छिता खीरोवगसमुद्धे पविलवइ ।

तए नं मल्ली भरहा 'नमोज्जु नं सिद्धाणं' ति कट्ठु सामाद्वयचरित्तं पडिवज्जइ ।

तत्पश्चात् मत्स्यो धरहन् ने राजा हो नवमुष्टिक लोच किया । तब तत्त देवेन्द्र देवराज ने मत्स्यो के केशों को पहन दिया । पहना करके उन केशों को क्षीरोरक समुद्र (क्षीर सागर) में प्रक्षेप कर दिया ।

तत्पश्चात् मत्स्यो धरहन् ने 'नमोऽयं नं मिद्वान' धर्मात् 'मिद्वों को नमस्कार हो' हम प्रकार कह कर सामाजिक धार्मिक जगोराज किया ।

१८२—जं समयं च च मत्स्यो धरहा चरितं पट्टिचरन्तु, तं समयं च चं देवानां मनुस्मान य निरपोते नुरिय-निजाय-नीय-बाह्यमनिरपोते य तत्तत्तम वयससदेतेनं निगुरके यावि होरवा । ज समयं च चं मत्स्यो धरहा सामादयं चरितं पट्टिच-ने त समयं च चं मत्सितस धरहयो मागुत्तपम्मापो उत्तरिए मचवत्तपमाने समुत्तमे ।

जिग समय धरह मत्स्यो ने धार्मिक अंगोकार किया, उम समय देवां और मनुष्यों के निरपोत (मन्त्र-कोनाहृत), दायां की ध्वनि धीर माने-वज्राने का मन्द मन्द के घादेन में चित्तुग मन्द हो गया । यथायु तत्त के नर को मान १८२ के घादेन दिया अनग्व धार्मिक ग्रहण करते समय पूर्ण नीरवता ध्यात हो गई । जिग समय मत्स्यो धरहन् ने सामाजिक धार्मिक अंगोकार किया, उसी समय मत्स्यो धरहन् को मनुष्यधर्म में ऊपर वा धर्मा । गाधारण धर्मो मनुष्यों को न होंगे याता-तोकोत्तर धर्मो मनुष्य धर्म गवधी उत्तम, मन वंद्य जान (मनुष्य धर्म-वर्णन हीन में विद्यत तज्ञी जीवों के मन के धर्मां को गाधान् जानने वाता जान) उत्तम हो गया ।

१८३—मत्स्यो नं धरहा जे ते हेमताण होके मासे चउथे पवसे वोममुजे, तत्त नं वोममुद्धस्त एकारतोपसं न पुष्यवृक्षासतमर्मात्त मट्टमेवं मत्स्यं धवापएणं, चरितणीहि नवसत्तेण जोग-मुवाणएणं तिहि इथीसएहिं चांसतरियाए परिताए, तिहि नुरितसएहिं बाहिरियाए परिताए तद्धि पुंके जविता पवइए ।

मत्स्यो धरहन् ने हेमन्त ऋतु के दूसरे मास में, चौथे पवसादे में धर्मात् वोप मास के पुज (पुष्य) पक्ष में धीर वोप मास के पुज पक्ष की एकादशी के पक्ष में धर्मात् पक्ष भाग में (रात्रि का भाग छोड़कर दिन में), पूर्वाह्न काल के समय में, निजंत मष्टम भक्त तप करके, प्रविशती मध्य के साथ चन्द्र का योग प्राप्त होने पर, भीन छो आभ्यन्तर परिपद की स्थिति के साथ धीर तीन तो बाह्य परिपद के पुष्य के साथ मुद्रित होकर दीक्षा अंगोकार की ।

१८४—मत्स्य धरहं इमे मट्ट चायकुमारो धणुपवमहंसु, तं जहा—

नंदे म नदिमित्रे, गुमित बलमित्त भानुमित्ते य ।

धमरयइ धमरसेने महसेने धेव मट्टमए ॥

मत्स्यो धरहन् का अनुसरण करके इन्द्राकुबंध में जन्मे तथा राज्य भोगने योग्य हुए माठ भात कुमार दीक्षित हुए । उनके नाम इस प्रकार हैं—

(१) नन्द (२) नदिमित्र (३) सुमित्र (४) बलमित्र (५) भानुमित्र (६) धमरपति (७) धमरसेन (८) माटवं महासेन । इन माठ जातकुमारों (इन्द्राकुबंधी राजकुमारों) ने दीक्षा अंगोकार की ।

अनुत्तरोपपातिक (सर्वोर्वेगित्वा प्रादि विमाना मे आकर फिर एक भद्र ने कर मोड़ जाने लगे) नातुओं को सम्पदा थी ।

१६३ मत्तिसस्य घरहृषो बुविहा संतगहभूमो होत्स्या । संतगहा-नुगतकरभूमो, परियाप्तकरद्वन्द्वं य । जाय योमदमाघो पुरिसनुगाघो नुपंतकरभूमो, दुगातरियाए' अतमकातो ।

मत्तली घरहन्त के तीर्थ में दो प्रकार की मत्ता-कर भूमि हुई । यह इस प्रकार-नुगान्तकरभूमि और परियाप्तकर भूमि । इनमें से निम्न-प्रतिष्ठा प्रादि योग युक्तों रूप गुणा तक अर्थात् योग्यता तक गुगान्तकर भूमि हुई, अर्थात् योग्यता तक साधुओं ने मुक्ति प्राप्ता ही । (योग्यता के पर्याप्त उनके तीर्थ में किसी ने मोक्ष प्राप्त नहीं किया ।) और दो वर्ग का योग्य होने पर अर्थात् मत्तली घरहन्त को केवलज्ञान प्राप्त करने दो वर्ग अर्थात् हो जाने पर पर्याप्तकर भूमि हुई—अथ पर्याप्त का अन्त करने वाले—मोक्ष जाने वाले साधु हुए । (द्वन्द्व पदों को दो योग्य मोक्ष नहीं गया)

१६४—मत्तली जं घरहा पण्योतं धनुषि उहृत्तं उरुसत्तेजं, वल्लेजं विधंगुसमे, समवउरं-संठाणे, धज्जिरिसभनारायसंप्रयणे, मग्गवेसे गुहं मुहेणं विहरित्ता जेणेव समेए पयए तेणव उवागच्छा उवागच्छित्ता समेयसेलसिहरे पाप्पोवगमनमणुवयन्ते ।

मत्तली घरहन्त पच्चीस धनुष ऊँचे थे । उनके शरीर का धनुष प्रियगु के समान था । पञ्च-चतुरस्र सत्त्वान और पञ्चमपभनाराय संहनन था । यह मध्यदेश में गुग्गु-गुग्गु विचर कर जहाँ सम्मेल पर्वत था, वहाँ आये । आकर उन्होंने सम्मेलशैल के निचले पर पादोपगमन अनशन अंगीकार कर लिया ।

१६५—मत्तली जं एगं वाससयं प्रागारवास पणपणं वाससहस्ताइं वाससयज्जणं केवलपरिवारं पाउजित्ता, पणपणं वाससहस्ताइं सत्त्वाउय पालइत्ता जे ॥ मिह्णानं पढे मासे बोधे पवत्ते चित्तमुद्धे, तस्स जं चेतमुद्धस चउदयोए भरणीए णवसत्तेणं अट्ठरत्तकालसमयंति पवत्ति अज्जिवासएहि प्रभितरियाए परिसाए, पवत्ति अणमारसएहि बाहिरियाए परिसाए, मासिणं मत्तेव अवाणएणं, यपायिपानी, खीणे येयज्जजे आउए नामे गोए सिद्धे । एव परिनिब्बानमहिमा भाजि-यत्त्वा जहा जंयुदीवपण्णत्तोए, नंबीसरे अट्ठाहियाओ, पडिगयाओ ।

मत्तली घरहन्त एक ही वर्ष गृहवास में रहे । सो वर्ष कम पचपन हजार वर्ष केवली-पर्याप्त पालकर, इस प्रकार कुल पचपन हजार वर्ष की आयु भोग कर ग्रीष्म ऋतु के प्रथम मास, दूसरे पक्ष अर्थात् चैत्र मास के शुक्ल पक्ष और चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की चौथ तिथि में, भरणी नक्षत्र के साथ चन्द्रमा का योग होने पर, अर्द्धरात्रि के समय, आभ्यन्तर परिपद की पाँच सौ साध्वियों और बाह्य परिपद के पाँच सौ साधुओं के साथ, निर्जल एक मास के अनशनपूर्वक दोनों हाथ लम्बे रखकर, वेदनीय, यायु, नाम और मोत्र इन चार अर्थात् कर्माँ के क्षीण होने पर सिद्ध हुए । जम्बुद्वीपप्रवृत्ति में वर्णित निर्वाणमहोत्सव यहाँ भी कहना चाहिए । फिर देवों ने नन्दीश्वर द्वीप में जाकर अष्टादशिक महोत्सव किया । महोत्सव करके अपने-अपने स्थान पर चले गये ।

विशेषण—टीकाकार द्वारा वर्णित निर्वाणकल्याणक का महोत्सव सद्योप में इस प्रकार है—

## पाठवी अध्यायन : मत्स्यो ]

जिन समय तीर्थंकर भगवान का निर्वाण हुआ तो शक्र देवेंद्र का प्रासन  
अध्यायन का उत्प्रेषण लगाने से उसे निर्वाण की घटना का ज्ञान हुआ । उसी  
समय समरेन्द्रनिधर पर्वत पर आया । भगवान् के निर्वाण के कारण उसे घेद हुआ ।  
तब । उसने भगवान् के शरीर की तीन प्रदक्षिणाएँ की । फिर उस शरीर से धूल  
इसी प्रकार मुख इन्द्रा ने किया ।

तत्पश्चात् शक्रेंद्र ने करने प्राध्यात्मिक देवों ने वन में से गुप्तर गोम  
भगवाये । तीन उत्तम रची गई । शीर सागर में जल मंगवाया गया । उस जल से  
कराया गया । हनु जंगल धवन घोर क्रोधित रहन शरीर पर डंक दिया । फिर शरीर  
से प्रलूत किया गया ।

गुप्तधरों शीर मायुषा के शरीर का ध्वज देवों ने इसी प्रकार सम्कार कि  
तत्पश्चात् शक्रेंद्र ने प्राध्यात्मिक देवों ने तीन निरिकाएँ बनवाई । उ  
पर भगवान् का शरीर स्थापित किया शीर उसे चिता के समीप ले जाकर चिता  
देवों ने गुप्तधरों शीर मायुषा के शरीर की दो निरिकाएँ में रखकर दो  
तत्पश्चात् अग्निधुमार देवा ने शक्रेंद्र की आज्ञा में तीना चिताओं में अग्निका  
घोर मायुषुमार देवों ने वायु की विधुवता की । ध्वज देवों ने तीनों चिताओं में  
श्री शीर मयुषादि के पदों के पड़े डाले । ध्वज में जब शरीर भस्म हो चुके तब, में  
चिताओं की शीर सागर के जल में धान्य कर दिया ।

तत्पश्चात् शक्रेंद्र ने प्रभु के शरीर की दाहिनी तरफ की ऊपर की दाढ़ पर  
मे बायीं शीर की ऊपर की दाढ़ ली । समरेन्द्र ने दाहिनी शीर की नीचे की दाढ़  
शीर की नीचे की दाढ़ पहन की । ध्वज देवों ने ध्वजाध्य अगोपागों की प्रस्थिति  
तीनों चिताओं के स्थान पर बड़े-बड़े स्तूप बनाये शीर निर्वाणमहोत्सव किया ।

गुप्त तीर्थंकरों के निर्वाण का अंतिम संस्कार-वर्णन इसी प्रकार समझना  
१६९—एवं सप्त जम्बू । समर्थनं भगवतो महावीरेण प्रदत्तमस्य नायक  
पन्नस्येति चेति ।

श्री गुप्तर्मा स्वामी कहते हैं—इस प्रकार निश्चय हो, हे जम्बू ! धमण  
पाठ्य शास्त्राध्ययन का यह अर्थपरूपण किया है । मैंने जो सुना, वही कहता हूँ ।

## नवम अध्ययन : माकन्दो

सार : सक्षेप

प्राप्त जनो ने सक्षिप्त मूय मे साधना का मूलभूत रहस्य प्रकट करते महत्वपूर्ण सूचना दे है—'एने जिए जिमा पच ।' अर्थात् एक मन पर विजय प्राप्त कर ली जाय तो पाँचो इन्द्रियोत सरलता से विजय प्राप्त की जा सकती है । किन्तु मन पर विजय प्राप्त करना साधारण कार्य नहीं । मन बड़ा ही साहसिक, चंचल और हठीला होता है । उसे जिस ओर जाने से रोकने का प्रयास किया जाता है, उसी ओर वह हठात् जाता है । ऐसी स्थिति मे उसे वशीभूत करना बहुत कठिन है । सोचा सकल्प हो, उस सकल्प को बारम्बार दोहराते रहा जाए, निरन्तर सतर्क-सावधान रहा जाए, ध्यान और वैराग्यवृत्ति का आसेवन किया जाए, धर्मशिक्षा को सदैव जागृत रखा जाए तो उसे बर्त किया जा सकता है । शास्त्रों में नाना प्रकार के जिन अनुष्ठानों का, क्रियाकलापों का वर्णन किया है, उनका प्रधान उद्देश्य मन को वशीभूत करना ही है ।

इन्द्रियाँ मन की दासी है । जब मन पर आत्मा का पूरा अधिकार हो जाता है तो इन्द्रियो घनायास ही कायू में आ जाती है ।

इसके विपरीत मन यदि स्वच्छन्द रहा तो इन्द्रियाँ भी निरकुश होकर अपने-अपने दिग्गो में प्रवृत्त होती है और आत्मा पतन की दिशा मे अग्रसर हो जाता है । उसके पतन की सीमा नहीं रहती । 'विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः' शतमुसः' वाली उक्ति चरितार्थ हो जाती है । जीवन मे जब यह स्थिति उत्पन्न होती है तो इहभय और परभव-दोनों दुःखदायी बन जाते हैं । प्रस्तुत ग्रन्थ मे इसी तथ्य को सरल-सुगम उदाहरण रूप मे प्रकट किया गया है ।

चम्पा नगरी के निवासी माकन्दो सार्ववाह के दो पुत्र थे—जिनपालित और जिनरधिन । वे भारद्वाज पार लवणसमुद्र मे यात्रा कर चुके थे । उनकी यात्रा का उद्देश्य व्यापार करना था । वे भी समुद्रयात्रा पर गए, अपने उद्देश्य मे सफलता प्राप्त करके लौटे । इससे उनका साहस बढ़ गया । उन्होंने बारहवीं बार समुद्रयात्रा करने का निश्चय किया । माता-पिता से अनुमति मांगी ।

माता-पिता ने उन्हें यात्रा करने से रोकना चाहा । कहा—पुत्रो ! दादा और पड़दादा द्वारा उपाजित धन-सम्पत्ति प्रचुर परिमाण मे अपने पास विद्यमान है । सात पीढ़ियों तक उपभोग करने पर भी यह समाप्त नहीं होगी । समाज मे हमे पर्याप्त प्रतिष्ठा भी प्राप्त है । फिर अपने कानेक रिश्ता ने परिपूर्ण समुद्रयात्रा करने की क्या आवश्यकता है ? इसके प्रतिरिक्त बारहवीं यात्रा अनेक सखा से परिपूर्ण होगी है । अतएव यात्रा का विचार स्थगित कर देना ही उचित है ।

बहुत समझाने-बुझाने पर भी जबानी के जोश मे लड़के न माने और यात्रा पर चले गये । समुद्र मे काफी दूर जाने पर माता-पिता का कहा सत्य प्रत्यक्ष होने लगा । घनात मे मेघों की भीषण गर्जना होने लगी, घाराघ मे बिजली साइड नृत्य करने लगी और प्रलयकाल जैसी भयानक गर्जना ने रोड रूप धारण कर लिया । जिनपालित और जिनरधित का यान उस आधी मे फग गया । उन



ट सकट के समय यान को जो दशा हुई उसका अत्यन्त कष्टाजनक और साथ ही आधिकारिक समय वर्णन मूल पाठ में किया गया है। ऐसे वर्णन आगमों में क्वचित् ही उपलब्ध होते हैं।

यान छिन्न-भिन्न होकर नष्ट हो गया। व्यापार के लिए जो माल भरा गया था, वह सागर में भे समा गया। दोनों भाई निराधार और निरवलम्ब हो गए। उन्होंने जीवन की आशा त्याग। उस समय माता-पिता की बात न मानने और अपने हठ पर कायम रहने के लिए उन्हें कितना आत्ताप हुआ होगा, यह अनुमान करना कठिन नहीं।

संयोगवश उन्हें अपने यान का एक पटिया हाथ लग गया। उसके सहारे तिरते-तिरते वे इ के किनारे जा लगे। जिस प्रदेश में वे किनारे लगे वह प्रदेश रत्नद्वीप था। इस द्वीप के मध्यभाग तल देवता नामक एक देवता—देवी निवास करती थी। उसकी एक अत्यन्त सुन्दर महल था, इसी वारों दिशाओं में चार वनखण्ड थे।

रत्नदेवी ने अवधिज्ञान से माकदोपुत्रों का विषदग्रस्त अवस्था में समुद्रतट पर देखा और गल उनके पास आ पहुँची। बोली—यदि तुम दोनों जीवित रहना चाहते हो तो मेरे साथ चलो। मेरे साथ विपुल भोग भोगते हुए आनन्दपूर्वक रहो। अगर मेरी बात नहीं मानते—भोग भोगना कार नहीं करते तो इस तलवार से तुम्हारे मस्तक काट कर फेंक देती हूँ।

बेचारे माकदोपुत्रों के सामने दूसरा कोई विकल्प नहीं था। उन्होंने देवी की बात मान्य कर। उसके आशानुसार चले गए और उसकी इच्छा तृप्त करने लगे।

इन्द्र के आदेश में, मुष्टिउत देव ने रत्न देवी को सबलसमुद्र की सफाई के लिए नियुक्त करा था। सफाई के लिए जाते समय उसने माकदोपुत्रों को तीन दिशाओं में स्थित तीन वनखण्डों जाने एवं घूमने का परामर्श दिया। किन्तु दक्षिण दिशा के वनखण्ड में जाने का निषेध किया। कहा—‘मे एक अत्यन्त भयंकर सर्प रहता है, वहाँ गए तो प्राणों से हाथ धो बैठोने।

एक बार दोनों भाइयों के मन में आया—देखे दक्षिण दिशा के वनखण्ड में क्या है? देवी ने। वहाँ जाने को मना किया है? और वे उस ओर चल पड़े। वहाँ जाने पर उन्होंने एक पुरुष को। पर चढ़ा देखा। पूछने पर पता लगा कि वह भी उन्हीं की तरह देवी के बनकर में फस गया और किसी सामान्य मपराध के कारण देवी ने उसे ध्रुवी पर चढ़ा दिया है।

उसकी कष्ट कहानी सुनकर माकदोपुत्रों का हृदय काप उठा। अपने भविष्य की कल्पना में वेचने हो गए। तब उन्होंने उस पुरुष से अपने छुटकारे का उपाय पूछा। उपाय उसने ला दिया।

पूर्व के वनखण्ड में अश्वरूपधारी शैलक नामक यक्ष रहता था। अष्टमी आदि तिथियों के, एक निश्चित समय पर, वह बुलन्द आवाज में घोषणा किया करता था—‘क तारयामि, क तयामि।’ अर्थात् ‘किसे तारूँ, किसे पालूँ?’ एक दिन दोनों भाई वहाँ जा पहुँचे और उन्होंने अपने तारने और पालने की प्रार्थना की।

शैलक यक्ष ने उनकी प्रार्थना स्वीकार तो की किन्तु एक शर्त के साथ। उसने कहा—‘रत्नदेवी मृत पापिनी, चण्डा, रौद्रा, शूद्रा और साहसिका है। जब मैं तुम्हें ले जाऊंगा तो वह अनेक उप-करोगी, जलचाण्णी, मीठी-मीठी वानें करेगी। तुम उसके प्रलोभन में आ गए तो मैं तत्काल

धरती की सतह पर एक बड़ा सा जल तालाब है। इस तालाब में बहुत सारे पौधे और जानवर हैं। यह तालाब हमारे जीवन के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है।

हमारे जीवन में जल एक बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। हमें जल पीने के लिए चाहिए, हमें जल खाने के लिए चाहिए, हमें जल धोने के लिए चाहिए। जल हमारे जीवन के लिए एक बहुत ही महत्वपूर्ण संपदा है। हमें जल को संभालना और उसे सुरक्षित रखना चाहिए।

जल हमारे जीवन के लिए एक बहुत ही महत्वपूर्ण संपदा है। हमें जल को संभालना और उसे सुरक्षित रखना चाहिए। हमें जल को प्रदूषित नहीं करना चाहिए। हमें जल को बचाना चाहिए।

क्या आपको पता है? जल हमारे जीवन के लिए एक बहुत ही महत्वपूर्ण संपदा है। हमें जल को संभालना और उसे सुरक्षित रखना चाहिए।



## नवम अध्ययन : माकन्दी

१—जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं भट्टमस्स पायग्गयणस्स भयमद्धे पणत्ते, नवमस्स णं भंते ! पायग्गयणस्स समणेणं जाव संपत्तेणं के भट्टे पणत्ते ?

श्रीजम्बू स्वामी ने श्री मुघर्मा स्वामी से प्रश्न किया—‘भगवन् ! यदि भ्रमण यावत् निर्वाण को प्राप्त भगवान् महावीर ने घाटवे ज्ञात-अध्ययन का यह (पूर्वोक्त) धर्म कहा है, तो हे भगवन् ! नीचे ज्ञात-अध्ययन का भ्रमण यावत् निर्वाणप्राप्त भगवान् महावीर ने क्या धर्म प्रकृष्ट किया है ?

२—एवं खलु जंबू ! तेण कालेणं तेणं समएणं चंपा नामं नयरी होत्था । तीसे णं चंपाए नयरीए कोणिए नामं राया होत्था ।

तए णं चंपाए नयरीए बहिया उत्तरपुरज्झिमे विसीभाए पुण्णमहे नामं वेइए होत्था । श्री मुघर्मा स्वामी ने उत्तर दिया—‘हे जम्बू ! उस काल और उस समय मे चम्पा नामक नयरी थी । उस चम्पा नगरी में कोणिक राजा था । तए णं चंपाए नयरीए बहिया उत्तरपुरज्झिमे विसीभाए पुण्णमहे नामक वेइए होत्था ।

श्री मुघर्मा स्वामी ने उत्तर दिया—‘हे जम्बू ! उस काल और उस समय मे चम्पा नामक चम्पानगरी के बाहर उत्तरपूर्व-ईशानदिक्कोण मे पूर्णभद्र नामक चैत्य था ।

३—तए णं माकन्दी नामं सत्थवाहे परिवसइ, भट्टे । तस्स णं भद्दा नामं भारिया होत्था । णं भद्दा भारियाए भससा दुवे सत्थवाहदारया होत्था । तंजहा-जिणपासिए य जिणरवित्ते य । तं तेति मागंदिपदारगणं अण्णया कयाई एगयमो इमेयाहवे मिहो कहासमुत्तावे ज्झमुप्पज्झिस्था—

चम्पानगरी में माकन्दी नामक सार्थवाह निवास करता था । वह सप्तद्विधात्मी था । भद्दा भार्या थी । उस भद्दा भार्या के आत्मज (कू ख से उत्पन्न) दो सार्थवाहपुत्र थे । उनके नाम इस थे—जिनपालित और जिनरक्षित । वे दोनों माकन्दीपुत्र एक बार—किसी समय इकट्ठे हुए तो आपस मे इस प्रकार कयासमुत्ताप (वार्तालाप) हुआ—

४—‘एवं खलु भट्टे लयणसमुद्धं पोयवहणेणं एवकारस वारा भोगादा, सच्चत्थ वि य णं लढ्ढा ण्णहसमगा पुणरवि निययपरं हवमागया । तं सेयं खलु भट्टं देवाणुप्पिया ! दुवात्तसमं तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छिता एव वयासी—

‘हम लोगों ने पोतवहन (जहाज) से लवणसमुद्र को ग्यारह बार भ्रमणवाहन किया है । सभी लोगों ने धर्म (धन) की प्राप्ति की, करने योग्य कार्य सम्पन्न किये और फिर सीधे बिना

तत्पदवान् ये दोनों माकन्दोपुत्र (जिनपरान्त और जिनपरान्त) पटिया के सहारे तिरने-तिने रत्नद्वीप के समीप आ पहुँचे ।

१५ तए ण ते मागदियदारगा पाहुं सभंति, सभित्ता मुहुत्तं तरं प्राप्तंति, धामनिज फलगल्ल विसज्जेति, विसज्जिता रयणद्वीप उत्तरति, उत्तरित्ता फत्ताणं मग्गणगयेसणं करेति, हरित्ता फत्ताइ गेण्हति, गेण्हित्ता आहारंति, आहारित्ता नातिपराणं मग्गणगयेसणं करेति, करित्ता नत्तिदा फोडेंति, फोडित्ता नातिपरेत्तेलेण अणमण्णस्स गत्ताइं प्रभंभंति, प्रभंभित्ता पोवत्तरणीमो भोगाहिं प्रोगाहित्ता जलमग्गण करेति, करित्ता जाव पच्चुत्तरति, पच्चुत्तरित्ता पुट्टविसित्तापट्टयसि निसोइत्ति निसोइत्ता प्राप्तया योसत्ता गुहासणवरगया चपानयारिं प्रमापिउमापुच्छणं च सवणसमुत्ताइ कालियवायसमुत्थणं च पोययहणवियत्तिं च फलयत्ताइस्स प्राप्तायणं च रयणद्वीपुत्तरं च अणुचितेमाणा अणुचितेमाणा ओहयमणसंकप्पा जाव (करतसपहृत्थमुहा अट्टउभाणोयगया) भिदाएति ।

तत्पदवान् उन माकन्दोपुत्रों को याह मिली । याह पाकर उन्होंने पड़ी भर विश्राम किया । विश्राम करके पटिया के टुकड़े को छोड़ दिया । छोड़ कर रत्नद्वीप में उतरे । उतर कर कनाही मार्गला-गवेपणा (छोड़-डूँड) को । फिर फलों को ग्रहण किया । ग्रहण करके फल खाये । फिर उनके तेल से दोनों ने आपस में मालिश की । मालिश करके यावड़ी में प्रवेश किया । प्रवेश करके स्नान किया । स्नान करके यावड़ी से बाहर निकले । एक पृथ्वी-शिला रूपी पाट पर बैठे । बैठ कर स्नान हुए, विश्राम लिया और श्रेष्ठ मुत्तासन पर आसोन हुए । वहाँ बैठे-बैठे चम्पा नगरी, माता-पिता के आज्ञा लेना, लवण-समुद्र में उतरना, तूफानी वायु का उत्पन्न होना, नौका का भग्न होकर डूब जाना, पटिया का टुकड़ा मिल जाना और अन्त में रत्नद्वीप में आना, इन सब बातों का बार-बार विचार करते हुए भग्नमन-सकल्य होकर हथेली पर मुख रखकर ध्यातं ध्यान में—चिन्ता में डूब गये ।

१६—तए णं सा रयणद्वीपवेवया ते मागदियदारए ओहिणा आमोएइ, आमोइत्ता प्रति-फलग-वाग-हृत्था सत्तट्ठतालप्पमाण उड्ढ वेहासं उप्पयइ, उप्पयित्ता ताए उविकट्ठाए जाव देवदिए योइयममाणी योइयममाणी जेणेय मागदियदारए तेणेय उवागच्छइ, उवागच्छित्ता आमुत्ता मग्गदियदारए खर-फल्ल-निट्ठुरययणेहि एव' ययासीः—

तत्पदवान् उस रत्नद्वीप की देवी ने उन माकन्दोपुत्रों को अवधिज्ञान से देखा । देख कर उनके हाथ में ढाल और तलवार ली । सात-आठ ताड़ जितनी ऊँचाई पर आकाश में उड़ी । उड़ कर उलकृष्ट (तीव्रतम) यावत् देवगति से चलती-चलती जहाँ माकन्दोपुत्र थे, वहाँ पाई । पाकर एवरप कुपित हुई और माकन्दोपुत्रों को तीसे, कठोर और निष्ठुर वचनों से इस प्रकार कहने लगी—

देवी द्वारा धमकी

१७—'हं भो मागदियदारगा ! अप्पत्थियपत्थियया ! जइ णं तुम्हे मए सडि विजताइ भोगभोगाइ भुंजमाणा पिहरह, तो भे अरिय जोविय, अहण्णं तुम्हे मए सडि विजताइ भोगभोगाइ भुंजमाणा नो पिहरह, तो भे इमेणं नीनुप्पस-मवल-गुलिय-अयसिधुमुमप्पमासेण खुरधारेणं प्रतिपा रत्तगइममुयाइ माउयाहि उयसोहियाइ तासफत्ताणि य सोसाइ एमंते एडेमि ।'

‘घरे माकड़ी के पुत्रो ! घशायित (भोज) को इच्छा करने वालो ! यदि तुम मेरे साथ विपुल कामभोग भोगते हुए रहोगे तो तुम्हारा जीवन है—तुम जीते बचोगे, और यदि तुम मेरे साथ विपुल कामभोग भोगते हुए नहीं रहोगे तो इस नील कमर, भंग के मीन, नील द्रव्य की गुटिका (गोती) और घनछो के पून के समान बचो और घुरे की धार के समान भोगो तलवार से तुम्हारे इन मस्तकों को ताड़कर को तरह काट कर एकान्त में डाल दूँगी, जो यज्ज्यन्तो की घोर डाढ़ी-मूछों को ताल करने वाले हैं और मूछों में मुजोनिता है, यद्यपि जो माता-पिता प्रादि के द्वारा संवार कर मुसोभित किए हुए बेजो से गोभायमान हैं ।’

१८—तए न ते मातृविपदारण रमणदोषदेवयाए अतिए एयमट्ठ तोष्ठा नितम्भ नीया तवाययया करयत जाय एव वयासी—ज न देवाणुप्पिया यहस्सि तरय आणाउवयायवयननिहेते धिदिठरतामो ।

तत्पश्चात् रत्नद्वीप की देवी ने यह धर्म सुनकर घोर हृदय में धारण करके भयभीत हो उठे । उन्हें भय उत्पन्न हुआ । उन्होंने दोनों हाथ जाड़कर इस प्रकार कहा—‘देवानुप्रिये ! जो कहेंगी, हम धारकी प्राज्ञा, उपाया (विद्या), वचन (भाष्य) और निर्देश (कार्य करने) में तत्पर रहेंगे ।’ सर्वोत्तम धारके सभी प्राज्ञों का पालन करेंगे ।

१९—तए न सा रमणदोषदेवया ते मातृविपदारण गेण्हइ, गेहिस्ता जेनेय पामाययहेसए तेनेय उवाययइ, उवाययइता अमुमजुगतावहारे करेइ, करिता मुनपोमसवखंभं करेइ, करिता वड्ढा तेहि मणि विउताइ भोगमोगाई भू जमाओ विहरइ । कत्ताकस्सि न वयवयताइ उवनेइ ।

तत्पश्चात् रत्नद्वीप की देवी ने उन माकड़ी के पुत्रों को प्रहृष्ट किया—माय दिया । लेकर यही धारणा उत्तम प्रागाय वा, बड़ी प्राई । धाकर धनुष पुद्गला को तूर किया और धनुष पुद्गला का प्रक्षेपण किया और फिर उनके साथ विपुल कामभोगों का लेवन करने लगी । प्रतिदिन उनके लिए समृद्ध जेबे समुद्र फन लाने लगी ।

२०—तए न सा रमणदोषदेवया सरकययनसदेसेण मुदिठएण सवणाहिबइणा सवणसमुद्धे नि-सत्त-युत्तो अणुपरिपट्टियभवेत्ति जं किञ्चि तस्य तथ वा पत्तं वा कट्ठं वा कयवरं वा अणुइं वूइय दुरनिगपमबोक्खं ते तस्य आहुणिय आहुणिय तियसत्तुत्तो एगते ऐयेवयं ति कट्ठं जिउत्ता ।

तत्पश्चात् रत्नद्वीप की उम देवी को धारकेन्द्र के वचन—प्राज्ञेय मे, मुद्रियन नामक सवणसमुद्र के अधिपति देव ने कहा—‘तुम्हें इच्छीय द्वार सवणसमुद्र का पकड़ काटना है । वह इसलिए कि यही जो भी तृण (घास) पत्ता, काष्ठ, कचरा, धनुनि (अपवित्र वस्तु), सबी-गली वस्तु या दुर्गन्धित वस्तु आदि गंदी चीज हो, वह सब इच्छीय द्वार दिता-हिता कर, समुद्र से निकाल कर एक तरफ डाल देना ।’ इस प्रकार कह कर उस देवी को समुद्र को सफाई के कार्य में नियुक्त किया ।

देवी का भावना

२१—तए न सा रमणदोषदेवया ते मातृविपदारण एव वयासी—एवं सत्तु अहं देवाणुप्पिया ! सरकययनसदेसेण मुदिठएण सवणाहिबइणा तं चेव जाय जिउत्ता । त जाय अहं देवाणुप्पिया ! तवण-

समुद्दे जाय एडेमि ताव तुम्हे इहेव पासायवडिसए सुहंसुहेणं अभिरममाणा चिट्ठह। जइ,  
एयसि अतरंसि उच्चिग्गा वा, उस्सुया वा, उण्णुया वा भवेज्जाह, तो णं तुम्हे पुरच्चिमिंतं  
गच्छेज्जाह।

तत्पश्चात् उस रत्नद्वीप की देवी ने उन माकन्दीपुत्रों से कहा—हे देवानुप्रियो! ईशान  
के वचनादेश (आज्ञा) से, मुस्थित नामक लवणसमुद्र के अधिपति देव द्वारा यावत् (पूर्वोक्त ज्ञान  
सफाई के कार्य में) नियुक्त की गई हैं। सो हे देवानुप्रियो! मैं जब तक लवणसमुद्र में  
कचरा आदि दूर करने जाऊँ, तब तक तुम इसी उत्तम प्रासाद में आनन्द के साथ रमते  
रहना। यदि तुम इस बीच में ऊब जाओ, उत्सुक होओ या कोई उपद्रव हो, तो तुम पूर्व दिशा  
वनमण्ड में चले जाना।

२२—तस्य णं दो उऊ सया साहीणा, तजहा—पाउसे य यासारत्ते य। तस्य उ—

कंबल-सित्तिध-वंतो निउर-यर-पुष्फपीवरकरो,

कुडयज्जुण-णीय-सुरभिदाणो, पाउसउउ-गयधरो साहीणो ॥ १ ॥

तस्य य—

गुरगोपमणि-विचित्तो, वरवुत्तुत्तरसिय-उज्जररयो।

वरहणिविब-परिणद्धसिहरो, यासाउउ-पर्यत्तो साहीणो ॥ २ ॥

तस्य णं तुम्हे देवानुप्पिया। बहुतु यावीसु य जाय सरसरपत्तियामु बहुतु मातोपाए  
मातोपरणु य जाय कुगुमघरणु य सुहंसुहेणं अभिरममाणा चिट्ठेज्जाह।

उम पूर्व दिशा के वनमण्ड में दो ऋतुएँ मदा स्वाधीन हैं—विद्यमान रहती हैं। ये वही—  
प्रातृ ऋतु वर्षा ऋतु घोर धावण का मौसम तथा वर्षारान्न वर्षात् भाद्रपद घोर घामिन्न का  
मौसम। उनमें से—(उम वनमण्ड में सदैव) प्रातृ ऋतु रूपी दाधी स्वाधीन है। कदल-नील नल  
घोर मातम—भूमिकोश उम प्रातृ-दाधी के दात है। निउर नामक वृक्ष के उत्तम पुत्र ही उम  
उनमें मूक है। कुटज, घटुन और नील वृक्षों के पुत्र ही उमका मुमधित मज्जन है। (यह मूक  
प्रातृ ऋतु में पुनने है, किन्तु उम वनमण्ड में सदैव पूले रहते है। इस कारण प्रातृ को वही  
स्वाधीन कहा है।) घोर उम वनमण्ड में वर्षा ऋतु रूपी गर्वन भी सदा स्वाधीन-विद्यमान रहती है  
वर्षा ऋतु ईशान (माइन की कोहरी) रूपी गघराग आदि मणियों में विभिन्न वण रानी रहती है  
घोर उनमें मरुत के समूह के मरुत रूपी भरने की घनि होती रहती है। यही मरुत के मरुत नल  
मरुत वर विवर रहते है।

हे देवानुप्रियो! उन पूर्व दिशा के उद्यान में तुम बहुत-मो वासिया में, यावत् बहुत-मो  
मराणा का धामिन्न में, बहुत-मो भावमण्ड में विन्या के मण्डों में यावत् बहुत-मो पुनननी  
मूक-मूक रमन करत हुए मनन धरती करना।

२३ - जइ ज तुम्हे एडेमि उच्चिग्गा वा उस्सुया उण्णुया वा भवेज्जाह तो णं तुम्हे उत्तम  
वनमण्ड गच्छेज्जाह। तजहा य उऊ सया साहीणा, तजहा-सरत्ते य हेमनो य।

तत्थ उ—

सण-सत्तवण-कउमो, नीलुप्पल-पउम-नल्लिण-सियो ।

सारस-चक्कयाय-रवित-घोसो, सरयउऊ-मोवतो साहीणो ॥ १ ॥

तत्थ थ—

सियकुं व-धवल्लोण्हो, कुमुमित्त-लोद्धवणसंड-मंडलततो ।

नुसार-वगधार-योवरकरो, हेमंतउऊ-ससो सया साहीणो ॥ २ ॥

धगर तुम वहाँ भी ऊन जाओ, उरमुक हो जाओ या कोई उपद्रव हो जाय—भय हो जाय, तो म उत्तर दिशा के वनगण्ड में चले जाना । वहाँ भी दो श्रुतुएँ सदा स्वाधीन हैं । वे यह हैं—शरद् और हेमन्त । उनमें से शरद् (कातिक धीर मायंसौर्य) इस प्रकार है—

शरद् श्रुतु रूपी गोपति-वृषभ सदा स्वाधीन है । मन धीर सप्तच्छद वृक्षों के पुष्प उसका कुद (कायना) है, नीलोत्पल, पद्म धीर ननिन उसके सीम है, सारस धीर चक्रवाक पक्षियों का कूजन । उसका घोष (दलाक) है ।

हेमन्त श्रुतु रूपी चन्द्रमा उस वन में सदा स्वाधीन है । श्वेत कुन्द के फूल उसकी धवल पोस्तना—चादनी है । प्रफुल्लित सोध वाला वनप्रदेश उसका मंडलतन (बिम्ब) है धीर तुषार के लवण्डु की धाराएँ उसकी स्थूल किरणें हैं ।

२४—तत्थ णं तुम्हे देवानुप्पिमा । यावोसु य जाव बिहराहि ।

हे देवानुग्रिभो ! तुम उत्तर दिशा के वनगण्ड में यावत् फ्रीडा करना ।

२५—जइ णं तुम्हे तत्थ वि उच्चिग्गा वा जाव उस्सुया वा मयेज्जाह, तो णं तुम्हे प्रवरिस्सं णसंडं गच्छेज्जाह । तत्थ णं वो उऊ साहीणा, तंजहा—वसते य गिम्हे य । तत्थ उ—

सहकार-चारुहारो, किमुक्क-कण्णिपारासोग-मउवो ।

ऊसियतिलग-चउत्ताययसो, वसंतउऊ-गरवई साहीणो ॥ १ ॥

तत्थ थ—

पाटल-मिरीस-सलिलो, मनिया-वासंतिय-धवल्लेवो ।

सीयल-मुरभि-मनल-मगरवरिभो, गिम्हउऊ-सागरो साहीणो ॥ २ ॥

यदि तुम उत्तर दिशा के वनगण्ड में भी उद्विग्न हो जाओ, यावत् मुझसे मिलने के लिए उग्रगु हो जाओ, तो तुम पश्चिम दिशा के वनगण्ड में चले जाना । उस वनगण्ड में भी दो श्रुतुएँ सदा स्वाधीन हैं । वे यह हैं—वसन्त धीर शीष्म । उसमें—

वसन्त रूपी श्रुतु-राजा सदा विलम्बित रहता है । वसन्त-राजा के धाम के पुष्पों का मनोहर शर है, किमुक (पलाश), कर्णिकार (कनेर) धीर मधोक के पुष्पों का मुकुट है तथा ऊँचे-ऊँचे तिलक धीर बहुल वृक्षों के फूलों का छत्र है । धीर उसमें—

‘उस वनगण्ड में शीष्म श्रुतु रूपी सागर सदा विलम्बित रहता है । वह शीष्म-सागर पाटल धीर धिरीय के पुष्पो रूपी जल से परिपूर्ण रहता है । मल्लिका धीर वासन्तिकी सत्ताओं के कुसुम ही

उसको उज्ज्वल रेशा—रेशा है। उनमें जो मोटा घोर भुरभुरा पतन है, वही मार्ग है  
विचरण है।

२६ जडं नं तुभ्ये देवानृण्यया । तस्य वि उभिविगा उरमुया भोग्जाह, तसो तुमे देवं  
पासायर्वाडिमए तेनेय उवागन्देग्जाह, उवागविद्वता ममं पडिवातेमाणा पडिवातेमाणा चिद्वेग्जाह ।  
मा नं तुभ्ये दसिगणित्वं यणसड गन्देग्जाह । तस्य नं महं एये उगविसे संडविसे घोरविसे मरुविसे  
प्रदकाय-महाकाए ।

जडा तेयनिसग्गे मसि-मसिम-मगाकाला नगणजिसरोसपण्णे भंजणए जनिमरएग्गते रतये

बिद्वीविसे सप्पे य परिपसड । मा नं तुभं शरीरगस्त यावत्तो भविस्सड ।

देवानुप्रियो ! यदि तुम वहाँ भी ऊँच जाओ या उरगुह हो जाओ तो इस उत्तम प्रासाद में  
ही भा जाना । यहाँ आकर मेरी प्रतीक्षा करते-करते यही ठहरना । दक्षिण दिशा के वनछन्न को  
सरक मत चले जाना ।

दक्षिण दिशा के वनछन्न में एक बड़ा सर्प रहता है । उसका विष उग्र अर्थात् दुर्जर है, अर्थात्  
अर्थात् सीधे ही फेल जाता है, घोर है अर्थात् गरम्गरा से हजार मनुष्यों का घातक है, उसका विष  
महान् है, अर्थात् जम्बूद्वीप के बराबर शरीर हो तो उसमें भी फेल सकता है अन्य सब सर्पों से उसका  
शरीर बड़ा है ।

इस सर्प के अन्य विशेषण 'जहा तेयनिसग्गे' अर्थात् मोशालक के वर्णन में कहे अनुसार जान  
लेना चाहिए । वे इस प्रकार हैं—वह काजल, भेसा और कसोटी-वापाण के समान काला है, नेत्र के  
विष से और क्रोध से परिपूर्ण है । उसकी आभा काजल के ढेर के समान काली है । उसकी आँखें  
लाल हैं । उसकी दोनों जीभें चपल एवं लपलपाती रहती हैं । वह पृथ्वी रूपी स्त्री की बेनी के समान  
(काला, चमकदार और पृष्ठ भाग में स्थित) है । वह सर्प उरकट—अन्य चलवान् के द्वारा भी न रोका  
जा सकने योग्य, स्फुट-प्रयत्न-कृत होने के कारण प्रकट, कुटिल-वक्र, जटिल-सिंह की अयाल के सरस,  
कर्कश-कठोर और विकट-विस्तार वाला, फटाटोप करने (फण फैलाने) में दक्ष है । लोहार की धुँ  
में धोका जाने वाला लोहा जैसे धम-धम शब्द करता है, उसी प्रकार वह सर्प भी ऐसा ही 'धम-धम'  
शब्द करता रहता है । उसके प्रचंड एवं तीव्र रोष को कोई रोक नहीं सकता । कुत्ती के भोकने के  
समान शीघ्रता एवं चपलता से वह धम-धम शब्द करता रहता है । उसकी दृष्टि में विष है, अर्थात्  
वह जिसे देखले, उसी पर उसके विष का असर हो जाता है । अतएव कही ऐसा न हो कि तुम वहाँ  
चले जाओ और तुम्हारे शरीर का विनाश हो जाय ।

२७—ते मार्गविमवारए वोच्च पि तच्चं पि एयं यवद, यवित्ता येउडियसमुग्गाएणं समोहणद,  
समोहणित्ता ताए उक्किट्ठाए देवगईए सवणसमुद्दं तिसत्तसुत्तो अणुपरियट्ठेउं पयत्ता यावि होत्था ।

रानद्वीप की देवी ने यह बात दो बार और तीन बार उन माकदोपुत्रों से कही । वहकर उन्ने



चैत्रिय समुद्रपात से विक्रिया की । विक्रिया करके उत्कृष्ट-उतावली देवगति से इनकोस बार लवण समुद्र का चक्कर काटने में प्रवृत्त हो गई ।

माकन्दोपुत्रों का वन-गमन

२८—तए न ते मागदियवारया तथो भुवत्तरस्त पाप्तायवाडहए रुई वा रुई वा धिइं वा प्रतममाणा अणमणं एवं ययासी—एवं खनु देवानुप्पिया ! रयणीहीवदेयया भग्हे एवं वयासी—एवं खनु भग्हे सबकवयणसंवेतेण मुट्ठिएणं तवणाहिबइणा जाव वावतो भवित्सइ, तं मेयं खनु भग्हे देवानुप्पिया ! पुरच्छिमिल्ले वणसंठे गमित्तए ।' अणमणरस एयमट्ठं पडिमुणेंति, पडिमुणिता जेणव पुरच्छिमिल्ले वणसंठे तेणव उवागच्छति । उवागच्छिता तस्य नं वायीमु य जाव भन्निरममाणा भालीघरएमु य जाव विहरंति ।

तत्पश्चात् वे माकन्दोपुत्र देवी के चले जाने पर एक मुहूर्त में ही (पोड़ी ही देर में) उस उत्तम प्रासाद में सुखद स्मृति, रति और धृति नहीं पाते हुए आपस में इस प्रकार कहने लगे—'देवानुप्रिय ! रत्नदीप की देवी ने हमसे इस प्रकार कहा है कि 'सक्रन्द के वचनादेश से लवणसमुद्र के अधिपति देव मुष्पित ने मुझे यह कार्य सौंपा है, यावत् तुम दक्षिण दिशा के वनखण्ड में मत जाना, ऐसा न हो कि तुम्हारे शरीर का विनाश हो जाय ।' तो हे देवानुप्रिय ! हमें पूर्व दिशा के वनखण्ड में चलना चाहिए । दोनों भाइयों ने आपस के इस विचार को अंगीकार किया । वे पूर्व दिशा के वनखण्ड में गये । आकर उस वन के मन्दर वावडी आदि में यावत् शीडा करते हुए वत्सीमडप आदि में यावत् विहार करने लगे ।

२९—तए न ते मागदियवारया तस्य वि सईं वा जाव असममाणा जेणव उत्तरिस्ते वणसंठे तेणव उवागच्छति, उवागच्छिता तस्य नं वायीमु य जाव भालीघरएमु य विहरंति ।

तत्पश्चात् वे माकन्दोपुत्र वहाँ भी सुखद स्मृति यावत् शान्ति न पाते हुए उत्तर दिशा के वनखण्ड में गये । वहाँ आकर वावडियों में यावत् वत्सीमडपों में विहार करने लगे ।

३०—तए न ते मागदियवारया तस्य वि सईं वा जाव असममाणा जेणव पक्खमणिल्ले वणसंठे तेणव उवागच्छति, उवागच्छिता जाव विहरंति ।

तत्पश्चात् वे माकन्दोपुत्र वहाँ भी सुखद स्मृति यावत् शान्ति न पाते हुए पश्चिम दिशा के वनखण्ड में गये । आकर यावत् विहार करने लगे ।

३१—तए न ते मागदियवारया तस्य वि सईं वा जाव असममाणा अणमणं एवं वयासी—एवं खनु देवानुप्पिया ! भग्हे रयणीहीवदेयया एवं वयासी—एवं खनु भग्हे देवानुप्पिया ! सबकस वयणसंवेतेण मुट्ठिएण तवणाहिबइणा जाव मा नं तुभं सरीरगस्त यावतो भवित्सइ ।' तं भविमब्धं एय कारणेणं । तं सेयं खनु भग्हे दक्खिणिल्लं वणसंठे गमित्तए, त्त कट्ठं अणमणरस एयमट्ठं पडिमुणेंति, पडिमुणिता जेणव दक्खिणिल्ले वणसंठे तेणव पहारेय वमणाए ।

तब वे माकन्दोपुत्र वहाँ भी सुख रूप स्मृति यावत् शान्ति न पाते हुए आपस में इस प्रकार कहने लगे—'हे देवानुप्रिय ! रत्नदीप की देवी ने हमसे ऐसा कहा है कि—'देवानुप्रियो ! सक्रन्द के

तुम्हे बढह—‘अम्हे तारयाहि, अम्हे पातयाहि ।’ सेतए ने जखे परं रयणदीवदेवयाए हत्याओ साहंति  
 णित्यारेज्जा । अण्णहा ने न याणामि इमेति सरीरगाणं का मण्णे आचइं भविस्सइ ।

तो हे देवानुप्रियो ! तुम लोग पूर्व दिशा के वनखण्ड में जाना और शैलक यक्ष को नष्ट  
 जनों के योग्य पुष्पो से पूजा करना । पूजा करके घुटने और पैर नमा कर, दोनों हाथ जोड़कर, तिन  
 के साथ, उसकी सेवा करते हुए ठहरना ।

जब शैलक यक्ष आगत समय और प्राप्त समय होकर—नियत समय प्राप्ति पर इहे कि—  
 ‘किसको तारू, किसे पालू’ तब तुम कहना—‘हमें तारो, हमें पालो ।’ इस प्रकार शैलक यक्ष  
 केवल रत्नद्वीप की देवी के हाथ से, अपने हाथ से स्वयं तुम्हारा निस्तार करेगा । अन्यथा मैं नहीं  
 जानता कि तुम्हारे इस सरीर को क्या आपत्ति हो जायगी ?’

३८—तए णं ते मागंदियदारणा तस्स मूलाइयस्स अंतिए एयमद्धं सोच्चा जितम्म त्तिं  
 चंडं चवत्तं तुरियं वेइयं जेणेव पुरच्छिमिल्ले वणसंडे, जेणेव पोक्खरिणी, तेणेव उवागच्छत्ति,  
 उवागच्छत्ता पोक्खरिणि गाहंति, गाहिता जलमज्जणं करेत्ति, करित्ता जाइं तत्थ उपत्तां  
 जाव मेण्हंति, मेण्हत्ता जेणेव सेलमस्स जवल्स्स जवल्हाययणे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छत्ता प्रातेन  
 पणामं करेत्ति, करित्ता महुरिहं पुष्फच्छणियं करेत्ति, करित्ता जण्णुपायवडिया मुत्सूसमाणा नमस्समाणा  
 पज्जुवांसंति ।

तत्पश्चात् वे माकंदीपुत्र शूली पर चढ़े पुरुष से इस धर्म को सुनकर और मन में धारण करते  
 घोघ्र, प्रचण्ड, चपल, त्वरा वाली और वेगवाली गति से जहाँ पूर्व दिशा का वनखण्ड या और वन  
 पुष्करिणी थी, वहाँ आये । आकर पुष्करिणी में प्रवेश किया । प्रवेश करके स्नान किया । स्नान  
 करने के बाद वहाँ जो कमल, उत्पल, नलिन, मुभग आदि कमल की जातियों के पुष्प थे, उन्हें धृत  
 किया । ग्रहण करके शैलक यक्ष के मक्षायसन में आए । यक्ष पर दृष्टि पड़ते ही उने प्रणाम दिया ।  
 फिर महान् जनों के योग्य पुष्प-पूजा की । वे घुटने और पैर नमा कर यक्ष की सेवा करते हुए  
 नमस्कार करते हुए उपासना करने लगे ।

घुटकारे बी प्रायंना और घातं

३९—तए णं से सेतए जखे आगयसमए पत्तसमए एवं वयासी—‘कं तारयामि, इ  
 पातयामि ?’

तए णं ते मागंदियदारया उट्ठाए उट्ठेत्ति, करयल जाव एवं वयासी—‘अम्हे तारयाहि, अम्हे  
 पातयाहि ।’

तए णं से सेतए जखे ते मागंदियदारए एवं वयासी—एवं खत्तु देवाणुप्पिया ! तुम्हे मर  
 त्तिं तवएसमूहेणं मग्गंमग्गं भोइयमाणेणं ता रयणदीवदेवया पावा चंडा रद्धा खट्ठा साहंति  
 बट्ठहि तरएहि य मउएहि य अणुलोमेहि य पडिलोमेहि य सिगारेहि य कत्तुमेहि य उवसमेहि य  
 उवसगं करेहि । तं जइ ण तुम्हे देवाणुप्पिया ! रयणदीवदेवयाए एयमद्धं आडाह वा परिमाणह  
 अबएसत्तह वा तो ने अहं पिट्ठातो विपूणामि । अहं णं तुम्हे रयणदीवदेवयाए एयमद्धं भो आडाह, को  
 परिमाणह, णं अबेसत्तह, तो ने रयणदीवदेवयाहत्याओ साहंति णित्यारेमि ।’

## नवम अध्यायन : माकन्दी ]

विनका समय समय पाया है और साधान् प्राप्त हुआ है ऐसे घंटक य  
ताक, किसे पायू ?'

तब माकन्दीपुत्रों ने चढ़े होकर और हाथ जोड़कर (मस्तक पर अञ्जलि पुम  
वारिए, हमें पानिए ।'

तब घंटक यक्ष ने माकन्दीपुत्रों ने कहा—'देवानुप्रियो ! तुम मेरे साथ सब  
बोध गमन करोगे, तब वह पापिनो, चण्डा, यक्षा, धुशा और साहसिका रत्नद्वीप की  
कोषय, अनुसूत, प्रतिकूल शृंगारमय और मोहजनक उपगमों में उपगम करोगी-  
करोगी । हे देवानुप्रियो ! अगर तुम रत्नद्वीप की देवी के उम प्रथं का घाहर क  
करोगे या प्रपेक्षा करोगे, तो मैं तुम्हें अपनी पीठ से नीचे गिरा दूंगा । और यदि  
देवता के उम प्रथं का घाहर न करोगे, अंगीकार न करोगे और प्रपेक्षा न करोगे त  
रत्नद्वीप की देवी से तुम्हारा निस्तार कर दूंगा ।

४०—तए नं ते मार्गद्विषदारया सेसतं जवप्रं एवं यमासी—जं नं देवानु  
तस्स नं उपवायवयवनिहंसे विट्ठित्तामो ।'

तब माकन्दीपुत्रों ने घंटक यक्ष से कहा—'देवानुप्रिय ! आप जो कहेंगे, ह  
सेवन, वचन-प्रादेश और निदेश में रहेंगे । यथात् हम सेवक की भाँति  
पालन करेंगे ।

प्रकार।

४१—तए नं से सेसए जवसे उत्तरपुरविद्युमं विसीनार्ण प्रयवकमह, प्रयव  
मुग्घाएणं समोहणह, समोहणित्ता संखेज्जाहं जोयणाहं बंडं निस्तरह, बोधचं वि  
मुग्घाएणं समोहणह, समोहणित्ता एणं महं आसकवं विज्जयह । विज्जित्ता ते  
यमासी—'हं भो मार्गद्विषदारया ! आरुहं देवानुप्रिया । मम विट्ठंति ।'

तत्पश्चात् घंटक यक्ष उत्तर-पूर्व दिशा में गया । वही जाकर उसने वैश्वि  
संख्यात योजन का दंड किया । दूसरी बार और तीसरी बार भी वैश्वि समुद्रपात  
समुद्रपात करके एक बड़े घटव के रूप की बिक्रिया की और फिर माकन्दीपुत्रों से  
'हे माकन्दीपुत्रो ! देवानुप्रियो ! मेरी पीठ पर चढ़ जाओ ।'

४२—तए नं ते मार्गद्विषदारया हट्ठनुट्ठा सेसगस्स जवप्रस्स पणामं करेत्ति  
पिट्ठिं बुद्धा ।

तए नं ने सेसए ते मार्गद्विषदारए पिट्ठिं बुद्धे जाणित्ता सत्तट्ठतात्तप्पमाणा  
उप्पयह, उप्पइत्ता य ताए उक्किट्ठाए तुरिप्पाए देवपईए सवणसमुहं  
जंबुद्वीपे दीपे, जेणव भारहे वासे, जेणव चंपानमरी तेणव पहारेत्थ गमणाए ।

तब माकन्दीपुत्रों को हीरन मोर मनुष्य होकर न निकलने देगा।  
वे नीलक को पीठ पर धाकड़ हो गये।

तत्पश्चात् पश्यन्प्राचीं शंकरं यत्र माकन्दीपुत्रो हो पीठ पर धाकड़ हुआ तब  
प्राठ ताड़ के बराबर ऊँचा धाकड़ा में उड़ा। उड़कर उत्कृष्ट, नीघ्रना वाली देव सुकोटी  
से लवणसमुद्र के बीचो-बीच होकर बिधर जम्बूद्वीप या, भरतधन या धीर बिधर वना  
उसी धीर खाना हो गया।

४३—तए नं सा रयणहोवदेवया लवणसमुद्रं तिसत्तमुत्तो अणुपरियट्टइ, जं तव  
एडइ, एडित्ता जेणव पासायवडैसाए तेणव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता ते मागवियवारया पाम्म  
अपासमाणी जेणव पुरच्छिमिल्ले यणसडे जाव सव्यमो समंता मग्गणववेसणं करेइ, कटिह  
मागंविद्यवारगाणं कयइ मुइं या (तुहं या पज्जिं या) प्रलभमाणी जेणव उत्तरिल्ले वडोत्ता  
पच्छिमिल्ले वि जाव अपासमाणी मोहि पज्जइ, पज्जित्ता ते मागवियवारए सेत्त  
लवणसमुद्रं मज्झमग्गेणं योइययमाणे योइययमाणे पासइ, पासित्ता आमुहत्ता प्रसिद्धेणं  
मेण्हत्ता सत्तइ जाव उप्पयइ, उप्पइत्ता ताए उबिक्कट्टाए जेणव मागंविद्यवारया तेणव उवाग  
उवागच्छित्ता एणं वयासी—

तत्पश्चात् रत्नद्वीप की देवी ने लवणसमुद्र के चारों तरफ इक्कीस चक्कर लगाकर, जो  
जो कुछ भी वृण प्रादि कचरा था, वह सब यावत् दूर किया। दूर करके अपने उत्तम प्राची  
प्राई। प्राकर माकदीपुत्रों को उत्तम प्रासाद में न देख कर पूर्व दिशा के वनखण्ड में गई। वही  
जगह उसने मार्गणा—गवेपणा की। गवेपणा करने पर उन माकन्दीपुत्रों की कही भी धृति, प्रीति  
प्रावाज, छीक एव प्रवृत्ति न पाती हुई उत्तर दिशा के वनखण्ड में गई। इसी प्रकार परिव्रज्य  
वनखण्ड में भी गई, पर वे कहीं दिखाई न दिये। तब उसने अवधिज्ञान का प्रयोग किया। प्र  
करके उसने माकन्दीपुत्रों को नीलक के साथ लवणसमुद्र के बीचो-बीच होकर चले जाते देखा। प्र  
ही वह तत्काल क्रुद्ध हुई। उसने दाल-तलवार ली और सात-प्राठ ताड़ जितनी ऊँचाई पर प्राकर  
में उड़कर उत्कृष्ट एव शीघ्र गति करके जहाँ माकन्दीपुत्र थे, वहाँ प्राई। प्राकर इस प्रकार प्री  
लगी—

४४—‘हं भो मागंविद्यवारया ! अपरिथयपरिथया ! कि णं तुभे जाणह ममं विपग्ग  
सेलएणं जवलेणं सट्ठि लयणसमुद्रं मज्झमग्गेणं योइययमाणा ? तं एयमवि गए जइ णं तुभे व  
अवयवत्तह तो ने प्रस्थि जीवियं, प्रहणं नायवत्तह तो ने इमेण नीमुप्पसयसलं जाव एवेमि।

‘मेरे माकन्दी के पुत्रों ! मेरे मीत की कामना करने वाली ! क्या तुम समझते हो कि मैं  
त्याग करके, नीलक यत्र के साथ, लवणसमुद्र के मध्य में होकर तुम चले जाओगे ? इतने बले मेरे  
पर भी (इतना होने पर भी) अगर तुम मेरी प्रपेक्षा रखते हो तो तुम जीवित रहोगे, और यदि तुम  
मेरी प्रपेक्षा न रखते होओ तो इस नील कमल एव भंस के सींग जैसी काली तलवार से मेरी  
तुम्हारा मस्तक काट कर फेंक दूँगी।

४५—तए णं ते मागंविद्यवारए रयणहोवदेवयाए अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णितम्म प्रभोण

कन्दी ]

अवबुधिया असंभंता रयणहीबदेवया एयमहुं' नो घाडति, नो परिघाणति, नो  
दायमाणा अपरिघाणमाणा अणवेवसमाणा सेतएण जवत्तेण सद्धि तवणसमुद्धं  
वपंति ।

य वे माकन्दोपुत्र रत्नद्वीप की देवी के इस कथन को सुन कर और हृदय में धारण  
नहीं हुए, श्रास को प्राप्त नहीं हुए, उद्विग्न नहीं हुए, सन्नान्त नहीं हुए । अतएव उन्होंने  
भी के इस प्रश्न का सादर नहीं किया, उसे अगीकार नहीं किया, उसकी पूर्वाह नही  
न करते हुए शैलक यक्ष के साथ तवणसमुद्ध के मध्य में होकर चले जाने लगे ।  
अन—शैलक यक्ष ने माकन्दोपुत्रों को पहले ही समझा दिया था कि रत्नदेवी कठोर-कोमल  
उसकी धमकियों की या लतवाने वाली बातों पर ध्यान न देना, परवाह न करना,  
सकी धमकी सुनकर भी निभेय रहे ।

६—तए णं सा रयणहीबदेवया ते मागंदिषा जाहे नो सचाएइ बहूहि पडित्तोमेहि य  
य चालितए वा खोभितए वा विपरिणामितए वा तोभितए वा ताहे मत्तुरेहि सिगारेहि य  
य उवसग्गेहि य उवसग्गेहि पयसा मावि होत्था—  
'हं भो मागंदिषाधारगा ! जइ णं तुम्हेहि वेवाणप्पिया ! मए सद्धि हसियाणि य, रमियाणि  
य, कोलियाणि य, हिडियाणि य, मोहियाणि य, ताहे णं तुम्हे सम्बाइ' अणनेमाणा मम'  
हाय सेतएणं सद्धि तवणसमुद्धं मग्गमग्गेणं बोद्धवयहू'

तत्पश्चात् वह रत्नद्वीप की देवी जब उन माकन्दोपुत्रों को बहुत-से प्रतिकूल उपसर्गों द्वारा  
त करने, दुःख करने, पलटने और लुभाने में समर्थ न हुई, तब अपने मधुर श्रुंगारमय  
मनुराग-जनक मनुकूल उपसर्गों से उन पर उपसर्ग करने में प्रवृत्त हुई ।  
देवी कहने लगी—'हे माकन्दोपुत्रो ! हे देवानुप्रियो ! तुमने मेरे साथ हास्य किया है,  
पड़ भादि खेल खेले हैं, मनोवाञ्छित श्रीडा की है, श्रीदित—मूला प्रादि मूल कर मनोरजन किया  
उद्यान प्रादि में भ्रमण किया है और रतिश्रीडा की है । इन सब को कुछ भी न गिनते हुए,  
मुझे छोड़ कर तुम शैलक यक्ष के साथ तवणसमुद्ध के मध्य में होकर जा रहे हो ?

४७—तए णं सा रयणहीबदेवया जिणरक्खियस्स मणं ओहिणा आभोएइ, आभोएत्ता एवं  
ययासी—'जिच्चं पि य णं महे जिणपात्तियस्स अणिट्ठा, अकंता, अप्पिया, अमणुणा, अमणाना, जिच्चं  
मम जिणपात्तिए अणिट्ठे अकंते, अप्पिए, अमणुण्णे, अमणामे । जिच्चं पि य णं अहं जिणरक्खियस्स इट्ठा  
कंता, पिया, मणुणा, मणामा, जिच्चं पि य णं ममं जिणरक्खिए इट्ठे कंते, पिए, मणुण्णे, मणामे । जइ  
णं ममं जिणपात्तिए रोयमाणि कंदमाणि सोयमाणि तिय्यमाणि वित्तवमाणि पावयवत्तइ, किं णं तुमं  
जिणरक्खिया ! ममं रोयमाणि जाव पावयवत्तइ ?'

तत्पश्चात् रत्नद्वीप की देवी ने जिनरक्षित का मन अवधिज्ञान से (कुछ शिथिल) देखा । यह  
देख कर वह इस प्रकार कहने लगी—'मैं सदैव जिनपात्तित के लिए अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय, अमनोज्ञ  
और अमणाम थी और जिनपात्तित मेरे लिए अनिष्ट, अकान्त प्रादि था, परन्तु जिनरक्षित को तो  
मैं सदैव इष्ट, कान्त, प्रिय प्रादि थी और जिनरक्षित मुझे भी इष्ट, कान्त, प्रिय प्रादि था । अतएव

जिनपामित यदि रोतो, मा'न्दन करतो, जोरु करतो, मनुष्य करतो और निमार करतो हुईनें परवाह नही करता, तो हे जिनरक्षित ! तुम भी मुझ रोतो हुई तो मान् परवाह नही करते ?

४८—तए णं—

सा पवररयणदीयस्त देवया मोहिणा उ जिनरक्षितमस्त मणं ।

नाऊण यधनिमित्तं उवरि मागयिषारयाणं बोण्हं वि ॥ १ ॥

तपश्चान्—उत्तम रत्नद्वीप की वह देवी भवधिजान द्वारा जिनरक्षित का मन जान कर, दोनों माक दीपुषो के प्रति, उनका यध करने के निमित्त (रूपट में दण प्रकार बोली ।)

४९—दोसकलिया सत्तोलयं, जाणाविहचुण्णवासमोसिय दिम्भं ।

घाणमणनिम्बुइकरं, सम्भोउयगुरभिकुमुमयुद्ध पमु'चमाणी ॥ २ ॥

'द्वेप से युक्त वह देवी सीसा सहित, विविध प्रकार के चूर्णवास से मिश्रित, दिम्भ, नासि और मन को तृप्ति देने वाले और सयं श्रुतुषों सम्पन्धी गुणधित पूर्णों की वृष्टि करती हुई (बोली)' ॥२॥

५०—जाणामणि-कणम-रयण-घटिय-सिलिनि-एउर-मेहल-भूसणरयेणं ।

दिसामो विदिसाओ पूरयंती ययणमिणं बेहि सा सकलुसा ॥ ३ ॥

'नाना प्रकार के मणि, गुणं और रत्नों की घटियों, पुं'यरुषों, नूपुरों और मेसला—इन सब घाभूषणों के शब्दों से समस्त दिसाओं और विदिसाओं को व्याप्त करती हुई, यह पापिनी देवी इस प्रकार कहने लगी' ॥३॥

५१—होल वसुल गोल णाह वहत,

पिय रमण कंत सामिय निग्घण नित्थयक ।

छिण्ण निधिकय अकयण्णुय सिदिलभाय निस्तज्ज सुबल,

भकलुण जिनरक्षित ! मज्झं हिययरक्खगा ॥ ४ ॥

'हे होल ! वसुल गोल' हे नाथ ! हे दयित (प्यारे ! ) हे प्रिय ! हे रमण ! हे कान्त (मनोहर) ! हे स्वामिन् (प्रधिपति) ! हे निर्घृण ! (मुझ स्नेहवती का त्याग करने के कारण निर्दय ! ) हे नित्थयक (भक्तस्मात् मेरा परित्याग करने के कारण भवसर को न जानने वाले) ! हे स्त्यान (मेरे हादिक राग से भी तेरा हृदय भ्रातृ न हुआ, भ्रतएव कठोर हृदय) ! हे निष्कप (दयाहीन) ? हे भ्रतज ! क्षिपिल भाव (भक्तस्मात् मेरा त्याग कर देने के कारण बीले मन वाले) ! हे निलज्ज (मुझे स्वीकार करके त्याग देने के कारण सज्जाहीन) हे रुद्ध (स्नेहहीन हृदय वाले) ! हे भकरण ! जिनरक्षित ! हे मेरे हृदय के रक्षक (वियोग व्यथा से फटते हुए हृदय को फिर अगीकार करके बचाने वाले) ! ' ॥४॥

प्रध्वनन : माकंदो ]

५२—न ह तुम्हसि एषिक्यं घनाहं,  
प्रवप्यं तुम्ह चतनओवापकारियं उज्जिउमहण्यं ।  
गुणसंकर ! अहं तुमि बिहूना,  
न समाया बि जीवितं खणं सि ॥ ५ ॥

'मुझ प्रकेली, घनाय, बाग्यबहीन, तुम्हारे चरणों की सेवा करने वाली और प्रधन्या (हनभागिनी) को त्याग देना तुम्हारे लिए योग्य नहीं है । हे गुणों के समूह ! तुम्हारे बिना मैं छल भर भी जीवित रहने में समर्थ नहीं हूँ' ॥५॥

५३—इमस्स उ अलंगभत्त-मगर-पिबपसावय-  
समाजलपरस्स रयमागरस्स मग्गे ।  
अप्पां बहुमि तुम्ह पुरओ एहि,  
नियत्ताहि जइ सि कुबिओ जमाहि एवकावराहं मे ॥ ६ ॥

'मनेक संकड़ों मत्स्य मगर और विविध छूट जलचर प्राणियों से व्याप्त गृह रूप या मत्स्य प्रादि के पर-स्वरूप इस रत्नाकर के मध्य में तुम्हारे सामने मैं अपना वध करती हूँ । (प्रगर तुम ऐसा नहीं चाहते हो तो) प्रायो, बापिस लौट पलो । प्रगर तुम कुपित हो गये होओ तो मेरा एक अपराध क्षमा करो' ॥६॥

५४—तुम्ह य पिगयपणविमलसत्तिमंडलगरमस्तिरीय,  
सारपनवकमल-कुमुदकुबलपविमलवसतिनकरसरित्तिभिं ।  
नयणं (निननयणं) वयणं पिवासगयाए सदा मे वेच्छिउं जे पयलोएहि,  
सा इओ मयं भाह जा ते वेच्छामि वयणकमल ॥ ७ ॥

'तुम्हारा मुख मेघ-विहीन विमल चन्द्रमा के समान है । तुम्हारे नेत्र छरदश्रु के विकसित कमल (सूर्यविकासी), कुमुद (चन्द्रविकासी), और कुसुम (नील कमल) के पत्तों के समान शोभायमान हैं । ऐसे नेत्र वाले तुम्हारे मुख के दर्शन की प्यास (इच्छा) से मैं यहाँ प्राण-कमल देख लूँ' ॥७॥

५५—एवं सण्णयत्तरत्तमहुराहं पुणो पुणो कतुणाइ ।  
वयणाइ जंपमाओ सा पावा मयमाओ समण्णेइ पावहिपया ॥ ८ ॥

इस प्रकार प्रेमपूर्ण, सरल और मधुर वचन बार-बार बोलती हुई वह पापापूर्ण हृदय वाली देवी मार्ग में पीछे-पीछे चलने लगी ॥८॥

इस प्रकार प्रेमपूर्ण, सरल और मधुर वचन बार-बार बोलती हुई वह पापापूर्ण हृदय वाली देवी मार्ग में पीछे-पीछे चलने लगी ॥८॥

सकडवल-विट्टि-निस्ससिय-मलिय-उवललिय-ठिय-गमण-पणय-लिज्जिय-पासादिपणि य सत्ताये ।  
मोहियमई अवसे कम्मवसणए अययवल्लइ मग्गओ सवित्थियं ।

तत्पश्चात् कानों को सुख देने वाले और मन को हरण करने वाले प्राभूषणों के श्रद्धा :  
उन पूर्वोक्त प्रणययुक्त, सरल और मधुर वचनों से जिनरक्षित का मन चलायमान हो गया ।  
पहले की अपेक्षा उस पर दुगुना राग उत्पन्न हो गया । वह रत्नद्वीप की देवी के सुन्दर स्तन, रस  
मुख, हाथ, पैर और नेत्र के लावण्य की, रूप (शरीर के सौन्दर्य) की और जीवन की सन्तो (सु-  
सुन्दरता) की स्मरण करने लगा । उसके द्वारा हृषं या उतावली के साथ किये गये  
विश्वोको (चेष्टाओं) को, विलासो (नेत्र के विकारों) को विहसित (मुस्कराहट) को, कटाओं के  
कामनीडाजनि त निःश्वासो को, स्त्री के इच्छित अंग के मर्दन को, उपललित (विशेष प्रकार की को-  
को, स्थित (गोद में या भवन में बैठने) को, गति को, प्रणय-कोप को तथा प्रसादित (कुपित को रिक्त)  
को, स्मरण करते हुए जिनरक्षित की मति राग से मोहित हो गई । वह विवश हो गया—मानस  
काबू न रख सका, कर्म के अधीन हो गया और वह लज्जा के साथ, पीछे की ओर उसके मुख  
की तरफ देखने लगा ।

५७—तए णं जिनरक्षितं सम्पत्त्यन्मकुणभायं मरुत्तु-गल्लथल्ल-णोल्लियमई अवयसंनं रं  
जबले उ सेलए जाणिऊण सणियं सणियं उच्चिहइ नियगपिट्ठाहि विगयसरथं ।

तत्पश्चात् जिनरक्षित की देवी पर अनुराग उत्पन्न हुआ, अतएव मृत्यु रूपी राक्षस ने उसे  
गले में हाथ डाल कर उसकी मति फेर दी, अर्थात् उसकी बुद्धि मृत्यु की तरफ जाने की हो गई ।  
उसने देवी की ओर देखा, यह बात शैलक यथा ने अवधितान से जान ली और (चित्त की) स्वतन्त्रता  
से रहित उसको धीरे-धीरे अपनी पीठ से गिरा दिया ।

वियेचन—देवी ने जिनपालित और जिनरक्षित को पहले कठोर वचनों से और फिर कोमल-  
मुभावने वचनों से अपने अनुकूल करने का यत्न किया । कठोर वचन प्रतिकूल उपसर्ग के और  
कोमल वचन अनुकूल उपसर्ग के चोतक हैं । कथानक से स्पष्ट है कि मनुष्य प्रतिकूल उपसर्गों को तो  
प्रायः सरलता से सहन कर लेता है किन्तु अनुकूल उपसर्गों को सहन करना अत्यन्त दुष्कर है ।  
जिनपालित को भाति दृढमनस्क साधक दोनों प्रकार के उपसर्गों के उपस्थित होने पर भी अपनी  
प्रतिष्ठा पर अचल-प्रतल रहते हैं, किन्तु अल्पसत्त्व साधक अनुकूल उपसर्गों के आने पर जिनरक्षित  
की तरह भ्रष्ट हो जाते हैं । अतएव साधक को अनुकूल उपसर्गों को प्रतिदुस्तद समझ कर उनसे  
अधिक सतर्क रहना चाहिए ।

रत्नद्वीप की देवी सम्पूर्ण रूप से विषयान्ध थी । उसके दिल में सार्धवाहयुनों के प्रति प्रेम-  
ममता की भावना नहीं थी, वह उन्हें मात्र वासनातृप्ति का साधन मानती थी । इससे स्पष्ट है कि  
वैषम्य अनुराग का सर्वत्र मात्र स्वायं है । इसमें दया-ममता नहीं होती, अन्यथा वह जिन-  
रक्षित के, जैसा कि आगे निरूपण किया गया है, तलवार से टुकड़े-टुकड़े क्यों करती ? उनही  
स्वाध्यायिता और क्रूरता इन ओर अपने पाठ से स्पष्ट हो जाती है । विषयवासना की अनर्थागति  
का यह स्पष्ट उदाहरण है ।



५८—तए नं सा रयणदीवदेवया निस्संसा कतुणं जिणरखितयं सकतुसा सेलपपिट्ठाहि उचयंतं वास ! मज्झोत्तिं त्ति जंपभाणी, अण्णत्तं सागरसत्तितं, येण्हिय बाहाहिं भारसंतं उद्धं उच्चिहद्धं भंवरत्ते, ओवयमाणं च मंडलमेण पडिच्छित्ता नीलुप्पल-भवत्त-अवसिप्पमात्तेण असिबरेणं खंडाखंडं करेइ, करित्ता तत्तय धितवमाणं तत्तय सरसवहियस्स घेतूण अंयमंमाइं सहहिराइं उक्खित्तबलितं चउहिंसि करेइ सा पंजत्ती पहिट्ठा ।

तलपश्चात् उस निर्दय और पापिनी रत्नद्वीप की देवी ने दयनीय जिनरक्षित को बौलक की पीठ से गिरता देख कर कहा—'रे दास ! तू भरा !' इस प्रकार कह कर, समुद्र के जल तक पहुँचने से पहले ही, दोनों हाथों से पकड़ कर, चिल्लाते हुए जिनरक्षित को ऊपर उछाला । जब वह नीचे की ओर गिरने लगा तो उसे तलवार की नोक पर भेल लिया । नील कमल, भंस के सींग और घनसी के फूल के समान श्याम रंग की श्रेष्ठ तलवार से बिलाप करते हुए उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले । टुकड़े-टुकड़े करके अभिमान-रस से बघ किये हुए जिनरक्षित के रक्षित से व्याप्त अंगोपांगों को ग्रहण करके, दोनों हाथों की बजलि करके, हपित होकर उसने उल्लिखित-बलि धर्मात् देवता को उद्देश्य करके आकाश में फेंकी हुई बलि की तरह, चारों दिशाओं को बलिदान किया ।

५९—एवामेव समणाउसो ! जो अण्हं निर्गणो वा भिम्मंथो वा आयरिय-उवज्झमायणं अंतिए पव्वइए सभाणे पुणरवि माणुस्सए कामभोगे आसायइ, पययइ, पीहेइ, अभित्तसइ, ते नं इह भवे खेव बहूणं समणाणं बहूणं समणीणं बहूणं सावयाणं बहूणं सावियाणं जाव' संसारं अनुपरियट्ठिस्सइ, जहा वा से जिणरखिए ।

छलिभो अवयवसंतो, निरावयवसो गभो अविगघेणं ।

तन्हा पवयवसारे, निरावयवसणे भविष्यत्थं ॥ १ ॥

भोगे अवयवसंता, पडंति संसार-सावरे घोरे ।

भोगेह निरवयवसता, तरंति संसारकतारं ॥ २ ॥

इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणो ! जो हमारे निर्गन्ध अथवा निर्गन्धी आचार्य-उपाध्याय के समीप प्रयत्नित होकर, फिर से मनुष्य सम्बन्धी कामभोगों का आश्रय लेता है, याचना करता है, स्पृहा करता है अर्थात् कोई बिना भागे कामभोग के पदार्थ दे दे, ऐसी अभिलाषा करता है, या दृष्ट अथवा अदृष्ट शब्दादिक के भोग की इच्छा करता है, वह मनुष्य इसी भव में बहुत से साधुओं, बहुत-सी साध्वियों, बहुत-से श्रावकों और बहुत-सी श्राविकाओं द्वारा निन्दनीय होता है, यावत् अनन्त संसार में परिभ्रमण करता है । उसकी दशा जिनरक्षित जैसी होती है ।

पीछे देखने वाला जिनरक्षित छला गया और पीछे नहीं देखने वाला जिनपाल निविघ्न अपने स्थान पर पहुँच गया । अतएव प्रवचनसार (चारित्र) में आसक्तिरहित होना चाहिए, अर्थात् चारित्रवान् को अनासक्त रह कर चारित्र का पालन करना चाहिए ॥ १॥

चारित्र ग्रहण करके भी जो भोगों की इच्छा करते हैं, वे घोर संसार-सागर में गिरते हैं और जो भोगों की इच्छा नहीं करते, वे संसार रूपी कान्तार को पार कर जाते हैं ॥२॥

६०—तए नं सा रयणहोवदेयया जेणेव जिणपालिए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता बुरी अणुलोमेहि य पडिसेमेहि य खर-मठुर-सिगारेहि कतुणेहि य उवसग्गेहि य जाहे नो संवाएइ चात्तिर या खोभितए वा विप्परिणामितए वा, ताहे संता तंता परितंता निव्विण्णा समाणा जामेव त्ति पाउब्भूया तामेव वित्ति पडिग्गया ।

तत्पश्चात् वह रत्नद्वीप की देवी जिनपालित के पास आई । आकर बहुत-से मनुकूल, प्रतिभूत, कठोर मधुर, शृंगार वाले और कष्टाजनक उपसर्गों द्वारा जब उसे चलायमान करने, धुँस करने एवं मन को पलटने में असमर्थ रहो, तब वह मन से थक गई, शरीर से थक गई, पूरी तरह तान को प्राप्त हुई और अतिशय खिन्न हो गई । तब वह जिस दिशा से आई थी, उसी दिशा में लौट गई ।

६१—तए नं से सेलए जवरं जेणपालिएणं सट्ठि सवणसमुदं मज्झं-मज्झेणं बोईववा, बोईवइत्ता जेणेव चंपा नयरी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता चंपाए नयरीए मणुग्गज्जाणि जिणपालियं पिट्ठाओ ओयारेइ, ओयारित्ता एवं वयासीः—

‘एस नं देवानुत्पिया ! चंपा नयरी बोसइ’ त्ति कट्टु जिणपालियं आपुच्छइ, आपुच्छिता जमेव वित्ति पाउब्भूए तामेव वित्ति पडिग्गए ।

तत्पश्चात् वह घौलक यक्ष, जिनपालित के साथ, सवणसमुद्र के बीचोबीच होकर चला रहा । चल कर जहाँ चम्पा नगरी थी, वहाँ आया । आकर चम्पा नगरी के बाहर अर्ध उद्यान में जिनपालित को अपनी पीठ से नीचे उतारा । उतार कर उसने इस प्रकार कहा—‘हे देवानुत्पिय ! देखो, यह चम्पा नगरी दिखाई देती है ।’ यह कह कर उसने जिनपालित से छुट्टी ली । छुट्टी लेकर जिधर से आया था, उधर ही लौट गया ।

६२—तए नं जिणपालिए चंपं अणुपवित्तइ, अणुपवित्तिता जेणेव सए गिहे, जेणं अम्मापियरो, तेणेव उवागच्छइ । उवागच्छिता अम्मापिऊणं रोयमाणे जाव’ वित्तवमाणे त्रिणर-वित्तवमाणे निवेदेइ ।

तए नं जिणपालिए अम्मापियरो मित्तणाइ जाव परियणेणं सट्ठि रोयमाणा बट्ठइ सोइपाइं मयक्किव्वाइं करेन्ति, करित्ता कामेणं विगयतोया जाया ।

मदनन्तर जिनपालित ने चम्पा में प्रवेश किया और जहाँ घरना पर तथा माता-पिता थे वहाँ पहुँचा । पहुँच कर उसने रोजे-रोजे और विनाश करते-करते जिनरक्षित की मृत्यु का समाचार सुनाया ।

तत्पश्चात् जिनपालित ने और उसके माता-पिता ने मित्र, जाति, स्वजन यावत् परिवार के

तिवें अग्रया कयाइ मुहासणवरगयं अम्मापियरो एवं वयासी—'कहूं न  
ए ?'

किनी समय मुगासन पर बैठे जिनपातित थे उसके माता-पिता ने इस  
जिनरक्षित किस प्रकार कातधमें (मृत्यु) को प्राप्त हुआ ?'

तए अम्मापिऊणं सवणसमुहोत्तारं च कात्तिमवाय-समुत्थणं च पोयवहण-  
मं च रयणरोमुत्तारं च रयणरोववेवयागिहं च भोगविमुहं च रयण-  
इयपुत्तिरसदरित्तणं च सेत्तगज्जराप्रादहणं च रयणरोववेव याउवसगं च  
नसमुहउत्तरणं च धंवागयणं च सेत्तगज्जराप्रापुत्तणं च जहानुयमवित्त-

माता-पिता से अपना सवणसमुह में प्रवेश करना, नृपत्याही हुका का  
पिता, पटिमा का दुकान मितना, रत्नद्वीप में जाना, रत्नद्वीप की देवी के  
वैभव, रत्नद्वीप की देवी के वधस्थान पर जाना, नृत्तो पर चढ़े पुरुष  
पीठ पर धारुण होना, रत्नद्वीप की देवी द्वारा उपसर्ग होना, जिनरक्षित  
को पार करना, चम्पा में भाना और पौलक यक्ष के द्वारा छुट्टी लेना,  
यों, यक्ष्या और धमदिग्ध कह गुनाया ।

सलिए जाब अल्पसोये जाब बिउलाइ' भोगभोगाइ' भुंजमाने बिहरइ ।

वत् सोकरहित होकर यावत् विपुल कामभोग भोगता हुआ रहने लगा ।

तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे जाब जेणेव चपा नयरो, जेणेव पुणभइ'  
निग्गमो । जिनपातिए धम्मं सोवचा  
: देवताए उववन्ने, वो सामरीवमाइ'  
: ॥

समय में अमए भगवान् महावीर, जहाँ चम्पा नगरी थी और जहाँ  
दे । भगवान् को वन्दना करने के लिए परिपद निकली । कूणिक राजा भी  
मोपदेश ध्वज करके दोधा अंगीकार की । कमल: ग्यारह अर्गों का शाता  
अनघन करके यावत् सोपमं कल्प में देव के रूप में उत्पन्न हुआ । वहाँ  
पति नहीं गई है । वहाँ से ध्वजन करके यावत् महा-विदेह क्षत्र में जन्म

ठात्तर-देववापाहणं ।



## दशम अध्यायन : चन्द्र

सार सक्षेप

प्रस्तुत धर्म्ययन में कोई कथा-प्रसंग वर्णित नहीं है, केवल चन्द्रिका के ज्ञात-उदाहरण से जीवों के विकास और ह्रास का प्रत्यक्ष उत्पन्न और पतन का बोध कराया गया है। राजगृह नगर भगवान् महावीर की पावन चरण-रज से घनेकों बार पवित्र हुआ है। एक बार गौतम स्वामी ने भगवान् के बही पदार्पण करने पर प्रश्न किया—

‘कृद्गुण भते ! जीवा वृद्धति हायति वा ?’

—‘भते ! जीव किस कारण से वृद्धि प्रत्यक्ष हानि को प्राप्त होते हैं ?’

भगवान् ने सामान्य जनो को भी हृदयंगम हो सके, ऐसी पद्धति अपना कर चन्द्र—चन्द्र का उदाहरण देकर इस प्रश्न का उत्तर दिया। कहा—‘गौतम ! जैसे कृष्णपक्ष की प्रतिपदा का चन्द्रमा, पूर्णिमा के चन्द्रमा की अपेक्षा वर्ण, सोमता, स्निग्धता, कान्ति, दीप्ति, प्रभा, तेजसा और मण्डल की दृष्टि से हीन होता है, और फिर द्वितीया, तृतीया आदि तिथियों में हीनतर-हीनतर हो होता चला जाता है। पक्ष के अन्त में अमावास्या के दिन पूर्ण रूप से विलीन-अदृश्य हो जाता है।

इसी प्रकार जो अनगार आचार्य या उपाध्याय के निकट गृहत्याग कर भक्तिजन अनगार बनता है, वह यदि क्षमा, मार्दव, मार्जव, ब्रह्मचर्य प्रभृति मूलधर्मों से हीन हो जाता है और फिर हीनतर-हीनतर हो होता चला जाता है—अनुक्रम से पतन की ओर ही बढ़ता जाता है तब अन्त में वह अमावास्या के चन्द्र के समान पूर्ण रूप से नष्ट हो जाता है।

विकास प्रत्यक्ष वृद्धि का कारण ठीक इससे विपरीत होता है। जैसे शुक्लपक्ष की प्रतिपदा का चन्द्र, अमावास्या के चन्द्र की अपेक्षा वर्ण, कान्ति, प्रभा, सोम्यता, स्निग्धता आदि की दृष्टि से अधिक होता है और फिर द्वितीया, तृतीया आदि तिथियों में अनुक्रम से बढ़ता जाता है। पूर्णिमा के दिन अपनी समग्र कलाओं से उद्भासित हो जाता है, मण्डल से भी परिपूर्णता प्राप्त कर लेता है।

इसी प्रकार जो साधु प्रव्रज्या अंगीकार करके क्षमा, मृदुता, श्रुजुता, ब्रह्मचर्य आदि गुणों का क्रम से विकास करता जाता है, वह अन्त में पूर्णिमा के चन्द्रमा की भाँति सम्पूर्ण प्रकाशमय बन जाता है, उसकी अन्तर्ज्योति प्रकट हो जाती है।

धर्म्ययन सक्षिप्त है किन्तु इसमें निहित भाव बहुत गूढ़ है। श्रीगौतम ने सामान्य रूप से जीवों के ह्रास और विकास के विषय में प्रश्न किया है, परन्तु भगवान् ने साधुओं को प्रधान रूप से लक्ष्य करके उत्तर दिया है। मुनिपरिषद् में जो प्रश्नोत्तर हो उनमें ऐसा होता स्वाभाविक है, इसमें कोई अनौचित्य नहीं। भागम शून्यरूप है किन्तु उनका अर्थ बहुत विस्तृत होता है। अतएव साधुओं को लक्ष्य करके महीं जो कुछ भी कहा गया है, वह गृहस्थों पर भी लागू होता है।



## दशम अध्ययन : चन्द्र

जम्बूस्वामी का प्रश्न

१—जड़ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं णवमस्म नायज्जयणस्स अयमद्दे पण्णत्ते, इत्तमस्स नायज्जयणस्स समणेणं भगवया महावीरेणं के अद्दे पण्णत्ते ?

श्री जम्बू स्वामी श्रीमुधर्मा स्वामी से प्रश्न करते हैं—‘भगवन् ! यदि श्रमण भगवान् महावीर ने नीचें ज्ञात-अध्ययन का यह ग्रन्थ कहा है तो दसवें ज्ञात-अध्ययन का श्रमण भगवान् महावीर ने क्या ग्रन्थ कहा है ?’

मुधर्मा का उत्तर

२—एवं एतु जंझु ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे णामं णयरे होषा । तस्य णं रायगिहे णयरे सेणिए णामं रापा होरथा । तस्स णं रायगिहस्स नयरस्स बहिया उत्तरपुरण्डिमे विसीमाए एस्य णं गुणसीलए णामं चेइए होरथा ।

श्रीमुधर्मा स्वामी उत्तर देते हैं—‘हे जम्बू ! इस प्रकार निश्चय ही उस काल श्रीर उस समय में राजगृह नामक नगर था । उस राजगृह नगर में श्रेणिकनामक राजा था । उस राजगृह नगर के बाहर उत्तर-पूर्व दिशा-ईशान कोण में गुणसीलनामक चैत्य-उद्यान था ।

३—तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे पुट्ठाणपुत्तिं घरमाणे, गामाणणामं बुद्धजमाणे, सुहं सुहेणं बिहरमाणे, जेणेव गुणसीलए चेइए तेणेव समोसद्धे । परिस्ता निभाया । सेणिमो वि राया निगमो । धम्मं सोञ्चा परिस्ता पडिगया ।

उस काल श्रीर उस समय में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी अनुक्रम से विचरते हुए, एक ग्राम से दूसरे ग्राम जाते हुए, सुखे-सुखे बिहार करते हुए, जहाँ गुणसील चैत्य था, वही पधारे । भगवान् को वन्दना-उपसना करने के लिए परिपद् निकली । श्रेणिक राजा भी निकला । धर्मोपदेश सुन कर परिपद् लौट गई ।

हानि-वृद्धि संबंधी प्रश्न

४—तए णं गोयमसामी समणं भगवं महावीरं एव वयासी-कहं णं भंते ! जीवा वद्धंति वा हायंति वा ?’

तत्पश्चात् गौतम स्वामी ने श्रमण भगवान् महावीर से इस प्रकार कहा (प्रश्न किया)—‘भगवन् ! जीव किस प्रकार वृद्धि को प्राप्त होते हैं और किस प्रकार हानि को प्राप्त होते हैं ?’

विवेचन—जीव शाश्वत, अनादि और अनन्त हैं, अतएव उनकी संख्या में वृद्धि-हानि नहीं होती । एक-एक जीव असंख्यात-मसंख्यात प्रदेशों वाला है । उसके प्रदेशों में भी कभी वृद्धि-हानि

नहीं होती। गणपति गौतम स्वामी ने बुद्धि-शक्ति के कारणों के कारण भी प्रश्न किया है। प्रश्न का ध्यान गणों के विकास और त्याग में है। जोर के गुणों का विकास हो जोर को बुद्धि और गुणों का त्याग हो जोर को क्षान्ति है।

भगवान् का उत्तर-हीनता का समाधान

५—गोपमा ! ते जहागामत् बहुतरङ्गस्य पञ्चिमाचदे पुण्णिमाचं पणिहाय होने बन्धे, होने सोम्पयाए, होने निउपयाए, होने कंतोए, एवं वितोए तुतोए छायाए पभाए प्रोयाए तेस्ताए मंडेणं, तयाणंतरं च नं बोयाचदे पाडियचं चंदं पणिहाय होणतराए वण्णेणं जाय मड्ढेणं, तयाणंतरं च नं तइयाचदे विइयाचं पणिहाय होणतराए वण्णेणं जाय मंडेणं, एवं तनु एएणं कमेणं परिहायमाने परिहायमाने जाय समावस्ताचदे पाउइतिचं पणिहाय नद्धे वण्णेणं जाय नद्धे मंडेणं।

एवामेव समणाउतो ! जो चत्तुं निगंघो वा निगंघी वा जाय पवइए समाने होने खंतोए एवं मत्तोए गुत्तोए प्रज्जवेणं मइयेणं साधवेणं तइयेणं तवेणं वियाए मक्किपणयाए बंधधेरवातेणं, तयाणंतरं च न होने होणतराए खंतोए जाय होणतराए बंधधेरवातेणं, एवं तनु एएणं कमेणं परिहायमाने परिहायमाने नद्धे खंतोए जाय नद्धे बंधधेरवातेणं।

भगवान्, गौतम स्वामी के प्रश्न का उत्तर देते हैं—‘हे गौतम ! जैसे कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा का चन्द्र, पूर्णिमा के चन्द्र की प्रपेक्षा वरुण (गुरुत्वा) से हीन होता है, सोम्यता से हीन होता है, स्निग्धता (मृदुता) से हीन होता है, कान्ति (मनोहरता) से हीन होता है, इसी प्रकार दीप्ति (चमक) से, युक्ति (भाकाय के साथ संयोग) से, छाया (प्रतिबिम्ब या शोभा) से, प्रभा (उदयकाल में कान्ति की स्फुरण) से, भोजस (दाहदमन आदि करने के सामर्थ्य) से, लेश्या (किरणरूप लेश्या) से और मण्डल (गोलाई) से हीन होता है। इसी प्रकार कृष्णपक्ष की द्वितीया का चन्द्रमा, प्रतिपदा के चन्द्रमा की प्रपेक्षा वरुण से हीन होता है यावत् मण्डल से भी हीन होता है। तत्पश्चात् तृतीया का चन्द्र द्वितीया के चन्द्र की प्रपेक्षा भी वरुण से हीन यावत् मण्डल से हीन होता है। इस प्रकार प्राग्भावे इसी क्रम से हीन-हीन होता हुआ यावत् समावस्था का चन्द्र, चतुर्दशी के चन्द्र की प्रपेक्षा वर्ण प्रादि से सर्वथा नष्ट होता है, यावत् मण्डल से नष्ट होता है, अर्थात् उसमें वर्ण प्रादि का प्रभाव हो जाता है।

इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणो ! जो हमारा साधु या साध्वी प्रव्रजित होकर, शान्ति-क्षमा से हीन होता है, इसी प्रकार मुक्ति (निर्लोभता) से, भोजन से, मोक्ष से, लोभ से, तप से, त्याग से, भाकिचन्य से और ब्रह्मचर्य से, अर्थात् दस मुनिधर्मों से हीन होता है, वह उसके पश्चात् शान्ति से हीन और अधिक हीन होता जाता है, यावत् ब्रह्मचर्य से भी हीन प्रतिहीन होता जाता है। इस प्रकार इसी क्रम से हीन-हीनतर होते हुए उसके क्षमा प्रादि गुण नष्ट हो जाते हैं, यावत् उसका ब्रह्मचर्य नष्ट हो जाता है।

बुद्धि का समाधान

६—ते जहा वा सुवकपवसस पाडिययाचंदे समावास्ताए चंदं पणिहाय ग्रहिणं वण्णेणं जाय ग्रहिणं मड्ढेणं,





४—तए नं ते जियसत्तु राया धण्णया कयाइ ण्हाए कयजत्तिकम्मे जाय धम्ममहापानरत्तनं किमसरोरे बहूहि राईसर जाय सत्थवाहपभिइहि सत्ति भोयणवेत्ताए गुहासणवरगए विपुलं धम्मं पाण लाइमं साइमं जाय [आसाएमाणे विसाएमाणे परिभाएमाणे एवं च नं] विहरइ, त्रिमितभुत्तए जाय [आपते चोबले परम] सुईमूए तंति विपुलंति धसन जाय जायविहए ते बह्वे ईसर जा पभिइए एवं वयासी—

तत्पश्चात् यह जितशत्रु राजा एक बार—किसी समय स्नान करके, बलिकम्मे (गृहदेवता का पूजन) करके, यावत् अल्प किन्तु बहुमूल्य आभरणों से शरीर को प्रसंकृत करके, धनेक राजा ईसर जावत् सायंवाह आदि के साथ भोजन के समय पर सुगन्ध घ्रामन पर बैठ कर, विपुल धन, पान, खादिम धीर स्वादिम भोजन जीम रहा था । यावत् जीमने के अनन्तर, हाय-मुंह धीकर, परम दुःख होकर उस विपुल धन पान आदि भोजन (की सुखादुःखा) के विषय में वह विस्मय को प्राप्त हुआ । अतएव उन बहुत-से ईश्वर यावत् सायंवाह आदि से इस प्रकार कहने लगा—

५—‘अहो नं देवानुप्पिया । इमे धणुण्णे धसनं पाणं लाइमं साइमं धण्णं उव्वेए जाइ कासेणं उव्वेए धस्सायणिज्जे विस्सायणिज्जे पीणणिज्जे दीयणिज्जे बप्पणिज्जे मयणिज्जे बिहगिज्जे सव्विदिय-गाय-पल्हायणिज्जे ।

‘अहो देवानुप्पियो ! यह मनोज्ञ धन, पान, खादिम धीर स्वादिम उत्तम वर्ण से युक्त है यावत् उत्तम स्पर्श से युक्त है, अर्थात् इसका रूप, रस, गंध धीर स्पर्श सभी कुछ श्रेष्ठ है, यह आस्वादन करने योग्य है, विशेष रूप से आस्वादन करने योग्य है । पुष्टिकारक है, बल को दीप्त करने वाला है, दर्प उत्पन्न करने वाला है, काम-मद का जनक है धीर बलवधक तथा समस्त इन्द्रियों को धीर गात्र को विशिष्ट आह्लाद उत्पन्न करने वाला है ।’

६—तए नं ते बह्वे ईसर जाय सत्थवाहपभिइमो जियसत्तु एवं वयासी—‘तहेय नं सामी ! जं नं तुभे पवह । अहो नं इमे धणुण्णे धसनं पाणं लाइमं साइमं धण्णं उव्वेए जाय पल्हायणिज्जे ।

तत्पश्चात् बहुत-से ईश्वर यावत् सायंवाह प्रभृति जितशत्रु से इस प्रकार कहने लगे— ‘स्वामिन् ! आप जो कहते हैं, बात वैसी ही है । अहा, यह मनोज्ञ धन, पान, खादिम धीर स्वादिम उत्तम वर्ण से युक्त है, यावत् विशिष्ट आह्लादजनक है ।’ अर्थात् सभी ने राजा के विचार धीर कथन का समर्थन किया ।

७—तए नं जितसत्तु मुबुद्धिं धमच्चं एवं वयासी—‘अहो नं मुबुद्धो ! इमे धणुण्णे धसनं पाणं लाइमं साइमं जाय पल्हायणिज्जे ।’

तए नं मुबुद्धी जियसत्तुस्सेयमद्धं नो पाढाइ, जाय [नो परिधानाइ] तुत्तिणीए संचिट्ठइ ।

तत्पश्चात् जितशत्रु राजा ने मुबुद्धि धर्मात्थ से कहा—‘अहो मुबुद्धि ! यह मनोज्ञ धन, पान, खादिम धीर स्वादिम उत्तम वर्ण से युक्त धीर यावत् समस्त इन्द्रियों को एव गात्र को विशिष्ट आह्लादजनक है ।’

तब मुग्ध धमात्य ने जितगन्तु के इस धर्य (कथन) का आदर (अनुमोदन) नहीं समर्थन नहीं किया, वह चुप रहा।

३—तएवं त्रयसत्तया मुमुक्षो बोधं वि तच्चं वि एवं धत्ते समाणे त्रयसत्तुं ।  
 १ क्यासी—'नो सत्तु सामो । ग्रह एयसि मण्णसि समण-पाण-साहम-साहमंति केइ  
 २ एवं सत्तु सामो । मुग्घिसहा वि पण्णता बुद्धिसहाए परिणमंति, बुद्धिसहा वि पोमल  
 ३ सहसाए परिणमंति । मुक्खा वि पोमलता दुक्खसाए परिणमंति, दुक्खा वि पोमलता मु  
 परिणमंति । मुग्घिगंधा वि पोमलता बुग्घिगंधसाए परिणमंति, बुग्घिगंधा वि पोमलता मुग्घि  
 परिणमंति । मुरता वि पोमलता मुरससाए परिणमंति, मुरसा वि पोमलता मुरससाए परि  
 मुहसाता वि पोमलता मुहसाससाए परिणमंति, मुहसाता वि पोमलता मुहसाससाए परि  
 पण्णो-बोत्तसपरिणया वि य न सामो । पोमलता पण्णता ।'

जितगन्धु राजा के द्वारा दूसरी बार और तीसरी बार भी इसी प्रकार कहने पर सुमुनि ने जितगन्धु राजा से इस प्रकार कहा—‘स्वामिन् ! मैं इस मनोम घटान, पान, खादि स्वादिम मे तनिक भी विस्मित नहीं हूँ। हे स्वामिन् ! मुरभि ( उत्तम-गुण ) गन्ध वाले भी दुरभि ( प्रगुण ) गन्ध के रूप में परिणत हो जाते हैं और दुरभि गन्ध वाले पुद्गल भी मुद्गल के रूप में परिणत हो जाते हैं। उत्तम रूप वाले पुद्गल भी खराब रूप के रूप में परिणत हैं और खराब रूप वाले पुद्गल उत्तम रूप के रूप में परिणत हो जाते हैं। मुरभि गन्ध पुद्गल दुरभि गन्ध के रूप में परिणत हो जाते हैं और दुरभि गन्ध वाले पुद्गल भी मुरभि रूप में परिणत हो जाते हैं। मुन्दर रस वाले भी पुद्गल खराब रस के रूप में परिणत हो और खराब रस वाले भी पुद्गल मुन्दर रस वाले पुद्गल के रूप में परिणत हो जाते हैं। पुद्गल वाले भी पुद्गल प्रगुण स्पर्श वाले पुद्गल बन जाते हैं और प्रगुण स्पर्श वाले पुद्गल भी पुद्गल वाले बन जाते हैं। हे स्वामिन् ! सब पुद्गलों में प्रयोग ( जीव के प्रयत्न ) से और विसृष्टा ( स्व रूप से ) परिणमन होता ही रहता है ।

६-तए णं मे त्रियसत्तु सुमुत्तिस्स समक्खस्स एवमरहस्यमाणरस्स एवमद्दुं नो आ परिमाणइ, तुमिणोए संचिद्दइ ।

उस समय राजा जितशत्रु ने ऐसा कहने वाले सुबुद्धि धर्मात्य के इस कथन का या किया, धनमोदन नहीं किया और वह धुपचाप बना रहा।

विवेचन—इन सूची में जो कुछ कहा गया है वह सामान्य-सी बात प्रतीत होती है गंभीरता में उतर कर विचार करने पर ज्ञात होगा कि इस निरूपण में एक भ्रति महत्त्वपूर्ण निहित है। सुबुद्धि प्रमात्य सम्पद्गृष्टि, तत्त्व का ज्ञाता और श्रावक था, अतएव सामान्य दृष्टि से उसकी दृष्टि भिन्न थी। वह किसी भी वस्तु को केवल चर्म-चयुधों से नहीं बरन् दृष्टि से देखता था। उसकी विचारणा तात्त्विक, पारम्परिक और समीचीन थी। यही कारण कि उसका विचार राजा जितस्यू के विचार से भिन्न रहा। सम्पद्गृष्टि के योग्य निर्भोक्त उद्यम थे, अतएव उसने अपनी विचारणा का कारण भी राजा को कह दिया। इस प्रकार इस

से सम्मगृष्टि और उसमें इतर जनों के दृष्टिहीनता का धार ममभा जा सकता है। सम्मगृष्टि आत्मा भोजन, पान परिधान आदि के साधनभूत पदार्थों के नास्तिक स्वरूप का जाना होता है। उसमें राग-द्वेष की ग्लानता होती है, अतएव यह समभारी होता है। किन्तु उन्मुक्त के उन्मोह में नही चकित-विस्मित होता है और न पीडा, दुःख या दुर्गति का अनुभव करता है। यह यथायं अनुभूत को जान कर अपने समभाव में स्थिर रहता है। सम्मगृष्टि जीव को यह व्यावहारिक तपोही है।

१०—तएवं से जियसत्तं पण्णया कयाइ ण्हाए आसत्तं धवरणए भट्ठया नञ्जामत्तए आसत्तं वाहणियाए निज्जायमाणे तस्सं करिहोवगस्सं अन्नरसाभतेणं योईयमइ ।

तएवं जियसत्तं राया तस्सं करिहोवगस्सं अन्नभेणं गंधेणं अभिभूए तमाणे तएवं उत्तमिणे आसत्तं पिहेइ, एतंतं अयक्कमइ, ते बह्वे ईतर जाव पमिइओ एवं ययासी—‘अहो णं देवानुप्पिा ! इमे करिहोवए अमणुप्णे वण्णेणं गंधेणं रसेणं फासेणं । से जहानामए अहिमइइ वा जाव अमणामत्तराए चैव गंधेणं पण्णत्ते ।’

तत्पश्चात् एक बार किसी समय जितशत्रु स्नान करके, (विभूषित होकर) उत्तम पद की पीठ पर सवार होकर, बहुत-से भटों-गुप्तों के साथ, पुङ्गवारी के लिए निकला और उसी क्षण के पानी के पास पहुँचा ।

तब जितशत्रु राजा ने खाई के पानी की अनुभूति गंध से घबरा कर अपने उत्तरीय बन्धे मुँह ढँक लिया । वह एक तरफ चला गया और साथी राजा, ईश्वर यावत् सार्ववाह वगैरह से इस प्रकार कहने लगा—‘अहो देवानुप्पिा ! यह खाई का पानी बर्ण, गंध, रस और स्पर्श से भ्रमनोन्न-भ्रत्यन्त अनुभूति है । जैसे किसी सर्प का मृत कलेवर हो, यावत् उससे भी अधिक भ्रमनोन्न है, भ्रमनोन्न गंध वाला है ।’

११—तएवं से बह्वे राईतर जाव सत्तं वाहपमिइओ एवं ययासी—‘तह्ये जंतं सानो ! जं णं तुरभे वयह, अहो णं इमे करिहोवए अमणुप्णे वण्णेणं गंधेणं रसेणं फासेणं, से जहानामए अहिमइ इ वा जाव अमणामत्तराए चैव गंधेणं पण्णत्ते ।’

तत्पश्चात् वे राजा ईश्वर यावत् सार्ववाह आदि इस प्रकार बोले—‘स्वामिन् ! आप जो ऐसा कहते हैं सो सत्य ही है कि—अहो ! यह खाई का पानी, बर्ण, गंध, रस और स्पर्श से भ्रमनोन्न है । यह ऐसा भ्रमनोन्न है, जैसे सर्प आदि का मृतक कलेवर हो, यावत् उससे भी अधिक भ्रमनोन्न भ्रत्यन्त गंध वाला है ।’

१२—तएवं से जियसत्तं सुवुडि अमच्चं एवं ययासी—‘अहो णं सुवुडो ! इमे करिहोवए अमणुप्णे वण्णेणं से जहानामए अहिमइइ वा जाव अमणामत्तराए चैव गंधेणं पण्णत्ते ।’

तएवं सुवुडो अमच्चे जाय तुत्तिणीए संचिट्ठइ ।

तत्पश्चात् अर्थात् राजा, ईश्वर आदि ने जब जितशत्रु की हार में ही मिला दी, तब राजा जितशत्रु ने सुवुडि भ्रमण से इस प्रकार कहा—‘अहो सुवुडि ! यह खाई का पानी बर्ण आदि से भ्रमनोन्न है, जैसे किसी सर्प आदि का मृत कलेवर हो, यावत् उससे भी अधिक भ्रमनोन्न भ्रत्यन्त गंध वाला है ।’

तब मुबुद्धि भ्रमात्प इस कथन का समर्थन न करता हुआ मोन रहा ।

१३—तए णं से जियसत्तू राया मुबुद्धि अमच्चं बोच्च पि तच्चं पि एवं वयासी—‘अहो णं तं चैव ।’

तए णं से मुबुद्धी अमच्चे जियसत्तूणा रण्णा दोच्चं पि तच्चं पि एवं वृत्ते समाणे एवं वयासी—‘नो खलु सामी ! अमत्तं एयंसि फरिहोदयंसि केइ बिम्हए । एवं खलु सामी ! मुम्भिसइया वि पोम्भत्ता बुम्भिसइत्ताए परिणमंति, तं चैव जाव पम्भोग-वीससापरिणया वि य णं सामी । पोम्भत्ता पण्णत्ता ।’

तब जितसत्तू राजा ने मुबुद्धि भ्रमात्प से दूसरी बार और तीसरी बार भी इसी प्रकार कहा—‘अहो मुबुद्धि ! यह खाई का पानी भ्रमनोज है’ इत्यादि पूर्ववत् ।

तब मुबुद्धि भ्रमात्प ने जितसत्तू के दूसरी बार और तीसरी बार ऐसा कहने पर इस प्रकार कहा—‘स्वामिन् ! मुझे इस खाई के पानी के विषय में—इसके मनोज या भ्रमनोज होने में कोई विस्मय नहीं है । क्योंकि शुभ शब्द के पुद्गल भी अनुभूत रूप में परिणत हो जाते हैं, इत्यादि पहले के समान सब कथन यहाँ समझ लेना चाहिए, यावत् मनुष्य के प्रयत्न से और स्वाभाविक रूप से भी पुद्गलों में परिणमन होता रहता है, ऐसा (जिनामम में) कहा है ।

१४—तए णं जितसत्तू राया मुबुद्धि अमच्चं एवं वयासी—‘मा णं तुमं देवानुप्पिया ! अप्पाणं च परं च तवुमये च बहूहि य असम्भादुम्भावणाहि मिच्छताभिनिवेशेण य भुग्गाहेमाणे वुप्पाएमाणे बिहराहि ।’

तत्पश्चात् जितसत्तू राजा ने मुबुद्धि भ्रमात्प से इस प्रकार कहा—‘देवानुप्पिय ! तुम अपने आपको दूसरे की ओर स्व-पर दोनों की, असत् वस्तु या वस्तुधर्म की उद्भावना करके अर्थात् असत् को सत् के रूप में प्रकट करके और मिथ्या अभिनिवेश (दुराग्रह) करके भ्रम में मत डालो, अज्ञानियों की ऐसी सीख न दो ।’

१५—तए णं मुबुद्धिस्स इमेयाहवे अज्झरियए जाव समुप्पज्जियए—‘अहो णं जितसत्तू सत्ते तच्चे तहिए भवितहे सम्भूते जिणपण्णत्ते नावे णो उवत्तमइ, त सेयं खलु मम जियसत्तूस्म रण्णो संताणं तच्चानं तहियाणं भवितहाणं सम्भूताणं जिणपण्णत्ताणं भावाणं अभिगमणद्वयाए एपमदुं जवाइणावेत्तए ।’

जितसत्तू की बात सुनने के पश्चात् मुबुद्धि की इस प्रकार का अध्यवसाय-विचार उत्पन्न हुआ—‘अहो ! जितसत्तू राजा सत् (विद्यमान) तत्वरूप (वास्तविक), तथ्य (सत्य) भवितव्य (अभिध्या) और सद्भूत (विद्यमान स्वरूप वाले) जिन भगवान् द्वारा प्ररूपित भावों को नहीं जानता—नहीं अंगीकार करता । अतएव मेरे लिए यह श्रेयस्कर होगा कि मैं जितसत्तू राजा को सत्, तत्वरूप, तथ्य, भवितव्य और सद्भूत जिनेन्द्रप्ररूपित भावों (धर्मों) को समझाऊँ और इस बात को अंगीकार कराऊँ ।’

१६—एवं संपेहेइ, सपेहिता पच्चइएहि पुरिसेहि सडि अंतरावणाओ नवए धइए पइए य



रहवा धम्मयन : उदक ]

तत्पश्चात् सुबुद्धि भ्रमात् उस उदकरत्न के पास पहुँचा । पहुँच कर हथेली पर उदकरत्न को धारण किया ।

तत्पश्चात् सुबुद्धि भ्रमात् उस उदकरत्न के पास पहुँचा । पहुँच कर हथेली पर उदकरत्न को धारण किया । धास्वादन करके उसे मनोज वर्ण से युक्त, गंध से युक्त, रस से युक्त, स्वाद से युक्त, आस्वादन करने योग्य यावत् सब इन्द्रियों को प्रीति प्राप्त करने वाला माना । फिर उसने उस को संवारने (भूस्वादु बनाने) वाले द्रव्यों से उसे सँवारनाया । संवार कर जितगन्धु राजा के जलगृह के कर्मचारी को बुलवाया ।

देवानुग्रिय ! तुम यह उदकरत्न ले जाओ । इसे ले जाकर राजा जितगन्धु के पास पहुँचाओ । उन्हें पीने के लिए देना ।

उदकरत्न को ले जाओ ।

उदकरत्न को ले जाओ ।

उदकरत्न को ले जाओ ।

उदकरत्न को ले जाओ ।

उदकरत्न को ले जाओ ।

उदकरत्न को ले जाओ ।

उदकरत्न को ले जाओ ।

उदकरत्न को ले जाओ ।

उदकरत्न को ले जाओ ।

उदकरत्न को ले जाओ ।

उदकरत्न को ले जाओ ।

उदकरत्न को ले जाओ ।

उदकरत्न को ले जाओ ।

उदकरत्न को ले जाओ ।

उदकरत्न को ले जाओ ।

उदकरत्न को ले जाओ ।

उदकरत्न को ले जाओ ।

उदकरत्न को ले जाओ ।

उदकरत्न को ले जाओ ।

उदकरत्न को ले जाओ ।

उदकरत्न को ले जाओ ।

उदकरत्न को ले जाओ ।

उदकरत्न को ले जाओ ।

१६—तए न से पाणिपयसि सुबुद्धिस्स एयमहुं पडिमुणेद, पडिमुणिगिण्हाह, गिणिह्ना जियसत्तुस्म रत्नो भोपणवेसाए उवहुयेद ।

तए न से जियसत्तु राया तं विपुलं घसण पाणं छादमं सादमं धासाएमा

जिमियभुत्तराए न जाय परममुहभूए तंति उदयरयणे जायविह्व

जाय एवं वयासी—'ग्रहो नं देवानुप्पिया' इमे उदयरयणे ग्रह्ये जाय सत्विदिय

तए नं बहवे राईसर जाय एवं वयासी—'तहेव नं सामो । जं नं तुम्हे व

पह्वापणिग्गे ।'

तत्पश्चात् जलगृह के उस कर्मचारी ने सुबुद्धि के इस प्रश्न को अंगीकार करके वह उदकरत्न ग्रहण किया और ग्रहण करके जितगन्धु राजा के भवन उपस्थित किया ।

तत्पश्चात् जितगन्धु राजा उस विपुल घसन, पान, खादिम और स्वाद करवा हुआ विचार रहा था । जीम बुद्धि के अनन्तर प्रत्यन्त शुचि-स्वच्छ होकर करने से राजा को विस्मय हुआ । उसने बहुत-से राजा, ईश्वर आदि से यावत् प्रियो ! यह उदकरत्न स्वच्छ है यावत् समस्त इन्द्रियों को प्रीति प्राप्त करने वाला है ।

तब वे बहुत-से राजा, ईश्वर आदि यावत् इस प्रकार कहने लगे—'स्वामिन् ! यह बात ऐसी ही है । यह जलरत्न यावत् आह्लादजनक है ।

२०—तए नं जियसत्तु राया पाणिपयसि सद्दावेद, सद्दाविता एवं वया देवानुप्पिया । उदयरयणे कयो प्रासादए ?

तए नं पाणिपयसि जियसत्तु एवं वयागो—'एस नं सामो । मए उ अंतियायो प्रासादए ।'

तए नं जियसत्तु राया सुबुद्धि भ्रमच्चं सद्दावेद, सद्दाविता एवं वयासी

प्रश्न हो सकता है कि जब सभी पदार्थ-द्रव्य-परिणमनशील हैं तो यहाँ विशेष रूप से का ही उल्लेख क्यों किया गया है ? इस प्रश्न का उत्तर इस प्रकार है—परिणमन तो सभी में होता किन्तु अन्य द्रव्यों के परिणमन से पुद्गल के परिणमन में कुछ विशिष्टता है। पुद्गल द्रव्य के अंश में संयोग-वियोग होता है, अर्थात् पुद्गल का एक स्कंध (पिण्ड) टूट कर दो भागों में विभक्त हो सकता है, दो पिण्ड मिलकर एक पिण्ड बन जाता है, पिण्ड में से एक परमाणु—उसका निरंग अंग निकल सकता है। वह कभी कभी पिण्ड में मिल कर स्कंध रूप धारण कर सकता है। इस प्रकार पुद्गल द्रव्य के प्रदेशों में हीनाधिकता, मिलना-विछुड़ना होता रहता है। किन्तु पुद्गल के सिवाय अन्य द्रव्यों में इस प्रकार का परिणमन नहीं होता। जीव, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय आदि के प्रदेशों में हीनाधिकता होती है, न संयोग या वियोग होता है। उनके प्रदेश जितने हैं उतने ही काल अवस्थित रहते हैं। अन्य द्रव्यों के परिणमन से पुद्गल के परिणमन की इसी विशिष्टता कारण सभवतः यहाँ पुद्गल का विशेष रूप से उल्लेख किया गया है।

दूसरा कारण यह हो सकता है कि प्रस्तुत में वर्ण, गंध, रस और स्पर्श के संबंध में इस किया गया है और ये चारों गुण केवल पुद्गल में ही होते हैं, अन्य द्रव्यों में नहीं।

यहाँ एक तथ्य और ध्यान में रखने योग्य है। वह यह कि प्रत्येक द्रव्य का गुण भी द्रव्य के ही तरह नित्य—अविनाशी है, परन्तु उन गुणों के पर्याय, द्रव्य के पर्यायों की भाँति परिणमनशील हैं। वर्ण पुद्गल का गुण है। उसका कभी विनाश नहीं होता। काला, पीला, हरा, नीला और सफ़ेद वर्ण-गुण के पर्याय हैं। इनमें परिवर्तन होता रहता है। गंध गुण स्पर्श है, सुगन्ध और दुर्गन्ध उसके पर्याय हैं। अतएव गंध नित्य और उसके पर्याय अनित्य हैं। इसी प्रकार रस और स्पर्श के संबंध में समझ लेना चाहिए।

परिणमन की यह धारा निरन्तर, क्षण-क्षण, पल-पल, प्रत्येक समय, प्रवाहित होती रहती है किन्तु सूक्ष्म परिणमन हमारी दृष्टि में नहीं आता। जब परिणमन स्थूल होता है तभी हम उसे देख पाते हैं, ठीक उसी प्रकार जैसे कोई सिंगु पल-पल में वृद्धिगत होता रहता है किन्तु उसकी वृद्धि का अनुभव हमें तभी होता है जब वह स्थूल रूप धारण करती है।

मुबुद्धि प्रधान ने राजा जितवान् के समक्ष यही तत्त्व रक्खा। इस तत्त्व का प्रतिभास जिनागम में ही किया गया है, अन्यत्र नहीं। जितवान् के पूछने पर मुबुद्धि ने यह बात भी स्पष्ट कर दी है।

२२—तए णं जियसत्तु मुबुद्धि एय वयासी—‘इच्छामि णं देवानुप्पिया ! तव प्रतिप जिनवयण निरामेत्तए ।’

तए णं मुबुद्धी जियसत्तु इत्त विचित्तं केवलपन्नत्तं चाउज्जामं धम्मं परिकहेह, तमाइसत्त जहा जीवा यज्जति जाव पंच भणुव्वयाह ।

तत्त्वस्वान् जितवान् राजा ने मुबुद्धि से कहा—‘देवानुग्रिय ! तो मैं तुमसे जिनवचन मुनना चाहता हूँ ।’

तब मुबुद्धि भंजी ने जितवान् राजा को केवली-भाषित चानुयाम रूप मद्भुत धर्म कहा। यिन प्रकार जीव कर्म-बन्ध करने हैं, यावन् पांच भणुवन हैं, इत्यादि धर्म का कथन किया।



२३—तए ण जियसत्त सुवुद्धिस्स अतिए धम्म सोच्चा जितम्म हट्ठुद्ध सुवुद्धि धमस्स एवं  
 ासी—सहहामि णं देवाणुप्पिया ! निग्गयं पावयण जाव से जहेयं तुमं वयह, तं इच्छामि णं तव  
 तए पंचाणुव्वयं सत्त तिक्खलाव्वयं जाव उवसंपज्जिता णं विहरितए ।’

‘महामुहं देवाणुप्पिया ! मा पट्ठिबंधं करेह ।’

रूपित

ता है ।

११ पुन कश्चिद् ॥ ५६ ॥ १०१ ॥ १०२ ॥ १०३ ॥ १०४ ॥ १०५ ॥ १०६ ॥ १०७ ॥ १०८ ॥ १०९ ॥ ११० ॥  
 के विचरने की प्रशिक्षणा करता है ।’

(सब सुवुद्धि प्रधान ने कहा-) हे देवानुप्रिय ! जंतु सुख उपजे वेंसा करो, प्रतिबंध मत करो ।

२४—तए णं से जियसत्त राधा सुवुद्धिस्स अमच्चस्स अतिए पंचाणुव्वयं जाव बुवात्तसिहं  
 वययम्म पट्ठिउज्जह । तए ण जियसत्त समणोवासए जाए धम्मियमोवाजीवे [ जाव उवसत्तपुण्णपावे  
 सय-संवर-निज्जर-किरिया-अहिमरण-बंध-मोक्खकुसले असहेज्जे देवापुर-नाग-जख-रखस-  
 ण्णार-किपुरित्त-गहल-नामस्स-महोरमाइएहि देवगणेहि निग्गयाओ पावमणाओ अणइक्कमाज्जे  
 गंवे पावयणे जिस्सकिए निक्कलए निव्वर्तिगच्छे तद्धट्ठे गहियट्ठे पुच्छियट्ठे मभिगयट्ठे  
 निच्छियट्ठे अट्ठि-मिज्जेमणुरागरत्ते अयमाउसो ! निग्गये पावयणे अट्ठे, अय परमट्ठे, सेसे अणट्ठे,  
 सिक्कलहे अवंगुम-बुवारे अयत्त सेउर-परघरवारप्पवेसे चाउहसट्ठमुहट्ठ-पुण्णमात्तणोसु पाठपुण्ण  
 सहं सम्म अणुपालेपाणे समणे निग्गये कामु-एसणिज्जेण अत्तण-पाण-आइम साइमेण ओसह-भेत्तज्जेण  
 विहारिएण प पीड-कलम-सेज्जा-सव्वारएण ] पट्ठिसाभेमाणे विहरह ।

तत्पश्चात् जितशत्रु राजा ने सुवुद्धि भगवत् से पांच अनुव्रत वाला (और सात शिक्षाव्रत वाला)  
 वत् बारह प्रकार का थावकधर्म अंगीकार किया । तत्पश्चात् जितशत्रु थावक हो गया, जीव-  
 नीव का जाता हो गया (पुण्य, पाप, आसव, संवर, निर्जरा, क्रिया, अधिकरण (पाप के नाशन),  
 और मोक्ष में कुशल, किसी की सहायता की अपेक्षा न रखने वाला, देव असुर नाग यक्ष राक्षस  
 और किटुष्य गहड़ गन्धर्व महोरग आदि देवगणों द्वारा भी निग्रन्थप्रवचन का प्रतिफल न करने  
 ला, निग्रन्थप्रवचन में सका, काक्षा, विचिकित्सा से रहित, अर्थो-पदाथों को भलीभाँति जानने  
 ला, मूढकर समझने वाला, निश्चित कर लेने वाला, निग्रन्थ प्रवचन में गहरे अनुदाग वाला,  
 पुष्पन् ! यह निग्रन्थ प्रवचन ही अर्थ और परमार्थ है, दोष धनार्थ हैं, ऐसी श्रद्धा वाला, घर की  
 गल को ऊपर कर देने वाला, दानादि के लिए द्वार खुला रखने वाला, दूसरे के घर में जाने पर उसे  
 लि उपजाने वाला, चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या और पूर्णिमा को पोषधव्रत का सम्यक् प्रकार से  
 नन करने वाला, निग्रन्थ अर्थों को प्रासुक और एषणीय भजन, पान, खादिय, स्वादिय, शीघ्र,  
 ज, प्रतिहारो पीड़ा पाट, उपाश्रय एवं सत्कारक) दान करता हुआ रहने लगा ।

विवेचन—आवकधर्म भूमि कुल में उत्पन्न होने—जन्म लेने से नहीं आता । वह जातिगत  
 श्रेष्ठता भी नहीं है । प्रस्तुत सूत्र स्पष्ट निर्देश करता है कि आवक होने के लिए सर्वप्रथम वीतराग-  
 रूपित तत्त्वस्वरूप पर श्रद्धा होनी चाहिए । वह श्रद्धा भी ऐसी भवत, अटल हो कि मनुष्य तो क्या,  
 भी उसे भंग न कर सके । साथ ही उसे आसव, बन्ध, निर्जरा, मोक्ष आदि का सम्यक् ज्ञाता भी

होना चाहिए। मुमुक्षु को जिनागमप्ररूपित नौ तत्त्वों का ज्ञान अनिवार्य है। उसे इतना समझना चाहिए कि देवगण ढिगाने का प्रयत्न करके थक जाएँ, पराजित हो जाएँ किन्तु ईश्वर श्रद्धान और अनुष्ठान से ढिगे नहीं।

मनुष्य जब श्रावकपद को अंगीकार करता है—श्रावकवृत्ति स्वीकार कर लेता है—य उसके आन्तरिक जीवन में पूरी तरह परिवर्तन हो जाता है और आन्तरिक जीवन में परिवर्तन होने पर बाह्य व्यवहार में भी स्वतः परिवर्तन आ जाता है। उसका रहन-सहन, मान-सौल-चाल आदि समस्त व्यवहार बदल जाता है। श्रावक मानो उसी शरीर में रहता हुआ भी दूसरा जीवन प्राप्त करता है। उसे समग्र जगत् वास्तविक स्वरूप में दृष्टि—गोचर होने लगता है। उसे प्रवृत्ति भी तदनुकूल ही हो जाती है : राजा प्रदेवी आदि इस तथ्य के उदाहरण हैं।

निर्ग्रन्थ मुनियों के प्रति उसके अन्तःकरण में कितनी गहरी भक्ति होती है, यह मूल में प्रस्तुत सूत्र में उल्लिखित कर दिया गया है।

इस मूल से राजा और उसके मन्त्री के बीच किस प्रकार का सम्बन्ध प्राचीन काल में हुआ या घपया होना चाहिए, यह भी विदित होता है।

२५—तेणं कालेणं तेणं समएणं येरा जेणेयं चंपा नयरी जेणेय पुण्णमह्वेए तेणं तमोसडे, जियसत्तु राया मुमुक्षो य निग्गच्छइ। मुमुक्षो धम्मं सोच्चा ज नयरं जियसत्तु देवानुप्पिया जाय पययामि। महागुहं देवानुप्पिया।

उस काल और उस समय में, जहाँ चम्पा नगरी और पूर्णभद्र चैत्य था, वहाँ स्थिर मुनि पधारें। विजयानु राजा और मुमुक्षु उनको वन्दना करने के लिए निकले। मुमुक्षु ने धर्मोपदेश देकर (निवेदन किया—) 'मैं विजयानु राजा से पूछ लूँ—उनकी आज्ञा से लूँ और फिर बोधा जगोई करूँगा। तब स्थिर मुनि ने कहा—देवानुप्रिय ! जैसे मुख अपने चेहरे करो।'

२६—तए णं मुमुक्षो अमच्छे जेणेय जियसत्तु राया तेणेय उवागच्छइ, उवागच्छिता इह वयासी—एवं छनु सामो ! मए येराणं अतिए धम्मो निससे, ते वि य धम्मो इच्छिए पच्छिच्छिए इच्छिक्क पच्छिच्छिए तए णं अहं सामो ! समारभउच्चिण्णे, भोए अम्म-मरणायणं, इच्छामि ण मुमेहं आनणुप्पिया सामो जाइ पउत्तए।

तब वह जियसत्तु राया मुमुक्षु समक्ष एवं वयासी—अच्छामु ताव देवानुप्रिया ! कहनाई जाय भूँजमाना तबो पच्छा एणयो येराण अतिए मुझे भविता जाय पयइसामो।

विजयानु मुमुक्षु समक्ष विजयानु राजा के नाम गया और बोला—'सामिन् ! मेरा कहनाई मुनि से धर्मोपदेश करना है और उस धर्म को मैंने पुनः पुनः इच्छा की है। इन कहनाई इच्छावन्त ! मैं नकार—अच्छा कहने नहीं पा रहा अम्म-मरण को निरन्तरता के साथ उठाऊँ दूँगा है। उवा अम्म-मरण ने मरनीय दूँगा है। परतः आपकी आज्ञा पाकर स्थिरा के निवेदन के अनुसार करनी चाहता हूँ।'

२७—इह पययामि न भवइ अहं न भवइ अहं न भवइ—देवानुप्रिय ! धर्मो मुमुक्षोः ॥

गौरवपूर्ण धर्ममय : उसके  
 भावत् भोग भोगते हुए ठहरो, उसके अनन्तर हम दोनों साथ-साथ स्थविर मुनियों के निकट मुंडित  
 होकर प्रणम्य अंगीकार करेंगे ।

२७—तए नं मुबुद्धी भ्रमच्छे जियसत्तुस्स रण्णो एयमट्ठं पडिमुण्हे । तए नं तस्स जियसत्तुस्स  
 रण्णो मुबुद्धिणा सट्ठि विपुलाइं माणुस्सगाइं भोगभोगाइं पक्कणुंभवमाणस्स दुवालस बसाइं  
 वोइषकंताइं ।

तेणं कात्तेणं तेणं समएणं येरागमणं, तए न जियसत्तु धम्मं सोच्चा एवं नं नवरं  
 देवानुप्पिया ! मुबुद्धि आगतेमि, जेहुपुत्तं रज्जे ठवेमि, तए नं तुम्हं जाव पक्वयामि । 'महासुह  
 देवानुप्पिया !'

तए नं जियसत्तु राया जेणव सए गिहे (तेणव) उवागच्छइ, उवागच्छिता मुबुद्धि सहावेइ,  
 सहाविता एवं बयासी—'एवं तसु मए येराणं जाव पक्वज्जामि, तुमं नं किं करेति ?'

तए नं मुबुद्धी जियसत्तु एवं बयासी—'जाव के अग्ने आहारे वा जाव पक्वयामि ।'

तब मुबुद्धि भ्रमात्य ने राजा जितशत्रु के इस भयं को स्वीकार कर लिया । तत्पश्चात् मुबुद्धि  
 प्रधान के साथ, जितशत्रु राजा को मनुष्य सबंधी कामभोग भोगते हुए बारह वर्ष व्यतीत हो गये ।

तत्पश्चात् उस काल घोर उस समय में स्थविर मुनि का आगमन हुआ । तब जितशत्रु ने धर्मो-  
 पदेश सुन कर प्रतिबोध पाया, किन्तु उसने कहा—'देवानुप्रिय ! मैं मुबुद्धि भ्रमात्य को दीक्षा के लिए  
 आमंत्रित करता हूँ और ज्येष्ठ पुत्र को राजसिंहासन पर स्थापित करता हूँ तदनन्तर आपके निकट  
 दीक्षा अंगीकार करूँगा ।' तब स्थविर मुनि ने कहा—'देवानुप्रिय ! जैसे तुम्हें सुख उपजे वही करो ।'

तब जितशत्रु राजा अपने घर आया । घाकर मुबुद्धि को बुलाया और कहा—'मैंने स्थविर  
 भगवान् से धर्मोपदेश श्रवण किया है । यावत् मैं प्रणम्य ग्रहण करने की इच्छा करता हूँ । तुम क्या  
 करोगे—तुम्हारी क्या इच्छा है ? तब मुबुद्धि ने जितशत्रु से कहा—'यावत् आपके सिवाय मेरा दूसरा  
 कौन आधार है ? यावत् मैं भी सत्कार-भय से उद्भिन्न हूँ, मैं भी प्रणम्य अंगीकार करूँगा ।'

२८—तं जइ नं देवानुप्पिया ! जाव पक्वयह, गच्छह नं देवानुप्पिया ! जेहुपुत्तं च कुट्टं जे  
 ठावेहि, ठावेत्ता सीयं दुक्कहिता नं यमं अतिए जाव पाउज्जभवेह । तए नं मुबुद्धी भ्रमच्छे सीयं  
 जाव पाउज्जभवेह ।

तए न जियसत्तु कीडुं बिमपुरिते सहावेइ, सहाविता एवं बयासी—'गच्छह नं तुम्हे देवानु-  
 प्पिया ! अदीनसत्तुस्स कुमारस्स रायाभितेयं उक्खवेह ।' जाव अग्निसिचंति, जाव पक्वहए ।

राजा जितशत्रु ने कहा—'देवानुप्रिय ! यदि तुम्हें प्रणम्य अंगीकार करनी है तो जाओ  
 देवानुप्रिय ! घोर अपने ज्येष्ठ पुत्र को कुटुम्ब में स्थापित करो और शिविका पर आरुढ़ होकर मेरे  
 समीप प्रकट होओ—आओ, तब मुबुद्धि भ्रमात्य शिविका पर आरुढ़ होकर यावत् राजा के समीप  
 आ गया ।

तत्पश्चात् जितशत्रु ने कोटुम्बिक पुरुषों को बुलाया । बुलाकर उनसे कहा—'जाओ देवानु-  
 प्रियो ! अदीनसत्तु कुमार के राज्याभिषेक की सामग्री उपस्थित—तैयार करो ।' कोटुम्बिक पुरुषों ने

वार मेघ और तूफान बहुत जोर के घाए तो मय लोग उसमें 'गुम गए और निभें हो गए। इस यह है कि जैसे मय लोग उस साता में समा गये, उसी प्रकार देव-सृष्टि देव के शरीर में समा गई।

६—'दबुदुरेणं भंते ! देवेणं सा विख्या देविइडो ऋण्णा सत्ता जाव [ऋणा त्वा] अभिसमन्नागया ?

गीतम स्वामी ने पुनः प्रश्न किया—'भगवान् ! दुर देव ने वह दिव्य देव-सृष्टि किस प्रकार की, किस प्रकार प्राप्त की ? किस प्रकार वह उसके समझ आई ?'

दुर देव का पूर्ववृत्तान्त : नन्द मणिकार

७—'एवं एखु गोयमा । इहेव जंबूद्वीपे बोवे भारहे यासे रायगिहे नामं नगरे हंत्य गुणशीलए चेइए, तस्स णं रायगिहस्स तेणिए नामं राया होरया । तस्य णं रायगिहे णे व मणियारसेट्ठी परिचसइ, अइडे वित्ते जाव' मपरिभूए ।'

भगवान् उत्तर देते हैं—'गीतम । इसी जम्बू द्वीप में, भरत क्षेत्र में, राजगृह नगर था । गुणशील वैश्य था । श्रेणिक राजगृह नगर का राजा था । उस राजगृह नगर में नन्द नामक मणियार (मणियार) सेठ रहता था । वह समृद्ध था, तेजस्वी था और किसी से पराभूत होने वाला नहीं था।

नन्द की धर्मप्राप्ति

८—तेणं कालेणं तेणं समएणं अहं गोयमा समोसडे, परित्ता निग्गया, तेणिए वि एण निग्गए । तए णं से णंडे मणियारसेट्ठी इमोसे कहाए सट्ठडे समाने ण्हाए पायचारेणं जाव सट्ठ वासइ, णंडे धम्मं सोच्चा समणोवासए जाए । तए णं अहं रायगिहाओ पडिनिबल्लते बहिया जयस विहारं विहरामि ।

हे गीतम ! उस काल और उस समय में मैं गुणशील उद्यान में घाया । परिपक्व वन्दन करने के लिए निकली और श्रेणिक राजा भी निकला । तब नन्द मणियार सेठ इस कथा का भ्रम जान कर भ्रमार्थ मेरे आगमन का वृत्तान्त ज्ञात कर स्नान करके विभूषित होकर, पैदल वसता हुआ आया । यावत् मेरी उपासना करने लगा । फिर वह नन्द धर्म सुनकर श्रमणोपासक हो गया भ्रमार्थ उन्ने श्रावकधर्म अंगीकार किया । तत्पश्चात् मैं राजगृह से बाहर निकल कर बाहर जनपदों में विचार करने लगा ।

नन्द की मिथ्यात्वप्राप्ति

९—तए णं से णंडे मणियारसेट्ठी अन्नया कयाइं असाट्ठवंसणेण य मपरजुवासणाए य अण्णुसासणाए य अमुस्सुसणाए य सम्मत्तपज्जवेहिं परिहायमाणेहिं परिहायमाणेहिं मिच्छत्तपज्जवेहिं परिचसइमाणेहिं परिचसइमाणेहिं मिच्छत्तं विष्णुजिवन्ते जाए यावि होत्थया ।

तत्पश्चात् नन्द मणिकार श्रेष्ठी साधुओं का दर्शन न होने से, उनकी उपासना न करने से, उनका उपदेश न मिलने से, और वीतराग के वचन सुनने की इच्छा न होने से, क्रमशः सम्पत्त के पर्यायों की धीरे-धीरे हीनता होती चली जाने से और मिथ्यात्व के पर्यायों की क्रमशः वृद्धि होते रहने से, एक बार किसी समय, मिथ्यात्वी हो गया ।

मन्द का पुष्करिणी-निर्माण-मनोरथ

१०—तएवं जबे मणिपारसेट्टी धनप्राय गिम्हकातसमयसि जेट्टामुसंसि माससि अट्टमभ परिणेतुह, परिणेतुता पोसहसासाए जाय [पोसहिए बभयारी उम्भुबभमणि-मुवण्णे वयवयमास यण्णग-विसेवणे निवित्तसत्ताय-मूसते एगे प्रयोए दधनसयारीवगए] विहरइ ।

तएवं जबेस अट्टमभससि परिणममाणसि तन्हाए ट्टाहाए म धमिन्नयस्त समानस इमेयाक्ये धम्मभयिए जाव समुपवित्तया—‘धन्ना न ते जाय [इतरपभियधो संपुण्णा न ते इतर पभियधो कयया न ते इतरपभियधो कयपुण्णा न ते इतरपभियधो कयवत्तणा न ते इतरपभियधो कयविभवा न ते] इतरपभियधो जेसि न रायगिहस बहिया बह्मो वावोघो पोसतरणीधो जा [रोहियाधो गुंजासियाधो सरपतियाधो] सरसरपतियाधो जस्य न बट्टजणो न्हाइ म पियइ । पाणियं च संवहति । तं सेयं एतु भमं कस्स पाउप्पजायाए सेणियं रायं आपुच्छिता रायगिहस नमरस बहिया उत्तरपुराब्धये विसीनाए वेनारपववस्य धरुरसामते वयुपाइगरोइसंसि भूमिभागसि नं पोसतरिणि जणावेत्तए’ सि कट्ठु एवं सपेहेइ ।

तत्पश्चात् नन्द मणिकार थंष्टी ने कितो समय सोध्म श्रुतु के प्रसर पर, ज्येष्ठ मास में अष्टम भक्त (तेसा) अंगीकार किया । अंगीकार करके वह पोषघाला में [ब्रह्मचर्यपूर्वक, मणि-मुवण के धामपुण्या का त्याग करके, माता, बलक, विसेवन का तथा धारम-समारभ का त्याग कर एकाकी मद्दितीय, दम के संस्कार पर आगीन होकर] विपरने लगा ।

तत्पश्चात् नन्द थंष्टी का अष्टमभक्त जब परिणत हो रहा था—‘पूरा होने को था, तब प्यास और भूख से पीड़ित हुए उसके मन में इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ—‘ये यावत् ईश्वर सायंवाह आदि धन्य हैं, वे ईश्वर आदि पुण्यवासी हैं, वे ईश्वर आदि कृतार्थ हैं, उन ईश्वर आदि ने पुण्य उपाजित किया है, वे ईश्वर आदि गुणदायकमय हैं, वे ईश्वर आदि वैभववासी हैं, जिनकी राजगृह नगर से बाहर बहुत सी बावड़ियाँ हैं, पुष्करिणियाँ हैं, यावत् [वोपिकाएँ—लम्बी बावड़ियाँ, गुंजाति-काएँ-कमल युक्त बावड़ियाँ हैं, सरोवर हैं] सरोवरों की पत्तियाँ हैं, जिनमें बहुतेरे लोग स्नान करते हैं, पानी पीते हैं और जिनमें पानी भर से जाते हैं । तो मैं भी कत प्रभात होने पर श्रेणिक राजा की आज्ञा लेकर राजगृह नगर में बाहर, उत्तरपूर्व दिशा में, वैभार पर्वत से कुछ समीप में, वास्तु शास्त्र के पाठकों के पसंद किसे हुए भूमिभाग में नदा पुष्करिणी खुदवाऊँ, यह मेरे लिए उचित होगा ।’ नन्द थंष्टी ने इस प्रकार विचार किया ।

राजाज्ञाश्रुति

११—एवं सपेहिता कस्स पाउप्पजायाए जाय [रयणीए जाव उट्ठियम्मि मूरे सहसरस्सित्तिम्म दिण्यरे तेयसा जलते] पोसहुं पारेइ, पारिसा न्हाए कयवत्तिकम्मे मित्तणाइ जाय संपरिवुडे महसं जाव [महायं महरिहुं रायारिहुं] पाठुं वेण्हइ, वेण्हिता जेण्णे सेणिए राया तेण्ण उवागच्छइ, उवागच्छिता जाय पाठुं उवट्ठवेइ, उवट्ठवित्ता एवं वयासो—‘इच्छामि नं सामी ! तुम्हेहि अम्भजुन्नाए समाने रायगिहस बहिया जाव जणावेत्तए ।’

‘महामुहुं देवानुप्पिया ।’

इस प्रकार विचार करके, दूसरे दिन प्रभात होने पर [एवं सहसरदिम दिवाकर के तेज से जागृत्यमान होते पर] पोषघ पारा । पोषघ पार कर स्नान किया, बलिकर्म किया, फिर मित्र श्रांति

आदि से यावत् परिवृत्त होकर बहुमूल्य और राजा के योग्य उपहार लिया और श्रेणिक राजा के पास पहुँचा। उपहार राजा के समक्ष रक्खा और इस प्रकार कहा—‘स्वामिन् ! आपकी मनुनी पाकर राजगृह नगर के बाहर यावत् पुष्करिणी खुदवाना चाहता हूँ।’

राजा ने उत्तर दिया—‘जैसे सुप्त उपजे, वंसा करो।’

पुष्करिणीवर्णन

१२—तए नं जंदे सेणिएणं रण्णा अन्नपुण्णए समणे हट्ठ-तुट्ठ रायगिहं मज्झमनें निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता वत्थुपाठयरोइयंसि भूमिभागंसि जंदं पोवखरिणि रण्णाविउं पपत्ते पत्ति होत्था।

तए नं सा जंदा पोवखरिणी अणुपुब्बेणं खणमाणा<sup>१</sup> खणमाणा पोवखरिणी जाया यावि होरा-चाउबकोणा, समतीरा, अणुपुब्बमुजायवप्पसीयत्तजला, संछण्णपत्त-वित्त-मुणाला बहुप्पल-पउम-कुण-नत्तिणी-मुभग-सोगधिय-पुंडरीय-महापुंडरीय-सयपत्त-सहस्सपत्त-पफुल्लकेत्तरोववेया परिहर-अन्न-मत्तछप्पय-अणेग-सउणगण-मिहुण-विधरिय-सदुब्बइय-महुरसरनाइया पासार्इया वरिसणिज्जा अभिरा पडिहया।

तत्पश्चात् नन्द मणिकार सेठ श्रेणिक राजा से आज्ञा प्राप्त करके हट्ट-तुट्ट हुआ। राजगृह नगर के बीचों बीच होकर निकला। निकल कर वास्तुशास्त्र के पाठकों (शिल्प गार के शातामों) द्वारा पसंद किए हुए भूमिभाग में नदा नामक पुष्करिणी खुदवाने में प्रवृत्त हो गया—उन्ने पुष्करिणी का सनन-कार्य आरंभ करवा दिया।

तत्पश्चात् नदा पुष्करिणी अनुक्रम से खुदती-खुदती चतुष्कोण और समान किनारों वाली पूरी पुष्करिणी हो गई। अनुक्रम से उसके चारों ओर: मृमा हुआ परकोटा बन गया, उसका जल गोल हुआ। जल पत्तों, विगततुमों और मृणालों से आच्छादित हो गया। वह यापी बहुत से सिने हुए उत्पल (कमल)<sup>२</sup> पद्म (सूर्यविकासी कमल), कुमुद (चन्द्रविकासी कमल) नलिनी (कमलिनो-मुद्गर कमल), मुभग जातीय कमल, सौगंधिक कमल, पुण्डरीक (श्वेत कमल), महापुण्डरीक, घनपत्र (बो पगुड़ियों वाले) कमल, गह्वयपत्र (हजार पगुड़ियों वाले) कमल की केसर से युक्त हुई। परिहर नामक जल-जनुमों, भ्रमण करने हुए मदी-भ्रमण भ्रमरों और घनेक पक्षियों के युगलों द्वारा किये हुए रावों में उड़ान और मधुर स्वर में वह पुष्करिणी गूँजने लगी। यह सब के मन की प्रसन्न करने वाली दर्शनीय, प्रभिरूप और श्रविरूप हो गई।

वत्थुपाठो ज्ञा विनीच

१३—तए नं मे जंदे मणिगारमेट्ठो जंदाए पोवखरिणीए छउट्ठित्त चत्तारि पत्तसडे रोवाडे। तए नं ते वत्थसंठा अणुपुब्बेणं सारविस्सज्जमाणा य सगोविस्सज्जमाणा य संवत्थियमाणा य वत्थता जाया—इत्था जाव<sup>३</sup> निहुरबन्ना पत्तिया पुत्तिया जाव [पत्तिया हरिपगरेरिज्जमाणा विरो पईव] उडसोनेमाणा उवसोनेमाणा चिट्ठति।

तत्पश्चात् नन्द मणिकार सेठ ने नदा पुष्करिणी की चारों दिशाओं में चार बाग-रवाड़े-नलवाड़े। उन वत्थसंठा की कमल: सन्धि रणवालों को गई, सगोवन—सार-संभाव को गई

तेरहवा ग्रन्थयन : ददुरज्ञात ]

ग्रन्थी तरह उन्हें बढ़ाया गया, अतएव वे वनसण्ड कृष्ण वर्ण वाले तथा शुद्धा रूप हो गये—खूब हो गये । वे पत्तो वाले, पुष्पो वाले यावत् (फलो से युक्त हरे-भरे और अपनी सुन्दरता से अतीव अतीव) शोभायमान हो गये ।

चित्रसभा

१४—तए नं नंदे मणियारसेट्ठी पुरच्छिमिल्ले वणसंडे एगं महं चित्तसभं कारावेड, अणेग-खंसयसंनिविट्ठं पासादीय दरिसणिज्जं अभिरुवं पडिखवं । तस्य नं बहूणि किण्हाणि य जाव (नीलाणि य सोहियाणि य हात्तिहाणि य) सुनिकलाणि य कट्ठकम्माणि य पोत्थकम्माणि य चित्तकम्माणि य लिप्पकम्माणि य गंथिम-वेडिम-पूरिम-संघादमाइ' उवदंसिज्जमाणाइ' उवदंसिज्ज-माणाइ' चिट्ठंति ।

तत्पश्चात् नद मणियार सेठ ने पूर्व दिशा के वनखण्ड में एक विशाल चित्रसभा बनवाई । वह कई सौ खम्भों की बनी हुई थी, प्रसन्नताजनक थी, दर्शनीय थी, अभिरूप थी और प्रतिरूप थी । उस चित्रसभा में बहुत-से कृष्ण वर्ण वाले यावत् नील, रक्त, पीत और शुक्ल वर्ण वाले काण्टकर्म थे—पुतलियाँ वगैरह बनी थी, पुस्तकर्म—वस्त्रों के पर्दे आदि थे, चित्रकर्म थे, लेप्पकर्म—मिट्टी के पुतले आदि थे, ग्रंथित कर्म थे—डोरा बंध कर बनाई हुई कलाकृतियाँ थी, वेष्टितकर्म—पूखों की गेंद की तरह लपेट-लपेट कर बनाई हुई कलाकृतियाँ थी, इसी प्रकार पूरिमकर्म (स्वर्ण-प्रतिमा के समान) और सघातिमकर्म—जोड़-जोड़ कर बनाई कलाकृतियाँ थी । ये कलाकृतियाँ इतनी सुन्दर थी कि दर्शकगण उन्हें एक दूसरे को दिखा-दिखा कर वर्णन करते थे ।

१५—तस्य नं बहूणि आसणाणि य सयणीयाणि य अरथुयपच्चसयुमाइ' चिट्ठंति । तस्य नं बहुवे नडा य णट्टा य जाव (जल्ल-मल्ल-मुट्ठिय-वेत्तवग-कह्य-पवग-लासग-आइवणग-लख-मंख-सुणइल्ल-सुंघवीणिग य) विप्रभइभत्तवेयणा तातायरकम्मं करेमाणा विहरंति । रायगिहविणिग्गओ एत्थ' बहू जणो तेसु पुब्बप्रस्थेसु आसणसयणेसु सन्निसओ स संतुयट्ठो य सुणमाणो य वेच्छमाणो य साहेमाणो य सुहंसुहेणं विहरइ ।

उस चित्रसभा में बहुत-से आसन (बैठने योग्य) और शयन (लेटने-सोने के योग्य) निरन्तर बिछे रहते थे । वहाँ बहुत-से नाटक करने वाले और नृत्य करने वाले, राजा की स्तुति करने वाले, मल्ल-कुस्ती लड़ने वाले, मुष्टियुद्ध करने वाले, विद्रूपक, कथा-कहानी सुनाने वाले, प्लवक-तैराक-नदी में तैरने वाले, रास गाने वाले—रासलीला दिखाने वाले, ग्रथवा भांड, प्राख्यायिक-शुभ-अशुभ फल का निर्देश करने वाले—ज्योतिषी, लख-ऊँचे बास पर चढ़कर खेल करने वाले, मंख-चित्रपट हाथ में लेकर भिक्षा मागने वाले, तूख नामक वाद्य बजाने वाले तथा तूबे की बीणा बजाने वाले पुरुष, जीविका भोजन एवं वेतन देकर रखे हुए थे । वे तालाचर (एक प्रकार का नाटक) किया करते थे । राजगृह पर बाहर सैर के लिए निकले हुए बहुत लोग उस जगह आकर पहले से ही बिछे हुए आसनों और शयनों पर बैठकर और लेट कर कथा वार्ता सुनते थे और नाटक आदि देखते थे और वहाँ की शोभा (आनन्द) का अनुभव करते हुए मुखपूर्वक विचरण करते थे ।

महानसाला

१६—तए नं नंदे मणिपारसेट्ठी वाहिजिल्ले वणसंडे एणं महं महानसमातं कारोडे अणेगलंभसयसप्रिविट्ठं जाय पडिहयं । तस्य नं बहवे पुरिमा विप्रभइभत्तवेयणा विपुलं प्रमनं पान खादमं सादमं उववत्तइति, बहूणं समण-माहण-अतिहि-कियण-वणीमगाणं परिभाएमाणा परिभाएमाणा विहरंति ।

तत्पश्चात् नर मणिपार सेठ ने दक्षिण तरफ के वनगंड में एक बड़ी महानसाला (नोम-साला) बनवाई । वह भी अनेक सैकड़ों गंधों वाली यावत् प्रतिष्ठा (प्रत्यन्त सुन्दर) थी । वहाँ से बहुत-से लोग जीविका, भोजन और वेतन लेकर रसमें गये थे । वे विपुल प्रमन, पान, खादिम और स्वादिम आहार पकाते थे और बहुत-से श्रमणों, ब्राह्मणों, प्रतिथियों, दरिद्रों और भिखारियों को से रहते थे ।

चिकित्साशाला

१७—तए नं नंदे मणिपारसेट्ठी पक्कथियमिल्ले वणसंडे एणं महं तेगिन्दियमल्लं हांढे अणेगलंभसयसप्रिविट्ठं जाय पडिहयं । तस्य नं बहवे वेज्जया य, वेज्जपुत्ता य, जाणुया य, ज्ञानु-पुत्ता य, कुसला य, कुसलपुत्ता य, विप्रभइभत्तवेयणा बहूणं वाहिजाणं, गिलाणाण य, रोगियाण य, दुब्बलाण य, तेइच्छं करेमाणा विहरंति । अण्णे य एस्य बहवे पुरिसा विप्रभइभत्तवेयणा तंति बहूणं वाहिजाणं य रोगियाणं य, गिलाणाण य, दुब्बलाण य ओसह-भेसज्ज-भत्त-पाणेणं पडिपारकम करेमाणा विहरंति ।

तत्पश्चात् नन्द मणिकार सेठ ने पश्चिम दिशा के वनखण्ड में एक विंगाल चिकित्साशाला (घोषघालय) बनवाई । वह भी अनेक सौ गंधों वाली यावत् मनोहर थी । उस चिकित्साशाला में बहुत-से वैद्य, वैद्यपुत्र, जायक (वैद्यक शास्त्र न पढ़ने पर भी अनुभव के आधार से चिकित्सा करने वाले अनुभवों) जायकपुत्र, कुशल (प्रपने तर्क से ही चिकित्सा के ज्ञाता) और कुशलपुत्र आजीविका, भोजन और वेतन पर नियुक्त किये हुए थे । वे बहुत-से व्याधियों (शोक आदि से उत्पन्न चित्त-बीज से पीड़ितों) की, ग्लानों (प्रसक्तों) की, रोगियों (ज्वर आदि से ग्रस्तों) की, और दुर्बलों की चिकित्सा करते रहते थे । उस चिकित्साशाला में दूसरे भी बहुत-से लोग आजीविका, भोजन और वेतन लेकर रखे गए थे । वे उन व्याधियों, रोगियों, ग्लानों, और दुर्बलों की घोषध (एक द्रव्य रूप) और (प्रत्येक द्रव्यों से बनी दवा) भोजन और पानी से सेवा-गुथूसा करते थे ।

प्रसकारसभा

१८—तए नं नंदे मणिपारसेट्ठी उत्तरिल्ले वणसंडे एणं महं प्रलंकारियसमं कारोडे, अचंपलं भसयसप्रिविट्ठं जाय पडिहयं । तस्य नं बहवे अलंकारियपुरिसा विप्रभइ-भत्त-वेयणा बहूणं समणा य, प्रणाहाण य, गिलाणाण य, रोगियाण य, दुब्बलाण य प्रलंकारियकम्मं करेमाणा करेमाणा विहरंति ।

तत्पश्चात् नन्द मणिपार सेठ ने उत्तर दिशा के वनखण्ड में एक बड़ी प्रसकारसभा (हवान्त आदि की सभा) बनवाई । वह भी अनेक सैकड़ों स्तंभों वाली यावत् मनोहर थी । उसमें बहुत-से प्रालंकारिक पुरुष (चरीर का शृंगार करने वाले प्रमूनि पुरुष) जीविका, भोजन और वेतन लेकर रसमें गये थे । वे बहुत-से श्रमणों, घनाधों, ग्लानों, रोगियों और दुर्बलों का प्रसकार कर्म (चरीर की सौभा यज्ञान के कार्य) करते थे ।



१६—तए नं तोए अदाए पोषलरिणोए बहुवे सभाहा म, अणाहा य, पयिया य, पहिया य, ,  
रोडिया य, कारिया य, लणाहारा य, पसहारा य, कट्टहारा य अप्पेगइया ग्हायति, अप्पेगइया  
निधं विपति, अप्पेगइया पाणिम सबहति, अप्पेगइया विमज्जिमसेय-जल्ल-मल्ल-परित्तम-निह-  
इन्निवासा मुहमुहेणं विहरति ।

रामनिहनिगगघो नि जय बहुजणो, कि ते ? जसरमण-विबिह-मज्जण-कयत्तिलपापरम-  
कुमुमसापरय—अणेगसउपणमपरिभित्तकुत्तेसु मुहमुहेणं अनिरममाणो अनिरममाणो विहरइ ।

उस नश पुष्करिणी में बहुत-से सनाप, अनाप, पयिक, पायिक, करोटिका (काबड़ उठाने  
वाले), पयियारे, पत्ता के भार वाले, लकड़हारे आदि आते थे । उनमें से कोई-कोई स्नान करते थे,  
कोई-कोई पानी पीते थे और कोई-कोई पानी भर ले जाते थे । कोई-कोई पसीने, जल (प्रवाही भेल),  
मल (जमा हुआ भेल) परिश्रम, निशा, धुआं और पिपासा का निवारण करके मुसपूर्वक रहते थे ।

नश पुष्करिणी में राजगृह नगर में भी निकले-घाये हुए बहुत-से लोग क्या करते थे ? वे  
लोग जल में स्नान करते थे, विविध प्रकार से स्नान करते थे, कदलीगृहों, लतागृहों, पुष्पमय्या और  
अनेक पक्षियों के समूह के अगोचर छाया में मुक्त नश पुष्करिणी और चारों बगिचों में क्रीडा  
करते-करते बिचरते थे ।

विशेषन—नंद यहिकार ने अपने अष्टमभक्त पोष के अन्तिम समय में मृषा से पीड़ित  
होकर पुष्करिणी गूढ़वाने का विचार किया । इससे पूर्व यह उत्सव था चुका है कि वह साधुओं के  
दर्शन न करने, उनका सम्मान न करने एवं धर्मादेश नहीं सुनने आदि के कारण सम्भवतः निवृत्त  
होकर मिथ्यास्वी बन गया था । इस वर्णन से किमो को ऐसा भय हो सकता है कि पुष्करिणी  
गूढ़वाना तथा पोषधाता आदि की स्थापना करना करवाना मिथ्यादृष्टि का कार्य है—सम्पदृष्टि  
का नहीं, अथवा उसके मिथ्यादृष्टि हो जाने का उत्पन्न करने की क्या आवश्यकता थी ?

किन्तु इस प्रकार का निष्कर्ष निकालना उचित नहीं है, अथवा भी नहीं है । यह तो नंद के  
जीवन में घटित एक घटना का उल्लेख मात्र है । दूसरे, १० व मूत्र में पोष सबंधी अनिवार्य नियमों  
का उल्लेख किया गया है, त्रिनंश एक निग्रम धारंभ-समारम का परित्याग करना भी सम्मिलित  
है । नंद थोड़ी की पोष की समस्या में धारंभ-समारम करने का विचार-चिन्तन-निश्चय नहीं  
करना चाहिए था । किन्तु उसने ऐसा किया और उसकी न आलोचना की, न प्रायश्चित्त किया ।  
उसने एक त्याग्य कर्म को—पोष-समस्या में धारंभ करने की प्रयाज्य समझा, यह विपरीत समझ  
उसके मिथ्यादृष्टि होने का लक्षण है, परन्तु कुवा, वावडी आदि गूढ़वाना या दानपाला आदि  
परोपकार के कार्य मिथ्यादृष्टि के कार्य नहीं समझने चाहिए । साधुओं के लिए भी ऐसे परोपकार  
के कार्य करने का निवेधान करने का आग्रह-आदेश है । मूत्रकृतांग मूत्र प्रथम अतुल्य (अध्ययन ११)  
में ऐसा स्पष्ट उल्लेख है । इसके अतिरिक्त 'रामपसेषिम' मूत्र में कहा गया है कि राजा प्रदेशों जब  
अपने और अध्यात्मिक जीवन में परिवर्तन करते केमोकुमार धर्मण द्वारा धर्मबोध प्राप्त करके धर्म-  
निष्ठ बन जाता है तब वह अपनी सम्पत्ति के चार विभाग करता है—एक सैन्य संबंधी व्यय के  
लिए, दूसरा कोठार-भंडार में जमा करने के लिए, तीसरा भन्त-पुर-परिवार के व्यय के लिए और  
चौथा सांकेतिक हित-परोपकार के लिए । उससे वह दानपाला आदि की स्थापना करता है ।

विशेषतः प्रायुक्तिक काल में अध्यात्म के नाम पर धर्म की सीमाओं को प्रत्यन्त कुंघित बनाया जा रहा है, धर्म का सबध सिर्फ आत्मार्थ (स्वार्थ) के साथ जोड़ा जा रहा है, जनसेवा, दान, दान, परोपकार आदि को धर्म की सीमा में बाहर रखा जाता है, यह दृष्टिकोण अनेकानेक जैनधर्म के अनुकूल नहीं है ।

मन्व की प्रशंसा

२०—तए णं णंदाए पोवखरिणीए बहुजणो ण्हायमाणो य, पोयमाणो य, पाणिंयं च सबहणसे य अग्रमन्नं एवं वयासी—‘धण्णे णं देवानुप्पिया ! णंदे मणियारसेट्ठी, कयस्ये जाय [ णं देवानुप्पिया ! नंदे मणियारसेट्ठी, कयस्यल्लखे णं देवानुप्पिया नंदे मणियारसेट्ठी, कयपुण्णे णं देवाणुप्पिया ते मणियारसेट्ठी, कया णं सोया, सुलढं माणुस्सए ] जम्मजोवियफले, जस्स णं इमेयाक्का वंता पोवखरिणी चाडक्कोणा जाय पडिहवा, जस्स णं पुरस्थिमिल्ले तं चेष सध्वं, चउमु वि वणसंनु ज्ञाय रायगिहविणिग्गमो जस्थ बहुजणो आसणेषु य सयणेषु य सत्तिसप्पो य संतुयट्ठी य वेच्छमाणो य साहेमाणो य सुहंसुहेणं विहरइ, तं धम्मे कयस्ये कयपुण्णे, कया णं सोया ! सुलढं माणुस्सए जम्मजोवियफले नंदस्स मणियारस्स ।’

तए णं रायगिहे संघाडग जाय<sup>१</sup> बहुजणो अन्नमन्नस्स एयमाइक्कइ-धण्णे णं देवानुप्पिया ! णंदे मणियारे सो चेष गममो जाय सुहंसुहेणं विहरइ ।

तए णं णंदे मणियारे बहुजणस्स अंतिए एयमट्ठं<sup>२</sup> सोक्का हट्ठुट्ठे धाराहयकत्तंभं नि सभूससियरोमकूवे परं सायासोक्कलमणुभवमाणे विहरइ ।

तत्पश्चात् नदा पुष्कारिणी में स्नान करते हुए, पानी पीते हुए और पानी भर कर ल जाते हुए बहुत-से लोग आपस में इस प्रकार कहते थे—‘हे देवानुप्रिय ! नन्द मणियार सेठ धन्य है, [नंद मणियार सेठ कृतार्थ है, नद मणियार सेठ कृतलक्षण है, नद मणियार ने इह—परलोक सफल कर लिया है ।] उसका जन्म और जीवन सफल है, जिसकी इस प्रकार की चौकोर यावत् मनोहर वस्त्र नदा पुष्कारिणी है; जिसकी पूर्ण दिशा में वनलक्ष्य है—इत्यादि पूर्वोक्त चारों वनलक्ष्य और उर्वर वनी हुई चारों घाताओं का वर्णन यहाँ कहना चाहिए । यावत् राजगृह नगर से भी बाहर निश्चय कर बहुत-से लोग घातनों पर बैठते हैं, शयनीयों पर बैठते हैं, नाटक आदि देखते हैं और कथा-वातां कहते हैं और गुप्त-पूर्वक विहार करते हैं । अतएव नन्द मणियार का मनुष्य भव सुलब्ध-सराहनीय है और उसका जीवन तथा जन्म भी सुलब्ध है ।’

उस समय राजगृह नगर में भी शृंगारक आदि मार्गों में शर्यात् गली-गली में बहुतेरे लोग परस्पर इस प्रकार कहते थे—देवानुप्रिय ! नद मणियार धन्य है, इत्यादि पूर्ववत् ही कहना चाहिए यावत् जहाँ भाकर लोग सुखपूर्वक विचरते हैं ।

तब नद मणियार बहुत-से लोगों से यह प्रथं (अपनी प्रशंसा की बातें) सुन कर हृष्ट-मुष्ट हुआ । मेष की धारा से आहत कदम्ब वृक्ष के समान उसके रोमरूप विकसित हो गये—उसकी कली-कली सिल उठी । वह मानाजनित परम सुख का अनुभव करने लगा ।

## राक्षस दम्पत्यनः ददुरजान् }

[ की वृत्तता ]

२१—तए नं तस्स नंदस्स मणिवारसेट्ठस्स अन्नया कपाई मरीरप  
उन्मुया, तंजहा—

तासे कासे जारे बाहे, कुच्छिगूले भगंभरे ।

परिता मरीरए बिट्ठि—मुद्धगूले अमारए ।

अच्छिदेवणा कण्ठवेवणा कंडू वज्जरे कोडे ।

तए नं ते जडे मणिवारसेट्ठो मोलसहिं रोगायंकेहि अभिपूते समाने को  
विहत्ता एवं ययासी—‘गच्छह नं तुमहे देवानुप्पिया ! रायगिहे नयरे सिघाड  
या महया मट्ठेनं उगोसेमाणा उगोसेमाणा एवं ययह—‘एवं सलु देवानुप्पिया  
इस्स मरीरपंति मोलस रोगायंका पाउन्मुया, तंजहा—तासे य जाब को  
अणुप्पिया ! वेगजो वा वेगजपुत्तो वा जाणुमो वा जाणुमपुत्तो वा कुत्तो वा  
मवारस्स तेति य मोलसग्हं रोगायंकायं एगमवि रोगायंका उवसामेत्तए, त  
मणिवारो विज्जं प्रायसपयाण दसयइ सि कट्टु, बोक्खं पि तक्कं पि धोस  
इ [ एयमाणसियं ] पक्कप्पिमह ।’ ते वि तहेव पक्कप्पिमति ।

बुद्ध समय के यद्वचन एक बार नंद मणिवार सेठ के मरीर में सोलह  
दे रोग घोर घून भादि घानक उत्पन्न हुए । वे इस प्रकार थे—(१) दब  
) ज्वर (२) दाह-वेतन (३) कुक्षि-घून-कूट का घून (४) भगदर (५) भगं-  
) नेत्रगूल (१०) मस्तरुघून (११) भोजनविषयक प्रवृत्ति (१२) नेत्रवेद  
) कट्टु-मात्र (१३) दकोदर—जलोदर और (१४) कोढ़ ।

नंद मणिवार इन मोलह रोगतर्कों से पीड़ित हुआ । तब उसने  
पिया और कहा—‘देवानुप्पिया ! तुम जाओ घोर राजगृह नगर में शृंगाट  
में मे भर्षात्-गम्भी-मत्तो में ऊंची प्रावाज से घोषणा करते हुए कहो कि—  
एमार थंछी के मरीर में सोलह रोगातक उत्पन्न हुए हैं, यथा-स्वास से को  
रो ! जो कोई बंध या बंधपुत्र, जानकार या जानकार का पुत्र, कुदाल या  
एमार के उन मोलह रोगातको में से एक भी रोगातक को उपशान्त करना  
अुप्पिया ! नंद मणिवार उसे विपुल धन-सम्पत्ति प्रदान करेगा ।’ इस प्रक  
री बार घोषणा करो । घोषणा करके बेरी यह भ्रात्रा वापिस लौटाओ ।  
आनुसार कार्य करके भर्षात् राजगृह की गम्भी-मत्तो में घोषणा करके प्राजा या

२२—तए नं रायगिहे नयरे इमेयाह्व घोसणं सोच्चा एिसम्म यहे  
ताय कुत्तलपुत्ता य सस्यकोस हस्यमया य सितियाहस्यमया य गुत्तियाहस्यमया  
मया य सएहि सएहि मेहेहितो निक्खमंति, निक्खमिन्ता रायगिहं मज्झंम



तए नं गंदे तेहि सोसतेहि रोगायेकहि अभिनूए समाणे नंदा—पोखरिणीए मुच्छिए तिरिबल-  
आणिणीहि निबडाउए, बटपएसिए बट्टुहट्टवसट्टे कासमासे कासं किच्चा नंदाए पोखरिणीए बहू रोए  
भट्टिच्छिति बहू रसाए उबयमरे ।

तत्पश्चात् बहुत-से बंध, बंधपुत्र, जानकार, जानकारो के पुत्र, कुशल और कुशलपुत्र, जब  
उन मोलह रोगो में से एक भी रोग को उपमान्त करने में समर्थ न हुए तो पक गये विग्रह हुए, यावत्  
(प्रायन्त विग्रह हुए और उदास होकर जिधर से आए थे उधर ही) अपने-अपने घर लौट गये ।

नन्द मणिकार उन सोसह रोगांतको से धमिभूत हुआ और नन्दा पुष्करिणी में धतीव  
मूर्छित हुआ । इस कारण उसने तिर्यक् मोनि सम्बन्धी घातु का बन्ध किया, प्रदेशों का बन्ध किया ।  
प्रातः घ्यान् के बगीभूत होकर मृत्यु के समय में काल करके उसी नन्दा पुष्करिणी में, एक मेड़की की  
कूट में मेड़क के रूप में उपाश हुआ ।

विवेचन—मूर्ति, आसक्ति, मोह या राग—इसे किसी भी शब्द से कहा जाय, आत्मा को  
मसीन बनाने एव आत्मा के प्रघ-पतन का एक प्रधान कारण है । नन्द मणिकार ने पुष्करिणी  
बनवाई, चार घालाए स्थापित की । इनमें धर्म का व्यय किया, धर्म का व्यय करने पर भी वह यश—  
कीर्ति की कामना और पुष्करिणी सम्बन्धी आसक्ति का परित्याग न कर सका । कीर्ति-कामना से  
प्रेरित होकर ही उसने अपनी बनवाई पुष्करिणी का नाम अपने नाम पर ही 'नन्दा' रखा । इस  
महान् दुर्बलता के कारण उसका धन-त्याग एक प्रकार का व्यापार-धन्धा बन गया । त्याग धन के  
बदले उसने कीर्ति उपाजित करना चाहा । यश—कीर्ति मुनकर हर्षित होने लगा । अन्तिम समय में  
भी वह नन्दा पुष्करिणी में आसक्त रहा । इस आसक्तिभाव ने उसे ऊपर बढ़ने के बदले नीचे गिरा  
दिया । वह उसी पुष्करिणी में मच्छूक-नर्माय में उत्पन्न हुआ ।

मूल पाठ में 'निबडाउए' और 'बटपएसिए' इन दो पदों का प्रयोग हुआ है । टीकाकार के  
अनुसार दोनों पद चार प्रकार के बन्ध के सूचक हैं । 'बडाउए' पद से प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध और  
अनुभाग बन्ध सूचित किये गये हैं और 'बटपएसिए' पद से प्रदेशबन्ध का कथन किया गया है ।

२४—तए नं गंदे बहू रे गन्नाओ विणिम्मुबके समाणे उम्मुबुत्तात्तावे बिन्नापपरिणयमित्ते  
जोव्वगमणुत्तं नंदाए पोखरिणीए अभिरममाणे अभिरममाणे बिहरइ ।

तत्पश्चात् नन्द मच्छूक गर्भ से बाहर निकला और अनुक्रम से आत्मावस्था से मुक्त हुआ ।  
उसका ज्ञान परिणत हुआ—वह ममज्ञार हो गया और मोघन अवस्था को प्राप्त हुआ । तब नन्दा  
पुष्करिणी में रमण करता विचरने लगा ।

बंध को जानिस्वरगज्ञान

२५—तए नं गंधाए पोखरिणीए बहू जणे प्हायमाणो अ विवमाणो य पाणिंयं संबहमाणो अ  
अन्नमन्नस एवं आइववइ—'धम्मो अ देवानुत्थिपा । जवे मणिपारे जस्स नं इमेयाक्खा नंदा पुक्खरिणी  
चाउवकोणा जाव पडिक्खा, जस्स नं पुरत्थिमित्ते वल्लसंठे चित्तसभा अण्णमसंभसयसन्निविट्ठा त्थेव  
चत्तारि सत्ताओ जाव जम्मजोविमल्लफे ।'

नन्दा पुष्करिणी में बहुत-से लोग स्नान करते हुए, पानी पीते हुए और पानी भर कर ले  
जाते हुए आपस में इस प्रकार कहते थे—देवानुप्रिय । नन्द मणिपार धन्य है, जिसकी यह चतुष्कोण

यावत् मनोहर पुष्करिणी है, जिनके पूर्व के वनसंड में घनेरु सेकड़ों गंधों की बनी चित्रमाला है। इसी प्रकार चारों वनगडों और चारों सभाघों के विषय में कहना चाहिए। यावत् नन्द मणिरत्न का जन्म और जीवन मफज है, ' अर्थात् जनसाधारण नन्दा पुष्करिणी का, वनगडों का, चारों सभाघों का और नन्द सेठ का जन्म-व्यवहार करना करते थे।

२६—तए णं तस्स बद्धुरस्स तं अभिवत्तणं अभिवत्तणं बहुजणस्स अंतिए एयमट्ठं सोज्झाणितस्स इमेयाकूये अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जेत्था—'से कहि मन्ने मए इमेयाकूये सदे णिसंतपुब्बे ति कट्ठ सुमेणं परिणामेणं जाव [पसत्थेणं अज्झवत्ताएणं तेस्साहि विमुज्झमाणीहि तयावरत्तित्ताणं कम्मणं खओवसमेणं ईहा-पोह-मगण-गवेसणं करेमाणस्स संणिपुब्बे] जाइसरणे समुप्पन्ने, पुब्बज्जा सस्सं समागच्छइ।

तत्पश्चात् बार-बार बहुत लोगों के पास में यह बात (अपनी प्रशंसा) सुनकर और मन में समझ कर उस मेढक को इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ—'जान पड़ता है कि मैंने इस प्रकार का शब्द पहले भी सुने है।' इस तरह विचार करने से, शुभ परिणाम के कारण (प्रशस्त अथवा नाम के विणुड होती हुई लेश्याओं के कारण तथा जातिस्मरण ज्ञान को प्राप्त करने वाले विशिष्ट मति-ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से, ईहा, अपोह (अवाय), मार्गणा—गवेपणा (सद्भूत धर्मों का विग्रह और असद्भूत धर्मों का निवारण) करते हुए उस दुर्दुर को संज्ञी-पर्याय के भवों की जानने बानी) यावत् जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया। उसे अपना पूर्व जन्म अच्छी तरह याद हो गया।

पुनः श्रावकधर्म-अंगीकार

२७—तए णं तस्स बद्धुरस्स इमेयाकूये अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जेत्था—'एवं जलु ग्रह ईहे रायगिहे नगरे णवे णाम भणियारे अट्ठे। तेणं कालेणं तेणं समएणं समणं भगवं महावीरे समोत्तरे, तए णं समणस्स भगवन्मो महावीरस्स अंतिए पंचाणुम्वइए सत्तसिक्खावइए जाव पडियन्ने। तए णं ग्रहं अग्रया कयाई अत्ताहुवंसणेण य जाव<sup>१</sup> मिच्छत्तं विप्पडियन्ने। तए णं अहं अग्रया कयाई मिग्गहात्तसमयनि जाव<sup>२</sup> उयसंपज्जित्ता णं विहरामि। एवं जहेव चित्ता अणुच्छणा नंदा पुक्खरिणी यणसंडा सहाओ तं चेय सव्व जाय नंदाए पुक्खरिणीए बद्धुरत्ताए उयवन्ने।

तं ग्रहो ! णं अहं ग्रहन्ने अणुन्ने अकयणुन्ने निग्गंयाओ पायवणाओ नट्ठे नट्ठे परिभट्ठे, तं सेयं जलु ममं सयमेव पुब्बपडियन्नाई पंचाणुम्वयाई सत्तसिक्खावयाई उयसंपज्जित्ताणं विहरित्तए।

तत्पश्चात् उस मेढक को इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ—'मैं इसी राजगृहनगर में नन्द नामक मणियार सेठ था—'अन-धान्य आदि से समृद्ध था। उस काल और उस समय में भयल भगवान् महावीर का आगमन हुआ। तब मैंने भयल भगवान् महावीर के निकट पाच अनुव्रत और सात शिक्षाव्रत रूप श्रावकधर्म अंगीकार किया था। कुछ समय बाद साधुओं के दलों न होने आदि से मैं किसी समय मिथ्यात्व को प्राप्त हो गया।

तत्पश्चात् एक बार किसी समय प्राप्ति काल के अवसर पर मैं तेले की तपस्या करके निवृत्त रहा था। तब मुझे पुष्करिणी गुदवाने का विचार हुआ, थोड़ा राजा से आज्ञा ली, नन्दा पुष्करिणी

गुदवाई, वनसण्ड लगवाये, चार सभाएँ बनवाई, इत्यादि सब पूर्ववत् समझना चाहिए, यावत् पुष्करिणी के प्रति प्राप्तिके होने के कारण मैं नन्दा पुष्करिणी में मेरक पर्याय में उत्पन्न हुआ। धतएव मैं भयान्य हूँ, मयुष्य हूँ, मैंने पुण्य नहीं किया, धत मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन से नष्ट हुआ, भ्रष्ट हुआ और एकदम भ्रष्ट हो गया। तो धत मेरे लिए यही श्रेयस्कर है कि पहले अंगीकार किये पांच मनुष्यों को और सात शिक्षात्रतो का मैं स्वयं ही पुनः अंगीकार करके रहूँ।

मेरक की तपश्चर्या

२८—एवं संवेहेह, सवेहिता पुत्रवपदिवघाह पञ्चानुवयाह सप्तसिखलावयाह आरहेह, आरहिता इमेयाक्यं अभिगहं अभिगहह—'कप्यह मे जावज्जीव ददुं ददुं देणं अभिबिलसेण धप्पाण मायेमाथरम बिहरितए। ददुं स वि यं पारणमंसि कप्यह मे जवाए पोषत्तरिणीए परिपेरंतेसु कामुएणं ग्हाणोवएण उम्मह्णातोत्तिमाहि य विंसि कप्पेमाणस बिहरितए।' इमेयाक्यं अभिगहं अभिगेहह जावज्जीवाए ददुं ददुं देणं जाव [अभिबिलसेण तवोकम्मेषं धप्पाणं जायेमाणे] बिहरह।

नन्द मणियार के जीव उम मेरक ने इस प्रकार विचार किया। विचार करके पहले अंगीकार किये हुए पांच मनुष्यों और सात शिक्षात्रतो को पुनः अंगीकार किया। अंगीकार करके इस प्रकार का अभिग्रह धारण किया—प्राज्ञ मे जीवन-पर्यन्त मुझे बेले-बेले की तपस्या से आत्मा को भावित करते हुए विचरना कल्पना है। बेले की पारणा में भी नन्दा पुष्करिणी के पर्यन्त भागों में, प्रासुक (प्रचित्त) हुए स्थान के जल से और मनुष्यों के उन्मर्दन घाटि द्वारा उतारे मूल से अपनी साजीविका चलाना प्रयात् जीवननिर्वाह करना कल्पना है। उमने ऐसा अभिग्रह धारण किया। अभिग्रह धारण करके निरन्तर बेले-बेले की तपस्या से आत्मा को भावित करता हुआ विचरने लगा।

भगवत्परायण

२९—तेणं कातेणं तेणं समएणं ग्रहं गोमया। गुणशीलए चेइए समोसडे। परिसा जित्ताया। तए न णंशाए पुषत्तरिणीए बहुज्जो ग्हायमाणो य विममाणो य पारिणं संवहमाणो य अन्नमन्नं एव-माइल्लह—जाव [एवं तनु] समणे जगव महावीरे इहेम गुणशीलए चेइए समोसडे। तं गच्छामो णं देवानुप्पिमा। समणं भगवं महावीरं वदामो जाव [णमंतामो सबकारेमो सम्मानेमो कल्लाणं वंगलं देवयं चेइमं] पग्गुवात्तामो, एय मे इहभवे परभवे य हियाए जाव [मुहाए खमाए निस्सेयसाए] आणुमाप्पिमाए भविस्सह।

हे गौतम ! उस काल और उस समय में मैं गुणशील चैत्य में आया। वन्दना करने के लिए परिपद् निकली। उस समय नन्दा पुष्करिणी में बहुत-से जन नहाते, पानी पीते और पानी ले जाते हुए प्रापस में इस प्रकार बातें करने लगे कि—श्रमण भगवान् महावीर यही गुणशील उद्यान में गमवमृत हुए हैं। सो हे देवानुप्रिय ! हम चले और श्रमण भगवान् महावीर को वन्दना करें, यावत् (नमस्कार कर, उनका सत्कार-सम्मान करें, कल्याण भगवत् देव एवं चैत्य स्वरूप भगवान् की) उपासना करें। यह हमारे लिए इह भव में और परभव में हित के लिए एवं सुख के लिए होगा, क्षमा और निर्धेयस के लिए तथा अनुगामीपन के लिए होगा—परभव में यही साथ जायगा।







जाता है। किन्तु महाव्रतों के सद्भाव में भी तिर्यचों में चारित्र्य-परिणाम प्रयत्न भाव चारित्र्य नहीं है, जैसे बहुत गुणों से सम्पन्न जीवों को केवल ज्ञान उत्पन्न नहीं हो सकता।

इस कथन से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि केवल महाव्रतों का ग्रहण या पालन ही सर्वार्थ चारित्र्य नहीं है। यह व्यवहार चारित्र्य मात्र है। निश्चय चारित्र्य के लिए परिणामों की निरन्तर निमलता अनिवार्य है, जो अनन्तानुवर्धी, अप्रत्याख्यानावरण और प्रत्याख्यानावरण कृपा के अति आदि तथा सज्ज्वलन कृपा की मन्दता के होने पर ही संभव है।

देवपर्याय मे जन्म

३३—तए नं से ददुबुरे कासमासे कालं किञ्चा जाय सोहम्मे कप्पे ददुबुरेवत्तए त्विणं उवघायसत्ताए ददुबुरेवत्ताए उववन्ने । एधं खलु गोयमा ! ददुबुरेणं सा दिव्वा देविदुदो तडा पणं जाय अभिसमप्रागया ।

तत्पश्चात् वह मेटक मृत्यु के समय काल करके, यावत् सौधमं कल्प मे, ददुं रावतसक कालं यिमान मे, उपपातसमा मे, ददुं रदेव के रूप मे उत्पन्न हुआ । हे गौतम ! ददुं र देव ने इस प्रकार श्रेष्ठ दिव्य देवधि लब्ध की है, प्राप्त की है और पूर्णरूपेण प्राप्त की है—उसके समक्ष आई है। मङ्गल देव का भविष्य

३४—ददुबुरेस नं भंते ! देवसस केयइयं कालं ठिई पणत्ता ?

गोयमा ! चत्तारि पत्तिमोवमाई ठिई पत्तत्ता । से नं ददुबुरे देवे प्राउवसएणं, अवसएणं, ठिइवसएणं, अणंतरे चय चइत्ता महाविदेहे वासे सिग्गिहहिइ, युग्गिहहिइ, जाय [ मुच्चिहहि परिनिज्जहिइ सस्यवुवत्ताणं ] अंत करिहिइ ।

गौतम स्वामी ने पुनः प्रश्न किया—ददुं र देव की उस देवसोक मे कितनी स्थिति है ?

भगवान् उत्तर देते हैं—गौतम ! चार पत्योपम की स्थिति कही गई है। तत्पश्चात् ददुं र देव आमु के क्षय मे, भय के क्षय मे और स्थिति के क्षय से, तुरंत वही मे अग्रयन करके महाविदेह क्षेत्र मे गिड होगा, पुड होगा, यावत् [ मुत्त होगा, परिनिर्वाण प्राप्त करेगा और समस्त दुःखों का भक्षण करेगा ।

उपमहार

३५—एव लणु समणेणं भगवया महायोरेणं तेरसमसस नायज्जयणसस अयमट्ठ पणत्ते, नि वेमि ।

श्री मुधर्मा स्वामी अपने उत्तर का उपमहार करने लगे कहते हैं—इस प्रकार निश्चय ही अमरा भगवान् महावीर ने तेरहवाँ ज्ञान-अध्ययन का यह अर्थ कहा है। जैसा मैंने सुना, वेंगा कहा है।

## चौदहवां अध्ययन : तेतलिपुत्र

सार : लक्ष्य

इस अध्ययन का कथानक बहुत रोचक तो है ही, शिक्षाप्रद भी है। निम्नलिखित तैरहूँ अध्ययन में बताया गया है कि मनुष्य का समाज यादों निमित्त न प्राप्त हो तो जो मनुष्य विद्यमान उनका भी लाभ और हानि विनाश हो जाता है। टीका इस विषय पर अध्ययन में प्रतिपादित किया गया है कि सप्रतिष्ठ मित्रों पर प्रतिष्ठित मनुष्य भी उत्पन्न और विकसित हो जाते हैं। प्रत्यक्ष गुणवैशेषों पुराने को ऐसे निमित्त नष्टाने के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए जिससे सामाजिक मनुष्य का लाभ न होने पाए, प्रत्यक्ष प्राप्त गुणों का विकास हो और अज्ञान गुणों की प्राप्ति होनी रहे। अतः के निमित्त में समाजोपयोग यादों निमित्त मनुष्यों में भूमिका निभाते हैं, इस तथ्य का ध्यान रखकर नहीं करना चाहिए। प्रत्यक्ष अध्ययन में मनोरम कथानक द्वारा यही तथ्य प्रकाशित किया गया है। कथानक का सार इस प्रकार है—

तेतलिपुत्र नगर के राजा वनकरण के सम्राट का नाम भी तेतलिपुत्र था। 'मूर्ध्नि'कारदार की तरह वह नाम भी उनके पिता 'तेतलि' के नाम पर रखा गया है। 'मूर्ध्नि'कारदार का प्रथम पुत्र। मूर्ध्नि'कारदार भी तेतलिपुत्र का ही निजाली स्वर्णकार था। एक बार तेतलिपुत्र सम्राट ने उनकी पुत्री पोटिता को प्रोत्साहित करने देखा और वह उस पर प्रसन्न हो गया। पत्नी रूप में उनकी भगनी की। गुप्त मुहूर्त में दोनों का विवाह हो गया।

कुछ समय तक दोनों का सामान्य जीवन सुखपूर्वक चलता रहा। दोनों में परस्पर गहरे प्रेम का था। किन्तु कामान्तर में स्नेह का सूत्र टूट गया। स्थिति ऐसी उत्पन्न हो गई कि तेतलिपुत्र को पोटिता के नाम में भी प्रेम हो गई। पोटिता इस कारण बहुत उदास और विषम रहने लगी। उसकी निरन्तर की निराशा देख एक दिन तेतलिपुत्र ने उससे कहा—'गुप्त चिन्तित मत रहो, मैं भीतनगता में प्रभुत्व धारण, दान, ग्राहिम और स्वादिम तैयार करवा कर भ्रमणों, माहनों, प्रतिभिमित्र भिन्नारिवा की दान देकर धन का धन प्राप्त करो। पोटिता यही करने लगी। उसका समय सभी कार्य में व्यतीत होने लगा।

मयांगवगता एक बार तेतलिपुत्र में सुवना नामक धारों का धामन हुआ। उनका परिवार निष्काममुक्त बहुत बड़ा था। उनकी कुछ धार्मिकों मयांगवग मोचरी के लिए निकली थी। तेतलिपुत्र के घर पहुँची। पोटिता ने उन्हें धातार-वानी का दान दिया। उस समय उसका पत्नीत्व समाप्त हो गया और उसने माधवियों से निवेदन किया—'मैं तेतलिपुत्र की पहले इष्ट थी, अब धनियत हो गई है। मैं बहुत भ्रमण करती हूँ और राजा-रंक यादों सभी प्रकार के लोगों के घरों में प्रवेश करती हूँ। मैं बहुत धनवान् बहुत व्यापक हूँ। कोई काम, पूर्ण या वशीकरण मन्त्र वतलाइए जिससे मैं तेतलिपुत्र की पुनः धन की ओर आकृष्ट कर सकूँ।'

जाता है। किन्तु महाव्रतों के सद्भाव में भी तिर्यचों में चारित्र्य-परिणाम अर्थात् भाव चारित्र्य नहीं है, जैसे बहुत गुणों से सम्पन्न जीवों को केवल ज्ञान उत्पन्न नहीं हो सकता।

इस कथन से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि केवल महाव्रतों का ग्रहण या पालन ही सर्वोत्तम चारित्र्य नहीं है। यह व्यवहार चारित्र्य मात्र है। निश्चय चारित्र्य के लिए परिणामों की निम्न निर्मलता अनिवार्य है, जो अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याक्ष्यानावरण और प्रत्याक्ष्यानावरण कथनों के अतिरिक्त तथा सज्ज्वलन कपाय की मन्दता के होने पर ही संभव है।

वेधपर्याय में जन्म

३३—तए णं से दद्वुरे कासमासे कालं किञ्चा जाय सोहम्मे कप्पे दद्वुरेवसिए वि उवघापतभाए दद्वुरेवसिए उवचने । एयं खलु गोयमा ! दद्वुरेणं सा विद्या वेविण्डी सज्जा जाव अभिसमप्रागया ।

तत्पश्चात् वह मंडक मृत्यु के समय काल करके, यावत् सीधर्म कल्प में, दद्वुरावतसक न विमान में, उपपातसमा में, दद्वुरदेव के रूप में उत्पन्न हुआ। हे गोतम ! दद्वुर देव ने इस प्रकार दिव्य देवधि लब्ध की है, प्राप्त की है और पूर्णरूपेण प्राप्त की है—उसके समक्ष आई है। मरूक देव का अधिपत्य

३४—दद्वुरेस णं भंते ! देवस्स केयइयं कालं ठिई पणत्ता ?

गोयमा ! अत्तारि पत्तिगोयमाईं ठिई पत्तता । से णं दद्वुरे वेवे आउवसएणं, भवणएणं, ठिउवसएणं, अणंतरे चय चइत्ता महाविदेहे वासे तिग्गिहहिइ, मुग्गिहहिइ, जाव [मुच्चिहहिइ परिनिर्वाणं हिइ सव्वदुवत्ताणं] अंत करिहिइ ।

गोतम स्वामी ने पुनः प्रश्न किया—दद्वुर देव की उस देवलोक में कितनी स्थिति है ?

भगवान् उत्तर देते हैं—गोतम ! चार पत्योपम की स्थिति कही गई है। त-परा १३३ दद्वुर देव प्रायु के क्षय में, भय के क्षय में और स्थिति के क्षय से, तुरत वहाँ में अग्रत करके महाविदेह में गिउ होगा, बुउ होगा, यावत् [मुत्त होगा, परिनिर्वाण प्राप्त करेगा और समस्त दुःखा का भयन करेगा।

उपमहार

३५—एयं गन्तु समयेणं भगवया महाजरेणं तेरसमस्स नायउभयणसस अयमदु पणत्ते, नि वेमि ।

यों मुधमा स्वामी अपने ऊपर का उपमहार करने हुए कहते हैं—इस प्रकार निरवस्था भगवान् महावीर ने नेरहू ज्ञान-अध्ययन का यह धर्म कहा है। जेमा मेने गुना देगा इह ३५४ ।

किया—राजा यादि को उससे बिरुद्ध कर दिया । एक दिन जब वह राजसभा में गया तो राजा ने उससे बात भी नहीं की, विमुख होकर बैठ गया, सत्कार-सम्मान करने की तो बात ही दूर !

तैत्तिरीयपुराण यह अभिनव व्यवहार देखकर भयभीत होकर वापिस घर लौट आया । मार्ग में और घर में आने पर परिवारजनों ने भी उसे किंचित् आदर नहीं दिया । सारी परिस्थिति बदली देख तैत्तिरीयपुराण ने आत्मघात करने का निश्चय किया । आत्मघात के लगभग सभी उपाय आजमा लिये, मगर देवी माया के कारण कोई भी कारगर न हुआ । उन उपायों का मूलपाठ में व्योरेवार रोचक वर्णन किया गया है ।

जब तैत्तिरीयपुराण आत्महत्या करने में भी असफल हो गया—पूरे रूप से निराश हो गया तब पीटिल देव प्रकट हुआ । उसने अत्यन्त सारपूर्ण शब्दों में उसे प्रतिबोध दिया । देव का वह कथन भी अत्यन्त रोचक है, उसे मूलपाठ से पाठक जान ले ।

उसी समय तैत्तिरीयपुराण को शुभ अध्यवसाय के प्रभाव से जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया । उसे विदित हो गया कि पूर्व जन्म में वह महाविदेह यज्ञ में महापद्मनाभक राजा था । समय भंगीकार करके वह यथाकाल शरीर त्याग कर महाशुक्लनाभक देवलोक में उत्पन्न हुआ था । तत्पश्चात् वह यहाँ जन्मा ।

तैत्तिरीयपुराण ने माता नूतन जगत् में प्रवेश किया । थोड़ी देर पहले जिसके चट्ट घोर घोर अन्धकार व्याप्त था, अब असीम प्रकाश की उज्ज्वल रश्मियाँ भासित होने लगी । वह स्वयं दीक्षित होकर, समय का यथाविधि पालन करके, अन्त में इस भव-प्रपंच से सदा-सदा के लिए मुक्त हो गया । अनन्त, असीम, अव्याबाध आत्मिक सुख का भागी बन गया ।

1. 2. 3. 4. 5. 6. 7. 8. 9. 10. 11. 12. 13. 14. 15. 16. 17. 18. 19. 20. 21. 22. 23. 24. 25. 26. 27. 28. 29. 30. 31. 32. 33. 34. 35. 36. 37. 38. 39. 40. 41. 42. 43. 44. 45. 46. 47. 48. 49. 50. 51. 52. 53. 54. 55. 56. 57. 58. 59. 60. 61. 62. 63. 64. 65. 66. 67. 68. 69. 70. 71. 72. 73. 74. 75. 76. 77. 78. 79. 80. 81. 82. 83. 84. 85. 86. 87. 88. 89. 90. 91. 92. 93. 94. 95. 96. 97. 98. 99. 100. 101. 102. 103. 104. 105. 106. 107. 108. 109. 110. 111. 112. 113. 114. 115. 116. 117. 118. 119. 120. 121. 122. 123. 124. 125. 126. 127. 128. 129. 130. 131. 132. 133. 134. 135. 136. 137. 138. 139. 140. 141. 142. 143. 144. 145. 146. 147. 148. 149. 150. 151. 152. 153. 154. 155. 156. 157. 158. 159. 160. 161. 162. 163. 164. 165. 166. 167. 168. 169. 170. 171. 172. 173. 174. 175. 176. 177. 178. 179. 180. 181. 182. 183. 184. 185. 186. 187. 188. 189. 190. 191. 192. 193. 194. 195. 196. 197. 198. 199. 200. 201. 202. 203. 204. 205. 206. 207. 208. 209. 210. 211. 212. 213. 214. 215. 216. 217. 218. 219. 220. 221. 222. 223. 224. 225. 226. 227. 228. 229. 230. 231. 232. 233. 234. 235. 236. 237. 238. 239. 240. 241. 242. 243. 244. 245. 246. 247. 248. 249. 250. 251. 252. 253. 254. 255. 256. 257. 258. 259. 260. 261. 262. 263. 264. 265. 266. 267. 268. 269. 270. 271. 272. 273. 274. 275. 276. 277. 278. 279. 280. 281. 282. 283. 284. 285. 286. 287. 288. 289. 290. 291. 292. 293. 294. 295. 296. 297. 298. 299. 300. 301. 302. 303. 304. 305. 306. 307. 308. 309. 310. 311. 312. 313. 314. 315. 316. 317. 318. 319. 320. 321. 322. 323. 324. 325. 326. 327. 328. 329. 330. 331. 332. 333. 334. 335. 336. 337. 338. 339. 340. 341. 342. 343. 344. 345. 346. 347. 348. 349. 350. 351. 352. 353. 354. 355. 356. 357. 358. 359. 360. 361. 362. 363. 364. 365. 366. 367. 368. 369. 370. 371. 372. 373. 374. 375. 376. 377. 378. 379. 380. 381. 382. 383. 384. 385. 386. 387. 388. 389. 390. 391. 392. 393. 394. 395. 396. 397. 398. 399. 400. 401. 402. 403. 404. 405. 406. 407. 408. 409. 410. 411. 412. 413. 414. 415. 416. 417. 418. 419. 420. 421. 422. 423. 424. 425. 426. 427. 428. 429. 430. 431. 432. 433. 434. 435. 436. 437. 438. 439. 440. 441. 442. 443. 444. 445. 446. 447. 448. 449. 450. 451. 452. 453. 454. 455. 456. 457. 458. 459. 460. 461. 462. 463. 464. 465. 466. 467. 468. 469. 470. 471. 472. 473. 474. 475. 476. 477. 478. 479. 480. 481. 482. 483. 484. 485. 486. 487. 488. 489. 490. 491. 492. 493. 494. 495. 496. 497. 498. 499. 500. 501. 502. 503. 504. 505. 506. 507. 508. 509. 510. 511. 512. 513. 514. 515. 516. 517. 518. 519. 520. 521. 522. 523. 524. 525. 526. 527. 528. 529. 530. 531. 532. 533. 534. 535. 536. 537. 538. 539. 540. 541. 542. 543. 544. 545. 546. 547. 548. 549. 550. 551. 552. 553. 554. 555. 556. 557. 558. 559. 560. 561. 562. 563. 564. 565. 566. 567. 568. 569. 570. 571. 572. 573. 574. 575. 576. 577. 578. 579. 580. 581. 582. 583. 584. 585. 586. 587. 588. 589. 590. 591. 592. 593. 594. 595. 596. 597. 598. 599. 600. 601. 602. 603. 604. 605. 606. 607. 608. 609. 610. 611. 612. 613. 614. 615. 616. 617. 618. 619. 620. 621. 622. 623. 624. 625. 626. 627. 628. 629. 630. 631. 632. 633. 634. 635. 636. 637. 638. 639. 640. 641. 642. 643. 644. 645. 646. 647. 648. 649. 650. 651. 652. 653. 654. 655. 656. 657. 658. 659. 660. 661. 662. 663. 664. 665. 666. 667. 668. 669. 670. 671. 672. 673. 674. 675. 676. 677. 678. 679. 680. 681. 682. 683. 684. 685. 686. 687. 688. 689. 690. 691. 692. 693. 694. 695. 696. 697. 698. 699. 700. 701. 702. 703. 704. 705. 706. 707. 708. 709. 710. 711. 712. 713. 714. 715. 716. 717. 718. 719. 720. 721. 722. 723. 724. 725. 726. 727. 728. 729. 730. 731. 732. 733. 734. 735. 736. 737. 738. 739. 740. 741. 742. 743. 744. 745. 746. 747. 748. 749. 750. 751. 752. 753. 754. 755. 756. 757. 758. 759. 760. 761. 762. 763. 764. 765. 766. 767. 768. 769. 770. 771. 772. 773. 774. 775. 776. 777. 778. 779. 780. 781. 782. 783. 784. 785. 786. 787. 788. 789. 790. 791. 792. 793. 794. 795. 796. 797. 798. 799. 800. 801. 802. 803. 804. 805. 806. 807. 808. 809. 810. 811. 812. 813. 814. 815. 816. 817. 818. 819. 820. 821. 822. 823. 824. 825. 826. 827. 828. 829. 830. 831. 832. 833. 834. 835. 836. 837. 838. 839. 840.

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

[illegible][illegible]

सयोगवश जिग गमय रानी पचावती ने पुत्र का प्रगव किया, उसी समय तेजनिपुत्र की पत्नी ने मृत कन्या को जन्म दिया। पूर्वजन्त निश्चय के अनुसार तेजनिपुत्र ने पुत्र और पुत्री का बदलावदली कर दी। मृत पुत्री को पचावती के पास और राजकुमार को अपनी पत्नी के पास भेजा। पत्नी को सब रहस्य बतला दिया। कुमार सुरक्षित वृद्धित होने लगा।

कनकरथ राजा की जब मृत्यु हुई तो उसके उत्तराधिकारी की चर्चा नली। तत्तत्पुत्र  
समग्र रहस्य प्रकट कर दिया और राजकुमार—जिसका नाम कनकध्वज था—राजसिंहान पर  
आसीन हो गया।

रानी पद्मावती का मनोरथ सफल हुआ। उसने कनकध्वज को आदेश दिया—तैत्तिरीय के प्रति सदैव विनम्र रहना, उनका सत्कार-सम्मान करना, राजसिंहासन, वैभव, यहाँ तक कि तुम्हारा जीवन इन्हीं की बदीलत है। कनकध्वज ने माता के आदेश को शिरोधार्य किया और वह प्रमत्त भाव से बहृत आदर करने लगा।

उधर पोट्टिल देव ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार तेलचिपुत्र को प्रतिबुद्ध करने के धनक उपाय किए, मगर राजा द्वारा सम्मानित होने के कारण उसे प्रतिबोध नहीं हुआ। तब देव ने धन्तिम उपाय

किया—राजा पादि को उमंगे विरुद्ध कर दिया । एक दिन जब वह राजसभा में गया तो राजा ने उमंगे बात भी नहीं की, विमुख होकर बैठ गया, मत्कार-मनमान करने की तो बात ही दूर ।

तेततिपुत्र यह अभिनव व्यवहार देखकर भयभीत होकर बापिम घर लौट आया । मार्ग में घोर भय में आने पर परिवारजनों ने भी उसे किंचित् आदर नहीं दिया । सारी परिस्थिति बदली देख तेततिपुत्र ने आत्मघात करने का निश्चय किया । आत्मघात के लगभग सभी उपाय आत्मघातियों, मगर देवी माया के कारण कोई भी बारम्बार न हुआ । उन उपायों का मूलपाठ में व्योरेवार रोचक वर्णन किया गया है ।

तब तेततिपुत्र आत्महत्या करने में भी असफल हो गया—पूर्ण रूप से निराश हो गया तब पोट्टिम देव प्रकट हुआ । उमंगे आत्मान्त मारपूर्ण घटनों में उसे प्रतिबोध दिया । देव का वह कथन भी अत्यन्त रोचक है, उसे मूलपाठ में पाठक जानें ।

उसी समय तेततिपुत्र को बुद्ध धम्मबसाय के प्रभाव से ज्ञानिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया । उसे विदित हो गया कि पूर्व जन्म में वह महाविदेह राज्य में महापद्मनामक राजा था । सुयम भंगीकार करके यह यथाकाल शरीर त्याग कर महाशुक्लनामक देवलोक में उत्पन्न हुआ था । तत्पश्चात् यह यही जन्मा ।

तेततिपुत्र ने मानों नूतन जगत् में प्रवेश किया । थोड़ी देर पहले जिसके बड़े घोर घोर अन्धकार व्याप्त था अब अनीक प्रकाश की उज्ज्वल रश्मियाँ भामित होने लगी । वह स्वयं दीक्षित होकर, मयम का यथाविधि पालन करके, अन्त में इस भव-प्रसंग में सदा-सदा के लिए मुक्त हो गया । अन्त, अन्त, अन्त, अन्त आदिमक मूल का भागी बन गया ।



## चोद्दसमं अज्झयणं : तेयलिपुत्ते

जम्बू स्वामी का प्रश्न

१—जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं तेरसमस्स नायज्झयणस्स प्रथमं पद्दं चोद्दसमस्स नायज्झयणस्स समणेणं भगवया महावीरेणं के अट्ठे पद्दत्ते ?

जम्बू स्वामी श्रीमुधर्मा स्वामी से प्रश्न करते हैं— 'भगवन् ! यदि भ्रमण भगवान् महावीर ने तेरहवें ज्ञात-ग्रन्थयन का यह (पूर्वाक्त) ग्रंथ कहा है, तो चौदहवें ज्ञात-ग्रन्थयन का भ्रमण भगवान् महावीर ने क्या ग्रंथ कहा है ?

मुधर्मा स्वामी का उत्तर

२—'एवं ललु जंज ! तेणं कालेणं तेणं समएणं तेयलिपुरे णाम जयरे होत्था । तस्मिं तेयलिपुरस्स बहिया उत्तरपुरत्थिमे विसीमाए एत्थ णं पमयवणे णामं उज्जाणे होत्था ।

श्री मुधर्मा स्वामी उत्तर देते हैं—'हे जम्बू ! उस काल और उस समय में तेतलिपुरान्तर्गत नगर था । उस तेतलिपुर नगर से बाहर उत्तर पूर्व-ईशान-दिशा में प्रमदवननामक उद्यान था ।

तेतलीपुर अमात्य

३—तस्य णं तेयलिपुरे जयरे कणगरहे णामं राया होत्था । तस्स णं कणगरहस्स रत्तो पउमावई णामं देवी होत्था । तस्स णं कणगरहस्स रत्तो तेयलिपुत्ते णामं प्रमच्च होत्था साम-वा-भेय-उयप्पयाण-नीति-मुपउत्त-नयविहिण्णु ।

उस तेतलिपुर नगर में कनकरवनामक राजा था । कनकरव राजा की पद्मावतीनामक देवी (रानी) थी । कनकरव राजा के अमात्य का नाम तेतलिपुर था, जो साम, दाम, भेद और दण्ड—एक चारों नातियों का प्रयोग करने में निष्णात था ।

४—तस्य णं तेयलिपुरे कलादे नामं मूत्तिमारदारए होत्था, अइदे जाव प्रवरिमुए । तस्मिं भद्दा नामं भारिया होत्था । तस्स णं कलापस्स मूत्तिमारदारयस्स धूया मद्दाए भत्तया पोत्तिता नामं बारिया होत्था, क्येण य जोक्खणेण य लाक्खणेण य उक्किट्ठा उक्किट्ठसरोरा ।

तेतलिपुर नगर में मूर्तिकारदारकनामक एक कलाद (स्वर्णकार) था । वह धनाढ्य या धनी क्रिमा में पराभूत होने वाला नहीं था । उसकी पत्नी का नाम भद्रा था । उस कलाद मूर्तिकारदारक की पुत्री और भद्रा की आत्मजा (उदरजात) पोत्तिता नाम की लड़की थी । वह रूप, योग्य और लावण्य में उत्कृष्ट और शरीर में भी उत्कृष्ट थी ।

विवेचनः—कलाद का ग्रंथ स्वर्णकार (गुनार) है । यहा जिन कलाद का उल्लेख किया गया है उसके पिता का नाम 'मूर्तिकार' था । पिता के नाम पर ही उसे 'मूर्तिकारदारक' सजा प्रदान की गई है । पागमों में अत्यन्त भी दम प्रहार की गयी आगनाई गई है ।



५—तए नं पोट्टिला बारिया अग्रया कयाइ व्हाया सदासंकारबिजुसिया चेडिया-चक्काल-  
संवरिमुडा उप्पि पासायवरगया घागासतसगसि कणगमएण तिरुसएण कीलमाणी कीलमाणी विहरइ ।

एक बार किमी गमय पोट्टिला बारिका (लडकी) स्नान करके घोर मय धतकारो से विभूषित होकर, दागियों के समूह में परिवृत्त होकर, ग्रामाद के ऊपर रही हुई ध्यामी की भूमि में गोने की गेद में ओढा कर रहा पो ।

६—इमं च नं तेयत्तिपुत्ते धमच्चे व्हाए घासत्तंघवरगए महया भइच्चइगरघासयाहणियाए निगयायमाणे कलायस्स भूसियारदारगस्स गिहस्स भदूरसामतेणं योईवयइ ।

दुधर तेतनिपुत्र धमात्य स्नान करके, उत्तम घग्ग के रूकध पर घाहइ होकर, वहुन-ने सुभदो के समूह के माय पुइयवारी के लिए निकला । वह कलाय भूपिकारदारक के घर के कुछ समीप होकर जा रहा था ।

७—तए नं से तेयत्तिपुत्ते भूसियारदारगगिहस्स भदूरसामतेणं योईवयमाणे योईवयमाणे पोट्टिल बारियं उप्पि पासायवरगयां घागासतसगसि कणातिरुसएणं कीलमाणि पासइ, पासित्ता पोट्टिलाए बारियाए हवे य जोइवणे य लावण्णे य अञ्जोयवन्ने कोडु विजपुरिते सदावेइ, सदाचित्ता एवं वयासी—‘एस नं देवानुप्पिया । कस्स बारिया किनामयेगजा वा ?’

तए नं कोडु विजपुरिते तेयत्तिपुत्त एवं वयासी—‘एस नं सासी । कलायस्स भूसियारदारगस्स धूया, भदाए अत्तया पोट्टिला नाम बारिया हवेण य जोइवणेण य लावण्णेण य उक्किट्ठा उक्किट्ठा-सरीरा ।’

उनमें पूछा—‘देवानुप्पियो ! यह किमकी लडकी है ? इसका नाम क्या है ?’

तब कोडुम्बिक पुरुषों ने तेतनिपुत्र से कहा—‘स्वामिन् । यह कलाय भूपिकारदारक की पुत्री, भदा की भ्रातृजा, पोट्टिला नामक लडकी है । हय, लावण्य और योग्य ने उत्तम है और उत्कृष्ट पारीर वाली है ।’

८—तए नं से तेयत्तिपुत्ते आसयाहणियाओ पडिनियस्से समाने अडिभतरट्टाणिज्जे पुरिते सदावेइ, सदाचित्ता एवं वयासी—‘मच्छह नं सुअमे देवानुप्पिया । कसावस्स भूसियारदारगस्स धूयं भदाए अत्तयं पोट्टिल बारियं मम भारियत्ताए वरेह ।’

तए नं से अडिभतरट्टाणिज्जा पुरित्ता तेयत्तिणा एवं वत्ता समाना ऱट्टुट्टु जाव करयलपरिग-  
हियं इसणहं सिरसायत्तं मयए अंजलि कट्टु ‘एव सामी ।’ तइ त्ति घाणाए विणएणं वपणं पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता तेयत्तिवस्स अंतिवाओ पडिणिक्खमंति, पडिणिक्खमित्ता जेणेव कलायस्स भूसियारदारगस्स गिहे तेणेव उवागया । तए नं कलाए भूसियारदारए ते पुरिते एक्कमाणे पासइ, पासित्ता हट्टुट्टु घासणाओ अम्भुट्टेइ, अम्भुट्टित्ता सत्तट्टुपयाइं धणुमच्छइ, अणुमच्छित्ता आसणेणं उवनिमंतेइ, उव-

निर्मितता आसत्ये वोस्तथे मुहासणवरगए एवं वयासी-‘सविसंतु णं देवानुप्पिया ! किमागमणओन् ! तत्पश्चात् तेतलिपुत्र भुडसवारी से पोछे लीटा तो उमने अभ्यन्तर स्थानीय (सामने करने वाले) पुरुषो को बुलाकर कहा—‘देवानुप्रियो ! तुम जाओ और कलाद भूपिकारदारक को पुणे भद्रा की आत्मजा पोट्टिला दारिका की मेरी पत्नी के रूप में मगनी करो ।

तब वे अभ्यन्तर-स्थानीय पुरुष तेतलिपुत्र के इस प्रकार कहने पर हृष्ट-तुष्ट हुए । दोनों को मिलाकर, दोनों हाथ जोड़कर और मस्तक पर अजलि करके ‘तह ति’ (वहूत प्रगल्भा) स्वामि ! कहकर विनयपूर्वक आदेश स्वीकार किया और उसके पास से खाना होकर भूपिकारदारक कलाद के घर आये । भूपिकारदारक कलाद ने उन पुरुषों को आते देखा तो वह हृष्ट-तुष्ट हुआ, घासन ने लड़ा हुआ, सात-प्राठ कदम आगे गया; उसने घासन पर बैठने के लिए आमन्त्रण किया । अब घासन पर बैठे, स्वस्थ हुए और विश्राम ने चुके तो भूपिकारदारक ने पूछा—‘देवानुप्रियो ! ब्राह्मण ! आपके आने का क्या प्रयोजन है ?’

६—तए णं ते अभितरट्ठाणिज्जा पुरिसा कलायस्स मूसियारदारयस्स एवं वयासी—‘अने देवानुप्पिया ! तव धूयं भहाए अत्तयं पोट्टिलं दारियं तेयलिपुत्तस्स भारियत्ताए बरेमो, तं वा जाणसि देवानुप्पिया ! जुत्तं वा पत्तं वा सलाहणिज्जं वा सरिसो वा संजोगो, ता दिज्जउ णं पोट्टि दारिया तेयलिपुत्तस्स, तो भण देवानुप्पिया ! कि दलामो सुवकं ?’

तब उन अभ्यन्तर-स्थानीय पुरुषों ने कलाद भूपिकारदारक से इस प्रकार कहा—‘देवानुप्रियो ! हम तुम्हारी पुत्री, भद्रा की आत्मजा पोट्टिला दारिका को, तेतलिपुत्र की पत्नी के रूप में मगनी करते हैं । देवानुप्रियो ! अगर तुम समझते हो कि यह संबंध उचित है, प्राप्त या प्राप्त है, प्रसंसीय है, दोनों का मयोग सहज है, तो तेतलिपुत्र को पोट्टिला दारिका प्रदान करो । प्रदान करते हो तो, देवानुप्रियो ! कहो, इसके बदले क्या मुल्क (धन) दिया जाए ?

विशेष—तेतलिपुत्र राजा का मंत्री था । घासनसूत्र उसके हाथ में था । दूसरी ओर भूपिकारदारक एक सामान्य स्वर्णकार था । तेतलिपुत्र, उसकी कन्या पर मुग्ध हो जाता है मगर मात्र उसे अपने भोग की सामग्री नहीं बनाना चाहता—पत्नी के रूप में ग्रहण करने की इच्छा करता है । नियमानुसार उसकी मगनी के लिए अपने सेवकों को उसके घर भेजता है । सेवक भूपिकारदारक के घर जाकर जिन शिष्टतापूर्ण शब्दों में पोट्टिला कन्या की मंगनी करते हैं, वे शब्द ध्यान देने योग्य हैं । राजमंत्रों के सेवक न रोब दिखाते हैं, न किसी प्रकार का दबाव डालते हैं, न धमकी देने का संकेत देते हैं ।

निश्चय ही सेवकों ने जो कुछ कहा, वह राजमंत्री के निर्देशानुसार ही कहा होगा । इन वर्णन में तत्कालीन शासकों की न्यायनिष्ठा का महत्त्व ही अनुमान किया जा सकता है । मुल्क देने का जो कथन किया गया है, वह उस समय की प्रचलित प्रथा थी । इसके संबंध में पहले लिखा जा चुका है ।

१०—तए णं कलाए भूसियारदारए ते अम्भितरद्वानिजे पुरिसे एवं वयासी—'एस चेव णं भिणुप्पिया ! मम सुबके जं णं तेषलिपुत्ते मम दारियानिमित्तेणं अणुगहं करेइ ।' ते अम्भितर-  
णिजे पुरिमे विपुत्तेण असण-पाण-साइम-साइमेणं पुष्प-वत्थ-गंध-मत्सालंकारेणं सक्कारेइ सम्माणेइ,  
कारिता संमाणिता पडिविसज्जेइ ।

तत्पश्चात् कलाद भूपिकारदारक ने उन अभ्यन्तर-स्थानीय पुरुषों से कहा—'देवानुप्रियो !  
ही मेरे लिए शुभ है जो तैत्तिलिपुत्र, दारिका के निमित्त से मुझ पर अनुग्रह कर रहे हैं ।' इस प्रकार  
हुकर उसने उन अभ्यन्तर-स्थानीय पुरुषों का विपुल अग्रान, पान, खादिम और स्वादिम से तथा  
पुष्प, वस्त्र, गंध से एवं माता और अन्नकार से सत्कार किया, सम्मान किया । सत्कार-सम्मान करके  
उन्हें विदा किया ।

११—तए ण [ते] कलावस्स भूसियारदारगस्स गिहाओ पडिनिवज्जमंति, पडिनिवज्जमिस्ता  
णेव तेषलिपुत्ते अमच्चे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छिता तेषलिपुत्तं एयमट्ठं निवेयंति ।

तत्पश्चात् वे अभ्यन्तर-स्थानीय पुरुष कलाद भूपिकारदारक के घर से निकले । निकलकर  
तैत्तिलिपुत्र अमात्य के पास पहुंचे । उन्होंने तैत्तिलिपुत्र को यह पूर्वोक्त ग्रंथ (वृत्तान्त) निवेदन किया ।

१२—तए णं कलाए भूसियारदारए अग्रया कयाइ सोहणंसि तिहि-नवजत्त-मुहुत्तसि पोट्टिलं  
ारियं श्वायं सत्वालंकारविभूसियं सीयं बुरुहइ, बुरुहिता मित्तणाइसंपरिवुडे साओ गिहाओ पडिनि-  
वज्जमइ, पडिनिवज्जमिस्ता सखिइडोए तेषलिपुरं मज्जमज्जेण जेणेव तेषलिपुत्तस्स गिहे तेणेव उवागच्छइ,  
उवागच्छिता पोट्टिलं दारियं तेषलिपुत्तस्स समयेय मारियत्ताए वसयइ ।

तत्पश्चात् कलाद भूपिकारदारक ने अन्यादा शुभ तिथि, नक्षत्र और मुहूर्त में पोट्टिला दारिका  
को स्नान करा कर और समस्त भलकारों से विभूषित करके शिविका में धाकड़ किया । वह मित्रों  
और जातिजनों से परिवृत होकर अपने घर से निकल कर, पूरे ठाठ के साथ, तैत्तिलिपुर के बीचोबीच  
होकर तैत्तिलिपुत्र अमात्य के पास पहुंचा । पहुंच कर पोट्टिला दारिका को स्वयमेव तैत्तिलिपुत्र की पत्नी  
के रूप में प्रदान किया ।

विवेचन—भूपिकारदारक कलाद शुभ तिथि, नक्षत्र और मुहूर्त में अपनी कन्या पोट्टिला का  
तैत्तिलिपुत्र के घर ले जाकर विवाह करता है । यह उस युग का प्रायः सामान्य—सर्वप्रचलित नियम  
था । आधुनिक काल में जैसे घर के अधिभावक अपने मित्रों, सवधियों और जातिजनो को साथ  
लेकर—घरात (वरमात्रा) के रूप में कन्या के घर जाते हैं, उसी प्रकार पूर्व काल में कन्यापक्ष के  
योग अपने मित्रों आदि के साथ नगर के मध्य में होकर, धूमधाम से—ठाठ वाट के साथ कन्या को  
र के घर ले जाते थे ।

ऐसे उदाहरण भी उपलब्ध होते हैं जब वरपक्ष के जन कन्यापक्ष के घर परिणय के लिए  
ए, किन्तु ऐसे उदाहरण थोड़े हैं—अपवाद रूप हैं ।

१३—तए णं तेषलिपुत्ते पोट्टिलं दारियं मारियत्ताए उवणोयं पासइ, पासिता पोट्टिताए  
गंइ पट्ठं बुरुहइ, बुरुहिता सेयापीएहि कलसेहि अण्णाणं मज्जावेइ, मज्जायिता अणिगहोमं करेइ, १

१. पाठान्तर—कारेइ, करेता

करिता पोट्टिलाए भारियाए मित्त-णाइ-णियग-सयण-संबंधि-परिजनं विपुलेणं  
पुष्प-गंध-मल्लालंकारेणं सवकारेद, सम्मानेद, सवकारिता सम्मानिता पडिदिमग्गेइ ।

तत्पश्चात् तेतलिपुत्र ने पोट्टिला दारिका को भार्या के रूप में धाई हुई देती । वे पोट्टिला के साथ पट्ट पर बैठे । बैठ कर श्वेत-पीत (चादी-सोने के) कलशों में उसने स्नान किया । स्नान करके अग्नि में होम किया । तत्पश्चात् पोट्टिला भार्या के मित्रजनों, नातित्रनों, मित्रजनों, स्वजनो, सवधियों एवं परिजनो का अशन पान सादिम स्वादिम से तथा पुष्प वस्त्र, माल और अलंकार आदि से सत्कार—सन्मान करके उन्हें विदा किया ।

१४—तए णं से तेपत्तिपुत्ते, पोट्टिलाए भारियाए अणुरत्ते धरित्ते उरालाई जाव [मानव भोगभोगाई भुंजमाणे] पिहरइ ।

तत्पश्चात् तेतलिपुत्र प्रमात्य पोट्टिला भार्या में अनुरक्त होकर, धरित्त-प्राप्त होकर गता यावत् [मानव सबधी भोगने योग्य भोग भोगता] हुमा रहने लगा ।

१५—तए णं से कणगरहे राया रज्जे य रट्टे य बत्ते य याहणे य कोसे य कोट्टागारे य कोसे य मुच्छिए गट्टिए गिद्धे अज्जभोषवण्णे जाए जाए पुत्ते विपंगेइ, अप्पेगइयाणं हयंगुत्तिमाओ पिये, अप्पेगइयाणं हयंगुत्तए छिवइ, एवं पायंगुत्तिमाओ पायंगुत्तए यि कलसवकुलीए यि नात्तापुत्ताई कोसे अंगमंगाई विपंगेइ ।

कनकरथ राजा राज्य में, राष्ट्र में, वल (सेना में), वाहनों में, कोप में, कोठार में तथा ग्राम-पुर में प्रत्यन्त प्राप्त था, लोलुप—गूढ़ और लालसामय था । अतएव वह जो जो पुत्र उत्पन्न हो उन्हे विकलाग कर देता था । किन्हीं की हाथ की अंगुलियाँ काट देता, किन्हीं के हाथ का अंगुली काट देता, इसी प्रकार किसी के पैर की अंगुलियाँ, पैर का अंगूठा, कर्णाशकुली (कान की परत) और किसी का नासिकापुट काट देता था । इस प्रकार उसने सभी पुत्रों को अवयवविकल-विकल कर दिया था ।

वियेघन—कनकरथ को भय था कि यदि मेरा कोई पुत्र बचस्क हो गया तो सभ्य है वह मुझे मत्ताच्युत करके स्वयं राजसिंहासन पर आसीन हो जाए । मगर विकलाग पुत्र राजसिंहासन का अधिकारी नहीं हो सकता था । अतएव वह अपने प्रत्येक पुत्र को अवहीन बना देता था ।

राज्यतोन्मुता ग्रथया मत्ता के प्रति प्राप्तिक्रि जब अपनी सीमा का उत्थान कर जाती है तब कितनी घनघनत्रय हो जाती है और मत्तालोलुप मनुष्य को ग्रथ-पतन की किस सीमा तक ले जाती है, कनकरथ राजा इस समय का उत्थान उदाहरण है । राज्यलोभ ने उसे वियेकान्ध बना दिया था और वह मानो स्वयं को अजर-अमर मान रहा था ।

१६—तए णं तोसे पउमावईए देवोए अग्रया पुत्थरत्तावरत्तकालसमयंति अयमेवाइये प्राक्-रियए समुत्पत्तिवा—‘एवं खलु कणगरहे राया रज्जे य जाव’ पुत्ते विपंगेइ जाव’ अंगमंगाई विपंगेइ तं जइ धह दारय पयायामि, तयं खलु मम त दारयं कणगरहस्स रहस्सियं धेय सारस्समाओ-

‘सर्वोदेमाणी ए विहरितम्’ इति वृत्, एवं तपेहेह, सवेहिता तैत्तिरीय प्रमच्छं सदावेह, सदावित्ता एव  
पदमासी—

१३—तत्पदमात् पद्मावती देवी को एक बार मध्य रात्रि के समय इस प्रकार का विचार उत्पन्न  
होया—‘कनकरथ राजा राज्य प्रादि मे प्राप्त होकर यावत् पुत्रों को विकलांग कर देता है, यावत्  
उनके भग-भग काट लेता है, तो यदि मेरे सब पुत्र उत्पन्न हो तो मेरे लिए यह श्रेयस्कर होगा कि  
उम पुत्र को मे कनकरथ मे धिया कर पाऊँ-योम्’ । पद्मावती देवी ने ऐसा विचार किया और विचार  
करके तैत्तिरीय प्रमाथ को बुलवाया । बुलवा कर उमने कहा—

१४—‘एवं सन्तु देवाणुत्पिषा । कनकरथे राजा रज्जे य जाय’ विप्रेह, तं जह नं ग्रहं  
देवाणुत्पिषा । बारणं पद्मायामि, तए नं सुयं कनकरथेहस्त रहस्सियं चैव अणुपुष्येण सारवक्षमाणे संगो-  
वेमाणे संवहृतेहि, तए नं से बारए उम्भकवात्तनाये जोध्वणमणुपत्ते तव य मम य भिवक्षाभायणे  
भविमह ।’ तए नं से तैत्तिरीय प्रमच्छं पद्मावती देवी एवमहुं पडिमुण्ह, पडिमुणित्ता पडिगए ।

‘हे देवानुत्पिष । कनकरथ राजा राज्य और राष्ट्र प्रादि मे प्रत्यन्त प्राप्त होकर सब पुत्रों  
को घायल कर देता है, मतः मैं यदि सब पुत्र को जन्म दूँ तो कनकरथ से धिया कर ही अनुक्रम से  
उनका धरक्षण, समोपन एव समर्पण करना । ऐसा करने से वह बालक बाल्यावस्था पार करके,  
यौवन को प्राप्त होकर तुम्हारे लिए भी और मेरे लिए भी भिक्षा का भाजन बनेगा, अर्थात् वह  
तुम्हारा हमारा पालन-पोषण करेगा ।’ तब तैत्तिरीय प्रमाथ ने पद्मावती के इस धर्म (कथन) को  
अंगीकार किया । अंगीकार करके वह नापित मोट गया ।

१५—तए न पद्मावती य देवी पोट्टिता य प्रमच्छो सममेव गमं गेहति, सममेव गमं  
परिवहति, सममेव गमं परिवहति ? तए नं सा पद्मावती देवी नवण्हं मासाणं पडिपुण्णानं जाय  
पियदंसणं सुकयं बारणं पद्माया ।

ज रमणि य नं पद्मावती देवी बारणं पद्माया त रमणि य पोट्टिता वि प्रमच्छो नवण्हं  
मासाणं पडिपुण्णानं विनिहाममावत्तं बारिय पद्माया ।

तत्पदमात् पद्मावती देवी ने और पोट्टितानामक प्रमाथी (प्रमाथ की पत्नी) ने एक ही  
मास गर्भ धारण किया, एक ही साथ गर्भ वहन किया और मास-साथ ही गर्भ की वृद्धि की ।  
तत्पदमात् पद्मावती देवी ने भी मास [और साढ़े सात दिन] पूर्ण हो जाने पर देखने में प्रिय और  
सुन्दर रूप वाले पुत्र को जन्म दिया ।

त्रिम रात्रि मे पद्मावती देवी ने पुत्र को जन्म दिया, उसी रात्रि में पोट्टिता प्रमाथपत्नी ने  
भी भी मास [और साढ़े सात दिन] व्यतीत होने पर परी हुई बालिका का प्रसव किया ।

१६—तए न सा पद्मावती देवी प्रमच्छाहं सदावेह, सदावित्ता एवं पद्मासी-गच्छहं नं तुमे  
प्रमो ! तैत्तिरीयप्रतिहे, तैत्तिरीयप्रति रहस्सियं चैव सदावेह ।’

तएवं मा पद्मपाई तत्र ति पश्चिमुपेह, पश्चिमनिस्त अतेउरस्त पद्मारेणं निस्त  
निगच्छिता जेनेव तेपतिपुत्तं मिहे तेनेव उवागच्छ, उवागच्छिता करपल जाव' एव  
'एवं सन्तु देवानुप्पिया' पउमायई देवी सदावेह ।'

उम समय पद्मावती देवी ने धानी भाव माता को पुता धोर रहा—'मा, तुम जेने  
के पर जाओ धोर तेपतिपुत्र को गुप्त रूप में बुना लाओ ।'

तब धाय माता ने 'बहुत धन्य' इम प्रकार कटकर पद्मावती का पदम स्वीकार  
स्वीकार करके वह धन्य-पूर के निकले द्वार में निकल कर तोलियापुत्र के घर पहुँची । वहाँ पहुँच  
दोनों हाथ जोड़ कर (मस्तक पर अञ्जलि करके) उमने याग-तु इम प्रकार कहा—'हे देवानुप्पिय ! त  
को पद्मावती देवी ने बुनाया है ।'

२०—तएवं तेपतिपुत्तं पद्मपाईए अंतियं एवमपुं तोक्का नितम्म हट्ट-मुट्टे पद्मपाई  
सद्धि साओ गिहाओ निगच्छइ, निगच्छिता अतेउरस्त अवदारेणं रहस्सियं चव प्रवृत्तियं  
अणुपविसित्ता जेनेव पउमायई देवी तेनेव उवागच्छइ, उवागच्छिता करपलपरिभहिं जाव ए  
ययासी-संसित्तु णं देवानुप्पिया ! जं मए कायस्य ।'

तत्पश्चात् तेतलिपुत्र, धाय माता से यह प्रथं गुनकर धोर हृदय में धारण करके हट्ट-मुट्ट  
होकर धाय माता के साथ अपने घर से निकला । निकल कर धन्य-पूर के पिछले द्वार से, गुप्त रूप से  
उसने प्रवेश किया । प्रवेश करके जहाँ पद्मावती देवी थी, वहाँ धाया । धाकर दोनों हाथ जोड़ कर  
[मस्तक पर अञ्जलि करके] बोला—'देवानुप्पिये ! मुझे जो करना है, उसके लिए माता दीजिए ।'

२१—तएवं पउमायई देवी तेपतिपुत्तं एवं ययासी-एवं सन्तु कणगरहे राया जाव' विषये  
अहं च णं देवानुप्पिया ! दारणं ययाया, त तुमं णं देवानुप्पिया ! तं दारणं गिहाहि, जाव' तव म  
य भिक्खामायणं भयिस्सइ, ति कट्टु तेपतिपुत्तस्स हस्ये वल्लयइ ।

तएवं तेपतिपुत्तं पउमायईए हस्याओ दारणं गेहइ, गेहिस्ता उत्तरिअजेणं विहेइ, विहिता  
अतेउरस्त रहस्सियं अवदारेणं निगच्छइ, निगच्छिता जेनेव सए गिहे, जेनेव पोट्टिता मायिया  
तेनेव उवागच्छइ, उवागच्छिता पोट्टितं एवं ययासी—

तत्पश्चात् पद्मावती देवी ने तेतलिपुत्र से इस प्रकार कहा—'तुम्हें विदित ही है कि कनकर  
राजा यावत् [जन्म हुए बालकों में से किसी के हाथ, किसी के कान आदि कटवाकर] सब पुत्रों को  
विकलाग कर देता है । हे देवानुप्पिय ! मैंने बालक का प्रसव किया है । मतः तुम इस बालक को  
ग्रहण करो—सँभालो । यावत् यह बालक तुम्हारे लिए और मेरे लिए भिक्षा का भाजन सिद्ध होगा ।'  
ऐसा कहकर उसने वह बालक तेतलिपुत्र के हाथों में सौंप दिया ।

तत्पश्चात् तेतलिपुत्र ने पद्मावती के हाथ से उस बालक को ग्रहण किया और अपने उत्तरीय  
वस्त्र से ढँक लिया । ढँक कर गुप्त रूप से धन्य-पूर के पिछले द्वार से बाहर निकल गया । निकल कर  
जहाँ अपना घर था और जहाँ पोट्टिला भार्या थी, वहाँ आया । आकर पोट्टिला से इस प्रकार कहा—

२२—'एवं खलु देवानुप्पिया ! कणगरहे राया रज्जेय जाव विपंगेड, धयं च नं दारए भगरहस्स पुत्ते पउमावईए भत्तए, तेण तुमं देवानुप्पिया ! इमं दारग कणगरहस्स रहस्सियं वेव णुपुत्वेणं सारवत्ताहि य, संगोवेहि य, सबड्ढेहि य । तए णं एस दारए उम्मुक्कवातनावे तव य मम य उमावईए य घाहारे भविस्सइ, त्ति कट्टु पोट्टिस्साए पासे णिक्खिबड्ढ, पोट्टिस्साए पासाओ त विणिहाय-  
वप्पिय दारियं गेण्हइ, गेण्हिस्सा उत्तरिज्जेणं विहेइ, पिहिस्सा अतेउरस्स भवदारेणं भणुपविसइ, णुपविसिस्सा जेणेव पउमावई देवो तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिस्सा पउमावईए देवोए पासे ठावेइ, विस्सा जाव पडिनिगए ।

'देवानुप्पिये ! कनकरथ राजा राज्य आदि में यावत् धतीव यासक्त होकर अपने पुत्रों को । वत् भग्न कर देता है । और यह बालक कनकरथ का पुत्र और पद्मावती का प्रात्मज है, अतएव वानुप्पिय ! इस बालक का, कनकरथ से गुप्त रख कर अनुक्रम से, संरक्षण, संगोपन और संवर्धन करना । इससे यह बालक बाल्यावस्था में मुक्त होकर तुम्हारे लिए, मेरे लिए और पद्मावती देवी के तए आधारभूत होगा ।' इस प्रकार कह कर उस बालक को पोट्टिला के पास रख दिया और पोट्टिला : पास से मरी हुई लड़की उठा ली । उठा कर उसे उत्तरीय वस्त्र से ढँक कर अन्तःपुर के पिछले छोटे द्वार में प्रविष्ट हुआ और पद्मावती देवी के पास पहुँचा । मरी लड़की पद्मावती देवी के पास रख दी और वह वापिस चला गया !

२३—तए ण तोसे पउमावईए भंगपडियारियाओ पउमावइ देव विणिहायमावप्पिय चारियं पयायं पासंति, पासिस्सा जेणेव कणगरहे राया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छिस्सा करपस ताव' एवं वयासी-एवं खलु सामी ! पउमावई देवो मइस्सिय दारियं पयाया ।'

तत्पश्चात् पद्मावती की अगपरिवारिकाओं ने पद्मावती देवी को और विनिघात को प्राप्त (मृत) जन्मी हुई बालिका को देखा । देख कर वे जहाँ कनकरथ राजा था, वहाँ पहुँच कर दोनों हाथ जोड़कर इस प्रकार कहने लगी—'स्वामिन् ! पद्मावती देवी ने मृत बालिका का प्रसव किया है ।'

२४—तए णं कणगरहे राया तीसे मइस्सियाए दारियाए नीहरणं करेइ, बहूणि लोइयाई पक्किच्चाई करेइ, कत्तिहं विगमसीए जाए ।

तत्पश्चात् कनकरथ राजा ने मरी हुई लड़की का नीहरण किया अर्थात् उसे दमशान में ले गया । बहुत-से मृतक संवधी लौकिक कार्य किये । कुछ समय के पश्चात् राजा शोक-रहित हो गया ।

२५—तए णं तेयलिपुत्ते कस्से कोडुं वियपुरिसे सट्ठावेइ, सट्ठाविस्सा एवं वयासी-विप्पामेव आरगसोधनं करेह जाव ठिड्ढाडियं दसदेवसियं करेह कारवेह य, एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह । म्हा णं भम्हं एस दारए कणगरहस्स रज्जे जाए, तं होउ ण दारए नामेणं कणगग्गए जाव' अलं गेगसमथे जाए ।

तत्पश्चात् दूसरे दिन तैत्तिरीय ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया । बुला कर कहा—'हे वानुप्पियो ! शीघ्र ही चारक घोषण करो, अर्थात् कैदियों को कारागार से मुक्त करो । यावत् दस

दिनों की स्थितिपत्तिका करो—पुत्रजन्म का उत्सव करो। यह मंत्र करके मेरी घाजा मुझे वापस लौपा। हमारा यह बालक राजा बनकर यह राज्य में उत्पन्न हुआ है, अतएव इस बालक का नाम कनकध्वज हो। धीरे-धीरे वह बालक बड़ा हुआ, कलाओं में कुशल हुआ, यौवन को प्राप्त हुआ भोग भोगने में समर्थ हो गया।

२६—तएवं सा पोट्टिला अन्नया कयाई तेयलिपुत्तस्स अणिट्ठा जाया यावि होत्वा, नेच्छाए तेयलिपुत्ते पोट्टिलाए नामगोत्तमवि सवणयाए, किं पुण दरिसणं वा परिभोगं वा ?

तएवं तीसे पोट्टिलाए अन्नया कयाई पुध्वरत्तावरत्तकात्तसमयंति इमेयाह्वे जाव सपुण्ड्रिज्जत्ता—एवं खलु अहं तेयनिपुत्तस्स पुण्ड्रि इट्ठा आसि, इयाणि अणिट्ठा जाया, नेच्छाए तेयलिपुत्ते मम नामं जाव परिभोगं वा।' ओहयमणसंकप्पा जाय [करयलवहहहमुहो मट्टुअणोवपणा] क्रियायइ।

तत्पश्चात् किसी समय पोट्टिला, तेतलिपुत्र को अप्रिय हो गई। तेतलिपुत्र उसका नाम-गो भी मुनना पसन्द नहीं करता था, तो दर्जन और परिभोग की तो बात ही क्या ?

तब एक बार मध्यरात्रि के समय पोट्टिला के मन में यह विचार आया कि—‘तेतलिपुत्र को मैं पहले प्रिय थी, किन्तु आजकल अप्रिय हो गई है। अतएव तेतलिपुत्र मेरा नाम भी नहीं मुनना चाहते, तो यावत् परिभोग तो चाहेंगे ही क्या ?’ इस प्रकार, जिसके मन के सरलप नष्ट हो गये। ऐसी वह पोट्टिला [हथेली पर मुख रखकर आत्म-ध्यान करने लगी] चिन्ता में डूब गई।

२७—तएवं तेयलिपुत्ते पोट्टिलं ओहयमणसंकप्पं जाय<sup>१</sup> क्रियायमाणं पात्तइ, पात्ताएवं ययासी—‘मा नं तुमं देयाणस्सिपया ! ओहयमणसंकप्पा, तुमं नं मम महाणसंसि विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडावेहि, उवक्खडावित्ता बहूणं समणमाहणं जाव अतिहि-किवण-यणीमगाणं देवमाणी य दयायेमाणी य विहराहि।’

तएवं सा पोट्टिला तेयलिपुत्तेणं एवं वृत्ता समाणा हट्ठवुट्ठा तेयलिपुत्तस्स एयमट्ठं पड्डिमुत्ते, पड्डिमुत्तिता कल्लाकल्लि महाणसंसि विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं जाव उवक्खडावेहि, उवक्खडावेत्ता बहूणं समण-माहण-प्रतिहि-किवण-यणीमगाणं देवमाणी य दयायेमाणी य विहरइ।

तत्पश्चात् तेतलिपुत्र ने भग्नमनोरथा पोट्टिला को चिन्ता में डूबी देखकर इस प्रकार कहा—‘देवानुप्रिये ! भग्नमनोरथ मत होओ। तुम मेरी भोजनशाला में विपुल भक्षण, पान, मादिम और स्वादिम खाहार तैयार करवाओ और करवा कर बहुत-से भक्षणों, द्राव्यणों, प्रतियियों और भिन्नारियों को दान देती-दिनाती हुई रहो करो।’

तेतलिपुत्र के ऐसा कहने पर पोट्टिला हर्षित और सन्तुष्ट हुई। उसने तेतलिपुत्र के इस सर्व (द्वय) को प्रगोकार करके प्रतिदिन भोजनशाला में वह विपुल भक्षण, पान, मादिम और स्वादिम तैयार करवा कर भक्षणों, द्राव्यणों प्रतियियों और भिन्नारियों को दान देती और दिनाती रहती थी—अपना कान यापन करती थी।



तबभारिणीओ बहुतसुपाओ बहुपारवाराओ पुष्पानूपुष्प चरमासीओ  
जेव उवागच्छति, उवागच्छता, अहापडिह्वं उगहं ओमिहति, ओमि-  
हण भावेमाणीओ विहरति ।

स ममय मे, ईयां-समिति से युक्त यावन् [भाषा-समिति, एषणाममिति,  
समिति उच्चार-प्रनवण-येन-सिषाण-जल्ल-परिष्ठापन समिति से युक्त,  
कायममिति ने मध्यम, मनोगुप्ति वचनगुप्ति और कायगुप्ति में युक्त,  
न करने वाली] गुप्त शस्त्राचारिणी, बहुभूत, वहुन परिवार वाली मुक्ता  
बहार करती-करती तैतलिपुर नगर में घाई । भाकर यथोचित उपाध्य  
से आत्मा को भावित करती हुई विचरने लगी ।

। मुन्वयाण अज्जाण एगे संघाडए पडभाए पोरिसीए सग्गमायं करेइ जाव  
गिह् अणुपविट्ठाओ । तए णं ता पोट्ठिता ताओ अज्जाओ एज्जमाणीओ  
तसणाओ अरभुट्ठेइ, अरभुट्ठिता ववइ, नमसइ, वडित्ता नमंसित्ता विपुलं  
डित्तामेइ, पडित्तामित्ता एयं वयाती—

व्रता भाषा के एक सपात्र ने प्रथम प्रहर में स्वाध्याय किया और दूसरे  
प्रहर में विद्या के लिए यावत् घटन करती हुई वे साध्वियाँ तैतलिपुत्र  
ट्टिता उन भाषाओं को घाती देखकर हृष्ट-तुष्ट हुई, अपने ध्यान से उठ  
कार किया और विपुल ध्यान, पान ग्राह्य और स्वाद्य-माहार बहुराय ।

—

मूल के 'पडभाए पोरिसीए सग्गमायं करेइ' के पदचान् 'जाव' शब्द से  
गया है, जिसमें याधु-माध्वी के दैविक कार्यक्रम के कुछ अंश का उल्लेख  
निर्दिष्ट का भी उल्लेख किया गया है । उस पाठ का आशय इस प्रकार है—  
में स्वाध्याय किया, द्वितीय प्रहर में ध्यान किया, तीसरा प्रहर प्रारंभ  
और मध्यम के बिना अर्थात् जन्दी से गोधरी के लिए जाने की उत्कटा  
भावधान भाव में सुखवस्तिका का प्रतिलेखन किया, पात्रों और वस्त्रों  
का प्रमांजन किया, तत्पश्चात् पात्र ग्रहण करके अपनी प्रवर्तिका मुद्रता  
ह्वे वन्दन—नमस्कार किया और विधावर्षा के लिए तैतलिपुर नगर के  
में जाने की आज्ञा पायी

वन्दे विद्या के लिए जाने की अनुमति दे दी । तत्पश्चात् वे आधिकार्य  
धीमी, ध्रुवचल और घसंभ्रान्त गति से गमन करती हुई चार हाथ  
टि रक्ते हुए—ईयां समिति से नगर में श्रीमन्तों, गरीबों तथा मध्यम  
घटन करने लगी । घटन करती-करती वे तैतलिपुत्र के घर में पहुँची ।

इस वर्णन से स्पष्ट है कि भिक्षार्थ गमन करने से पूर्व साधु-माध्वी को वस्त्र-वाग्रादि का नि-  
लेखन-प्रमार्जन करना आवश्यक है, वे जिसकी निश्चा (नेमराय) में हों उनकी प्राप्ति प्राप्त करनी  
चाहिए तथा शीघ्र भिक्षाप्राप्ति के विचार से त्वरा या चपलता नहीं करनी चाहिए। भिक्षा के  
लिए धनी, निधन एवं मध्यम वर्ग के घरों में जाना चाहिए। भिक्षा का प्रागमोक्त समय तृतीय प्रहर  
है, यह भी इससे स्पष्ट हो जाता है, फिर भी इस विषय में देश-काल का विचार रखना चाहिए।

३०—एव खलु अहं अज्जाओ ! तेयलिपुत्तस्स पुब्बि इट्ठा कंता पिमा मणुणा मणामा प्राप्ति,  
इयानि अणिट्ठा अप्पिमा, अकंता अमणुणा अमणामा जाया । नेच्छइ णं तेयलिपुत्ते मम नामगोपनी  
सवणयाए, किं पुण वसणं वा परिभोगं वा ? तं तुम्हे णं अज्जाओ सिक्खिपाओ, बहुनायाओ, बहुसि-  
याओ, बहुणि गामागर जाय प्राहिइह, राईसर जाय गिहाइं अणुपविसह, तं अस्थि याइं भे अज्जाओ !  
केइ कहिचि चुअजोए वा, अंतजोमे वा, कम्मजोए वा, हियउड्डायणे वा, काउड्डायणे वा प्राप्ति-  
ओगिए वा, वसोकरणे वा, कोउयकम्मे वा, भूइकम्मे वा, मूले कंवे द्यत्सी वत्ती सिलिया वा गुत्तिया  
वा, ओसहे वा भेसज्जे वा उयलद्धपुम्मे जेणाहं तेयलिपुत्तस्स पुणरवि इट्ठा भवेज्जामि ।

‘हे आर्याओ ! मैं पहले तेतलिपुत्र की इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ और मणाम-मनमनी  
थी, किन्तु अब अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय, अमनोज्ञ, अमणाम हो गई हूँ। तेतलिपुत्र मेरा नाम-गोप  
भी सुनना नहीं चाहते, दर्शन और परिभोग की तो बात ही दूर ! हे आर्याओ ! तुम सिद्धि हो,  
बहुत जानकार हो, बहुत पढी हो, बहुत-से नगरों और ग्रामों में यावत् भ्रमण करती हो, रात्रि  
और ईश्वरी-युवराजों आदि के घरों में प्रवेश करती हो, तो हे आर्याओ ! तुम्हारे पास कोई पुन  
योग (स्तभन आदि करने वाला) मंत्र योग, कामण योग, हृदयोद्घायन-हृदय को हरण करने वाला,  
काया का प्राकरण करने वाला, आभिवोगिक-पराभव करने वाला, वसीकरण, कोतुकर्म-नीभाम  
प्रदान करने वाला स्नान आदि, भूतिकर्म-मयित की हुई भभूत का प्रयोग, प्रया कोई मूल, इन्द्र,  
छाल, बेल, शिलिका (एक प्रकार का घास) गोली, ओषध या भेषज ऐसी है, जो पहले जानी हुई  
हो ? जिससे मैं फिर तेतलिपुत्र की इष्ट हो सकूँ ?’

३१—तए णं तामो अज्जाओ पोट्ठिआए एवं युत्ताओ समाणीओ वो वि कप्पे ठाडि, ठाडि  
पोट्ठिलं एवं वयासी—‘अहं णं देवानुप्पिया ! समणीओ निगंथोओ जाय’ पुत्तयंभचारिणोओ, ओ  
खलु कप्पइ अहं एवप्पयारं कप्पेहि वि निसामेतए, किमं पुण उयविसितए वा, आपरितए वा ?  
अहं णं तव देवानुप्पिया ! विचित्तं केवलपयसं धम्मं परिकहिअज्जाओ !’

पोट्टिला के द्वारा इस प्रकार कहने पर उन आर्याओं ने अपने दोनों कान बन्द कर लिये।  
कान बन्द करके उन्होंने पोट्टिला से कहा—देवानुप्रिये ! हम निगन्थ श्रमणिया हैं, यावत् पुन  
ब्रह्मचारिणिया हैं। अतएव ऐसे वचन हम कानों में ध्वज करना भी नहीं कल्पता तो हम विनय  
का उपदेश देना या आचरण करना तो कल्प ही कैसे सकता है ? हाँ, देवानुप्रिये ! हम तुम्हें धर्म-  
भूत या धनेरु प्रकार के केवलप्रफुल्लित धर्म का भवोभाति उपदेश दे सकते हैं।’

३२—तए नं सा पोट्टिला ताम्रो भज्जाओ एवं वयासी-इच्छामि नं भज्जाओ ! तुम्हं जतिए अलिपन्नं धम्मं निसामित्तए । तए नं ताम्रो भज्जाओ पोट्टिलाए विचित्तं धम्मं परिकहेति । तए नं पोट्टिला धम्मं भोच्चा निसम्म हट्ठुट्ठा एवं वयासी—‘सद्दहामि नं भज्जाओ ! निगंयं पावययं च’ से जहेयं तुम्हे वयह, इच्छामि नं भहं तुम्हं जतिए पंचाणुव्वइयं जाव सत्त सिकखावइयं गिहि-मं पडिवज्जित्तए ।’

अहामुहं देवानुप्पिए !

तत्पश्चात् पोट्टिला ने उन आर्याओ से कहा—‘हे आर्याओ ! मैं आपके पास से केवलप्ररूपित र्मुनना चाहती हूँ ।’ तब उन आर्याओ ने पोट्टिला को अद्भुत या अनेक प्रकार के धर्म का उपदेश या । पोट्टिला धर्म का उपदेश मुनकर और हृदय में धारण करके हृष्ट-तुष्ट होकर इस प्रकार ली—‘आर्याओ ! मैं निर्बन्धप्रवचन पर थका करती हूँ । जैसा आपने कहा, वह वैसा ही है । तए मैं आपके पास से पाँच अणुवत् और सात शिक्षावत् वाले श्रावक के धर्म को अंगीकार करना हूँ ।’

तब आर्याओं ने कहा—‘देवानुप्पिये ! जैसे सुख उपजे, वैसा करो ।’

३३—तए नं सा पोट्टिला तस्मिं भज्जानं अतिए पंचाणुव्वइयं जाव धम्मं पडिवज्जइ, ताम्रो उजाओ ववइ, नमंसइ, वंविता नममिन्ता पडिविसज्जेइ ।

तए नं सा पोट्टिला समणोवासिया जाया जाव समणे निगंयं कामुएणं एसणिज्जेणं भसण-ण-साइम-साइमेणं वय-पडिगाह-कंवल-पायपुंछणेण ओसह-भेसज्जेणं पाडिहारिणं पीड-फलग-उजा-संघारणं पडिलाभेमाणी विहरइ ।

तत्पश्चात् उस पोट्टिला ने उन आर्याओं से पाँच अणुवत्, सात शिक्षावत् वाला केवलप्ररूपित र्म अंगीकार किया । उन आर्याओ को वन्दना की, नमस्कार किया । वन्दना नमस्कार करके उन्हें वा किया ।

तत्पश्चात् पोट्टिला भ्रमणोपासिका हो गई, यावत् साधु-माध्वियों की [प्रासुक-धाचित, पणीय-आधाकर्मदि दोषो से रहित-कल्पनीय अशन, पान, खादिय, स्थादिय, तथा वस्त्र, पात्र, म्बल, पादप्रोद्यन, औषध, भेषज एवं प्रातिहारिक-वापिस लौटा देने के योग्य पीडा, पाटा, धाम्या-पाथय और मस्तारक-विद्यान के लिए धास आदि] प्रदान करती हुई विचरने लगी ।

३४—तए नं तोसे पोट्टिलाए अग्रया कयाइ पुन्वरसावरत्तकालसमयसि कुट्टुं बजागरियं ागरमाणीए अग्रयेमाळवे भज्जसियए जाव समुप्पज्जित्वा—‘एवं खलु भहं तेयतिपुत्तस्स पुंवि इट्ठा आसि, इयानि अणिट्ठा ५ जाया जाव<sup>२</sup> परिभोग वा, त सेयं खलु मम सुव्वयाणं भज्जानं अंतिए व्वज्जित्तए ।’ एवं संपेहेइ । सपेहिता कत्तं पाउप्पभायाए जेणेव तेयतिपुत्तं तेणेव उवागच्छइ, उवा-च्छिता करयत्तपरिगहियं सिरसावत्<sup>३</sup> भयए अंजलि कट्टु एवं वयामी-एवं खलु देवानुप्पिया !

मए सुध्वयाणं अज्जाणं अंतिए धम्मं निसंते जाव से वि य मे धम्मं इच्छिए पडिच्छिए प्रनिरए ।  
इच्छामि णं तुम्हेहि अब्भणुध्याया पव्वइत्तए ।'

तदनन्तर एक बार, किसी समय, मध्य रात्रि में जब वह कुटुम्ब के विषय में विचार जाग रही थी, तब उसे इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ—'मैं पहले तेतलिपुत्र को इष्ट हो, अनिष्ट हो गई हूँ, यावत् दर्शन और परिभोग का तो कहना ही क्या है ? अतएव मेरे लिए आर्या के निकट दीक्षा ग्रहण करना ही श्रेयस्कर है ।' पोट्टिला ने ऐसा विचार किया । विचार का दूसरे दिन, प्रभात होने पर, वह तेतलिपुत्र के पास गई । जाकर दोनों हाथ जोड़कर [अंतिए और मस्तक पर आवर्त्त करके] बोली—देवानुप्रिय ! मैंने सुत्रता आर्या से धर्म सुना है, वृद्ध मुझे इष्ट, अतीव इष्ट है, और रुचिकर लगा है, अतः आपकी आज्ञा पाकर मैं प्रव्रज्या ज्ञान करना चाहती हूँ ।

३५—तए णं तेयलिपुत्ते पोट्टिलं एवं वयासी-एवं खलु तुमं देवानुप्पिए ! मंदा पमां समानी कालमासे कालं किञ्चा अन्नघरेसु देवलोएसु देवताए उववज्जिहसि, तं जा व तु देवानुप्पिए ! ममं तामो देवलोपाओ प्रागम्भ केवलपप्रत्ते धम्मं बोहिहि, तो हं विसज्जेमि, एव तुमं ममं ण संबोहेसि तो ते ण विसज्जेमि ।'

तए णं सा पोट्टिला तेयलिपुत्तस्स एयमदठं पडिस्सेइ ।

तब तेतलिपुत्र ने पोट्टिला से इस प्रकार कहा—'देवानुप्रिये ! तुम मुझित और प्राज्ञ होकर मृशु के समय काल करके किसी भी देवलोक में देव रूप से उत्पन्न होओगी, तो यदि देव प्रिये ! तुम उस देवलोक से आकर मुझे केवलप्ररूपित धर्म का प्रतिबोध प्रदान करो तो मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ । अगर तुम मुझे प्रतिबोध न दो तो मैं आज्ञा नहीं देता ।'

तब पोट्टिला ने तेतलिपुत्र का अर्थ—कथन स्वीकार कर लिया ।

३६—तए णं तेयलिपुत्ते यिपुलं असणं पाण खाइमं ताइम उववज्जावेइ, उववज्जाविता मित्तणाइ जाव आमंतेइ, आमंतिता जाय संमाणेइ, समाजित्ता पोट्टिलं ण्हायं जाव [सम्मानना-विमूत्तिं] पुरित्तसहस्सयाहूणोयं सोयं बुद्धिहत्ता मित्तणाइ जाव परिवुडे सव्विद्धोए जाव रंभ तेतलिपुत्तस मग्गंमग्गं जेण्य सुध्वमाणं उवस्तए तेण्य उपागच्छइ, उपागच्छित्ता सोनाओ पच्चोरहइ, पच्चोरहत्ता पोट्टिलं पुरोओ कट्टु जेण्य सुध्वया अज्जा तेण्य उपागच्छइ, उपागच्छित्ता बंदइ, नमंसइ, ववित्ता नमसित्ता एवं वयासी—

'एयं खलु देवानुप्पिए ! मम पोट्टिला भारिया इट्ठा, एम णं संसारभउत्थिणा जाव [नील जम्मण-जर-मरणानं, इच्छइ देवानुप्पियाण अंतिए मंदा भविता अगारामो घणगारिय] पधसत्त । पडिच्छंनु णं देवानुप्पिए ! तिसित्तिभिन्नं वसयामि ।'

'अहामुहं मा पडिच्छं करेह ।'

तदनन्तर तेतलिपुत्र ने विपुल धन, धान, खादिस और स्वादिस आहार वन्याया [नील जम्मण-जर-मरणानं] इच्छइ देवानुप्पियाण अंतिए मंदा भविता अगारामो घणगारिय] पधसत्त । पडिच्छंनु णं देवानुप्पिए ! तिसित्तिभिन्नं वसयामि । मंदा भविता अगारामो घणगारिय] पधसत्त ।

५ पीठिला को स्नान कराया यावत् (सर्व अलंकारों से विभूषित किया) और हजार पुष्पो द्वारा करने योग्य त्रिविका पर आरुढ़ करा कर मिथो तथा शक्तिजनों आदि से परिवृत होकर, त श्रद्धि-तवाजमे—के साथ, यावत् बालों की ध्वनि के साथ संतलिपुर के मध्य में होकर मुवता गी के उपाधम में घाया । वहाँ आकर मुवता आर्या को वन्दना की, नमस्कार किया । वन्दना कर करके इस प्रकार कहा—

‘देवानुप्रिये ! यह मेरी पीढ़ीला भार्या मुझे इष्ट है। यह सत्तार के भय से उदवेग को प्राप्त है, यावत् (जन्म, जरा, मरण के दुःखों से भयभीत हुई है, यत् आपके निकट मुद्रित होकर गृह-गण बनना चाहती है—) दीक्षा अंगीकार करना चाहती है। सो देवानुप्रिये ! मैं आपको सिष्या भिक्षा देता हूँ। इसे आप अंगीकार कीजिए।’

धार्या ने कहा—'जैसे मूख उपजे वंसा करो; प्रतिबन्ध मत करो—वितम्ब न करो ।'

३७—तए नं मा पोहिला सुखयाहि अज्जाहि एव बुत्ता समाना हद्द-बुद्दा उत्तरपुरतियमे  
भाए सपमेव माभरण-मत्तालंकारं सोमुयइ, तेण-मागमेव पञ्चमदियं सोयं करइ, करिता जेजेव  
रामो अज्जासो तेणेव उवागच्छइ, उवागि . . . . .  
मत्ते नं भंते ! लोए' एवं अहा देवान्वा, . . . . .  
इ, पाउणिस्ता मासियाए सत्तेहणाए द्यतत्तं भोसित्ता सट्ठि भलाइ' अणसण्ण छइत्ता, ५.१.३५-  
कंता समाहिपत्ता कालमासे कालं किञ्चा अणयरेसु देवतोएसु देवताए उववत्ता ।

सत्यश्चात् मुच्यता भार्या के इस प्रकार कहने पर पोट्टिला हृष्ट-तुष्ट हुई। उसने उत्तर पूर्व-दिशा में जाकर अपने प्राप भाभरण, माला और शलकार उतार डाले। उतारकर स्वयं ही प्लिक लोच किया। यह सब करके जहाँ सुच्यता भार्या थी, वहाँ भाई। धाकर उन्हे वन्दन-कार किया। वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—‘हे भगवती (पूज्ये)। यह ससार चारों से जल रहा है, इत्यादि भगवती मूत्र मे कथित देवानन्दा की दीक्षा के समान वर्णन कह लेना ए।’ यावत् पोट्टिला ने दीक्षा अंगोकार करने के पश्चात् ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। बहुत तक चारित्र्य का पालन किया। पालन करके एक मास की सनेखता करके, अपने शरीर की कृश, साठ भक्त का अनुशन करके, पापकर्म की शालोचना और प्रतिक्रमण करके, समाधिपूर्वक मृत्यु वसर पर काल करके वह किसी देवलोक में देवता के रूप में उत्पन्न हुई।

३८—तए नं ते कणगरहे राया अग्रया कयाई कास्तधम्मणा सजुत्ते यावि होत्था । तए नं । र जाव [तलवर-माडविय-कोट्टिय-इन्ध-सेट्टि-सेणावइपमिइओ रोयमाणा कंदमाणा विलव- । तस्स कणगरहस्स सरीरस्स महया इड्ढो सबकार-समुदणं] णोहरणं करंति, करित्ता अग्रमन्नं । यासी—'एवं खसु देवाणुप्पिया ! कणगरहे राया रज्जे य जाव पुत्ते चियंगित्था, अग्हे नं देवाणु- । ! रायाहोणा, रायाहिट्ठिया, रायाहीणकज्जा, अय च नं तेतलो अमच्चे कणगरहस्स रणो ण्णेसु सच्चममियासु लद्धपच्चए दिन्नवियारे सच्चकज्जवड्ढावए यावि होत्था । तं सेय खसु अग्हं । पुत्तं अमच्चं कुमार जाइत्तए' ति कट्ठ. अग्रमन्नस्स एयमट्ठं पडिमुणंति, पडिमुणित्ता जेणव । पत्ते अमच्चे तेणव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता तेयत्तिपत्तं एव वयासी—

वेस्तत वर्णन के लिए देखिए, भगवतीमूत्र शतक ९।

तत्पश्चात् किमी समय कनकरथ राजा कालधर्म से युक्त हो गया—मरणा ईश्वर (तलवर माडविक, कौटुम्बिक, इभ्य, थ्रेष्ठी, सेनापति आदि ने हदन करते हुए) चीमकर रोते हुए, विलाप करते हुए, खूब भूम-धाम से कनकरथ राजा का नीहरण किया—संस्कार किया। अन्तिम संस्कार करके वे परस्पर इस प्रकार कहने लगे—‘देवानुग्रिहो! राजा ने राज्य आदि मे आसक्त होने के कारण अपने पुत्रों को विकलाग कर दिया है। देवानुग्रिह हम लोग तो राजा के अधीन है, राजा से अधिष्ठित होकर रहने वाले है, और राजा के आज्ञा कर कार्य करने वाले हैं। तेतलिपुत्र अमात्य, राजा कनकरथ का, सब स्थानों में और सब कामों में विश्वामपात्र रहा है, परामर्श—विचार देने वाला—विचारक है और सब काम चलायमान। अतएव हमें तेतलिपुत्र अमात्य से कुमार की याचना करना चाहिए।’ इस प्रकार विचार करते-करते अंत में यह बात स्वीकार की। स्वीकार करके तेतलिपुत्र अमात्य के पास प्राये। पाकर राजा से इस प्रकार कहने लगे—

३६—‘एवं सन्तु देवानुग्रिया! कनगरहे राया रज्जे म रट्ठे प जाय विम्वेद, दाहेण देवानुग्रिया! रायाहोणा जाय रायाहोणकज्जा, तुमं च नं देवानुग्रिया! कनगरहस्येण मग्गहोणं गु जाय रज्जधुराधिपतए। त जइ नं देवानुग्रिया! अरिथि केइ कुमारे रायलसकपपत्तं प्रभित्तपारिठ्ठे, न न तुमं मग्गं दसाहि, जा नं मग्गं महया महया रायाभिसेएणं प्रभित्तपामो।’

देवानुग्रिह! राजा ऐसी है—कनकरथ राजा राज्य में तथा राज्य में प्राप्त वांछा की वस्तु को विकलाग कर दिया है। और हम लोग तो देवानुग्रिह! राजा के आज्ञा कर कार्य करने वाले हैं। ते देवानुग्रिह! तुम कनकरथ राजा के अधीन तो हैं, राजा से अधिष्ठित रहते हैं, राजा के आज्ञा कर कार्य करने वाले हैं। अतएव हमें तेतलिपुत्र अमात्य से कुमार की याचना करना चाहिए। अतएव हमें तेतलिपुत्र अमात्य से कुमार की याचना करना चाहिए। अतएव हमें तेतलिपुत्र अमात्य से कुमार की याचना करना चाहिए।

३७—‘एवं सन्तु देवानुग्रिया! कनगरहे राया रज्जे म रट्ठे प जाय विम्वेद, दाहेण देवानुग्रिया! रायाहोणा जाय रायाहोणकज्जा, तुमं च नं देवानुग्रिया! कनगरहस्येण मग्गहोणं गु जाय रज्जधुराधिपतए। त जइ नं देवानुग्रिया! अरिथि केइ कुमारे रायलसकपपत्तं प्रभित्तपारिठ्ठे, न न तुमं मग्गं दसाहि, जा नं मग्गं महया महया रायाभिसेएणं प्रभित्तपामो।’

३८—‘एवं सन्तु देवानुग्रिया! कनगरहे राया रज्जे म रट्ठे प जाय विम्वेद, दाहेण देवानुग्रिया! रायाहोणा जाय रायाहोणकज्जा, तुमं च नं देवानुग्रिया! कनगरहस्येण मग्गहोणं गु जाय रज्जधुराधिपतए। त जइ नं देवानुग्रिया! अरिथि केइ कुमारे रायलसकपपत्तं प्रभित्तपारिठ्ठे, न न तुमं मग्गं दसाहि, जा नं मग्गं महया महया रायाभिसेएणं प्रभित्तपामो।’

३९—‘एवं सन्तु देवानुग्रिया! कनगरहे राया रज्जे म रट्ठे प जाय विम्वेद, दाहेण देवानुग्रिया! रायाहोणा जाय रायाहोणकज्जा, तुमं च नं देवानुग्रिया! कनगरहस्येण मग्गहोणं गु जाय रज्जधुराधिपतए। त जइ नं देवानुग्रिया! अरिथि केइ कुमारे रायलसकपपत्तं प्रभित्तपारिठ्ठे, न न तुमं मग्गं दसाहि, जा नं मग्गं महया महया रायाभिसेएणं प्रभित्तपामो।’

४०—‘एवं सन्तु देवानुग्रिया! कनगरहे राया रज्जे म रट्ठे प जाय विम्वेद, दाहेण देवानुग्रिया! रायाहोणा जाय रायाहोणकज्जा, तुमं च नं देवानुग्रिया! कनगरहस्येण मग्गहोणं गु जाय रज्जधुराधिपतए। त जइ नं देवानुग्रिया! अरिथि केइ कुमारे रायलसकपपत्तं प्रभित्तपारिठ्ठे, न न तुमं मग्गं दसाहि, जा नं मग्गं महया महया रायाभिसेएणं प्रभित्तपामो।’

४१—‘एवं सन्तु देवानुग्रिया! कनगरहे राया रज्जे म रट्ठे प जाय विम्वेद, दाहेण देवानुग्रिया! रायाहोणा जाय रायाहोणकज्जा, तुमं च नं देवानुग्रिया! कनगरहस्येण मग्गहोणं गु जाय रज्जधुराधिपतए। त जइ नं देवानुग्रिया! अरिथि केइ कुमारे रायलसकपपत्तं प्रभित्तपारिठ्ठे, न न तुमं मग्गं दसाहि, जा नं मग्गं महया महया रायाभिसेएणं प्रभित्तपामो।’

तए ण ता पउमावड् इति कण्वगम्भ्य राय सहोपड्, सहोवता एव वपाता-  
 गजे य जाव [रुद्रं य वसे य वाहणे य कोसे य कोट्टागारे य पुरे य] अतेउरे  
 य पहावेणं, त मुय पतेपतिपुत्तं धमच्च घाडाहि, परिजाणाहि, तवकारेहि,  
 दिहि, ठिमें पउनुवाणाहि, वाचतं पडिसंसाहेहि, अट्टासणेणं उवनिमंतेहि, भोगं

इन्द्रर घादि ने जनकपुत्र राजा का सहान्-सहान् राज्याभिषेक किया ।  
 राजा हो गया महाहिमवान् घोर मनस्य पर्वत के समान इत्यादि राजा का  
 (के पनुगार) यहा कहना चाहिए । यावत् वह राज्य का पालन करता हुआ

परावती देवी ने जनकपुत्र राजा को बुलाया घोर बुलाकर कहा—पुत्र !  
 तू (राष्ट्र, वन-मन्य, वाहन-हस्ती अश्व घादि, कोप, कोठार पूर घोर)  
 व की कृपा मे प्राप्त हुए है । यहा तक कि स्वयं तू भी तेतलिपुत्र के ही प्रभाव  
 स्व तू तेतलिपुत्र धर्माय का आदर करना, उन्हें अपना हितैषी जानना, उनका  
 करना, उग्र भाते देग कर राड़े होना, आकर रांवे होने पर उनका उपासना  
 पीछे-पीछे जाना बालने पर बचने की प्रयत्ना करना, उन्हें साथ आसन पर  
 भोग की (बेगन नया जागीर घादि की) वृद्धि करना

मे कण्वगम्भ्य पउमावई देवीए तह त्ति पडिमुणेड, जाव<sup>१</sup> भोग च से वड्ढेड ।

कपुत्र ने परावती देवी के वचन को बहुत आनन्द कहकर अंगीकार किया ।  
 प्रादेगानुसार तेतलिपुत्र का आदर-सन्मान करते गया । उसने उसके भोग  
 की वृद्धि कर दी ।

मे पोट्टिते देवे तेयलिपुत्तं अभिरत्तण अभिरत्तणं केवलियत्तत्तं धम्मं संबोहेड, भो  
 तेतलिपुत्तं बुद्धं । तए ण तस्म पोट्टितदेवस्स इमेपाक्ये अगग्गिणए जाव समुत्प-  
 णगग्गम्भ्य राया तेयलिपुत्तं आडाड, जाव भोगं च संवड्ढेड तए णं से तेयली  
 तंतबोहिग्गमाणे वि धम्मं भो संबुद्धं, त सेयं सत्तु कण्वगम्भ्यं तेयलिपुत्तामो  
 तट्ठु एवं सपेहेड, सविहिसा कण्वगम्भ्यं तेयलिपुत्तामो विप्परिणामेड ।

देव ने तेतलिपुत्र को बार-बार केवलिय-प्ररूपित धर्म का प्रतिबोध दिया, परन्तु  
 हुआ ही नहीं । तब पोट्टित देव को इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ—  
 लिपुत्र का आदर करता है, यावत् उसका भोग बढ़ा दिया है, इस कारण  
 विबोध देने पर भी धर्म मे प्रतिबुद्ध नहीं होता । अतएव यह उचित होगा

कि कनकध्वज को नेत्रनिग्रह में लिप्ट (लिपुन) कर दिया था । देव ने ऐसा विचार बिना सोच कनकध्वज को नेत्रनिग्रह में लिप्ट कर दिया ।

४४—तए न तेयलिपुत्ते कल्लं व्हाए जाव [कयचानि कम्भे कयकोउय-मगत-] पावदिने प्रासखंधवरगए बहूहि पुरिसेहि सपरिवुडे माओ गिहाओ निगच्छइ, निगच्छिता जेणेव कणगम्भ राया तेणेव पहारेख गमणाए ।

नदनभर तेननिग्रह दूसरे दिन स्नान करके, यावत् (ननिकम एव प्रमगत-निगारण के निर कीनुक, मगत, प्रायश्चित्त करके) श्रेष्ठ प्रहर को पीठ पर मगार होकर घोर बहुत-से पुष्पों में स्निग्ध होकर अपने घर से निकला । निरुल कर जहाँ कनकध्वज राजा था, उगी घोर रवाना हुआ ।

४५—तए न तेयलिपुत्तं प्रमच्चं से जहा बहये राईसरतलवर जाव [माडविय-कोइइ-इअन-सेट्टि-सेणावइ-सत्यवाह-] पभइओ पासंति, से जहेव घाडापति, परिजागंति, प्रभुदुडेहि, प्रभुदुडिता अंजलिपरिगहं करंति, करिता इट्ठाहि कंताहि जाव [पियाहि मणुणाहि मणासाहि] वगूहि मालयेमाणा सलयेमाणा य पुरतो य पिटुतो य पासतो य मगतो य समणुगच्छति ।

तत्पश्चात् सेतलिपुत्र प्रमात्य को (भाग में) जो-जो बहुत-से राजा, ईश्वर, तलवर, (माडविक, कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सेनापति, साधंयाह) प्रादि देगते, वे उमी तरह पर्याप्त सब की भांति उसका आदर करते, उसे हितकारक जानते, घोर राखे होते । सब हाँकर हाथ जोड़ते घोर हाथ जोड़कर इष्ट, कान्त, यावत् (प्रिय, मनोप्र घोर मनोहर) बाणी से बोलते घोर बार-बार बोलते । वे सब उसके आगे, पीछे घोर मगल-वगल में अनुसरण करके चलते थे ।

४६—तए न से तेयलिपुत्ते जेणेव कणगम्भए तेणेव उवागच्छइ । तए न कणगम्भए तेयलिपुत्तं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता नो आढाइ, नो परियाणाइ, नो प्रभुदुडेइ, प्रणाढायमाणे अपरियाणमाणे प्रणभुद्धायमाणे परंमुहे संचिट्ठइ ।

तए न तेयलिपुत्ते प्रमच्चे कणगम्भयस्स रण्णो अंजलि करेइ । तओ य न कणगम्भए राया प्रणाढायमाणे अपरिजाणमाणे प्रणभुद्धेमाणे तुसिणोए परम्मुहं संचिट्ठइ ।

तए न तेयलिपुत्ते कणगम्भयं विष्परिणयं जाणिता भीए जाव [तथे तसिए उच्चिलो] संजायभए एवं वयासी—‘कट्ठे नं मम कणगम्भए राया, होणे नं मम कणगम्भए राया, प्रवञ्जए नं कणगम्भए राया । त एण जज्जइ नं मम केणइ कु-मारेण भारेहि’ ति कट्ठु भीए तथे य जाव सणियं सणियं पच्चोसवकेइ, पच्चोसविकत्ता तमेव प्रासखंधं बुरुहेइ, बुरुहिता तेतलिपुरं मउअंमउअं जेणेव सए गिहे तेणेव पहारेख गमणाए ।

तत्पश्चात् वह सेतलिपुत्र जहाँ कनकध्वज राजा था, वहाँ आया । कनकध्वज ने सेतलिपुत्र को आते देखा, मगर देख कर उसका आदर नहीं किया, उसे हितपी नहीं जाना, खड़ा नहीं हुआ, बल्कि आदर न करता हुआ, न जानता हुआ घोर खड़ा न होता हुआ पराङ्मुख (पीठ कर कर) बैठा रहा ।

तब सेतलिपुत्र ने कनकध्वज राजा को हाथ जोड़े । तब भी वह उसका आदर नहीं करता हुआ विमुख होकर बैठा ही रहा ।



तत्र तैत्तिरीयः, कनकध्वज को धरने में विपरीत हुआ जानकर भयभीत हो गया। उसके हृदय में गुब्ब भय उत्पन्न हो गया। वह इस प्रकार बोला—मन ही मन कहने लगा—कनकध्वज राजा मुझमें रूढ़ हो गया है, कनकध्वज राजा मुझ पर हीन हो गया है, कनकध्वज राजा ने मेरा पुरा मोचा है। तो न मानूँ मैं मुझ किन बुरी चीज में मारेगा।' इस प्रकार विचार करके वह डर गया, पाम को प्राण हुआ, पञ्चगाना छोड़ छोड़े-छोड़े वहीं में गिरक गया। विमर्क कर उभो घटव को पीठ पर गवार हुआ। मथार होकर तैत्तिरीय के मध्यभाग में होकर अपने घर की तरफ रवाना हुआ।

४३—तए च तैत्तिरीयुः जे जहा ईसर जाव पासति ते तहा नो छाडायति, नो परिचायति, नो धरभुङ्गेति, नो धरतिपरिग्राह्य करेति, इत्याह जाव नो सत्यति, नो पुरघो य पिदुघो य पासघो य मगघो य सयशुगद्यति।

तए च तैत्तिरीयुः जेणेव तए गिहं तेणेव उवागच्छइ। जा वि य ते बाहिरिया परिमा भवइ, तजहा-वाते इ वा, वेसे इ वा, भाइसए इ वा, ता वि य नो छाडाइ, नो परिचायाइ, नो धरभुङ्गेइ। जा वि य ते धर्मितरिया परिसा भवइ, तजहा-पिया इ वा मायाइ वा जाव भाया इ वा भगिणी इ वा भय्या इ वा पुता इ वा भूया इ वा मुण्डा इ वा, ता वि य नो छाडाइ, नो परिचायाइ, नो धरभुङ्गेइ।

लक्षणात् तैत्तिरीयुः को ये ईश्वर आदि देवते हैं विष्णु के पहले की तरह उसका आदर नहीं करते, उसे नहीं जानते, मामने नहीं मझें होने, हाथ नहीं जोड़ने, घोर इष्ट, काग्न, प्रिय, मनोम, मनोहर वाली में बाग नहीं करने। घामे, पीछे घोर घमन बल में उसके साथ नहीं बलते।

तत्र तैत्तिरीयुः जिधर घटना घर था, उधर घाया। घर घाने घर बाहर की जो परिपद होती है, जेमे कि दाम, प्रथ्य (बाहर जाने-माने का काम करने वाले), तथा भागीदार आदि, उस बाहर की परिपद ने भी उगका घावर नहीं किया, उसे नहीं जाना। घोर न लखी हुई। घोर जो प्राभ्यन्तर परिपद होती है, जेमे कि माता, पिता, भाई, बहिन, पत्नी पुत्र, पुत्रवधू आदि, उसने भी उसका घावर नहीं किया, उसे नहीं जाना घोर न उठ कर लखी हुई।

आत्मघान का प्रथम

४४—तए च ते तैत्तिरीयुः जेणेव वासपरे, जेणेव तए सयजिजे तेणेव उवागच्छइ, उवा-गच्छित्ता मयजिजति जित्तिघइ, जित्तिघता एव बयासी—'एवं सनु ग्रहं सयाघो गिहाघो निगच्छामि, त चेव जाव धर्मितरिया परिसा नो छाडाइ, नो परिचायाइ, नो धरभुङ्गेइ, तं सेव सनु मम घप्याणं जीवियामो वयरोवित्तए' ति कट्टु, एवं सपेहेइ, सपेहिता तासउइ विसं घासगंसि पक्षिबइ, से य जिते नो मकमइ।

तए च ते तैत्तिरीयुः नोनूपत जाव गवस-गुतिय-भयसिद्धमुमपमासं खुरघारं घति घंघे घोहरइ, तस्य वि य ते घारा घोपलता।

तए च ते तैत्तिरीयुः जेणेव घसोमवणिमा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता पासणं गोवाए वंपइ, वंधिता दसु दुकहइ, दुकहिता पासं दसु वंधइ, वंधिता घप्याणं मुयइ, तस्य वि य ते रज्जु दिमा।

गांव धधक रहा है, तो आयुष्मन् तेतलिपुत्र ! हम कहीं जाएं ? कहीं शरण लें ? अभिप्राय वही है जिसके चारो ओर घोर भय का वायुमण्डल हो और जिसे कहीं भी शोक-कुशल न दिया है, न क्या करना चाहिए ? उसके लिए हितकर मार्ग क्या है ?

५१—तए नं से तेयलिपुत्रे पोट्टित्सं देवं एवं वयासी—‘भीयस्स खलु भो पवन्नासस्स उषकंठियस्स सदेसगमणं, छुहियस्स अन्नं, तिसियस्स पाणं, आउरस्स नेसज्जं, माइयस्स गून् अभिजुत्तस्स पच्चयकरणं, अद्धानपरित्तस्स वाहनगमणं, तरिउकामस्स पवहणं किच्चं,’ परं किंचे जितुकामस्स सहायकिच्चं, खंतस्स वंतस्स जिइदियस्स एत्तो एगमवि न भवइ ।

तत्पश्चात् तेतलिपुत्र ने पोट्टित्सं देव से इस प्रकार कहा—‘प्रहो ! इस प्रकार सर्वत्र पुरुष के लिए दोषा ही शरणभूत है । जैसे उत्कंठित हुए पुरुष के लिए स्वदेश गमन शरणभूत है, पानी को पानी, बीमार को औषध, मायावी को मुक्तता, अभियुक्त को (जिस पर दण्ड करने का आरोप लगाया गया हो उसे) विश्वास उपजाना, धके-मादे को वाहन पर चढ़ कर चलाना, तिरने के इच्छुक को जहाज और शत्रु का पराभव करने वाले को सहायकत्व (मित्रता) सहायता शरणभूत है । क्षमाशील, इन्द्रियदमन करने वाले, जितेन्द्रिय (इन्द्रियविययो मे राग-द्वेष करने वाले को इनमें से कोई भय नहीं होता ।

विशेषण—सर्वत्र भयग्रस्त को दोषा क्यों शरणभूत है ? इसका स्पष्टीकरण यह है कि शत्रु का निग्रह करने वाले क्षमाशील, इन्द्रियों का श्रौत मन का दमन करने वाले तथा जितेन्द्रिय पुरुष इन्द्रियों के विषय में राग न रखने वाले पुरुष को इनमें से एक भी भय नहीं है । भय काया श्रौत मन के लिए ही होता है । जितने दोनों की ममता त्याग दी, वह सदैव श्रौत सर्वत्र निर्भय है ।

प्रस्तुत गून् ४६ में तेतलिपुत्र का जो यत्न किया गया है, वह प्रत्यन्त विस्मयजनक है । यह सब देवी माया का चमत्कार ही समझना चाहिए । देवी चमत्कार तर्क की सीमा से बाहर है । बुद्धि की परिधि में नहीं आने वाला होता है ।

५२—तए नं से पोट्टित्सं देवे तेयलिपुत्तं समच्चं एवं वयासी—सट्ठं नं तुमं तेयलिपुत्ता ! एवमिच्छायाणाहि ति कट्ठं बोच्च पि तच्चपि एव वयइ, वइत्ता जामेव वित्तं पाउअणूए तामेव विणि वडिअए ।

तत्पश्चात् पोट्टित्सं देव ने तेतलिपुत्र सम्राट् से इस प्रकार कहा—‘हं तेतलिपुत्र ! तुम सब कहते हो । सर्वत्र भयग्रस्त के लिए प्रवृत्ता शरणभूत है, यह तुम्हारा कथन सत्य है । मगर हम सब तुम भी आशक्ति जानी, सर्वत्र इस समय तुम भयभीत हो तो तदनुसार आशरण करके यह सब सब छोड़ो । इस प्रकार कहकर देव ने दूसरी बार घोर तीव्ररी बार भी ऐसा ही कहा । यह कर देव किंच दिवा से कट्ट दूषा वा, उमा दिवा में वाणिम लोट गया ।

५३—तए न तस्स तेयलिपुत्तस्स सुनेण परिणामेण जाइसरणे समण्णने । तए न तस्स तेयलिपुत्तस्स अउरसससं अउरसससं जाइ समण्णने—‘एव खलु प्रहं इहेव अउरससं देवे पवन्नासस्स उषकंठियस्स सदेसगमणं, छुहियस्स अन्नं, तिसियस्स पाणं, आउरस्स नेसज्जं, माइयस्स गून् अभिजुत्तस्स पच्चयकरणं, अद्धानपरित्तस्स वाहनगमणं, तरिउकामस्स पवहणं किच्चं,’ परं किंचे जितुकामस्स सहायकिच्चं, खंतस्स वंतस्स जिइदियस्स एत्तो एगमवि न भवइ ।

## पन्द्रहवाँ अध्ययन : नन्दीफल

सार : साधे

प्रस्तुत अध्ययन का मूल स्वर धन्य साधकियों की भाति साधना के क्षेत्र में साधने साधकों की, साधनायन समशील प्रतीत होने वाले एवं मन को सुभाने वाले इन्द्रियायमान रहने की सुधना देना ही है। यही वह मूल स्वर है जो प्रस्तुत साधक में साधक गुरु गुरुता सुनाई देता है। किन्तु उस स्वर को सुबोध एवं सुगम बनाने के लिए हरणों की योजना को गई है, वे विभिन्न प्रकार के हैं। ऐसे ही उदाहरणों में से 'नन्दी' उदाहरण है।

धन्या नगरी का निवासी धन्य साधकवाह एक बड़ा व्यापारी है। उसने एक बार भिए मान लेकर धहिन्दुना नगरी जाने का निवार किया। उस समय के व्यापारी का प्रकार के समानधेयक का वा धीर उस समय का व्यापार समान-सेवा का एक सामान्य यह तो सुबोधित है कि प्रत्येक देश में प्रजा के लिए आवश्यक सभी वस्तुओं की उपलब्धता धीर न ऐसी कमाओ का ही प्रमाण होता है कि प्रत्येक वस्तु का प्रत्येक देश में निर्माण प्राप्त सामान्य धीर निर्माण के द्वारा सब जगह सब वस्तुओं की पूर्ति की जाती है।

कोई वस्तु किसी देश-प्रदेश में इनकी प्रचुर मात्रा में होती है कि यहाँ की प्रजा योग नहीं कर पाती। एवं उस उत्पादन का उसे उचित मूल्य नहीं मिलता। बहा यह स्पष्ट है। उधर कागु के अभाव में दूसरे देश-प्रदेश के लोग बहुत कष्ट पाते हैं। सामान-नियोजना धीर की यह समस्या सुलभ जाती है। उत्पादकों को उनके उत्पादन-धन का जाता है धीर अभाव वाले प्रदेश को आवश्यकतापूर्ति हो जाती है। इसी प्रकार के सादान-प्रदान-वितरण ने धन्य भी नगर का काम चल रहा है।

सामान-निर्माण का यह कार्य सामाजिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस धनिक के काम के लिए एक गृहस्थ वर्ग की आवश्यकता होती है। वहाँ वर्ग वाणिज्य वर्ग कहलाता है। इस प्रकार सामाजिक काम में वाणिज्य वर्ग समाज को महत्वपूर्ण सेवा करता है। इसी सेवा यह धनिक धीर अपने परिवार के निर्वाह के लिए भी कुछ लाभान्वित प्राप्त कर लेता है। यही मूल साधने है।

इस भावना में प्रेरित होकर धन्य साधकवाह ने धन्या नगरी का पन्थ (माल) धहिन्दुना जाने का एकलव्य किया। प्राचीन काल में वाणिज्य वर्ग के चलनगत एक वर्ग साधकवाह साधकवाह वह बड़ा व्यापारी होता था जो अपने साथ धन्य धनिक लोगों को ले जाता था। कृतज्ञपूर्वक, उनके अन्तर्गत स्थानों तक पहुँचा देता था। इस विषय का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत में ही किया गया है।

धन्य साधकवाह अपने सेवकों द्वारा धन्या की गली-गली में यह पोषणा करवाता है। साधकवाह धहिन्दुना नगरी जा रहा है। जिसे साथ चलना हो, चले। जिसके पास जित

सेणाए जेणेव पमयवणे उज्जाने, जेणेव तेयतिपुत्ते अणगारे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छतां अणगारं वंदइ, नमंसइ, वंदिता नमंसिता एयमट्ठं च विणएणं भुज्जो भुज्जो सामे, नच्चत्ते ॥  
[ नाइदूरे मुस्ससमाने नमसमाने पंजलिउडे अभिमूहे विणएणं ] पज्जुवासइ ।

तत्पश्चान् कनकध्वज राजा इस कथा का अर्थ जानता हुआ अर्थात् यह वृत्तान्त (मन ही मन) बोला—निस्सन्देह मेरे द्वारा अपमानित होकर तैतलिपुत्र ने मुण्डित होकर अंगीकार की है । अतएव मैं जाऊँ और तैतलिपुत्र अणगार को वन्दना करूँ, नमस्कार करूँ वन्दना—नमस्कार करके इस बात के लिए—अपमानित करने के लिए विनयपूर्वक बार-बार याचना करूँ ।' कनकध्वज ने ऐसा विचार किया । विचार करके स्नान किया । फिर वसुधैव कुटुम्बकम् सेना के साथ जहाँ प्रमदवन उद्यान था और जहाँ तैतलिपुत्र अणगार थे, वहाँ पहुँचा । तैतलिपुत्र अणगार को वन्दन—नमस्कार किया । वन्दन—नमस्कार करके इस बात के लिए विनयपूर्वक याचना की । न अधिक दूर और न अधिक समीप-व्यायोग्य स्थान पर वंदन धर्म श्रवण की प्रमिलापा करता हुआ, हाथ जोड़कर नमस्कार करता हुआ सन्तुल होकर विनय से साथ वह उपासना करने लगा ।

५७—तए णं से तेयतिपुत्ते अणगारे कणगज्जस्य रत्तो तीसे य महइमहात्तिमाए परिदग्गं परिकहेइ ।

तए णं कणगज्जस्य राया तेयतिपुत्तस्स केवलस्स अंतिए धम्मं सोच्चा नितम्भ पवादया सत्तसिक्खत्तावयं सावगधम्मं पडिवज्जइ । पडिवज्जिता समणोवासए जाए जाव' अहिमज्जोससि ।

तत्पश्चात् तैतलिपुत्र अणगार ने कनकध्वज राजा को और उपस्थित महती परिपद को सब का उपदेश दिया ।

उस समय कनकध्वज राजा ने तैतलिपुत्र केवली से धर्मोपदेश श्रवणकर और उसे हृदय से धारण करके पाँच अणुवत् और सात शिक्षावत् रूप बारह प्रकार का आवश्यक धर्म अंगीकार किया । आवश्यक धर्म अंगीकार करके वह जीव-अजीव आदि तत्त्वों का ज्ञाता श्रमणोपासक हो गया ।

५८—तए णं तेयतिपुत्ते केवली बहूणि वात्ताणि केवलिपरिदग्गं पाउणिता जाव तिउं ।

तत्पश्चान् तैतलिपुत्र केवली बहुत वर्षों तक केवली—अवस्था में रहकर यावत् तिउं हुए ।

५९—एवं एगु जंजू ! समणेणं भगवया महावीरेणं चौहसमस्स नायगभयनस्स अयनइ एतं ति वेमि ।

श्री मुघर्मा स्वामी अपने उत्तर का उपसंहार करते हुए कहते हैं—'हे जम्बू ! इस प्रकार धर भगवान् महावीर ने चौदहवें ज्ञान-अभ्ययन का यह पूर्वोक्त अर्थ कहा है । जैसा मैंने मुना बंधा कहा है ।

## पण्णरसमं अज्झयणं : नंदीफले

जम्बू स्वामी की जिज्ञासा

१—‘जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं चोहसमस्स नायकपणस्स अयमद्धं पण्णत्ते, एत्तरसमस्स नायकपणस्स समणेणं भगवया महावीरेणं के अद्धं पण्णत्ते ?’

श्री जम्बू स्वामी ने श्री सुधर्मा स्वामी के समझ जिज्ञासा प्रस्तुत करते हुए कहा—‘भगवन् ! यदि भ्रमण भगवान् महावीर ने चौदहवें ज्ञात-अध्ययन का यह अर्थ कहा है तो पन्द्रहवें ज्ञात-अध्ययन का भ्रमण भगवान् महावीर ने क्या अर्थ कहा है ?’

उत्तराधान

२—एवं जनु जंबू ! तेण कालेणं तेणं समएणं चंपा नामं नयरी होत्था । पुट्टभट्टे नामं वेइए । जियत्तसू नामं राया होत्था । तस्य णं चंपाए नयरीए धस्से नामं सत्थवाहे होत्था, भइडे जाव’ प्रपरिभूए ।

श्री सुधर्मा स्वामी उत्तर देते हैं—जम्बू ! उस काल और उस समय में चम्पानामक नगरी थी । उसके बाहर पूर्णचन्द्रनामक चैत्य था । जितसूनामक राजा था । उस चम्पा नगरी में धन्य नामक सारथवाहू था, जो सम्पन्न था यावत् किसी से पराभूत होने वाला नहीं था ।

३—तीत्ते णं चंपाए नयरीए उत्तरपुरच्छिमे दिमिभाए अहिच्छत्ता नामं नयरी होत्था, रिद्ध-हेयमियसमिद्धा, वन्नघो<sup>१</sup> । तस्य ण अहिच्छत्ताए नयरीए कणगकेऊ नामं राया होत्था, महया वन्नघो<sup>२</sup> ।

उस चम्पा नगरी से उत्तर-पूर्व दिशा में अहिच्छन्नानामक नगरी थी । वह धन-धान्य आदि से भरिपूर्ण थी । यहाँ नगरी का वर्णन कह लेना चाहिए । उस अहिच्छन्ना नगरी में कनककेतुनामक राजा था । वह महाहिमवन्त पर्वत के समान आदि विशेषणों से युक्त था । यहाँ राजा का वर्णन कह लेना चाहिए । (नगरी और राजा का विस्तृत वर्णन औपपातिक सूत्र के अनुसार समझ लेना चाहिए ।)

अन्य सारथवाहू की घोषणा

४—तत्तस्स पण्णस्स सत्थवाहस्स अन्नया कयाइ पुंवरत्तावरत्तकालसमयसि इमेयाह्वे अन्नभित्तिए चित्तिए पत्तियए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—‘सैयं खलु मम विपुलं पणियभट्टमायाए अहिच्छत्तं नगरिं वाणिज्जाए गमित्तए’ एवं सपेहेइ, सपेहिता गणिमं च धरिमं च मेज्जं च पारि-व्देज्जं च चउव्विहं भंडं मेण्हइ, येण्हित्ता सगडीसागडं सज्जेइ, सज्जित्ता सगडीसागडं भरेइ, भरित्ता कोडुं वियपुरित्ते सद्दावेइ, सद्दावित्ता एव वयासी—

यही इस अध्ययन का सार-अंश है ।

! समणेण भगवया महावीरेणं चोदसमस्स नायग्गयणस्स अयमद्दे पण्णत्ते,  
स समणेण भगवया महावीरेण के अद्दे पण्णत्ते ?”

ने श्री सुधर्मा स्वामी के समक्ष जिज्ञासा प्रस्तुत करते हुए कहा—‘भगवन् !  
वीर ने चोदहूँ ज्ञात-अध्ययन का यह अर्थ कहा है तो पन्द्रहवें ज्ञात-अध्ययन  
वीर ने क्या अर्थ कहा है ?’

शु ! तेण कात्तेणं तेणं समएणं चंपा णामं नयरी होत्था । पुधभद्दे नामं चेइए ।  
या । तस्य णं चंपाए नयरीए धम्मे नामं सत्थवाहे होत्था, अइदे जाव’

की उत्तर देते हैं—जम्बू ! उस काल और उस समय में चम्पानामक नगरी  
इनामक थीय था । जितशत्रुनामक राजा था । उस चम्पा नगरी में धन्य  
सम्पन्न था यावत् किसी से पराभूत होने वाला नहीं था ।

ए नयरीए उत्तरपुरच्छिने दिमिभाए अहिच्छत्ता नामं नयरी होत्था, रिद्ध-  
’ । तस्य णं अहिच्छत्ताए नयरीए कणगकेऊ नामं राया होत्था, महपा

से उत्तर-पूर्व दिशा में अहिच्छन्नानामक नगरी थी । वह धन-धान्य आदि से  
का वर्णन कह लेना चाहिए । उस अहिच्छन्ना नगरी में कनकधेनुनामक राजा  
वैत के समान आदि विशेषणों से युक्त था । यहाँ राजा का वर्णन कह लेना  
राजा का विस्तृत वर्णन औपपातिक श्रृंग के अनुसार समझ लेना चाहिए ।)

स सत्थवाहस्स अन्नया कयाइ पुत्थरत्तावरत्तकालसमयंति इमेयाह्वे  
ए मणोगए संकप्पे समुत्पज्जिअया—‘तेर्यं सत्तु भम विपुलं पणियभटमायाए  
ताए गमित्तए’ एवं संपेहेइ, संपेहिता गणिमं च परिमं च मेज्जं च पारि-  
गेहइ, पेहिता सगळीसागळं सज्जेइ, सज्जिता सगळीसागळं भरेइ, भरिता  
सद्धाविता एवं वयातोः—

२. ओप. मू० १

३. ओपपा. मू० ७

उभयानि वा जाय चकाले श्वेदजीवियामो बहरोयेति तं, मा



तुम्हें जाव दूर दूरेणं परिहरमाणा घोसमह, या न घकाले जोबियाघो घरोविस्तति । मन्नेसि  
म्याणं मूलाणि य जाव घोसमह सि बट्टु घोसणं पक्कप्पिणति ।

इनके बाद धन्य मार्गबाह ने गाड़ी-गाड़े चुनवाए । चुनवाकर जहाँ नदीफलनामक वृक्ष थे, वहाँ  
। पहुँचा । उन नन्दी फल वृक्षों से न बहुत दूर न समीप में पड़ाव डाला । फिर दूसरी बार धीरे-धीरे  
। र कीटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और उनसे कहा— देवानुप्रियो ! तुम लोग मेरे पड़ाव में ऊँची-  
ची ध्वनि में पुनः पुनः घोषणा करते हुए रहो कि— हे देवानुप्रियो ! वे नन्दीफल वृक्ष ये हैं, जो  
एक वर्ष वाले, मनोत्र वर्ष, गंध, रस, स्पर्श वाले धीरे-धीरे छाया वाले हैं । अतएव हे देवानुप्रियो !  
न नन्दीफल वृक्षों के मूल, कंद, पुष्प, त्वचा, पत्र या फल आदि का सेवन मत करना, क्योंकि ये  
बिना पकाव में ही जीवन से रहित कर देते हैं । अतएव कहीं ऐसा न हो कि इनका सेवन करके  
जिन का नाश कर लो । इससे दूर हो रहकर विधाम करना, जिससे वे जीवन का नाश न करें ।  
। दूसरे वृक्षों के मूल आदि का भले सेवन करना और उनकी छाया में विधाम करना ।

कीटुम्बिक पुरुषों ने इसी प्रकार घोषणा करके छात्रा वापिस ली ।

गाड़ी का वापस

११—तथा नं घरघेवहया पुरिसा घमस्स सरयवाहस्स एयमहुं सद्दहंति, पत्तिपति रोयंति,  
रमहुं सरहमाणा तेसि नंविक्कताणं दूरं दूरेणं परिहरमाणा मन्नेसि दक्खणं मूलाणि य जाव घोसमंति  
सि नं घावाए नो भट्टए भवइ, तस्मो पक्खा परिणममाणा परिणममाणा सुहृत्ताए भुज्जो  
ग्गो परिणमंति ।

उनमें से किन्हीं-किन्हीं पुरुषों ने धन्य मार्गबाह की बात पर धड़ा की, प्रतीति की, एक श्वि  
। वे धन्य मार्गबाह के कथन पर धड़ा करते हुए, उन नन्दीफलों का दूर ही दूर से त्याग करते  
। दूसरे वृक्षों के मूल आदि का सेवन करते थे और उन्हीं की छाया में विधाम करते थे । उन्हें  
। कानिक भद्र (मुख) तो प्राप्त न हुआ, किन्तु उसके पदचान् ज्यों-ज्यों उनका परिणमन होता चला  
।-यों वे बार-बार गुप्त रूप ही परिणत होते चले गए ।

।सहार

१२—एवामेव गमणाउत्तो ! जो मग्गं निर्गम्यो वा निर्गम्यो वा जाव [आपरिय-उवगम्भायाणं  
तेए मुंहे भविता घगाराघो घणगारियं पम्बहए समग्गे] पंचसु कामगुणेषु नो सज्जेइ, नो रज्जेइ,  
नं इहमवे घेव बहूणं समणानं समणेण सावयाण सावियाणं अक्कणिज्जे भवइ, परतोए वि द नो  
। गच्छइ जाव [नो बहूणि हरयधेयणाणि य कण्णधेयणाणि य नासाधेयणाणि य, एवं हियदउप्पाय-  
णि य वसणुप्पायणाणि उल्लवणाणि य पाविहिइ, पुणो घणाइयं च न घनवदग्ग रोहमइ] चाउरंतं  
समारकंतारं ] योईवइस्सइ जहा व ते पुरिसा ।

जो निर्गम्य या निर्गम्यो यावत् (आचार्य-  
। जित होकर) पांच द्रव्यों के कामभोगों में  
। भव में बहुत-से धर्मों, धर्मणियों यावको धीरे-  
। आविकाओं को पूजनीय होता है और परलोक में भी दुःख नहीं पाता है, जैसे—हाथ, कान, नाक

प्रादि का छेदन, हृदय एव वृषणों का उत्पाटन, फासी, आदि । उसे अनादि घनत ससार-मत्तो बतुरसीति योनियों में भ्रमण नहीं करना पड़ता । वह अनुक्रम से ससार-कान्तर को पार कर गत है—सिद्धि प्राप्त कर लेता है ।

१३—तत्थ णं जे से अप्पेगइया पुरिसा धण्हस्स एयमद्धं नो सद्धंति नो पत्तिगत्ते रोयंति, धम्मस्स एयमद्धं असद्धमाणा जेणेव ते णंदिफला तेणेव उवागच्छति, उवागच्छिता नं नंदिफलाणं मूलाणि य जाव बोसमंति, तेसि णं आवाए भद्दए भवइ, ततो पच्छा परिणममाना एव वरोवेति ।

उनमें से जिन कितनेक पुरुषों ने धन्य सार्थवाह की इस बात पर श्रद्धा नहीं की, प्रतीति नहीं की, रुचि नहीं की, वे धन्य सार्थवाह की बात पर श्रद्धा न करते हुए जहाँ नन्दीफल वृक्ष थे, वहाँ गए । जाकर उन्होंने उन नन्दीफल वृक्षों के मूल आदि का भक्षण किया और उनकी छाया में विश्रान किया । उन्हें तात्कालिक सुख तो प्राप्त हुआ, किन्तु बाद में उनका परिणामन होने पर उन्हें जोरन में मुक्त होता पड़ा—मृत्यु का ग्रास बनना पड़ा ।

१४—एवामेव समणाउत्तो ! जो अग्घं निग्गंथो वा निग्गंथो वा पक्खइए पच्चु काममुत्ते सज्जेइ, जाय अणुपरियट्ठिस्सइ, जहा य ते पुरिसा ।

एवमेव समणाउत्तो ! जो अग्घं निग्गंथो वा निग्गंथो वा पक्खइए पच्चु काममुत्ते सज्जेइ, जाय अणुपरियट्ठिस्सइ, जहा य ते पुरिसा ।

१५—तए णं मे धम्मो सगगीसागहं जोयावेइ जोयावित्ता जेणेव अहिच्छत्ता जयरो तेव उवागच्छइ, उवागच्छत्ता अहिच्छत्ताए जयरोए बहिया अणुगजाणे सस्यनिवेस करेइ, करित्ता मगगे सागहं जोयावेइ ।

तए णं मे धम्मो सगगीसागहं जोयावेइ जोयावित्ता जेणेव अहिच्छत्ता जयरो तेव उवागच्छइ, उवागच्छत्ता अहिच्छत्ताए जयरोए बहिया अणुगजाणे सस्यनिवेस करेइ, करित्ता मगगे सागहं जोयावेइ ।

इदं पञ्चाङ्गं धर्मसंघातं न गच्छी-नाइ तुवाए । तुवाकर वह रही अहिच्छत्ता नगरी थी, वही पट्टवा । वही पट्टवा कर अहिच्छत्ता नगरी के बाहर प्रधान उद्यान में पड़ा इ इति ।

इदं पञ्चाङ्गं धर्मसंघातं न गच्छी-नाइ तुवाए । तुवाकर वह रही अहिच्छत्ता नगरी थी, वही पट्टवा । वही पट्टवा कर अहिच्छत्ता नगरी के बाहर प्रधान उद्यान में पड़ा इ इति ।

१. मात का अर्थ-विषय

१६—तए न से कणगकेऊ राया हटुतुदे धण्णस्स सय्यवाहस्स तं महत्तं जा पडिच्छइ । पडिच्छित्ता धण्ण सय्यवाहं सवकारेइ, समणेइ, सवकारित्ता संमानित्ता उस्सुक्क विपरित्ता पडिविसग्गेइ । भंडविनिमयं करेइ, करित्ता पडिभंडं गेण्हइ, गेण्हित्ता मुहंमुहेणं जे नयरो तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मित्तपाइअनित्तमग्गामए विउत्ताइ माणुस्सगाइं भो भुंजमाने विहरइ ।

उपहार प्राप्त करके राजा कनककेतु हर्षित घोर मनुष्य हुआ । उसने धन्य सार्ववाह मूल्यवान् उपहार को स्वीकार किया । स्वीकार करके धन्य सार्ववाह का सम्कार-सम्मान स्तुकार-सम्मान करके मुक्त (ज्वाल) भाग्य कर दिया और उसे विदा किया । फिर धन्य सार्ववाहने भाण्ड (मात) का विनिमय किया । विनिमय करके अपने माल के बदले में दूसरा माल लक्ष्मणान् मुत्तपुर्वक लोटकर धम्मनगरो में ला पहुँचा । धाकर अपने मित्रों एवं जातिजनों मित्रा घोर मनुष्य संघर्ष विपुल भोगने योग्य भोग भोगता हुआ रहने लगा ।

धन्य की प्रशंसा : अविषय

१७—तेणं कालेणं तेण समएणं धेरागमणं । धण्णे सय्यवाहे विणिग्गए, धम्मं सोच्च कुटुंबे ठावेत्ता पम्बइए । एवकारस सामाइमाइयाइं अंगाइं अहिज्जित्ता बहूणि वात्ताणि सामग्ग पाउजित्ता भासियाए सत्तेहणाए भत्ताणं भूसेत्ता सट्ठिभत्ताइं अणसणाइं छेहत्ता अन्नमयेसु वं देवत्ताए उयवन्ने । से नं देवे ताम्पो देवलोगाधो आउक्खएणं चय चइत्ता महाविदेहे वासे तिज्जाय भंतं काहिइ ।

उस काल घोर उम समय में स्वविर भगवन्त का आगमन हुआ । धन्य सार्ववाह उन्हे करने के लिए निकला । धर्मदेवता मुन कर घोर उन्हे पुत्र को अपने कुटुम्ब में स्थापित (कुटुम्ब का प्रधान बना कर) स्वयं दीक्षित हो गया । सामायिक से लेकर ग्यारह अंगों का करके घोर बहुत वर्षों तक समय का पालन करके, एक भाग की सत्तेजना करके, साठ धनदान करके अन्ततः—हिमी देवलोक में देव पर्याय में उत्पन्न हुआ । वह देव उस देवलोक का शय होने पर अ्युन होकर महाविदेह-धन्य में निदि प्राप्त करेगा, यावत् जन्म मर पन्त करेगा ।

निर्लेप

१८—एवं अलु जंजु ! समणेण भगवया महावीरेणं पन्नरसमस्स नायकभयणस्स पण्णत्ते ति बेमि ।

इस प्रकार हे जम्बू ! अमल भगवान् महावीर ने पन्द्रहवे जात-अध्ययन का यह अर्थ कहा है । जैसा मैंने गुना वंसा कहा है ।

दि का छेदन, हृदय एव वृषणों का उत्पादन, फांसी, आदि । उसे अनादि अनन्त समारम्भों से तुरन्तीति योनियो में भ्रमण नहीं करना पड़ता । वह अनुक्रम से संसार-कान्तर को पार कर रट-सिद्धि प्राप्त कर लेता है ।

१३—तत्थ णं जे से अप्पेगइया पुरिसा धण्णस्स एयमट्ठं नो सद्दहंति नो पत्तिवत्तमे वेयंति, धणस्स एयमट्ठं असद्दहमाणा जेणेव ते णंविफला तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छतांते विफलाणं मूलाणि य जाव वोसमंति, तेसि णं आवाए भद्दए भवइ, ततो पच्छा परिणममाणा म यरोवेति ।

उनमें से जिन कितनेक पुरुषों ने धन्य साधवाह को इस बात पर श्रद्धा नहीं की, प्रतीति नहीं ली, फल नहीं की, वे धन्य साधवाह की बात पर श्रद्धा न करते हुए जहाँ नन्दोफल वृक्ष थे, वहाँ गए । जाकर उन्होंने उन नन्दोफल वृक्षों के मूल आदि का भक्षण किया और उनकी छाया में शयन किया । उन्हें तात्कालिक सुख तो प्राप्त हुआ, किन्तु बाद में उनका परिणामन होने पर उन्हें जोरनरुक्त होना पड़ा—मृत्यु का शास बनना पड़ा ।

१४—एवामेय समणाउसो ! जो अग्गं निग्गंयो वा निग्गंयो वा पव्वइए पच्चमु कामगुणं उरुहइ, जाव अणुपरियट्ठिस्सइ, जहा य ते पुरिसा ।

इसी प्रकार हे प्रायुष्मन् भ्रमणो ! हमारा जो साधु या साध्वी प्रव्रजित होकर पान इन्द्रियों के विषयभोगों में प्रागत होता है, वह उन पुरुषों की तरह मायत् हस्तच्छेदन, कर्णच्छेदन, हृदयोत्पादन आदि पूर्णतः दुःखों का भागी होता है और चतुर्गतिकरूप संसार में पुनः पुनः परिभ्रमण करता है ।

१५—तए णं ते धण्णे सगइसागइं जोयावेइ जोयावित्ता जेणेव अहिंस्सत्ता नयरो तेनेव उवागच्छइ, उवागच्छत्ता अहिंस्सत्ताए नयरोए अहिंसा अणुउज्जाणे सत्थनियेत्तं करइ, करित्ता सगो-सागइं भोयावेइ ।

तए णं ते धण्णे सरयवाहे महरथं महायं महरिहं रायरिहं पाट्ठं गेहइ, गेहिता बट्ठुपरिमहिं सत्तिं सपरिबुद्धं अहिंस्सत्ता नयरो मग्गमग्गहेणं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता जेणेव कणगकेउ राया तनेव उवागच्छइ । उवागच्छत्ता करयत्ता जाव बडावेइ, बडावित्ता ते महरथ पाट्ठइ उवणेइ ।

इसके पश्चात् धन्य साधवाह ने गाड़ो-गाड़ो जुत्ताए । जुत्ताकर वह जहाँ अहिंसा नयायी, वही पट्टा । वही पट्टा कर अहिंसा नयरो के वाहुर प्रधान उद्यान में पड़ाव डाला और गाड़ो-गाड़ो गुत्ता दिया ।

दिए जाने साधवाह ने महामूखवान् और राधा के योग्य उपहार निरा और बहुत पुरा के साथ, उनसे परितुष्ट होकर, अहिंसा नयरो में, मध्यभाग में होकर, प्रवेश किया । प्रवेश करके वन-वन राधा के वन में । वही वाहुर राधा हीन आहुर मरुत पर अवलंब करके राधा के वन-वन में । वही वन-वन वन के पश्चात् वह बहुत य उपहार उपाद मयाव राधे ।

मात का धन-विषय

१६—तएव न से कणककेऊ राया हटुहुट्टे धणस्त सत्यवाहस तं महत्तमं जाव पाहुन पडिच्छइ । पडिच्छिता धणं सत्यवाहं सबकारेइ, संमाणेइ, सबकारिता संमाणिता उस्तुषकं वियरइ विपरिता पडिबिसरजेइ । भंडविणिमयं करेइ, करिता पडिभंड गेण्हइ, गेण्हिता मुहुंसुहेण जेणव चंपनयरी तेणव उवागच्छइ, उवागच्छिता मित्तणाइअनिसमन्तागए विउलाइं माणूसणाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ ।

उपहार प्राप्त करके राजा कनककेतु हथिन घोर मनुष्ट हुआ । उसने धन्य सार्यवाह के उस मूल्यवान् उपहार को स्वीकार किया । स्वीकार करके धन्य सार्यवाह का सत्कार-सम्मान किया । सत्कार-सम्मान करके धुल्ल (जकात) माफ कर दिया और उसे विदा किया । फिर धन्य सार्यवाह ने अपने भाण्ड (माल) का विनिमय किया । विनिमय करके अपने माल के बदले में दूसरा माल लिया । तत्पश्चात् मूलपूर्वक तोड़कर चम्पानगरी में घा पड़वा । भाकर अपने मित्रों एवं शक्तिजनों आदि से मिला और मनुष्य संबंधी विपुल भोगने योग्य भोग भोगता हुआ रहने लगा ।

धन्य हो प्रशंसा : शक्ति

१७—तेणं कालेणं तेण समएणं घेरागमणं । धणं सत्यवाहे विणिगए, धम्मं सोच्चा जेहुपुत्तं कुडुबे ठावेत्ता पम्भइए । एवकारस सामाहमाइयाइं अगाइं अहिजिज्जा यहुणि वासाणि सामन्नपरिधानं पाउणिता मात्तिपाए सत्तेहणाए भत्ताणं भूतेत्ता सट्ठिभत्ताइं अणसणाइं छेविता अन्नपरेसु देवलोएसु देवताए उववन्ने । से नं देवे तामो देवलोगाओ आउक्खएण वयं अइत्ता महाविदेहे वासे सिग्गिहइ, जाव अंतं काहिइ ।

उस काल और उस समय में स्वविर भगवन्त का आगमन हुआ । धन्य सार्यवाह उन्हें वन्दना करने के लिए निकला । धर्मदेशना सुन कर और ज्येष्ठ पुत्र को अपने कुटुम्ब में स्थापित करके (कुटुम्ब का प्रधान बना कर) स्वयं दीक्षित हो गया । सामायिक से लेकर ग्यारह अंगो का अध्ययन करके और बहुत वर्षों तक समय का वासन करके, एक मास की सत्तलना करके, साठ भक्त का धनदान करके अन्त्यतर—किसी देवलोक में देव पर्याय में उत्पन्न हुआ । वह देव उस देवलोक से प्रायु का क्षय होने पर अ्युत होकर महाविदेह-धन्य में सिद्धि प्राप्त करेगा, यावत् जन्म मरण का अन्त करेगा ।

निर्लेप

१८—एवं अतु जंबू ! समणेण भगवया महावीरेण पन्नरत्तमस्स नायग्गयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते ति वेमि ।

इस प्रकार हे जम्बू ! अमण भगवान् महावीर ने पन्द्रहवें ज्ञात-अध्ययन का यह (पूर्वोक्त) प्रथम कहा है । जैसा मैंने सुना वैसा कहा है ।

दि का छेदन, हृदय एवं वृषणों का उत्पाटन, फासी, आदि। उसे अनादि अनन्त सप्तर पदों  
 नुरगीन योनियों में भ्रमण नहीं करना पड़ता। वह अनुक्रम से सप्तर-कान्तर को पार कर  
 —सिद्धि प्राप्त कर लेता है।

१३—तत्थ णं जे से अण्णमइया पुरिसा धण्णस्स एयमट्ठं नो सहंति नो पतिरंति  
 येयति, धरस्स एयमट्ठं असहमाणा जेणेव ते पंडिकत्ता तेणेव उवागच्छति, उवागच्छिता  
 दिक्कलणं मूत्ताणि य जाय वोसमंति, तेसि णं आवाए भट्ठं भवइ, ततो पक्खो परिणममाणा  
 वरोवेति।

उनमें मैं त्रिन कितनेक पुरुषों ने धन्य सार्धंवाह की इस बात पर थडा नहीं की, प्रीति की  
 की, रति नहीं की, मैं धन्य सार्धंवाह की बात पर थडा न करते हुए जहाँ नन्दोक्त हुए थे, भा  
 गए। आकर उन्होंने उन नन्दोक्त वृक्षों के मूल आदि का भक्षण किया और उनकी छाया में  
 बसा। उन्हें आश्चर्यचकित गुण तो प्राप्त हुआ, किन्तु बाद में उनका परिणमन होने पर उन्हें दोन  
 गुण हीना पडा—मृत्यु का पाग बनना पडा।

१४—एवमेव मममात्तलो! जो अहं निगंधो वा निगंधो वा पवइए पवणु कामणु  
 पवइ, जाय पवणुरियड्डिमइ, जहा व ते पुरिसा।

इसी प्रकार ही आधुनिक भ्रमणों में हमारा जो माधु या माध्वी प्रश्रित होकर गीत  
 की पदधारि के धन्य होना है, वह उन पुरुषों की तरह माधु स्तब्धेदन, कर्णभेदन, हृत्त  
 की पदधारि के धन्य होना है और भुग्निकण गगार में पुनः पुनः परिभ्रमण का है।

१५—तत्थ जे जण्ण मममात्तलो! जायावेइ जायाविसा जेणेव पट्टिपत्तला जहा व  
 उवागच्छति, उवागच्छिता दिक्कलणं मूत्ताणि य जाय वोसमंति, तेसि णं आवाए भट्ठं भवइ, ततो पक्खो परिणममाणा  
 वरोवेति।

तत्थ जे जण्ण मममात्तलो! जायावेइ जायाविसा जेणेव पट्टिपत्तला जहा व  
 उवागच्छति, उवागच्छिता दिक्कलणं मूत्ताणि य जाय वोसमंति, तेसि णं आवाए भट्ठं भवइ, ततो पक्खो परिणममाणा  
 वरोवेति।

तत्थ जे जण्ण मममात्तलो! जायावेइ जायाविसा जेणेव पट्टिपत्तला जहा व  
 उवागच्छति, उवागच्छिता दिक्कलणं मूत्ताणि य जाय वोसमंति, तेसि णं आवाए भट्ठं भवइ, ततो पक्खो परिणममाणा  
 वरोवेति।

तत्थ जे जण्ण मममात्तलो! जायावेइ जायाविसा जेणेव पट्टिपत्तला जहा व  
 उवागच्छति, उवागच्छिता दिक्कलणं मूत्ताणि य जाय वोसमंति, तेसि णं आवाए भट्ठं भवइ, ततो पक्खो परिणममाणा  
 वरोवेति।

मातः काय-विषय

१६—तएवं से कणगकेऊ राया हट्टुदुं धणस्स सत्यवाहस्स तं महत्तयं जाय पाहुं पडिच्छइ । पडिच्छित्ता धणं सत्यवाहं सबकारेइ, समानेइ, सबकारित्ता समानित्ता उत्तुवकं विपरइ विपरित्ता पडिविपरइ । भंडविणिमयं करेइ, करित्ता पडिभंडं वेण्हइ, वेण्हित्ता मुहमुहेण जेणव चंप । नयरो तेणव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मित्तणाइअभित्तमन्ताणए विउलाइं माणुत्सगाइ भोगभोगाइ भुंजमाणे विहरइ ।

उपहार प्राप्त करके राजा कनककेतु हर्षित धीर सतुष्ट हुआ । उसने धन्य सार्यवाह के उस मूल्यवान् उपहार को स्वीकार किया । स्वीकार करके धन्य सार्यवाह का सत्कार-सम्मान किया । सत्कार-सम्मान करके मुक्त (जकात) माफ कर दिया और उसे विदा किया । फिर धन्य सार्यवाह ने अपने भाण्ड (माल) का विनिमय किया । विनिमय करके अपने माल के बदले में दूसरा माल लिया । उत्पन्नवान् मुक्तपूर्वक लौटकर चम्पानगरी में आ पहुँचा । आकर अपने मित्रों एवं जातिजनो आदि से मिला और मनुष्य सबधी विपुल भोगने योग्य भोग भोगता हुआ रहने लगा ।

धन्य को प्रशंसा : भविष्य

१७—तेणं कालेणं तेण समएणं घेरागमणं । धण्णे सत्यवाहे विणिगए, धम्मं सोच्चा जेहुपुत्तं कुट्टुं ठापेत्ता पब्बइए । एवकारेस सामाइमाइयाइं अगाइं अहिंजित्ता बहूणि वात्ताणि सामानपरियाणं पाउजित्ता भात्तिपाए सत्तेहणाए अत्ताणं भूत्तेत्ता सट्ठिभत्ताइं अणत्तणाइं ऐवित्ता अन्नपरेमु देवलोएमु देवत्ताए उववत्ते । ते जं देवे तामो देवलोगाओ आउक्खएण चयं चइत्ता महाविदेहे वात्ते सिग्गिअहिइ, जाय अंतं काहिइ ।

उस काल और उस समय में स्यविर भगवन्त का आगमन हुआ । धन्य सार्यवाह उन्हें बन्दना करने के लिए निकला । धर्मदेशना सुन कर धीर ज्येष्ठ पुत्र को अपने कुटुम्ब में स्थापित करके (कुटुम्ब का प्रधान बना कर) स्वयं दीक्षित हो गया । सामायिक से लेकर ग्यारह अंगों का अध्ययन करके धीर बहुत वर्षों तक समय का पालन करके, एक मास की सत्तेजना करके, साठ भक्त का धनदान करके अन्तर—किसी देवलोक में देव पर्याय में उत्पन्न हुआ । वह देव उस देवलोक से प्रायु का क्षय होने पर ज्युन होकर महाविदेह-क्षेत्र में सिद्धि प्राप्त करेगा, यावत् जन्म मरण का भन्त करेगा ।

निक्षेप

१८—एवं फलु जंझु ! समणेण भगवया महावीरेण पन्नरत्तमस्स जायअपणत्त अयमट्ठे पणत्ते त्ति वेमि ।

इस प्रकार हे जम्झू ! भगवन्त भगवान् महावीर ने पन्द्रहवें जात-अध्ययन का यह (पूर्वोक्त) अर्थ कहा है । जैसा मैंने सुना वंसा कहा है ।

## सोलहवाँ अध्ययन : द्रौपदी

सार : संक्षेप

मनुष्य कभी-कभी साधारण-मे लाभ की इच्छा से प्रेरित होकर ऐसा मत्तन्त्र कुत्सित क्रूर कर्म कर बैठता है कि उसका उसे अतीव दारुण दुष्फल भोगना पड़ता है। उसका भविष्य दीर्घ-दीर्घ काल के लिए घोर अन्धकारमय बन जाता है। द्रौपदी-ज्ञात इस तथ्य को सरल, सरस और सुगम रूप से प्रदर्शित करता है।

द्रौपदी के जीव की कथा उसके नागश्री ब्राह्मणी के भव से प्रारम्भ होती है। नागश्री अपने परिवार के लिए भोजन तैयार करती है। उसने तूँबे का उत्तम शाक बनाया। मगर जब बड़का देखा तो ज्ञात हुआ कि तूँबा कटुक-विषाक्त है। उसने उपालम्भ ध्येया प्रपयसा से बचने के लिए उस शाक को एक जगह छिपाकर रख दिया। पारिवारिक जन भोजन करके अपने-अपने काम में लग गए। घर में जब नागश्री अकेली रह गई तब मासखमण के पारणक के दिन धर्मरुचि मनवा भिक्षा के लिए उनके घर पहुँचे। नाग से अमृत की प्राप्ति नहीं की जा सकती, उससे तो विष ही निकल सकता है। नाग-श्री मानवी के रूप में नागिन थी। उसने परम तपस्वी मुनि को विष ही मान लिया—विषाक्त तूँबे का शाक उनके पात्र में उड़ेल दिया।

मुनि धर्मरुचि वही आहार लेकर अपने मुख के पास पहुँचते हैं। गुहजी उसकी गंध से ही समझ जाते हैं कि यह शाक-आहार विषला है। फिर भी उसमें से एक बूँद लेकर चखते हैं और धर्मरुचि को परठ देने का आदेश देते हैं। कहते हैं—यह शाक प्राणहारी है।

धर्मरुचि परठने जाते हैं। उसमें से एक बूँद लेकर भूमि पर डाल कर उसकी प्रतिक्रिया को प्रतीक्षा करते हैं। कीड़ियाँ आती हैं, ज्यों ही उसके रस का आस्वादन करती हैं, प्राण गंवा बैठती हैं। यह दृश्य देखकर मुनि का सद्य हृदय दहल उठता है। सोचते हैं—सारा का सारा शाक परठ दिया जाए तो प्रसव्य जानवरों का पात हो जाएगा। इससे तो यही धैर्यस्कर है कि मैं अपने ही उदर में इसे परठ लूँ! मुनि यही करते हैं। समाधिपूर्वक उनके जीवन का अन्त हो जाता है।

मगर नागश्री का पाप छिपा न रहा। सर्वत्र उसकी चर्चा फैल गई। घर वालों ने ताड़ना-तर्जना करके उसे बाहर निकाल दिया। वह भित्तारिन बन गई। उस समय की उसकी दुर्दशा का मूल में जो चित्रण किया गया है वह मूल से ही ज्ञात होगा। अन्तिम प्रवस्था में वह एक साथ सोनह भयानक रोगों से ग्रस्त होकर, अत्यन्त तीव्र दुःखों का अनुभव करती—हाय-हाय करती मरती है और छड़ी नरकभूमि में पड़ा होती है। इसके साथ उसके तीव्रतम पाप-कर्म के फलभोग का जो सिनसिवा शुरू होता है, वह इनने दीर्घ-प्रतिदीर्घ काल तक चालू रहता है कि वहाँ बपों की घोर मुणों की घना भी हार मान जानी है। वह अत्यन्त नरक में मागरोपमा की प्रायु से, एकाधिक बार जन्म लेती है और बीच में मत्तय आदि की योनियों में भी जन्म लेती है। नस्त्रों में उगका वध किया जाता है। बचकर, नभचर घोर भूचर, ऐकेन्द्रिय, विकेन्द्रिय आदि-आदि निम्नचर्याओं में दुःसपूर्वक जन्म लेती, दुःसमय जीवनयापन करती घोर दुःख के माय हो मरती है।



सन्धे काल तक के इस जन्म-मरण के पश्चात् उसे मनुष्यभवं की प्राप्ति होती है। एक स्रष्ट के घर पुत्रों के रूप में जन्म होता है। 'सुकुमालिका' नाम रखा जाता है। किन्तु अब भी उसके पाप-फल का ग्रन्थ नहीं होता। विवाहित होने पर पति द्वारा उसका परित्याग कर दिया जाता है। उसके शरीर का स्पर्श उसे तत्तवार की धार जैसा तीक्ष्ण और घनि जैसा उष्ण लगता है। दवाव डालने पर पति कहता है—में मृत्यु का भ्रातिमन करने को तैयार हूँ, मगर सुकुमालिका के शरीर के स्पर्श को सहन नहीं कर सकता।

सुकुमालिका का पुनर्विवाह किया जाता है एक अत्यन्त दीन भिखारी के साथ। सुकुमालिका के पिता को, खाने-पीने के लिए मिट्टी के ढोकरे लिये, फटे चीमड़े शरीर पर लपेटे एक भिखारी, दिखाई देता है। वह उसे अदर बुलवाता है। मासित, मर्दन, उबटन, स्नान और केशशृ गार करवा कर, सुस्वाधु भोजन जिमा कर बिठाता है। सुकुमालिका से विवाह करने का प्रस्ताव करता है। भिखारी उसे स्वीकार कर लेता है। रात्रि में लयनामार में जाने पर वही स्मृति उत्पन्न होती है जो प्रथम विवाह के समय हुई थी। भिखारी भी रात में ही उसे छोड़ कर भाग जाता है। सुकुमालिका का अगस्पर्श उसे भी सहन न हो सका।

एक अतिशय दीन भिखारी, स्रष्ट के प्रसन्न ब्रह्म एवं स्वर्ग जैसे सुख के प्रलोभन को भी ठुकरा कर भाग गया तो आशा को कोई किरण छेप नहीं रही। पिता ने निराश होकर कहा—'बेटी, तेरे पाप-कर्म का उदय है, उसे सन्तोष के साथ भोग।' पिता ने दानशाला खोल दी। सुकुमालिका दान देती अपना समय व्यतीत करने लगी।

कुछ समय पश्चात् उसकी दानशाला में आर्थिकार्थी का भिक्षा के लिए आगमन हुआ। सुकुमालिका ने बशीकरण मन्त्र, तंत्र, कामण आदि की याचना की। आर्थिकार्थी ने उसे अपना धर्म समझाया। कहा—ऐसी बात सुनना भी हमारे लिए अयोग्य है। हम ब्रह्मचारिणी हैं। यत्र-तत्र से हमारा क्या वास्ता ?

आखिर सुकुमालिका उनके पास साध्वी-दीक्षा अंगीकार कर लेती है। मगर उसके जीवन में, अन्तरतर में जो मलीनता जमी हुई थी, वह धुली नहीं थी। वह वहाँ भी शिष्याचारिणी हो जाती है और स्वच्छन्द होकर साध्वी-समुदाय को छोड़ एकाकिनी रहने लगती है। बाहर जाकर आत्मापना लेती है। इसी प्रसंग में एक बार उसे पाश पुरुषों के साथ विलास करती एक वेश्या दृष्टि-गोचर होती है। वेश्या एक पुरुष की गोद में बैठी है : शेष चार में से एक पुरुष उसके अस्तक पर ध्वज लिये खड़ा है, कोई चकर दोल रहा है तो कोई उसके पैर दबा रहा है। यह दृश्य देख कर सुकुमालिका के मन में इसी प्रकार के सुखभोग की सातसा उत्पन्न होती है। वह सकल्प करती है—मेरी तपस्या का फल हो तो यही कि मैं भी इसी प्रकार का सुख प्राप्त करूँ।

अन्त में मर कर वह देव पर्याय तो पाती है, मगर वहाँ भी देव-भारिका के रूप में उत्पन्न होती है।

देवभवं का अन्त होने पर पञ्चालनृपति राजा द्रुपद की कन्या के रूप में उसका जन्म हुआ। उचित वय होने पर स्वयंवर का आयोजन किया गया। स्वयंवर में वामुदेव श्रीकृष्ण, पाण्डव आदि सहस्रों राजा आदि उपस्थित हुए। द्रौपदी ने पाचों पाण्डवों का वरण किया। उसके इस स्वयंवर

पर किसी ने कोई आपत्ति नहीं की, मानो वह एक साधारण घटना थी। इससे तत्कालीन शासकीय रीति-रिवाजों पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।

द्रौपदी पाण्डवों के साथ हस्तिनापुर चली गई। वहाँ भी कुछ विधि-विधान हुए। बाते-बाते से वह पाण्डवों के साथ मानवीय मुश्कों का उपभोग करने लगी।

एक बार नारदजी अचानक हस्तिनापुर जा पहुँचे। द्रौपदी के सिवाय सब ने उनको रक्षित प्रतिपत्ति की। नारदजी द्रौपदी से रुष्ट हो गए। बदला लेने के विचार में घातकी नगरी में अमरकका के राजा पद्मनाभ के वहाँ गये। द्रौपदी के रूप-लावण्य की प्रतिमा प्रसन्न हो पद्मनाभ को सलवाया। पद्मनाभ ने देवी सहायता से द्रौपदी का हरण करवाया। द्रौपदी के स्वामी प्रभु बदल चुके थे। वह पतिव्रता थी। पद्मनाभ ने द्रौपदी को भोग के लिए धामनित किया तो उसने छद्म महीने की मोहलत मांग ली। उसे विश्वास था कि इस बीच उसके रिश्ते के भाई धर्मराज आकर अवश्य मेरा उद्धार करेंगे। हुआ भी यही। पाण्डवों को साथ लेकर कृष्णजी अमरकका राजधानी जा पहुँचे। उन्होंने पद्मनाभ को युद्ध में पराजित किया। राजधानी को तहस-नहन कर दिया। द्रौपदी का उद्धार हुआ।

यथामय द्रौपदी ने एक पुत्र को जन्म दिया। नाम हुआ पाण्डुसेन। पाण्डुसेन जब बड़ा बनाकुनार और राज्य का संचालन करने योग्य हो गया तब पाण्डव उसे सिंहासनासीन करके शक्ति हो गए। द्रौपदी ने अपने पतियों का अनुमरण किया। अन्त में पाण्डवों ने मुक्ति प्राप्त की और द्रौपदी स्वर्ग ने स्वर्ग प्राप्त किया।

प्रगुण प्रथम काकी विस्तृत है। यह इस प्रथम का अतिरिक्त सार है। निम्नलिखित निम्नलिखित स्वयं इस प्रथम का स्वाध्याय करे।



## सोलसमं अज्झयणं : अवरकंका (दोवई)

स्वामी का प्रश्न

१—जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं पद्मरत्नमस्त नायज्झयणस्त भयमहुं पणत्ते, समस्त णं भंते ! नायज्झयणस्त समणेणं भगवया महावीरेणं के भट्टे पणत्ते ?

थी जम्बू स्वामी ने थीमुघर्मा स्वामी से प्रश्न किया—‘भगवन् ! यदि श्रमण भगवान् महावीर इहं ज्ञात-प्रप्ययन का यह धर्म कहा है, तो सोलहवें ज्ञात-प्रप्ययन का श्रमण भगवान् महावीर का धर्म कहा है ?’

स्वामी का उत्तर

२—एवं सत्तु जंझू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा जामं जयरी होरथा । तीसे णं चंपाए होर बहिया उत्तरपुब्बिमे विसीभाए सुमूमिभागे जामं उज्जाणे होरथा ।

थीमुघर्मा स्वामी ने जम्बू स्वामी के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा—‘जम्बू ! उस काल और समय में चम्पा नामक नगरी थी । उस चम्पा नगरी से बाहर उत्तर पूर्व (ईशान) दिशा के भाग भूमिभागनामक उद्यान था ।

३—तत्थ णं चंपाए नयरीए तमो माहुणा भायरो परिवसति, तंजहा-सोमे, सोमवत्ते, सोमभूई, जाव [अपरिभूया] रिउब्बेय [जउब्बेय-सामवेय-अथम्बणवेय जाव बंभणएसु य सत्थेसु] निदिधिया ।

तेसि णं माहुणाणं तमो भारियाओ होरथा, तंजहा-नागसिरी, सूपसिरी, जवत्तिसिरी, मुहुमास-पायाओ जाव तेमि णं माहुणाणं इट्ठाओ, विपुले माणुस्तए कामभोगे पञ्चनुभवमाणोओ विहरंति ।

उस चम्पा नगरी में तीन ब्राह्मण-जन्धु निवास करते थे । उनके नाम इस प्रकार थे—सोम, वत्त और सोमभूति । वे घनाक्ष थे यावत् ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद तथा भगवत् पुराणों में यावत् अत्यन्त प्रवीण थे ।

उन तीन ब्राह्मणों की तीन पत्नियाँ थी । वे इस प्रकार—नागथी, भूतथी और यदाथी । वे बार हाथ पैर आदि भयवशों वाली यावत् उन ब्राह्मणों की इष्ट थी । वे मनुष्य सबको विपुल भोग भोगती हुई रहती थी ।

ज का निर्णय

४—तए णं तेसि माहुणाणं अग्रया कयाई एणयओ सहियाणं समुवागमाणं, जाव [सत्तिसत्ताणं विट्ठानं] इमेयाह्वे मिहो कहासमुत्तावे समुणज्जितया—‘एवं सत्तु देवाणुप्पिया ! भग्गं इमे पण जाव [—कणन-रपण-अणि-मोत्तिथ-संख-सित-प्यवास-रत्तरयण-संत-सार—] तावतेज्जे



३—तं जइ णं ममं जाउयाओ जाणित्ससि, तो णं ममं तित्तित्ससंति, तं जाव ताव ममं जाउ-  
याओ ण जाणंति, ताव ममं सेयं एवं सातइय तित्तालाउं बहुसंभारनेहकडं एगते गोवेत्तए, भन्नं सातइयं  
महुराताउयं जाव नेहावगाडं उवक्खडेत्तए ।' एवं सपेहेइ, सपेहिता तं सातइयं जाव गोवेइ, भन्नं  
सातइयं महुराताउयं उवक्खडेइ ।

सो यदि मेरी देवरानियां यह वृत्तान्त जानेंगी तो मेरी त्रिन्दा करेंगी । भतएव जब तक  
मेरी देवरानियां न जान पाएँ तब तक मेरे लिए यही उचित होगा कि इस शरद्भुत्तु संबंधी, बहुत  
मसालेदार और स्नेह (तेल) से युक्त कटुक नूँबे को किसी जगह छिपा दिया जाय । और दूसरा  
शरद्भुत्तु संबंधी या सारयुक्त मोठा नूँबा मसाले डाल कर और बहुत-से तेल से छौंक कर तैयार  
किया जाय । नागश्री ने इस प्रकार विचार किया । विचार करके उस कटुक शरद्भुत्तु संबंधी  
नूँबे को यावत् छिपा दिया और मोठा नूँबा तैयार किया ।

८—उवक्खडेत्ता तेहिं माहणाणं व्हायाणं जाव सुहासणवरगयाणं तं विपुलं भसणं पाणं  
खाइमं साइमं परियेसेइ । तए णं ते माहणा जिमियभुत्तुत्तरागया सभाणा आयंता चोवत्ता परमसुह-  
भूया सकम्मसंपज्जता जाया यावि होत्वा । तए ण ताओ माहणीओ व्हायाओ जाव विभूतियाओ तं  
विपुलं भसणं पाणं खाइमं साइमं माहारंति, माहारित्ता जेणव सयाई वेहाई तेणव उवागच्छंति,  
उवागच्छित्ता सकम्मसंपज्जताओ जायाओ ।

तत्पश्चात् वे ब्राह्मण स्नान करके यावत् मुसासन पर बैठे । उन्हें वह प्रचुर भक्षण, पान,  
खादिम और स्वादिम परोसा गया । वे ब्राह्मण भोजन कर चुकने के पश्चात् आचमन करके स्वच्छ  
होकर और परम शुचि होकर अपने-अपने काम में लग्न हो गए । तत्पश्चात् स्नान की हुई और  
विभूषित हुई उन ब्राह्मणियों ने विपुल भक्षण, पान, खादिम और स्वादिम माहार जीमा । जीमकर  
वे अपने-अपने घर चली गईं । जाकर वे भी अपने-अपने काम में लग गईं ।

स्थविर-आचमन

९—तेणं कालेणं तेण समएणं धम्मघोसा नामं घेरा जाव बहुपरिवारा जेणव चंपा णामं  
नपरी, जेणव सुभूमिभागे उज्जाणे, तेणव उवागच्छति, उवागच्छित्ता महापडिहवं जाव [भोगहं  
भोगिण्हत्ता संजमंणं तवत्ता अप्पाणं भावेपाणा] बिहरति । परित्ता निगया । धम्मो कहिओ ।  
परित्ता पडिगया ।

उस काल और उस समय में धर्मघोषनामक स्थविर यावत् बहुत बड़े परिवार के साथ  
चम्पानामक नगरी के सुभूमिभाग उद्यान में पधारे । पधार कर साधु के योग्य उपाय की याचना  
करके, यावत् [सथम और तप से आत्मा की भावित करते] बिचरने लगे । उन्हें बगदना करने के  
लिए परिपद् निकली । स्थविर मुनिराज ने धर्म का उपदेश दिया । उपदेश सुन कर परिपद् वापिस  
चली गई ।

धर्मवधि अनगार का भिक्षावें गमन

१०—तए णं तेहिं धम्मघोसाणं घेराणं अंतेवासी धम्मवई नामं अनगारे धोराले जाव [घोरे

घोरगुणे घोरतपस्वी घोरबंभचेरयासो उच्छृङ्खलरोरे तत्तित्तविजित] तेउत्तेरसे मांसमासे तन्नने विहरइ । तए ण ते धम्मरुई घणगारे माससमणपारणमंसि पडमाए पोरिसोए सग्गमाय करइ, ररिता वीयाए पोरिसोए एवं जहा गोयमसामो तहेय उगाहेइ, उग्गाहिता तहेय धम्मघोसं परं माण्डव जाव चंपाए नमरोए उच्च-नीच-मग्गमकुलाइ जाव घट्टमाने जेणेय नागसिरोए माहणीए निहं तेरे घणुपविट्ठे ।

धर्मघोष स्वविर के सिद्ध धर्मरुचिनामक घनगार थे । वह उदार-प्रधान भयवा उपाय-तपश्चर्या करने के कारण पादवंस्त्र्यां-पासरयां के लिए मति भयानक लगते थे । [घोर पर्याप्त पर्याप्त एवं इन्द्रियों रूपी शत्रुगणों को जीतने में उन पर दयाहीन थे । घोरगुण थे पर्याप्त जिन महाशक्ति आदि के सेवन में दूसरे कठिनाई अनुभव करते हैं ऐसे गुणों का भाग्यकरण करने वाले थे । शर तपस्वी—घोर तपस्या करने वाले थे । घोर ब्रह्मचारी—साधारण जनों द्वारा दुरुचर ब्रह्मचर्य का सेवन करने वाले थे । शरीर में रहते हुए भी शरीर-संस्कार के त्यागी होने के कारण उच्छृङ्खल-शरीर के त्यागी—शारीरिक ममत्त्व से असृष्ट-देहातीत दशा में रमण करने वाले थे । अनेक योजन-परिमाण क्षेत्र में स्थित वस्तु को भी भस्म कर देने वाली विपुल तेजोलेख जिनके शरीर में ही रहने के कारण सक्षिप्त यो, पर्याप्त घनो विपुल तेजोलेख का कभी प्रयोग नहीं करते थे ।] वे धर्मरुचि घनगार मांस-मांस का तप करते हुए विचरते थे । किसी दिन धर्मरुचि घनगार के मांसक्षण की पारणा का दिन आया । उन्होंने पहली पोरणी में स्वाध्याय किया, दूसरी में ध्यान किया । इत्यादि सब वृत्तान्त गीतम स्वामी के वर्णन के समान कहना चाहिए, तीसरे प्रहर में पार्थी का प्रतिलेखन करके उन्हें ग्रहण किया । ग्रहण करके धर्मघोष स्वविर से भिक्षा-गीचरी लाने की आज्ञा प्राप्त की । यावत् वे चम्पा नगरी में उच्च, नीच घोर मध्यम कुलो में भ्रमण करते हुए नागथी ब्राह्मणी के घर में प्रविष्ट हुए ।

कटुक तूबे का दान

११—तए णं सा नागसिरी माहणी धम्मरुई एज्जमाणं पासइ, पासिता तस्स सालइयल तित्तकडुयस्स बहुसंभारसंजुत्तं णेहावगाढं नित्तिरणट्टयाए हट्टुट्टा उट्ठेइ, उट्ठित्ता जेणेव भत्तघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तं सालइयं तित्तकडुयं च बहुनेहं धम्मरुइस्स घणगारस्स पडिगहत्ति सम्बमेव नित्तिरइ ।

तब नागथी ब्राह्मणी ने धर्मरुचि घनगार को आते देखा । देख कर वह उस शरद्वस्तु सबड़ी, बहुत-से भसालो वाले घोर तेल से युक्त तूबे के शाक को निकाल देने का योग्य भवसर जानकर हृष्ट-नुष्ट हुई घोर सड़ी हुई । सड़ी होकर भोजनगृह में गई । वहाँ जाकर उसने वह शरद्वस्तु संबंधी तित्त घोर कटुवा बहुत तेल वाला सब का सब शाक धर्मरुचि घनगार के पात्र में डाल दिया ।

१२—तए णं तं धम्मरुई घणगारे ब्रह्मापज्जत्तमिति कट्टु नागसिरीए माहणीए गिहापो पडिणिल्लमइ, पडिणिल्लमिता चंपाए नगरीए मज्झमज्झेणं पडिणिबल्लमइ, पडिणिबल्लमिता जेणेव मुमुमिभागे उज्जाणे जेणेव धम्मघोसा येरा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धम्मघोसस्स भद्ररत्तामते हरियावहियं पडिक्कमइ, अन्नपाणं पडित्तेहेइ अन्नपाणं करयलंसि पडिवंसेइ ।

तत्पश्चात् धर्मरुचि धनगार 'प्राहार' पर्याप्त है' ऐसा जानकर भागधी ब्राह्मणी के घर निकले। निकल कर धर्मरा नगरी के बीचोबीच होकर निकले। निकलकर सुभूमि नाम के घर आए। धर्मर उन्हीने धर्मरुचि स्थविर के समीप ईर्ष्या का प्रतिक्षण करके धर्मर प्रतिवेक्षण किया। प्रतिवेक्षण करके, हाथ में धर्मरानी लेकर स्थविर गुह को दिखताया।

र का भावना

१३—तए नं ते धम्मपोसा धेरा तस्स सासइयस्स नेहावगाइस्स गंधेण धम्मिभूया समाना त इयामो नेहावगाइयामो एणं बिहुणं गहाय करयत्तंति धासाएइ, तित्तणं सारं कइयं धम्मज्जं विसंभूयं जानित्ता धम्मरइं धणगारं एवं वयासी—'जइणं तुमं देवानुप्पिया ! एयं सात्त नेहावगाइं प्राहारेत्ति तो नं तुमं धक्कत्ते चेव जीवियामो ववरोविज्जत्ति, तं मा नं । सुप्पिया ! इमं सात्तइयं जाव प्राहारेत्ति, मा नं तुमं धक्कत्ते चेव जीवियामो ववरोविज्जत्ति । नं तुमं देवानुप्पिया ! इमं सात्तइयं एयंतमभावाए धवित्ते धंइत्ते परिट्टवेहि, परिट्टवित्ता क इयं एसजिज्ज' धसर्ण पाणं साइमं साइमं परिगाहेत्ता प्राहारं प्राहारेहि ।'

उस समय धर्मरुचि स्थविर ने, उस घरदन्धतु सबधी, तेस से व्याप्त धाक की गंध से उद्दिग्ध-पराभंग को प्राप्त होकर, उस घरदन्धतु सबधी एव तेल से व्याप्त धाक में से एक बूँद हूँ, उसे बता। तब उसे दिक्क, सारा, कड़वा, धसाध अभोग्य और विष के समान जाना। धर्मरुचि धनगार से इस प्रकार कहा—'देवानुप्पिय ! यदि तुम यह घरदन्धतु सबधी यावत् तेस वा का धाक साधोगे तो तुम धसमय में ही जीव से रहित हो जाओगे, धतएव हे देवानुप्पिय इस घरदन्धतु सबधी धाक को मत खाना। ऐसा न हो कि धसमय में ही तुम्हारे प्राण धतएव हे देवानुप्पिय ! तुम जाधा और मह घरदन्धतु सबधी तू वे का धाक एकान्त, भावा-से रहित, धवित्त भूमि में परठ दो। इसे परठ कर दूसरा प्रासुक और एषणीय धदान, पान, और स्वाध यहण करके उसका प्राहार करो।'

१४—तए नं ते धम्मरइं धणगारे धम्मपोत्तेणं धेरेणं एवं वृत्ते समाने धम्मपोत्तस्स धेरस्स प्राधो पविनिषत्तमइ, पविनिषत्तमित्ता सुभूमिभागाधो उज्जाणाधो धवरूसाधत्ते धंइत्तं पवित्तेहेइ, गहित्ता तधो सात्तइयामो एणं बिहुणं गहेइ, गहित्ता धंइत्तंति नित्तिरइ ।

तत्पश्चात् धर्मरुचि स्थविर के ऐसा कहने पर धर्मरुचि धनगार धर्मरुचि स्थविर के पास में ने। निकलकर सुभूमिभाग उद्यान से न अधिक दूर न अधिक समीप पर्यात् कुछ दूर पर उन्हीने 'ल' (भूभाग) की प्रतिवेक्षण करके उस घरद सबधी तू वे के धाक की बूँद तो और उस ग में डाली।

से होने वाली हिता-नवशरीर में प्रवेश

१५—तए नं तस्स सात्तइयस्स तित्तकइयस्स बहुनेहावगाइस्स गंधेणं बहूणि पिपीलि-हस्ताणि पाउभूयाइं । जइ जइ धंणं पिपीलिया प्राहारेइ सा तहा धक्कत्ते चेव जीवियामो बिज्जइ ।

तए णं तस्स धम्मरुद्धस्स अणगारस्स इमेयाख्वे अज्झत्तियए जाव समुप्पज्जित्वा—‘इदं त्वं इमस्स सालइयस्स जाव एगंमि बिबुगमि पक्खित्तंमि अणेगाइं पिपोत्तिगासहस्साइं बवरोविज्जंति, त्वं णं ग्रहं एयं सालइयं थंडित्तंमि सव्वं निसिरामि, तए णं बहूणं पाणाणं भूपाणं जीवाणं सत्ताणं बहुपाणं भविस्सइ । तं सेयं सलु ममेयं सालइयं जाव गाढं सयमेव आहारेतए, मम चेव एएणं सरोरेणं निव्वारं ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहिता मुहपोत्तियं, पडित्तेहइ, पडित्तेहिता ससीतोवरियं कायं पय्यं पमज्जित्ता तं सालइयं तित्तकडुयं बहुनेहावगाढं विसमिव पन्नयभूएणं अप्पाणेणं सव्वं सरोरोवि पक्खिवइ ।

तत्पश्चात् उस शरद् सबधी तित्त कटुक और तेल से व्याप्त शाक की गंध से बहुत-बुरा कोड़िया वहाँ आ गई । उनमें से जिस कोड़ी ने जैसे ही वह शाक खाया, वैसे ही वह प्रसन्न में हो मृत्यु को प्राप्त हुई ।

तब धर्मरक्षि अणगार के मन में इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ—यदि इस शरद् सबधी यावत् शाक का एक बिन्दु डालने पर अनेक हजार कोड़ियां मर गईं, तो यदि मैं सब का सब यह शाक भूमि पर डाल दूंगा तो यह बहुत-से प्राणियों, भूतों, जीवों और सत्त्वों के वध का कारण होगा । अतएव इस शरद् संबंधी यावत् तेल वाले शाक को स्वयं ही खा जाना मेरे लिए श्रेयस्कर होगा । यह शाक इसी (मेरे) शरीर से ही समाप्त हो जाय—भर जाय । अणगार ने ऐसा विचार करके मुखयस्त्रिका को प्रतिलेखना की । प्रतिलेखना करके मस्तक सहित ऊपर शरीर का प्रमाणन किया । प्रमाणन करके वह शरद् सबधी तूबे का तित्त कटुक और बहुत तेल से व्याप्त शाक स्वयं ही आस्वादन किये बिना अपने शरीर के कोठे में डाल लिया । जैसे सर्प सोधा हो बिल में प्रवेश करता है, उसी प्रकार यह आहार सोधा उनके उदर में चला गया ।

१६—तए णं तस्स धम्मरुद्धस्स तं सालइयं जाव नेहावगाढं आहारियस्स समाणस्स मुहुत्तजं पण्णिममाणंति सरोरगंति वेयणा पाउम्भूया उज्जत्ता जाव [विज्जता कक्खत्ता पगात्ता बंठा दुक्खत्ता] बुरहिपात्ता ।

शरद् सबधी तूबे का यावत् तेल वाला शाक खाने पर धर्मरक्षि अणगार के शरीर में, एक मुहुत्त में (थोड़ी सी देर में) ही उसका प्रसर हो गया । उनके शरीर में वेदना उत्पन्न हो गई । यह वेदना उत्कट थी, यावत् [विपुल, कंकश, प्रगाढ़ तथा] दुस्तह थी ।

१७—तए ण धम्मरुद्धं अणगारे अयामे अक्खे अवोरिए अपुरिसत्तकार-परवक्खे अपारणिअं मिनि कट्टु, आयातभङ्गं एणे ठवेइ, ठवित्ता थडित्तं पडित्तेहइ, पडित्तेहिता दम्मसंधारण सनोइ संधारित्ता दम्मसंधारण दुक्खइ, दुक्खित्ता पुरयान्निभूहे सपलियकनित्तन्ने करयत्तपण्णिगहित्थं निरमासत्तं मायए अज्झत्ति कट्टु एवं वयासो—

शाक पेट में डाल लेने के पश्चात् धर्मरक्षि अणगार स्थान (उठने-बैठने की शक्ति) में रुद्ध हो, बहोत, बोन में रहित तथा पुनरकार और पराक्रम में हीन हो गये । ‘यद्यप्यहं शरीर धारण नहीं किया या मरूँ’ ऐसा जानकर उन्होंने आचार के भाण्ड-वाज एक जगह रख दिये । उन्हें राख कर स्थिति का प्रतिक्षण किया । प्रतिक्षण करके दनं का सवारा दिखाया और वे उन पर ध्यानोप



ये, ऐसी वह नागथी घर-घर देहवति (घपने-घपने घरों पर फेंकी हुई बलि) के द्वारा घपनी जीविका चलाती हुई-पेट पातली हुई भटकने लगी ।

२६—तएवं तीते नागतिरोए माहणीए तम्भवसि जेय सोत्तसरोयामंका पाउमूया, तंजहा—साते काते जोगिमुने जाय कोडे । तएवं नागतिरो माहणी सोत्तमेहिं रोगायकेहिं धमिमुया समानी पट्टुहुद्वद्ववमट्ठा कातमाते कासं किच्चा छट्ठीए पुडवोए उवकोसेण बावीससागरोवमठिइएमु नरएमु नेरइएमु उववन्ना ।

तदनन्तर उस नागथी घाटाली को उभी (बर्तमान) भव में सोलह रोगातक उत्पन्न हुए । घाटाली सोलह रोगातकों से छठी पृथ्वी (नरकभूमि) में

३०—सा नं तमोअंतरे उवट्ठिता मच्छेसु उववन्ना, तत्थ नं सत्थवग्गहा बाहवकंतोए कातमाते कासं किच्चा छहे सत्तमोए पुडवोए उवकोसाए तित्तोससागरोवमठिइएमु नेरइएमु उववन्ना ।

तत्पश्चात् नरक से सीधी निकल कर वह नागथी मत्स्य योनि में उत्पन्न हुई । वही वह दास्य से वध करने योग्य हुई—उसका वध दास्य से किया गया । भूतएव दाह की उत्पत्ति से कातमास में कात करके, नीचे सातवी पृथ्वी (नरकभूमि) में उरुकुट्ठ तृतीय सागरोपम की स्थिति वाले नारको में नारक पयान में उत्पन्न हुई ।

३१—सा न तमोअंतरे उवट्ठिता बोच्चं पि मच्छेसु उववन्ना, तत्थ वि ष नं सत्थवग्गहा बाहवकंतोए बोच्चं पि छहे सत्तमोए पुडवोए उवकोसे तित्तोससागरोवमठिइएमु नेरइएमु उववन्ना ।

तत्पश्चात् नागथी सातवी पृथ्वी से निकल कर सीधी दूसरी बार मत्स्य योनि में उत्पन्न हुई । वही भी उसका दास्य से वध किया गया और दाह की उत्पत्ति होने से मृत्यु को प्राप्त होकर पुनः नीचे सातवी पृथ्वी में उरुकुट्ठ तृतीय सागरोपम की भाषु वाले नारको में उत्पन्न हुई ।

३२—सा नं तमोअंतरे जाय उवट्ठिता तच्चं पि मच्छेसु उववन्ना, तत्थ वि ष नं सत्थवग्गहा जाय कासं किच्चा बोच्चं पि छट्ठीए पुडवोए उवकोसेण बावीससागरोवमठिइएमु नरएमु उववन्ना ।

सातवी पृथ्वी से निकल कर तीसरी बार भी मत्स्य योनि में उत्पन्न हुई । वही भी वह दास्य से वध करने योग्य हुई । यावत् कात करके दूसरी बार छठी पृथ्वी में बाईस सागरोपम की उरुकुट्ठ भाषु वाले नारको में नारक रूप में उत्पन्न हुई ।

३३—तमोअंतरे उवट्ठिता उरएमु, एवं जहा भोसाले तहा नेयय्वं जाय रयणप्पहाए सत्तमु उववन्ना । तमो उववट्ठिता जाय इमाईं सहवरविहाणाईं जाय धनुत्तरे ष नं पारयावर-पुडविकाइमत्ताए तेसु मणेगसपसहससुत्तो ।



सोतहवां अध्ययन : द्रौपदी ]

ये, ऐसी वह नागथी घर-घर देहवलि (अपने-अपने घरों पर फेंकी हुई वलि) के द्वारा अपनी चलाती हुई-पेट पालती हुई भटकने लगी ।

२६—तएवं ततो नागसिरोऽपि माह्वणीयं तन्भवति जेव सोतसरोगायंका पाउञ्ज्मूया, तं तासे कासे जोणिमूले जाव कोडे । तएवं नागसिरो माह्वणी सोतसेहि रोगायकेहि अभिभूया । तदुद्धवसदटा कालमासे कालं किञ्चा छट्ठीए पुढवोए उक्कोसेणं बावोससागरोवमठिइएसु रइयत्ताए उववन्ना ।

तदनन्तर उस नागथी ब्राह्मणी को उसी (वत्तमान) भव में सोतह रोगातक उत्पन्न इस प्रकार-श्वास, कास योनिमूल यावत् कोड । तत्पश्चात् नागथी ब्राह्मणी सोतह रोगातक होकर प्रतीव दुःख के वशीभूत होकर, कालमास में काल करके, छठी पृथ्वी (नरकभूमि) पर्यन्त सागरोपम की स्थिति वाले नारक के रूप में उत्पन्न हुई ।

३०—सा णं तमोऽण्णंतरं उव्वट्ठिता मच्च्येसु उववन्ना, तस्य णं सत्थवज्ज्मा दाहवज्ज्मा मासे कालं किञ्चा ग्रहे सत्तमोए पुढवोए उक्कोसाए तिसोससागरोवमठिइएसु नेरइएसु उववन्ना । तत्पश्चात् नरक से सीधी निकल कर वह नागथी मत्स्य योनि में उत्पन्न हुई । वहाँ वह दाह करने योग्य हुई—उसका वध शस्त्र से किया गया । प्रतएव दाह की उत्पत्ति से कालमास करके, नीचे सातवी पृथ्वी (नरकभूमि) में उत्कृष्ट तृतीय सागरोपम की स्थिति वाले नारकी पर्याय में उत्पन्न हुई ।

३१—सा णं तमोऽण्णंतरं उव्वट्ठिता बोच्चं पि मच्च्येसु उववज्ज्मा, तस्य वि य णं सत्थवज्ज्मा कंतोए बोच्चं पि ग्रहे सत्तमोए पुढवोए उक्कोसं तैत्तीससागरोवमठिइएसु नेरइएसु ।

तत्पश्चात् नागथी सातवी पृथ्वी से निकल कर सीधी दूसरी बार मत्स्य योनि में उत्पन्न हुई । वहाँ भी उसका शस्त्र से वध किया गया और दाह की उत्पत्ति होने से मृत्यु को प्राप्त होकर पुनः नीचे सातवी पृथ्वी में उत्कृष्ट तृतीय सागरोपम की धातु वाले नारकी में उत्पन्न हुई ।

३२—सा णं तमोऽण्णतो जाव उव्वट्ठिता तच्चं पि मच्च्येसु उववन्ना, तस्य वि य णं सत्थवज्ज्मा जाव कालं किञ्चा बोच्चं पि छट्ठीए पुढवोए उक्कोसेणं बावोससागरोवमठिइएसु नरेसु उववन्ना ।

सातवी पृथ्वी से निकल कर तीसरी बार भी मत्स्य योनि में उत्पन्न हुई । वहाँ भी वह शस्त्र से वध करने योग्य हुई । यावत् काल करके दूसरी बार छठी पृथ्वी में बाईस सागरोपम की उत्कृष्ट धातु वाले नारकी में नारक रूप में उत्पन्न हुई ।

३३—तमोऽण्णंतरं उव्वट्ठिता उरएसु, एवं जहा गोसाते तहा नेयव्वं जाव रयणप्पहाए सत्तसु ववन्ना । तमो उव्वट्ठिता जाव इमाईं सहरबिहाणाईं जाव अदुत्तरं च णं सरबायर-  
देवी नन्दन मणियार अध्ययन

तब मुकुमालिका को गोपालिका धार्या की इस बात पर थड़ा नहीं हुई, प्रतीति नहीं हुई, रुचि नहीं हुई। वह भूमिभाग उद्यान से कुछ समीप में निरन्तर बेते-बेते का तप करती हुई आतापना लेती हुई विचरने लगी।

मुकुमालिका का निदान

७२—तत्थ णं चंपाए नयरीए सलिया नामं गोठ्ठी परिवसइ नरयइदिण्णि (१) नए अम्मापिइनिययनिप्पिवासा, वेसविहारकयनिकेया, नाणाविहवविणयपहाणा म्हा जाव अरिन्ना।

चम्पा नगरी में सलिया (क्रीड़ा में संलग्न रहने वाली) एक गोष्ठी (टोली) निवास करती थी। राजा ने उसे इच्छानुसार विचरण करने की छूट दे रखी थी। वह टोली माता-पिता की स्वजनों की परवाह नहीं करती थी। वेद्या का घर ही उसका घर था। वह नाना प्रकार का प्रीति (प्रनाचार) करने में उद्यत थी, वह घनाड्य लोगों की टोली थी और यावत् किसी से दबती नहीं थी अर्थात् कोई उसका पराभव नहीं कर सकता था।

७३—तत्थ णं चंपाए नयरीए देवदत्ता नामं गणिया होत्था मुकुमाला जहा अंड-माए।

तए णं तीसे सलियाए गोठ्ठीए अन्नया पंच गोठ्ठिलपुरिसा देवदत्ताए गणियाए हंदि सुभूमिभागस्स उज्जाणस्स उज्जाणसिंरि पच्चणुभभवमाणा विहरंति। तत्थ णं एमे गोठ्ठिलपुरिसे देवदत्तं गणियं उच्छेधे धरइ, एमे पिट्ठमो आयवत्तं धरेइ, एमे पुप्फपूरयं रएइ, एमे पाए रएइ, एमे चामरुपेखेवं करेइ।

उस चम्पा नगरी में देवदत्ता नाम की गणिका रहती थी। वह मुकुमाल थी। (तोखे) आगे प्रथम के अनुसार उसका वर्णन समझ लेना चाहिए।

एक बार उस सलिया गोष्ठी के पाँच गोष्ठिक पुरुष देवदत्ता गणिका के साथ, सुभूमिभाग उद्यान की लक्ष्मी (शोभा) का अनुभव कर रहे थे। उनमें से एक गोष्ठिक पुरुष ने देवदत्ता गणिका को अपनी गोद में बिठलाया, एक ने पीछे से छत्र धारण किया, एक ने उसके मस्तक पर पुष्पों का दोसर रचा, एक उसके पैर (महावर से) रगने लगा, और एक उस पर घामर डोरने लगा।

७४—तए णं सा सुमालिया मज्जा देवदत्तं गणियं पंचहि गोठ्ठिलपुरिसेहि सज्ज उरात्तं माणस्सगाइं भोगभोगाइं भुजमाणि पासइ, पासित्ता इमेयाह्वये संकरये समुप्पज्जिरया—'महो बं इमं इरिपया पुरापोराणां जाव [सुचिण्णाणं सुपरवक्ताणं कडाण कस्ताणाणं कम्मणं, फलविशिष्टे पच्चणुभभवमाणी] विहरइ, तं जइ णं केइ इमस्स सुचरियस्स त्वनियमबंभेरवासस कस्तं फलविशिष्टेसे अरिथ, तो णं अहमवि आगमिस्सेणं भवगहणेणं इमेयाह्वयाइं उरात्ताइं मा [माणस्सगाइं भोगभोगाइं भुजमाणी] विहरिज्जामि' रि कट्ठ नियाणं करेइ, करिशा आगमि भूमोपो पच्चोएइइ।

उस मुकुमालिका धार्या ने देवदत्ता गणिका को पाँच गोष्ठिक पुरुषों के साथ उच्चकोटि मनुष्य सखी कामभोग भोगने देगा। देमकर उसे इस प्रकार का सकल्प उपपन्न हुआ—'महा! इमं स्त्री पूर्वं मे आचरण किये हुए गुण कर्मों का फल अनुभव कर रही है। सो यदि अच्छी तरह से आचरण किये गये इस तब, नियम और ब्रह्मचर्य का कुछ भी कल्याणकारी फल-विशेष हो, तो मैं भी आनंद

मे इसी प्रकार के मनुष्य सबधी कामभोगों को भोगती हुई विचरूँ ।' उसने इस प्रकार निदान । निदान करके प्रातःपानाभूमि से वापिस लौटी ।

मालिका को बहुधाता

७५—तए नं सः भूमालिया अञ्जा सरीरवत्ता जाया यावि होरया, अभिवल्लणं अभिवल्लणं ये धोवेद, याए धोवेद, सोस धोवेद, नुहं धोवेद, यणतराह धोवेद, कससंतराह धोवेद, गोञ्जतराहं वेद, जत्थ नं ठाणं वा सेज्ज वा निसीहियं वा चेएद, तत्थ वि णं पुग्घामेव उवएणं अञ्जवत्तइत्ता धो पच्छा ठाणं वा सेज्जं वा चेएद ।

तत्पश्चात् वह मुकुमालिका आर्या शरीरवत्ता हो गई, अर्थात् शरीर को साफ-सुथरा-मुदोभन करने में आसक्त हो गई । वह बार-बार हाथ धोती, पैर धोती, मस्तक धोती, मुँह धोती, स्नानांतर (प्रातः) धोती, बगलें धोती तथा मुष्ट जम धोती । जिस स्थान पर वह खड़ी होती या कापोत्सर्ग करती, सोती, स्वाध्याय करती, वहाँ भी पहले ही जमीन पर जल छिड़कती थी और फिर खड़ी होती, कापोत्सर्ग करती, सोती या स्वाध्याय करती थी ।

७६—तए नं तासो गोवालियासो अञ्जासो भूमालिय अञ्जं एव वयासी—एवं खलु देवानुप्पिए । अञ्जे । अहं समणीसो निग्गंयोसो ईरियासमियासो जाव बंधेदपरिणीसो, नो खलु कप्पइ अहं सरीरवत्तासियाए होसाए, तुम च न अञ्जे । सरीरवत्तिया अभिवल्लणं अभिवल्लणं हएये धोवसि जाव चेएसि, तं तुमं नं देवानुप्पिए । तस्स ठावस्स आलोएहि जाव पडिबज्जहि ।

तब उन गोवालिका आर्या ने मुकुमालिका आर्या से इस प्रकार कहा—‘हे देवानुप्रिये । हम निर्गन्ध साध्वियाँ हैं, ईर्ष्यामिति से सम्पन्न यावत् ब्रह्मचारिणी हैं । हमें शरीरवत्ता होना नहीं कल्पता, किन्तु हे आर्य ! तुम शरीरवत्ता ही गई हो, बार-बार हाथ धोती हो, यावत् फिर स्वाध्याय प्रादि करती हो । अतएव देवानुप्रिये ! तुम वत्सुलचारित्र रूप स्थान की आलोचना करो यावत् प्रायश्चित्त अंगीकार करो ।

७७—तए नं गोवालिया गोवालियाणं अञ्जानं एवमद्धं नो आढाह, नो परिजाणइ, अणाढाय-  
निवारंति ।

तब मुकुमालिका आर्या ने गोवालिका आर्या के इस श्रवण (कथन) की किया, उसे अंगीकार नहीं किया । वरन अनादर करती हुई और अस्वीकार करती हुई उसी प्रकार रहने लगी । तत्पश्चात् दूसरी आर्याएँ मुकुमालिका आर्या की बार-बार प्रवहेलना करने लगी, यावत् [निन्दा करने लगी, खोजने लगी, गद्गल करने लगी] अनादर करने लगी और बार-बार इस अनाचार के लिए उसे रोकने लगी ।

मुकुमालिका का पुनर् विहार

७८—तए नं तीसे भूमालियाए समणीहि निग्गंयोहि होतिज्जमाणीए जाव चारिज्जमाणीए इमेयाक्ये अमभियए जाव समुप्पज्जत्ता—‘जया नं अहं अयारवासमज्जे वसाभि, तया नं अहं

प्राप्त्यन्ता, जया न ग्रहं मूँहे भविष्या पश्यन्त्या, तथा नं ग्रहं पश्यन्त्या, पुनश्च नं मम मनसो  
प्राप्त्यन्ति, इयाचि नो प्राप्त्यन्ति, तं मेव मनु मम कस्तं पात्रणभाषाए मोक्षालियाणं प्रविशन्  
पश्चिनिवगमिस्ता पात्रणभक्तं उवसग उवगपश्चिनिता नं विहरिषाए' शि कट्ट एव सवेरु, मरेरु  
कस्तं पात्रणभाषाए मोक्षालियाण अत्राणं प्रविशामो पश्चिनिवगमइ, पश्चिनिवगमिस्ता पात्रण  
उवसग उवग पश्चिनिता नं विहरइ ।

नियन्त्र्य श्रमस्त्रिणां द्वारा पाहेनता को गई धोर रोको गई उग मुकुमानिका के मन में  
प्रकार का विचार यावन् मनोगा महन्त्र उ पत्र दृष्टा—'जब मैं मृत्युशय्या में बगती थी, वहाँ  
स्थाधीन थी । जब मैं मुड़िन होकर रोझि हुई तब मैं पराधीन हो गई । पहुँचे वे श्रमस्त्रिणां के  
प्रादर करती थी किन्तु घर प्रादर नहीं करती हैं । प्रत्येक कम प्रभात होने पर गोपालिका के  
से निकलकर, प्रलग उपाश्रय (स्थान) में जा करके रहना मेरे लिए श्रमस्त्रिणां होगा ।' उसने  
विचार किया । विचार करके कम (दूगरे दिन) प्रभात होने पर गोपालिका प्रायां के पान से नि  
गई । निकलकर प्रलग उपाश्रय में जाकर रहने लगी ।

निधन : स्वर्गप्राप्ति

७६—तए नं सा सुमालिया अत्रा अणोहृदिया अनियारिया सच्छंदमई प्रवि  
प्रभिवक्त्रणं हृथे धोवेइ, जाव' चेएइ, तस्य वि य नं पासराया, पासरायविहारो, मोसण्णा मोसण्णावि  
कुसीला, कुसीलविहारो, संसराया, संसरायविहारो बहूणि यासाणि सामणपरियागं पाउणइ, अट्टमासि  
संलेहणाए तसस ठाणसस अणालोइय-अपश्चिक्कंता कासमासे कालं किच्चा ईसाणे कप्पे प्रण्य  
विमाणंसि वेयगणिमत्ताए उवयण्णा । तस्येगइयाणं देयीणं नय पत्तिभोवमाइं ठिई पणत्ता, त  
सुमालियाए वेवोए नव पत्तिभोवमाइं ठिई पणत्ता ।

तत्पश्चात् कोई हटकने-मना करने वाला न होने से एव रोकने वाला न होने से मुकुमानिका  
स्वच्छदबुद्धि हाकर बार-बार हाथ धोने लगी यावत् जल छिड़ककर कायोत्सर्ग प्रादि करने ल  
तिस पर भी वह पार्श्वस्थ अर्थात् शिथिलाचारिणी हो गई । पार्श्वस्थ की तरह विहार करने  
लगी । वह अवसन्न हो गई अर्थात् ज्ञान दर्शन और चारित्र के विषय में प्रालस्य हो गई और प्राल  
मय विहार वाली हो गई । कुसीला अर्थात् घनाचार का सेवन करने वाली और कुसीलो के स  
व्यवहार करने वाली हो गई । ससक्ता अर्थात् श्रद्धि रस और साता रूप गौरवों में प्राप्त  
ससक्ताविहारिणी हो गई । इस प्रकार उसने बहुत वर्षों तक माध्वी-पर्याय का पालन किया ।  
मे अर्ध मास की संलेखना करके, अपने अनुचित आचरण की प्रालोचना और प्रतिक्रमणा किये  
ही काल-मास में काल करके ईशान कल्प में, किसी विमान में देवगणिका के रूप में उत्पन्न हुई ।  
किन्ही-किन्ही देवियों की नौ पत्योपम की स्थिति कहो गई है । मुकुमानिका देवी की भी नौ पत्यो  
की स्थिति हुई ।

श्रीपरी-कथा

८०—तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबुदीये दीये मारहे यासे पंचालेसु जणवएसु कपित

नामं नगरे होत्था । वनमग्नौ । तस्य णं दुवए नामं राया होत्था, वनमग्नौ । तस्य णं चुलणी देवी, धट्टजुण्णे कुमारे जुवराया ।

उस काल में और उस समय में, इसी जम्बूद्वीपनामक द्वीप में, भरतक्षेत्र में, पांचाल देश में काम्पिल्यपुरनामक नगर था । उसका वर्णन द्रौपदीपातक सूत्र के अनुसार कहना चाहिए । वहाँ द्रुपद राजा था । उसका वर्णन भी द्रौपदीपातक सूत्रानुसार कहना चाहिए । द्रुपद राजा की चुलनी नामक पटरानी यी और घट्टजुम्ननामक कुमार युवराज था ।

द्रौपदी का जन्म

८१—तए णं सा सुमालिया देवी ताम्पो देवलोयाम्पो धाउवणएणं जाव [विद्ववणएणं भववणएणं धनंतरं चयं] चइत्ता इहेव जंबूद्वीवे दीवे भारहे वासे पंचालेसु जणवएसु कयिस्तपुते नयरे पुपयस्स रण्णो चुलणीए देवीए कुच्छिसि दारियत्ताए पच्चायाया । तए णं सा चुलणी देवी नवण्ह मासाणं जाव दारियं पयाया ।

सुकुमालिका देवी उस देवलोक से, धातु, भव और स्थिति को समाप्त करके यावत् देवीसरीर का त्याग करके इसी जम्बूद्वीप में, भारत वर्ष में, पंचाल जनपद में, काम्पिल्यपुर नगर में, द्रुपद राजा की चुलनी रानी की कूख में लड़की के रूप में उत्पन्न हुई । तत्पश्चात् चुलनी देवी ने नौ मास पूर्ण होने पर यावत् पुत्री को जन्म दिया ।

नामकरण

८२—तए णं तीसे दारियाए निव्वत्तवारत्ताहियाए इम एयाकवं नामधेज्जं—जम्हा णं एसा दारिया दुवयस्स रण्णो पूया चुलणीए देवीए थसया, तं होउ णं अम्ह इमीसे दारियाए नामधिज्जे दोवई । तए णं तीसे अम्मापियरो इमं एयाकवं गुणं गुणनिष्कम्मं नामधेज्जं करिस्ति—‘दोवई’ ।

तत्पश्चात् बारह दिन व्यतीत हो जाने पर उस बालिका का ऐसा नाम रक्खा गया—‘क्योंकि यह बालिका द्रुपद राजा की पुत्री है और चुलनी रानी की आत्मजा है, अतः हमारी इस बालिका का नाम ‘द्रौपदी’ हो । तब उसके माता-पिता ने इस प्रकार कह कर उसका गुण वाला एवं गुणनिष्पन्न नाम ‘द्रौपदी’ रक्खा ।

८३—तए णं सा दोवई दारिया पंचधाइपरिग्गहिया जाव गिरिकंदरमत्तलीण इव चंपकलया निवायनिव्वाघामंसि सुहंसुहेणं परिवड्ढइ । तए णं सा दोवई रायवरकत्ता उम्मुक्कवालभावा जाव उक्किट्टसरीरा जाया यावि होत्था ।

तत्पश्चात् पाँच घायों द्वारा ग्रहण की हुई वह द्रौपदी दारिका पर्वत की गुफा में स्थित वायु प्रादि के व्याघात से रहित चम्पकलता के समान सुखपूर्वक बढ़ने लगी । वह श्रेष्ठ राजकन्या वात्स्या-वस्था से मुक्त होकर यावत् [क्रमतः यौवनावस्था को प्राप्त हुई, समझदार हो गई, उत्कृष्ट रूप, यौवन एवं लावण्य से सम्पन्न तथा] उत्कृष्ट शरीर वाली भी हो गई ।

८४—तए नं तं दोषई रायवरकन्नं भण्णया कयाइ अंतेउरियाओ ग्हायं जाव विभूतियं करेति, करित्ता दुवयस्स रण्णो पायवंदियं पेसति । तए नं सा दोषई रायवरकन्ना जेणव बुवए राया तेषे उवागच्छइ, उवागच्छित्ता दुवयस्स रण्णो पायगहणं करेइ ।

राजवरकन्या द्रौपदी को एक बार भन्तःपुर की रानियों (अथवा दासियों) ने स्नान कराया वत् सर्व भ्रलकारों से विभूषित किया । फिर द्रुपद राजा के चरणों की वन्दना करने के लिए उसके पास भेजा । तब श्रेष्ठ राजकुमारी द्रौपदी द्रुपद राजा के पास गई । वहाँ जाकर उसने द्रुपद राजा के चरणों का स्पर्श किया ।

८५—तए न से बुवए राया दोषई बारियं अके नितेसेइ, नितेसित्ता दोषईए रायवरकन्नाए क्वेण य जोइवणेण य लावण्णेण य जाययिहए दोषई रायवरकन्नं एवं वयासी—'जस्स नं भहं पुत्ता । रायस्स वा जुवरायस्स वा भारियत्ताए सयमेव वलइस्सामि, तरय नं तुमं सुहिया वा बुस्सिया वा भयिज्जासि, तए नं ममं जावजोयाए हिययडाहे भविस्सइ, तं नं भहं तव पुत्ता । भज्जयाए सयंवरं विरयामि, भज्जयाए न तुमं दिण्णसयंवरं, जं नं तुमं सयमेव रायं वा जुवरायं वा वरेहिस्सि, से म तव भत्तारे भयिस्सइ, ति कट्ठे ताहिं इट्ठाहिं जाव आसासेइ, आसासित्ता पडिबिसज्जेइ ।

तत्पश्चात् द्रुपद राजा ने द्रौपदी दारिका को अपनी गोद में बिठलाया । फिर राजवर कन्या द्रौपदी के रूप, यौवन और लावण्य को देखकर उसे विस्मय हुआ । उसने राजवरकन्या द्रौपदी से कहा—'हे पुत्री ! मैं स्वयं किसी राजा अथवा युवराज की भार्या के रूप में तुम्हें ढूँंगा तो कौन जाने कहा तू सुखी हो या दुःखी ? (दुःखी हुई तो) मुझे जिन्दगी भर हृदय में दाह होगा । मतएव हे पुत्री ! मैं आज से तेरा स्वयंवर रचता हूँ । आज से ही मैंने तुझे स्वयंवर में दी । मतएव तू अपनी इच्छा से जिस किसी राजा या युवराज का वरण करेगी, वही तेरा भर्त्ता होगा ।' इस प्रकार कहकर इष्ट, प्रिय और मनोज वाणी से द्रौपदी को प्रादवासन दिया । प्रादवासन देकर विदा कर दिया ।

द्रौपदी का स्वयंवर

८६—तए नं से बुवए राया दूयं सहायेइ, सहायित्ता एवं वयासी—'यच्छहं नं तुमं देवानुप्पिया । बारवइं नयारि, तरय नं तुमं कण्हं वामुवेवं, समुद्विजयपामोवले वस बसारे, बतरेवण-मुवले वंघ महावीरे, उग्गसेणपामोवले सोत्तस रायसहस्से, पज्जुण्णपामुवलाओ अज्जुण्णो कुमारकोडीओ, संवपामोवलाओ सट्ठि बुद्धतसाहस्सीओ, धोरसेणपामुवलाओ इक्कवीत्तं वोरपुरिस्स-साहस्सीओ, महसेणपामोवलाओ धण्णं वसवगसाहस्सीओ, अन्ने य महवे राईसर-तत्तवर-मावडि-कोट्टि-बिय-इम्भ-सेट्ठि-सेणावड-सथवाहपभइओ करयसपरिग्गहिअ वसन्तं सिरतावत्तं मरयए अंजति कट्ठे जएणं विजएणं वडावेहि, वडावित्ता एवं वयाहि—

तत्पश्चात् द्रुपद राजा ने दूत बुलवाया । बुलवा कर उससे कहा—'देवानुप्रिय ! तुम शारदा ही) नगरी जाओ । वहाँ तुम दृष्ण वामुदेव को, समुद्रविजय प्रादि दस दशरारां को, बरदेव । व मरुवीरों को, उग्रमेन प्रादि सोलह हजार राजाओं का, प्रद्युम्न प्रादि साढ़े तीन कांड । १५ हजार दुराणि (उज्ज्वल बलवानों) को, वीरमेन प्रादि इक्कीस हजार दि धृष्ण द्वार बलवान वगैरे को, तथा अन्य बहुत-से राजाओं, युवराजों,



उलवर, माडविक, कौटुम्बिक, इम्य, थोळी, सेनापति और सार्यवाह प्रभृति को दोनो हाथ जोड़कर, सों नल मिला कर मस्तक पर आवर्त्तन करके, अञ्जलि करके और 'जय-विजय' शब्द कह कर प्रधाना—उनका अभिनन्दन करना । अभिनन्दन करके इस प्रकार कहना—

८७—'एवं खलु देवानुप्पिया ! कपिल्लपुरे नगरे दुवयस्स रण्णो धूपाए चुलणीए देवीए प्रतयाए धट्टजुण्ण-कुमारस्स भगिणीए दोवईए रायवर-कण्णाए सयंवरं भविस्सइ, तं णं तुम्हे देवानुप्पिया ! दुवयं रायं अणुमिहेभाणा धकात्तपरिहीण चेव कपिल्लपुरे नगरे समोत्तरह ।'

'हे देवानुप्रियो ! काम्पिल्यपुर नगर में द्रुपद राजा की पुत्री, चुलनी देवी की आत्मजा श्री राजकुमार धट्टजुष्मन् की भगिनी श्रेष्ठ राजकुमारी द्रौपदी का स्वयंवर होने वाला है । अतएव हे देवानुप्रियो ! आप सब द्रुपद राजा पर अनुग्रह करते हुए, विलम्ब किये बिना-उचित समय पर-काम्पिल्यपुर नगर में पधारना ।'

८८—तए णं से दूए करयल जाव कट्टु दुवयस्स रण्णो एयमट्टं विणएणं पडिमुण्डे, गड्डित्तता जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता कौटुंबियपुरिसे सहावेइ, सहावित्ता एवं श्यासी—'विप्पामेव भो देवानुप्पिया ! चाउगंधं आसरहं जुत्तामेव उवट्टवेह ।' जाव ते वि तहेव उवट्टवेति ।

तत्पश्चात् दूत ने दोनों हाथ जोड़कर यावत् मस्तक पर अञ्जलि करके द्रुपद राजा का यह मर्म (कथन) विनय के साथ स्वीकार किया । स्वीकार करके अपने घर आकर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया । बुला कर इस प्रकार कहा—'देवानुप्रियो ! दीप्त ही चार घंटाओं वाला अश्वरथ जीत कर उपस्थित करो ।' कौटुम्बिक पुरुषों ने यावत् रथ उपस्थित किया ।

८९—तए णं से दूए ण्हाए जाव असंकारविभूतिसमसरीरे चाउगंधं आसरहं वुव्हइ, वुव्हित्ता व्हहिं पुरिसेहिं सप्रद जाव] वट्ट-वम्मिय-कवएहिं उप्पीतियसरासण-पट्टिएहिं विणट्टगेविज्जेहिं भाविट्ट-विमल-वरच्चिपट्टेहिं गहिमाऽऽउह-गहरणंहिं सट्ठि संपरिवुडे कपिल्लपुरं नगरं मज्झंमज्झेणं निगगच्छइ, निगगच्छित्ता पंचालजणवयस्स मज्झंमज्झेण जेणेव वेसण्णते तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सुरट्टाजणवयस्स मज्झंमज्झेण जेणेव वारवई नगरी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता वारवई नगरि मज्झंमज्झेणं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता जेणेव कण्हस्स वासुदेवस्स बाहिरिया उयट्टाणसात्ता तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चाउगंधं आसरहं ठवेइ, ठवित्ता रहाओ पञ्चोव्हइ, पञ्चोव्हित्ता मणुस्सवगुरापरिविल्लत्ते पापविहारचारेणं जेणेव कण्हे वासुदेवे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता कण्हं वासुदेवं समुद्विजयपामुक्खे य दस दसारं जाव बलवगसाहस्सीओ करयल तं जेव जाव' समोत्तरह ।

तत्पश्चात् स्नान किये हुए और असंकारों से विभूषित शरीर वाले उस दूत ने चार घंटाओं वाले अश्वरथ पर आरोहण किया । आरोहण करके [अंगरत्ता के लिए कवच धारण करके, धनुष लेकर प्रयवा भुजाओं पर चर्म की पट्टी बांधकर, शीवारक्षक धारण करके मस्तक पर गाथा बंधा विष्णुपट्ट धारण करके] तैयार हुए अस्त्र-शस्त्रधारी बहुव-से पुरुषों के साथ काम्पिल्यपुर नगर के

मध्य भाग में होकर निकला । वहाँ से निकल कर पचान देन के मध्य भाग में होकर देन को पं-  
 च पाया । फिर मुराष्ट्र जनपद के बीच में होकर त्रिधर द्वारराजी नगरी थी, उधर पया । फिर  
 शाक्यजी नगरी के मध्य में प्रवेश किया । प्रवेश करके जहाँ कृष्ण वामुदेव की बाइरो मना थी,  
 पाया । चार पडासों वाले घमवरय को रोका । रथ से नीचे उतरा । फिर मनुष्या के मनु ने  
 शहर देन चला दूषा कृष्ण वामुदेव के पास पहुँचा । वहाँ पहुँच कर कृष्ण वामुदेव को, मनु  
 धर्म दम दमाश की यावन् मनुष्येण धादि दण्डन हजार वनरान् वर्म को रोनी हाथ जोड़ कर  
 राश के कदनानुसार अभिनन्दन करके यावन् स्वगड में पधारने का निमन्त्रण दिया ।

६० मनुष्य ने कहे वामुदेव तस्य पूजस्त अंतिए एवमष्टुं सोक्या नितम्भ हनु आश्रि-  
 त हुन मरुकारेण, मरुमायेण, मरुकारिता सम्मानिता पडिविसम्भेण ।

मरुकारण हुना वामुदेव उस दू से मनु पुताल्ल गुनकर और ममभ कर प्रणम हुए,  
 व श्रमण कह मरुकार हुना । जहाँ से उस दू का मरुकार किया, सम्मान किया । मरुकार मरुकार  
 व मरुकार मरुकार किया ।

मरुकार व मरुकार मरुकार मरुकार

६१ मनुष्य ने कहे वामुदेव को वामुदेव तस्य पूजस्त अंतिए एवमष्टुं सोक्या नितम्भ हनु आश्रि-  
 त हुन मरुकारेण, मरुमायेण, मरुकारिता सम्मानिता पडिविसम्भेण ।

मनुष्य ने कहे वामुदेव तस्य पूजस्त अंतिए एवमष्टुं सोक्या नितम्भ हनु आश्रि-  
 त हुन मरुकारेण, मरुमायेण, मरुकारिता सम्मानिता पडिविसम्भेण ।

मनुष्य ने कहे वामुदेव तस्य पूजस्त अंतिए एवमष्टुं सोक्या नितम्भ हनु आश्रि-  
 त हुन मरुकारेण, मरुमायेण, मरुकारिता सम्मानिता पडिविसम्भेण ।

मनुष्य ने कहे वामुदेव तस्य पूजस्त अंतिए एवमष्टुं सोक्या नितम्भ हनु आश्रि-  
 त हुन मरुकारेण, मरुमायेण, मरुकारिता सम्मानिता पडिविसम्भेण ।

मनुष्य ने कहे वामुदेव तस्य पूजस्त अंतिए एवमष्टुं सोक्या नितम्भ हनु आश्रि-  
 त हुन मरुकारेण, मरुमायेण, मरुकारिता सम्मानिता पडिविसम्भेण ।

विका पर स्तंभमाखी-म्याने पर सवार होकर घोर कोई-कोई पंदल चल कर जहाँ कृष्ण वामुदेव वहाँ पहुँचे । पहुँचकर दोनों हाथ जोड़ कर सवने कृष्ण वामुदेव का त्रय-विजय के शब्दों से भिनन्दन किया ।

६३—तए नं से कहे वामुदेवे कोहुं बियपुरिसे सहाबेइ, सहाविता एवं वयासी—'खिप्पाभेव : देवाणुप्पिया ! आभितेवक हरियरयनं पंडिकप्पेह, हयगय जाव [रह-पवरजोहकतिनं चउरगिणि ] सज्जाणेह सज्जाहेत्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिण्ह । ते वि तहेव ] पच्चप्पिणंति ।

तत्पश्चात् कृष्ण वामुदेव ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया । बुलाकर इस प्रकार कहा—'हे अनुप्रियो ! शीघ्र हो पट्टाभिषेक किये हुए हस्तोरत्न (मर्वातम हाथी) को तैयार करो तथा घोड़ों, पियों [रथों] और उत्तम वदानियों की चतुरगिणी मेना सज्जित करके मेरी आज्ञा वापिस लौपी ।] आज्ञा सुन कर कौटुम्बिक पुरुषों ने तदनुसार कार्य करके आज्ञा वापिस लौपी ।

६४—तए नं से कहे वामुदेवे जेणं मज्जनघरे तेणं उवागच्छइ, उवागच्छिता समुत्तज्जाता-गगिरावे जाव (विचित्तमणि-रयणकुट्टिमते रमणिउत्ते ग्हाणमइवासि गाणामणि-रयणमत्तिचित्तसि णपीडंसि सुहणित्तणे सुहोदएहि गंधोदएहि पुण्कोदएहि सुओदएहि पुणो पुणो कत्ताणग-वयरमज्जन-होए मज्जए) भजणगिरिकूडसनिभं गययइ नरवइ रुकइ ।

तए नं से कहे वामुदेवे समुहविजयपामुसोह इसहि दसारेह जाव' प्रणंगसेणापामुसोह्ति मेगाहि गणिपासाहसोह्ति सद्धि संपरिवुडे सध्वीए जाव रवेणं वारवइं नयदि मज्जमज्जंणं गच्छइ, निगगच्छिता सुरहुाजणययस मज्जमज्जंणं जेणं देसपत्ते तेणं उवागच्छइ, उवागच्छिता तलजणययस मज्जमज्जंणं जेणं कंप्पित्तपुरे नयरे तेणं पहररेय गमणाए ।

तत्पश्चात् कृष्ण वामुदेव मज्जनगृह (स्नानागार) में गये । मोतियों के गुच्छों से मनोहर या चित्र-विचित्र मणियों और रत्नों के कर्जवाने मनोरम स्नानगृह में, अनेक प्रकार की मणियों र रत्नों की रचना के कारण प्रदुभुत स्नानपीठ (स्नान करने के पीठ) पर सुसज्जित प्राचीन हुए । तत्पश्चात् शुभ समयवा मुगजनक जल से, सुगन्धित जल से तथा पुष्प-सौरभयुक्त जल से बार-बार हम मार्गिक विधि में स्नान किया स्नान करके विभूषित होकर यावत् भजनगिरि के सिंघर के गन (स्नान घोर ऊँचे) मज्जपति पर वे नरपति आरुढ़ हुए ।

तत्पश्चात् कृष्ण वामुदेव समुद्रविजय प्रादि दम दहारी के साथ यावत् प्रणंगसेना प्रादि कई तरह गणिकाओं के साथ परिवृत होकर, पूरे ठाठ के साथ यावत् वाजों की ध्वनि के साथ द्वारवती रो के मध्य में होकर निकले । निकल कर मुराष्ट्र जनपद के मध्य में होकर देश की सीमा पर चे । वहाँ पहुँच कर पचास जनपद के मध्य में होकर जिस घोर कापित्यपुर नगर था, उसी घोर ने के लिए उद्यत हुए ।

नानापुर को दूतप्रेषण

६५—तए नं से कुवए राया बोच्चं वुपं सहाबेइ, सहाविता एवं वयासी—'गच्छ नं तुमं

देवानुत्पिया ! हस्तिनापुरं नगरं, तस्य न तुमं पञ्चुरायं सपुत्रस्य—तुहितुलं भीमसेनं प्रभुजं न सहदेवं, बुज्जोहणं भाइसयसमग्नं गगेयं विदुरं बोणं जयहृहं सार्णि कीयं आसत्थामं करयत् जाव तहेव समोसरह ।'

तत्पश्चात् (प्रथम दूत को द्वारिका भेजने के तुरन्त बाद में) द्रुपद राजा ने दूसरे दूत बुलाया । बुलाकर उससे कहा—'देवानुप्रिय ! तुम हस्तिनापुर नगर जाओ । वहाँ तुम पुत्रों से पाण्डु राजा को— उनके पुत्र युधिष्ठिर, भीम, भर्तृहरि, नकुल और सहदेव को, सो भाइयों से दुर्योधन को, गागेय, विदुर, श्रेष्ठ जयद्रथ, शकुनि वनीय (हर्ष) और मद्रव्यामा को दोनों जोड़ कर यावत् मस्तक पर अजलि करके उसी प्रकार (पहले के समान) कहना, यावत्—मम स्वयंवर में पधारिए ।

६६—तए नं से बूए एवं ययासी जहा यामुदेये, नयरं भेरी नरिय, जाव जेणेव कंषित नयरे तेणेव पहारेत्थ गमणाए ।

तत्पश्चात् दूत ने हस्तिनापुर जाकर उसी प्रकार कहा जैसा प्रथम दूत ने श्रीकृष्ण को कहा था । तब जैसा कृष्ण वासुदेव ने किया, वैसा ही पाण्डु राजा ने किया । विदोपता यह हस्तिनापुर में भेरी नहीं थी । (अतएव दूसरे उपाय से सब की सूचना देकर और साथ लेकर राजा भी) कापिल्यपुर नगर की ओर गमन करने को उद्यत हुए ।

अन्य दूतों का अन्यत्र प्रेषण

६७—एएणेव कमेणं तच्चं बूयं चंपानवरि, तस्य नं तुमं कण्हं अंगरायं, सेल्लं, नरिय करयत् तहेव जाव समोसरह ।

इसी क्रम से तीसरे दूत को चम्पा नगरी भेजा और उससे कहा—'तुम वहाँ जाकर अंग कृष्ण को, सेल्लक राजा को और नदिराज को दोनों हाथ जोड़ कर यावत् कहना कि स्व में पधारिए ।'

६८—चउत्थं बूयं सुत्तिमहं नयरि, तस्य नं सिमुपालं दमपोसमुयं पंचभाइसयसं करयत् तहेव जाव समोसरह ।

चौथा दूत सुक्तिमती नगरी भेजा और उसे आदेश दिया—'तुम दमघोष के पुत्र और सो भाइयों से परिबृत्त सिमुपाल राजा को हाथ जोड़ कर उसी प्रकार कहना, यावत् स्व में पधारिए ।'

६९—पंचमगं बूयं हस्तिनीसनगरं, तस्य नं तुमं दमवत्तं नाम रायं करयत् तहेव समोसरह ।

पाँचवाँ दूत हस्तीनीपुर नगर भेजा और कहा—'तुम दमदत्त राजा को हाथ जोड़ कर प्रचार कहना यावत् स्वयंवर में पधारिए ।'

१००—छट्टं द्रुपं महुरे नगरि, तस्य नं तुमं धरं रायं करयत् तहेव जाव समोसरह ।

छटा द्रुत मथुरा नगरी भेजा । उससे कहा—‘तुम धर नामक राजा को हाथ जोड़ कर यावत् कहना—स्वयंवर में पधारिए ।’

१०१—सत्तमं द्रुपं रायगिहं नगरं, तस्य नं तुमं सहदेवं जरासिन्धुयं करयत् तहेव जाव समोसरह ।

सातवां द्रुत राजगृह नगर भेजा । उससे कहा—‘तुम जरासिन्धु के पुत्र सहदेव राजा को हाथ जोड़ कर उसी प्रकार कहना—‘यावत् स्वयंवर में पधारिए ।’

१०२—अष्टमं द्रुपं कोडिणं नगरं, तस्य तं तुमं रत्वि भेसगमुयं करयत् तहेव जाव समोसरह ।

आठवां द्रुत कीण्डिन्य नगर भेजा । उससे कहा—‘तुम भीष्मक के पुत्र रक्सी राजा को हाथ जोड़ कर उसी प्रकार कहना, यावत् स्वयंवर में पधारो ।’

१०३—नवमं द्रुपं विराडनगरं तस्य नं तुमं कीयनं भाउसयत्तमगं करयत् तहेव जाव समोसरह ।

नौवा द्रुत विराट नगर भेजा । उससे कहा—‘तुम सौ भाइयो सहित कीचक राजा को हाथ जोड़ कर उसी प्रकार कहना, यावत् स्वयंवर में पधारो ।’

१०४—दशमं द्रुपं अबसेसेषु य मामागरनगरेषु अनेवाइं रायसहस्साइं जाव समोसरह ।

दसवां द्रुत दोष ग्राम, आकर श्रीर नगर आदि में भेजा । उससे कहा—‘तुम वहाँ के अनेक सहस्र राजाओं को उसी प्रकार कहना, यावत् स्वयंवर में पधारो ।’

१०५—तए नं से दए तहेव निग्गच्छइ, जेणेव मामागर जाव समोसरह ।

तत्पश्चात् वह द्रुत उसी प्रकार निकला श्रीर जहाँ ग्राम, आकर नगर आदि थे वहाँ जाकर सब राजाओं को उसी प्रकार कहा—‘यावत् स्वयंवर में पधारो ।’

१०६—तए नं ताइं अनेमा रायसहस्सा तस्स दयस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठुट्ठा तं द्रुपं सबकारेति संभाणंति, सबकारित्ता संभाणित्ता पडिविसाज्जिति ।

तत्पश्चात् अनेक हजार राजाओं ने उस द्रुत से यह प्रश्न—सदेश सुनकर श्रीर समझ कर हृष्ट-तुष्ट होकर उस द्रुत का सत्कार-सन्मान करके उसे विदा किया ।

१०७—तए नं ते वामुदेवपामोक्खा बहुवे रायसहस्सा पत्तेयं पत्तेयं व्हाया सनदबट्ठवम्मिय-कवया हृत्विस्सपवरगमा हयगवरहपवरजोहकलियाए चाउरं गिणीए सेनाए सट्ठि संपरिवुडा महुया भडचडगरहपहगरं विदपरिस्सित्ता सएहि सएहि नगरेहि तो अभिनिग्गच्छंति, अभिनिग्गच्छित्ता जेणेव पंचाले जणवए तेणेव प्हारेह्य गमणाए ।

देवानुत्पिया ! हस्तिनापुर नगरं, तस्य नं तुमं पञ्चुरायं सपुत्र्यं—जुहिद्वितं भीमसेनं प्रज्जुणं नमं सहदेवं, वृज्जोहणं भाइसयसममं गंगेयं विदुरं दोणं जयद्रुहं सउणि कीवं आसत्थामं करयत् जाव ॥ तहेव समोसरह ।'

तत्पश्चात् (प्रथम दूत को द्वारिका भेजने के तुरन्त बाद में) द्रुपद राजा ने दूसरे दूत को बुलाया । बुलाकर उससे कहा—'देवानुप्रिय ! तुम हस्तिनापुर नगर जाओ । वही तुम पुत्रोंसहित पाण्डु राजा को—उनके पुत्र युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव को, सो भाइयो सनेत्र दुर्योधन को, गागेय, विदुर, द्रोण जयद्रथ, शकुनि बलीव (कर्ण) और अश्वत्थामा को दोनो हाथ जोड़ कर यावत् मस्तक पर अजलि करके उसी प्रकार (पहले के समान) कहना, यावत्—समय पर स्वयंवर में पधारिए ।

६६—तए नं से वृए एवं वयासी जहा वामुदेये, नयरं भेरी नरिय, जाव जेणेव कपित्तपुरे नयरे तेणेव पहारेत्थ गमणाए ।

तत्पश्चात् दूत ने हस्तिनापुर जाकर उसी प्रकार कहा जैसा प्रथम दूत ने श्रीकृष्ण को कहा था । तब जैसा कृष्ण वामुदेव ने किया, वैसा ही पाण्डु राजा ने किया । विशेषता यह है कि हस्तिनापुर में भेरी नहीं थी । (अतएव दूसरे उपाय से सब को सूचना देकर और साथ लेकर पाण्डु राजा भी) कापित्तपुर नगर की ओर गमन करने को उद्यत हुए ।

अग्य दूतों का अग्यत्र प्रेषण

६७—एएणेव कमेणं तच्चं वृयं चंरानवरि, तस्य नं तुमं कण्हं अंगरायं, सेल्लं, नदिराजं, करयत् तहेव जाव समोसरह ।

इसी क्रम से तीसरे दूत को चम्पा नगरी भेजा और उससे कहा—'तुम वहाँ जाकर अंगराज कृष्ण को, सेल्लक राजा को और नदिराज को दोनों हाथ जोड़ कर यावत् कहना कि समय में पधारिए ।'

६८—अउत्थं वृयं सुत्तिमइं नयरि, तस्य नं सिमुपालं दमघोसमुयं पंचभाइसयसपरिहुं करयत् तहेव जाव समोसरह ।

चौथा दूत मुक्तिमती नगरी भेजा और उसे आदेश दिया—'तुम दमघोष के पुत्र और पाँच भाइयों से परिवृत्त सिमुपाल राजा को हाथ जोड़ कर उसी प्रकार कहना, यावत् समय में पधारिए ।'

६९—पचमणं वृयं हस्तिनोत्तनगरं, तस्य नं तुमं दमदंतं नाम रायं करयत् तहेव जाव समोसरह ।

प.चम दूत हस्तिनोत्तनगर भेजा और कहा—'तुम दमदंत राजा को हाथ जोड़ कर उसी प्रकार कहना यावत् स्वयंवर में पधारिए ।'

त मथुरा नगरी भेजा । उससे कहा—‘तुम धर नामक राजा को हाथ जोड़ कर यावत्  
में पधारिए ।’

—सत्तमं द्रुपं रायगिहं नगरं, तस्य नं तुमं सहदेवं जरासिन्धुमुयं करयत् तद्देव जाव

दूत राजगृह नगर भेजा । उससे कहा—‘तुम जरासिन्धु के पुत्र सहदेव राजा को हाथ  
प्रकार कहना— यावत् स्वयंवर में पधारिए ।’

—मद्रुमं द्रुपं कोविणं नगरं, तस्य तं तुमं दपि भैसपमुयं करयत् तद्देव जाव

दूत कोविण नगर भेजा । उससे कहा—‘तुम भीष्मक के पुत्र रुक्मी राजा को हाथ  
प्रकार कहना, यावत् स्वयंवर में पधारो ।’

—नवमं द्रुपं विराटनगरं तस्य नं तुमं कौयगं भाउसयसमगं करयत् तद्देव जाव

दूत विराट नगर भेजा । उससे कहा—‘तुम श्री भाइयों सहित कौषिक राजा को हाथ  
प्रकार कहना, यावत् स्वयंवर में पधारो ।’

—इसमं द्रुपं धवसेसेमु य मामागरनगरेसु अनेगाई रायसहस्ताई जाव समोसरह ।

दूत दोष ग्राम, धाकर घोर नगर प्रादि में भेजा । उससे कहा—‘तुम वही के अनेक  
को उसी प्रकार कहना, यावत् स्वयंवर में पधारो ।’

—तए नं से दए तद्देव निगच्छह, जेणेव मामागर जाव समोसरह ।

जावत वह दूत उसी प्रकार निकला घोर जहाँ ग्राम, धाकर नगर प्रादि में वही जाकर  
को उसी प्रकार कहा—यावत् स्वयंवर में पधारो ।’

—तए नं ताई अनेगा रायसहस्ता तस्य द्रुपस अंतिए एयमद्रुं सोच्चा निसम्प हटुट्टा तं  
प्र संमानेति, सबकारिता संमानिता पठिबिसन्विति ।

जावत अनेक हजार राजाओं ने उस दूत से यह धर्म-सदेश सुनकर घोर समझ कर हृष्ट-  
दूत को सत्कार-सम्मान करके उसे विदा किया ।

—तए नं ते यासुदेवपामोक्षता बहुवे रायसहस्ता पत्तोयं पत्तेयं वहाया संनट्टवद्धवस्मिन्-  
सव्यवरगया ह्यगयरहपवरजोहकलिपाए चाउरं गिणीए सेनाए सद्धि संपरिवृश महुया  
हगरविदपरिषिप्ता सएहि सएहि नगरेहि तो अभिनिम्नच्छति, अभिनिम्नच्छिता जेणेव  
सेणेव पहारेइय ममणाए ।

तत्पश्चात् ग्रामप्रित किए हुए वामुदेव आदि बहुसंख्यक हजारों राजाओं में से प्रत्येक-जनों में स्नान किया। वे कवच धारण करके तैयार हुए और सजाए हुए श्रेष्ठ हाथी के स्कंध पर आस हुए। फिर घोड़ों, हाथियों रथों और बड़े-बड़े भटों के समूह के समूह रूप नतुरगिणी सेना के साथ अपने-अपने नगरों से निकले। निकल कर पंचाल जनपद की ओर गमन करने के लिए उद्यत हुए।

स्वयवरमंडप का निर्माण

१०८—तए नं से दुवए राया कौटुम्बिपुरिसे सहायेइ, सहायिता एवं वयासी—‘गच्छहं मुं देवानुष्विया। कंप्तिपुरे नगरे बहिया गंगाए महानवीए अवूरसामंते एगं महं सयंवरमंडपं करे अणेगळंभसयसन्निविट्टं, सोत्तट्टिपसात्तभंजियागं’ जाय पञ्चवर्णति।

उस समय द्रुपद राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुलाकर उनसे कहा—‘देवानुप्रियो! तुम जाओ और कापिल्यपुर नगर के बाहर, गंगा नदी से न अधिक दूर और न अधिक समीप में, एक विशाल स्वयवर-मंडप बनाओ, जो अनेक संकड़ों स्तंभों से बना हो और जिसमें लीला करती हुई पुतलियाँ बनी हों। जो प्रसन्नताजनक, सुन्दर, दर्शनीय एवं प्रतीय रमणीक हों।’ उन कौटुम्बिक पुरुषों ने मंडप तैयार करके आजा वापिस लौटे।

आवास-व्यवस्था

१०९—तए नं से दुवए राया कौटुम्बिपुरिसे सहायेइ, सहायिता एवं वयासी—‘सिप्पावे भो देवानुष्विया! वासुदेववामोवलाणं बहूणं रायसहस्साणं आवासे करेह।’ ते वि करिता पञ्चवर्णति।

तत्पश्चात् द्रुपद राजा ने फिर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुलाकर उनसे कहा—‘देवानुप्रियो! दीप्त ही वामुदेव वगैरह बहुसंख्यक सहस्रों राजाओं के लिए आवास तैयार करो।’ उन्होंने आवास तैयार करके आजा वापिस लौटाई।

११०—तए नं दुवए राया वासुदेववामोवलाणं बहूणं रायसहस्साणं आगमनं जाणेत्ता पत्तेयं पत्तेयं हत्थिलं धयरगए जाय परिउडे धर्मं च पउजं च गहाय सच्चिद्विओ कंप्तिपुराओ निगग्घा निगग्घित्ता जेण्व ते वासुदेववामोवला बह्वे रायसहस्सा तेण्व उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तां वासुदेववामोवलां अणेण य पउजेण य सक्कारेइ, सम्मानेइ, सक्कारित्ता सम्मानित्ता तेसि वासुदेववामोवलाणं पत्तेयं पत्तेयं आवासे वियरइ।

तत्पश्चात् द्रुपद राजा वामुदेव प्रभृति बहुत से राजाओं का आगमन जान कर, प्रत्येक राजा का स्वागत करने के लिए, हाथी के स्कंध पर आरुढ़ होकर यावत् सुभटों के परिवार से परिवृत होकर प्रध्यं (पूजा की सामग्री) और पाय (पंर धोने के लिए पानी) लेकर, सम्पूर्ण श्रद्धा के साथ, कापिल्यपुर से बाहर निकला। निकल कर जिधर वामुदेव आदि बहुसंख्यक हजारों राजा थे, उधर गया। वहाँ जाकर उन वामुदेव प्रभृति का प्रध्यं और पाय से सत्कार-सन्मान किया। सत्कार-सन्मान करके उन वामुदेव आदि को अलग-अलग आवास प्रदान किए।



१११—तए नं ते वासुदेवपामोक्षता जेणेव सया सया आयासा तेणेव उवागच्छति, उवागच्छता हरियत्तप्रेहितो पञ्चोदहंति, पञ्चोदहति। पत्तयं पत्तयं संयावारनियेत्तं करेति, करिता सए सए प्रायासे अणुपविसंति, अणुपविसिता सएसु सएसु प्रायासेसु आसण्हेसु य समण्हेसु य सप्रसन्ना य संतुपट्ठा य बहूहि गंधर्वेहि य नाइएहि य उयमिज्जमाणा य उवणच्चिज्जमाणा य विहरंति ।

तत्पश्चात् वे वामुदेव प्रभृति नृपति धपने-धपने प्रायासो मे पट्टुचे । पट्टुचकर हाथियो के स्कन्ध से नीचे उतरे । उतर कर सब ने धपने-धपने पडाव डाले और धपने-धपने प्रायासो मे प्रविष्ट हुए । प्रायासो मे प्रवेश करके धपने-धपने प्रायासो मे आसनों पर बैठे और शय्याओं पर सोये । बहुत-से गंधर्वों ने गान कराने लगे और नट नाटक करने लगे ।

११२—तए नं ते बुबए राया कंप्पित्तपुरं नगरं अणुपविसिइ, अणुपविसिता, विउत्तं असणं पार्णं साइमं साइम उवक्खटावेह, उवक्खटाविसिता, कोट्टुबिण्णपुरिसे सहावेइ, सहाविसिता एयं वयासी—‘गच्छहं नं मुग्घे देवानुत्पिया ! विउत्तं असणं पार्णं साइमं साइमं मुरं च मज्जं च मस च सोर्णं च पत्तणं च मुबहुप्पुक्क-वत्थ-मंघ-मत्तात्तंकारं च वामुदेव-पामोक्षार्णं रायसहस्साणं प्रायासेसु साहरहं ।’ ते वि साहरंति ।

तत्पश्चात् धर्मात् सब प्रागन्तुक प्रतिधि राजाओं को मयास्वान ठहरा कर द्रुपद राजा ने काम्पित्पपुर नगर मे प्रवेश किया । प्रवेश करके विपुल भक्षण, पान, आदिम और स्वादिम भोजन तैयार करवाया । फिर कोट्टुम्बिक पुष्पों को बुलाकर कहा—‘देवानुत्पियो ! तुम जाओ और यह विपुल भक्षण, पान, आदिम, स्वादिम, मुरा, मज्ज, मांस, सीधु और प्रसन्ना तथा प्रचुर दुग्ध, वस्त्र, गध, मालाएँ एवं भक्षणकार वामुदेव आदि हजारो राजाओं के प्रायासो मे ले जाओ ।’ यह सुन कर वे, ये सब वस्तुएँ ले गये ।

११३—तए नं वासुदेवपामोक्षता तं विपुलं असणं पार्णं साइमं साइमं जाव पत्तन्नं च प्राप्ताएमाणा आप्ताएमाणा विहरंति, निमिमभूतुत्तरागया वि य नं तमाणा प्रायंता जाव सुहासणवरगया बहूहि गंधर्वेहि जाव विहरंति ।

तब वासुदेव आदि राजा उस विपुल भक्षण, पान, आदिम, स्वादिम यावत् प्रसन्ना का पुनः पुनः प्राप्तादन करते हुए विचरने लगे । भोजन करने के पश्चात् आवमन करके यावत् सुखद आसनों पर आसीन होकर बहुत-से गंधर्वों से संगीत कराते हुए यावत् विचरने लगे ।

१. मुरा, मज्ज, सीधु और प्रसन्ना, यह मद्यिक की हो पातिषी है । स्वयंवर मे सभी प्रकार के राजा और उनके सैनिक आदि प्राये ये । द्रुपद राजा ने उन सबका उनकी आवश्यक वस्तुओं से सत्कार किया । इससे यह नहीं समझना चाहिए कि कृष्णजी स्वयं मद्यिक आदि का सेवन करते थे । यह वर्णन सामान्य रूप से है । कृष्णजी सभी प्रायत राजाओं मे प्रधान थे, अतएव उनका नामोल्लेख विशेष रूप से हुआ प्रतीत होता है ।

स्वयवर : घोषणा

११४—तए नं से दुवए राया पुढावरणहकालसमयंसि कोडुं बियपुरिसे सदावेइ, सदावित्त एवं वयासी—'गच्छह नं तुमे देवानुप्पिया ! कंप्पिल्लपुरे संघाडग जाव पहेसु वासुदेवपामुवजान व रायसहस्रानं घावासेसु हत्थियखंधवरगया महया महया सहेणं जाव उगघोसेमाणा उगघोसेमाणा एवदह—'एवं यत्तु देवानुप्पिया ! कत्तं पाउप्पनायाए दुवयस्स रण्णो धूयाए, चत्तणोए देवोए प्रतयए धट्टजुण्णस्त भगिणीए दोवईए रायवरकण्णाए सयंवर भविस्सइ, तं तुमे नं देवानुप्पिया ! इय रायाणं भणुगिण्हेमाणा ण्हाया जाव विनूसिया हत्थियखंधवरगया सकोरंटमत्तवामेणं एतेउ परिज्जमानेणं सेयवरचामराहि चोइज्जमाणा हयगयरहपवरजोहकलियाए चउरंगिणोए सेया सद्धि संपरिवुडा महया भड्चडगरेणं जाव परिक्खित्ता जेणेय सयंवरमंडये तेणेय उवागच्छह उवागच्छित्ता पत्तेयं पत्तेयं नामंकेसु आसणेसु निसोयह, निसोइत्ता दोवई रायवरकण्णं पडिवालेमाणा पडिवालेमाणा चिट्ठह' ति घोसणं घोसेह, मम एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह ।' तए नं कोडुं बिया तहेव जाव पच्चप्पिणंति ।

तत्पश्चात् द्रुपद राजा ने पूर्वपराह्ल काल (सायकाल) के समय कीटुम्बिक पुरो को बुलाया । बुलाकर इस प्रकार कहा—'देवानुप्रियो ! तुम जाओ और कापिल्यपुर नगर के शृगाड घादि मार्गों में तथा वामुदेव घादि हजारों राजाओं के घावाओं में, हाथी के रूध पर मारुड होकर, युद्ध घावाज से यावत् बार-बार उद्घोषणा करते हुए इस प्रकार कहो—, देवानुप्रियो ! कल प्रभात काल में, द्रुपद राजा की पुत्री, चुलनी देवी की आत्मजा और धूष्ट्युन्न की भगिनी श्रोपदी रावरकण्या का स्वयवर होगा । अतएव हे देवानुप्रियो ! प्राय सब द्रुपद राजा पर अनुग्रह करते हुए, स्नान करके यावत् विभूषित होकर, हाथी के रूध पर मारुड होकर, कोरट वृक्ष की पुष्पमाला सहित दा की धारण करके, उत्तम द्यौत चामरों से विज्ञाते हुए, घोड़े, हाथियों, रथों तथा बड़े-बड़े मुषों के समूह से युक्त चतुरगिणी गेजा से परिपूत होकर जहाँ स्वयवर-मंडप है, वहाँ पहुँच । वहाँ पहुँचकर अलग-अलग अपने नामांकित आमनों पर बैठे और राजवरकण्या श्रोपदी की प्रतीक्षा करो । इस प्रकार की घोषणा करो और मेरी आज्ञा वापिस करो ।' तब वे कीटुम्बिक पुरष इस प्रकार घोषणा करके यावत् राजा द्रुपद की आज्ञा वापिस करते हैं ।

११५—तए नं से दुवए राया कोडुं बियपुरिसे सदावेइ, सदावित्त एवं वयासी—'गच्छह नं तुमे देवानुप्पिया ! सयंवरमंडयं आसियसं मज्जियोज्जित्तं सुगंधवरमथियं पच्चवण्णपुण्डुं ओइया कलिय कासागस-पवर-कुंडुरवक्क-नुरवक्क जाव' गंधवट्टिभूयं मंचाडमंचकलियं करेह । इति वासुदेवपामुवजानं बहूण रायसहस्रानं पत्तेयं पत्तेयं नामकियाइ आसणाइ एवय सेयवर पच्चवण्णपुण्डुं एह, एवइत्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह ।' ते वि जाव पच्चप्पिणंति ।

तत्पश्चात् द्रुपद राजा ने कीटुम्बिक पुरो को पुनः बुलाया । बुला कर कहा— देवानुप्रियो ! तुम रावरकण्या से जाओ और उन सब का डिङ्काय करो, उग भाँड़ो, मोचो और बंध मुड़ाव दोगा से मुनदित करो । पाँच बंध के पूजा के समूह से व्याप्त करो । ठाणु घयर, बंध कुंडुरवक्क (चोड़ा) और नुरवक्क (नोवान) घादि की पूजा में गंध की बर्ती (गाँट) देना कर दो ।

नामों से अंकित धनग-धनग घामन इवेत यस्त्र से माच्छादित करके तैयार करो । यह सरो घाशा वागिन लीटाधो ।' वे कौटुम्बिक पुरुष भी सब कार्य करके यावत् भ्रात्रा ।

१६—तए नं वामुदेवपामोवला बहुवे रायसहस्सा कस्स पाउप्पनायाए ण्हाया जाव विमूसिया रगमा सरोरंठ सेयवरघामराहि हयपय जाव<sup>१</sup> परिवुडा सच्चिद्रीए जाव रवेणं जेणेव सयवरे गच्छंति, उवागच्छिता अणुपविसंति, अणुपविसिता पत्तेयं पत्तेयं नामंविण्णु घासणेमु बोयईं रायवरकणं पडिवातेमाणा चिट्ठ ति ।

स्वस्वात् वामुदेव प्रभूति घनेक हजार राजा कण (दूसरे दिन) प्रभात होने पर स्नान करके पित हुए । थोड़ा हाथी के स्कंध पर धारण हुए । उन्होंने कोरट वृक्ष के पत्तों की माना को धारण किया । उन पर चामर डोरे जाने लगे । भस्व, हाथी, भटों आदि से परिवृत नं आदि के साथ यावत् वाद्यध्वनि के साथ जियर स्वयंवरमंडप था, उधर पडुवे । मंडप हुए । प्रविष्ट होकर पृथक्-पृथक् अपने-अपने नामों से अंकित घासनों पर बैठ गये पीर या द्रोपदी की प्रतीक्षा करने लगे ।

१७—तए नं से दुवए राया कस्स ण्हाए जाव विमूसिए हस्सियंयवरगए सकोरंठमस्तशमेणं गरिज्जमाणेणं सेयघामराहि बीइज्जमाणे हय-गय-रह-पवरओहकसियाए वाउरंमिणीए आदि संपरिवुडे महुया भइवइकर-रहपरिकरविदपरिविलसे कपिस्तपुरं मयभंमज्जेणं जिणगच्छिता जेणेव सयंवरमंडवे, जेणेव वामुदेवपामोवला बहुवे रायसहस्सा, तेणेव , उवागच्छिता तेसि वामुदेवपामुवलां करमल जाव चडावेत्ता कणस्स वामुदेवस्स रं गहाय उवयोयमाणं चिट्ठइ ।

स्वस्वात् द्रुपद राजा प्रभात में स्नान करके यावत् विभूषित होकर, हाथी के स्कंध पर, कोरट वृक्ष के पत्तों की माना वाले ध्वज को धारण करके, भस्वों, गजों, रथों और घोड़ों वाली चतुरंगिणी सेना के साथ, तथा अन्य भटों एवं रथों से परिवृत होकर कपिलपुर बाहर निकला । निकल कर जहाँ स्वयंवरमंडप था और जहाँ वामुदेव आदि बहुत-से जा थे, वहाँ प्रामा । आकर उन वामुदेव वगैरह का हाथ जोड़कर अभिनन्दन किया और देव पर थोड़ा इवेत चामर डोरने लगा ।

१८—तए नं ता बोयईं रायवरकणं कस्स पाउप्पनायाए जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ, ता मज्जणघरं अणुपविसइ, अणुपविसिता ण्हाया जाव सट्ठपावेसाइं ममत्ताइं वत्थाइं द्या जिणपडिमाणं अबचणं करेइ, करिता जेणेव अतेउरे तेणेव उवागच्छइ ।

उधर वह राजवरकन्या द्रोपदी प्रभात काल होने पर स्नानगृह की ओर गई । वहाँ जाकर

स्नानगृह में प्रविष्ट हुई। प्रविष्ट होकर उसने स्नान किया यावत् शुद्ध और सभा में प्रवेश करने योग्य मांगलिक उत्तम वस्त्र धारण किये। जिन प्रतिमाओं का पूजन किया। पूजन करके अन्तःपुर में चली गई।\*

११६—तए नं तं बोवहं रायवरकन्नं अतेउरियाओ सव्वालंकारविभूतिसिं करंति, कि ते ? घरपायपत्तणेउरा जाव' चेडिया-चवकवाल-मयहरग-विदपरिवित्ता अतेउराओ पडिनिवसमइ, पडिनिवसमिता जेणेव बाहिरिया उवट्टाणसात्ता, जेणेव चाउघंटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता किड्ढावियाए तेहियाए सद्धि चाउघंटे आसरहं डुरुहइ।

तत्पश्चात् अन्तःपुर की स्त्रियों ने राजवरकन्या द्रोपदी को सब अलकारों से विभूषित किया। किस प्रकार ? पैरों में श्रेष्ठ नूपुर पहनाए, (इसी प्रकार सब अंगों में भिन्न-भिन्न आभूषण पहनाए) यावत् वह दासियों के समूह से परिवृत्त होकर अन्तःपुर से बाहर निकली : बाहर निकलकर जहाँ बाह्य उपस्थानशाला (सभा) थी और जहाँ चार घटाओं वाला मन्थरथ था, वहाँ गई। आकर श्री

\* इस पाठ के विषय में वाचनाभेद पाया जाता है। किन्हीं-किन्हीं प्रतियों में उपर्युक्त होने वाला पाठ ऊपर दिया गया है। यह पाठ शीलाकाषायकृत टीका में भी वाचनान्तर के रूप में ग्रहण किया गया है। किन्तु कुछ प्रवाचीन प्रतियों में जो पाठान्तर पाया जाता है, वह इस प्रकार है—

तए नं सा बोवहं राजवरकन्या जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता ग्हाया कयवत्तिकमा कयकोउयमगलपायच्छित्ता शुद्धपावेसाइ मंगलाइ बत्थाइ पवरपरिहिया मज्जणघराओ पडिनिवसमइ, पडिनिवसमिता जेणेव जिणघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता जिणघरं अनुपविसइ, अनुपविसित्ता जिणपडिमां आतोए पणाम करेइ, करित्ता सोमहरथ परामुसइ, एवं जहा सूरियाओ जिणपडिमाओ अक्खइ, अक्खित्ता तहेव भागियमं जाव पुंय' इहइ, इहत्ता यमं जानुं अवेइ, इहत्तिं घरमिससि एिथेतेइ, जिथेसित्ता तिउत्तो पुट्ठमं घरमिससि ममेइ, ममइत्ता इति पडुण्णमइ, करयल जाव कट्ठु एवं यमासो—'नमोऽनु नं अरिहंतानं भगवतां आइ संपत्तानं' ब'इइ, नमंइइ, वडित्ता नमसित्ता जिणघराओ पडिनिवसमइ, पडिनिवसमिता जेणेव अतेउरे तेणेव उवागच्छइ।

अर्थात् तत्पश्चात् द्रोपदी राजवरकन्या स्नानगृह में गई। वहाँ जाकर उसने स्नान किया, बलिर्कन किया, मण्डोत्तमक आदि कौतुक, दूर्वादि माल धीरे धनुष की निवृत्ति के अर्थ प्रायश्चित्त किया। शुद्ध और शीला से बाले मांगलिक वस्त्र धारण किये। फिर वह स्नानगृह से बाहर निरगमी। निरगत कर जिनगृह—जिनमें वे गई थी—और उनके भीतर प्रविष्ट हुई। वहाँ जिनप्रतिमाओं पर दृष्टि पड़ने लगे उन्हें प्रणाम किया। प्रणाम करके मूर्त-विधियों ग्रहण की। फिर मूर्तों के बीच की भाँति जिनप्रतिमाओं की पूजा की। पूजा करके उसी प्रकार (मूर्तों के बीच) यावत् धूप जलाई। धूप जला कर बाँये घुटने को ऊँचा रक्खा और दाहिने घुटने को घुटनीयन पर रख कर मस्तक नमाम। नमाने के बाद मस्तक थोड़ा ऊपर उठाया। फिर दोनों हाथ जोड़ कर यावत् मस्तक पर नमस्कार करके इस प्रकार कहा—'परित्यक्त भयवन्ता को यावत् मित्रपद को प्राप्त होनेवारी को नमस्कार हो।' ऐसा कर कर वन्दन—नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार करके जिनगृह से बाहर निरगमी। बाहर निकल कर जहाँ घाटपुर था, वहाँ गई।

कराने वाली धाय घोर लेखिका (लिखने वाली) दासी के साथ उस चार घटा वाले रथ पर भागूद हुई ।

१२०—तए णं धनुज्जुण्णे कुमारे दोषईए कण्णाए सारथ्यं करेइ । तए णं सा दोवई राघवरकण्णा कंप्पित्तपुरं तयं मज्झमज्झेणं जेणेव मयंवरमंडवे तेजेव उवागच्छइ, उवागच्छिता रहं ठयेइ, ठवित्ता रहाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहिता किड्ढावियाए लेहिमाए म तंति सयंवरमंडव अणुपविसइ, करयत्तपरिणहिणं बसनहं सिरसावत्तं मयए अंजलि कट्टु तेसि वामुदेवपामुक्कानं बहूणं राघवरसहस्रानं पणामं करेइ ।

उस समय पृष्ठधूम कुमार ने द्रौपदी कुमारी का सारथ्य किया, धर्मार्थ सारथी का कार्य किया । तत्पश्चात् राजवरकन्या द्रौपदी कप्पित्तपुर नगर के मध्य में होकर जिधर स्वयंवर-मण्डप था, उधर पहुँची । वहाँ पहुँच कर रथ रोका गया और वह रथ से नीचे उतरी । नीचे उतर कर क्रीडा कराने वाली धाय घोर लेखिका दासी के साथ उसने स्वयंवरमण्डप में प्रवेश किया । प्रवेश करके दोनों हाथ जोड़कर मस्तक पर अंजलि करके वामुदेव प्रभृति बहुसंख्यक हजारों राजाओं को प्रणाम किया ।

१२१—तए णं सा दोवई राघवरकन्या एम महं सिरिदामतंडे, कि ते ? पाटल-मल्लिक-चंपक जाव सत्तच्छपाईहि गण्डनि मुयंतं परममुहकास वरिसणिज्जं गिण्हइ ।

तत्पश्चात् राजवरकन्या द्रौपदी ने एक बड़ा श्रीदामकाण्ड (सुसोभित मालाओं का समूह) प्रहृत किया । वह कैसा था ? पाटल, मल्लिका, चम्पक आदि पाषाण सप्तपर्ण आदि के फूलों से गुंथा हुआ था । मस्तक मण को फँसा रहा था । मस्तक मुखद स्पर्ण वासा था और दर्शनीय था ।

१२२—तए णं सा किड्ढाविया मुहवा जाव [सामाविययस सोहहजणस उरमुपकरं विचित्तमणि-रमणवट्ठएदहं] वामहस्येणं विस्तणं वप्पणं गहेऊण सत्तियं वप्पणसंकेतविबसवसिए म से दाहिणेणं हस्येणं वरिसिए पवररामसीहे । फुड-विसम-विसुद्ध-रिभिय-मंसोर-महुर-भणिघा सा तेसि सध्वेसि पयिवाणं मग्गमापिऊणं वंस-सत्त-सामरथ-गोत्त-विक्कति-कति-बहुविह-भावम-माहुप्प-ख-जोव-णगुण-लावण-कुल-सील-जाणिया कित्ठणं करेइ ।

तत्पश्चात् उस क्रीडा कराने वाली यावत् सुन्दर रूप वाली धाय ने बाएँ हाथ में चित्त-चिताता हुआ दर्पण लिया । [वह दर्पण स्वाभाविक धर्पण से युक्त एवं तरुण जनों में उत्सुकता उत्पन्न करने वाला था । उसकी भ्रू विचित्र मणि-रत्नों से जड़ित थी ।] उस दर्पण में जिस-जिस राजा का प्रतिबिम्ब पड़ता था, उस प्रतिबिम्ब द्वारा दिखाई देने वाले थोड़े सिह के समान राजा को अपने दाहिने हाथ से द्रौपदी की दिखलाती थी । वह धाय स्फुट (प्रकट अर्थ वाले) विशद (निर्मल अक्षरों वाले) विमुद्ध (शब्द एवं अर्थ के दोषों से रहित) रिभित (स्वर की धोलना सहित) मेघ की गजंता के समान गंभीर और मधुर (कानों को सुखदायी) वचन बोलती हुई, उन सब राजाओं के माता-पिता के वंश, सत्व (दृढ़ता एवं धीरता), सामर्थ्य (पारोक्षिक बल), धीन, पराक्रम, कान्ति नाना प्रकार के ज्ञान, माहात्म्य, रूप, धौवन, गुण, लावण्य, कुल और सील की जानने वाली होने के कारण उनका वृत्तान्त करने लगी ।

१२३—पदमं जाय वणिहपुंगवाणं वसवसारवरवीरपुरिसाणं तेतोवकवत्तवगाणं सत्तुम्भ-  
सहस्स-माणावमट्ठगाणं भयसिद्धिय-पवरपुंडरीयाणं चित्तसाणं वस-वीरिय-हव-जोवण-गुण-सत्तुम्भ-  
कित्तिमा कित्तणं करेइ, ततो पुणो उगसेणमाईणं जायवाणं, भणइ य—‘सोहमाहवकत्तिए रं-  
वरपुरिमगंधहस्योणं जो वु ते होइ हियय-वड्यो ।’

उनमें से सर्वप्रथम वृष्णिपों (यादवों) में प्रधान समुद्रविजय प्रादि दस दसारां प्रयत्ना इत्यादि के श्रेष्ठ वीर पुरुषों के, जो तीनों लोकों में बलवान् थे, लाखों क्षत्रियों का मान मर्दन करने वाले थे, भय जीवों में श्रेष्ठ इत्येक कमल के समान प्रधान थे, तेज से देदीप्यमान थे, बल, वीर्य, रुद्र, शौर्य, गुण शौर लावण्य का कीर्त्तन करने वाली उस धाय ने कीर्त्तन किया । शौर फिर उपसेन प्रादि यादवों का वर्णन किया, तदनन्तर कहा—‘ये यादव सौभाग्य शौर रूप से सुशोभित हैं शौर धंध पुरुषों में गणहस्ती के समान हैं । इनमें से कोई तेरे हृदय को बल्लभ-प्रिय हो तो उसे वरण कर ।’

पाण्डवों का वरण

१२४—तए नं ता बोवई रायवरकन्नाया बहूणं रायवरसहस्साणं मज्झमज्झेणं समतिष्ठमानो  
समतिष्ठमानो पुण्यकम्मणिपाणेणं घोइउज्जमानो घोइउज्जमानो जेणेय पंच पंडया तेणेय उवागवड्ढि  
उवागवड्ढिता ते पंच पंडये तेणं वसट्ठयण्णेणं कुमुदामेणं प्रायेडियपरिवेडियं करेइ, करिता ए  
ययातो—‘एए नं मए पंच पंडया वरिया ।’

तावत्तया राजवरकन्या शीघ्री घनेक सहस्र श्रेष्ठ राजाओं के मध्य में होकर, उनका प्रतिवचन करती-करती, पूर्वोक्त निदान में प्रेरित होती-होती, जहाँ पाँच पाण्डव थे, वहाँ गई । वहाँ घाटर उमने, उन पाँचों पाण्डवों की, पंचरंगे कुमुदाम-कुलों की माला-वीरामकाण्ड-ने आगे शरक में धेष्टित कर दिया । धेष्टित करके कहा—‘मैंने इन पाँचों पाण्डवों का वरण किया ।’

१२५—तए नं तेति वामुदेवपामोक्खणं बहूणि रायसहस्साणि महया महया हव  
उपोसेमाणा उपोसेमाणा एवं वयति—‘सुवरियं सत्तु भो ! बोवईए रायवरकन्नाए’ ति वड्ढि  
सपवरमंडवाओ पड्डिजिक्खमति, पड्डिजिक्खमिता जेणेय सया सया प्रायाता तेणेय उवागवड्ढिता ।

उपसेमाणा उन वामुदेव प्रभृति घनेक महत्त्व राजाओं ने उन्नि-उन्नि शब्दा ने आगे-आगे उपोषणा करने शुरू कहा—‘घडा ! राजवरकन्या शीघ्री ने अच्छा वरण किया !’ इस प्रकार वड्ढि कर के सबदर मंडव न बाहर निकले । निकल कर अपने-अपने प्राशाना में चले गये ।

१२६—तए नं पट्टपुण्णे कुमारं पंच पंडये बोवई रायवरकन्नां आउपट्ठ माताहू पुण्णि  
वड्ढिता वरित्तुअ मज्झमज्झेण जाय मय वयसं सत्तुअविमड्ढ ।

उपसेमाणा पट्टपुण्ण कुमार ने पना पाण्डवों का शौर राजवरकन्या शीघ्री का वरण करने का सबदर मंडव न बाहर निकले । निकल कर अपने-अपने प्राशाना में चले गये ।

विवाह-विधि

१२७—तए नं दुवए राया पंच पडवे बोवई रायवरकण्णं पट्टयं दुळ्हेद, दुळ्हित्ता सेयापीएहि कलसेहि मग्जवेद, मग्जाविता धग्निहोमं करावेद, पंचहु पडवानं बोवईए म पाणिगहणं करावेद ।

तत्पश्चात् द्रुपद राजा ने पाँचो पाण्डवो को तथा राजवरकन्या द्रौपदी को पट्ट पर सासीन किया । सासीन करके दैवत और पीत प्रयात् चादो और सोने के कलशो से स्नान कराया । स्नान करवा कर अग्निहोम करवाया । फिर पाँचो पाण्डवो का द्रौपदी के साथ पाणिग्रहण कराया ।

१२८—तए नं से दुवए राया बोवईए रायवरकण्णयाए इमं एयाह्वं पीडवानं दलयद, तजहा—अट्ट हिरण्णकोडोओ जाव<sup>१</sup> अट्ट पेमणकारीओ दासवेओओ, अण्णं च विपुलं पणकणय जाव [रयण-मणि-चोत्तिप-संत-सित-पवाले-रत्तरमण-सन्त-सार-सावएज्जं अत्ताहि जाव सासत्तमाओ कुलवंताओ पक्कामं वाउ, पक्कामं भोत्तुं, पक्काम परिभाएउं] दलयद ।

तए नं से दुवए राया ताह वामुदेवपामोवखाई विपुलेणं असण-पान-जाइम-साइमेणं पुष्पवय-गंध जाव [मत्सालकारेणं सक्कारेद सम्माणेद, सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता ] पट्टिसज्जइ ।

तत्पश्चात् द्रुपद राजा ने राजवरकन्या द्रौपदी को इस प्रकार का प्रीतिदान (दहेज) दिया—म्राठ करोड़ हिरण्य भादि यावत् म्राठ प्रपणकारिणी (इधर-उधर जाने-माने का काम करने वाली) दास-चेटिया । इनके प्रतिरिक्त धम्म भी बहुत-सा धन-कनक यावत् [रजत, मणि, मोती, शंख, सिला प्रवाल, लाल, उत्तम सारभूत द्रव्य जो सात पींडो तक प्रचुर मात्रा में देने, भोगने और विभाजित करने के लिए पर्याप्त था] प्रदान किया ।

तत्पश्चात् द्रुपद राजा ने उन वामुदेव प्रभृति राजाओं को विपुल भक्षण, पान, खादिम तथा स्वादिम तथा पुष्प, वस्त्र गंध, माता और मालकार आदि से सज्ज करके विदा किया ।

पाण्डुराजा द्वारा निमंत्रण

१२९—तए नं से पंडू राया तिसि वासुदेवपामोवखानं वहुण. रायसहस्रानं करयल जाव एवं वयासी—एवं सल्लु देवानुप्पिया ! हस्तिनाउरे नगरे पंचहु पंडवानं बोवईए म डेवीए कल्तामकरे भविस्सइ, त तुभे नं देवानुप्पिया ! ममं अणुगिण्हमाणा अकालपरिहोणं समोत्तरइ ।

तत्पश्चात् पाण्डु राजा ने उन वामुदेव प्रभृति अनेक सहस्र राजाओं से हाथ जोड़कर यावत् इस प्रकार कहा—देवानुप्रियो ! हस्तिनापुर नगर में पाँच पाण्डवो और द्रौपदी देवी का कल्पाणकरण महोत्सव (मागलिक यिमा) होगा । अतएव देवानुप्रियो ! तुम सब मुझ पर अनुग्रह करके यथासमय विलंब किये बिना पधारना ।

१३०—तए नं वामुदेवपामोवखा पत्तेयं पत्तेयं जाव जेणेव हस्तिनाउरे नगरे तेणेव पतारेथ्य गमणाए ।

तत्पश्चात् वे वामुदेव आदि नृपतिगण अलग-अलग यावत् हस्तिनापुर की ओर गमन करने के लिए उद्यत हुए ।

१३१—तए नं पंडुराया कोडुं वियपुरिसे सद्वावेइ, सद्वावित्ता एवं वयासी—'गच्छह नं तुमे देवानुप्पिया ! हस्तिनापुरे पंचहं पंडवानं पंच पासायवडिसेए कारेह, अन्भुगयमूसिय वण्णो ब्राह्म' पडिखे ।

तत्पश्चात् पाण्डु राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाकर इस प्रकार आदेश दिया—'देवानुप्रियो ! तुम जाओ और हस्तिनापुर में पाँच पाण्डवों के लिए पाँच उत्तम प्रासाद बनवाओ, वे प्रासाद खूब ऊँचे हों और सात भूमि (मंजिल) के हों इत्यादि वर्णन यहाँ पूर्ववत् कहना चाहिए यावत् वे अत्यन्त मनोहर हों ।

१३२—तए नं ते कोडुं वियपुरिसे पडिमुणेंति जाव कारायेति । तए नं ते पंडुए पंचहं पंचहं बोवईए देवोए सडि हयगयसंपरिवुडे कंप्पित्तपुराओ पडिणिक्खमड्ड, पडिणिक्खमिस्स जेणेव हरियणाउरे तेणेव उवागए ।

तब कौटुम्बिक पुरुषों ने यह आदेश अंगीकार किया, यावत् उसी प्रकार के प्रासाद बनाने । तब पाण्डु राजा पाँचों पाण्डवों और द्रौपदी देवी के साथ अश्वसेना, गजसेना आदि से परिबृत् होकर कापिल्यपुर नगर से निकल कर जहाँ हस्तिनापुर था, वहाँ आ पहुँचा ।

१३३—तए नं पंडुराया तेसि वामुदेवपामोक्खानं आगमणं जाणित्ता कोडुं वियपुरिसे सद्वावेइ, सद्वावित्ता एवं वयासी—'गच्छह नं तुमे देवानुप्पिया ! हस्तिनापुरस्स नगरस्स बहिया वामुदेवपामोक्खानं बहूणं रायसहस्साणं आवासे कारेह अणेगल्लभसयसण्णिविद्ध' तह्वे जाव पच्चप्पिणति ।

तत्पश्चात् पाण्डु राजा ने उन वामुदेव आदि राजाओं का आगमन जान कर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और उनसे कहा—'देवानुप्रियो ! तुम जाओ और हस्तिनापुर नगर के बाहर वामुदेव आदि बहुत हजार राजाओं के लिए आवास तैयार कराओ जो प्रत्येक सेकड़ों स्तंभों आदि से युक्त हों इत्यादि पूर्ववत् कह लेना चाहिए । कौटुम्बिक पुरुष उसी प्रकार आमा का पालन करके माता आमा वापिस करते हैं ।

१३४—तए नं ते वामुदेवपामोक्खानं बह्वे रायसहस्सा जेणेव हस्तिनाउरे नगरे तेव उवागएदति ।

तए नं ते पंडुराया तेसि वामुदेवपामोक्खानं आगमणं जाणित्ता हट्ठुद्धे ण्हाए कयवत्तिअने जहा रुपए जाव जहारिहं आवासे बलयइ ।

तए नं ते वामुदेवपामोक्खानं बह्वे रायसहस्सा जेणेव सयाइं सयाइं आवासाइं तेणेव उवागएदति, उवागएदति तह्वे जाव विहरति ।

तत्पश्चात् वे वामुदेव वगैरह हजारों राजा हस्तिनापुर नगर में आये ।



तब पाण्डु राजा उन वामुदेव आदि राजाओं का भाग्यजन जान कर हवित घोर सनुष्ट हुआ । उसने स्नान किया बलिर्कर्म किया घोर दुःख राजा के समान उनके सामने जाकर साकार किया, मारत उन्हें मयायोग्य भाषाम प्रदान किए ।

तब ये वामुदेव आदि हजारों राजा जहाँ अपने-अपने आवास थे, वहाँ गये घोर उगी प्रकार (पहले वहे मनुसार खनीज-नाटक आदि से मनोविनोद करते हुए) यावत् विवरने लगे ।

१३५—तए न ते पंडुराया हृदिषणाउरं नयरं मनुषवित्तइ, मनुषवित्तिसा कोट्टं विमपुरित्ते सहादेइ, सहावित्ता एवं ययासो—'तुम्हे न देवानुप्पिया ! विउत्तं प्रसन्नं पाण आइमं साइम' तहेय जाय उदयेति ।

तए नं वामुदेववामोवत्ता अहवे राया ज्हाया कमबलिकम्मा त विपुत्तं प्रसन्न पाणं साइमं तहेय जाय विहरति ।

तत्पश्चान् पाण्डु राजा ने हस्तिनापुर नगर में प्रवेश किया । प्रवेश करके कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया घोर कहा—'हे देवानुप्पियों ! तुम विपुत्त प्रसन्न, पान, खादिम घोर स्वादिम तैयार कराओ ।' उन कौटुम्बिक पुरुषों ने उगी प्रकार किया यावत् ये भोजन तैयार करवा कर ले गये । तब उन वामुदेव आदि बहुत-से राजाओं ने स्नान एवं बलिर्कर्म करके उत विपुत्त प्रसन्न, पान, खादिम घोर स्वादिम का आहार किया घोर उगी प्रकार (पहले कहे मनुसार) विवरने लगे ।

हस्तिनापुर में अत्याचारण

१३६—तए न ते पंडुराया पंच पंडवे बोयई च देवि पट्टं दुक्खेइ, दुक्खित्ता सेयापीएहि कल्लोहि ज्हावेति, ज्हावित्ता कल्लाणकरं करेइ, करित्ता ते वामुदेववामोवत्ते अहवे रायसहस्ते विपुत्तेणं प्रसन्नपाणसाइमसाइमेणं पुक्कवायेणं सक्कारेइ, सम्मानेइ, सक्कारित्ता सम्मानित्ता जाय पडिक्खि-सग्गेइ । तए नं ते वामुदेववामोवत्ता जाय [अहवे रायसहस्ता पंडुएणं रत्णा वित्तज्जया समाना जेणेव साइ साइं रज्जाइ जेणेव साइं साइं नयराई तेणेव] पडिगया ।

तत्पश्चान् पाण्डु राजा ने पाँच पाण्डवों को तथा द्रोपदी को पाट पर बिठलाया । बिठला कर इवेत घोर पीठ कलशों से उनका अभिषेक किया—उन्हे नहलाया । फिर कल्याणकर उत्सव किया । उत्सव करके उन वामुदेव आदि बहुत हजार राजाओं का विपुत्त प्रसन्न, पान, खादिम घोर स्वादिम से तथा पुरुषों घोर वस्त्रा से सत्कार किया, सम्मान किया । सत्कार-सम्मान करके यावत् उन्हें विदा किया । तब ये वामुदेव अंगरहू बहुत से राजा यावत् अपने-अपने राज्यों एवं नगरों को लौट गए ।

१३७—तए न ते पंच पंडवा बोयईए देवीए सद्धि अंतो\* अंतेउरपरियालसद्धि कल्लाकल्लि वारंवारेणं धोरासाइं भोगभोगाई जाय [भुंजमाणा] विहरति ।

तत्पश्चान् पाँच पाण्डव द्रोपदी देवी के साथ अन्तःपुर के परिवार सहित, एक-एक दिन, यारी-वारी के मनुसार उदार कामभोग भोगते हुए यावत् रहने लगे ।

१३८—तए नं से पंडुराया अन्नया कयाई पंचहि पंडवेहि कौतोए देवीए दोवईए देवीए य सनि  
अंतो प्रतेउरपरियाल तदि संपरिवुडे सोहासनवरगए याचि होत्या ।

पाण्डु राजा एक बार किसी समय पाँच पाण्डवों, कुन्ती देवी और द्रौपदी देवी के साथ तथा  
अन्तःपुर के अन्दर के परिवार के साथ परिवृत होकर श्रेष्ठ सिंहासन पर आसीन थे ।

नारद का आगमन

१३९—इमं च नं कच्छुल्लनारए वंसणेणं अइभहए विणीए अंतो अंतो य कनुत्तहिण  
मग्गयोरियए य अत्तलीण-सोम-पिय-वंसणे सुहवे अमदलसगतपरिहिए कालमियचम्म-उत्तरामण-  
रइययस्ये दइकमंडलुहस्ये जडामउददित्सिए जसोवइय-गणेत्तिय-मंजमेहल-थागतपरे हस्यक-  
कच्छुभीए पियगंधरवे धरणिगोपरण्णहणे संबरणायवरणिमोवयणउप्पयणि-लेसणीमु य सकामणि-  
अभिन्नोपि-पण्णत्ति-गमणी-अंभीमु य बहुमु विज्जाहरीमु विज्जामु विसुयजसे इदं रामस्त य  
केसरस्त य पञ्जुम-पईय-संब-अनिउद-निसद-उम्मय-सारण-गय-मुमुह-उम्महाईण जायवाणं अरुपुट्ठान  
कुमारकोडीणं हिययइए संययए कलह-जुड-कोसाहलप्पिए अंइणामिलासी बहुमु य समरेमु य  
सपराएमु य वंसणरए समंतमो कलहं सबल्लणं अणुगवेसमाणे असमाहिकरे वसारवरवीरुरित्ति-  
लोवकलतयगणं आमंतेकण तं भगवति पक्कमणि गमण-गमण-वच्छं उप्पइमो गमणमभित्तंअंभी  
गामागर-नगर-सेह-कडक-मंडव-वोनमुह-पट्टण-संवाह-सहस्रसमड्विं विमियमेइणीतलं निअमदन्नय  
यमुहं सोतोइतो रम्मं हियिणाउरं उवागए पंडुरायभवणंति अइयेणेण समोयइए ।

इधर कच्छुल्लनामक नारद यही आ पहुँचे । वे देवोंने मे अत्यन्त भद्र और विनीत जान पड़  
थे, परन्तु भीतर में केनिप्रिय होने के कारण उनका हृदय कलुषित था । ब्रह्मचर्यव्रत के धारक होने  
से वे मत्सरमत्ता की प्राप्ति थे । आश्रित जनों को उनका दर्शन प्रिय लगता था । उनका स्व मनोवृत्ति  
था । उन्होंने उग्ररथ एवं मरुत (असुर अथवा शरत्त अर्थात् वस्त्रमंड) पहन रखा था । काशी  
मृगचर्म उत्तरामण के रूप में वधायन में धारण किया था । हाथ में दंड और कमण्डलु था । उदासी  
मुकुट में उनका मस्तक आभूषणमान था । उन्होंने यज्ञोपवीत एवं वस्त्रा की माना के आभरण, मूँ  
की बटिमाला और बरुचन वस्त्र धारण किए थे । उनके हाथ में कच्छुली नामकी बीणा थी । उन्  
छोटी से पीठ थी । आठार में गमन करने की शक्ति होने से वे पृथ्वी पर बहुत कम गमन करी ।  
संवरणा (चर्म की), आवरणा (ईकने की), अवरणा (नीचे उतरने की), उलानी (अं उर  
की) इनरणा (चिरट जाने की), मच्छामणी (दुमरे के शरीर में प्रवेश करने की), यमियोगिनी (नाम  
वादी आदि बनाने की), अरुणि (रक्षा बनाए की बनाने देने की), गमनी (दुमरे खाने न नी  
सकने का) और लानिनी (लाने कर देने की), आदि बहुत-सी विद्याधरा मन्त्री विद्याया न प्रदान  
होने से उनका जीवन कष्टी हुई थी । वे बनेब और वामुदर के प्रेमात्र थे । प्रमून्, प्रोत, गी,  
आनरुड, निरुड, उन्मु, सारण, वरुमुकुमार, मुमुग और दुमुग आदि चारों के साथ नील कोट  
कुमार के द्वार के द्वार से और उनका द्वारा प्रशमनीय थे । कनई (वामुद) गृह (सुखा का मय)  
और काना (उन्मु) द्वार थे । वे नरक के मन्त्रान्तर न बन जाने के अतिनाथ थे । आठ गमर और  
उन्मु (उन्मु) इन के अतिनाथ थे । चारों धार विज्या देकर (दान देकर) नरक को  
उन्मु (उन्मु) काटते, उन्मु (उन्मु) काटने न उन्मु (उन्मु) काटने काटते । उन्मु (उन्मु) काटने काटते ।

चित्त में असमाधि उत्पन्न करते थे । ऐसे वह नारद तीन लोक में बलवान् श्रेष्ठ दशरवश के धीर पुरुषों से वार्तालाप करके, उस भगवती (पूज्य) प्राकाम्यनामक विद्या का, जिसके प्रभाव से प्राकाश में गमन किया जा सकता था, स्मरण करके उठे धीर प्राकाश को साधते हुए हजारों ग्राम, प्राकर (ग्राम) नगर, खेट, कर्बट, मडव, श्रेणमुख, पट्टन और सवाध से शोभित और भरपूर देशों से व्याप्त पृथ्वी का भ्रमलोकन करते-करते रमणीय हस्तिनापुर में घाये और बड़े वेग के साथ पाण्डु राजा के महल में उतरे ।

१४०—तए नं से पञ्चराया कच्छुल्लनारयं एज्जमार्ण पासइ, पासिता पंवाहि पंडवेहि कुंतीए य देवीए सद्धि आसणापो अभुट्ठेइ, अभुट्ठिता कच्छुल्लनारयं सत्तदुपयाइं पच्चगच्छइ, पच्चगच्छिता तिस्सुतो आयाहिण-ययाहिणं करेइ, करिता बंदइ, नमंसइ, बंदिता नमसिता महरिहेणं आसणेणं उवणिमतेइ ।

उस समय पाण्डु राजा ने कच्छुल्ल नारद को धाता देखा । देख कर पाँच पाण्डवों तथा कुन्ती देवी सहित वे आसन से उठ खड़े हुए । खड़े होकर सात-घाठ पर कच्छुल्ल नारद के सामने गये । सामने जाकर तीन बार दक्षिण दिशा में धारभ करके प्रदक्षिणा की । प्रदक्षिणा करके वन्दन किया, नमस्कार किया । वन्दन-नमस्कार करके महान् पुरुष के योग्य ध्यवा बहुमूल्य आसन ग्रहण करने के लिए आमन्त्रण किया ।

१४१—तए नं से कच्छुल्लनारए उदगपरिपोसियाए दभभेवरिपक्खथुमाए भिसियाए मिसीयइ, मिसीइत्ता पंडुरायं रउजे जाव [य रह्ते य कोसे य कोट्टावारे य बले य बाहणे य पुरे य] मंतेउरे य कुत्तलोवंतं पुच्छइ ।

तए नं से पञ्चराया कौंती देवी पंच य पंडवा कच्छुल्लनारयं आढायत्ति-जाव [परियानंति अभुट्ठेति] पज्जुवांसति ।

तत्पश्चात् उन कच्छुल्ल नारद ने जल छिड़ककर और धर्म विद्याकर उस पर अपना आसन विधायी और वे उस पर बैठे । बैठ कर पाण्डु राजा, राज्य यावन् [राष्ट्र, कोय, कोठार, बल, बाहुन नगर और] भन्तपुर के कुशल-समाचार पूछे । उस समय पाण्डु राजा ने, कुन्ती देवी ने और पाँचों पाण्डवों ने कच्छुल्ल नारद का खड़े होकर आदर-सत्कार किया । उनकी पशुपासना की ।

१४२—तए नं सा डोवई देवी कच्छुल्लनारयं धस्संजयं अविरयं अप्पहिह्वपक्खवत्तायवाव-कम्मं ति कट्ठु नो आढाइ, नो परिमाणाइ, नो अभुट्ठेइ, नो पज्जुवासइ ।

किन्तु श्रौपदी देवी ने कच्छुल्ल नारद को असयभी, अविरत तथा पूर्वकृत पाप कर्म का निन्दादि द्वारा नाश न करने वाला तथा आगे के पापों का प्रत्याख्यान न करने वाला जान कर उनका आदर नहीं किया, उनके प्रागमन का अनुमोदन नहीं किया, उनके आने पर वह खड़ी नहीं हुई । उसने उनकी उपासना भी नहीं की ।

श्रौपदी पर नारद का रोष

१४३—तए नं तस्स कच्छुल्लनारयस्स इमेयारुहे भग्गहिणए चित्तिए पत्थिए मणोगए संकप्पे

समुत्पज्जितया—‘ग्रहो णं दोवई देवो ह्वेणं जाव [जोह्वणेण य] सायणेण य पंचहि पंथो  
अणुवद्धा समाणी ममं नो आडाइ, जाव नो पज्जुवासइ, तं सेयं सत्तु मम दोवईए देवोए विस्सं  
करित्तए’ ति कट्टु एयं सपेहेइ, सपेहिता पंदुरायं आपुच्छइ, आपुच्छिता उपपरिणि चिज्जं प्रावाहेइ,  
प्रायाहिता ताए उबिकट्ठाए जाव विज्जाहरगईए सयणसमुदं मग्गमग्गणेण पुरथाभिमुहे वोइवा  
पयत्ते यावि होत्था ।

तब कच्छुल्ल नारद को इस प्रकार का अध्यवसाय, चिन्तित (विचार) प्रायित (इष्ट), मनोगत (मन में स्थित) मकल्प उत्पन्न हुआ कि ‘ग्रहो ! यह द्रोपदी देवी अपने रूप धोवन, तावत् और पाच पाण्डवों के कारण अभिमानिनी हो गई है, अतएव मेरा आदर नहीं करती यावत् मेरी उपासना नहीं करती । अतएव द्रोपदी देवी का अनिष्ट करना मेरे लिए उचित है ।’ इस प्रकार नारद ने विचार किया । विचार करके पाण्डु राजा से जाने की आज्ञा ली । फिर उत्पत्ती (उड़ने की) विद्या का आह्वान किया । आह्वान करके उस उरुकुट यावत् विद्याधर योग्य गति से, लवण समुद्र के मध्यभाग में होकर, पूर्व दिशा के समुद्र, चलने के लिए प्रयत्नशील हुए ।

नारद का अमरकंका-गमन—जास रचना

१४४—तेणं कालेणं तेणं समएणं धायइसंडे दीवे पुरस्सिमद्धवाहिणद्धभरहवासे अमरकंका नामं रायहाणी होत्था । तत्थ णं अमरकंकाए रायहाणीए पज्जमणाभे नामं राया होत्था, महया हिमवंत वण्णमो । तत्स णं पज्जमणाभस्स रण्णे सत्त देवीसयाइं ओरोहे होत्था । तत्स णं पज्जमणाभस्स रण्णे सुनाभे नामं पुत्ते जुवराया यावि होत्था । तए णं से पज्जमनाभे राया अंतो अंतेज्जंसि ओरोहसपरिवुडे सिहासणवरगए विहरइ ।

उस काल और उस समय में धातकीखण्डनामक द्वीप में, पूर्व<sup>१</sup> दिशा की तरफ क दक्षिणार्ध भरतक्षेत्र में अमरकंकानामक राजधानी थी । उस अमरकका राजधानी में पद्मनाभनामक राजा था । वह महान् हिमवन्त पर्वत के समान सार वाला था, इत्यादि वर्णन द्रौपदातिक सूत्र के अनुसार समझना चाहिए । उस पद्मनाभ राजा के अन्तःपुर में सात सौ रानियाँ थी । उनके पुत्र का नाम सुनाभ था । वह युवराज भी था । (जिस समय का यह वर्णन है) उस समय पद्मनाभ राजा अन्तःपुर में रानियों के साथ उत्तम सिंहासन पर बैठा था ।

१४५—तए णं से कच्छुल्लनारए जेणेव अमरकंका रायहाणी, जेणेव पज्जमनाभस्स भवणे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता पज्जमनाभस्स रद्धो भवणंसि भत्ति वेयेणं समावइए ।

तए णं से पज्जमनाभे राया कच्छुल्ल नारयं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता आसणाओ अम्भुद्धं अम्भुद्धिता अग्गेणं जाव<sup>२</sup> आसणेणं उवणिमतेइ ।

तत्पश्चात् कच्छुल्ल नारद जहाँ अमरकंका राजधानी थी और जहाँ राजा पद्मनाभ का भवन था, वहाँ आये । आकर पद्मनाभ राजा के भवन में, वेगपूर्वक दीधता के साथ उतरे ।

१. धातरीखण्ड द्वीप में भरत आदि सभी क्षेत्र दो-दो की मर्या में हैं । उनमें से पूर्व दिशा के भरतक्षेत्र के दक्षिण भाग में अमरकका राजधानी थी ।

२. अ. १६ सूत्र १४० ।

उस समय पद्मनाभ राजा ने कच्छुत्स नारद को आता देखा । देखकर वह आसन से उठा । उठ कर [सात-घाठ कदम सामने गया, तीन बार प्रदक्षिणा की, वन्दन-नमस्कार किया] भर्ष्य से उनकी पूजा की यावत् आसन पर बैठने के लिए उन्हें आमंत्रित किया ।

१४६—तए णं से कच्छुत्सनारए उदयपरिफोसियाए दम्भोवरिपच्चट्ठयाए भित्तियाए नितोयइ, जाय' कुसलोवंतं आपुच्छइ ।

तत्पश्चात् कच्छुत्स नारद ने जन से छिड़काव किया, फिर दर्भ विद्या कर उस पर आसन बिछाया और फिर वे उस आसन पर बैठे । बैठने के बाद यावत् कुसल-समाचार पूछे ।

१४७—तए णं से पउमनाभे रामा नियणओरोहे जायविम्हए कच्छुत्सनारयं एवं वयासी—  
'तुम्हं देवानुप्पिया ! ब्रह्मणि गामाणि जाय मेहाइं अणुपवितसि, तं अस्थि याइं से कहिंवि देवानुप्पिया !  
एरिसए ओरोहे विट्ठुपुत्ते जारिसए णं मम ओरोहे ?'

इसके बाद पद्मनाभ राजा ने अपनी रानियों (के सौन्दर्य आदि) में विस्मृत होकर कच्छुत्स नारद से प्रश्न किया—'देवानुप्रिय ! आप बहुत-से ग्रामों यावत् गृहों में प्रवेश करते हो, तो देवानु-प्रिय ! जैसा मेरा भन्त.पुर है, वंसा भन्त.पुर आपने पहले कभी कहीं देखा है ?'

१४८—तए णं से कच्छुत्सनारए पउमनाभेणं रण्णा एवं खुत्ते समाभे ईसि विहसियं करेइ,  
करिंता एवं वयासी—'सरित्ते णं तुमं पउमनामा । तस्स अण्डवदुदुरस्स ।'

'के णं देवानुप्पिया ! से अण्डवदुदुरे ?'

एवं जहा मल्लिणाए ।

एवं क्षुद्र देवानुप्पिया ! जब्बुहीवे दीवे भारहे बासे हस्तिणावरे वृषयस्स रण्णो पूया, खुलणीए देवीए अत्तया, पंडुस्स सुग्हा पचन्हं पंडवानं भारिया बोवई देवी ख्वेण य जाव दक्खिदुसरीरा । बोवईए णं देवीए छिप्रस्स वि पामंणुदुपस्स अय तव ओरोहे सइमं पि कत्तं ण अण्डइ ति कट्ठ पउमनाभं आपुच्छइ, आपुच्छिता जाव पडिगए ।

तत्पश्चात् राजा पद्मनाभ के इस प्रकार कहने पर कच्छुत्स नारद थोड़ा मुस्कराए । मुस्करा कर बोले—'पद्मनाभ ! तुम कुए के उस मेढक के सदृश हो ।'

(पद्मनाभ ने पूछा) देवानुप्रिय ! कौन-सा वह कुए का मेढक ?'

जैसा मल्ली आठ (अध्यायन) में कहा है वही यहाँ कहना चाहिए ।'

(फिर बोले) 'देवानुप्रिय ! जम्बू द्वीप में, भरतवर्ष में, हस्तिनापुर नगर में द्रुपद राजा की पुत्री, चुननी देवी की घातमजा पाण्डु राजा की पुत्रवधू और पाँच पाण्डवों की पत्नी द्रौपदी देवी रूप से यावत् लावण्य से उत्कृष्ट है, उत्कृष्ट धरीर वाली है । तुम्हारा यह सारा भन्त.पुर द्रौपदी देवी के कटे हुए पैर के अगूँठे की सीवी कन्ना (अस) की भी बराबरी नहीं कर सकता ।' इस प्रकार कह कर नारद ने पद्मनाभ से जाने की अनुमति ली । अनुमति पाकर वह यावत् (तीव्र गति से) चल दिसे ।

पद्मनाभ की बुद्धिमत्ता

१४६—तए नं से पद्मनाभे राया कच्छुस्तनारयस्त अंतिए एयमट्टं सोच्चा नित्तमं देवोए रुवे य जोव्यणे य सावण्णे य मुच्छिए गट्टिए जुट्टे (गिट्टे) अज्झीयवप्पे जेण्व पोसहसस तेण्व उवागच्छइ, उवागच्छिता पोसहसस जाव [अणुप्पविसइ, अणुप्पविसिता पुव्वसंगइ] से मणसीकरेमाणे-मणसीकरेमाणे चिट्ठइ ।

‘तए नं पद्मनाभस्स रण्णो अट्टममत्तंसि परिणममाणंसि पुव्वसंगइओ देवो जाव प्राणो ।  
‘मणंतु नं देवानुप्पिया ! जं मए कायव्वं ।’

तए नं पद्मनाभे ]

पुव्वसंगतियं देवं एवं वयासी—‘एवं खलु देवानुप्पिया ! जंबूद्वीपे वीथे नारहे वासे हस्तिनापुरे नगरे जाय उक्किट्टसरोरा, तं इच्छामि नं देवानुप्पिया ! बोवई देवि इहमाणियं ।’

तत्पश्चात् पद्मनाभ राजा, कच्छुस्त नारद से यह ग्रंथ सुन कर घोर समझ कर शीघ्र देवी के रूप धारण कर सावण्य में मुग्ध हो गया, गूढ़ हो गया, लुब्ध हो गया और (उसे पाने के लिए) प्राणह्वान हो गया । वह पीपघनाला में पहुँचा । पीपघनाला को पूँज कर, अपने पूर्व के साथी देव का मन में ध्यान करके, सेवा करके बैठ गया । उसका अष्टमभक्त जब पूरा होने लगा तो यह पूर्वभक्त का साथी देव आया ।

उमने कहा—‘देवानुप्रिय ! कहीं, मुझे क्या करना है ?’

तब राजा पद्मनाभ ने] उस पहले के साथी देव से कहा—‘देवानुप्रिय ! जम्बूद्वीपनामक द्वीप में, भारत वर्ष में हस्तिनापुर नगर में, यावत् द्वीपदी देवी उक्किट्ट सरोर वाली है । देवानुप्रिय ! पाहता है कि द्वीपदी देवी यहाँ से भाई जाय ।’

१४७—तए नं पुव्वसंगतिए देवे पद्मनाभं एवं वयासी—‘नो खलु देवानुप्पिया ! एय दूय भव्वं वा, भव्वित्तं वा, ज नं बोवई देवो पंच पंडवे मोत्तूण अन्नं नं पुरितेणं ताडि ओराताई वा [भाणुसगाइ भोगमोगाई भुंजमाणो] बिहरिस्सइ, तहावि य नं अहं तव पियट्टयाए बोवई देवि इहमासेमि’ ति उट्ठ पद्मनाभं प्रावुस्सइ, आपच्छिता ताए उक्किट्टाए जाव देवगई सवण्णपु मग्गमग्गं जेण्व हस्तिनापुरे नगरे तेण्व पहारैय वमणाए ।

तत्पश्चात् पूर्वभक्ति (पहले के साथी) देव ने पद्मनाभ से कहा—‘देवानुप्रिय ! यह क्या हुआ नहीं, होता नहीं और होगा भी नहीं कि द्वीपदी देवी पीपघनाला को छोड़कर दूसरे पुरुष के साथ मानवीय उदार काम भाव भागती हुई चलेगी । तबामि मैं तुम्हारा प्रिय (पट्ट) करने के लिए द्वीपदी देवी को प्रभो यहाँ ले आता हूँ ।’ इस प्रकार कह कर देव ने पद्मनाभ से पूछा । पूछ कर उक्किट्ट देव-नरि ने नरगुणमय के मध्य में हाकर मित्र हस्तिनापुर नगर में, उल्लास करने के लिए उदय हुआ ।

औरत-हृदय

१४८—नेव व. नेव तेव समणं हस्तिनापुरे बुद्धिद्विने राया बोवई देवो वा ।  
पावात्तन वि म्हावुत्ते पावि शिवा ।

उम कात घोर उम समय में, हस्तिनापुर नगर में मुधिष्ठिर राजा द्रौपदी देवी के छाय महल की दन पर गुल से मोका हुआ था ।

१४२—तए नं ते पुम्बतंगतिए जेनेव जुहिद्धिते राया, जेनेव बोवाई बेवी, तेनेव उवागच्छइ, उवागच्छता बोवाई बेवीए सोतोवनिनं दत्तयइ, दत्तइता बोवाई बेवि गिन्हइ, गिन्हिता ताए उकिट्टाए जाव देवगईए जेनेव घमरकका, जेनेव पउमणाभरत भवणे, तेनेव उवागच्छइ, उवागच्छता पउमणाभरत भवणेति असोवनिनयाए बोवाई बेवि ठावेइ, ठावित्ता सोतोवनि भवहरइ, भवहरिता जेनेव पउमणाभे तेनेव उवागच्छइ, उवागच्छता एव ययातो—‘एत नं देवान्पिया । मए हसिणाउराओ बोवाई बेवी इह हवमाणीया, तव असोवनिनयाए चिट्ठइ, असो परं तुमं जानसि’ ति कट्ठु जामेव शिति पाउभूए तामेव शिति पडिगए ।

उम समय वह पूर्वमगनिक देव जहाँ राजा मुधिष्ठिर था घोर जहाँ द्रौपदी देवी थी, वहाँ पहुँचा । पहुँच कर उमने द्रौपदी देवी को अवस्थापिनी निद्रा दी—अवस्थापिनी बिद्या से निद्रा में गुमा दिया । द्रौपदी देवी को ग्रहण करके, देवोचित उत्कृष्ट गति से घमरकका राजधानी में पद्मनाभ के भवन में था पहुँचा । आकर पद्मनाभ के भवन में, घड़ोक बाटिका में, द्रौपदी देवी को रख दिया । रख कर अवस्थापिनी बिद्या का महारण किया । चंहरण करके जहाँ पद्मनाभ था, वहाँ आया । आकर इस प्रकार बोला—‘देवानुग्रिव ! मैं हस्तिनापुर से द्रौपदी देवी को धीमे ही महीं ले आया हूँ । वह तुम्हारी असोक बाटिका में है । इससे आगे तुम जानो ।’ इतना कह कर वह देव चित घोर से आया था उगी घोर लोट गया ।

विशेषन—प्रभुन प्रागम मे तथा अन्य अन्य कथानकप्रधान प्रागमो मे भी जहाँ गति की तीव्रता प्रदर्शित करना प्रसिद्ध होता है, वहाँ गति के साथ कोई न कोई विशेषण लगाया गया है । यहाँ ‘उकिट्टाए देवगईए’ मे ‘देव’ यह विशेषण है । इसका अभिप्राय यह है कि तीव्र घोर मन्द, ये शब्द प्रापेक्ष हैं । इन शब्दों में किसी नियत अर्थ का बोध नहीं होता । एक बालक अथवा अतिशय युव को अपेक्षा जो गति तीव्र कहो जा सकती है, वही एक बलवान् युवा की अपेक्षा मन्द भी हो सकती है । नाइकित की तीव्र गति मोटर की अपेक्षा मंद है घोर वायुयान की अपेक्षा मोटर की गति मन्द है । अतएव तीव्रता की विशेषता दिखाने के लिए ही यहाँ ‘उत्कृष्ट देवगति मे’ ऐसा कहा गया है । तात्पर्य यह है कि यहाँ देवगति की अपेक्षा से ही तीव्रता समझना चाहिए, मंदक या मनुष्यादि की अपेक्षा से नहीं । अ-यत्र भी वही वाच्य समझना चाहिए ।

१४३—तए नं ता बोवाई बेवी तसो मुहुत्तरस पडिबुत्ता समाओ तं भवणं असोवनिनं च घमरककाजानमाणी एयं ययातो—नो सनु महुं एत सए भवणे, जो सनु एता महुं तपा असोवनिनया, तं नजइ नं महुं केणई देवेण वा, बाणवेण वा, किपुसिसेण वा, बिभर्रेण वा, महोरगेण वा, गंपभ्येण वा, अन्नस्स रण्णे असोवनिनं साहरियं ति कट्ठु ओहयमणत्तकत्वा जाव भियायइ ।

तत्पश्चात् थोड़ी देर में जब द्रौपदी देवी की निद्रा भंग हुई तो वह उम घड़ोक बाटिका को पहचान न सकी । तब मन ही मन कहने लगी—‘यह भवन मेरा अपना नहीं है, वह घड़ोक

वाटिका मेरी श्रपनी नहीं है। न जाने किसी देव ने, दानव ने, किंपुरुष ने, कितर ने, महोत्सरे या गधर्व ने किसी दूसरे राजा की अशोकवाटिका में मेरा संहरण किया है।' इस प्रकार चिन्ता करके वह भग्न-मनोरथ होकर यावत् चिन्ता करने लगी।

पद्मनाभ का द्रोपदी को भोग-आमंत्रण

१५४—तए नं से पउमणाभे राया ण्हाए जाव सव्वात्तंकारविभूतिए अंतेउरपरियात्तसर्पाणं जेजेव असोययणिमा, जेजेव दोवई देवी, तेजेव उवागच्छइ। उवागच्छिता दोवई देवि ओहयमणत्तरं जाव भियायमाणि पासइ, पासित्ता एवं ययासी—'किं णं तुणं देवानुप्पिए ! ओहयमणत्तरा अ भियाहि ? एवं खलु तुमं देवानुप्पिए ! मम पव्वसंगतिएणं देवेणं जंबूदीवाओ बोयाओ, भारहो घासाओ, हस्तिणाउराओ नयराओ, जुहिट्टिसस्स रण्णो भवणाओ साहरिया, तं मा व तु देवानुप्पिए ! ओहयमणत्तसंक्पा जाव भियाहि । तुमं मए सद्धि विपुलाइं भोगभोगां अ [भुंजमानो] विहराहि ।'

तदनन्तर राजा पद्मनाभ स्नान करके, यावत् सब अलंकारों से विभूषित होकर तथा अन्तःपुर के परिवार से परिवृत्त होकर, जहाँ अशोकवाटिका थी और जहाँ द्रोपदी देवी थी, वहाँ गया। माकर उसने द्रोपदी देवी को भग्नमनोरथ एवं चिन्ता करती देख कर कहा—'देवानुग्रिये ! तुम भग्नमनोरथ होकर चिन्ता क्यों कर रही हो ? देवानुग्रिये ! मेरा पूर्वसांगतिक देव जम्बूदीप से, भारतवर्ष से, हस्तिनापुर नगर से और युधिष्ठिर राजा के भवन से संहरण करके तुम्हें यहाँ ने लाया है। अतएव देवानुग्रिये ! तुम हतमनःसकल्प होकर चिन्ता मत करो। तुम मेरे साथ विपुल भोगने योग्य भोग भोगती हुई रहो।

१५५—तए नं सा दोवई देवी पउमणाभं एवं ययासी—'एवं खलु देवानुप्पिया । जंबूदीपे बोये भारहे याते पारवईए नयरीए कण्हे णामं वासुदेवे मम पियभाउए परियसइ, तं जइ णं से एए मासाणं ममं कवं नो हव्यमागच्छइ तए नं अहं देवानुप्पिया ! जं तुमं यदस्ति तासं प्राणा-ओवाय-वचन-णिहंसे विट्ठिस्सामि ।'

तब द्रोपदी देवी ने पद्मनाभ से इस प्रकार कहा—'देवानुग्रिय ! जम्बूदीप में, भारतवर्ष में द्वारवती नगरी में कृष्णनामक वासुदेव मेरे स्वामी के भ्राता रहते हैं। सो यदि एहं यहाँ तक वे मुझे छुड़ाने—महाप्रताप करने या वापिस ले जाने के लिए यहाँ नहीं आएंगे तो मैं, हे देवानुग्रिय ! तुम्हारी प्राप्ता, उपाय, वचन और निर्देश में रहूँगी, अर्थात् आप जो कहेंगे, वही करूँगी।'

१५६—तए नं ॥ पउमे राया दोवईए एयमट्ठं पडिमुण्डे, पडिमुणित्ता दोवईं दोवइ कण्ठोउरे टरेइ । तए ण सा दोवई देवी एट्ठं एट्ठं णं घणिक्खित्तेणं आयंखितपरिणमहिणं तवोरुमेव अण्णो नावेमाणो विहरइ ।

तब पद्मनाभ राजा ने द्रोपदी का कथन श्रुतीकार किया। श्रुतीकार करके द्रोपदी देवी को कवाचा के अन्तःपुर में रख दिया। तबस्वात् द्रोपदी देवी निरन्तर पष्टभक्त और पारणा में अन्तरित के तब हम से आत्मा का भावित करती हुई विचरने लगी।



विवेचन—द्रौपदी, यह महीने तक श्री कृष्ण यदि लेने न आएँ तो पचनाभ की आज्ञा मा की तैयारी बतलाती है । इस तैयारी के पीछे द्रौपदी की मानसिक दुर्बलता या चारित्रिक है, ऐसा किसी को आभास हो सकता है । किन्तु वास्तव में ऐसा है नहीं । द्रौपदी को प्रसाधारण सामर्थ्य पर पूरा विश्वास है । वह जानती है कि कृष्णजी आए बिना रह नहीं इसी कारण उसने पाण्डवों का उत्सव न करके श्रीकृष्ण का उत्सव किया । उसकी दृढ़ता में भवेद्वे करने का कोई कारण नहीं है । भूषकार ने देवता के मुख से भी यह कहल है कि द्रौपदी पाण्डवों के सिवाय अन्य पुरुष की कामना त्रिकाल में भी नहीं कर सकती । किसी युक्ति से श्री कृष्ण के धाने तक समय निकालना चाहती थी । उसकी युक्ति काम कर ग

उधर पद्मनाभ ने बड़ी सरलता से द्रौपदी की बात मान्य कर ली । इसका कारण यह विश्वास रहा होगा कि कहीं जम्बूद्वीप और कहीं घातकीखड द्वीप । दोनों द्वीपों के साथ योजन के महान् विस्तार वाला लक्षणसमुद्र है । प्रथम तो श्रीकृष्ण को पता ही नहीं कि द्रौपदी कहीं है । पता चल भी गया तो उनका यहाँ पहुँचना असम्भव है ।

अपने इस विश्वास के कारण पद्मनाभ ने द्रौपदी की शर्त आनाकानी किए बिना कर ली । इसके प्रतिरिक्त कामान्ध पुरुष की विवेकशक्ति भी भ्रष्ट हो जाती है ।

द्रौपदी भी गणेश

१५७—तए नं से जुहिदिठले राया तयो मुहुतंतरस्स पबिन्दुं समाने दोवई दे अपासमाणो सयणिज्जामो उट्ठे, उट्ठिता दोवईए देवीए सव्वमो समता मग्गणवसे करिस्ता दोवईए देवीए करयइ सुइं वा पुइं वा पवित्ति वा प्रलभमाणे जेणेव पंडुराया तेणेव उ उवागच्छिता पंडुरायं एवं वयासी—

उधर द्रौपदी का हरण हो जाने के पश्चात्, थोड़ी देर में युधिष्ठिर राजा जागे । देवी को अपने पास न देखते हुए घबरा खड़े । उठकर सब तरफ द्रौपदी देवी की मार्गणा करने लगे । किन्तु द्रौपदी देवी की कहीं भी श्रुति (शब्द), क्षुति (छीक वगैरह) या प्रवृत्ति न पाकर जहाँ पाण्डु राजा थे वहाँ पहुँच । वहाँ पहुँच कर पाण्डु राजा से इस प्रकार बोले—

१५८—एवं खलु ताघो ! ममं आगासतलमंसि पमुतस्स पासाओ दोवई देवी न केणइ देवेण वा, दाणवेण वा, किन्नरेण वा, महोरणेण वा, मंधवेण वा, हिया वा, पोया वा, प्रा वा ? इच्छामि नं ताघो ! दोवईए देवीए सव्वमो समता मग्गणवसेसं करिस्ताए ।

हे तात ! मैं आकाशतल (अगावी) पर सो रहा था । मेरे पास से द्रौपदी देवी को कौन देव, दानव, किन्नर, महोरग अथवा मधर्व हरण कर गया, ले गया या खीच ले ग हे तात ! मैं चाहता हूँ कि द्रौपदी देवी की सब तरफ मार्गणा-नवेपणा की जाय ।

१५९—तए नं से पंडुराया कोइं वियपुरिसे सहावेइ, सहायिता एवं व 'गच्छहं न तुम्हे देवाणुप्पिया ! हस्तिणाउरे नगरे सिघाउम-तिथ-चउक्क-चउक्कर-महापह-पहे, हममा सहेण उग्घोसेमाणा उग्घोसेमाणा एवं बदह—'एवं खलु देवाणुप्पिया ! जहिदिठले

आगासतलगंति सुहृपमुत्तस्त पासाधो बोवई देवी न नञ्जइ केणइ देवेण वा, बाणवेण वा, किंपुरि  
वा, किप्परेण वा, महोरणेण वा, गंधव्वेण वा हिया वा नोया वा भववित्ता वा ? तं बो  
वेयानुप्पिया ! बोवईए देवीए सुइं वा सुइं वा पविस्ति वा परिकहेइ तस्स णं पंडू राया विजितं अ  
संपपाणं दत्तपइ' ति कट्टु धोसणं धोसावेइ, धोसावित्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह ।'

तए णं ते कोइ बिपपुरिसा जाव पच्चप्पिणंति ।

तत्पश्चात् पाण्डु राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर यह आदेश दिया—  
'देवानुप्रियो ! हस्तिनापुर नगर मे शृंगाटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर, महापथ और पथ आदि मे जोर-जोर  
के शब्दों से घोषणा करते-करते इस प्रकार कहो—हे देवानुप्रियो (लोगों) अक्रांतल (अग्रांती) पर  
सुख से सोये हुए युधिष्ठिर राजा के पास से द्रौपदी देवी को न जाने किस देव, दानव, किंपुर,  
किन्नर, महोरग या गंधर्व देवता ने हरण किया है, ले गया है, या खींच ले गया है ? तो हे देवानुप्रियो !  
जो कोई द्रौपदी देवी की श्रुति, धृति या प्रवृत्ति बताएगा, उस मनुष्य को पाण्डु राजा बिबुल समझ  
का दान देगे-इनाम देगे ।' इस प्रकार की घोषणा करो । घोषणा करके मेरी यह आज्ञा वापिस  
लौटाओ ।'

तब कौटुम्बिक पुरुषों ने उसी प्रकार घोषणा करके यावत् आज्ञा वापिस लौटाई ।

१६०—तए णं ते पंडू राया बोवईए देवीए कथइ सुइं वा जाव अलभमाणे कीर्ति वं  
सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—'गच्छह णं तुमं देवानुप्पिये ! बारवइं नयरि कण्हस्स वासुदेवस्स  
एयमहुं णिवेदेहि । कण्हे णं परं वासुदेवे बोवईए देवीए मगणमवेसणं करेज्जा, अन्नहा न नञ्जइ  
बोवईए देवीए सुइं वा सुइं वा पविस्ति वा उवत्तमेज्जा ।'

पूर्वाक्त घोषणा कराने के पश्चात् भी पाण्डु राजा द्रौपदी देवी की कही भी श्रुति यावत्  
समाचार न पा सके तो कुन्ती देवी को बुला कर इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिये ! तुम द्वारवती  
(द्वारिका) नगरी जाओ और कृष्ण वामुदेव को यह अर्थ निवेदन करो । कृष्ण वामुदेव ही द्रौपदी  
देवी की मार्गणा—गवेषणा करेंगे, अन्वया द्रौपदी देवी की श्रुति, धृति या प्रवृत्ति अपने को ज्ञात  
हो, ऐसा नहीं जान पड़ता । अर्थात् हम द्रौपदी का पता नहीं पा सकते, केवल कृष्ण ही उसका  
पता लगा सकते हैं ।

१६१—तए णं कीर्तो देवी पंडुरण्णा एयं युता समाणी जाव पड्डिमुणइ, पड्डिमुणित्ता न्हा  
कयसत्तिकम्मा हरियसंधयरगया हरियणाउरं नयरं मज्झमभेणं णिमगच्छइ, णिमगच्छित्ता कुज्जणव  
मज्झमज्झेणं जेणेव सुरट्टजणवए, जेणेव बारवई नयरी, जेणेव धम्मुरज्जाणे, तेणेव उवागच्छइ, उवा-  
गच्छित्ता हरियसंधाधो पच्चोदहइ, पच्चोदहित्ता कोइ बिपपुरित्ते सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—  
'गच्छह णं तुमं देवानुप्पिया ! बारवइं नयरि जेणेव कण्हस्स वासुदेवस्स गिहे तेणेव धणुपवित्तइ,  
धणुपवित्तिता कण्हं वासुदेवं करयसपरिगग्हियं एवं ययह—'एयं सल्लु सामी ! तुमं पिउच्छा कीर्तो  
देवी हरियणाउराधो नयराधो इह हव्वमागया तुमं बंसणं कंसति ।'

पाण्डु राजा के द्वारका जाने के लिए कहने पर कुन्ती देवी ने उनकी बात यावत् स्वीकार  
की । वह नहा-धोकर बलिकर्म करके, हाथों के रक्त पर धारु होकर हस्तिनापुर नगर के मन्त्र में

ज्य होकर निकली । निकल कर कुछ देश के बीचोंबीच होकर जहाँ मुराष्ट्र जनपद था, जहाँ द्वारवती नगरी थी और नगर के बाहर थोड़ा उद्यान था, वहाँ आई । आकर हाथी के स्कन्ध से नीचे उतरी । उतर कर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और उनसे इस प्रकार कहा—‘देवानुग्रियो ! तुम जहाँ द्वारका नगरी है वहाँ जाओ, द्वारका नगरी के भीतर प्रवेश करो । प्रवेश करके कृष्ण वामुदेव की दोनों हाथ जोड़ कर, मस्तक पर भजलि करके इस प्रकार कहना—‘हे स्वामिन ! आपके पिता की बहन (भुम्भा) कुन्ती देवी हस्तिनापुर नगर से यहाँ आ पहुची हैं और तुम्हारे दर्शन की इच्छा करती हैं—तुमसे मिलना चाहती हैं ।’

१६२—तए नं ते कौटुम्बिकपुरिता जाय कर्हेति । तए न कण्हे वामुदेवे कौटुम्बिकपुरितानं अंतिए एयमट्ठं सोचचा णिसम्म हट्ठुट्ठे हस्तिखंघवरगए बारवईए नगरीए मग्गंमग्गं जेणेंव कोती देवी तेणेंव उवागच्छइ, उवागच्छिता हस्तिखंघाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहिता कोतीए देवीए पायगहणं करेइ, करित्ता कोतीए देवीए सौंढ हस्तिखंघं डुरुहइ, डुरुहिता बारवईए नगरीए मग्गंमग्गं जेणेंव सए गिहे तेणेंव उवागच्छइ, उवागच्छिता सयं गिहं अभुपवित्तइ ।

तब कौटुम्बिक पुरुषों ने यावत् कृष्ण वामुदेव के पास जाकर कुन्ती देवी के प्रागमन का समाचार कहा । कृष्ण वामुदेव कौटुम्बिक पुरुषों के पास से कुन्ती देवी के प्रागमन का समाचार सुनकर हर्षित और सन्तुष्ट हुए । हाथी के स्कन्ध पर आरुढ़ होकर द्वारवती नगरी के मध्यभाग में होकर जहाँ कुन्ती देवी थी, वहाँ आये आकर हाथी के स्कन्ध से नीचे उतरे । नीचे उतर कर उन्होंने कुन्ती देवी के चरण ग्रहण किए—पैर छुए । फिर कुन्ती देवी के साथ हाथी पर आरुढ़ हुए । आरुढ़ होकर द्वारवती नगरी के मध्य भाग में होकर जहाँ अपना महल था, वहाँ आये । आकर अपने महल में प्रवेश किया ।

१६३—तए नं से कण्हे वामुदेवे कोति देवि न्हायं कयवत्तिकम्मं जिमियभुत्तराययं जाय सुहासगवरगयं एवं वयासी—‘संदित्तं नं पिउच्छा ! किनागमणयथोयणं ?’

कुन्ती देवी जब स्नान करके, वत्तिकर्म करके और भोजन कर चुकने के पश्चात् सुहासन पर बैठी, तब कृष्ण वामुदेव ने इस प्रकार कहा—‘हे पितृभगिनी ! कहिए, आपके यहाँ आने का क्या प्रयोजन है ?’

१६४—तए नं सा कोती देवी कण्हे वामुदेवं एवं वयासी—‘एव खलु पुत्ता ! हस्तिणावरे णयरे जुहिद्वित्तस्स आगासतत्ते सुहपमुत्तस्स दोवई देवी पासाम्भो ण णज्जइ केणइ अवहिया वा, णीया वा, अववित्तत्ता वा, तं इच्छामि ण पुत्ता ! दोवईए देवीए मग्गणयवेसणं कयं ।’

तब कुन्ती देवी ने कृष्ण वामुदेव से इस प्रकार कहा—‘हे पुत्र ! हस्तिनापुर नगर में, युधिष्ठिर आकाशतल (अगासी) पर मुख से सो रहा था । उसके पास से द्रौपदी देवी को न जाने कौन अपहरण करके ले गया, अथवा खींच ले गया । अतएव हे पुत्र ! मैं चाहती हूँ कि द्रौपदी देवी को मागेणा-गवेपणा करो ।’

१६५—तए नं से कण्हे वामुदेवे कोति पिउच्छि एवं वयासी—‘अं नवरं पिउच्छा ! दोवईए

देवोए वरपइ मुईं या जाव [मुईं या पविस्ति म] तभामि तो णं जहं पायाताओ वा भयमाओ  
अद्धभरहाओ वा समंतओ दोवइ माहात्थ उवणेमि' ति कट्टु कोति पिउस्सि सवकारेइ, सम्मानेइ  
पडिविसग्गेइ ।

तत्पश्चात् कृष्ण वामुदेव ने अपने विवृषिनी (पूको) कुन्ती से कहा—'भूमाओ ! भनई  
कही भी द्रोपदी देवी को अन्ति (मन्द) यावत् [इति क प्रादि पानि या ममानार] पाऊं, तो मैं पाऊँ  
से, भवन में से या अर्धभवन में से सभी जगह में, हाथोंहाथ से पाऊँगा।' इस प्रकार वह  
उन्होंने कुन्ती भूमा का महार किया, सम्मान किया, यावत् उन्हें विदा किया ।

१६६—तए णं सा कींती देवी कण्हेणं वामुदेवेणं पडिविसग्गिवा समानो जामेव रिं  
पाउभूभा तामेव रिंति पडिगया ।

कृष्ण वामुदेव से यह आश्वासन पाने के पश्चात् कुन्ती देवी, उनसे विदा होकर जिस दिशा  
से आई थी, उसी दिशा में लौट गई ।

१६७—तए णं से कण्हे वामुदेवे कोडुं वियपरिसे सदावेइ, सदाविशा एवं वयासी—'कच्छुल्लं  
तुम्हे देवानुप्पिया ! वारपइं नयसि' एवं जहा पडू तहा घोसणं घोसावेइ, जाव पच्छप्पिमि,  
पंडुस्स जहा ।

कुन्ती देवी के लौट जाने पर कृष्ण वामुदेव ने अपने कीटुम्बिक पुरुषों को बुलाया । बुला कर  
उनसे कहा—देवानुप्पियो ! तुम द्वारका में जाओ इत्यादि कह कर द्रोपदी के विषय में घोषणा  
करने का आदेश दिया । जैसे पाण्डु राजा ने घोषणा करवाई थी, उसी प्रकार कृष्ण वामुदेव ने भी  
करवाई । यावत् उनकी आज्ञा कीटुम्बिक पुरुषों ने यापिम की । सब वृत्तान्त पाण्डु राजा के समान  
कहना चाहिए ।

१६८—तए णं से कण्हे वामुदेवे अग्रया अंतो अंतेउरगए ओरोहे जाव विहरइ । इमं वं  
कच्छुल्लए जाव समोवइए जाव निसीइत्ता कण्हे वामुदेवे कुसलोवंतं पुच्छइ ।

तत्पश्चात् किसी समय कृष्ण वामुदेव अन्तःपुर के अन्दर रानियों के साथ रहे हुए थे । उसी  
समय वह कच्छुल्ल नारद यावत् आकाश से नीचे उतरे । यावत् कृष्ण वामुदेव के निकट जाकर  
पूर्वाक्त रीति से आसन पर बैठ कर कृष्ण वामुदेव से कुशल-वृत्तान्त पूछने लगे ।

१६९—तए णं से कण्हे वामुदेवे कच्छुल्लं नारयं एवं वयासी—'तुमं णं देवानुप्पिया !  
यहणि गामागर जाय' अणुपविससि, तं अत्थि याइं ते कहि वि दोवईए देवोए मुईं या जाव उवत्ता ?'

तए णं से कच्छुल्ले नारय कण्हे वामुदेवे एवं वयासी—'एवं छउ देवानुप्पिया । अग्रया  
पायईसडे दोवे पुरस्सिमड' बाहिण्डभरहयासं अमरकंकारापहाणि गए, तस्य णं मए पजमनाभस्स  
रण्णो भयणंसि दोवईं देवी जारिसिया दिट्ठपुब्बा यावि होत्था ।'

तए नं कष्टे वामुदेवे कष्टुत्सं नारदं एवं वयासी—'तुभं देव नं देवानुप्पिया !  
तुभं पुण्यकर्म ।'

तए न से कष्टुत्तनारद कष्टुत्सं वामुदेवेण एव युते समाणे उपपयणि विजं भावाहेद,  
भावाहिता जामेव शित पाउमए तामेव शित पडिगए ।

तएतत्वात् कृष्ण वामुदेव ने कष्टुत्स नारद से कहा—'देवानुप्रिय ! तुम बहुत-से धर्मों,  
पापों नरों पादि में प्रवेश करने हो । तो किसी जगह शीपदी देवी की श्रुति आदि कुछ मिली है ?

तब कष्टुत्स नारद ने कृष्ण वामुदेव से इस प्रकार कहा—'देवानुप्रिय ! एक बार मैं धातकी-  
राज्य शीप में, पूर्वे दिशा के दक्षिणार्ध भवन क्षेत्र में समरककानामक राजधानी में गया था । वही  
मैंने पद्मनाभ राजा के भवन में शीपदी देवी जैसी (कोई महिला) देवी थी ।'

तब कृष्ण वामुदेव ने कष्टुत्स नारद से कहा—'देवानुप्रिय ! यह तुम्हारी ही करतूत जान  
पड़ती है ।'

कृष्ण वामुदेव के द्वारा इस प्रकार कहने पर कष्टुत्स नारद ने उत्पत्तनी विद्या का स्मरण  
किया । स्मरण करके जिस दिशा से आये थे, उसी दिशा में चल दिए ।

शीपरी का उद्धार

१७०—तए न से कष्टे वामुदेवे कृपं महावेई, सहावित्ता एवं वयासी—गच्छह नं  
तुभं देवानुप्पिया ! हसिपजाउरं, पंडुत्त रण्णे एयमट्ठं निवेदंहि—'एव खलु देवानुप्पिया !  
धावइत्तं देवे पुरिण्णमडे समरककाए रायहाणेए पडमनाभभवणत्ति शोवईए देवीए पडत्तो  
उपत्तडा । तं गच्छंतु पंच पंडवा पाउरमिणेए सेणाए सज्जि संशिव्वा पुरिण्णम-वयासीए ममं  
पडियालेमाभा चिट्ठंतु ।'

तएतत्वात् कृष्ण वामुदेव ने दूत को बुलाया । बुला कर उससे कहा—'देवानुप्रिय ! तुम  
हस्तिनापुर जामो भोर पाण्डु राजा की यह घषं निवेदन करो कि—'हं देवानुप्रिय । धातकीराज्य  
शीप में, पूर्वाध भाग में, समरकका राजधानी में, पद्मनाभ राजा के भवन में शीपदी देवी का पता  
लगा है । अतएव पांचों पाण्डव अनुरमिणी सेना से परिवृत्त होकर रवाना हूं भोर पूर्व दिशा के  
वैतालिक' (गणसमुद्र) के किनारे मेरी प्रतीक्षा करे ।'

१७१—तए नं कृए जाव भणइ—'पडियालेमाभा चिट्ठंतु ।' ते वि जाव चिट्ठंति ।

तएतत्वात् दूत ने जाकर यावत् कृष्ण के कथनानुसार पाण्डवों से प्रतीक्षा करने को कहा ।  
तब पांचों पाण्डव वही जाकर यावत् कृष्ण वामुदेव की प्रतीक्षा करने लगे ।

१७२—तए नं से कष्टे वामुदेवे कोडु बियपुरित्ते सहावेई, सहावित्ता एवं वयासी—'गच्छह नं  
तुभं देवानुप्पिया ! सप्राहिणं भेरि तावेह ।' ते वि तावेत्ति ।

तएतत्वात् कृष्ण वामुदेव ने कौटम्बिक पुरणों को बुलाया । बुलाकर कर कहा—'देवानुप्रियो !

१. जहाँ धनुष की वेन चढ़ कर गंगा नदी में मिलती है, वह स्थान ।

तुम जाओ और साप्राहिक (सामरिक) भेरी बजाओ।' यह मुन कर कोटुमिक पुराणों ने मान्यता भेरी बजाई।

१७३—तए नं तीसे सण्णाहिमाए भेरीए सई सोचना समुद्रविजयपामोशता इस इसारा खा' छप्पणं बत्तयसाहसोमो सप्रउब्ब जाउ' महियाउत्तपहरणा अप्पेगइया हयगया दा वगुरापरिचित्ता जेणेव सभा मुहम्मा, जेणेव कण्हे वामुदेवे तेणेव उवागच्छति, उवागच्छिता करयस जाव चट्ठावेत्ति।

साप्राहिक भेरी की ध्वनि मुन कर समुद्रविजय आदि इस इसार वायात् द्युतन हजार बनवा पोडा, कवच पहन कर, तंगार होकर, आगुध और प्रहरण घट्टण करके, कोई-कोई पोडा पर सवार होकर, कोई हाथी आदि पर सवार होकर, मुभटों के समूह के साथ जहाँ कृष्ण वामुदेव की मुद्रा सभा थी और जहाँ कृष्ण वामुदेव थे, वहाँ आये। आकर हाथ जोड़ कर यावत् उनका अभिनन्दन किया।

१७४—तए नं कण्हे वामुदेवे हरिषत्थवरगए सकोरंटमत्तवामेणं दत्तेणं धरिज्जमाणेणं सेयवरचामराहिं थोइज्जमाणे महया हय-गय-रह-पवरजोहकसियाए चउरंगिणीए तेणाए सडि सपरिणं महया भड्चडगरपहकरविदपरिचित्ते बारयईए नयरीए मग्गमग्गभेणं निगगच्छइ, निगगच्छिता जेणेव पुरच्छिमवेयाली तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता पंचहिं पंड्येहिं सडि एगयमो मितइ, मितिता खंधावारणिवेसं करेइ, करित्ता पोसहसात्तं अणुपयितइ, अणुपयित्तिता सुत्थियं देयं मणसि कण्ठेव करेमाणे चिट्ठइ।

तत्पश्चात् कृष्ण वामुदेव श्रेष्ठ हाथी के स्कंध पर आरुढ़ हुए। कोट वृक्ष के पत्तों की मालाओं से युक्त छत्र उनके मस्तक के ऊपर धारण किया गया। दोनों पाश्यों में उत्तम श्वेत चामर धरे जाने लगे। वे बड़े-बड़े भस्वी, गजों, रथों और उत्तम पदाति-योद्धाओं की चतुरंगिणी सेना और अन्य मुभटों के समूहों से परिवृत होकर द्वारका नगरी के मध्य भाग में होकर निकले। निकल कर जहाँ पूर्व दिशा का वेतालिक था, वहाँ आये। वहाँ आकर पाँच पाण्ड्यों के साथ इकट्ठे हुए (मिले) फिर पड़ाव डाल कर वीपधशाला में प्रवेश किया। प्रवेश करके सुस्थित देव का मन में पुनः पुनः चिन्तन करते हुए स्थित हुए।

कृष्ण द्वारा देव का आह्वान

१७५—तए नं कण्हस्स वामुदेवस्स अट्ठमभत्तंसि परिणममाणंसि सुट्ठिमो जाव आगमो—'मम देवानुप्पिया ! जं मए कायखं !'

तए नं से कण्हे वामुदेवे सुट्ठिय देयं एवं वयासी—'एवं खलु देवानुप्पिया ! बोवई देवो जाव पउमनाभस्स रण्णो भवणंसि साहरिया, तं नं तुमं देवानुप्पिया ! मम पंचहिं पंड्येहिं सडि अप्पयट्ठस्स एण्हं रहाणं तवणसमुद्धे मग्गं विपरहेहि। जं नं अहं अमरकंकारायहाणं दोवईए देवोए कूवं गच्छामि।'

तत्पश्चात् कृष्ण वामुदेव का अष्टमभक्त पूरा होने पर सुस्थित देव यावत् उनके समीप

या । उसने कहा—'देवानुप्रिय ! कहिए मुझे क्या करना है ?

तब कृष्ण वामुदेव ने मुस्मित देव से इस प्रकार कहा—'देवानुप्रिय ! द्रौपदी देवी यावत्  
'मैं, भवएव तुम हे देवानुप्रिय ! पाँच पाण्डवों सहित छठे मेरे  
'मैं (पाण्डवों सहित) धर्मरक्तका राजधानी में द्रौपदी देवी,

१७६—तए नं से सृष्टिए देवे कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—'किण्हं देवानुप्रिया ! जहा चेव  
मनामस्त रण्णो पुत्रसंगतिएणं देवेणं बोवई देवी जाव [जमुहोवाओ बोवाओ भारहाओ वाताओ  
थेयणाउराओ नयराओ जहिट्ठिलस्त रण्णो भवणाओ] सहरिया, तथा चेव दोवई देवि धावईसंडाओ  
वाओ भारहाओ [याताओ धर्मरक्तकाओ रायहाणोओ पजमनाभस्त रण्णो भवणाओ] जाव  
थेयणाउरं साहरामि ? उवाह पजमनाभं रायं सपुरवत्तवाहणं तवणसमुदं पल्लवामि ?'

तत्पश्चात् मुस्मित देव ने कृष्ण वामुदेव से इस प्रकार कहा—'देवानुप्रिय ! जैसे पद्मनाभ राजा  
पूर्व सगतिक देव ने द्रौपदी देवी का [जम्बूद्वीपवर्ती भरत क्षेत्र के हस्तिनापुर नगर से युधिष्ठिर  
जा के भवन से] सहरण किया, उसी प्रकार क्या मैं द्रौपदी देवी को घातको खड्ग द्वीप के भरत क्षेत्र  
यावत् धर्मरक्तका राजधानी में स्थित पद्मनाभ राजा के भवन से हस्तिनापुर ले जाऊँ ? अथवा  
पद्मनाभ राजा को उसके नगर, सैन्य और बाहुनों के साथ तवणसमुद्र में फेंक दू ?'

१७७—तए नं कण्हे वासुदेवे सुस्थिर्यं देवं एव वयासी—'मा न तुमं देवानुप्रिया ! जाव  
साहराहि तुमं नं देवानुप्रिया ! तवणसमुदं अप्पच्छत्तसं छण्हं रहाणं मगं वियरहि, समेव न भण्हं  
देवईए देवीए कूवं गच्छामि ।'

तब कृष्ण वामुदेव ने मुस्मित देव से कहा—'देवानुप्रिय ! तुम यावत् सहरण मत करो ।  
'देवानुप्रिय ! तुम तो पाँच पाण्डवों सहित छठे हमारे छह रथों को तवणसमुद्र में जाने का मार्ग दे  
ते । मैं स्वयं ही द्रौपदी देवी को वापिस लाने के लिए जाऊँगा ।'

१७८—तए नं से सृष्टिए देवे कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—'एवं होउ ।' पंचहि पंडवेहि सडि  
अप्पच्छत्तसं छण्हं रहाणं तवणसमुदं मगं वियरइ ।

तब मुस्मित देव ने कृष्ण वामुदेव से कहा—'ऐसा ही हो-तथास्तु ।' ऐसा कह कर उसने पाँच  
पाण्डवों सहित छठे वामुदेव के छह रथों को तवणसमुद्र में मार्ग प्रदान किया ।

पद्मनाभ के पास ब्रत-श्रेयण

१७९—तए नं से कण्हे वासुदेवे चाउरंगिणि सेणं पडिविसज्जेइ, पडिविसज्जिता पंचहि  
पंडवेहि सडि अप्पच्छत्तं छण्हं रहेहि तवणसमुदं मज्झमज्जेणं योईवयइ, योईवइता जेणेव धर्मरक्तका  
रायहाणो, जेणेव धर्मरक्तकाए अणुज्जाणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छता रहं ठवेइ, ठवित्ता दास्यं  
सारहि सदावेइ, सदावित्ता एवं वयासी—

तत्पश्चात् कृष्ण वामुदेव ने चतुरंगिणी सेना को विदा करके पाँच पाण्डवों के साथ छठे

प्राप स्वयं छह रथों में बैठ कर, तत्त्वगुणमुद्र के मध्यभाग में होकर जाने लगे। यति-यति  
 अमरकका राजधानी थी और जहाँ अमरकका का प्रधान उद्यान था, वहाँ पहुँचे। पहुँचने के  
 रीका और दाहकनामक सारथी को बुलाया। उगे बुलाकर कहा—

१८०—‘गच्छह नं तुमं देवाणस्पिया ! अमरकंकारायहानि अणुपविसाहि, पउमणाभस्स रण्णो यामेणं पाएणं पायपीठं अणुक्कमिता कुंतगेणं लेहं पणामेहि; तिरिंति  
 णिडाते साहट्टं, आमुदत्ते रुद्धे कुद्धे कुविए चडिक्किए एवं चवह—‘हं भो पउमणाहा ! अणु  
 पयिया ! वुरंतपंतलवण्णा ! होणवुण्णचाउद्धसा ! तिरिहिरिधोपरिवज्जिया ! अणु व दत्ते  
 किं नं तुमं न जाणासि कण्हस्स वामुदेवस्स भगिणिं बोवइं देवि इहं हव्वं आणमाणे ? तं  
 पच्चप्पिणाहि नं तुमं बोवइं देवि कण्हस्स वामुदेवस्स. अहवा नं जउसज्जे णिगच्छाहि, तं  
 कण्हं वासुदेवे पंचहि पंच्येहि अणुछट्ठे बोवइं देवीए कूवं हव्वमाणे ।’

देवानुप्रिय ! तू जा और अमरकका राजधानी में प्रवेश कर। प्रवेश करके पद्मनाभ समीप  
 जाकर उसके पादपीठ को अपने बाँधों पर से आक्रान्त करके-ठोकर मार करके भाले की नोक  
 द्वारा यह (लेख) पत्र देना। फिर कपाल पर तीन बल वाली मूकुटि चढ़ा कर, भाले लाल करके, यह  
 होकर, क्रोध करके, क्रुपित होकर, और प्रचण्ड रूप धारण कर कहना—‘मेरे पद्मनाभ ! मेरे  
 कामना करने वाले ! अनन्त कुलक्षणों वाले ! पुण्यहीन ! चतुर्दशी के दिन जन्मे हुए (अथवा होना  
 वाली चतुर्दशी अर्थात् कृष्ण पक्ष की चौदस को जन्मे हुए।) श्री, सज्जा और बुद्धि से होन ! माया  
 नहीं बचेगा। क्या तू नहीं जानता कि तू कृष्ण वासुदेव की भगिनी द्रौपदी देवी को यहाँ ले आया है।  
 खैर, जो हुआ सो हुआ, अब भी तू द्रौपदी देवी कृष्ण वासुदेव को लोटा दे अथवा युद्ध के लिए तैयार  
 होकर बाहर निकल। कृष्ण वासुदेव पाँच पाण्डवों के साथ छठे प्राप द्रौपदी देवी को वापिस लेने  
 के लिए अभी-अभी यहाँ आ पहुँचे हैं।

१८१—तए नं ते दाहए सारहो कण्हेणं वामुदेवेणं एवं वुत्ते समाने हट्टवुद्धे जाय पडिमुने  
 पडिमुनेत्ता अमरकंकारायहानि अणुपविसइ, अणुपविसिता जेण्ये पउमणाभे तेजेव उवागच्छता  
 उवागच्छिता करयत्ता जाय यथावेत्ता एवं यथासी—‘एस नं सामी ! मम विणयपडियसी, इमा अणु  
 मम सामियस्स समुहान्ति’ ति कट्ठं आमुदत्ते यामपाएणं पायपीठं अणुक्कमिता, अणुक्कमिता  
 कुंतगेणं लेहं पणामइ, पणामिता जाय कूवं हव्वमाणे ।

तत्पश्चात् वह दाहक सारथि कृष्ण वासुदेव के इस प्रकार कहने पर हर्षित और संतुष्ट हुआ।  
 यावत् उसने यह आदेश अंगीकार किया। अंगीकार करके अमरकका राजधानी में प्रवेश किया।  
 प्रवेश करके पद्मनाभ के पास गया। वहाँ जाकर दोनों हाथ जोड़कर यावत् अभिनन्दन किया और  
 कहा—‘स्वामिन् ! यह मेरी अपनी विनय-प्रतिपत्ति (शिष्टाचार) है।’ मेरे स्वामी के मुख से कही हुई  
 आज्ञा दूसरी है। यह यह है।’ इस प्रकार कह कर उसने नेत्र लाल करके और क्रुद्ध होकर अपने बाँध  
 पर से उसके पादपीठ को आक्रान्त किया—टूटाराया। भाले की नोक से लेस दिया। फिर कृष्ण वासुदेव  
 का समस्त आदेश कह सुनाया, यावत् वे स्वयं द्रौपदी को वापिस लेने के लिए आ पहुँचे हैं।

१८२—तए नं ते पउमणाभे दाहएणं सारहिणा एवं वुत्ते समाने आमुदत्ते तिरिंति निर्गता



तत्पदान् पद्मनाभ ने दाऊक सारथि के इस प्रकार कहने पर नेत्र रबत करके घोर शोक से कपाल पर तीन सल वाली भूकुटी चढ़ा कर कहा—‘देवानुग्रिय ! मैं कृष्ण वासुदेव को दीपदी वापिस नहीं दूंगा । मैं स्वयं ही युद्ध करने के लिए सज्ज होकर निकलता हूँ ।’ इस प्रकार कहकर फिर दाऊक सारथि से कहा—‘हे दूत ! राजनीति में दूत अवश्य है (केवल इसी कारण मैं तुम्हें नहीं मारता) ।’ इस प्रकार कह कर सत्कार—सम्मान न करके—अपमान करके, पिछले द्वार से उसे निकाल दिया ।

१८३—तए नं से शरङ्ग सारथी पद्मनाभेणं अतःकारिण जाव [असम्मानिण अग्रहारेण] निष्कृते सभाये ज्ञेयेय कहे वासुदेवे तेनेव उवाचकृद्द, उवाचच्छिता करयसपरिगृह्यं जाय कण्ठं एवं वयासी—‘एवं जलु अहं’ साभो ! तुभं वयनेणं जाव निष्कृतावेइ ।’

यह दाऊक सारथि पद्मनाभ राजा के द्वारा परस्फुट हुमा, यावत् पिछले द्वार से निकाल दिया गया, तब कृष्ण वासुदेव के पास पहुंचा । पहुंच कर दोनों हाथ जोड़ कर कृष्ण वासुदेव से यावत् बोला—‘स्वामिन् ! मैं आपके वचन (आदेश) ने राजा पद्मनाभ के पास गया था, इत्यादि पूर्ववत्; यावत् उसने मुझे पिछले द्वार से निकाल दिया—इत्यादि समग्र वृत्तान्त कहा ।

पद्मनाभ-वाचक वृत्त

१८४—तए नं से पद्मनाभे अस्मात्तयं सदावेइ, सदावित्ता एवं वयासी—‘अस्मिन्नेय मो देवानुग्रिया ! अभिसेवकं हरिचरणं पडिकप्येह ।’ तवाभंतरं च नं देवापरिण-उववेस-मद्-विकल्पना-विगप्येह जाव [मुनिउर्गेहि उज्जतनेवस्थि-हृदयपरिस्थित्य सुसज्जं जाव अभिसेवकं हरिचरणं पडिकप्येह पडिकप्येत्ता] उयनेइ । तए नं से पद्मनाभे सप्रदं जाव । अभिसेयं बुद्धहइ, बुद्धित्ता ह्यगमं जेनेव कहे वासुदेवे तेनेव पहारेव समणाए ।

कृष्ण वासुदेव के दूत को निकलवा देने के पश्चात् इधर पद्मनाभ राजा ने सेनापति को बुलाया और उससे कहा—‘देवानुग्रिय ! अभिपेक किए हुए हस्तीरत्न को तैयार करके लाओ ।’ यह आदेश सुनकर कुशल आचार्य के उपदेश से उत्पन्न हुई युद्ध की कल्पना के विकल्पों (प्रकारों) से निपुण पुरुषों (महावीरों) ने अभिपेक किया हुआ हस्ती उपस्थित किया । वह उज्ज्वल वेप से परिवृत था, सुसज्जित था । तत्पश्चात् पद्मनाभ राजा कवच आदि धारण करके सज्जित हुमा, यावत् अभिपेक किये हाथी पर सवार हुआ । सवार होकर अश्वों, हाथियों आदि की चतुरगिणी सेना के साथ, वहां जाने को उद्यत हुमा जहां वासुदेव कृष्ण थे ।

१८५—तए नं से कहे वासुदेवे पद्मनाभं रायाणं एज्जमानं पासइ, पातित्ता ते पंच पंडवे एवं वयासी—‘हं भो वारणा । किं नं तुम्हे पद्मनाभेणं सद्धिं जुज्झहिह उवाह पेच्छिहिह ?’

१. प. १९, मूत्र १०७. २. अ. १६ मूत्र १०४ ।

तए नं पंच पंडवा कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—‘अग्ने नं सामी ! जुग्धामो, तुग्भे पेच्छह !

तए नं पंच पंडवे सप्रद जाव पहरणा रहे बुरूहंति, बुरूहिता जेणेव पउमनाभे राया तेन उवागच्छंति, उवागच्छिता एवं वयासी—‘अग्ने पउमनाभे वा राय त्ति कट्ट पउमनाभेणं त्ति संपत्तया यावि होत्था ।

तत्पश्चात् वासुदेव ने पदमनाभ राजा को आता देखा । देख कर वह पाँचो पाण्डवों बोले—‘घरे बालको ! तुम पदमनाभ के साथ युद्ध करोगे या युद्ध देखोगे ?’

तब पाँच पाण्डवों ने कृष्ण वासुदेव से कहा—‘स्वामिन् ! हम युद्ध करेगे और प्राप्त हुनाय युद्ध देखिए ।’

तत्पश्चात् पाँचों पाण्डव तैयार होकर यावत् शस्त्र लेकर रथ पर सवार हुए और वही पदमनाभ था, वही पहुँचे । पहुँच कर ‘भाज हम हैं या पदमनाभ राजा है ।’ ऐसा कहकर वे युद्ध करने में जुट गये ।

पाण्डवों का पराजय

१८६—तए नं से पउमनाभे राया ते पंच पंडवे क्षिप्पामेव ह्यमहिद-पवरवीर-माद-यियडिद-चिधद्वय-पडागे जाव [ किच्छोचगमपाणे ] विसोर्विस्स पडिसेहेइ । तए नं ते पंच पंडवा पउमनाभेण रण्णा ह्यमहिदपवरवीर-पाइयविवडिय जाव पडिसेहिया समाणा अत्थामा जाव आघारमिगत्ति कट्ट जेणेव कण्हे वासुदेवे तेणेव उवागच्छंति । तए नं से कण्हे वासुदेवे ते पंच पंडवे एवं वयासी—‘कण्णं तुग्भे देवानुप्पिया ! पउमनाभेण रण्णा तडि संपत्तया ?’

तए नं ते पंच पंडवा कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—‘एवं खलु देवानुप्पिया ! अग्ने तुग्भेहि अश्वगुप्राया समाणा सप्रद-यद्व-वम्मिय-कयया रहे बुरूहामो, बुरूहिता जेणेव पउमनाभे जाव पडिसेहेइ ।

तत्पश्चात् पदमनाभ राजा ने उन पाँचों पाण्डवों पर शीघ्र ही शस्त्र से प्रहार किया, उनके अहंकार को मय डाला और उनकी उत्तम चिह्न से चिह्नित पताका गिरा दी । मुक्तिल से उनके प्राणों की रक्षा हुई । उसने उन्हें इधर-उधर भगा दिया । तब वे पाँचों पाण्डव पदमनाभ राजा द्वारा शस्त्र से आहत, मथित अहंकार वाले और पतित पताका वाले होकर यावत् पदमनाभ के द्वारा भगाए हुए, शत्रुमना का निराकरण करने में असमर्थ होकर, वासुदेव कृष्ण के पास भाये । तब वासुदेव कृष्ण ने पाँचों पाण्डवों से कहा—‘देवानुप्रियो ! तुम लोग पदमनाभ राजा के साथ किस प्रकार (किस दार्त के साथ) युद्ध में खलबल हुए थे ?’

तब पाँचों पाण्डवों ने कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार कहा—‘देवानुप्रियो ! हम प्राप्त की प्राप्ता पाकर मुञ्जित होकर रथ पर आरुढ़ हुए । आरुढ़ होकर पदमनाभ के सामने गये; इत्यादि सब पूर्ववत् बहना चाहिए, यावत् उसने हमें भगा दिया ।’

१८७—तए नं कण्हे वासुदेवे ते पंच पंडवे एवं वयासी—‘जइ नं तुग्भे देवानुप्पिया ! एवं वयंता-अग्ने, को पउमनाभे राय त्ति पउमनाभेणं तडि संपत्तया, तो नं तुग्भे को पउमनाभे

हयमहियपवर जाय पडिसेहुते । तं पेच्छह नं तुम्हे देवानुप्रिया । 'अहं' जो पडमनामे राय' ति कट्ट  
पडमनामेणं रमा सद्धि जुग्गामि । रहं दुक्कह, दुक्कहिता जेणेव पडमनामे राया तेणेव उवागच्छइ,  
उवागच्छिता सेयं गोघोर-हार-धवलं तणसोल्लिय-सिन्धुवार-कु-वेदु-सन्निभासं निययवलहस हरिसज्जनं  
रिउसेणविनासकरं पंचजणं संखं परामुसइ, परामुसिता मूहवायपुरियं करेइ ।

पाण्डवों का उत्तर सुनकर कृष्ण वासुदेव ने वाच पाण्डवों से कहा—देवानुप्रियो । अगर  
तुम ऐसा बोले होते कि 'हम हैं, पदमनाभ राजा नहीं' और ऐसा कहकर पदमनाभ के साथ युद्ध में  
गुह्य भाग कर घाता पड़ा ।) हे देवानुप्रियो ! अब तुम देखना । 'मैं हूँ, पदमनाभ राजा नहीं' इस  
आकड़ होकर पदमनाभ राजा के साथ युद्ध करता हूँ । इसके बाद कृष्ण वासुदेव रथ पर आकड़ हुए ।  
रथ के समान उज्ज्वल, मल्लिका के फूल, मालती-कुसुम सिन्धुवार-पुष्प, कुन्दपुष्प, और चन्द्रमा  
मान श्वेत, अपनी सेना को हथं उत्पन्न करने वाला पाञ्चजन्य शङ्ख हाथ में लिया और मुख की  
उभे पूर्ण किया, घर्षात् फूँका ।

१८८—तए नं तस्स पडमनाहसस तेणं संखसद्धेणं वल-तिभाए हुए जाव' पडिसेहिए । तए  
पडमनाहसस पणु' परामुसइ, वेडो, धनु' पूरेइ, पूरिसा पणुसइ करेइ । तए न तस्स पडमनाभ  
वल-तिभाए पणुसद्धेणं हयमहिय जाव पडिसेहिए । तए नं से पडमनामे राय' तिभागबभावसे  
उवागच्छइ, उवागच्छिता अमरककं रायहाणि अणुपविसइ, अणुपविसिता दाराईं पिहेइ,  
रोहसज्जे विद्धइ ।

तत्पश्चात् उस शङ्ख के शब्द से पदमनाभ की सेना का तिहाई भाग हत हो गया, यावत्  
या मे भंग गया । उसके बाद कृष्ण वासुदेव ने सारगनामक धनुष हाथ में लिया । यहाँ  
कह लेना चाहिए । धनुष पर प्रत्येक चड़ाई । प्रत्येक चड़ा कर टकार की । तब पदमनाभ  
का दूसरा तिहाई भाग उस धनुष की टकार से हत-मथित हो गया यावत् श्वेत-उधर भाग  
पदमनाभ की सेना का एक तिहाई भाग ही शेष रह गया । अतएव पदमनाभ सामर्थ्यहीन,  
शीर्षहीन और पुत्रपाथ पराक्रम से हीन हो गया । अतएव पदमनाभ सामर्थ्यहीन,  
रथ में असमर्थ होकर शीघ्रतापूर्वक, त्वरा के साथ, अमरकका राजधानी में जा घुसा ।  
उका राजधानी के अन्दर घुस कर द्वार बंद कर लिए । द्वार बंद करके वह नगररोध के  
द्वार स्थित हो गया ।

वन—मूल में आए वेड (वेष्टक)—घर्ष है—एक वस्तुविषयक पदपद्धति । यह वेड यह  
समझना चाहिए । टीका के अनुसार वह इस प्रकार है—  
गणवालचद-इंदधनुसन्निभास वरमहिस-दरिय-दण्डि-दण्डि-सिन्धुवार-उरगवर-  
परहय-अमरकुल-नोल्लिद्ध-धतधोयपट्ट, निजसोविय-मिसिमिसित-मणिरयणघटिया-



हा—देवानुप्रिय ! क्या तुम नहीं जानते कि पुरुषोत्तम कृष्ण वामुदेव का विप्रिय करते हुए तुम के यहा लाये हो ? किन्तु जो हुआ सो हुआ । अब देवानुप्रिय ! तुम जाओ । स्नान करो । पहनने । र धोवने के वस्त्र गीते (पानी नितरते हुए) धारण करो । पहने हुए वस्त्र का धीर नीचा रखो पाँत काँध खुली रखो । अन्तःपुर की रानियो आदि परिवार को साथ में ले लो । प्रधान धीर थंठ न भेंट के लिए लो । मुझे भाये कर लो । इस प्रकार चलकर कृष्ण वामुदेव को दोनों हाथ जोड़ कर पैंतों में गिरो धीर उनको धारण ग्रहण करो । देवानुप्रिय ! उत्तम पुरुष प्रणिपतितवत्सल होते —पर्यात् जो उनके सामने नम्र होते हैं, उन पर दया भीर प्रसन्नता प्रकट करते हैं । (ऐसा करने से तुम्हारी नगरी आदि की रक्षा होगी । अन्यथा नहीं) ।

श्री-समर्पण

१६१—तए नं से पउमनाभे बोवईए बेंबोए एवमहुं पडिमुण्डे, पडिमुणिता ग्हाए जाव सरणं देइ, उवइत्ता करयस एवं वयासी—'विदुा नं देवानुप्रियाणं इडुी जाव परवकमे, तं लामेमि नं पाणुप्पिया ! जाव स्रमंतु नं जाव पाहं भुज्जो एवं करणयाए' ति कट्ठ पंजसिउडे पायवडिए ज्हुस वामुदेवत्स बोवइं बेंबि साहसिय उवणेइ ।

उस समय पद्मनाभ ने द्रौपदी देवी के इस श्रयों को अगीकार किया । अगीकार करके द्रौपदी ने के कपनानुसार स्नान आदि करके कृष्ण वामुदेव की शरण में गया । वहाँ जाकर दोनों हाथ जोड़ कर इस प्रकार कहने लगा—'मैंने आप देवानुप्रिय की श्रद्धा देख ली, पराक्रम देख लिया । हे अनुप्रिय ! मैं क्षमा की प्रार्थना करता हूँ, आप यावत् क्षमा करें । यावत् मैं पुनः ऐसा नहीं हूँगा ।' इस प्रकार कह कर उसने हाथ जोड़े । पैंतों में गिरा । उसने अपने हाथों द्रौपदी देवी सौपी ।

१६२—तए नं से कण्हे वामुदेवे पउमनाभं एवं वयासी—'हं भो पउमनाभा ! अण्णसियद-  
त्थया ! किण्णं तुमं ण जाणसि मम भगिणि बोवइं बेंबि इह हव्वमाणमाने ? तं एवमथि गए णत्थि ममाहिता इयाणि मयमत्थि' ति कट्ठ पउमनाभं पडिवित्तजेइ, पडिवित्तजित्ता बोवइं बेंबि गिण्हइ, गिह्हा रहं उक्खेइ, उक्खिहा जेणेव पथ पंडवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता पंचण्हं पंडवान बोवइं वं साहसिय उवणेइ ।

तत्पश्चात् कृष्ण वामुदेव ने पद्मनाभ ने इस प्रकार कहा—'भरे पद्मनाभ अप्रार्थित (भृत्य) प्रार्थना करने वाले ! क्या तू नहीं जानता कि तू मेरी भगिनी द्रौपदी देवी को जल्दी से यहा ले या है ? ऐसा होने पर भी, अब तुझे मुझसे भय नहीं है !' इस प्रकार कह कर पद्मनाभ को छुट्टी । उसे छुटकारा देकर द्रौपदी देवी को ग्रहण किया और रख पर झालूड हुए । रख पर झालूड कर पाच पाण्डवों के समीप आये । वहाँ आकर द्रौपदी देवी को हाथों-हाथ पाचों पाण्डवों को प दिया ।

१६३—तए नं से कण्हे पंचहि पंडवेहि सडि अण्णद्धे छहि रहेहि लवणसमुदं मग्गंमग्गेणं तेय जंबुद्वीपे बोवे, जेणेव भारहे वासे, तेणेव पहारेत्थ गमणाए ।

तत्पश्चात् पाच पाण्डवों के साथ, छठे आप स्वयं कृष्ण वामुदेव छह रथों में बँठ कर, एणसमुद्र के बीचों बीच होकर जिधर जम्बूद्वीप था और जिधर भारतवर्ष था, उधर जाने की उद्यत ।

१६४—तेणं कालेणं तेणं समएणं धायइसंडे पुरच्छिमद्धे भारहे यासे चंपा नामं होत्था । पुण्णमहे चेइए । तत्थ णं चंपाए णयरीए कविले णामं वासुदेवे राया होत्था, मग्गं वण्णमो ।

उस काल और उस समय मे, घातकी खंड द्वीप में, पूर्वाधं भाग मे, चम्पा नामक नगरी पूर्णभद्र नामक चैत्य था । उस चम्पा नगरी में कपिलनामक वासुदेव राजा था । वह महान् हिम पर्वत के समान महान् था । यहा राजा का वर्णन कह लेना चाहिए ।

वासुदेवो का ध्वनि-मिलन

१६५—तेणं कालेणं तेणं समएणं मुणिसुव्वए अरहा चंपाए पुण्णमहे समोत्तडे । कविले धम्मं सुणेइ । तए णं से कविले वासुदेवे मुणिसुव्वयस्स भरहमो धम्मं सुणमाणे कण्हस्स वासुदेव संत्तसहं सुणेइ । तए णं तस्स कविलस्स वासुदेवस्स इमेपाक्खे अग्गभट्ठियए समुत्पज्जिस्सा—‘किं धायइसंडे’ बीवे भारहे यासे दोच्चे वासुदेवे समुत्पण्णे जस्स णं अयं संत्तसहं ममं पिव मूहान्तां पियंमइ ?’

उस काल और उस समय में मुनिमुग्रतनामक भरिहन्त चम्पा नगरी के पूर्णभद्र चंपा पधारे । कपिल वासुदेव ने उनसे धर्मापदेश श्रवण किया । उसी समय मुनिमुग्रत भरिहन्त ने श्रवण करते-करते कपिल वासुदेव ने कृष्ण वासुदेव के पावजन्य शस्त्र का शब्द सुना । तब कपिल वासुदेव के चित्त में इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ—‘क्या घातकीखंड द्वीप के भारत में दूसरा वासुदेव उत्पन्न हो गया है ? जिसके शस्त्र का शब्द ऐसा फैल रहा है, जैसे मेरे मुग की वज्रों पूरित हुआ हो—मैंने बजाया हो ।’

१६६—‘कपित्ता वासुदेवा, सहाइ (सुणेइ)’ मुणिसुव्वए अरहा कविलं वासुदेव ए वपात्तो—‘से णुं ते कवित्ता ! वासुदेवा ! मम अंतिए धम्मं निसामेमाणस्स संत्तसहं आकम्मिण इमेपाक्खे अग्गभट्ठियए समुत्पण्णे—‘किं मण्णे जाय पियंमइ, से नूणं कवित्ता ! वासुदेवा ! अग्गं समट्ठे ?’

‘हंता प्रसिद्ध ।’

‘कपिल वासुदेव’ इस प्रकार से संबोधित करके मुनिमुग्रत भरिहन्त ने कपिल वासुदेव को कहा—‘हे कपिल वासुदेव ! मेरे पास धर्म श्रवण करते हुए मुझे यह विचार आया है कि—एक भूतभोज में दूसरा वासुदेव उत्पन्न हो गया है, जिसके शस्त्र का यह शब्द फैल रहा है यदि; हे कपिल वासुदेव ! मेरा यह धर्म (कथन) सत्य है ?’

(कपिल वासुदेव ने उत्तर दिया)—‘हां सत्य है ।’

१६७—‘ओ सन्नु कवित्ता ! वासुदेवा ! एवं मुग वा, मवइ वा, भवित्तइ वा जण्ण एवे केने एवे तुपे, एवे समए हुवे घरह्ता वा चरह्वट्ठो वा बलदेवा वा वासुदेवा वा उत्पज्जिस्सु वा उत्पज्जिस्सु वा, उत्पज्जिस्सु नि वा । एव सन्नु वासुदेवा ! जइहोताओ दोवाओ भारहाओ वमं ।’

पणाउरनयराभो पंडुस्त रणो स ग्हा पंचगुहं पंडवाणं भारिया बोवई देवी तव पउमणामस्त रणो  
 वसंगतिएणं देवेणं अमरकंकाणयारि साहरिया । तए णं से कण्हे वासुदेवे पंचहि पंडवेहि सद्धि  
 पद्धे छहि रहेहि अमरकंकां रामहाणि बोवईए देवोए कूबं हव्वभागए । तए णं तस्स कण्हस्स  
 सुबं वस्स पउमनात्तेणं रण्णा सद्धि संगामं ॥ गामेमाणस्स अयं स'खसह' तव मुहवायपुरिते इव इहे  
 ते इहेव विपंभइ ।'

मुनिमुवत धरिहत्त ने पुनः कहा—'कपिल वासुदेव ! ऐसा कभी हुआ नहीं, होता नहीं और  
 होगा नहीं कि एक क्षेत्र में एक ही युग में और एक ही समय में दो तीर्थंकर, दो चक्रवर्ती दो बलदेव  
 रमया दो वासुदेव उत्पन्न हुए हों, उत्पन्न होते हों या उत्पन्न होयें । हे वासुदेव ! जम्बूद्वीप नामक  
 दीप से, भरतक्षेत्र से, हस्तिनापुर नगर से पाण्डु राजा की पुत्र-पत्नी और पांच पाण्डवों की पत्नी शोपदी  
 देवी को तुम्हारे पद्मनाभ राजा का पहले का साथी देव हरण करके ले गया था । तब कृष्ण वासुदेव  
 पांच पाण्डवों समेत घाय स्वयं छठे शोपदी देवी को वापिस छीनने के लिए शीघ्र भाये हैं । वह पद्मनाभ  
 राजा के साथ सग्राम कर रहे हैं । अतः कृष्ण वासुदेव के शंख का यह शब्द है, जो ऐसा जान पड़ता है  
 कि तुम्हारे मुख की वायु से पूरित किया गया हो और जो स्पष्ट है, कान्त है और यही तुम्हें सुनाई  
 दिया है ।

१६८—तए णं से कविले वासुदेवे मुणिसुब्बयं बंदइ, नमंसइ, वंदिसा, नमंसित्ता एवं वयासी—  
 'गच्छामि णं ग्रहं भंते ! कण्हे वासुदेवं उत्तमपुरिसं पात्तामि ।'

तए णं मुणिसुब्बए अरहा कविलं वासुदेवं एवं वयासी—'नो छसु देवानुप्पिया । एवं नूयं  
 वा, भवइ वा, भविस्सइ वा जण्मं धरिहंता वा अरिहंतं पासंति, चक्कवट्ठी वा चक्कवट्ठि पासंति,  
 बलदेवा वा बलदेवं पासंति, वासुदेवा वा वासुदेवं पासंति । तह वि य ण तुमं कण्हस्स वासुदेवस्स  
 सवणसमुहं मग्गंमग्गेण बोदवमाणस्स सेयापीयाइं मयग्गाइं पासिहिसि ।'

तत्पश्चात् कपिल वासुदेव ने मुनिमुवत तीर्थंकर को वन्दना की, नमस्कार किया । वन्दना-  
 नमस्कार करके कहा—'मगवन् ! मैं जाऊँ और पुरुषोत्तम कृष्ण वासुदेव को देखूँ—उनके दर्शन करूँ ।'

तब मुनिमुवत धरिहन्त ने कपिल वासुदेव से कहा—देवानुप्रिय ! ऐसा हुआ नहीं, होता नहीं  
 एक  
 इ के

१६९—तए णं से कविले वासुदेवे मुणिसुब्बयं बंदइ, नमंसइ, वंदिसा नमंसित्ता हत्थिलंधं  
 वुक्कहइ, वुक्कहिता सिग्घं सिग्घं जेणव वेत्ताउते तेणव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता कण्हस्स वासुदेवस्स  
 सवणसमुहं मग्गंमग्गेण बोदवमाणस्स सेयापीयाइं मयग्गाइं पासइ, पासित्ता एवं वयइ—'एस णं मम  
 सरिसपुरिते उत्तमपुरिते कण्हे वासुदेवे सवणसमुहं मग्गंमग्गेण बोदवयइ' ति कट्ठ पंचयन्नं स'खं  
 परामुत्तइ मुहवायपुरियं करेइ ।

तत्पश्चात् कपिल वासुदेव ने मुनिमुवत तीर्थंकर को वन्दन और नमस्कार किया । वन्दन

१. पाठांतर—'इव विपंभइ' ।

नमस्कार करके वह हाथों के स्पर्श पर धाकड़ हुए । धाकड़ होकर जल्दी-जल्दी जहाँ वेतावत (नर समुद्र का किनारा) था, वहाँ भागे । वहाँ आकर तबण समुद्र के मध्य में होकर जाते हुए कृष्ण वासुदेव की श्वेत-पीत ध्वजा का अग्रभाग देगा । देव कर कहने लगे—'यह मेरे समान पुरुष है च पुरुषोत्तम कृष्ण वासुदेव हैं तबण के मध्य में होकर जा रहे हैं ।' ऐसा कह कर कपिल वासुदेव ने अपना पाञ्चजन्य शस्त्र हाथ में लिया और उसे अपने मुख की वायु से पूरित किया—'तूँ का ।

२००—तए नं से कण्ठे वासुदेवे कविलस्त वासुदेवस्त संतसदं प्रायत्नेह, प्रायकित्ता पंचयमं जाय पूरियं करेह । तए नं वो वि वासुदेवा संतसहसामायारि करंति ।

तब कृष्ण वासुदेव ने कपिल वासुदेव के शस्त्र का शब्द सुना । सुनकर उन्होंने भी अपने पाञ्चजन्य की वायत् मुख की वायु से पूरित किया । उस समय दोनों वासुदेवों ने शस्त्र शब्द की समाचारी की, अर्थात् शस्त्र के शब्द द्वारा मिलाप किया ।

२०१—तए नं से कविले वासुदेवे जेनेय अमरकंका तेनेय उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अमरकंका रायहाणि स'भगसोरणं जाय<sup>१</sup> पासइ, पासित्ता पउमणाभं एवं वयासी—'किन्नं देवानुप्पिया । एसा अमरकंका रायहाणी स'भग जाय<sup>२</sup> सप्रियइया ?'

तत्पश्चात् कपिल वासुदेव जहाँ अमरकंका राजधानी थी, वहाँ भाए । आकर उन्होंने देखा कि अमरकंका के तोरण आदि टूट-फूट गये हैं । यह देख कर उन्होंने पद्मनाभ से पूछा—'देवानुप्पिन ! अमरकंका के तोरण आदि भग्न होकर क्यों पड़ गए हैं ?

२०२—तए नं से पउमणाभे कविलं वासुदेवं एवं वयासी—'एवं खलु सामी ! जंहुदीवाओ दीवाओ भारहामो वासाओ इहं हृदयमागम कण्ठेणं वासुदेवेणं सुग्गे परिमूय अमरकंका जाय<sup>३</sup> सप्रियाइया ।'

तब पद्मनाभ ने कपिल वासुदेव से इस प्रकार कहा—'स्वामिन् ! जम्बूद्वीपनामक द्वीप से, भारतवर्ष से, यहाँ एकदम आकर कृष्ण वासुदेव ने, आपका पराभव करके, आपका अपमान करके, अमरकंका की वायत् गिरा दिया है—अर्थात् इस भग्नावस्था में पहुँचा दिया है ।'

२०३—तए नं से कविले वासुदेवे पउमणाहस्त अंतिए एयमट्ठं सोच्चा पउमणाहं एवं वयासी—'हं भो पउमणाभा ! अपत्थियपत्थिया । कि नं तुमं न जाणसि मम सरिसपुरिसस्त कण्हस्त वासुदेवस्त विप्पियं करेमाणे ?' आसुत्ते जाय [कट्टे कुविए चंडिबिकए मितिमितेमाणे तिवतियं भिउडि निडाले साहट्टं] पउमणाहं णिविसयं आणवेइ, पउमणाहस्त पुत्ता अमरकंकारायहाणीए महया महया रायानिसेएणं अभिसिचइ, जाय पडिणए ।

धीकृष्ण का सोटना : पाँडवों की सारास

तत्पश्चात् कपिल वासुदेव, पद्मनाभ से उत्तर सुनकर पद्मनाभ से बोले—'मेरे पद्मनाभ ! अप्रापित की प्रार्थना करने वाले ! क्या तू नहीं जानता कि तू ने मेरे समान पुरुष कृष्ण वासुदेव का



प्रतिष्ठ किया है ? इस प्रकार कहकर वह क्रुद्ध हुए, यावत् [रुष्ट, कुपित, प्रवण्ड हुए, मस्तक पर त्रिवलियुक्त भृकुटि चडाकर] पद्मनाभ को देश-निर्वासन की आज्ञा दे दी । पद्मनाभ के पुत्र को अमरकका राजधानी में महान् राज्याभिषेक से अभिषिक्त किया । यावत् कपिल वासुदेव वापिस चले गये ।

२०४—तए नं से कण्हे वासुदेवे तवणसमुद्धं मज्झमज्झेणं वीइवपइ, गंग उवागए, ते पंच पंडवे एवं वपासो—‘गच्छहं तुम्हे देवानुप्पिया ! गंगामहानदि उत्तरह जाव ताव ग्रहं सुद्धियं देवं तवणाहिबई पासामि ।’

तए न पंच पंडवा कण्हेन वासुदेवेणं एवं बुत्ता समाणा जेणेव गंगा महानदी तेणेव उवागच्छति उवागच्छिता एगट्ठियाए पावाए मग्गणपवेसणं करेति, करिता एगट्ठियाए नावाए गंगामहानदि उत्तरति, उत्तरिता मग्गणमणं एवं वयंति—‘पहं देवानुप्पिया ! कण्हे वासुदेवे गंगामहानदि बाहाहि उत्तरितए ? उवाहं गो पन्न उत्तरितए ?’ ति कट्ठ एगट्ठियं नायं जूमेति, जूमित्ता कण्हे वासुदेवे पडिवालेमाणा पडिवालेमाणा चिट्ठं ति ।

इधर कृष्ण वासुदेव तवण समुद्र के मध्य भाग से जाते हुए गंगा नदी के पास आये । तब उन्होंने पांच पाण्डवों से कहा—‘देवानुप्रियो ! तुम लौभ जाओ । जब तक गंगा महानदी की उतरो, तब तक मैं अश्वत्थसमुद्र के अधिपति सुस्थित देव से मिल लेता हूँ ।’

तब वे पाँचों पाण्डव, कृष्ण वासुदेव के ऐसा कहने पर जहाँ गंगा महानदी थी, वहाँ आये । आकर एक नौका की खोज की । खोज कर उस नौका से गंगा महानदी उतरे । उतरकर परस्पर इस प्रकार कहने लगे—‘देवानुप्रिय ! कृष्ण वासुदेव गंगा महानदी को अपनी भुजाओं से पार करने में समर्थ हैं अथवा समर्थ नहीं हैं ? (चलो, इस बात को परीक्षा कर) ऐसा कह कर उन्होंने वह नौका दिया दी । दिया कर कृष्ण वासुदेव की प्रतीक्षा करते हुए स्थित रहे ।

२०५—तए नं से कण्हे वासुदेवे सुद्धियं तवणाहिबई पासइ, पासित्ता जेणेव गंगा महानदी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता एगट्ठियाए सच्चमो समंता मग्गणपवेसणं करेइ, करिता एगट्ठिय नायं अपासमाणे एगाए बाहाए रहं सतुरगं ससारहि गेह्हइ, एगाए बाहाए गंगं महानदि वासहि जोयणाई अज्जजोयणं च विरियणं उत्तरिजं पयत्ते यावि होत्था ।

तए नं से कण्हे वासुदेवे गंगामहानदिई बहुमज्झवेसमाणं संपत्ते समाणे सते तंते परितंते बड्ढेए जाए यावि होत्था ।

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव तवणाधिपति सुस्थित देव से मिले । मिल कर जहाँ गंगा महानदी थी, वहाँ आये । वहाँ आकर उन्होंने सब तरफ नौका की खोज की पर खोज करने पर भी नौका दिखाई नहीं दी । तब उन्होंने अपनी एक भुजा से अश्व और सारथी सहित रथ ग्रहण किया और दूसरी भुजा से वासठ योजन और आधा योजन अर्थात् साढ़े वासठ योजन विस्तार वाली गंगा महानदी को पार करने के लिए उद्यत हुए ।

कृष्ण वासुदेव जब गंगा महानदी के बीचों बीच पहुँचे तो थक गये, नौका की इच्छा करने लगे और बहुत श्বেदयुक्त हो गये । उन्हें पसीना आ गया ।

२०६—तए णं कण्हस्स वामुदेवस्स इमे एयाकूवे अग्गहस्सियां जाव समुत्पज्जिया—अहो पंच पंडवा महाबलवग्गा, जेहि गंगा महानदी बामिद्धि जोयणां अज्जोयणं च त्रियिप्पा बर्रा उत्तिष्णा । इच्छंनएहि णं पंचहि पंडवेहि पउमणांने राया जाव णो पडिसेहि ।’

तए णं गंगा देवो कण्हस्स इमं एयाकूवं अग्गहस्सियं जाव जाणिता माहं विमरइ । तए णं कण्हे वामुदेवे मुहत्तं तरं समासासेइ, समासासित्ता गंगामहानदी बामिद्धि जाव उत्तरइ, उत्तरित्ता देवो पंच पंडवा तेणव उवागच्छइ उवागच्छित्ता पंच पंडवे एवं वयासी—अहो णं तुभे देवानुप्पिया ! महा बलवग्गा, जेणं तुभेहि गंगा महानदी बामिद्धि जाव उत्तिष्णा, इच्छंतएहि पउमनाहे जाव णो पडिसेहि ।

उस समय कृष्ण वामुदेव को इस प्रकार का विचार प्राया कि—‘अहा, पाँच पाण्डवों बलवान् हैं, जिन्होंने साठे बासठ योजन विस्तार (पाट) वाली गंगा महानदी अपने बाहुओं ने पार करली ! (जान पड़ता है कि) पाँच पाण्डवों ने इच्छा करके प्रयात् चाह कर या जान-बूझ कर ही पद्मनाभ राजा को पराजित नहीं किया ।’

तब गंगा देवी ने कृष्ण वामुदेव का ऐसा अभ्यवसाय यावत् मनोगत संकल्प जानकर माह दे दी—जल का थल कर दिया । उस समय कृष्ण वामुदेव ने थोड़ी देर विथाम लिया । विथाम लेने के बाद साठे बासठ योजन विस्तृत गंगा महानदी पार की । पार करके पाँच पाण्डवों के पास पहुँचे । वहाँ पहुँच कर पाँच पाण्डवों से बोले—‘अहो देवानुप्रियो ! तुम लोग महाबलवान् हो, क्योंकि तुमने साठे बासठ योजन विस्तार वाली गंगा महानदी अपने बाहुबल से पार की है । तब तो तुम लोगों ने बाह कर ही पद्मनाभ को पराजित नहीं किया ।’

२०७—तए णं ते पंच पंडवा कण्हेणं वामुदेवेणं एवं वत्ता समाणा कण्हं वामुदेवं एवं वयासी—‘एवं खलु देवानुप्पिया ! अहो तुभेहि विसस्सिया समाणा जेणव गंगा महानदी तेणव उवागच्छामो, उवागच्छित्ता एगट्टियाए भग्गणवसेसणं तं जेव जाव णूमेमो, तुभे पडिवासेमाण चिट्ठामो ।’

तब कृष्ण वामुदेव के इस प्रकार कहने पर पाँच पाण्डवों ने कृष्ण वामुदेव से कहा—‘देवानुप्रिय ! आपके द्वारा विसर्जित होकर प्रयात् प्राप्ता पाकर हम लोग जहाँ गंगा महानदी थी, वहाँ आये । वहाँ आकर हमने नौका की खोज की । उस नौका से पार पहुँच कर आपके बल की परीक्षा करने के लिए हमने नौका छोड़ा दी । फिर आपकी प्रतीक्षा करते हुए हम यहाँ ठहरे हैं ।’

भीकृष्ण का पाण्डवों पर रोष—देशनिर्वासन

२०८—तए णं कण्हे वामुदेवे तेति पंचण्हं पंडवाणं एयमट्ठं सोच्चा णितम्म आसुरत्ते जाव तियत्तियं एवं वयासी—‘अहो णं जया मए सवणसमुद्धं बुवे जोयणसयसहस्सा वित्थिअं वोईवइत्ता पउमणां हयमहिय जाव पडिसेहिता अमरकंका संभग्गा, वोवई साहत्थिय उवणीया, तया णं तुभेहि मम माहएणं विण्णायं, इयाणि जाणिस्सह ।’ त्ति कट्ठं सोहवंडं परामुसइ, पंचण्हं पंडवाणं रहे चूरेइ, चूरित्ता णित्थिसए आणवेइ आणवित्ता तयय णं रहमहणे नामं कोट्ठे णिविट्ठे ।

पाँच पाण्डवों का यह भयं (उत्तर) सुनकर श्रीर समझ कर कृष्ण वामुदेव कुपित हो उठे ।



मुस्थित देव मे मिल कर प्राये । इत्यादि सब पूर्वजन्तु—समय वृत्तान्त कहना, केवल कृष्ण के मन मे जो विचार उत्पन्न हुआ था, वह नहीं कहना । यार ! कुपित होकर उन्होंने हमें देशनिर्वासन से आज्ञा दे दी ।

२११—तए नं से पंडूराया ते पंच पंडवे एवं ययासी—‘बुद्धं नं पुता ! कयं कण्हस्त वासुदेवस्त विविषं करेमाणेहि ।’

तब पाण्डु राजा ने पाँच पाण्डवों मे कहा—‘पुत्रो ! तुमने कृष्ण वासुदेव का प्रिय (मनित) करके बुरा काम किया ।’

२१२—तए नं से पंडू राया कीर्ति बेवि सहायेइ, सहायिता एवं ययासी—‘गच्छं नं तु मे देवानुत्पिया । बारयइ कण्हस्त वासुदेवस्त नियेबेहि—‘एवं सनु बेवानुत्पिया । तुम्हे पंच पंडवा निविसया आणत्ता, तुमं च नं बेवानुत्पिया । बाहिण्डुभरहस्त सामी, तं सविसंतु, बे देवानुत्पिया । ते पंच पंडवा कयरं बेसं या विसि या विविसि या गच्छंतु ?’

तदनन्तर पाण्डु राजा ने कुन्ती देवी को बुला कर कहा—‘देवानुप्रिये ! तुम द्वारका जाओ और कृष्ण वासुदेव से निवेदन करो कि—‘हे देवानुप्रिय ! तुमने पाँच पाण्डवों को देशनिर्वासन से आज्ञा दी है, किन्तु हे देवानुप्रिय ! तुम तो समग्र दक्षिणार्ध भरत क्षेत्र के अधिपति हो । अतएव हे देवानुप्रिय ! आदेश दो कि पाँच पाण्डव किस देश मे या दिशा अथवा किस विदिशा मे जाएँ—कहाँ निवास करे ?’

२१३—तए नं सा कीर्तो पंडूणा एवं पुता समाणी हसियखंधं बुक्कहइ, बुक्कहिता जहा हेत्ता जाव—‘स विसंतु नं पिउरया ! किमागमनपप्रोयणं ?’

तए नं सा कीर्तो कण्हं वासुदेवं एवं ययासी—एवं सनु पुता ! तुमे पंच पंडवा निविसया आणत्ता, तुम च नं बाहिण्डुभरह [स्त सामी] । तं स विसंतु नं बेवानुत्पिया ते पंच पंडवा कयरं बेसं या विसं या ] जाव विविसि या गच्छंतु ?

तब कुन्ती देवी, पाण्डु राजा के इस प्रकार कहने पर हाथी के स्कंध पर झरूट होकर पहुँचे कहे अनुसार द्वारका पहुँची । अग्र उद्यान में ठहरी । कृष्ण वासुदेव को सूचना करवाई । कृष्ण स्वागत के लिए पाये । उन्हें महल में ले गये । यावत् पूछा—‘हे पितृभगिनी ! आज्ञा कीजिए, आपके आने का क्या प्रयोजन है ?’

तब कुन्ती देवी ने कृष्ण वासुदेव से कहा—‘हे पुत्र ! तुमने पाँचों पाण्डवों को देश-निकाले का आदेश दिया है और तुम समग्र दक्षिणार्ध भरतक्षेत्र के स्वामी हो, तो बतलाओ वे किस देश मे, किस दिशा या विदिशा मे जाएँ ?’

पाण्डुपुरा की स्थापना

२१४—तए नं से कण्हं वासुदेवं कीर्ति बेवि एवं ययासी—‘प्रपुइयणा नं पिउरया ! उत्तमपुरिता—वासुदेवा बसबेवा चरकयट्टी । तं गच्छंतु नं बेवानुत्पिया । पंच पंडवा बाहिणिसं येयाति, तस्य पंडुमठुरं नियेवंतु, ममं अविट्टसेयगा भयतु ।’ त्ति कट्टु सबकारेइ, सम्माणेइ, जाव [सबकारिता संमानिता] पडिविसज्जेइ ।

तब कृष्ण वामदेव ने कुन्ती देवी ने कहा—'विभूमिनी ! उत्तम पुष्ट भर्षात् वामदेव, दिग् धीर पञ्चरत्नो मयि विद्यमान होते हैं—उनके बचन मिथ्या नहीं होते । ( वे कहकर बदलते नहो पतः मे देवानिर्वाण की धात्रा वापि सेने में प्रथमवर्ष है ) । देवानुग्रहे ! पाँचों पाण्डव दक्षिण नाके केनाट ( समुद्र किनारे ) जाएँ वही पाण्डु-मथुरा नामक नयी नगरी बसायें धीर मेरे प्रदुष्ट एक होकर रहे पत्नी मेरे सामने न जाएँ ।' इस प्रकार कहकर उन्होंने कुन्ती देवी का सत्कार-समान किया, यावत् [सत्कार-समान करके] उन्हें बिदा रो ।

२१३—तए नं ता कौन्ती बंधो जाव पंडुस एवमहुं निवेदं । तए नं पंडु राजा पंच पंडवे ह्यवेह, सदाविता एवं वयातो—'गच्छतु नं तद्वने पुता ! इतिनिवृत्तं येषाति, तद्य नं तद्वने पंडुमहुरं निवेदेह ।'

तए नं पंच पंडवा पंडुस रण्यो जाव [एवमहुं] तह त्ति पडिमुनेति, पडिमुनिता सवत्ताहमा ह्ययय हृदिपणाउराधो पडिनिवृत्तमिति, पडिनिवृत्तमिस्ता जेनेव इतिनिवृत्तं येषाति तेनेव उवागच्छति, उवागच्छिता पंडुमहुरं नगरं निवेदंति, निवेदिता तद्य नं ते विपुलभोग-समितिसमन्तामया यावि होयमा ।

तत्पश्चात् कुन्ती देवी ने डारवती नगरी से धाकर पाण्डु राजा को यह धर्म (वृत्तान्त) निवेदन किया । तब पाण्डु राजा ने पाँचों पण्डवों को मुखा कर कहा—'पुत्रो ! तुम दक्षिणी केनाट (समुद्र के किनारे) जाओ धीर वही पाण्डुमथुरा नगरी बसा कर रहो ।'

तब पाँचों पाण्डवों ने पाण्डु राजा की यह बात 'तयास्तु—ठीक है' कह कर स्वीकार की । स्वीकार करके बल धीर बाहुनों के साथ छोटे धीर हाथी [बादि की चतुरंगिणी सेना तथा प्रत्येक मर्दों की] साथ लेकर हस्तिनापुर से बाहर निकले । निकल कर दक्षिणी केनाट पर पहुँचे । पाण्डुमथुरा नगरी की स्थापना की । नगरी की स्थापना करके वे वही विपुल भोगों के समूह से युक्त हो गये—सुगन्धक निवास करने लगे ।

पाण्डुदेव का जन्म

२१४—तए नं मा डोवई बंधो भन्नया कमाह धावणसत्ता जाया यावि होयमा । तए नं डोवई बंधो यवणहुं मातार्ण धनुपडिपुण्णानं जाव तद्वचं बारग पयाया सुमाय, कोमलयं गयतानुप-समाने, शिष्यसत्ताहसस इमं एयाह्वं गोण्णं गुणनिष्ठज्जं नामधेयंज करेति—अम्हा नं भण्हं एस बारए पचण्हं पंडवाणं पुत्ते डोवईए डोवीए भतए, तं होउ भण्हं इमसस बारगसस नामधेयंज 'पंडुतेणे । तए नं तसस बारगसस अम्मपियरो नामधेयंज करेति पंडुमेण त्ति ।

तत्पश्चात् एक बार किसी समय द्रौपदी देवी गर्भवती हुई । फिर द्रौपदी देवी ने नौ मास यावत् संपूर्ण होने पर सुन्दर रूप वाले धीर सुकुमार तथा हाथी के तानु के समान कोमल बालक को जन्म दिया । बारह दिन व्यतीत होने पर उस बालक के माता-पिता को ऐसा विचार उत्पन्न हुआ कि—'क्योंकि हमारा यह बालक पाँच पाण्डवों का पुत्र है धीर द्रौपदी देवी का भ्रातृज है, भतः दस बालक का नाम 'पाण्डुमेन' होना चाहिए । तत्पश्चात् उस बालक के माता-पिता ने उसका 'पाण्डुदेव' नाम रखा ।

वियेचन—प्रस्तुत गूत्र के पश्चात् 'अगमुत्ताणि' में रामपमेणिय गूत्र के प्राधार पर लिखित पाठ अधिक दिया गया है :—

तए एं तं पडुसेणं दारवं भम्मापिगरो सादरेगुवामयं भेव सोहणमि तिहिररु-मुयं  
कलायरियस्स उवसेति ।

तए ए से कलायरिए पडुसेणं कुमारं तेहाइयामो गणियणहाणामो राउणियपववज्जानं  
बावत्तरि कलामो सुत्तमो य धत्यमो य करणमो य सेहावेद, सितामावेद ।

जाव मल भोगसमस्ये जाए । जुवराया जाव विहरइ ।'

अर्थात्—'पाण्डुसेन पुत्र जब कुछ अधिक पाठ वर्ण का हो गया तो माता-पिता मुष्टि  
करण और मुहूर्त' में उसे कलाचार्य के पास ले गये ।

कलाचार्य ने पाण्डुसेन कुमार को सेरानकला से प्रारम्भ करके गणितप्रधान और मुहूर्त  
तक की बहत्तर कलाएँ सूत्र-मूलपाठ-से, अर्थ से और करण-प्रयोग से सिखलाई ।

यथासमय पाण्डुसेन मानवीय भोग भोगने में समर्थ हो गया । यह युवराज पद पर प्रतिष्ठ  
हो गया ।

प्रस्तुत पाठ के स्थान पर टीका वाली प्रति में संक्षिप्त पाठ इस प्रकार दिया गया है—

'बावत्तरि कलामो जाव भोगसमस्ये जाए, जुवराया जाव विहरइ ।'

यद्यपि यह वर्णन प्रत्येक राजकुमार के लिए सामान्य है, इसमें कोई नवीन-मौलिक बात नहीं  
है, तथापि इससे आगे के पाठ में पाण्डवों की दीक्षा का प्रसंग वर्णित है । बालक के नामकरण के पक्ष  
ही माता-पिता के दीक्षा-प्रसंग का वर्णन आ जाए तो कुछ झटपटा-सा लगता है, अतएव बीच में  
पाठ का संकलन करना ही उचित प्रतीत होता है । पुत्र युवराज हो तो उसे राजसिंहासन पर धारण  
करके माता-पिता प्रयोजित हो जाए, यह जैन-परम्परा का वर्णन अन्यत्र भी देखा जाता है ।  
अतएव किसी-किसी प्रति में उल्लिखित पाठ न उपलब्ध होने पर भी यहाँ उसका उल्लेख आवश्यक  
प्रतीत होता है ।

स्वविर-आगमन : धर्मश्रवण

२१७—तेणं कालेणं तेणं समएणं धम्मघोसा' धेरा समोसडा । परिता निगमा । पाप  
निगमा, धम्मं सोच्चा एवं यथासी—'जं नवरं देवाणुप्पिया ! बोधइं देवि आपुच्छामो, पंडुसेनं  
कुमारं रज्जे ठायेमो, तमो पच्छा देवाणुप्पियाणं अंतिए भुंढे भवित्ता जाव पववामो ।',

'महासुहं देवाणुप्पिया !'

उस काल और उस समय में धर्मघोष स्वविर पधारें । धर्मश्रवण करने और उन्हें बनाने  
करने के लिए परिपक्व निकाली । पाण्डव भी निकले । धर्म श्रवण करके उन्होंने स्वविर से कहा—  
'देवानुप्रिय ! हमें संगार से विरक्ति हुई है, अतएव हम दीक्षित होना चाहते हैं; केवल द्रोणी देवों  
से अनुमति ले लें और पाण्डुसेन कुमार को राज्य पर स्थापित कर दें । तत्पश्चात् देवानुप्रिय के निकट  
मुण्डित होकर यावत् प्रव्रज्या ग्रहण करेंगे ।

तब स्वविर धर्मघोष ने कहा—'देवानुप्रियो ! जैसे तुम्हें सुन उपजे, वैसे करो ।'

१. इन्हीं प्रतिषा में 'धम्मघोषा' पद नहीं है ।

२१८—तए णं ते पंच पंडवा ज्ञेयेव सए गिहे तेजेव उवागच्छंति, उवागच्छिता बोवइं वेवि  
गवेति, सद्वाविता एवं वयासी—एवं रतु देवानुप्पिए ! अग्नेहि व राणं अंतिए धम्मे निज्जे जाव  
वयासी, तुमं देवानुप्पिये ! किं करेसि ?

तए णं सा बोवईं देवी ते पंच पंडवे एवं वयासी—‘अहं णं तुम्हे देवानुप्पिया ! संसार-  
उत्थिगा पच्चयह, ममं के अण्णे प्राप्तवे वा जाव [आहारे वा पक्खिंये वा] भविस्सइ ! अहं पि य  
संसारभउत्थिगा देवानुप्पिएहि सद्धि पच्चइस्सामि ।’

तत्पदचात् पाँचों पाण्डव प्रपने भवन में आये । आकर उन्होंने द्रौपदी देवी को बुलाया और  
उससे कहा—‘देवानुप्रिये ! हमने स्थविर मुनि से धर्म श्रवण किया है, यावत् हम प्रवज्या ग्रहण कर  
रहे हैं । देवानुप्रिये ! तुम्हें क्या करना है ?

तब द्रौपदी देवी ने पाँचों पाण्डवों से कहा—‘देवानुप्रियो ! यदि आप संसार के भय से उद्भिन्न  
होकर प्रव्रजित होते हो तो मेरा दूसरा कौन भवत्सम्बन्ध यावत् [या आधार है ? क्या प्रतिबन्ध है ?]  
अतएव मैं भी संसार के भय से उद्भिन्न होकर देवानुप्रियों के साथ दीक्षा अंगीकार करूँगी ।’

प्रवज्या ग्रहण

२१९—तए णं पंच पंडवा पंडुसेणस्स अभिसेसो जाव राया जाए जाव रज्जं पसाहेमाणे  
विहरइ । तए णं ते पंच पंडवा बोवईं य देवी अग्रया कपाइं पंडुसेणं रायाणं आपुच्छंति ।

तए णं से पंडुसेणे रामा कोट्टुं वियपुरिसे सद्वावेद, सद्वाविरा एवं वयासी—‘विप्पामेव भो  
देवानुप्पिया ! निवज्जमणाभिसेयं करेह, जाव पुरिससहस्सवाहिणीओ सिधियाओ उवहुवेह ।’ जाव  
पच्छोवहंति । जेजेव मेरा तेजेव, प्राप्तिते णं जाव’ समणा जाया । चोदहसपुब्बाइं अहिज्जति,  
अहिज्जिता बहूणि वासाणि छट्ठहम-वत्तम-बुवाससेहि मासदमासखमणेहि अग्रयाणं भावेमाणा विहरंति ।

तत्पदचात् पाँचों पाण्डवों ने पाण्डुसेन का राज्याभिषेक किया । यावत् पाण्डुसेन राजा हो  
गया, यावत् राज्य का पालन करने लगा । तब किसी समय पाँचों पाण्डवों ने और द्रौपदी ने पाण्डुसेन  
राजा से दीक्षा की अनुमति माँगी ।

तब पाण्डुसेन राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और उनसे कहा—‘देवानुप्रियो ! वीप्र  
ही दीक्षा-महोत्सव की तैयारी करो और हजार पुरुषों द्वारा वहन करने योग्य शिविकाएँ तैयार करो ।  
द्रौप वृत्तान्त पूर्ववत् जानना चाहिए, यावत् वे शिविकाओं पर आसूढ़ होकर बसे और स्थविर मुनि  
के स्थान के पास पहुँच कर शिविकाओं से नीचे उतरे । उतर कर स्थविर मुनि के निकट पहुँचें ।  
वहाँ जाकर स्थविर से निवेदन किया—भगवन् ! यह संसार जल रहा है आदि यावत् पाँचों पाण्डव  
श्रमण बन गये । चौदह वर्षों का अध्ययन किया । अध्ययन करके बहुत वर्षों तक बेला, तैला, चोला,  
पचोला तथा अर्धमास-खमण, मासखमण आदि उपस्था द्वारा आत्मा को भावित करते हुए  
बिचरने लगे ।

२२०—तए णं सा बोवईं देवी सीयाओ पच्चोवहइ, जाव पच्चइया सुवयाए अज्जाए

सिस्तिणीयत्ताए दलयति, इष्कारस अंगाई अहिज्जइ, अहिज्जिता बहूणि वाताणि ॥४६८॥  
तेहि जाव विहरइ ।

द्रोपदी देवी भी शिविका के उतरी, यावत् दीक्षित हुई । वह मुत्रता मार्ग को दिखा  
मे सोप दी गयी । उसने ग्यारह अंगों का अध्ययन किया । अध्ययन करके बहुत वर्षों तक  
भक्त, अष्टमभक्त, दशमभक्त और द्वादशभक्त आदि तप करती हुई विचरने लगी ।

२२१—तए णं थेरा भगवतो अग्रया कयाई पंडुमथुराओ जपरीओ सहस्रांता  
उज्जाणाओ पडिणिससमंति, पडिणिससमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरंति ।

तत्पश्चात् किसी समय स्वविर भगवंत पाण्डुमथुरा नगरी के सहस्राभवननामक स्थान  
निकले । निकल कर बाहर जनपदों में विचरण करने लगे ।

भगवान् अरिष्टनेमि का निर्वाण

२२२—तेणं कालेणं तेणं समएणं अरिहा अरिदुनेमो जेणेव सुरट्ठाजणवए तेणेव उवागच्छता  
उवागच्छिता सुरट्ठाजणवयंति सज्जेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ । तए णं बहुज्जो अन्नमन्न  
एयमाइयलइ—‘एवं एलु देवानुप्पिया । अरिहा अरिदुनेमो सुरट्ठाजणवए जाव विहरइ । तए णं  
जुहिट्ठिल्लपामोवत्ता पंच अणगारा बहुज्जणस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा अन्नमन्नं सहावेति, सहावेति  
एयं यपासीः—

‘एयं एलु देवानुप्पिया । अरिहा अरिदुनेमो पुब्बानुप्पिय जाव विहरइ, तं सेयं एलु इयं  
येरे भगवन्ते आपुच्छिता अरहं अरिदुनेमि वंदणाए गमित्तए । अन्नमन्नस्स एयमट्ठं पडिसुज्जिता जेणेव  
येरा भगवन्तो तेणेव उवागच्छन्ति, उवागच्छिता येरे भगवन्ते वंदन्ति, नमस्स  
यंबित्ता नमंसित्ता एयं यपासी—‘इच्छामो णं तुभेहि अन्नमन्नमाया समाणा अरहं अरिदुनेमि  
गमित्तए ।’

‘महात्तहं देवानुप्पिया !’

उस काल और उस समय में अरिहन्त अरिष्टनेमि जहाँ मुराष्ट्र जनपद था, वहाँ पगार  
पधार कर मुराष्ट्र जनपद में समय और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे । उस समय  
बहुत जन परस्पर इस प्रकार कहने लगे—‘हे देवानुप्रियो ! तोर्थकर अरिष्टनेमि मुराष्ट्र जनपद  
यावत् विचर रहे है ।’ तब युधिष्ठिर प्रभुनि पाँचों भगवतों ने बहुत जनों से यह वृत्तान्त सुन कर  
दुसरे को बुलाया और कहा—‘देवानुप्रियो ! अरिहन्त अरिष्टनेमि अनुक्रम से विचरते हुए मुराष्ट्र  
मुराष्ट्र जनपद में पधार है, अतएव स्वविर भगवत से पूछ कर तोर्थकर अरिष्टनेमि को वन्दना कर  
के लिए जाना हमारे लिए ध्येयस्वरूप है ।’ परस्पर की यह बात सबने स्वीकार की । स्वीकार कर  
के जहाँ स्वविर भगवत थे, वहाँ गये । जाकर स्वविर भगवत को वन्दन-नमस्कार किया । वन्दन-  
नमस्कार करते-करते उनमें कहा—भगवन् ! आपकी आज्ञा पाकर हम अरिहन्त अरिष्टनेमि को वन्दना  
करने हेतु जाने का इच्छा करने है ।

स्वविर ने अनुज्ञा दी—‘देवानुप्रियो ! येन मम हो, वंसा करो ।’



२२३—तए न ते जुह्वितपामोक्षता पंच अणगारा घेरेंहि अन्नगुप्ताया समाना घेरे भगवति पंचंति, नमसंति, यंदिता नमसित्ता घेराणं अतिघामो पडिनिबलमंति, पडिनिबलमिता मासं मासिण घलिबिलतेणं तदोक्थेणं गामाणुगामं बुद्धज्जमाणा जाव जेणेव हृदिक्खे नगरे तेणेव उवागच्छति, उवागच्छिता हरियक्खप्पस्स बहिया सहसंबवणे उज्जाणे जाव विहरंति ।

तत्पश्चात् उन युधिष्ठिर आदि पाचो अणगारो ने स्वविर भगवान् ते अनुज्ञा पाकर उन्हे वन्दना-नमस्कार किया । वन्दना नमस्कार करके वे स्वविर के पास से निकले । निकल कर निरन्तर मातामण करते हुए, एक घाम से दूसरे घाम जाते हुए, यावत् जहाँ हस्तीकल्प नगर था, वहाँ पहुँचे । पहुँच कर हस्तीकल्प नगर के बाहर सहस्राश्रवनामक उद्यान में ठहरे ।

२२४—तए न ते जुह्वितवज्जा चत्तारि अणगारा मासवधमनवारणए पडमाए पोरिसीए सज्झाय करंति, बोपाए एव जहा गोपमसामी, नयरं जुह्वितं घापुच्छंति, जाव अज्जमाणा बहुजणसब्बं गित्तामेति—एवं खलु वेवाणुप्पिया ! अरहा अरिहत्तेमो उज्जितसेससिहरे मासिएणं भरोण अयाणएणं पंचहि एत्तोसेहि अणगारासएहि सिद्धि कालगए सिद्धि बुद्धे मुत्तं अंतगढे सव्ववुवत्तप्पहोणे ।

तत्पश्चात् युधिष्ठिर के सिवाय दोष चार अणगारो ने मासवधमन के पारणक के दिन, पहुँचे प्रहर में स्वाध्याय किया, दूसरे प्रहर में ध्यान किया । दोष गौतम स्वामी के समान वर्णन जानना चाँहिए, विशेष यह कि उन्होंने युधिष्ठिर अणगार से पूछा—‘धिया की अनुमति मागी । फिर वे भिक्षा के लिए जब घटन कर रहे थे, तब उन्होंने बहुत जनो से सुना कि—‘देवानुप्रियो ! तीर्थकर अरिष्टनेमि गिरिनार पर्वत के शिखर पर, एक मास का निर्जल उपवास करके, पाच सौ छत्तीस साधुओं के साथ, काल-धर्म को प्राप्त हो गये हैं, यावत् सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, अन्तर्कृत होकर समस्त दुःखा में रहित हो गये हैं ।’

२२५—तए न ते जुह्वितवज्जा चत्तारि अणगारा बहुजणस्स भंतिए एयमहुं सोच्चा हरियक्खप्पाओ पडिनिबलमंति, पडिनिबलमिता जेणेव सहसंबवणे उज्जाणे, जेणेव जुह्विते अणगारे तेणेव उवागच्छति, उवागच्छिता भत्तपाणं पच्चुवेवत्तति, पच्चुवेवत्तता गमणागमणस्स पडिबकमंति, पडिबकमिता एसणमणेसणं आलोएंति, आलोइत्ता भत्तपाणं पडिदसंति, पडिदसित्ता एवं वेयासो—

तब युधिष्ठिर के सिवाय वे चारो अणगार बहुत जनो के पास से यह अर्थ सुन कर हस्तीकल्प नगर से बाहर निकले । बाहर निकलकर जहाँ सहस्राश्रवन या भीर जहा युधिष्ठिर अणगार थे, वहाँ पहुँचे । पहुँच कर आहार—‘पानी की प्रत्युपेक्षणा की । प्रत्युपेक्षणा करके गमनागमन का प्रतिक्रमण किया । फिर एषणा-अनेपणा की आलोचना की । आलोचना करके आहार पानी दिखलाया । दिखला कर युधिष्ठिर अणगार से कहा—

२२६—‘एवं खलु वेवाणुप्पिया ! जाव’ कालगए, ते सेयं खलु अम्हं वेवाणुप्पिया ! इमं पुत्तगहियं भत्तपाणं पट्टिवेत्ता सेत्तुं एवं पव्वयं सणियं सणियं वुह्वितए, सत्तेहणा-भूत्तणा-भोत्तियाण कालं अणयकंलमाणां विहरितए,’ सि कट्ट अणमण्यस्स एयमहुं पडिसुंति,

पडित्तां जित्तां तं पुण्यमहिमं भक्तपाणं एगंते परिट्ठवंति, परिट्ठयित्ता जेणेव सेत्तुं जे पव्वए तेने उवागच्छंति, उवागच्छित्ता सेत्तुं जं पव्वयं बुद्धंति, बुद्धित्ता जाव कालं अणवकंत्तमाणा विहरंति ।

‘हे देवानुप्रिय ! (हम आपके अनुमति लेकर भिक्षा के लिए नगर में गये थे । वहाँ हमने सुना है कि तीर्थंकर अरिष्टनेमि) यावत् कालधर्म को प्राप्त हुए हैं । अतः हे देवानुप्रिय ! हमारे लिए यही श्रेयस्कर है कि भगवान् के निर्वाण का वृत्तान्त सुनने से पहले ग्रहण किये हुए आहार—पानी को परठ कर धीरे-धीरे शय्यजय पर्वत पर आरुढ हूँ तथा सलेखना करके भोषणा (कर्म-क्षोषण की क्रिया) का सेवन करके और मृत्यु की आकांक्षा न करते हुए विचरें—रहें इस प्रकार कह कर सबने परस्पर के इस अर्थ (विचार) को अंगीकार किया । अंगीकार करके वह पहले ग्रहण किया आहार—पानी एक जगह परठ दिया । परठ कर जहाँ शय्यजय पर्वत था, वहाँ गए । शय्यजय पर्वत पर आरुढ हुए । आरुढ होकर यावत् मृत्यु की आकांक्षा न करते हुए विचरने लगे ।

पाण्डवों का निर्वाण

२२७—तए णं ते जुहिट्ठिसपामोक्खा पंच अणगारा सामादयमाइयाइं चोदस पुवाइं अहिज्जित्ता बहूणि वासाणि सामण्णपरियाणं पाउजित्ता बोमासियाए सत्तेहणाए अत्ताणं भोसित्ता जस्सट्ठाए कीरइ णममाये जाव’ तमहुं आराहेति । आराहित्ता अणंते जाव केवलसवरनाणंतेने समुप्पाडेतता जाव सिद्धा ।

तत्पश्चात् उन युधिष्ठिर आदि पाचों अणगरों ने सामायिक से लेकर चौदह वर्षों का अभ्यास करके बहुत वर्षों तक श्रामण्यपर्याय का पालन करके, दो मास की संलेखना से आत्मा को भोषण करके, जिस प्रयोजन के लिए नग्नता, मुंडता आदि अंगीकार की जाती है, उस प्रयोजन को सिद्ध किया । उन्हें अनन्त यावत् श्रेष्ठ केवलज्ञान और केवल दर्शन प्राप्त हुआ । यावत् वे सिद्ध हो गये ।

आर्या द्रौपदी का स्वर्गवास

२२८—तए णं सा दोवई अज्जा सुअव्याणं अज्जियाणं अंतिए सामादयमाइयाइं एवकारस्स अंगाइं अहिज्जइ, अहिज्जित्ता बहूणि वासाणि सामण्णपरियाणं पाउजित्ता मासियाए सत्तेहणाए आलोइयपडिक्कंता कालमासे कालं किच्चा वंसलोए उववप्पता ।

दीक्षा अंगीकार करने के पश्चात् द्रौपदी आर्या ने सुयता आर्या के पास सामायिक से लेकर ग्यारह अर्गों का अध्ययन किया । अध्ययन करके बहुत वर्षों तक श्रामण्यपर्याय का पालन किया । अन्त में एक मास की सलेखना करके, आलोचना और प्रतिक्रमण करके, तथा कालमास में कात करके (यथासमय निधन को प्राप्त होकर) ब्रह्मलोकनामक स्वर्ग में जन्म लिया ।

२२९—तए णं अरयेगइयाणं देवाणं दस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता । तए णं दोवइस्स<sup>१</sup> बेवस्स दस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता ।

ब्रह्मलोकनामक पाँचवें देवलोक में कितनेक देवों की दस सागरोपम की स्थिति कही गई है । उनमें द्रौपदी (द्रुपद) देव की भी दस सागरोपम की स्थिति कही गई है ।

दौपरी का वचन

२३०—से न भंते ! तुमए देवे ताघो जाव [देवलोगाघो साउबलएणं ठिहुबलएणं भवबलएणं  
मणंतरं चयं चइत्ता] रहादिबेहे वासे जाव अंतं काहिह ।

गौतम स्वामी ने श्रमण भगवान् महावीर से प्रश्न किया—‘भगवान् ! वह द्रुपद देव वहां  
से चम कर कहा जन्म लेया ? तब भगवान् ने उत्तर दिया—‘ब्रह्मलोक स्वर्ग से वहां की प्राप्ति  
एव भव का शय होने पर] महाविदेह वषं मे उत्पन्न होकर यावत् कर्मों का शान्त करेगा ।

निर्देश

२३१—एवं सखु जंजू ! समणेणं भगवया महावीरेणं सोलसमस्त नायगभ्ययनस्त प्रथमहे  
पणत्ते ति वेमि ।

प्रकृत प्रप्ययन का उपसंहार करते हुए श्री मुघर्मा स्वामी ने जम्बू स्वामी से कहा—इस प्रकार  
निश्चय ही, हे जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर ने सोलहवें ज्ञात-प्रप्ययन का यह धर्म प्रतिपादित  
किया है । जैसा मैंने सुना वैसा तुम्हें कहा है ।

॥ सोलहवा प्रप्ययन समाप्त ॥

## सत्तरहवाँ अध्यायन : आकीर्ण

सार : संक्षेप

अनुसृत धन्यजन का नाम आकीर्णजात है। आकीर्ण धनीय उत्तम जाति का पदर। प्रायः के उदाहरण द्वारा यहाँ यह प्रतिपादन किया गया है कि जो मायक इन्द्रिया के प्रसरणों होकर, अनुसृत विषयों को प्राप्त करके उनमें मग्न बन जाते हैं, वे अपनी रागभक्ति को उद्वेगता के कारण दीर्घ काल तक भय-भयाना करते हैं। जन्म-मरण-मरण को वेद-साधों के प्रतिरिक्त भी उन्हें प्रत्येक प्रकार की व्यर्थानुसृत करने पड़ती है। इसके विपरीत, प्रत्येक-जनक विषयों में जो प्राप्त नहीं होते, जो इन्द्रिय-विषयों में विमुक्त रहते हैं, वे अपने वीतरागभाव के कारण सामाजिक पातनाओं से बच जाते हैं। यही नहीं, वे सहज-स्वाभाविक प्रयोग सामान्य को प्राप्त कर लेते हैं। कथनक इस प्रकार है—

हृत्तिशीर्ष नगर के कुछ नौकागणिक—जलपान द्वारा मग्न के रास्ते विदेश जाकर व्यापार करने वाले व्यापारी, व्यापार के लिए निकले। वे मयणमग्न में जा रहे थे कि प्रचानक तूफान आ गया। नौका प्राची के घनेहाँ में डगमगाने लगी। पलित-विषमिता होने लगी। दधर-उधर चरकर खाने लगी। निर्यामक की बुद्धि भी चरकर गाने लगी। उसे दिशा का भान नहीं रहा—नौका किधर जा रही है, किस ओर जाना है, यह भी वह भूल गया। वणिकों के भी होष-द्वेष ठिकाने नहीं रहे। वे देवी-देवताओं की मनोतो मनाने लगे।

गनीमत रही कि तूफान थोड़ी देर में शान्त हो गया। निर्यामक की सभा जागृत हुई। दिशा का बोध हो आया। नौका कालिक द्वीप के किनारे जा लगी।

कालिक द्वीप में पहुँचने पर वणिकों ने देखा—यहाँ चाँदी, सोने, हीरो आदि रत्नों की प्रचुर खाने हैं। उन्होंने वहाँ उत्तम जाति के विविध वस्त्रों वाले प्रश्व भी देखे।

मगर वणिकों की अश्वों से कोई प्रयोजन नहीं था अतएव वे चाँदी, सोना, हीरा आदि भर कर वापिस अपने नगर में—हृत्तिशीर्ष—लौट आए।

तत्कालीन परम्परा के अनुसार वणिक् बहुमूल्य उपहार लेकर राजा कनककेतु के समक्ष गए। राजा ने उनसे पूछा—देवानुग्रियो ! आप लोग अनेक नगरों में भ्रमण करते हैं, समुद्रयात्रा भी करते हैं तो इस बीच कुछ प्रदभुत अनोखी वस्तु देखने में आई है ?

वणिकों ने कालिक द्वीप के अश्वों का उल्लेख किया, उनकी गुन्दरता का वर्णन कई सुनाया। तब राजा ने वणिकों को अश्व ले आने का आदेश दिया।

वणिक् राजा के सेवकों के साथ पुनः कालिक द्वीप गए। किन्तु उन्होंने देखा था कि वहाँ के अश्व मनुष्य की गंध पाकर दूर भाग गए थे। वे सहज ही पकड़ में आने वाले नहीं थे। अतएव वे पाँचों इन्द्रियों को लुभाने वाली सामग्री लेकर चले। कालिक द्वीप पहुँच कर उन्होंने वहाँ सामग्री बिखेर दी। जो घोड़े इन्द्रियों को बस में न रख सके, उस सामग्री के प्रलोभन में फँस गए, वे बन्धन में फँस गए—पकड़े गए और हृत्तिशीर्ष नगर में ले आए गए। यहाँ प्रशिक्षित होने में उन्हें

चाबुकों की मार खानी पड़ी। बध-बन्धन के अनेकानेक कष्ट सहन करने पड़े। उनकी स्वाधीनता का मुख नष्ट हो गया। पराधीनता में जीवन यापन करना पड़ा।

कुछ पशु ऐसे भी थे जो बणिकों द्वारा बिछेरी गई सुभावनी सामग्री के जाल में नहीं फँसे थे। वे जाल में फँसने से भी बच गए। वे उस सामग्री से विमुख होकर दूर चले गए। उनकी स्वाधीनता नष्ट नहीं हुई। पराधीनता के कष्टों से वे बचे रहे। उन्हें न चाबुक आदि की मार सहनी पड़ी और न सवारी का काम करना पड़ा। वे स्वेच्छापूर्वक कालिक द्वीप में ही सुख से रहे।

इस प्रकार जो कोई भी साधक इन्द्रियों के विषयों में आसक्त हो जाता है, वह पराधीन बन जाता है। उसे बध-बन्धन सम्बन्धी अनेक प्रकार के कष्ट भेलने पड़ते हैं। दीर्घकाल तक संसार-परिभ्रमण करना पड़ता है। इससे विपरीत, जो साधक इन्द्रियों पर समय रखता है, उनके अधीन नहीं होता, वह स्वतन्त्र बिहार करता हुआ इस भव में सुख का भागी होता है और भविष्य में राग-मात्र का उच्छेदन करके अजर-अमर, अविनाशी बन जाता है। अनन्त आरम्भिक आनन्द को उपलब्ध कर लेता है।

इस अध्ययन में अक्षयवर्णन के प्रसंग में एक 'वेद' आया है। वेद जैन-प्रागमों में यज्ञ-तन्त्र आने वाली एक विशिष्ट प्रकार की रचना है। वह रचना विशेषतः द्रष्टव्य है।



## सत्तरसमं अज्झयणं : आइण्णे

जम्बू स्वामी की जिज्ञासा

१—‘जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं सोत्तरसमस्स णायज्झयणस्स णायज्झयणस्स के भट्टे पण्णत्ते ?’

जम्बू स्वामी ने अपने गुरु श्रीसुधर्मा स्वामी से प्रश्न किया—‘भगवन् ! यदि यावत् निवार को प्राप्त जिनेन्द्र देव भ्रमण भगवान् महावीर ने सोसहवें ज्ञात-मध्ययन का यह (पूर्वोक्त) लं कहा है तो सत्तरहवें ज्ञात-मध्ययन का क्या अर्थ कहा है ?

श्री सुधर्मा द्वारा समाधान

२—‘एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं हरिषीसीसे णामं नयरे होत्था, वण्णमो<sup>१</sup> । तव णं कणगकेळ णामं राया होत्था, वण्णमो<sup>२</sup> ।

श्रीसुधर्मा स्वामी ने जम्बू स्वामी की जिज्ञासा का समाधान करते हुए कहा—उस काल और उस समय में हस्तिशीर्षनामक नगर था । यहाँ नगर-वर्णन जान लेना चाहिए । उस नगर में कनककेतुनामक राजा था । राजा का भी वर्णन श्लोपपातिक सूत्र के अनुसार समझ लेना चाहिए ।

नौकावणिकों का कालिकद्वीपगमन

३—तस्य णं हरिषीसीसे नयरे बह्वे संजत्ताणावावाणियगा परिवसंति, भट्टा जाव बहुजयल्ल भपरिभूया यावि होत्था । तए णं तेसि संजत्ताणावावाणियगानं सप्रया कयाइं एगममो सहियाणं जहा प्ररहण्णमो<sup>३</sup> जाव तवणसमुदं प्रणेगाइं जोयणसयाइ भोगाठा यावि होत्था ।

उस हस्तिशीर्ष नगर में बहुत-से सायात्रिक नौकावणिक ( देशान्तर में नौका-जहाज द्वारा व्यापार करने वाले व्यापारी ) रहते थे । वे धनाढ्य थे, यावत् बहुत लोगों से भी पराभवन पाने वाले थे । एक बार किसी समय वे सायात्रिक नौकावणिक प्रापस में मिले । उन्होंने प्रहृष्टक की भाँति समुद्रयात्रा पर जाने का विचार किया, वे तवणसमुद्र में कई सैकड़ों योजनों तक प्रवगाहन भी कर गये ।

४—तए णं तेसि जाव बह्विण उप्पाइयसयाइं जहा मागंविपदारगानं जाव<sup>४</sup> कालियराए व ताय समुत्थिए । तए णं सा णावा तेणं कालियवाएणं घाघोत्तिज्जमाणी घाघोत्तिज्जमाणी सवात्तिज्जमाणी सवात्तिज्जमाणी संसोत्तिज्जमाणी संसोत्तिज्जमाणी तस्येव परिभमइ । तए णं से निज्जामए णट्ठमईए णट्ठमईए णट्ठसण्णे मुइविसाभाए जाए यावि होत्था । न जाणइ कयरं बेतं वा शिनि वा विविसं वा पोयवहुणे भवहिए त्ति कट्टु ओहयमणसं कम्मे जाव भियायइ ।

उस समय उन बलिकों को माकन्दी पुत्रों के समान<sup>१</sup> सैकड़ों उत्पात हुए, यावत् समुद्री ज्ञान भी प्रारम्भ हो गया। उस समय वह नौका उस तुफानी वायु से बार-बार कोपने लगी, बार-बार चलायमान होने लगी, बार-बार धुँध होने लगी और उसी जगह घबरकर खाने लगी। उस मय नौका के निर्णामक (खेवटिया) की बुद्धि मारी गई, धृति (समुद्रयात्रा संबंधी शास्त्र का ज्ञान) नष्ट हो गई और तज्जा (होश-हवास) भी गायब हो गई। वह विद्याविमूढ़ हो गया। उसे ह भी ज्ञान न रहा कि पोतबहन (नौका) कौन-ने प्रदेश में है या कौन-सी दिशा भ्रमवा विदिता में न रहा है? उसके मन के सकल्प जग हो गए। यावत् वह चिन्ता में लीन हो गया।

५—तए नं ते बह्वे कुक्षिधारा य कण्ठधारा य गम्भिस्तला य स'जुताणावावाणिपया य ज्वे से निरजामए तेभेव उवागच्छति, उवागच्छिता एवं वयासी—'किण्णं तुमं देवानुप्पिया ! गोहयमणस'कप्पे जाव [ करयत्तपहृत्तमुखे भट्टग्गणोवणए ] भियायसि ।'

तए नं ते निरजामए ते बह्वे कुक्षिधारा य कण्ठधारा य गम्भिस्तला य स'जुताणावावाणिपया य एवं वयासी—'एवं एतु ग्रहं देवानुप्पिया ! जट्ठमईए जाव<sup>२</sup> अबहिए ति कट्ठु तमो गोहयमणस'कप्पे जाव भियायमि ।'

उस समय बहुत-से कुक्षिधार (काबड़ा चलाने वाले नौकर), कण्ठधार, गम्भिस्तल (भीतरी टूटकर काम करने वाले) तथा सायात्रिक नौकावणिक् निर्णामक के पास भाये। धाकर उससे बोले—देवानुप्रिय ! नष्ट मन के सकल्प वाले होकर अब मुख हृषेसी पर रखकर चिन्ता क्यों कर रहे हो ?

तब उस निर्णामक ने उन बहुत-से कुक्षिधारकों, कण्ठधारों, गम्भिस्तलों और सायात्रिक नौकावणिकों से कहा—'देवानुप्रियो ! मेरी मति मारी गई है, यावत् पोतवाहन किस देश, दिशा या वेदिता में जा रहा है, यह भी मुझे नहीं जान पड़ता। यतएव मैं भग्नमनोरथ होकर चिन्ता कर रहा हूँ ।'

६—तए नं ते कण्ठधारा तस्स निरजामयस्स अंतिए एयमट्ठं सोव्वा निस्तम्म भीपा तस्या उग्गिवाग उग्गिवागमणा ग्हाया कयनलिकम्मा करयत्त-परिगगहिं दसनहं तिरसावत्त मयए अजलि कट्ठु बहणं ईराण य खराण य ग्हा मस्सिनाए जाव<sup>३</sup> उवायमाणा उवायमाणा चिट्ठेति ।

तब वे कण्ठधार उस निर्णामक से यह बात सुनकर और समझ कर भयभीत हुए। घस हुए, उद्गिन हुए, घबरा गये। उन्होंने स्नान किया, बलिकर्म किया और हाथ जोड़कर बहुत-ने द्रष्ट, स्कन्द (कीर्तिकेय) प्रादि देवी की, मल्लि-प्रप्ययन में कहे अनुसार हाथ जोड़ कर, मस्तक पर अजलि करके मनोती मनाने लगे।

७—तए नं ते निरजामए तथो भुत्तंतरस्स लट्ठमईए, लट्ठमुईए, लट्ठसण्णे भमुदविसाभाए जाए यावि होत्था। तए नं ते निरजामए ते बह्वे कुक्षिधारा य कण्ठधारा य गम्भिस्तला य स'जुताणावावाणिपया य एवं वयासी—'एवं एतु ग्रहं देवानुप्पिया ! लट्ठमईए जाव भमुदविसाभाए जाए । अम्हे नं देवानुप्पिया ! कालियवीर्येण संबूदा, एत नं कालियवीरे प्रालोचकइ ।





हरिरेणु-सोणिमुत्तग-सकविल-मञ्जार-पायकुक्कुड-बोडसमुग्गयसामवण्णा ।

गोहूमगोरेण-गोरपाटलगोरा, पवालवण्णा य भूषवण्णा य केइ ॥ १ ॥

तत्तपत्त-रिट्ठवण्णा य, सालिवण्णा य भासवण्णा य केइ ।

जपिय-तिल-कीडगा य, सोलोयरिट्ठगा य पुंङ्गपइया य कणमपिट्ठा य केइ ॥ २ ॥

चक्कागपिट्ठवण्णा सारसवण्णा य हसवण्णा य केइ ।

केइय धवभवण्णा पक्कतल-मेघवण्णा य बाहुवण्णा य ॥ ३ ॥

सभाणुरागसरिखा मुयमुहु-गुंजदराग-मरिसत्थ केइ ।

एला-पाटलगोरा सामतया-गयलसामता पुणो केइ ॥ ४ ॥

बह्वे धरणे धणिहंसा, सामा कासोसरत्त-वीया, अञ्चत विमुड्डा वि य ए भाइण्णग-जाइ-  
न-विणीय-गयमच्छरा ।

ह्यवरा जहोवएस-कम्मवाहिणो वि य ए सिक्खा विणीयविणुया,

लघण-वगण-धावण-तिवई-जईण-सिक्खियई ।

किं ते ? मणसा वि उब्बिहताइ धणेगाइ भाससयाइ पासति ॥

भावार्थ:—कालिक द्वीप में पहुँचने पर नौरा-वणिकों ने चादी, सोने, रत्नों और हीरों की नौ के साथ विविध वर्ण वाले श्रवणों को भी देखा । उन श्रवणों में कोई-कोई नीले वर्ण की रेणु के [न, थोणिमूत्रक श्रवण] बालको की कमर में बाधने के काले खोरे के समान, तथा माज्जार, पादुकुक्कुट रसोप जाति का कुक्कुड़ा] एवं कच्चे कपास के फल के समान श्याम वर्ण वाले थे । कोई गेहूँ और टल पुष्प के समान गौर वर्ण वाले थे, कोई विद्रुम-मूंगा के समान श्रवण नवीन कोपल के सदृश तवण—लाल थे, कोई धूम्रवर्ण-पाण्डुर-धुएँ जैसे रंग के थे ।

कोई लालवृक्ष के पत्तों सरीखे तो कोई रिप्टा-मदिरा सरीखे वर्ण वाले थे । कोई घालिवर्ण-वल जैसे रंग वाले और कोई भस्म जैसे रंग वाले थे । कोई पुराने तिलों के कीड़ों जैसे, कोई एकदार रिप्टक रत्न जैसे वर्ण वाले, कोई धवल श्वेत रंग के वाले, कोई कनकपृष्ठ-सुनहरी पीठ के थे ।

कोई सारस पक्षी की पीठ, चक्रवाक एवं हंस के समान श्वेत थे । कोई मेघ-वर्ण और कोई लवुश के पत्तों के समान वर्ण वाले थे । कोई रगविरगे श्रवण अनेक रंगों वाले थे ।

कोई सध्याकाल की लालिमा, लोते की चोच तथा गुजा [चिरमी] के श्रवणभाग के सदृश लाल कोई एला-पाटल या एला और पाटल जैसे रंग के थे । कोई त्रिपल-लता और महिपद्म के लाल श्रवणवर्ण थे ।

कोई-कोई श्रवण ऐसे थे कि उनके वर्ण का निर्देश-कथन ही नहीं किया जा सकता, जैसे कोई [माक (धान्य विशेष), काशीप (एक रक्तवर्ण द्रव्य), रक्त और पीत थे-श्रवणों में चितकवरे (अनेक नौ के) थे । वे श्रवण विशुद्ध-निर्दोष थे । भाकीर्ण श्रवणों में वेगवत्ता आदि गुणों वाली जाति एवं कुल थे । विनीत प्रशिक्षित-ट्रेनिंग पाए हुए] थे एवं परस्पर असह्यशीलता से रहित थे-जैसे अन्य श्रवणों को सहन नहीं करते-एक दूसरे के निकट आते ही लड़ने लगते हैं, वैसे वे श्रवण नहीं थे,

सहनशील थे । वे अश्व प्रवर थे । प्रशिक्षण के अनुसार ही गमन करते थे । गङ्गा आदि को लाने में कूदने में, दीडने में, धोरण अर्थात् गतिचातुर्य में, त्रिपदी-रगभूमि में मल की सी पति कलें कुशल थे । न केवल शरीर से ही वरन् मन से भी वे उछल रहे थे ।

नोकावणिको आदि ने ऐसे सैकड़ो घोड़े वहाँ देते ।

इस वेद का अर्थ करने के पश्चात् अन्त में अभयदेव गूरि लिखते हैं—'गमनिकामाग्नेयत्न वर्णकस्य भावार्थस्तु बहुश्रुतबोध्यः' अर्थात् इस वर्णक का यह अर्थमात्र दिया गया है, भावार्थ बहुश्रुत विद्वान् ही जाने ।

१०—तए नं ते संजत्तानावावाणिपयमा अण्णमण्णं एवं ययासी—'किण्हं' अण्णे वंवापुपिणा। प्रातेहि ? इमे नं वृहवे हिरण्णागरा य, सुवण्णागरा य, रयणागरा य, वड्ढरागरा य, तं सेवं एवु वप्पु हिरण्णस्स य, सुवण्णस्स य, रयणस्स य, वड्ढरस्स य पोयवहणं भरित्तए' ति कट्ठु अग्रमग्रस्स एवु पडिस्सु णेति, पडिस्सु णित्ता हिरण्णस्स य, सुवण्णस्स य, रयणस्स य, वड्ढरस्स य, तणस्स य, अण्णस्स य कट्ठस्स य, पाणिपयस्स य पोयवहणं नरेति, भरित्ता पयविज्जणाणुकूलेणं याएणं जेणेव गंभीरपोयवहणं पट्टणे तेजेव उयागच्छति, उयागच्छित्ता पोयवहणं संवेति, संविता सगडोसागडं सज्जेति, सज्जित्ता वं हिरण्णं जाव वड्ढरं च एगद्विद्याहि पोयवहणाग्रो संचारंति, संचारित्ता सगडोसागडं सज्जेति, सज्जित्ता सज्जोडित्ता जेणेव हस्तिसीसए नयरे तेजेव उयागच्छति, उयागच्छित्ता हस्तिसीसयस्स नयरस्स वड्ढिअ अणुज्जाने सत्थणिवेसं करंति, करित्ता सगडोसागडं मोएति, मोडित्ता महत्थं जाव [महत्थं महत्ति विज्जं रामारिहं] पाटुडं गेण्हंति गेण्हित्ता हस्तिसीसं नयरं अनुपयिसंति, अणुपयिसित्ता वेणं कणगकेऊ राया तेजेव उयागच्छति, उयागच्छित्ता जाव उवणंति ।

तब उन सांयात्रिक नोकावणिकों ने आपस में इस प्रकार कहा—'देवानुप्रियो ! हमें यशो के क्या प्रयोजन है ? अर्थात् कुछ भी नहीं । यहाँ यह बहुत-सी चादी की खानें, सोने की खानें, रत्नों की खानें और हीरों की खानें हैं । अतएव हम लोगों को चादी-सोने से, रत्नों से और हीरों से जहाज भर लेना ही श्रेयस्करो है ।' इस प्रकार कहकर उन्होंने एक दूसरे की बात अंगीकार की । अंगीकार करते उन्होंने हिरण्य से, सुवर्ण से, रत्नों से, हीरों से, घास से, अन्न से, काष्ठों से और मोटे पानी से जहाज भर लिया । भर कर दक्षिण दिशा की अनुकूल वायु से जहाँ गभीर पोतबहनपट्टन था, वहाँ जाकर जहाज का समर डाला । समर डाल कर गाड़ी-गाड़े तैयार किये । तैयार करके लगे हुए उस हिरण्य स्वर्ण भावत् हीरों का छोटी नौकाओं द्वारा संचार किया अर्थात् पोतबहन से गाड़ी-गाड़ियों में भरा । फिर गाड़ी-गाड़े जोते । जोतकर जहाँ हस्तिशीर्ष नगर था वहाँ पट्टने । हस्तिशीर्ष नगर के बाहर अश्व उद्यान में सार्थ को ठहराया । गाड़ी-गाड़े खोले । फिर बहुमूल्य [महान् पुराणों के योग्य, विपुल एवं नूतनयोग्य] उपहार लेकर हस्तिशीर्ष नगर में प्रवेश किया । प्रवेश करके कनककेऊ राजा के पास भाये । वह उपहार राजा के समक्ष उपस्थित किया ।

११—तए नं से कणगकेऊ तेसि संजत्तानावावाणिपयमाणं तं महत्थं जाव पडिच्छि ।

राजा कनककेऊ ने उन सांयात्रिक नौकावणिकों के उस बहुमूल्य [महान् पुराणों के एवं योग्य विपुल] उपहार को स्वीकार किया ।

राय का अपहरण

१२—ते संजत्ताणावावाणियया एवं वयासी—‘तुम्हे णं देवानुप्पिया ! गामागर जाय तिहिरह, तवणसमुद्धं च अभिक्खणं अभिक्खणं पोयवहणेणं घोमाहद, तं मरिय माइं केइ मे कहिचि च्छेरेए दिट्ठपुप्खे ?’

तए णं संजत्ताणावावाणियया कणमकेउं रायं एवं वयासी—‘एवं जलु मग्हे देवानुप्पिया ! हेव हुरियसीसे नयरे परिवसामो, तं जेव जाव कालियदीवतेणं संवुद्धा, तथ णं बहवे हिरण्णागरा य तव<sup>१</sup> बहवे तरय आसे, कि ते हरिरेणुसोणिसुत्तया जाव<sup>२</sup> अणंगाईं जोयणाईं उदममंति । तए णं मी ! मग्हेहि कालियदीवे ते आसा अच्छेरेए बिट्ठा ।

फिर राजा ने उन सायात्रिक नौकावणिको से इस प्रकार कहा—‘देवानुप्पियो ! तुम लोग मो में यावत् धाकरो में (सभी प्रकार की वस्तियों में) धूमते हो और बार-बार पोतबहन द्वारा वणसमुद्र में भ्रमगाहन करते हो, तुमने कहीं कोई आदर्यजनक-भद्रभूत-अनोखी वस्तु देखी है ?

तब सायात्रिक नौकावणिकों ने राजा कनककेतु से कहा—‘देवानुप्पिय ! हम लोग हमी स्थिधोपे नगर के निवासी हैं, इत्यादि पूर्ववत् कहना चाहिए, यावत् हम कालिक द्वीप के समीप ए । उस द्वीप में बहुत-सी चाँदी की छानें यावत् बहुत-से भद्र हैं । वे भद्र कैसे हैं ? नील वर्ण वाली नू के समान और धोसिभूजक के समान द्याम वर्ण वाले हैं । यावत् वे भद्र हमारी गध से कई दिन दूर चले गए । अतएव हे स्वामिन् ! हमने कालिक द्वीप में उन भद्रों को आदर्यभूत वेस्मय की वस्तु) देखा है ।’

१३—तए णं ते कणमकेऊ तेंति संजत्ताणावावाणिययाणं अंतिए एयमद्धं सोच्चा णिसम्म ते जत्ताणावावाणियए एवं वयासी—‘मच्छह णं तुम्हे देवानुप्पिया ! मम कोट्टु<sup>३</sup>बियपुरिसेहि सद्धि तलियदीवाओ ते आसे आणेह ।’

तए ण ते मंजुत्ता कणमकेउं रायं एवं वयासी—‘एवं सामी !’ त्ति कदट्ठ आणाए बिणएणं वणं पडिमुणेंति ।

तत्पश्चात् कनककेतु राजा ने उन सायात्रिको से यह भयं गुन कर उन्हे कहा—‘देवानुप्पियो ! म मेरे कौटुम्बिक पुरुषों के साथ जाओ और कालिक द्वीप से उन भद्रों को वहाँ ले आओ ।’

तब सायात्रिक वणिको ने कनककेतु राजा से इस प्रकार कहा—‘स्वामिन् ! बहुत अच्छा’ वा कहकर उन्होंने राजा का वचन आज्ञा के रूप में विनयपूर्वक स्वीकार किया ।

१४—तए णं कणमकेऊ राया कोट्टु<sup>३</sup>बियपुरिसे सद्देवइ, सद्देवित्ता एवं वयासी—‘गच्छह णं मे देवानुप्पिया ! संजत्ताणावावाणियएहि सद्धि कालियदीवाओ मम आसे आणेह ।’ ते वि डिमुणेंति । तए णं ते कोट्टु<sup>३</sup>बियपुरिसे सगढीसागडं सज्जेति, सज्जिता तत्थ णं बहूण चीणाण य, त्त्तकीण य, भामरीण य, कच्छभीण य, भंभाण य, छम्भामरीण य, विचित्तवीणाण य, अग्नेति च हणं सोइवियपाउमाणं दव्वाणं सगढीसागडं भरेति ।

तत्पश्चान् कनककेतु राजा ने कोटुम्बिक पुरुषों को नुनाया और उनसे कहा—'देवानुजिनो' तुम सायात्रिक वर्णियों के साथ जाओ और कालिक जंग से मेरे लिए घस ले पाओ।' उन्होंने से राजा का आदेश अंगीकार किया। तत्पश्चान् कोटुम्बिक पुरुषों ने गाड़ी-गाड़े मजारे। मजारे उनमें बहुत-सी बीणाएँ, बल्लही, भामरी, कच्छरी, भभा, पद्मभरी आदि विविध प्रकार से बीणाओं तथा विचित्र बीणाओं से और श्रोत्रेन्द्रिय के योग्य अन्य बहुत-सी वस्तुओं से (कानो की ली लगने योग्य, सामग्री-साधनों) से गाड़ी-गाड़े भर लिये।

१५—भरित्ता बहूणं क्लृप्ताण य जाय [नीलाण य सोहियाण य हातिहाण य] मुक्कित्ताय कटुकम्माण य [चित्तकम्माण य पोत्थकम्माण य लेप्पकम्माण य] गंधिमाण य जाय [वेदिमाण पूरिमाण य] संधादमाण य अन्नेसि च बहूणं चरित्तदियपाउग्गाणं वड्ढाणं सगडोसागडं भरेति।

भरित्ता बहूणं कोटुपुडाण य केयपुडाण य जाय [पत्तपुडाण य चोयपुडाण य तगरपुडाण य एलापुडाण य हिरिवेरपुडाण य उत्तोरपुडाण य चंगपुडाण य मरुपुडाण य दमनगपुडाण य जापुडाण य जुहियापुडाण य मल्लियपुडाण य यासंतियपुडाण य कपूरपुडाण य पाटलपुडाण य] अन्नेसि च बहूणं धानियपाउग्गाणं वड्ढाणं सगडोसागडं भरेति।

भरित्ता बहुस्स खंडस्स य गुलस्स य सक्कराए य मच्छंडियाए य पुक्कुत्तरपउमुत्तर अन्नेसि च जिम्भियपाउग्गाणं वड्ढाणं सगडोसागडं भरेति।

भरित्ता बहूणं कोयवयाण य कंवलण य पावरणाण य नवतयाण य मलयाण य मसगवड सिलावट्टण य जाय हंसगभाण य अन्नेसि च कांसियपाउग्गाणं वड्ढाणं सगडोसागडं भरेति।

श्रोत्रेन्द्रिय के योग्य (प्रिय) वस्तुएँ भर कर बहुत-से कृष्ण वर्ण वाले, [नील, रक्त, पीत ए] सुवर्ण वर्ण वाले काष्ठ कर्म (लकड़ी के पट्टिये पर चित्रित चित्र), चित्रकर्म, पुस्तकर्म (पुड़े पर बनाए चित्र) लेप्पकर्म (मृत्तिका से बनाए चित्र-विचित्र रूप) तथा वेदिम, पूरिम तथा सपातिम एक अन् पशु-इन्द्रिय के योग्य द्रव्य गाड़ी-गाड़ों में भरे।

मह भर कर बहुत-से कोष्ठपुट<sup>१</sup> (कोष्ठपुट में जो पकाये जाते हैं वे वास-मुगधित द्रव्य विशेष) इसी प्रकार केतकीपुट, पत्रपुट, चोय-त्वक्पुट, तगरपुट, एलापुट, हिरिवेर (वालक) पुट, उत्तोर (खसखस का मूल भयवा एक विशिष्ट पुष्पजाति) पुट, चंगपुट, मरुक (मरुमा) पुट, दमनकपुट, जाती, (जाई) पुट, यूयिकापुट, मल्लिकापुट, वासतीपुट, कपूरपुट, पाटलपुट तथा अन्य बहुत-से घ्राणेन्द्रिय को प्रिय लगने वाले पदार्थों से गाड़ी-गाड़े भरे।

तदनन्तर बहुत-से पाड, गुड़, शक्कर मत्सडिका (विशिष्ट प्रकार की शक्कर) पुष्पोत्तर (शक्करा-विशेष) तथा पघोत्तर जाति की शक्करा आदि अन्य अनेक जिह्वा—इन्द्रिय के योग्य द्रव्य गाड़ी-गाड़ों में भरे।

उमके बाद बहुत-से कोयतक—रुई के बने वस्त्र, कवल-रत्न-कंवल, प्रावरण-प्रोङ्गे के वस्त्र, नवत-जीन, मलय-विशेष प्रकार का घासन भयवा मलय देश में बने वस्त्र, भयवा मसग-बम से मड़े एक प्रकार के वस्त्र, सिलावट्टक-चिकनी सिलाएँ यावत् हमगर्भ (द्वेषा वस्त्र) तथा अन्य स्पर्शेन्द्रिय के योग्य द्रव्य गाड़ी-गाड़ों में भरे।

१. कोष्ठपुटे—ये पञ्च-ते वे कोष्ठपुटा. वासविशेषाः—अभयदेवटीका।

तेष्वेव उवागच्छन्ति  
ककुद्गान् सह-परिस-  
य जाव<sup>३</sup> मनेति  
पवहणपाउगाणं पोयवहणं भरेति ।

क सब द्रव्य भरकर उन्होंने गाड़ी-गाड़े जोते । जोत कर जहा गभीर पोतपट्टन या, वहाँ  
च कर गाड़ी-गाड़े सोते । सोत कर पोतवहन तैयार किया । तैयार करके उन उत्कृष्ट  
रस, रूप और गंध के द्रव्य तथा काष्ठ, तृण, जल, चावल, छाटा, मोरस तथा अन्य  
वहन के योग्य पदार्थ पोतवहन में भरे ।

१—भरिता विस्रिमाणकलेणं वाएणं तेष्वेव कालियदीवे तेष्वेव उवागच्छन्ति, उवागच्छिता  
वेति, संभ्रिता ताहं उर्वकट्टाहं सह-परिस-रस-रुच-गंधाहं एगट्टियाहि कालियदीव उत्तारेति,  
जहिं जहिं च णं ते भासा भासयंति वा, समंति वा, चिट्ठंति वा, तुयट्ठंति वा, तहिं तहिं च  
वयपुरिसा ताप्पो वीणाप्पो य जाव<sup>३</sup> विचित्रवीणाप्पो य भण्णाणि बहूणि सोईदिपपाउगाणि  
समुदोरेमाणा समुदोरेमाणा चिट्ठंति, तेसि च परिपेरंतेणं पासए ठवेति, ठवित्ता निचचत्ता  
संणीया चिट्ठंति ।

उपर्युक्त सब सामान पोतवहन में भर कर दक्षिण दिशा के अनुकूल पवन से जहा कालिक  
हो प्राये । धाकर लगर डाला । लगर डाल कर उन उत्कृष्ट शब्द, स्पर्श, रस, रूप और  
गंध की छोटी-छोटी नौकाओं द्वारा कालिक द्वीप में उतारा । उतार कर वे घोड़े-जहाँ-जहाँ  
ते थे और लोटते थे, वहाँ वहाँ वे कौटुम्बिक पुरुष वह वीणा, विचित्र वीणा आदि  
की प्रिय बाद्य बजाते रहने लगे तथा इनके पास चारों ओर जाल स्थापित कर दिए—जाल  
जाल बिछा करके वे निश्चल, निस्पन्द और मूक होकर स्थित हो गए ।

२—जत्थ जत्थ ते भासा भासयंति वा जाव तुयट्ठंति वा, तत्थ तत्थ णं ते कोट्टुं वियपुरिसा  
णि य ५ कट्टकम्माणि य जाव संघाहमाणि य भण्णाणि य बहूणि विस्रियपाउगाणि य  
ति, तेसि परिपेरंतेणं पासए ठवेति, ठवित्ता निचचत्ता निष्कंसा तुसिणीया चिट्ठंति ।

३—जहाँ वे प्रसव बैठते थे, यावत् लोटते थे, वहाँ-वहाँ उन कौटुम्बिक पुरुषों ने बहुतेरे  
जाले यावत् मुकल दणं वाले काष्ठकर्म यावत् सधातिम तथा अन्य बहुत-से वस्तु-इन्द्रिय के  
रस दिए । तथा उन प्रसवों के पास चारों ओर जाल बिछा दिया और वे निश्चल,  
कर छिप रहे ।

—जत्थ जत्थ ते भासा भासयंति वा, समंति वा, चिट्ठंति वा, तुयट्ठंति वा, तत्थ-तत्थ णं  
परिसा तेसि बहूणं कोट्टुपुड्ढाणं य मनेति च घाणिदियपाउगाणं वट्ठाणं पुंजे य णियरे  
रिसा तेसि परिपेरंते जाव चिट्ठंति ।

४—जहाँ वे प्रसव बैठते थे, सोते थे, खड़े होते थे प्रयत्न लोटते थे वहाँ वहाँ उन कौटुम्बिक  
पुरुषों ने ५५ । २. म. १७ मूल १४-१२ ।

पुरुषों ने बहुत से कोष्ठपुट तथा दूसरे घ्राणेन्द्रिय के ग्रिम पदार्थों के पुंज (डेर) घोर निकर (निको हुए समूह) कर दिये । उनके पास चारों ओर पुंज करके वे मूक होकर छिप गये ।

२०—जस्य जस्य णं ते आसा आसयंति वा, सयंति वा, चिट्ठंति वा, तुपट्ठंति वा, तत्त्वत्तु गुलस्स जाव अग्नेसि च बहूणं जिह्विभविमपाउग्गाणं वय्याणं पुंजं य णिमरे य करंति, करित्ता विमए खणंति, खणित्ता गुलपाणगस्स खंडपाणगस्स पोरपाणगस्स अग्नेसि च बहूणं पाणगाणं विमरे भंदि भरित्ता तेषि परिपेरंतेणं पासए ठयेंति जाव चिट्ठंति ।

जहाँ-जहाँ वे भस्व बैठते थे, सोते थे, खड़े होते थे भयवा सोटते थे, वहा-वहाँ कौटुम्बिक पुरुषों ने गुड के यावत् अन्य बहुत-से जिह्वेन्द्रिय के योग्य पदार्थों के पुंज घोर निकर कर दिये। करके उन जगहों पर गड़हे खोदे । खोद कर गुड का पानी, लाड का पानी, पोर (ईस) का पानी वगैर दूसरा बहुत तरह का पानी उन गड़हों में भर दिया । भरकर उनके पास चारों ओर जाल स्थापित करके मूक होकर छिप रहे ।

२१—जहिं जहिं च णं ते आसा आसयंति वा, सयंति वा, चिट्ठंति वा, तुपट्ठंति वा, तहिं तहिं च णं ते बहवे कोयवया य जाव सिलावट्टया अण्णाणि य कांसिदियपाउग्गाइं अत्युपपन्नपुग्गां ठवेंति, ठवित्ता तेषि परिपेरंतेणं जाव चिट्ठंति ।

जहाँ-जहाँ वे घोड़े बैठते थे, सोते थे, खड़े होते थे यावत् सोटते थे, वहा-वहाँ कोयवक (रत्न के वस्त्र) यावत् शिलापट्टक (चिकनी शिला) तथा अन्य स्पर्शेन्द्रिय के योग्य आस्तरण—प्रयास्तरण (एक दूसरे के ऊपर बिछाए हुए वस्त्र) रख दिये । रख कर उनके पास चारों ओर जाल बिछा कर एवं मूक होकर छिप गए ।

२२—तए णं ते आसा जेनेव एए उक्किट्ठा सह-फरिस-रस-रुव-गंधा तेनेव उवागच्छति उवागच्छित्ता तत्थ णं अरयेगइया आसा 'अमुग्वा णं इमे सह-फरिस-रस-रुव-गंधा' इति कट्ठु तेसु उक्किट्ठेसु सह-फरिस-रस-रुव-गंधेसु अमुच्छिद्या अगट्ठिया अगिट्ठा अणज्जोववण्णा, तेषि उक्किट्ठया सह जाव गंधाणं दूरंदूरेणं अवक्कमंति, ते णं तत्थ पउरगोयरा पउरतणपाणिमा निवभया निवभियमा मुहंमुहेणं विहरंति ।

तत्पश्चात् वे भस्व वहा प्राये, जहाँ यह उत्कृष्ट शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंध (वातो वस्तुएं) रखी थीं । वहाँ आकर उनमें से कोई-कोई भस्व 'ये शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंध धारण हैं अर्थात् पहले कभी इनका अनुभव नहीं किया है' ऐसा विचार कर उन उत्कृष्ट शब्द रस, रूप और गंध में मूर्च्छित, गुड, भायक्त न होकर उन उत्कृष्ट शब्द यावत् गंध से दूर चले गये । वे भस्व वहा जाकर बहुत गोचर (चरागाह) प्राप्त करके तथा प्रचुर पास-पानी पीकर निभंय हुए, उदवेग रहित हुए और मुखे-मुखे विचरने लगे ।

कपानक का निष्कर्ष

२३—एवामेव समणाउसो ! जो अहं निगंघो वा निगंघो वा सह-फरिस-रस-रुव-गंधं

बहुलोगे चेद बहुलं समभाषं समणीषं सावयानं साविद्यां अचचिन्ने जाव  
रं] मोक्षयद् ।

हे धाम्युम्न धमणो ! हमारा जो साधु या साध्वी शब्द, स्पर्श, रस, रूप धीर  
होता, वह इस लोक में बहुत साधुओं, साध्वियों, धावकों धीर आविकाओं का  
धर इस धातुगतिक ससार-कान्तार को पार कर जाता है ।

रिषाम

यं धत्येगइया धासा जेणेव उरिक्कट्टसह-करिस-रस-रस-गंधा तेणेव उवागच्छंति,  
उरिक्कट्टेत्तु सह-करिस-रस-रस-गंधेम् मुन्निदया जाव अग्गोयवण्णा धासेविउं पयत्ता  
नं ते धासा एए उरिक्कट्टसह-करिस-रस-रस-गंधा धासेवमाना तेहि बहूहि कूडेहि  
य पाएम् म अग्गंति ।

मे से कितनेक घोड़े जहाँ वे उत्कृष्ट शब्द, स्पर्श, रस रूप धीर गंध थे, वहाँ  
कर वे उन उत्कृष्ट शब्द, स्पर्श, रस, रूप धीर गंध में मूर्छित हुए, यति धासक हो  
वन करने में प्रवृत्त हो गए । तत्पश्चात् उस उत्कृष्ट शब्द, स्पर्श, रस, रूप धीर गंध  
के प्रद्वेष कौटुम्बिक पुरषों द्वारा बहुत से कूट पासों (कपट से फँसाए गये बधनों)  
में ले बांधे गए-बधनों से बांधे गए—पकड़ लिए गये ।

नं ते कौटुम्बिया एए धासे गिण्हंति, गिण्हित्ता एगट्ठियाहि पोयवहणे संचारंति,  
उट्ठस्स जाव' मरेति ।

संजत्तानावावाणियया दक्षिणामूलनेण धाएण जेणेव गंभीरपोयपट्टणे तेणेव  
धिद्धता पोयवहणं सरेति, सविता ते धासे उत्तारंति, उत्तारित्ता जेणेव हरिपसीसे  
ऊऊ राया, तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता करयस्स जाव यट्ठावेति, यट्ठावित्ता ते

कणगकेऊ राया तेहि संजत्तानावावाणियमाणं उत्सुक्कं वियरइ, वियरित्ता सक्करेइ,  
ता संभावित्ता पडिबिसग्गेइ ।

उन कौटुम्बिक पुरुषों ने उन धर्यों को पकड़ लिया । पकड़ कर वे नौकाओं द्वारा  
। लाकर पीतवहन की वृण, काष्ठ आदि आवश्यक पदार्थों से भर लिया ।

वे सामानिक नौकावाणिक दक्षिण दिशा के अनुकूल पवन द्वारा वहाँ गभीर  
धाये । धाकर पीतवहन का लहर डाला । लहर डाल कर उन धौड़ों को उतारा ।  
स्तरीय नगर या धीर जहाँ कनककेतु राजा था, वहाँ पहुँचे । पहुँच कर दोनों  
का अभिनन्दन किया । अभिनन्दन करके वे धरव उपस्थित किये ।

ककेतु ने उन सामानिक वणिकों का मुक्त माफ कर दिया । उनका सत्कार-सन्मान  
दा किया ।





विद्यतोऽनुपपत्ता का दुष्कृत

३०—कल-रिभिय-मधुर-तंतो-तलतात्पर्यमकजहाधिरामेभु ।

सहेषु रजजमाणा, रमति सोऽविषयवसद्वा ॥ १ ॥

कल धर्मात् श्रुतिमुपलब्ध धीर हृदयहारो, रिभित धर्मात् स्वरधोतना के प्रकार वाले, मधुर शीषा, तलतात् (हाथ की ताली-करतात्) धीर वायुरो के थंछ धीर मनोहर वाचों के शब्दों में मनुरक्त होने वाले धीर श्रोत्रेन्द्रिय के वसवर्त्ता बने हुए श्राणी ध्यानन्द मानते हैं ॥१॥

सोऽविषयबुद्धन्त-तणस्त ग्रह एतिमो हवइ शोतो ।

वीविषयमसहंतो, वहवयं तितिरौ पत्तो ॥ २ ॥

किन्तु श्रोत्रेन्द्रिय की दुर्दान्तिता का धर्मात् श्रोत्रेन्द्रिय की उच्छृङ्खलता का इतना शोष होता है, जैसे पारधि के पिजरे में रहे हुए तीतुर के शब्द को सहन न करता हुआ तीतुर पक्षी वध धीर वधन को प्राप्त होता है ।

तात्पर्य यह है कि पारधि के पिजरे में रहे हुए तीतुर का शब्द सुन कर वन का स्वाधीन तीतुर अपने स्थान से निकल भागा है और पारधि उसे भी ऐसा लेता है । श्रोत्रेन्द्रिय को न जीतने से ऐसे दुष्परिणाम की प्राप्ति होती है ॥२॥

धन-जहण-वयण-कर-वरण-वयण-गन्धिव-विस्तारियवर्गभु ।

कबेसु रजजमाणा, रमति चविषयियवसद्वा ॥ ३ ॥

चक्षु इन्द्रिय के वशीभूत धीर रूपों में मनुरक्त होने वाले पुरुष, स्त्रियों के स्तन, वयन, वदन, हाथ पैर नेत्रों में तथा गन्धिव बनी हुई स्त्रियों की विलासमुक्त गति में रमण करते हैं—धान्य मानते हैं ॥३॥

चविषयियबुद्धन्त-तणस्त ग्रह एतिमो भवइ शोतो ।

जं जलणम्मि जसंते, पवइ पयंगो मनुजोभो ॥ ४ ॥

परन्तु चक्षु इन्द्रिय की दुर्दान्तिता से इतना शोष होता है कि—जैसे बुद्धिहीन पतंगिया जलती हुई भाग में जा पड़ता है धर्मात् चक्षु के वशीभूत हुआ पतंग जैसे श्राणी से हाथ धो बंठता है, उसी प्रकार मनुष्य भी वध-वधन के धीर दुःख पाते हैं ॥४॥

मधुष-वरपवरमूवण-जयय-मत्सजानुतेवणविहीभु ।

गंधेसु रजजमाणा, रमति धाणिदियवसद्वा ॥ ५ ॥

सुगंध में मनुरक्त हुए धीर धाणेन्द्रिय के वध में पड़े हुए श्राणी थंछ धाण विविध ऋतुस्रो से वृद्धि को प्राप्त माल्य (जाई धादि के पुष्पों) तथा अनुलेपन की विधि में रमण करते हैं धर्मात् सुगंधित पदार्थों के सेवन में धाणेन्द्रिय का अनुभव

(१०) प्रमादमरण—प्रमादवश होकर तथा घोर संकल्प-विकल्पमय परिणामों के कारणों का परित्याग करना ।

(११) वशात्तमरण—इन्द्रियों के वशवर्ती होकर कषाय के वशीभूत होकर, वंशना होकर या हास्यवश होकर मरना ।

(१२) विप्रणमरण—सयम, वत आदि का निर्वाह न होने के कारण प्राण घात करना ।

(१३) गूढपृष्ठमरण—संग्राम में दूरवीरता के साथ प्राण त्यागना भयवा किसी विनाशकाय प्राणी के मृत कलेवर में प्रवेश करके मरना ।

(१४) भक्षतप्रत्याख्यानमरण—विधिपूर्वक आहार का त्याग करके यावज्जीवन प्रत्याग्न्य करके शरीर त्यागना ।

(१५) हंगितमरण—समाधिमरण ग्रहण करके दूसरे से वंयावृत्य (सेवा) न कराते हुए शरीर को त्यागना ।

(१६) पादपोषगमनमरण—आहार और शरीर का यावज्जीवन त्याग करके स्वेच्छापूर्वक हलन-चलन आदि क्रियाओं का भी त्याग करके समाधिपूर्वक प्राणोत्सर्ग करना ।

(१७) केवलमरण—केवलज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् मोक्ष-गमन करते समय अन्तिम रूप से शरीर-त्याग करना ।

उल्लिखित मरणों में से यहाँ और भगती गायामों में ग्यारहवें मरण का उल्लेख किया गया है । जो अपनी इन्द्रियों का संवर करता है, उनके वशीभूत नहीं होता किन्तु उनको अपने वश करता है, उसे वशात्तमरण जैसे भक्त्याणकारी मरण का पात्र नहीं बनना पड़ता ।

धन-जहण-वधण-कर-चरण-नयण-गन्धियधित्तासियगईसु ।

इयेसु जे न सत्ता, वसट्टमरणं न ते मरए ॥ १२ ॥

स्त्रियों के स्तन, जघन, मुख, हाथ, पैर, नयन तथा गर्वयुक्त विलास वाली गति आदि समस्त रूपों में जो आसक्त नहीं होते वे वशात्तमरण नहीं मरते ॥ १२ ॥

भगव-वरपयरधूवण-उज्जयमस्तान्पुलेवणविहोसु ।

गंधेसु जे न गिद्धा, वसट्टमरणं न ते मरए ॥ १३ ॥

उत्तम भगव, श्रेष्ठ धूप, विविध ऋतुओं में वृद्धि को प्राप्त होने वाले पुष्पों की मालाओं तथा श्रीखंड आदि के लेपन की मध्य में जो आसक्त नहीं होते, उन्हें वशात्तमरण नहीं मरना पड़ता ॥ १३ ॥

तित्त-कट्ठं कसायंब-महुरं बहुसज्ज-वेगज-तेज्जेसु ।

आसायंमि न गिद्धा, वसट्टमरणं न ते मरए ॥ १४ ॥

तित्त, कटुफ, कदंब, सट्टे और मोठे साध, पेय और लेह्य (चाटने योग्य) पदार्थों के आस्वादन में जो गूढ़ नहीं होते, वे वशात्तमरण नहीं मरते ॥ १४ ॥

उज्ज्वलमाषसुतेषु यः सविभव-हृष्य-निष्कृष्टकरेण ।  
कासेषु जे न गिह्या, वसट्टमरणं न ते मरण ॥ १५ ॥

हेमन्त आदि विभिन्न ऋतुओं में सेवन करने से सुख देने वाले, वैभव (धन) सहित, हितक  
कृति को धनरूप) और मन को आनन्द देने वाले स्पर्शों में जो गूढ़ नहीं होते, वे वद्यार्तमर  
में मरते ॥१५॥

पि-निर्देश

सद्वेषु यः भद्रव-पावेषु सोयविसयं उवगएसु ।  
सुद्वेषे व रुद्वेषे व, समणेण सया न होमय्यं ॥ १६ ॥

साधु की भद्र (गुण-मनोज्ञ) श्रोत्र के विषय वस्तु प्राप्त होने पर कभी तुष्ट नहीं हो  
हिए और पापक (अगुण-अमनोज्ञ) वस्तु सुनने पर रुष्ट नहीं होना चाहिए ॥१६॥

सद्वेषु यः भद्रव-पावेषु चक्षुविसयं उवगएसु ।  
सुद्वेषे व रुद्वेषे व, समणेण सया न होमय्यं ॥ १७ ॥

गुण भयवा अगुण रूप वस्तु के विषय होने पर—दृष्टिगोचर होने पर साधु को कभी न तु  
ना चाहिए और न रुष्ट होना चाहिए ॥१७॥

गणेषु यः भद्रव-पावेषु धावविसयमुवगएसु ।  
सुद्वेषे व रुद्वेषे व, समणेण सया न होमय्यं ॥ १८ ॥

प्राण-इन्द्रिय को प्राप्त हुए गुण भयवा अगुण वस्तु में साधु को कभी तुष्ट भयवा रुष्ट ना  
ना चाहिए ॥१८॥

रसेषु यः भद्रव-पावेषु जिह्वविसयं उवगएसु ।  
सुद्वेषे व रुद्वेषे व, समणेण सया न होमय्यं ॥ १९ ॥

जिह्वा इन्द्रिय के विषय को प्राप्त गुण भयवा अगुण रसों में साधु को कभी तुष्ट भयव  
न नहीं होना चाहिए ॥१९॥

कासेषु यः भद्रव-पावेषु कायविसयमुवगएसु ।  
सुद्वेषे व रुद्वेषे व, समणेण सया न होमय्यं ॥ २० ॥

स्पर्शनेन्द्रिय के विषय वस्तु हुए गुण भयवा अगुण स्पर्शों में साधु को कभी तुष्ट वा रुष्ट  
में होना चाहिए ।

अभिप्राय यह है कि पाचों इन्द्रियों में से किसी भी इन्द्रिय का मनोज्ञ विषय प्राप्त होने  
प्रसन्नता का और अमनोज्ञ विषय प्राप्त होने पर अप्रसन्नता का अनुभव नहीं करना चाहिए  
नु दोनों अवस्थाओं में समभाव धारण करना चाहिए ॥२०॥

टीकाकार ने इन बीस वाक्यों को प्रकृत वाचना की न मान कर वाचनान्तर की स्वीकार की है ।

३१—एवं सन्तु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाय संपत्तेणं सत्तरसमस्तं  
अयमद्वे पण्णत्ते ति वेमि ।

गुधर्मा स्वामी अभ्ययन का उपसंहार करते हुए कहते हैं—'जम्बू ! निरवय हो जाय  
का प्राप्ति अमरा भगवान् महावीर ने सत्तरहवें जात अभ्ययन का यह अर्थ कहा है। वृत्ति।  
गुमने कहा है ।

॥ सत्तरहवां अभ्ययन समाप्त ॥

## अठारहवाँ अध्ययन : सुंसुमा

सार : संक्षेप

सुंसुमा ! मोने के पत्ने में झूली, सुख में पत्नी, राजगृह नगर के धन्य सार्ववाह की लाइस  
कुमारी कितनी अभागिनी ! कैसा करण भन्त हुआ उसके जीवन का !

धन्य सार्ववाह के पाँच पुत्रों के पश्चात् उसका जन्म हुआ था। जब वह छोटी थी स  
चिलात (किरात) दास उसे घड़ीस-पड़ीस के बच्चों के साथ खेलाया करता था। यही उसका मु  
काम था। चिलात बड़ा ही नटखट था, बहुत उद्द और दुष्ट। खेल के समय वह बालक-बालिका  
को बहुत सताता था। बहुत बार वह उनकी कोड़ियाँ छीन लेता, साख के गोले छिपा लेता, बस  
हुरण कर लेता। कभी उन्हें धमकाता, मारता, पीटता। उसके मारे बालकों का नाको दम था  
वे घर आकर अपने माता-पिता से उसकी शिकायत करते। धन्य सेठ उसे डाँटते मगर वह अपने  
मादत से बाज न आया। उसकी हरकतें बढ़ती ही गईं।

एक बार बालकों के अभिभावक जब बहुत क्रुद्ध हुए, रुष्ट हुए तब धन्य सार्ववाह ने चिला  
को छोटी-छोटी मुना कर अपने घर से निकाल दिया।

चिलात अब पूरी तरह स्वच्छद और निरंकुश हो गया। उसे कोई रोकने वाला या फटकारने  
वाला नहीं था। अतएव वह जुमा के मठों में, मदिरालयों में, वेद्यागृहों में—इधर-उधर भटक  
लगा। उसके जीवन में सभी प्रकार के दुर्व्यसनों ने घुसा जमा लिया।

राजगृह से कुछ दूरी पर सिंहमुकानामक एक चोरपत्नी थी। उसमें पाँच सौ चोरो के  
साथ उनका सरदार विजयनामक चोर रहता था। चिलात उस चोर-पत्नी में जा पहुँचा। व  
बड़ा साहसी, बलिष्ठ और निर्भीक तो था ही, विजय ने उसे चोरकलाएँ, चोरबियाएँ और चोरमं  
सिखाता कर चौर्य-कला में निपुणात् कर दिया। विजय की मृत्यु के पश्चात् वह चोरो का सरदार  
सेनापति भी बन गया।

विरस्तुन करके घर से निकाल देने के कारण धन्य सार्ववाह के प्रति उसके मन में प्रतिशोध  
की भावना थी। कदाचित् सुसुमा पर उसकी प्रीति थी किन्तु उसके जीवन की अपवित्रता ने उस  
प्रीति को भी अपवित्र बना दिया था। जो भी कारण हो, उसने एक बार सब साधियों को एकत्र  
करके धन्य का घर नष्ट करने का निश्चय प्रकट किया। सब साथी उससे सहमत हो गए। चिलात ने  
कहा—लूट में जो धन मिलेगा वह सब तुम्हारा होगा, केवल सुंसुमा लड़की मेरी होगी।

निश्चयानुसार एक राति में धन्य सार्ववाह के घर डाका डाला गया। प्रचुर सम्पत्ति और



कुमारान य कुमारोण य अप्पेगइयाणं खुत्तए अवहरइ, एवं वट्टए आडोलियाओ तेंडूसए पोत्तुत्तए साडोल्लए, अप्पेगइयाणं आभरणमत्तातंकारं अवहरइ, अप्पेगइए आउसइ, एवं मवहसइ, निच्छोडेइ निम्भच्छेइ, तज्जेइ, अप्पेगइए तालेइ ।

उस समय वह चिलात दास-चेटक उन बहुत-से लड़कों, लड़कियों, बच्चों, बच्चियों, कुमार और कुमारिकाओं के माता-पिता धन्य सार्यवाह के पास आते—छीन लेता या चुरा लेता था । इसी प्रकार धतंक (साख के गोले) हर लेता, आडोलिया, (गेंद) हर लेता, दड़ा (बड़ी गेंद) कपड़ा और साडोल्लक (उत्तरीय वस्त्र) हर लेता था । किन्हीं-किन्हीं के आभरण, माला और धलंकार हरण कर लेता था । किन्हीं पर आक्रोश करता, किसी की हँसी उड़ाता, किसी को ठग लेता, किसी की भर्त्सना करता, किसी की तर्जना करता और किसी को मारता-पीटता था । तात्पर्य यह कि वह दास चेटक बहुत घातान था ।

दास चेटक की शिकायतें

५—तए णं ते बह्वे दारमा य दारिया य डिमया य डिभिया य कुमारा य कुमारिणा य रोयमाणा य कंदमाणा य सोयमाणा य तिप्पमाणा य विलवमाणा य साण साणं अम्मा-पिज्जं निवेदेति ।

तए णं तेंसि बहूणं दारमाण य दारिमाण य डिमाण य डिभियाण य कुमारान य कुमारियाण य अम्मापियरो जेणेव धण्णे सत्थवाहं तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता धण्णं सत्थवाहं बहूहिं खिज्जणाहिं य वट्ठणाहिं य उवलंभणाहिं य खिज्जमाणा य वट्ठमाणा य उवलंभेमाणा य धण्हस्स एयमट्ठं निवेदेति ।

तब वे बहुत-से लड़के, लड़कियाँ, बच्चे, बच्चियाँ कुमार और कुमारिकाएँ रोते हुए, चिल्लाते हुए, शोक करते हुए, आँसू बहाते हुए, विलाप करते हुए जाकर अपने-अपने माता-पिताओं से चिलात की करतूत कहते थे ।

उस समय बहुत-से लड़कों, लड़कियों, बच्चों, बच्चियों, कुमारों और कुमारिकाओं के माता-पिता धन्य सार्यवाह के पास आते । आकर धन्य सार्यवाह को खेदजनक वचनों से, वंचाते होकर उलाहने भरे वचनों से खेद प्रकट करते, रोते और उलाहना देते थे और धन्य सार्यवाह को यह वृत्तान्त कहते थे ।

६—तए णं घण्णे मत्थवाहं चित्ताय दासचेडं एयमट्ठं भुज्जो भुज्जो निवारेल्लि, णो खेव णं चिलाए दासचेडे उवरमइ । तए णं से चित्ताए दासचेडे तेंसि बहूणं दारमाण य दारिमाण य डिभियाण य डिभियाण य कुमारान य कुमारियाण य अप्पेगइयाणं खुत्तए अवहरइ जाव तालेइ ।

तत्पश्चात् धन्य सार्यवाह ने चिलात दासचेटक को इस बात के लिए बार-बार मना किया, मगर चिलात दास-चेटक रुका नहीं, माना नहीं । धन्य सार्यवाह के रोकने पर भी चिलात दास-चेटक उन बहुत लड़को, लड़कियों, बच्चों, बच्चियों, कुमारों और कुमारिकाओं में से किन्हीं को कोड़ियाँ हरण करता रहा और किन्हीं-किन्हीं को यावत् मारता-पीटता रहा ।

## अट्ठारसमं अज्झयणं : सुंसुमा

उत्क्षेप

१—जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं सत्तरसमस्स णायग्गमयणस्स प्रथमं पणत्ते  
अट्ठारसमस्स के अट्ठे पणत्ते ?

जम्बू स्वामी ने प्रश्न किया—‘भगवन् ! श्रमण भगवान् महावीर ने सत्तरहवें ज्ञान-  
अध्ययन का यह प्रथम कहा है, तो अट्ठारहवें अध्ययन का क्या प्रथम कहा है ?’

२—एयं पत्तु जंझु ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगित्ते णामं नयरे होत्था, वण्णमो । तत्तं वं  
धण्णे णामं सत्थवाहे पत्तिस्सइ, तस्स णं भद्वा भारिया ।

तस्स णं धणस्स सत्थवाहस्स पुत्ता भद्वाए अत्तया पंच सत्थवाहवारणा होत्था, तंजहा-पन्ने,  
धणपाले, धणवेये, धणगोये, धनरविसए । तस्स णं धणस्स सत्थवाहस्स धूया नद्वाए अत्तया पच्च  
पुत्ताणं अणुमग्गजाइया सुंसुमा णामं बारिया होत्था सुमालपाणिपाया ।

तस्स णं धणस्स सत्थवाहस्स चित्ताए नामं दासचेट्ठए होत्था । अहोणपांचियसत्ते  
मंसोवचिए बालकीलावणकुसले यावि होत्था ।

श्रीमुधर्मा स्वामी उत्तर देते हैं—‘हे जम्बू ! उस काल धीर उस समय में राजगृहनामक  
नगर था, उसका वर्णन श्रीपपातिक सूत्र के अनुसार समझ लेना चाहिए । वहाँ धन्यनामक सार्थवाह  
निवास करता था । भद्रा नाम की उसकी पत्नी थी ।

उस धन्य सार्थवाह के पुत्र, भद्रा के आत्मज पांच सार्थवाहदारक थे । उनके नाम इस प्रकार  
हैं—धन, धनपाल, धनदेव, धनगोप और धनरक्षित । धन्य सार्थवाह की पुत्री, भद्रा की आत्मजा  
और पाँचों पुत्रों के पश्चात् जन्मी हुई सुंसुमानामक बालिका थी । उसके हाथ-पैर आदि अंगोपांग  
सुकुमार थे ।

उस धन्य सार्थवाह का चिलातनामक दास चेटक (दासपुत्र) था । उसकी पाँचों इन्द्रियों  
पूरी थी और शरीर भी परिपूर्ण एवं मांस से उपचित था । वह बच्चों को खेलाने में कुशल भी था ।

दास चेटक : उसकी संतानी

३—तए णं से दासचेट्ठे सुंसुमाए बारियाए बालग्गवाहे जाए यावि होत्था । सुंसुमं बारियं  
कडोए गिण्हइ, गिण्हिता बह्तिहं बारएहि य बारियाहि य डिभएहि य डिभयाहि य कुमारएहि य  
कुमारियाहि य सडि अमिरममाणे अमिरममाणे विहरइ ।

अतएव वह दासचेटक सुंसुमा बालिका का बालग्रहण (बालक को खेलाने वाला । निपट  
किया गया । वह सुंसुमा बालिका को कमर में ले लेता और बहुत-से लड़कों, लड़कियों, बच्चों,  
बच्चियों, कुमारों और कुमारिकाओं के साथ खेलता रहता था ।

४—तए णं से चित्ताए दासचेट्ठे तेसि बह्णं वारयाण य बारियाण य डिभयाण य डिभियाण य



१०—तए णं रायमिहस्स नगरस्स अदूरसामते बाहिणपुरत्थिमे दिसिभाए सोहगुहा नामं  
[चोरपत्ती] होत्था, विसमगिरिकण्ठ-कोट्ठं-संनिविट्ठा बंसीकलंक-पागार-परिवसत्ता छिण्ण-सेल-  
विसमप्यवाय-सरिहोवगुढा एगदुवारा अणेगलंडो विदितजणभिमम-पवेसा अग्निंतरपाणिमा  
सुदुल्लभ-जलपेरंता सबुद्धस्स वि कूविपवलस्स आगपस्स दुप्पहंसा यावि होत्था ।'

उस समय राजगृह नगर से न अधिक दूर और न अधिक समीप प्रदेश में, दक्षिणपूर्व  
दिशा (ग्रामेय कोण) में सिंहगुफानामक एक चोरपत्ती थी। वह पत्ती विपम गिरिनित्तव  
के प्रान्त भाग में बसी हुई थी। बास की झाड़ियों के प्रकार से घिरी हुई थी। अलग-  
अलग टेकरियों के प्रपात (दो पर्वतों के बीच के गड्ढे) रूपी परिक्षा से युक्त थी।  
उसमें जाने-आने के लिए एक ही दरवाजा था, परन्तु भाग जाने के लिए छोटे-छोटे घनेक  
द्वार थे। जानकार लोग ही उसमें से निकल सकते और उसमें प्रवेश कर सकते थे। उसके  
भीतर ही पानी था। उस पत्ती से बाहर घास-घास में पानी मिलना अत्यन्त दुर्लभ था। चुराये  
हुए माण को छीनने के लिए आई हुई सेना भी उस पत्ती का कुछ नहीं बिगाड़ सकती थी। ऐसी  
थी वह चोरपत्ती !

११—तए णं सोहगुहाए चोरपत्तीए बिजए भायं चोरसेभावई परिवसह अहम्मिए जाव  
[अहम्मिदुठे अहम्मवलाई अहम्माणुए अहम्मपत्तीई अहम्मपसज्जणे अहम्मसील-समुदायारे अहम्मेण  
चेव वित्ति कप्पेमाणे बिहरह । हण-छिद-भंद-वियत्तए सोहियपाणी बंडे बडे छुडे साहत्सिए उक्कचन-  
निस्सीले निथए निग्गुणे निप्पक्कवलाणपोसहोववासे  
घायाए बहाए उक्क्यावणाए] अहम्मकेऊ समुदुठिए  
बडवेहो । से णं तए सोहगुहाए चोरपत्तीए पंचहं  
चोरसमाणं आहवेच्चं जाव बिहरह ।

उस सिंहगुफा पत्ती में विजयनामक चोर सेनापति रहता था। वह प्रधानिक, [अत्यन्त  
क्रूर कर्मकारी होने के कारण अधमिष्ठ, अधर्म की बात करने वाला, अधर्म-प्रलोकी—अधर्म पर ही  
दृष्टि रखने वाला, अधर्म-कृत्यों का अनुरागी, अधर्मशील, और अधर्माचारी था तथा अधर्म में ही  
जीवन-निर्वाह कर रहा था। इसका पात कर डालो, इसे काट डालो, इसे भेद डालो, ऐसी दूसरों  
को प्रेरणा किया करता था। उसके हाथ रुधिर से लिप्त रहते थे। वह चङ्द-तोत्र रोप वाला,  
रौद्र-भर्गस, क्षुद्र-क्षुद्र-कर्म करने वाला, साहसिक-परिणाम का विचार किए बिना किसी भी काम में  
कूद पड़ने वाला था। प्रायः उत्कचन, वचन, माया, निष्ठति (वक्त्रित से दूसरों को ठगना प्रयत्न  
एक मायाचार को ढँकने के लिए दूसरी माया करना), कपट (वेष परिवर्तन करना आदि), कूट  
(न्यूनधिक नीलना-नापना) एवं स्वाति-प्रविश्रंभ का ही प्रयोग किया करता था। वह शीलहीन,

१. वाचनान्तर में इस प्रकार का पाठ है—'अथ चउरगवलनिमुत्तावि कूविमवला ह्य-महिय-पवरवीर-पाइय-  
निवडिय-विध-घय-वडाया कीरंति ।'  
—अथमदेव टीका पृ. २४५ (पृ.)

तात्पर्य यह कि उस चोरपत्ती में रहने वाले चोर इतने बलिष्ठ और सशक्त थे कि चुराया हुआ माल  
छीनने के लिए यदि सबल चतुरंगिणी सेना भेजी जाय तो उसे भी वे हत और मरिष्ठ कर सकते थे—इसका मान-  
मर्दन कर सकते थे और उसकी ध्वजा-पताका नष्ट कर सकते थे।

प्रतहीन, गुणहीन, प्रत्याख्यान और पोषधोपवास से रहित तथा बहुत-से द्विपद, चतुष्टय, २५५ पक्षी और सरीसृप—रंग कर चलने वाले जंतुओं का घात, वध और उच्छेदन करने वाला था। इन सब दोषों और पापों के कारण वह ग्रहमें की ध्वजा था। बहुत नगरों में उसका (केंद्र करने की वहादुरी का) यश फैला हुआ था। वह दूर था, दृढ़ प्रहार करने वाला, साहसी शब्दवेधी (शब्द के आधार पर वाण चला कर लक्ष्य का वेधन करने वाला) था। वह उस विह्वल में पाँच सौ चोरों का अधिपतित्व करता हुआ रहता था।

१२—तए नं से विजए तक्करे चोरसेणावई बहूणं चोराण य पारवारिमाण य गण्डिनेण य संधिच्छेयमाण य खलखणमाण य रायावगारीण य अणधारमाण य बालघायमाण य बीसंभयमाण य जूयकाराण य खंडरक्षण य अग्नेसि च बहूणं छिन्न-भिन्न बाहिराह्वायं कुम्भे बाँधे होत्था।

वह चोरों का सेनापति विजय तस्कर दूसरे बहुतेरे चोरों के लिए, जारों के लिए, रास्ते के अपकारियों के लिए, ऋणियों के लिए, गठकटों के लिए, संध लगाने वालों के लिए, छात छोदने वालों के लिए, बालकों के लिए, विश्वासघातियों के लिए, जुआरियों के लिए तथा खण्डरक्षकों (दण्डाधिकारियों) के लिए, और मनुष्यों के हाथ-पैर आदि अवयवों को छेदन-भेदन करने वाले अन्य लोगों के लिए कुडग (बाँस की झाड़ी) के समान-शरणभूत था। अर्थात् जैसे अपराधी लोग राजमय से बाँध को झाड़ी में छिप जाते हैं अतः बाँस की झाड़ी उनके लिए शरण रूप होती है, उसी प्रकार विजय चोर भी अन्यायी-प्रत्याचारी लोगों का आश्रयदाता था।

१३—तए नं से विजए तक्करे चोरसेणावई रायगिहस्त नगरस्त बाहिणपुरच्छिन्नं जणववं बाँधे गामघाएहि म नगरघाएहि य गोगहणेहि य वंदिगहणेहि य पंथकुट्टणेहि य खलखणणेहि य उबोलेमाणे उबोलेमाणे विद्धं सेमाणे-विद्धं सेमाणे गिरयाणं निद्धणं करेमाणे विहरइ।

वह चोर सेनापति विजय तस्कर राजगृह नगर के दक्षिणपूर्व (अग्नि कोण) में स्थित जन-प्रदेश को, ग्राम के घात द्वारा, नगरघात द्वारा, गाँवों का हरण करके, लोगों को कैद करके, पथिकों को मारकूट कर तथा संध लगा कर पुनः पुनः उत्पीडित करता हुआ तथा विध्वस्त करता हुआ, लोगों को स्थानहीन एवं धनहीन बना रहा था।

चोर-सेनापति की छारण में

१४—तए नं से चिसाए वासजेहे रायगिहे नयरे बहूहि पर्याभिसंकोहि य चोराभिसंकोहि य दाराभिसंकोहि य धणिणहि य जूयकरेहि य परम्भवमाणे परम्भवमाणे रायगिहाओ नयराओ निगच्छता निगच्छता जेणेय सोहणुहा चोरपत्तो तेणेय उवागच्छइ, उवागच्छिता विजयं चोरसेणाय उपसपजिस्ता नं विहरइ।

तत्पश्चान् वह चिसात्र दामपेट राजगृह नगर में बहुत-से पर्याभिसाकी (हमारा धन यह वृत्त सेना ऐसी सजा करने वालों) चोराभिसाकी (चोर समझने वालों) दाराभिसाकी (यह हमारी स्त्री को ले जायगा, ऐसी सजा करने वालों), धनिकों और नृपारियों द्वारा पराभव पाया हुआ—जितना

लेकर राजगृह नगर से बाहर निकला । निकल कर जहाँ सिंहगुफानामक चोरपत्नी थी, वहाँ पहुँचा ।  
हुँच कर चोरसेनापति विजय के पास पहुँच कर उसकी धारण में जा कर रहने लगा ।

१५—तए न से चिलाए दासचेडे विजयसस चोरसेनावइसस भग्न-असि-सट्टिगाहे जाए यावि  
होत्था । जाहे वि य न से विजए चोरसेनावई गामघायं वा जाय [नगरघायं वा गोगहणं वा  
वंदिगहणं वा] पंयकोट्टि वा काउं वञ्चइ, ताहे वि य न से चिलाए दासचेडे सुबहुं पि हु कूविमबलं  
रुयमहिं जाव<sup>१</sup> पडिसेहेइ, पुणरवि सट्टइ कयकञ्जे अणहसममे सीहगुहं चोरपालि हवमागच्छइ ।

तत्पश्चात् वह दासचेट चिलाट विजयनामक चोर सेनापति के यहाँ प्रधान खड्गधारो या  
खड्ग धीर यष्टि का धारक हो गया । अतएव जब भी वह विजय चोर सेनापति घाम का घात करने  
के लिए [नगर-घात करने के लिए, गायों का अपहरण करने या बंदियों को पकड़ने अथवा] पथिकों  
को मारने-कूटने के लिए जाता था, उस समय दासचेट चिलाट बहुत-सी कूविय (चोरी का मास  
छीनने के लिए माने वाली) सेना को हत एवं मथित करके रोकता था—भगा देता था और फिर  
उस धन प्रादि को लेकर अपना कार्य करके सिंहगुफा चोरपत्नी में सकुशल वापिस आ जाता था ।

१६—तए न से विजए चोरसेनावई चिलायं तक्करं बहुईओ चोरविज्जाओ य चोरमंते य  
चोरमायाओ य चोरनिगशेओ य सिक्खावेइ ।

उस विजय चोर सेनापति ने चिलाट तक्कर को बहुत-सी चोरविद्याएं चोरमंत्र चोर-  
मायाएं और चोर-निकृतियाँ (चोरी के योग्य छल-कपट) सिखला दीं ।

१७—तए न से विजए चोरसेनावई अथया कपाइं कालघम्मुणा संजुत्ते यावि होत्था । तए  
न ताई पंच चोरसगाई विजयसस चोरसेनावइसस महया महया इड्डी-सक्कार-समुदएणं नीहरणं करेति,  
करिता बहुइ लोइयाई मयकिन्चाई करेइ, करिता जाव [कातेणं] विजयसोया जाया यावि होत्था ।

तत्पश्चात् विजय चोर किसी समय मृत्यु को प्राप्त हुआ—कालघर्म से मुक्त हुआ । तब उन  
पाँच सी चोरी ने बड़े ठाठ और सत्कार के समूह के साथ विजय चोर सेनापति का नीहरण किया-  
अपमान में ले जाने की क्रिया की । फिर बहुत-से लौकिक मृतककृत्य किये । कुछ समय बीत जाने  
पर वे शोकरहित हो गये ।

चिलाट सेनापति बना

१८—तए न ताई पंच चोरसगाई अन्नमत्तं सहावेति, सहाविता एवं वयासी - एवं खलु  
अम्हं देवानुप्पिया । विजए चोरसेनावई कालघम्मुणा संजुत्ते, अयं अ नं चिलाए तक्करे विजएणं  
चोरसेनावइणा बहुओ चोरविज्जाओ य जाव<sup>२</sup> सिक्खाविणं, तं सेयं खलु अम्हं देवानुप्पिया ! चिलायं  
तक्करं सीहगुहाए चोरपत्नीए चोरसेनावइताए अभिसिचिन्तए<sup>३</sup> । ति कट्टु अन्नमत्तसस एयमट्टु<sup>४</sup>  
पडिमुत्तेति, पडिमुत्तिता चिलायं तक्करं तीए सीहगुहाए चोरसेनावइताए अभिसिचिन्ति । तए न से  
चिलाए चोरसेनावई जाए अहम्मिए जाव<sup>३</sup> विहरइ ।

तत्पश्चात् उन पाँच सौ चोरों ने एक दूसरे को बुलाया (सब इकट्ठे हुए)। तब आपस में कहा—‘देवानुप्रियो ! हमारा चोरसेनापति विजय कालधर्म (मरण) से समुक्त हो है। श्रीर विजय चोर सेनापति ने इस चिलात तस्कर को बहुत-सो चोरविद्याएँ पादि सिखाई हैं। अतएव देवानुप्रियो ! हमारे लिए यही श्रेयस्कर होगा कि चिलात तस्कर का सिंहगुफा चोरा के चोरसेनापति के रूप में अभिषेक किया जाय ।’ इस प्रकार कह कर उन्होंने एक दूसरे को स्वीकार की। चिलात तस्कर को सिंहगुफा चोरपत्नी के चोरसेनापति के रूप में अभिषिक्त किया। तब वह चिलात चोरसेनापति हो गया, तथा विजय के समान ही अधार्मिक क्रूरकर्मा एवं पाशाकट होकर रहने लगा।

१६—तए नं से चिलाए चोरसेनापति चोरसेनापति जाय<sup>१</sup> कुडगे यावि होरया। सेमंऊव सिंहगुहाए चोरपत्नीए पंचहं चोरसयाण य एवं जहा विजयो<sup>२</sup> तहेव सखं जाय रायगिहस रायि<sup>३</sup> पुरच्छिमिलं जणवयं जाय निरथानं निद्धणं करेमाणे विहरइ।

वह चिलात चोरसेनापति चोरो का नायक यावत् कुडग (बाँस की झाड़ी) के समान चोंपे जारो आदि का आश्रयभूत हो गया। वह उस सिंहगुफानामक चोरपत्नी ने पाँच सौ चोरों का अधिपति हो गया, इत्यादि विजय चोर के वर्णन के समान समझना चाहिए। यावत् वह रायपुर नगर के दक्षिण-पूर्व के जनपद निवासी जनो को स्थानहीन श्रीर धनहीन बनाने लगा।

२०—तए नं से चिलाए चोरसेनापति अग्रया कयाइं विपुलं अशनं पाणं साइम सायं उयव्वडायेत्ता पंच चोरसए अमानेइ। तमो पच्छा भूए कयवत्तिकममे भोगमंडवसि तौह पंचइ चोरसएहि सद्धि विपुलं अशनं पाणं साइमं साइमं सुरं च जाव [मज्जं च मंतं च सोधुं च] पत्तव्व च आसाएमाणे विसाएमाणे परिभाएमाणे परिभुंजेमाणे विहरइ। निमियभूत्तराणए ते पंच चोरस विपुलेणं धूय-पुष्प-गंध-मत्सालंकारेणं सबकारेइ, संमाणेइ, सबकारिता संमाणित्ता एवं वयातो :—

तत्पश्चात् चिलात चोरसेनापति ने एक बार किसी समय विपुल अशन, पान, साद्य को स्वाद्य तैयार करवा कर पाँच सौ चोरों को आमंत्रित किया। फिर स्नान तथा बनिकर्म इन्हें भोजन-महप में उन पाँच सौ चोरों के साथ विपुल अशन, पान, खादिम श्रीर स्वादिम का तथा गुण (मद्य, मांस, सोधु-तथा) प्रसन्नानामक मदिराओं का आस्वादन, विस्वादन, वितरण एवं परिभन करने लगा। भोजन कर चुकने के पश्चात् पाँच सौ चोरों का विपुल धूप, पुष्प, गंध, माता श्रीर अलंकार से सज्जित किया, सम्मान किया। सत्कार सम्मान करके उनसे इस प्रकार कहा—

अयं सायंवाह के घर की मूढ : धन्य-कन्या का अपहरण

२१—एवं ससु देवानुप्पिया। रायगिहे जयरे धण्णे जामं सत्यवाहे अडु, तस्स नं धूया भूर अतया पंचहं पुत्ताण अणुमण्णजाइया मुंमुमा जामं बारिया यावि होरया अहीणा जाव मुक्खा। व गच्छामो नं देवानुप्पिया ! धण्णस्स सत्यवाहस्स गिहं वित्तामो। तुभं विपुले धनकम्म जाव [रयण-मणि-मोतिय-संछ-] सितप्पवाले, ममं मुंमुमा बारिया।

तए नं ते पंच चोरसया चिलापस्स चोरसेनापतिस्स एयमट्ठं पडिमुञ्जेति।

[रहवां अध्ययन : सुसुमा]

(चिलात ने कहा—) 'देवानुप्रियो ! राजगृह नगर में धन्यनामक घनाढ्य सार्यवाह है । की पुत्री, भद्रा की आत्मजा और पांच पुत्रों के पश्चात् जन्मी हुई सुसुमा नाम की लड़की है । वह पूर्ण इन्द्रियों वाली यावत् सुन्दर रूप वाली है । तो हे देवानुप्रियो ! हम लोग चलें और धन्य र्यवाह का घर लूटें । उस लूट में मिलने वाला विपुल धन, कनक, यावत् [रत्न, मणि, मोती, शख रा] शिला मूंगा वगैरह तुम्हारा होगा और सुसुमा लड़की मेरी होगी ।'

तब उन पांच सौ चोरों ने चोरसेनापति चिलात को यह बात अगीकार की ।

२२—तए नं से चिलाए चोरसेनावई तेहि पचाहि चोरसएहि सडि भल्लं चम्मं दुहहइ, रचावरणकालसमयंसि पंचहि चोरसएहि सडि सज्ज जाव गहिघाउहपहरणे माइयगोमुहिएहि जलएहि, निबकट्ठाहि असितट्ठाहि, अंतगएहि तोषेहि, सजोवेहि धर्णाहि, समुविभ्रत्तेहि सरोह समुत्ता- जयाहि बाहाहि, ओसारियाहि उरुघटियाहि, छिप्पतूरेहि वज्जमाणेहि महया महया उबिकट्ठोहणाय- तोल-कलकलरवेणं जाव [पक्खुभियमहा-] समुहरवभूयं करेमाणा सोहगुहाओ चोरपत्तोओ डिनिबल्लमइ, पडिनिबल्लमिता जेणेव रायगिहे नगरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता रायगिहस्स प्रवरसामंते एणं महं गहणं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता दिवसं खवेमाणो चिट्ठइ ।

तत्पश्चात् चिलात चोरसेनापति उन पांच सौ चोरों के साथ (मंगल के लिए) भ्रात्रं वमं (गीली चमड़ी) पर बैठा । फिर दिन के अतिप्र प्रहर में पांच सौ चोरों के साथ कवच धारण करके तैयार हुआ । उसने प्रायुष और प्रहरण ग्रहण किए । कोमल गोमुखित—गाय के मुख सरीखे किए हुए फलक (ढाल) धारण किये । तलवारें भ्यानों से बाहर निकाल ली । कंधों पर तर्कश धारण किये । धनुष जीवायुक्त कर लिए । बाण बाहर निकाल लिए । बछियाँ और भाँसे उछालने लगे । जघाघ्रों पर बांधी हुई घटिकाएँ लटका दी । शीघ्र ही बाजे बजने लगे । बड़े-बड़े उलूकट्ट सिंहनाद और बोलों की कल-कल ध्वनि से ऐसा प्रतीत होने लगा जैसे महासमुद्र का खलबल शब्द हो रहा हो ! इस प्रकार शोर करते हुए वे सिंहगुफानामक पत्ती से बाहर निकले । निकलकर जहाँ राजगृह नगर था, वहाँ आये । आकर राजगृह नगर से कुछ दूर एक सघन वन में घुस गये । वहाँ घुस कर छेप रहे दिन को समाप्त करने लगे—सूर्य के अस्त हो जाने की प्रतीक्षा करने लगे ।

२३—तए नं से चिलाए चोरसेनावई अट्टरसकालसमयंसि निसंतपडिनिंसंतंसि पंचहि चोरसएहि सडि माइयगोमुहिएहि फलएहि जाव भूइयाहि उरुघटियाहि जेणेव राहगिहे नगरे पुरच्छि निल्ले ठुवारे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता उदगवत्थि परामुसइ, परामुसित्ता आयत्ते चोरे परमसुइभूए तालुग्याडिनिज्जं आवाहेइ, आवाहिता रायगिहस्स ठुवारकवाडे उदएणं अच्योडेइ अच्योडित्ता कवाडं बिहाडेइ, बिहाडित्ता रायगिहं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता महया महया सइ उग्घोसेमाणे उग्घोसेमाणे एवं वयासीः—

तत्पश्चात् चोरसेनापति चिलात आधी रात के समय, जब सब जगह शान्ति और सुनसा हो गई थी, पांच सौ चोरों के साथ, रीछ आदि के बालों से सहित होने के कारण कोमल गोमुखि (ढाले) छाती से बाँध कर यावत् जाघों पर घूँघरे लटका कर राजगृह नगर के पूर्व दिशा के दरवा पर पहुँचा । पहुँच कर उसने जल की मशक ली । उसमे से जल की एक अजलि लेकर आचमन किया । पवित्र हुआ, पवित्र हुआ । फिर ताला खोलने को बिया का आवाहन करके राजगृह के द्वार

किवाडो पर पानी छिड़का । पानी छिड़क कर किवाड़ उघाड़ लिये । तत्पश्चात् राजगृह के पक्ष प्रवेश किया । प्रवेश करके ऊँचे-ऊँचे शब्दों से भाषोपणा करते-करते इस प्रकार बोला—

२४—‘एवं खलु देवानुप्पिया ! चिलाए नामं चोरसेणावई पंचहिं चोरसएहिं सडिं सोहगुहाओ चोरपत्तोओ इह हव्वमागए धणस्स सत्थवाहस्स गिहं घाउकामे, तं जो नं नविमाए माज्जाए सुं पाउकामे, से न निगच्छेउ’ त्ति कट्टु जेणेव धणस्स सत्थवाहस्स गिहे तेणेव उवागच्छेउ, उवागच्छिता धणस्स गिहं विहाडेइ ।

‘देवानुप्रियो ! मैं चिलातनामक चोर सेनापति, पाँच सौ चोरों के साथ, सिंहगुहा नामक चोर-पत्नी से, धन्य सार्यवाह का घर लूटने के लिए यहाँ आया हूँ । जो नवीन माता का दूध पीना चाहता हो अर्थात् मरना चाहता हो, वह निकल कर मेरे सामने आवे ।’ इस प्रकार कह कर वह धन्य सार्यवाह के घर आया । आकर उसने धन्य सार्यवाह का घर (द्वार) उघाड़ा ।

२५—तए नं से धण्णे सत्थवाहे चिलाएणं चोरसेणावइणा पंचहिं चोरसएहिं सडिं विं घाइज्जमणं पासइ, पासित्ता भोए, तत्थे, पंचहिं पुत्तोहिं सडिं एणंतं भववक्कमइ ।

तए नं से चिलाए चोरसेणावई धणस्स सत्थवाहस्स गिहं घाएइ, घाइत्ता सुवहुं धनकणं जाव सायएज्जं सुंसुमं च बारियं गेण्हइ, गेण्हित्ता रायगिहाओ पडिण्णिकसमइ, पडिण्णिकसमित्ता वेदं सोहगुहा तेणेव पहारेत्थं गमणाए ।

धन्य सार्यवाह ने देखा कि पाँच सौ चोरों के साथ चिलात चोरसेनापति के द्वारा घर लूटा जा रहा है । यह देखकर वह भयभीत हो गया, धक्का लगा और अपने पाँचों पुत्रों के साथ एकत्र हो चला गया—छिप गया ।

तत्पश्चात् चोर सेनापति चिलात ने धन्य सार्यवाह का घर लूटा । लूट कर बहुत सारा धन, कनक यावत् स्वापतेय (द्रव्य) तथा सुंसुमा दारिका को लेकर वह राजगृह से बाहर निकल कर बिना सिंहगुहा भी, उसी ओर जाने के लिए उद्यत हुआ ।

मगरसकों के समक्ष करिवाह

तए नं से धण्णे सत्थवाहे जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छेइ, उवागच्छित्ता सुवहुं धनकणं सुंसुमं बारियं भवहरियं जानित्ता महत्थं महत्थं महरिहं पाहुइं गहाय जेणेव नगरगुत्तिया तेव उवागच्छेइ, उवागच्छित्ता तं महत्थं जाव पाहुइं उवणेइ, उवणित्ता एवं वयातो—‘एवं खु देवानुप्पिया ! चिलाए चोरसेणावई सोहगुहाओ चोरपत्तोओ इहं हव्वमागम्म पंचहिं चोरसएहिं सडिं मम गिहं घाएत्ता सुवहुं धनकणं सुंसुमं च बारियं गहाय जाव पडिगए, तं इच्छामो नं देवानुप्पिया ! सुंसुमादारियाए कयं गमित्तए । तुझे नं देवानुप्पिया ! से विपुले धनकणये, मम सुंसुमा भारिया ।

चोरों के चले जाने के पश्चात् धन्य सार्यवाह अपने घर आया । आकर उसने जाना कि मेरा बहुत-सा धन कनक और सुंसुमा लड़की का अपहरण कर लिया गया है । यह जान कर वह बहुत दुःख भेंट लेकर नगर के रक्षकों के पास गया और उनसे कहा—‘देवानुप्रियो ! चिलातनामक चोरसेनापति सिंहगुहानामक चोरपत्नी से यहाँ आकर, पाँच सौ चोरों के साथ, मेरा घर लूट कर और बहुत-सा

रिश्तों का आहार करो। आहार करके उस आहार से स्वस्थ होकर फिर इस अग्रामिक ऋतवी को पार कर जाना, राजगृह नगर या लेना, मित्रों, जातिजनों, निजजनों, स्वजनों, सबधियों और रिजनों से मिलना तथा अर्थ, धर्म और पुण्य के भागी होना।'

१७ पुत्र की प्राप्तिपूर्व की तैयारी

३७—तएवं ते जेदुपुत्ते धर्मेण सत्यवाहेन एवं वृत्ते समाने धर्मेण सत्यवाहे एवं वपासी—  
मेवं नं ताम्रो ! अहं पिया, गुरु, जणया, देवयभूया, ठावका, पड्डावका, संरक्कपा, संगोवगा, तं  
हं नं अहं ताम्रो ! तुम्हे जीवियाओ ववरोवेमो ? तुम्हें नं भंसं च सोणिमं च आहारेमो ? तं तुम्हे  
तातो ! मम जीवियाओ ववरोवेह; भंसं च सोणिमं च आहारेह, अणामियं अर्द्धं निरहरह ।' तं  
सबं भणइ जाव अत्यस्त जाव पुणस्त आभायी भविस्तह ।

धन्य सार्यवाह के इस प्रकार कहने पर ज्येष्ठ पुत्र ने धन्य सार्यवाह से कहा—'तात ! आप  
पारे पिता हो, गुरु हो, जनक हो, देवता-स्वरूप हो, स्थापक (विवाह आदि करके गृहस्थधर्म में  
स्थापित करने वाले) हो, प्रतिष्ठापक (अपने पद पर स्थापित करने वाले) हो, कष्ट से रक्षा करने वाले  
, दुर्गमनों से बचाने वाले हो, भ्रतः हे तात ! हम आपकी जीवन से रहित कैसे करे ? कैसे आपके  
स और रश्मि का आहार करे ? हे तात ! हम आपको जीवन-हीन कर दो और मेरे भास तथा  
अर का आहार करो और इस अग्रामिक ऋतवी को पार करो।' इत्यादि सब पूर्ववत् कहा, यहां तक  
अर्थ, धर्म और पुण्य के भागी बनी।

३८—तएवं ते धर्मेण सत्यवाहे बोधे पुत्ते एवं वपासी—'मा नं ताम्रो ! अहं जेदुं भायरं गुरुं  
यं जीवियाओ ववरोवेमो, तुम्हे नं ताम्रो ! मम जीवियाओ ववरोवेह, जाव आभायी भविस्तह ।'  
जाव पंचमे पुत्ते ।

तत्पश्चात् दूसरे पुत्र ने धन्य सार्यवाह से कहा—'हे तात ! हम गुरु और देव के समान  
ठ बन्धु की जीवन से रहित नहीं करेंगे। हे तात ! आप मुझको जीवन से रहित कीजिए, यावत्  
सब पुण्य के भागी बनिए।' तीसरे, चौथे और पांचवें पुत्र ने भी इसी प्रकार कहा।

विवेचन—मूत्र ३६ से ३८ तक का वर्णन तत्कालीन कौटुम्बिक जीवन पर प्रकाश डालने  
वा है। इस वर्णन से स्पष्ट होता है कि उस समय का पारिवारिक जीवन अत्यन्त प्रशस्त था।  
मा का उद्धार करने के लिए धन्य सार्यवाह और उनके पांचों पुत्र चिलात का पीछा करते-करते  
कर और अग्रामिक ऋतवी में पहुंच गये थे। जोश ही जोश में वे आगे बढ़ते गए जो ऐसे प्रसंग पर  
भाविक ही था। किन्तु जब सुसुमा का वध कर दिया गया और चिलात आगे चला गया तो  
ने उसका पीछा करना छोड़ दिया। मर लगातार बेगवान् दौड़ादौड़ से वे प्रतिग्रम भ्रान्त हो  
गए। फिर सुसुमा का वध हुआ जान कर तो उनकी निराशा की सीमा नहीं रही। यकावट,  
प्यास और सबसे बड़ी निराशा ने उनका बुरा हाल कर दिया। समीप ये कहीं जल उपलब्ध  
। ऋतवी अग्रामिक—जिनके दूर-दूर के प्रदेश में कोई ग्राम नहीं, जहां भोजन पानी प्राप्त हो  
ता। बड़ी विकट स्थिति थी। पिता सहित पांचों पुत्रों के जीवन की रक्षा का कोई उपाय नहीं  
। सब का मरण-धरण हो जाना, सम्पूर्ण कुटुम्ब का निर्मूल हो जाना था। ऐसी स्थिति में धन्य

मुंमुमा विन्यास के द्वारा मार जानी गई है । यह देन कर तुम्हारे मे ली है तुम्हें । मन्त्र के द्वारा या यधनमुक्त दुःखदृष्टि के समान प्रदाम मे उर पृथ्वी पर गिर पड़ा ।

३४—तए नं से धण्णे सत्तयवाहे पंचहि पुत्तेहि प्रप्पच्छद्दुं प्रामाये कूयमाणे कंरमाणे वित्तवाने महया महया सद्देणं कुहकुहमुग्गम्मे<sup>१</sup> गुणिरं कात्तं वाहमोत्तं करेइ ।

गण्ड्यान् पाच पुत्रों महिला इडा पाप धन्य सार्थवाह् धारा गो प्राकटन करने पस, बिलाप करने लगा, और जोर-जोर के शब्दों मे कुह-कुह (घस्यष्ट शब्द) करता रोने लगा । यह बहुत देर तक प्रासू बहाता रहा ।

आहार-पानी का अभाव

३५—तए नं से धण्णे पंचहि पुत्तेहि प्रप्पच्छद्दुं चित्तायं तोसे प्रगामियाए सध्वमो समंता परिधाडेमाणा तण्हाए छुहाए प परान्नाए समाणे तोसे प्रगामियाए प्रडवीए सध्वमो समंता उदगतं भग्गणगयेसणं करेति, करित्ता सत्ते तंते परित्तंते णिविप्पन्ने तोसे प्रगामियाए प्रडवीए उदगतं भग्गणगयेसणं करेमाणे नो चेव नं उदगं प्रासावेइ ।

पाच पुत्रों सहित छटे स्वयं धन्य सार्थवाह् ने चितात चोर के पीछे चारों ओर दौड़ने के कारण प्यास और भूख से पीड़ित होकर, उस प्रग्रामिक भटवी मे मय तरफ जल की मार्गणा-नवैयणा की । गवेयणा करके वह श्रान्त हो गया, ग्लान हो गया, बहुत थक गया और खिन्न हो गया । उस प्रग्रामिक भटवी मे जल की खोज करने पर भी वह कहीं जल न पा सका ।

धन्य सार्थवाह् का प्राणत्याग का प्रस्ताव

३६—तए नं उदगं प्रणासाएमाणे जेणव मुंसुमा जीवियामो ववरोधिया तेणव उवागच्छा, उवागच्छित्ता जेद्धं पुत्तं धण्णे सत्तयवाहे सहावेइ, सहावित्ता एयं वयासी—एयं जत्तु पुत्ता ! मुंसुमाए दारियाए अट्ठाए चित्तायं तवकरं सध्वमो समंता परिधाडेमाणा तण्हाए छुहाए प अभिभूया समाणा इमीसे प्रगामियाए प्रडवीए उदगतस्स भग्गणगयेसणं करेमाणा नो चेव नं उदगं प्रासावेमो । तए नं उदगं प्रणासाएमाणा नो संचाएमो रायगिहं संपावित्तए । तं नं तुम्हं ममं देवानुप्पिया ! जीवियामो ववरोवेह, मंसं च सोणियं च प्राहारेह, प्राहारित्ता तेणं प्राहारेणं प्रवहिट्ठा<sup>२</sup> समाणा तम्मो पच्छा इमं प्रगामियं प्रडवि णित्परिहिह, रायगिहं च संपाविहिह, मित्त-णाइय-नियग-सयण-संबंधि-परियमं अभिसमागच्छिहिह, अत्तस्स य धम्मस्स य पुण्णस्स य प्राभागी भविस्सह ।<sup>१</sup>

तत्पश्चात् कही भी जल न पाकर धन्य सार्थवाह्, जहाँ मुंमुमा जीवन से रहित की गई थी, उस जगह प्राया । आकर उसने ज्येष्ठ पुत्र को बुलाया । बुलाकर उससे कहा—हे पुत्र ! मुंमुमा दारिका के लिए चितात तस्कर के पीछे-पीछे चारों ओर दौड़ते हुए प्यास और भूख से पीड़ित होकर हमने इस प्रग्रामिक भटवी मे जल की तलाश की, मगर जल न पा सके । जल के बिना हम लोग राजगृह नही पहुंच सकते । प्रतएव हे देवानुग्रिय ! तुम मुझे जीवन से रहित कर दो और सब भाई मेरे मांस

१. पाठान्तर—‘कुहकुहस्स पद्दन्ने’—अगमुत्ताणि ।

२. पाठान्तर—‘प्रववट्ठा’ और ‘प्रववट्ठा’—अ. सु.



। तए णं से घण्णे सत्यवाहे सुसुमाए बारियाए वहुइं लोइयाइं जाव [ मयकिच्चाइं करेइ, बरेत्ता कालेणं ] विगयसोए जाए यावि होत्था ।

उस आहार से स्वस्थ होकर वे राजगृह नगरी तक पहुँचे । अपने मित्रों एवं ज्ञातिजनो, स्वजनो, परिजनो आदि से मिले और विपुल धन कनक रत्न आदि के तथा धर्म, अर्थ एवं पुण्य के भागी हुए ।

तत्तद्वात् धन्य सार्थवाह ने सुसुमा दारिका के बहुत-से लौकिक मृतक-कृत्य किए, तदनन्तर कुछ काल बीत जाने पर वह सोकरहित हो गया ।

४२—तेणं कालेणं तेणं समयणं समणे भगवं महावीरे गुणशीलए वेइए समासडे । ते णं धण्णे सत्यवाहे संपत्ते, धम्मं सोच्चा पच्चइए, एवकारसंगवी, भासियाए सत्तेहणाए सोहम्मि उववण्णी, महाविहेहे वासे सिज्झिहिइ ।

उस काल और उस समय में अमल भगवान् महावीर राजगृह के गुणशील चैत्य में पधारे । उस समय धन्य सार्थवाह बन्दना करने के लिए भगवान् के निकट पहुँचा । धर्मोपदेश सुन कर दीक्षित हो गया । क्रमशः ग्यारह अंगों का वेत्ता मुनि हो गया । अन्तिम समय आने पर एक मास की सल्लेखना करके सौधर्म देवलोको में उत्पन्न हुआ । वहाँ से अवनत करके महाविदेह क्षेत्र में समय धारण करके सिद्धि प्राप्त करेगा ।

निष्कर्ष

४३—जहा वि य णं जंजू । धण्णेणं सत्यवाहेणं णो वण्णहेउं वा, णो वलहेउं वा, नो विसयहेउं वा, सुसुमाए बारियाए मत्तसोणिए आहारिए नमस्स एगाए रायहिं सपावणट्ठाए ।

एवामेव समणाउसो ! जो अमहं निर्गम्यो वा निर्गम्यो वा इमस्स ओरालियसरीरस्स वंतासवस्स पित्तासवस्स सुक्कासवस्स सोणियासवस्स जाव' अबस्सं विप्पजहिमवस्स नो वण्णहेउं वा, नो वलहेउं वा, नो वलहेउं वा, नो विसयहेउं वा आहारं आहारेइ, नमस्स एगाए सिद्धिमणसंपावणट्ठाए, ते णं इहमवे सेव बहूणं समणाण, बहूणं समभोजं, बहूणं सावयानं बहूणं साविमानं अचचणिवजे जाव बीईवइस्सइ ।

हे जन्त्रु ! जैसे उस धन्य सार्थवाह ने वर्ण के लिए, रूप के लिए, बल के लिए अथवा विषय के लिए सुसुमा दारिका के मास और दधिर का आहार नहीं किया था, केवल राजगृह नगर को पाने के लिए ही आहार किया था ।

इसी प्रकार हे आमुष्मन् श्रमणो ! हमारा जो साधु या साध्वी वसन को भराने वाले, पित्त को भराने वाले, शुक को भराने वाले, शोणित को भराने वाले यावत् अवश्य ही त्यागने योग्य इस ५०६ - ५०७ के लिए अथवा विषय के लिए आहार नहीं करते हैं, केवल मिणियो,

सार्धंवाह ने 'मर्वनासे समुत्पन्ने धर्मं स्वर्गाय पण्डितः' को जो कोशिका का अनुसरण करो तू अपने स का प्रस्ताव उपस्थित किया। जेष्ठ पुत्र ने उसे स्वीकार करने में अपनी सममर्त्यता प्रकट की जो अपने यथ की बात मुझाई। धन्य भाइयों ने उसकी बात भी मान्य नहीं की। सभी के यथ सा प्रत्यक्ष दूसरे किसी भाई को स्वीकार नहीं हुआ।

यह प्रसंग हमारे समस्त कौटुम्बिक मन्थ के दिग्ग में श्रीर मृगशीर्षा प्रारम्भ प्रस्तुत हुआ है। पुत्रों के प्रति पिता का, पिता के प्रति पुत्रों का, भाई के प्रति भाई का स्नेह कितना प्रगाढ़ और उत्सर्गमय होना चाहिए। पारस्परिक प्रीति का मधुरिमा इस वर्णन से स्पष्ट है। प्रत्येक, प्रत्येक को प्राण-रक्षा के लिए अपने प्राणों का उत्सर्ग करने का अभिलाषी है। इससे अधिक त्याग और बलिदान अन्य क्या हो सकता है! यस्तुतः यह निश्चय भारतीय साहित्य में प्रसाधारण है, साहित्य की प्रमूल्य निधि है।

अन्तिम निर्णय

३६—तए नं धण्णे सत्थवाहे पंचपुत्ताणं हिमइच्छियं जाणित्ता ते पंच पुत्ते एवं वयासी—'ना नं अम्हे पुत्ता! एगमयि जोयियामो ववरोयेमो, एस नं सुं सुमाए दारियाए सरीरे निप्पाने जा [ निच्छेद्धं ] जोयविप्पज्जे, तं सेयं सत्तु पुत्ता! अम्हं सुं सुमाए दारियाए मंसं च सोणियं च आहारेत्तए। तए नं अम्हे तेणं आहारेणं अवत्थय्ता समाणा रायगिहं संपाउजिस्सामो।'।

तत्पश्चात् धन्य सार्धंवाह ने पाँचों पुत्रों के हृदय की इच्छा जान कर उन पाँचों पुत्रों से इस प्रकार कहा—पुत्रों! हम किसी को भी जीवन से रहित न करें। यह सु सुमा का शरीर निष्प्राण निश्चेष्ट और जीव द्वारा त्यक्त है, अतएव हे पुत्रों! सुं सुमा दारिका के मांस और रधिर का आहार करना हमारे लिए उचित होगा। हम लोग उस आहार से स्वरथ होकर राजगृह को वा लेंगे।

४०—तए नं ते पंच पुत्ता धण्णेणं सत्थवाहेणं एवं वत्ता समाणा एयमद्धं पडिस्सुजेत्ति। तए नं धण्णे सत्थवाहे पंचहि पुत्तेहि सद्धिं अरणि करेइ, करित्ता सरयं च करेइ, करित्ता सरएण अरणि महं, महित्ता अग्नि पावेइ, पाडित्ता अग्नि संधुक्खेइ, संधुक्खित्ता दाइयाइ पक्खेवेइ, पक्खेवित्ता अग्नि पज्जालेइ, पज्जालित्ता सुं सुमाए दारियाए मंसं च सोणियं च आहारेइ।

धन्य सार्धंवाह के इस प्रकार कहने पर उन पाँच पुत्रों ने यह बात स्वीकार की। तब धन्य सार्धंवाह ने पाँचों पुत्रों के साथ अरणि को (अरणि काष्ठ में गड़हा किया)। फिर दार बनाया (अरणि की लम्बी लकड़ी तैयार की)। दोनों तैयार कर के शर से अरणि का मयन किया। मयन करके अग्नि उत्पन्न की। फिर अग्नि धोकी। उसमें लकड़ियाँ डाली। अग्नि प्रज्वलित की। प्रज्वलित करके सुं सुमा दारिका का मांस पका कर उस मांस का और रधिर का आहार किया।

राजगृह में वापसी

४१—तए नं आहारेणं अवत्थय्ता समाणा रायगिहं नयारि संपत्ता मित्तेणं नियग-सयन-संवधि-परिजणं अभिसमण्णागया, तस्स य विजलस्स धण्णकणमरण जाव' आभायो जाया वि होरया।

तब स्थविर ने कहा—‘देवानुप्रिय ! जैसे तुम्हें मुझ उपजे, वैसा करो ।’

८—तए नं से कडरीए जाव धेरे बंदइ, नमंसइ, वंदिता नमंमिता अंतियाओ पडिनिबलमइ, पडिनिबलमिता तमेव चाउघंट आसरहं डुरूहइ, जाव पन्वोरुहइ, जेणेव पुंड़रीए राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता करयल जाव पुंड़रीयं एवं वयासी—‘एवं खनु देवानुप्रिया ! मए धेराणं अंतिए जाव धम्मे निसंते, से धम्मे अभिरुइए, तए नं देवानुप्रिया ! जाव पव्वइत्तए ।’

तत्पश्चात् कडरीक ने यावत् स्थविर मुनि को वन्दन किया । वन्दन-नमस्कार करके उनके पास से निकला । निकल कर चार घटा वाले घोड़ों के रथ पर आरुढ़ हुआ, यावत् राजभवन में आकर उतरा । रथ से उतर कर पुंड़रीक राजा के पास गया ; वहाँ जाकर हाथ जोड़ कर यावत् पुंड़रीक से कहा—‘देवानुप्रिय ! मैंने स्थविर मुनि से धर्म मुना है और वह धर्म मुझे हवा है । अतएव हे देवानुप्रिय ! मैं यावत् प्रवज्या अंगीकार करने को इच्छा करता हूँ ।’

९—तए नं पुंड़रीए राया कडरीयं जुवरायं एवं वयासी—‘ना नं तुमं देवानुप्रिया ! इदाणि मुंडे जाव पव्वयाहि, अहं नं तुमं महया महया रायानिसेएणं अभिसिचामि ।’

तए नं से कडरीए पुंड़रीयस्स रण्णो एयमट्ठं णो आढाइ, जाव तुसिणीए सच्चिट्ठइ । तए नं पुंड़रीए राया कडरीयं होण्वं पि तक्कं पि एवं वयासी जाव तुसिणीए सच्चिट्ठइ ।

तब पुंड़रीक राजा ने कडरीक युवराज से इस प्रकार कहा—‘देवानुप्रिय ! तुम इस समय मुझित होकर यावत् दीक्षा ग्रहण मत करो । मैं तुम्हें महान् महान् राज्याभिषेक से अभिविक्त करना चाहता हूँ ।’

तब कडरीक ने पुंड़रीक राजा के इस धर्म का आदर नहीं किया—स्वीकार नहीं किया ; वह यावत् मौन रहा । तब पुंड़रीक राजा ने दूसरी बार और तीसरी बार भी कण्डरीक से इस प्रकार कहा ; यावत् कण्डरीक फिर भी मौन ही बना रहा ।

१०—तए नं पुंड़रीए कडरीयं कुमारं जाहे नो संचाएइ बहूहि आघवणाहि पणवणाहि य सणवणाहि य विणवणाहि य ताहे अकामए खेव एयमट्ठं अणुमणित्था जाव शिबलमणामिसेएणं अभिसिचइ जाव धेराणं सीसमिबल दलयइ । पव्वइए, अणयारे जाए, एवकारसगविअ ।

तए नं धेरा भगवंतो अग्रया कयाइं पुंड़रीणिगोओ नयरीओ नसिणीवणाओ उज्जाणाओ पडिनिबलमंति, पडिनिबलमिता बहिया जणवपविहारं विहरति ।

तत्पश्चात् जब पुण्डरीक राजा, कण्डरीक कुमार को बहुत कहकर और समझा-बुझा कर और विज्ञप्ति करके रोकने में समर्थ न हुआ, तब इच्छा न होने पर भी उसने यह बात मान ली, अर्थात् दीक्षा की आज्ञा दे दी, यावत् उसे निष्क्रमण-अभिषेक से अभिविक्त किया, यहाँ तक कि स्थविर मुनि को शिष्य-भिक्षा प्रदान की । तब कडरीक प्रव्रजित हो गया-अनगार हो गया, यावत् ग्यारह अंगों का वेसा हो गया ।

तत्पश्चात् स्थविर भगवान् भगवदा कदाचित् पुण्डरीकिणी नगरी के नलिनीवन उद्यान से बाहर निकले । निकल कर बाहर जनपद-विहार करने लगे ।



तब स्पष्टिर ने कहा—‘देवानुग्रिय ! जैसे तुम्हें मुग उपजे, वंसा करो ।’

८—तए नं से कंडरीए जाव घेरे बंदइ, नमंसइ, ववित्ता नमसित्ता अतिपाओ पडिनिबलमइ, पडिनिबलमिता तमेव चाउयंट आसरहं दुइहइ, जाव पम्बोइहइ, जेनेव पुंडरीए राया तेनेव उयागइहइ, उवागन्दिता करयस जाव पुंडरीए एवं वयासी—‘एवं खलु देवानुग्रिय ! मए घेराणं अतिए जाव पम्मे निसंते, ते पम्मे अविइए, तए नं देवानुग्रिय ! जाव पम्बइतए ।’

तत्पश्चात् कंडरीक ने यावत् स्वविर मुनि की वन्दन किया । वन्दन-नमस्कार करके उनके पास से निकला । निकल कर चार घंटा बांसे घोड़े के रथ पर आरुढ़ हुआ, यावत् राजभवन में आकर उतरा । रथ से उतर कर पुंडरीक राजा के पास गया : वही जाकर हाथ जोड़ कर यावत् पुंडरीक ने कहा—‘देवानुग्रिय ! मैंने स्पष्टिर मुनि से धर्म मुना है और वह धर्म मुझे दया है । अतएव हे देवानुग्रिय ! मैं यावत् प्रव्रज्या अंगीकार करने की इच्छा करता हूँ ।’

९—तए नं पुंडरीए राया कंडरीयं जुवराय एवं वयासी—‘मा नं तुमं देवानुग्रिय ! इवाणि मुंहे जाय पम्पयाहि, अहं नं तुमं महया महया रायामित्तेणं अभिसिंघामि ।’

तए नं से कंडरीए पुंडरीयस्स रण्णो एयमट्ठं ओ आढाइ, जाव तुत्तिणोए संचिट्ठइ । तए नं पुंडरीए राया कंडरीय बोच्च पि तत्थं पि एवं वयासी जाव तुत्तिणोए संचिट्ठइ ।

तब पुंडरीक राजा ने कंडरीक मुवराज से इस प्रकार कहा—‘देवानुग्रिय ! तुम इस समय मुद्रित होकर यावत् दीक्षा ग्रहण मत करो । मैं तुम्हें महान् महान् राय्याभियेक में अभिषिक्त करना चाहता हूँ ।’

तब कंडरीक ने पुंडरीक राजा के इस धर्म का आदर नहीं किया—स्वीकार नहीं किया, वह यावत् मोन रहा । तब पुंडरीक राजा ने दूसरी बार और तीसरी बार भी कंडरीक से इस प्रकार कहा; यावत् कंडरीक फिर भी मोन ही बना रहा ।

१०—तए नं पुंडरीए कंडरीयं कुमार जाहे नो संधाएइ अहंहि आघयणाहि पणवणाहि य सणवणाहि य विणयणाहि य ताहे अकामए वेव एयमट्ठं अणुमणित्था जाव निबलमणामित्तेणं अभिसिंघाइ जाय घेराणं सीसनिबलं इसयइ । पम्बइए, अणपारे जाए, एक्कारसगविज्ज ।

तए नं घेरा भगवतो अग्रया कयाइं पुंडरीगिणोओ नयरोओ नत्तिणीवणाओ उज्जाणाओ पडिनिबलमति, पडिनिबलमिता बहिमा जणवयविहारं विहरंति ।

तत्पश्चात् जब पुण्डरीक राजा, कण्डरीक कुमार की बहुत कड़कर और समझा-बुझा कर और विनयित करके रोकने में समर्थ न हुआ, तब इच्छा न होने पर भी उसने यह बात मान ली, अर्थात् दीक्षा की आज्ञा दे दी, यावत् उसे निष्क्रमण-अभियेक से अभिषिक्त किया, यहा तक कि स्पष्टिर मुनि को दिव्य-भिक्षा प्रदान की । तब कंडरीक प्रव्रजित हो गया-सनगार हो गया, यावत् ग्यारह अंगी का वंसा हो गया ।

तत्पश्चात् स्पष्टिर भगवान् धर्मदा कदाचित् पुण्डरीकिणी नगरी के नलिनीवन उद्यान से बाहर निकले । निकल कर बाहर जनपद-विहार करने लगे ।

कंडरीक की रूग्णता

१२—तए णं तस्स कंडरीयस्स अणगारस्स तेहि अंतेहि ण पंतेहि य जहा सेतगस्स ज्ञ दाहवयकंतीए पाचि विहरइ ।

तत्पश्चात् कंडरीक अणगार के शरीर में अन्त-प्रान्त अर्थात् रूखे-सूखे माहार के कारण दाह मुनि के समान यावत् दाह-ज्वर उत्पन्न हो गया । वे रुग्ण होकर रहने लगे ।

१३—तए णं थेरा अग्रया कयाई जेणेव पोंडरीगिणी तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छिता णलिणिवणे समोसडा, पोंडरीए गिगाए, धम्मं सुणेइ ।

तए णं पु'डरीए राया धम्मं सोच्चा जेणेव कंडरीए अणगारे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता कंडरीयं यंबइ, नमंसइ, यंबित्ता नमंसित्ता कंडरीयस्स अणगारस्स सरीरगं सत्त्वावाहं सरोय पाहा, पासित्ता जेणेव थेरा भगवंतो तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता थेरे भगयंते वंबइ, नमंसइ, वरित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—'अहं' णं भंते ! कंडरीयस्स अणगारस्स अहापवत्तेहि ओसहेसत्तेहि दा तेइच्छं प्राउट्टामि, तं तुम्हे णं भंते ! मम जाणसालासु समोसरह ।'

तत्पश्चात् एक बार किसी समय स्वविर भगवंत पुण्डरीकिणी नगरी में पधारे श्रीर नलिनीय उद्यान में ठहरे । तब पु'डरीक राजमहल से निकला श्रीर उसने धर्मदेसना श्रवण की ।

तत्पश्चात् धर्म सुनकर पु'डरीक राजा कंडरीक अणगार के पास गया । वही जाकर कंडरीक मुनि को वन्दना की, नमस्कार किया । वन्दना-नमस्कार करके उसने कंडरीक मुनि का शरीर सब प्रकार की बाधा से युक्त श्रीर रोग से आक्रान्त देखा । यह देखकर राजा स्वविर भगवत के पास गया । जाकर स्वविर भगवत को वन्दन-नमस्कार किया । वन्दन नमस्कार करके इस प्रकार निवेदन किया—'भगवन् ! मैं कंडरीक अणगार की यथाप्रवृत्त (आपकी प्रवृत्ति-समाचारी के अनुकूल) श्रीर भेषज से चिकित्सा कराता हूँ (कराना चाहता हूँ) अतः भगवन् ! आप मेरी यानसाया में पधारिये ।'

१४—तए णं थेरा भगवंतो पु'डरीयस्स रणेो एयमट्ठं पडिमुणेति, पडिमुणित्ता ज्ञ उयसंपग्गिज्झा णं विहरंति । तए णं पु'डरीए राया जहा मंडुए सेतगस्स जाय यत्तिमसरीरे जाए ।

तब स्वविर भगवान् ने पु'डरीक राजा का यह निवेदन स्वीकार कर लिया । स्वीकार करते यावत् यानसाया में रहने की आज्ञा लेकर विचरने लगे-वही रहने लगे । तत्पश्चात् जैसे मंडुए राजा ने मेलक ऋषि की चिकित्सा करवाई-उसी प्रकार राजा पु'डरीक ने कंडरीक की करवाई । चिकित्सा हो जाने पर कंडरीक अणगार बनवान् शरीर बाने हो गये ।

कंडरीक मुनि की शिविकता

१५—तए णं थेरा भगवंतो पोंडरीयं रायं पुच्छंति, पुच्छित्ता बहिया जणवयविहारं विहरंति । तए णं से कंडरीए ताप्रो रोयायंकाप्रो विण्णमुक्के समाणे तत्ति मण्णुणंति अत्तण-वाण-साइय-साइमसि मूट्ठिए गिउं गट्ठिए अग्गभोववन्ने, णो सत्त्वाएइ पोंडरीयं अगुच्छित्ता बहिया अग्गभोववन्ने जणवयविहारं विहरिआए । तत्थेव ओसण्णे जाए ।

तत्पश्चात् स्थविर भगवान् ने पुण्डरीक राजा से पूछा अर्थात् अपने विहार की उसे सूचना दी । तदनन्तर ये बाहर जाकर जनपद-विहार विहरने लगे ।

उस समय कण्डरीक धनगार उस रोग-घातक से मुक्त हो जाने पर भी उस मनोज्ञ भोजन, पान, सादिम घोर स्वादिम आहार में मूर्छित, मूढ़, भासक्त और तल्लीन हो गए । अतएव वे पुण्डरीक राजा में पृथक् कर अर्थात् कहकर बाहर जनपदों में उग्र विहार करने में समर्थ न हो सके । सिधिलाचारी होकर वहीं रहने लगे ।

१६—तए नं से पोंडरीए इधीसे कहाए लउठ्ठे समाने गहाए अतेउरपरिघातसपरिवुडे जेणेव कंडरीए अणगारे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता कंडरीयं तिखत्तो घायाहिणं पयाहिणं करेइ, करिस्ता पंडइ, जमंसइ, बंदिता जमंसिता एवं ययासी—‘घन्ने सि नं तुमं देवानुप्पिया ! कयये कयपुण्णे कयलवपणे, सुत्तइ’ नं देवानुप्पिया । तव माणुस्सए जम्म-जीवियफले, जे नं तुमं रज्जं च जाव अतेउरं च छइइइत्ता विणोवइत्ता जाव पम्बइए । ग्रहं नं ग्रहण्णे प्रकयपुण्णं रज्जे जाव अतेउरं य माणुस्सएस्सु य कामभोगेस्सु मुच्छिए जाव अग्रभोगवन्ने नो संचाएमि जाव पम्बइए । त धनो सि नं तुमं देवानुप्पिया । जाव जीवियफले ।’

तत्पश्चात् पुण्डरीक राजा ने इस कथा का अर्थ जाना अर्थात् जब उसे यह बात विदित हुई, तब वह स्नान करके और विभूषित होकर तथा अन्त पुर के परिवार से परिवृत्त होकर जहाँ कण्डरीक धनगार थे वहाँ आया । आकर उसने कण्डरीक को तीन बार आदर्श प्रदर्शना की । फिर वन्दना की, नमस्कार किया । वन्दना और नमस्कार करके इस प्रकार कहा— देवानुप्रिय ! आप धन्य हैं, कृतार्थ हैं कृतपुण्य हैं और सुखजनक वाले हैं । देवानुप्रिय ! आप की मनुष्य के जन्म और जीवन का कल सुन्दर मिला है, जो आप राज्य की ओर अन्तःपुर की रक्षा कर और दुरकार कर प्रवृत्त हुए हैं । और मैं अघन्य हूँ, पुण्यहीन हूँ, यावत् राज्य में, अन्त पुर में और मानवीय कामभोगों में मूर्छित यावत् तल्लीन हो रहा हूँ, यावत् दीक्षित होने के लिए समर्थ नहीं हो पा रहा हूँ । अतएव देवानुप्रिय ! आप धन्य हैं, यावत् आपको जन्म और जीवन का सुन्दर फल प्राप्त हुआ है ।

१७—तए नं से कंडरीए अणगारे पुण्डरीयस्स एवमट्ठं णो आढाइ जाव [ णो परिधानाइ, सुत्तिणीए ] सच्चिट्ठइ । तए ण कंडरीए पुण्डरीएणं बोच्च वि तच्चं वि एव वृत्ते समाने प्रकामए अवस्सयसे लज्जाए मारवेण य षोडरीयं रायं आपुच्छइ, आपुच्छिता धेरोहं सच्चि बहिंया जणवय-विहारं विहरइ । तए नं से कंडरीए धेरोहिं सच्चि किंवि कालं उगंठमणेण विहरइ । तओ पच्छा समणत्तणपरितंते समणत्तणनिव्विण्णे समणत्तणणिअवियए समणगुणमुक्कजोगी धेराणं प्रतिपाप्पो सणियं सणियं पच्चोसक्कइ, पच्चोसविकत्ता जेणेव पुण्डरीयणी नयरी, जेणेव पुण्डरीयस्स सबणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता असोगवणियाए असोगवरपायवस्स अहे पुडविसिलपट्ठण्ति णिसीयइ, णिसीइत्ता ओहपमणसं कप्पे जाव भियायमाणे सच्चिट्ठइ ।

तत्पश्चात् कण्डरीक धनगार ने पुण्डरीक राजा की इस बात का धाँवर नहीं किया । यावत् वह मोन बने रहे । तब पुण्डरीक ने दूसरी बार और तीसरी बार भी यही कहा । तत्पश्चात् इच्छा न होने पर भी विवशता के कारण, लज्जा से और बड़े भाई के गौरव के कारण पुण्डरीक राजा से

प्राहारियस्त समानस्त पुंश्चरत्तावरत्तकालतमयति धम्मजागरियं जागरमाणस्त से प्राहारे बोध  
परिणमइ । तए णं तस्त पुंश्चरीयस्त अनगारस्त सरीरगति वेयणा पाउभूया उज्जता  
दुरहिंयासा पित्तज्वरपरिणयसरीरे बाहवकंतीए विहरइ ।

तत्पश्चात् पुंश्चरीक अनगार उस कालातिष्ठान्त (जिसके माने का समय बोल गया है) उ  
रसहीन, खराब रस वाले तथा ठंडे घोर रुग्ने भोजन पानी का प्राहार करके मध्य रात्रि के समय  
जागरण कर रहे थे । तब वह प्राहार उन्हें सम्यक् रूप से परिणत न हुआ । उस समय पुंश्च  
अनगार के शरीर में उज्ज्वल विपुल, कंदंग, प्रण्ड एव दुःखरूप, दुस्तह वेदना उत्पन्न हो  
उनका शरीर पित्तज्वर से व्याप्त हो गया घोर शरीर में दाह होने लगा ।

उप साधना का मुक्त

२६—तए णं से पुंश्चरीए अनगारे अरयामे अवले अवीरिए अपुरितवकारपरकमे ह  
जाव एवं ययासीः—

नमोऽय्य णं अरिहंताणं जाय संपत्ताणं, नमोऽय्य णं येराणं भगवताणं मम धम्मार्थि  
धम्मोवएसमाणं, पुंश्चिय पि य णं मए येराणं अंतिए सव्वे पाणाइवाए पच्चवखाए जाव सिद्धांत  
सत्ते णं पच्चवखाए जाव आत्तोइयपडिक्कते कालमासे कालं किच्चा सव्वदुसिद्धे उव  
ततोऽणंतरं उव्वट्टित्ता महाविदेहे यासे सिग्गिह्हि जाव सव्वदुवखाणमंतं काहिइ ।

तत्पश्चात् पुंश्चरीक अनगार निस्तेज, निर्वल, वीर्यहीन घोर पुरुषकार-मराग्रमहीन हो  
उन्होंने दोनों हाथ जोड़ कर यावत् इस प्रकार कहा—

यावत् सिद्धिप्राप्त अरिहंतों को नमस्कार हो । मेरे धर्माचार्य और धर्मोपदेशक स्  
भगवान् को नमस्कार हो । स्थविर के निकट पहले भी मैंने समस्त प्राणातिपात का प्रत्याख्यान कि  
यावत् मित्यादर्शन शल्य का (भठारहो पापस्थानो) का त्याग किया था, इत्यादि कहकर यावत्  
का भी त्याग करके आलोचना प्रतिग्रमण करके, कालमास मे काल करके सर्वाधिसिद्धनामक प्र  
विमान मे देवपर्याय मे उत्पन्न हुए । वहाँ से अनन्तर ज्यवन करके, अर्थात् बीच मे कही अम्य  
न लेकर सीधे महाविदेह क्षेत्र-मे उत्पन्न होकर सिद्धि प्राप्त करेंगे । यावत् सर्व दुःखों का अन्त करेंगे

३०—एयामेव समणाउत्तो । जाव पथइए समाणे माणुस्सएहि कामभोगेहि णो सज्ज  
रज्जइ, जाव णो विप्पडिघायमावज्जइ, से ण इह भवे चेव बहूणं समणाणं बहूणं समणीय  
सावमाणं बहूणं साविमाणं अच्छणिज्जे वंविणिज्जे पुण्णिज्जे सब्बारणिज्जे सम्माणणिज्जे कत्ताणं म  
देयमं चेइयं पज्जुयासणिज्जे त्ति कट्टु परत्तोए वि य णं णो अमच्छइ बहूणि वंङ्गणाणि य मुंङ्गणा  
सज्जणाणि य ताङ्गणाणि य जाव पाउरंत-संसारकंतारं जाव वोईवइस्तइ, जहा व से पोइरीए राया

इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणो ! जो हमारा साधु या साध्वी दीक्षित होकर मनुष्य स  
कामभोगों मे आसक्त नहीं होता, अनुरक्त नहीं होता, यावत् प्रतिघात को प्राप्त नहीं होता, बह  
भव मे बहुत श्रमणों, बहुत श्रमणियों, बहुत श्रावकों और बहुत श्राविकाओं द्वारा अर्चनीय, वन्दनी



उजनीय, सत्करणीय, सम्माननीय, कल्याणरूप, मंगलकारक, देव और चेत्य समान उपासना करने योग्य होता है । इसके प्रतिरिक्त वह परमोक्त में भी राजदण्ड, राजनिग्रह, तर्जना और लाड़ना को प्राप्त नहीं होता, यावत् क्षणिक रूप सत्कार-कान्तार को पार कर जाता है, जैसे पुंढरीक धनगार ।

३१—एवं क्षतु जम्बू ! समनेणं नमयया महावीरेण आङ्गरेणं तिरयमरेणं तिरिगइनामधेज्जं ठाणं संपत्तेणं एगुणवीसइमस्स नायग्गधयणस्स अयमट्ठे पन्नत्ते ।

जम्बू ! धर्म की धादि करने वाले, तीर्थ की स्थापना करने वाले, यावत् तिरिगइनामक स्थान की प्राप्ति धर्मण भगवान् महावीर ने ज्ञात-अध्ययन के उप्रीसवे अध्ययन का यह धर्म कहा है ।

३२—एवं क्षतु जम्बू ! समनेणं नमयया महावीरेणं जाव तिरिगइनामधेज्जं ठाणं संपत्तेणं एदुस्स भंगस्स पडमस्स सुयवणं पस्स अयमट्ठे पणत्ते सि वेमि ।

ध्रीमुधर्मा स्वामी पुनः कहते हैं—'इन प्रकार है जम्बू ! धर्मण भगवान् महावीर ने यावत् तिरिगइनामक स्थान की प्राप्ति जिनेन्दर देव ने इस छुट्टे भग के प्रथम श्रुतस्कंध का यह धर्म कहा है । जेमा मुना वेसा मैने कहा है—अपनी कल्पना-बुद्धि में नहीं कहा ।

३३—तस्स ज सुयवणपस्स एगुणवीसं अग्गधयणानि एक्कसरयानि एगुणवीसाए दिवसेसु समप्पति ॥१४७॥

इस प्रथम श्रुतस्कंध के उन्नीस अध्ययन हैं । एक-एक अध्ययन एक-एक दिन में पढ़ने से उप्रीस दिनों में यह अध्ययन पूर्ण होता है (इसके योगबद्धन में उप्रीस दिन लगते हैं) ।

॥ उप्रीसवा अध्ययन समाप्त ॥

॥ प्रथम श्रुतस्कंध समाप्त ॥



पश्चात् उसने भगवान् के समक्ष जाकर प्रत्यक्ष दर्शन करने, वन्दना और नमस्कार करने किया। उसी समय एक हजार योजन विस्तृत दिव्य भान की विक्रिया द्वारा तयारी दिश दिया। यान तैयार हुआ और वह भगवान् के समक्ष उपस्थित हुई। वन्दन किया, ह्वा, देवों को परम्परा के अनुसार अपना नाम-गोत्र प्रकाशित किया। फिर वत्तीस प्रकार धि दितला कर वापिस लौट गई।

श्री देवी के चले जाने पर गौतम स्वामी ने भगवान् के समक्ष निवेदन किया—भते ! को यह दिव्य श्रद्धा-विभूति किस प्रकार प्राप्त हुई है ?

भगवान् ने उसके पूर्वभव का वृत्तान्त सुनाया—ग्रामलकल्या नगरी के कालनामक की एक पुत्री थी। उसकी माता का नाम कालथी था। पुत्री का नाम काली था। काली पुत्री शरीर से बड़ी बेडोत थी। उसके स्तन तो इतने लम्बे थे कि नितम्ब भाग तक भ्रमण उसे कोई बर नहीं मिला। यह अविवाहिता ही रही।

बार पुरुषोत्तम भगवान् साध्वंताय का ग्रामलकल्या नगरी में पदार्पण हुआ। काली श्रवण कर दीक्षा अंगोकार करने का सकम्प किया। माता-पिता ने सहर्ष अनुमति के साथ दीक्षा-महोत्सव मनाया गया। भगवान् ने दीक्षा प्रदान कर उसे आर्या पुण्य-दीप दिया। काली आर्या ने ग्यारह अंगो-प्रागर्था का अध्ययन किया और महाशक्ति रती हुई समय की आराधना करने लगी।

कुछ समय के पश्चात् काली आर्या को शरीर के प्रति आसक्ति उत्पन्न हो गई। वह भ्रम-उपाग छोटी और जहाँ स्वाध्याय, कायोत्सर्ग आदि करती, वहाँ जल छिड़कती। बार से विपरीत उसकी यह प्रवृत्ति देखकर आर्या पुण्यभूषण ने उसे ऐसा न करने के लिए वह नहीं मानी। बार-बार टोकने पर वह मण्ड से सम्बन्ध तोड़ कर अलग उपाश्रय में। अब वह पूरी तरह स्वच्छन्द हो गई। समय की विराधिका बन गई। कुछ समय इसी रीत हुआ। अन्तिम समय में उसने पन्द्रह दिन का अनुग्रह-संधारा सो किया किन्तु अपने र की न आलोचना की और न प्रतिक्रमण ही किया।

वान् महावीर ने कहा—यही वह काली आर्या का जीव है जो काली देवी के रूप में है।

तम स्वामी के पुनः प्रश्न करने पर भगवान् ने कहा—देवीभव का अन्त होने पर, करके काली देवी महाविदेह क्षत्र में जन्म लगीं। वही निरतिचार समय की आराधना प्राप्त करेगी।

प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन का सार-संक्षेप है। आगे के वगैरे और अध्ययनों की ने के ती ममान हैं। अतएव उतका विस्तृत वर्णन नहीं किया गया है। केवल उनके

# द्वितीय श्रुतस्कंध : धर्मकथा

## प्रथम वर्ग

### प्रथमअध्ययन : काली

प्रास्ताविक

प्रथम श्रुतस्कंध में दृष्टान्तों द्वारा धर्म का प्रतिपादन किया गया है। इस द्वितीय श्रुतस्कंध में साक्षात् कथाओं द्वारा धर्म का अर्थ प्रकट किया गया है।

१—तेण कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे होस्था । यण्णओ । तस्म णं रायगिहस्स बहिया उत्तरपुरन्धिमे विसीभाए तस्थ णं गुणसीलए णामं चेइए होस्था । यण्णओ ।

उस काल और उस समय में राजगृह नगर था । उसका वर्णन यहाँ कहना चाहिए । उस राजगृह के बाहर उत्तरपूर्व दिशाभाग (ईशान कोण) में गुणशीलनामक चेत्य था । उसका भी वर्णन यहाँ औपपातिक सूत्र के अनुसार समझ लेना चाहिए ।

मुधर्मा का आगमन

२—तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी अज्जमुहम्मना णामं घेरा भगवंतो जाइसंपन्ना, कुलसंपन्ना, जाव<sup>१</sup> चउहसपुब्बो, चउणाणोवगया, पंचाहि अणगारसएहि सद्धि संपरिवुडा, पुब्बानुपुब्बि चरमाणा, गामाणुगामं वूइज्जमाणा, मुहमुहेणं विहरमाणा जेणव रायगिहे नयरे, जेणव गुणसीलए चेइए, जाव<sup>२</sup> संजमेणं तवसा अण्णणं भावेमाणा विहरंति ।

उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर के अन्तेवासी आर्य मुधर्मा नामक स्वविर उच्चजाति से सम्पन्न, कुल से सम्पन्न यावत् चोदह पूर्वों के वेत्ता और चार नानों से युक्त थे । वे पाच सौ प्रनगरों से परिवृत्त होकर अनुक्रम से चलते हुए, ग्रामानुग्राम विचरते हुए और मुखे-मुखे विहार करते हुए जहाँ राजगृह नगर था और जहाँ गुणशील चेत्य था, वहाँ पधारे । यावत् संयम और तप के द्वारा आत्मा को भावित करते हुए विचरते लगे ।

जन्म का प्रश्न

३—परिसा निगगया । धम्मो कहिओ । परिसा जामेव विसं पाउब्भूया तामेव विसि पडिगया ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं अज्जमुहम्मस्स अणगारस्स अंतेवासी अज्जजन्म णामं अणगारे जाव<sup>३</sup> पज्जुवासमाणे एवं ययासी—जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं उट्ठस्स अंगस्स पढममुपवसंधस्स णायमुणायं<sup>४</sup> अयमट्ठे पणत्ते, वोच्चस्स णं भंते ! सुयवसंधस्य पम्मकहणं समणेणं जाव ण पत्तेणं के अट्ठे पणत्ते ?

मुधर्मा स्वामी को बन्दना करने के लिए परिपद निकली । मुधर्मा स्वामी ने धर्म का उपदेश दिया । तत्पश्चात् परिपद वापिस चली गई ।

उस काल और उस समय में आर्य मुधर्मा अणगार के अन्तेवासी आर्य जम्बूनामक अणगार

यावत् गुप्तर्षी स्वामी की उपासना करते हुए बोलें—'भगवान् ! यदि यावत् मित्रि की प्राप्त धर्म भगवान् महावीर ने छठे जग के 'जातधुन' नामक प्रथम धनुस्काण्ड का यह (पूर्वोक्त) धर्म कहा तो भगवान् ! धर्मकथानामक द्वितीय धनुस्काण्ड का मित्रपद की प्राप्त धर्मगु भगवान् महावीर क्या धर्म कहा है ?

गुप्तर्षी स्वामी का उत्तर

४—एव सप्तु जंघु ! तमणेन जाव संपत्तेन धम्मकहणं वस वग्गा पणत्ता, तज्जहा—

- (१) चमरसत धम्ममहिंसीण पट्ठमे वग्गे ।
- (२) वलितस बहरोपनिहरस बहरोपवरणी धम्ममहिंसीण बीए वग्गे ।
- (३) धम्मुरिरवज्जियानं दाहिंनिस्ताण भवणवासीणं इदं धम्ममहिंसीणं तइए वग्गे ।
- (४) उत्तरिस्ताण धम्मुरिरवज्जियानं भवणवातिइदं धम्ममहिंसीणं चउए वग्गे ।
- (५) दाहिंनिस्ताणं वाणसंतराणं इदं धम्ममहिंसीणं पंचमे वग्गे ।
- (६) उत्तरिस्ताणं वाणसंतराणं इदं धम्ममहिंसीणं छट्ठे वग्गे ।
- (७) चंदरस धम्ममहिंसीणं सत्तमे वग्गे ।
- (८) मूरस धम्ममहिंसीणं अट्ठमे वग्गे ।
- (९) सवकस धम्ममहिंसीणं नवमे वग्गे ।
- (१०) ईसाणस धम्ममहिंसीणं दसमे वग्गे ।

धी गुप्तर्षी स्वामी ने उत्तर दिया—इस प्रकार है जम्बू ! यावत् मित्रिप्राप्त धर्म भगवान् महावीर ने धर्मकथानामक द्वितीय धनुस्काण्ड के दश धर्म कहे हैं । वे इस प्रकार हैं—

- (१) चमरेन्द्र की धम्ममहिंसीयों (पटरानियों) का प्रथम वर्ग ।
- (२) वैरोचनेन्द्र एवं वैरोचनराज वलि (वमोन्द्र) की धम्ममहिंसीयों का दूसरा वर्ग ।
- (३) धमुरेन्द्र की छोड़ कर दीप नो दक्षिण दिशा के भवनपति इन्द्रों की धम्ममहिंसीयों का तीसरा वर्ग ।
- (४) धमुरेन्द्र के सिवाय नो उत्तर दिशा के भवनपति इन्द्रों की धम्ममहिंसीयों का चौथा वर्ग ।
- (५) दक्षिण दिशा के बालुभ्यन्तर देशों के इन्द्रों की धम्ममहिंसीयों का पांचवा वर्ग ।
- (६) उत्तर दिशा के बालुभ्यन्तर देशों के इन्द्रों की धम्ममहिंसीयों का छठा वर्ग ।
- (७) चन्द्र की धम्ममहिंसीयों का सातवा वर्ग ।
- (८) मूर की धम्ममहिंसीयों का आठवा वर्ग ।
- (९) मरु इन्द्र की धम्ममहिंसीयों का नौवा वर्ग और
- (१०) ईसाणेन्द्र की धम्ममहिंसीयों का दसवा वर्ग ।

५—जइ न भते ! तमणेन जाव संपत्तेन धम्मकहणं वस वग्गा पणत्ता, पठमस न भते ! वग्गास तमणेन जाव संपत्तेन के अट्ठे पणत्ते ?

एवं सप्तु जंघु ! तमणेन जाव संपत्तेन पठमस वग्गास पथ धम्मकथणा पणत्ता, तंजहा—

- (१) कालो (२) राई (३) रयणी (४) विग्गू (५) मेहा ।

जइ णं भंते ! समणेणं जाय संपत्तेणं पढमस्स वगयस्स पंच भज्जयणा पण्णता, पढमस्स भंते ! भज्जयणस्स समणेणं जाय संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?

जम्बू स्वामी पुनः प्रश्न करते हैं—‘भगवन् ! श्रमण भगवान् यावत् सिद्धिप्राप्त ने यदि धन-कथा श्रुतस्त्वयं के दस वर्गें कहे हैं, तो भगवन् ! प्रथम वर्ग का श्रमण यावत् सिद्धिप्राप्त भगवान् ने क्या अर्थ कहा है ?

आर्य सुधर्मा उत्तर देते हैं—जम्बू ! श्रमण यावत् सिद्धिप्राप्त भगवान् ने प्रथम वर्ग के पाँच अध्ययन कहे हैं। वे इस प्रकार हैं—(१) काली (२) राजी (३) रजनी (४) विद्युत् और (५) मेघा ।'

जम्बू ने पुनः प्रश्न किया—‘भगवन् ! श्रमण यावत् सिद्धिप्राप्त महावीर भगवान् ने यदि प्रथम वर्ग के पाँच अध्ययन कहे हैं तो हे भगवन् ! प्रथम अध्ययन का श्रमण यावत् सिद्धिप्राप्त भगवान् ने क्या अर्थ कहा है ?’

६—'एवं एतु जंभू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे जयरे, गुणसोत्तए वेइए, मेमिए राया, चेलणा देयो । सामी समोसरिए । परिसा निग्गया जाव परिसा पग्गुवासइ ।

श्रीगुरुदेव ! स्वामी उत्तर देते हैं—जम्बू ! उस काल और उस समय में राजगुरु नगर था, गुरुगोम धर्म था, श्रेष्ठिक राजा था, और जेलना रानी थी ।

उस समय स्वामी (भगवान् महावीर) का पदार्पण हुआ। वन्दना करने के लिए परिषद् निकली, याज्ञ परिषद् भगवान् की पर्युपासना करने लगी।

### काली देवी की कथा

७—तेषां कालेणं तेषां समएणं काली नामं देवी चमरचंवाए रायहाणीए कालबडिसमभवने कासति सोहासनसि, चउहि सामाणिसमाहस्तीहि, चउहि महपरियाहि, सपरिवाराहि, तिंह परिताहि सत्तिहि धणिण्हि, सत्तिहि धणिणियाहियहि, सोलसहि धायदक्खदेवसाहस्तीहि, धण्णेहि बट्टएहि य कालबडिसमभवणवासीहि अनुरकुमारोहि देवेहि देवीहि य सद्धि संपरिवुद्धा महमाहप जाव विहरा ।

उम काल और उम समय में, कालीनामक देवी समरचथा राजप्राणी में, कालावर्षक भवन में, कालनामक मिश्रामन पर ग्रामोन थी। चार हजार सामानिक देवियों, चार महतरिका देवियों, परिवार सहित तीनों परिवारों, सात घनीको, सात घनीकाधिनिया, मोनहू द्वारा ग्राम-रक्षक देवी तथा अन्य कालावनमक भवन के निवासी समरकुमार देवा और देवियों ने परिवर्तन हाकर जोर में यज्ञों वाले वादिन नृत्य गीत आदि में मनोरंजन करती हुई बिबर रही थी।

[illegible]

वह कामी देवी इस केवल-कल्प (सम्पूर्ण) जम्बू द्वीप को अपने विपुल भवविज्ञान से उपयोग लगाती हुई देख रही थी। उसने जम्बूद्वीपनामक द्वीप के भरत क्षेत्र में, राजगृह नगर के गुणशील प्रधान में, यथाप्रतिरूप—साधु के लिए उचित स्थान की याचना करके, समय और तप द्वारा ध्यात्मा को भावित करते हुए श्रमण भगवान् महावीर को देखा। देख कर वह हर्षित और सन्तुष्ट हुई। उसका चित्त ध्यानन्वित हुआ। मन प्रीतियुक्त हो गया। वह अषट्पदहृदय होकर सिंहासन से उठी। पादपीठ से नीचे उतरी। उसने पादुका (खड़ाऊँ) उतार दिए। फिर तीर्थंकर भगवान् के सम्मुख सात-पाठ पढ़ दिये। बड़ कर बायें घुटने को ऊपर रखा और दाहिने घुटने को पृथ्वी पर टेक दिया। फिर मस्तक कुछ ऊँचा किया। तत्पश्चान् कड़ी और बाजुबंदी से स्तम्भित भूजाओं को मिलाया। मिलाकर, दोनों हाथ जोड़कर [मस्तक पर अञ्जलि करके, आवर्त्त करके] इस प्रकार कहने लगी—

यावत् सिद्धि को प्राप्त करिहूँ भगवन्तो को नमस्कार हो । यावत् सिद्धि को प्राप्त करने की इच्छा वाले भ्रमण भगवान् महावीर को नमस्कार हो । यहाँ रही हुई मैं, वहाँ स्थित भगवान् को वन्दना करती हूँ । वहाँ स्थित भ्रमण भगवान् महावीर, यहाँ रही हुई मुझको देखे ।' इस प्रकार कह कर वन्दना की, नमस्कार किया । वन्दना—नमस्कार करके पूर्व दिशा की घोर मुख करके अपने श्रृंखल मिहासन पर घासीन हो गई ।

तत्पश्चात् काली देवी को इस प्रकार का अर्घ्यवसय उत्पन्न हुआ—“श्रमण भगवान् महावीर  
सने ऐसा विचार किया ।  
“देवानुप्रियो ! श्रमण  
जैसे सूर्याभि देव’ ने अपने

प्राभियोगिक देवों की आज्ञा दी थी, उसी प्रकार काली देवी ने भी आज्ञा दी कि यावत् दिव्य श्रेष्ठ देवताओं के गमन के योग्य नान-विमान बना कर तैयार करो, यावत् मेरी आज्ञा होगी।' प्राभियोगिक देवों ने आज्ञानुसार कार्य करके आज्ञा तोटा दी। यहाँ विरोधना नहीं हजार योजन विस्तार वाला विमान बनाया (जबकि सूर्याभि देव के लिए साग योजन का बनाया गया था) दोष वर्णन सूर्याभि के वर्णन के समान ही समझना चाहिए। सूर्याभि की त भगवान् के पास जाकर अपना नाम-गौन कहा, उसी प्रकार नाटक दिगमया। फिर वन्दन नम करके काली देवी वापिस चली गई।

११—भंते ! त्वि भगवं गोयमे समनं भगवं महावीरं यं ददु जमंसदु, यं वित्ता जमंसि वयासी—'कालीए नं भंते ! देवीए सा दिव्या देविषु कहि गया ? कूडानारसाला-विदु'तो।

'ग्रहो भगवन् !' इस प्रकार संबोधन करके भगवान् गौतम ने श्रमण भगवान् महावन्दना की, नमस्कार किया, वन्दना-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—'भगवन् ! काली देवी दिव्य श्रद्धा कहाँ चली गई ?' भगवान् ने उत्तर में कूटाकार शाला का दृष्टान्त दिया।  
काली देवी का पूर्वभव

१२—'अहो नं भंते ! काली देवी महिठिया। कालीए नं भंते ! देवीए सा दिव्या किण्णा लढा ? किण्णा पत्ता ? किण्णा भमिसमण्णागया ?'

एवं जहा मूरियाभस्स जाव एवं जसु गोयमा ! तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबुही भारहे वासे ग्रामलकप्पा नाम नयरी होत्था। अयं सत्तयणे चेइए। जियसत्तू राया।

'ग्रहो भगवन् ! काली देवी महती श्रद्धा वाली है। भगवन् ! काली देवी को वह देवधि पूर्वभव में क्या करने से मिली ? देवभव में कैसे प्राप्त हुई ? और किस प्रकार उसके घाई, अर्थात् उपभोग में आने योग्य हुई ? यहाँ भी सूर्याभि देव के समान ही कथन समझना चाहिए। भगवान् ने कहा—'हे गौतम ! उस काल और उस समय में, इसी जम्बूद्वीपनामक द्वीप में, भा मे, ग्रामलकप्पा नामक नगरी थी। उसका वर्णन कहना चाहिए। उस नगरी के बाहर ईशान में भ्रात्रशालवननामक चैत्य (घन) था। उस नगरी में जितशत्रुनामक राजा था।

१३—तत्थे नं ग्रामलकप्पाए नयरीए काले नामं गाहावई होत्था, अजु जाव मारियुए नं कालस्स गाहावइस्स कालसिरी नामं मारिया होत्था, सुकुमालपाणिपाया जाव मुह्वा। त कालस्स गाहावइस्स धूया कालसिरीए मारियाए पत्तया काली नामं मारिया होत्था, यइकुमारी जुण्णा जुण्णकुमारी पडियपुयत्थणो निव्विधवरा वरपरिवज्जिया वि होत्था।

उस ग्रामलकप्पा नगरी में कालनामक मायापति (गृहस्थ) रहता था। वह धनाधीन और किसी से पराभूत होने वाला नहीं था। कालनामक मायापति की पत्नी का नाम कालथी वह गुकुमार हाथ पैर आदि सबवस्त्रों वाली यावत् मनोहर रूप वाली थी। उस काल मायापति पुत्री और कालथी भार्या की धारमजा कालीनामक बालिका थी। वह (उम्र से) बड़ी थी और



कुमारो (प्रविवाहिता) यो । वह जीर्णा (शरीर से जोणं होने के कारण) वृद्धा यो श्रीर  
हूए कुमारी यो । उसके स्तन नितब प्रदेश तक लटक गये थे । वर (पति बनने वाले पुत्र)  
रक्त हो गये थे अर्थात् कोई उसे चाहता नहीं था, अतएव वह वर-रहित प्रविवाहित रह

१४—तेषां कालेण तेषां समएण पासे अरहा पुरिसावाणीए आइगरे जहा धट्टमाणत्तामो, णवरं  
वेहे सोलसहि समणसाहस्सोहि अट्ठत्तोसाए अग्निवासाहस्सोहि सद्धि सपरिवुड्ढे जाव  
णे समोत्तम, परिसा णिग्गया जाव पग्गुयासइ ।

उम काल और उस समय में पुरुषादानीय (पुरुषों में आदेय नामकमें वाले) एवं धर्म की प्राप्ति  
के पार्वनाथ छिद्रित थे । वे वर्धमान स्वामी के समान थे । बिरोपता केवल इतनी यो  
शरीर नो हाथ ऊँचा था, तथा वे सोलह हजार साधुओं और अठ्ठीस हजार साध्वियों  
से । यावत् वे पुरुषादानीय पार्श्व तीर्थंकर याज्ञनाथवन में पधारे । वन्दना करने के लिये  
लोगों, यावत् वह परिदत् भगवान् को उपासना करने लगे ।

१५—तए णं सा काली दारिया इमोत्ते कहाए लड्डा समानी हट्ट जाव हिमया जेणे  
शरीर तेणेव उवागच्छइ । उवागच्छता करयत्त जाव एवं वयासो—‘एवं ललु अम्मयाओ  
आ पुरिसावाणीए आइगरे जाव बितुरइ, तं इच्छामि णं अम्मयाओ । तुम्हेहि अश्वभुज्जामा  
तस्स अरअहो पुरिसावाणीयस्स पाववइया गमितए ।’

‘महामुहं देवानुप्पिया । मा पडिबंमं करेहि ।’

तत्पश्चात् वह काली दारिका इस कथा का श्रवण प्राप्त करके अर्थात् भगवान् के पधारने व  
जानकर हर्षित और सतुष्ट हृदय वाली हुई । जहाँ माता-पिता थे, वहाँ गई । जाकर दोनों  
कर इस प्रकार बोली—‘हे माता-पिता ! पार्वनाथ अरिहन्त पुरुषादानीय, धर्मतीर्थं क  
रने वाले यावत् यहाँ विचर रहे हैं । अतएव हे मातापिता ! आपकी आज्ञा हो तो ।  
अरिहन्त पुरुषादानीय के घरणों में वन्दना करने जाना चाहती हूँ ।’

माता-पिता ने उत्तर दिया—‘देवानुप्रिये ! तुम्हें जैसे मुख उपजे, वैसा कर । धर्म कार्य  
कर ।’

१६—तए णं सा कालिया दारिया अम्मपिईहि अश्वभुज्जामा समानी हट्ट जाव हिमया प्हाय  
अम्मा कयकोटय-अंगल-पागच्छिता मुट्ठप्पवेसाइं अंगत्साइं वयाइं पवरपरिहिमा अत्थ  
रणासकियसरीरा सेडिया-अशकवास-परिकिण्णा साओ मिहामो पडिणिबलमइ, पडिणिबल  
णेव बाहिरिया उवट्ठाणसाता, जेणेव अम्मिए आणप्पवरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित  
आणप्पवरं दुवडा ।

तत्पश्चात् वह कालीनामक दारिका का हृदय माता-पिता की आज्ञा पाकर हर्षित हुआ  
तान किया बलिकर्म किया, कौतुक, मंगल और प्रायश्चित्त किया तथा साफ, सभा के योग्य  
—और थोड़ा वस्त्र धारण किये । अल्प किंतु बहुमूल्य आभूषणों से शरीर को शूद्रित किया  
जिम्हों के समूह से परिवृत्त होकर अपने गृह से निकली । निकल कर जहाँ बाहर कं

उपस्थानशाला (सभा) थी, वहाँ आई। आकर धर्मकार्य में प्रयुक्त होने वाले थोड़े नाना प्रकार के वस्तुएँ।

१७—तए नं सा काली वारिया धम्मियं जाणप्पवरं वुह्मडा समानो एवं जहा रोवो पञ्जुवासइ । तए नं पासे अरहा पुरिसावाणोए कालीए वारियाए तीसे य महइमहात्तिवाए परि धम्मं कहेइ ।

तत्पश्चात् कालीनामक दारिका धार्मिक थोड़ा यान पर गाड़ी होकर द्रोपदी के भगवान् को वन्दना करके उपासना करने लगी। उस समय पुरुषादानीय तीर्थंकर पार्व ने कालीनामक दारिका को और उपस्थित विद्यालय जनसमूह को धर्म का उपदेश दिया।

१८—तए नं सा काली वारिया पासस्स अरहसो पुरिसावाणीयस्स अंतिए धम्मं सो निजस्स हट्ठ जाय हियया पासं अरहं पुरिसावाणीयं तिबलुत्तो वंइइ, नमसइ, वंदित्ता नमस्सि ययासो—‘सद्धामि नं भंते ! निग्गंयं पाययणं जाव’ से जहेयं तुभे ययइ, जंणवरं देवानुप्पियं अम्मपियरो आणुत्थामि, तए नं अहं देवानुप्पियणं अंतिए जाव [मुँडा भविता नं अणगारियं] पययामि ।’

‘महामुहं देवानुप्पिये ?’

तत्पश्चात् उस कालीनामक दारिका ने पुरुषादानीय परिहन्त पार्वनाथ के पान में गुन कर और उसे हृदयगम करके, हृषितहृदय होकर यावत् पुरुषादानीय परिहन्त पार्वनाथ तीन बार वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार करके इस प्रकार निवेदन किया—‘भगवन् ! मैं निग्रंथप्रयचन पर श्रद्धा करती हूँ। यावत् आप जैसा कहते हैं, यह वैसा ही केवल, हे देवानुप्रिय ! मैं अपने माता-पिता से पूछ लेती हूँ, उसके बाद मैं आप देवानुप्रिय के [मुँडित होकर गृहत्याग करके] प्रत्यगा गृहण करूँगी।’

भगवन् ने कहा—‘देवानुप्रिये ! जेगे तुम्हें मुक्त उपने, करो ।’

१९—तए नं सा काली वारिया पासेणं अरहया पुरिसावाणीएणं एवं वृत्ता समानो हइ हियया पासं अरहं वइइ, नमसइ, वंदित्ता नमस्सि तमेव धम्मियं जाणप्पवरं वुह्मडा, वुह्मिडा पा अरहसो पुरिसावाणीयस्स अंतियासो अंबसालवणाओ खेइयासो पडिनिबलमइ, पडिनिबलमिता आमलक्षणा नयरो तेनेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता आमलक्षणं जवरि मग्गमग्गेणं जेनेव वडि उवट्ठानसासा तेनेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धम्मियं जाणप्पवरं वइइ, वंदित्ता धम्मियं जाणप्पवरासो पच्चोरइइ, पच्चोरइत्ता जेनेव अम्मपियरो तेनेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता जाय एवं ययासो—

तत्पश्चात् पुरुषादानीय परिहन्त पार्व के द्वारा इस प्रकार कहने पर वह कालीनामक दारिका हृषित एवं भनुष्ट हृदय वा हो गई। उसने पार्व को वन्दन और नमस्कार करके वह उस धार्मिक थोड़ा यान पर गाड़ी हुई। गाड़ी होकर पुरा-

परिहन्त पाद्वं के पास से, भ्रात्रशालवननामक चेत्य से बाहर निकली और भ्रामलकल्पा नगरी के  
घोर चली । भ्रामलकल्पा नगरी के मध्य भाग में होकर जहाँ बाहर की उपस्थानशाला थी वहाँ  
गई थी । धार्मिक एवं थोड़ा यान को ठहराया और फिर उससे नीचे उतरी । फिर अपने माता-पिता  
के पास जाकर और दोनों हाथ जोड़कर यावत् इस प्रकार बोली—

२०—‘एवं सन्तु भ्रमयाओ ! मए पासस्त अरहओ अतिए धम्मे निस्तंते, से वि य णं धम्मं  
इच्छिए, पडिच्छिए, अमिदए, तए णं अहं भ्रमयाओ ! संसारभउविग्गा, भीया जम्ममरणान्  
इच्छामि णं तुम्हेहि अकमणुप्राया समानी पासस्त अरहओ अतिए मुंडा भविता अगाराओ अणगारि  
पवइत्तए ।’

‘महामुहं देवानुत्पिथा ! मा पडिबध करेह ।’

‘हे माता-पिता ! मैंने पाद्वंनाथ तीर्थकर से धर्म मुना है । और उम धर्म की मैंने इच्छा की  
है, पुनः पुनः इच्छा की है । वह धर्म मुझे दया है । इस कारण हे मात-तात ! मैं संसार के भय से  
उद्दिन हो गई हूँ, जन्म-मरण से भयभीत हो गई हूँ । आपकी आज्ञा पाकर पाद्वं परिहन्त के समीप  
मुंडित होकर, गृहत्याग कर अनगारिता की प्रवर्ग्या धारण करना चाहती हूँ ।’

माता-पिता ने कहा—‘देवानुत्पिथे ! जंसे मुख उपजे, करो । धर्मकार्य में विरुद्ध न करो ।’

२१—तए णं से काले माहावई विपुलं अत्तणं पाणं खाइमं साइमं उववत्तडावेइ, उववत्तडा  
विता मित्त-णाइ-णियम-सयण-संबंधि-परियणं भ्रामतेइ, भ्रामतिता ततो पच्छा ग्हाए जाव विपुले  
पुप्फ-वत्थ-नंय-मत्तलालंकारेणं सक्कारेत्ता सम्मानत्ता तस्सेव मित्त-णाइ-णियम-सयण-संबंधि-परियणत्ता  
पुरओ कालियं दारियं सेयापीएणं कलसेहि ग्हावेइ, ग्हाविता सम्वालकारविभूसियं करेइ, करि  
पुरिससहस्रवाहिणीयं सीयं दुक्कहेइ, दुक्कहिता मित्त-णाइ-णियम-सयण-संबंधि-परियणं सट्ठि संपरिबु  
सम्बिड्डीए, जाव रवेणं भ्रामलकणं नगरं मग्गमग्गेण निगच्छइ, निगच्छिता जेणव अक्कालव  
चेइए, तेणव उवागच्छइ, उवागच्छिता छुत्ताईए तिसवराइसए पासइ, पासिता सीयं टवेइ, ठवि  
कालियं दारियं सीयाओ पच्चोरहेइ । तए ण कालि दारियं सम्मापिमरो पुरओ काउं जेणव पास अर  
पुरिसादानीए तेणव उवागच्छइ, उवागच्छिता बंदइ, नमंसइ, बंदिता नमंसिता एवं बवासी—

तत्परवात् कालनामक मायापति ने विपुल ग्रशन, पान, खादिम और स्वादिम भोजन तैयार  
करवाया । तैयार करवाकर मित्रों, जातिजनो, निजकी, स्वजनो सबधियों और परिजनो को भ्रामत्रि  
किया । भ्रामत्रण देकर स्नान किया । फिर यावत् विपुल पुष्प, वस्त्र, पद्म, माल्य और अलंकार  
उनका सत्कार सम्मान करके उन्हीं जाति, मित्र, निजक, स्वजन, सबंधी और परिजनों के सामने  
कालीनामक दारिका को श्वेत एवं पीत अर्थात् चादी और सोने के कलशों से स्नान करवाया । स्नान  
करवाने के पदवात् उसे सर्व अलंकारों से विभूषित किया । फिर पुरुषसहस्रवाहिनी शिविका पर  
आरूढ़ किया । आरूढ़ करके मित्र, जाति, निजक, स्वजन, सबंधी और परिजनों के साथ परिव  
होकर सम्पूर्ण श्रद्धि के साथ, यावत् वाद्यों की ध्वनि के साथ, भ्रामलकल्पा नगरी के बीचों-बी  
होकर निकले । निकल कर भ्रात्रशालवन की ओर चले । चलकर छत्र आदि तीर्थकर भगवान्  
भतिसय देखे । अतिशयों पर दृष्टि पड़ते ही शिविका रोक दी गई । फिर माता-पिता कालीनाम  
दारिका को शिविका से नीचे उतार कर और फिर उसे आगे करके जिस ओर पुरुषादानीय तीर्थक

पार्श्व थे, उसी घोर गये। जाकर भगवान् को वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार करने के पश्चात् इस प्रकार कहा—

२२—'एवं सन्तु देवानुप्पिया ! काली वारिया अम्हं धूया इट्ठा कंता जाव किमंण पुन पासणयाए ? एस णं देवानुप्पिया ! संसार-भज्जिविग्गा इच्छइ देवानुप्पियाणं अंतिए मुंठा नवित्ता न जाव पच्चइत्तए, तं एयं णं देवानुप्पियाणं सिस्सिणीभिक्खं वलयामी, पडिच्छतु णं देवानुप्पिया ! सिस्सिणिभिक्खं ।'

'महासुहं देवानुप्पिया ! मा पडिब्धं करेह ।'

देवानुप्रिय ! कालीनामक वारिका हमारी पुत्री है। हमें यह इष्ट है घोर प्रिय है, यावत् इसका दर्शन भी दुर्लभ है। देवानुप्रिय ! यह संसार-भ्रमण के भय से उद्दिग्ध होकर घोर देवानुप्रिय के निकट मुद्रित होकर यावत् प्रयत्नित होने की इच्छा करती है; प्रायः हम यह दिव्यनीभिशा देवानुप्रिय को प्रदान करते हैं। देवानुप्रिय दिव्यनीभिशा स्वीकार करें।'

तव भगवान् बोले—देवानुप्रिय ! जैसे मुख उपजे करो। धर्मकार्य में विलम्ब न करो।'

२३—तए णं सा काली कुमारी पासं अरहं यंबइ, नमंसइ, यंवित्ता नमंसित्ता उत्तरपुरविषय वित्तिभायं अवक्कमइ, अयक्कमित्ता समयेय मामरणमल्लासंकारं ओमूयइ, ओमूइत्ता समयेय लोच करेइ, करित्ता जेणेय पासे अरहा पुरिसादाणीए तेणेव जवागच्छइ, उवामच्छित्ता पासं अरहं तिससुतो यंबइ, नमंसइ, यंवित्ता नमंसित्ता एयं वयासो-प्राप्तित्ते णं भंते ! सोए' एयं जहा देवानंदा, 'जाव समयेय पच्चायेउं ।

तत्पश्चात् काली कुमारी ने पार्श्वं अरहत को वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार करके यह उत्तरपूर्व (ईशान) दिशा के भाग में गई। वही जाकर उसने स्वयं ही आभूषण, माला घोर धनकार उतारे घोर स्वयं ही लोच किया। फिर जहाँ पुरुषादानीय अरहत पार्श्व थे वही घाई। घाकर पार्श्व अरहत को तीन बार वन्दना-नमस्कार करके इस प्रकार बोली—'भगवन् ! यह लोच पार्श्व है प्रधातु जन्म-मरण प्रादि के सताप से जन रहा है, इत्यादि (भगवतीयुववर्णिन) देशान्तर के समान जानना चाहिए। यावत् मैं चाहती हूँ कि आप स्वयं ही मुझे दीक्षा प्रदान करें।

२४—तए णं पासे अरहा पुरिसादाणीए कालि समयेय पुक्कळत्ताए अगजाए सिस्सिणिवत्तए इत्तपत्ति ।

तए णं सा पुक्कळत्ता अगजा कालि कुमारि समयेय पच्चायेइ, जाव उयत्तं पविज्जत्ता नं विहरइ । तए णं सा काली अगजा जाया ईरियासमिया जाव' गुत्तबंमयारिणी । तए णं सा काली अगजा पुक्कळत्ताअगजाए अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारत्तं भंग्गाइं अत्तिगजइ, बहूणि चउत्थ गजव [एउउय-वममडुवातेहि मात्तउमात्तसमपणेहि अल्पाणं भावेयाणी] विहरइ ।

तत्पश्चात् पुरुषादानीय अरहत पार्श्व ने समयेय काली कुमारी को, पुष्पवृक्षा घासों की दिव्यनी के रूप में प्रदान किया।

उत्तर पुष्पवृक्षा घासों ने काली कुमारी को स्वयं ही दीक्षित किया। यावत् वह काली अगजा अलोकार करके विहरने लगी। तत्पश्चात् वह काली घासों ईशानमिति में पुष्प पार्श्व

ब्रह्मचारिणी आर्या हो गई । तदनन्तर उस काली आर्या ने पुष्पचूला आर्या के निकट सामायिक से लेकर ग्यारह अंगों का अध्ययन किया तथा बहुत-से चतुर्थभक्त-उपवास, [पष्ठभक्त, अष्टमभक्त, दशमभक्त, द्वादशमभक्त, अर्थ मासखमण मासखमण] आदि उपश्चरण करती हुई विचरने लगी ।

२५—तए नं सा काली अज्जा अन्नया कयाइ शरीरवारसिया जाया पावि होत्था, अभिवल्लण अभिवल्लणं हत्थे धोवइ, पाए धोवइ, सोत्तं धोवइ, मुहं धोवइ, अणंतराणं धोवइ, कखंतराणि धोवइ, गुणंतराणं धोवइ, जय जय वि य नं ठाण वा सेज्ज वा णिसोहिंयं वा चेएइ, तं पुब्बामेव अनुभवत्ता पच्छा आसयइ वा सयइ वा ।

तत्पश्चात् किसी समय, एक बार काली आर्या शरीरवाकुसिका (शरीर को साफ-सुधरा रखने की वृत्ति वाली—शरीरासक्त) हो गई । अतएव वह बार-बार हाथ धोने लगी, पैर धोने लगी, सिर धोने लगी, मुँह धोने लगी, स्तनों के अन्तर धोने लगी, काखों के अन्तर-प्रदेश धोने लगी और गुह्य स्थान धोने लगी । जहाँ जहाँ वह कायोत्सर्ग शय्या या स्वाध्याय करती थी, उस स्थान पर पहले जल छिड़क कर बाद में बैठती अथवा सोती थी ।

२६—तए नं सा पुप्फचूला अज्जा कालि अज्जं एवं वपासी-नो खलु कप्पइ देवानुप्पिए । समणीयं निमग्घीयं शरीरवाउसियाणं होतए, तुमं च नं देवानुप्पिए, शरीरवाउसिया जाया अभिवल्लणं अभिवल्लणं हत्थे धोवसि जाव आसयाहि वा सयाहि वा, तं तुमं देवानुप्पिए । एवहस ठाणस्स भालोएहि जाव पायच्चित्तं पडिवज्जहि ।

तब पुष्पचूला आर्या ने उस काली आर्या से कहा—‘देवानुप्रिये ! श्रमणी तन्निग्रन्थियो को शरीरवकुसा होना नहीं कल्पता । और तुम देवानुप्रिये ! शरीरवकुसा हो गई हो । बार-बार हाथ धोती हो, यावत् पानी छिड़ककर बैठती और सोती हो । अतएव देवानुप्रिये ! तुम इस पापस्थान की भालोचना करो, यावत् प्रायश्चित्त अंगीकार करो ।’

२७—तए नं सा काली अज्जा पुप्फचूलाए एवमद्धं नो आदाइ जाव तुसिणीया संविट्ठइ ।

तब काली आर्या ने पुष्पचूला आर्या की यह बात स्वीकार नहीं की । यावत् वह चुप बनी रही ।

२८—तए नं ताओ पुप्फचूलाओ अज्जाओ कालि अज्जं अभिवल्लणं अभिवल्लणं हीलेंति, णिदंति, लिसंति, गरिहंति, अवमण्णंति, अभिवल्लणं अभिवल्लणं एवमद्धं निवारेंति ।

तत्पश्चात् वे पुष्पचूला आदि आर्याएँ, काली आर्या की बार-बार अवहेलना करने लगी, निन्दा करने लगी, चिढ़ने लगी, गद्गल करने लगी, अवज्ञा करने लगी और बार-बार इस अर्थ (निषिद्ध कर्म) को रोकने लगी ।

२९—तए नं तीते कालीए अज्जाए समणीहि निग्घीयं हि अभिवल्लणं अभिवल्लणं हीलेंज्ज-भाणीए जाव निवारिज्जभाणीए इमेयाहवे अज्जहिणिए जाव समुप्पज्जित्था-जया नं अहं अगार-वातमज्जे वसित्था, तथा षं अहं सम्यवसा, जप्पभिदं च न अहं मुंढा भवित्ता अगाराओ अणगारियं पवइया, तप्पभिदं च नं अहं परवसा जाया, तं सेयं खलु मम कत्तं पाउप्पभायाए रमणीए जाव



तत्पश्चात् वह काली देवी चार हजार सामानिक देवों तथा अन्य बहुतेरे कासावतसक नामक भग्न में निवास करने वाले असुरकुमार देवों और देवियों का अधिपतित्व करती हुई यावत् रहने लगी। इस प्रकार हे गौतम ! काली देवी ने वह दिव्य देव ऋद्धि, दिव्य देवशुति और दिव्य देवानुभाष प्राप्त किया है यावत् उपभोग में आने योग्य बनाया है।

३३—कालीए णं भते ! देवीए केवइयं कालं ठिई पणत्ता ?

गोयमा ! अट्ठाइज्जाइं पत्तिभोवमाइं ठिई पणत्ता ।

काली णं भते ! देवी ताम्रो देवलोगाग्रो अणत्तरं उधवट्ठिता काँह गच्छिहिइ ?

काँह उधवज्जिहिइ ?

गोयमा ! महाविदेहे वामे सिञ्जिहिइ, जाव अत्तं काहिइ ।

गौतम स्वामी ने प्रश्न किया—भगवन् ! काली देवी की कितने कस की स्थिति कही गई है ?

भगवान्—‘हे गौतम ! अट्ठाई पत्तोपम की स्थिति कही है।’

गौतम—‘भगवन् ! काली देवी उस देवलोक से अनन्तर चय करके (धारीर त्याग) कर कहां उत्पन्न होगी ?’

भगवान्—‘गौतम ! महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होकर यावत् सिद्धि प्राप्त करेगी यावत् सर्व दुःखों का अन्त करेगी।’

३४—एवं खलु जह्म ! समणेणं जाव संपत्तेणं पट्मअभयणत्तं पट्मअभयणत्तं अयमट्ठे पणत्ते त्ति वेमि ॥१४८॥

श्रीमुधर्मा स्वामी अध्ययन का उपसंहार करते हुए कहते हैं—हे जम्बू ! यावत् सिद्धि को प्राप्त थमए भगवान् महावीर ने प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ कहा है। वहीं मैंने तुमसे कहा है।

३५—जहं णं भते ! समणेणं जाव संपत्तेणं पट्मअभयणत्तं पट्मअभयणत्तं अयमट्ठे पणत्ते, विइयत्तं णं भते ! अज्जअभयणत्तं समणेणं भगवमा महावीरेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पणत्ते ?

जम्बू स्वामी ने अपने गुरुदेव आर्य मुधर्मा से प्रश्न किया—‘भगवन् ! यदि यावत् सिद्धि को प्राप्त थमए भगवान् महावीर ने धर्मकथा के प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ कहा है तो यावत् सिद्धिप्राप्त थमए भगवान् महावीर ने दूसरे अध्ययन का क्या अर्थ कहा है ?’

३६—एवं खलु जह्म ! तेणं कालेण तेणं समएणं रायगिहे जगरे, मुणसीतए चेइए, सामी समोसदं, परिसा णिमग्घा जाव पज्जुवासइ ।

श्रीमुधर्मा स्वामी ने उत्तर दिया—हे जम्बू ! उस काल और उस समय में राजगृह नगर था तथा गुणशीलनामक उद्यान था। स्वामी (भगवान् महावीर) पधारें। वन्दन करने के लिए परिपद् निकली यावत् भगवान् की उपासना करने लगी।

३६—तेणं कालेणं तेणं समएणं राई वेवो चमरचंचाए रायहाणीएएवं जहा कालो तहेव  
आगया, णट्टविहि उयवंसेत्ता पडिगया । 'भंते त्ति' भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदे, णमत्त  
यंदित्ता णमंसित्ता पुव्वभवपुच्छा ।

उस काल और उस समय में राजीनामक देवी चमरचंचा राजधानी से काली देवी के समान  
भगवान् की सेवा में आई और नाट्यविधि दिला कर चली गई । उस समय 'हे भगवन् !' इस  
प्रकार कह कर गीतम स्वाभी ने श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार करके राजी देवी के  
पूर्वभव की पृच्छा की । (तब भगवान् ने आगे कहा जाने वाला वृत्तान्त कहा) ।

३८—एवं खलु गोयमा ! तेणं कालेणं तेणं समएणं भामलकप्पा नगरो, अंबसालवणे वेए,  
जियसत्तू राया, राई गाहावर्दी, राईसिरो मारिया, राई दारिया, पासस्स समोसरणं, राई दारिण  
जहेव कालो तहेव णिवलंता, तहेव सरोरबाउसिया, तं वेय सखं जाय अंतं काहिइ ।

हे गीतम ! उस काल और उस समय में भामलकप्पा नगरी थी । भामसालवननामक  
उद्यान था । जितशत्रु राजा था । राजीनामक गायापति था । उसकी पत्नी का नाम राजीथी था ।  
राजी उसकी पुत्री थी । किसी समय पार्श्व तीर्थंकर पधारे । काली की भाति राजी दारिका भी  
भगवान् को वन्दना करने के लिए निकली । वह भी काली की तरह दीक्षित होकर दरीरबकुणा  
हो गई । शेष समस्त वृत्तान्त काली के समान ही समझना चाहिए, यावत् वह महाविदेह क्षेत्र में  
सिद्धि प्राप्त करेगी ।

३९—एवं खलु जंघू ! विइयउभयणस्स निबखेवमो ।

इस प्रकार हे जंघू ! द्वितीय अध्ययन का निक्षेप जानना चाहिए ।



## तइयं अज्झयणं

[तृतीय अध्ययन]

### रजनी

४०—तइ यं भंते ! तइयस्स उक्खेवमो [समणेणं भगवया महावीरेणं धम्मकहाणं पढमस्स गस्स विइयम्भयणस्स अयमहुं पणत्ते, तइयस्स यं भंते ! अउम्भयणस्स समणेणं भगवया महावीरेणं अहुं पणत्ते ?

तीसरे अध्ययन का उत्थेप (उपोद्घात) इस प्रकार है—‘भगवन् ! यदि भ्रमण भगवान् हावीरे ने धर्मकथा के प्रथम वर्ग के द्वितीय अध्ययन का यह (पूर्वोक्त) अर्थ कहा है तो, भगवन् ! भ्रमण भगवान् महावीर ने तीसरे अध्ययन का क्या अर्थ कहा है ?

४१—एवं खलु जम्बू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायसिहे नयरे, गुणसीलए चेइए, एवं जहेव ताई तहेव रयणी वि । नयरं—ग्रामलकप्पा नयरी, रयणी (रयणे) गाहावाई, रयणसिरी भारिया, प्पणी बारिया, सेसं तहेव जाव अंतं काहिइ ।

जम्बू स्वामी के प्रश्न के उत्तर में श्री सुधर्मा ने कहा—जम्बू ! राजगृह नगर था, गुणसील वैश्य था । इत्यादि जो वृत्तान्त राजा के विषय में कहा गया है, वही सब रजनी के विषय में भी ग्राह्यविधि दिखलाने आदि का वृत्तान्त कहना चाहिए । विशेषता यह है—ग्रामलकप्पा नगरी में रजनी (रयण-रत्न ?) नामक गाथापति था । उसकी पत्नी का नाम रजनीभी था । उसकी पुत्री का भी नाम रजनी था । शेष सब वृत्तान्त पूर्ववत् समझ लेना चाहिए, यावत् वह महाविदेह क्षेत्र में मुक्ति प्राप्त करेगी ।

३६—तेणं कालेणं तेणं समएणं राई देवी चमरचंचाए रायहाणीएएयं जहा कातं  
आगया, णट्टविहि उववंसेत्ता पडिगया । 'भंते त्ति' भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ,  
वंदित्ता णमंसित्ता पुब्बभवपुच्छा ।

उस काल और उस समय में राजीनामक देवी चमरचंचा राजधानी से काली देवी के  
भगवान् की सेवा में आई और नाट्यविधि दिला कर चली गई । उस समय 'हे भगवन्  
प्रकार कह कर गौतम स्वामी ने श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार करके राजी  
पुर्वभव की पृच्छा की । (तब भगवान् ने आगे कहा जाने वाला वृत्तान्त कहा) ।

३८—एयं खलु गोयमा ! तेणं कालेणं तेणं समएणं आमलकप्पा नगरी, अंबसातवणे  
जियसत्तू राया, राई गाहावई, राईसिरी भारिया, राई दारिया, पासस्त समोसरणं, राई !  
जहेव काली तहेव निवसंता, तहेव सरीरयाउसिया, तं चेव सयं जाव अंतं काहिइ ।

हे गौतम ! उस काल और उस समय में आमलकप्पा नगरी थी । आम्रमालवन  
उद्यान था । जितशत्रु राजा था । राजीनामक गाथापति था । उसकी पत्नी का नाम राजीथी  
राजी उसकी पुत्री थी । किसी समय पादवं तीर्थंकर पधारे । काली की भाति राजी दारि  
भगवान् को वन्दना करने के लिए निकली । वह भी काली की तरह दीक्षित होकर गरीर  
हो गई । शेष समस्त वृत्तान्त काली के समान ही समझना चाहिए, यावत् वह महाविदेह  
सिद्धि प्राप्त करेगी ।

३९—एयं खलु जंघू ! बिइयउभयणस्त निवसेवमो ।

इस प्रकार हे जम्बू ! द्वितीय अभ्ययन का निक्षेप जानना चाहिए ।'

## तद्वयं अज्ज्ञयणं

[तृतीय अध्यायन]

### रजनी

४०—जइ णं भते । तद्वयस्स उवसेवमो [समणेणं भगवया महावीरेणं धम्मकहाणं पडमस्सं वगस्सं विइपज्जयणस्सं अयमहुं पणत्ते, तद्वयस्सं णं भते ! अज्जयणस्सं समणेणं भगवया महावीरेणं के अहुं पणत्ते ?

तीसरे अध्ययन का उत्क्षेप (उपोद्घात) इस प्रकार है—‘भगवन् ! यदि भ्रमण भगवान् महावीर ने धर्मकथा के प्रथम वर्ग के द्वितीय अध्ययन का यह (पूर्वोक्त) अर्थ कहा है तो, भगवन् ! भ्रमण भगवान् महावीर ने तीसरे अध्ययन का क्या अर्थ कहा है ?

४१—एवं जलु जज्जु ! तेणं कालेणं सेणं समएणं रायगिहे जयरे, गुणसीलए चेइए, एवं जहेव राई तहेव रयणी वि । जवरं—आमलकप्पा जयरी, रयणी (रयणे) गाहाबई, रयणसिरी भारिया, रयणी बारिया, सेसं तहेव जाव अंतं काहिइ ।

जम्बू स्वामी के प्रश्न के उत्तर में श्री सुधर्मा ने कहा—जम्बू ! राजगृह नगर था, गुणशील रक्ष था । इत्यादि जो वृत्तान्त राजी के विषय में कहा गया है, वही सब रजनी के विषय में भी नाट्यविधि दिखलाने आदि का वृत्तान्त कहना चाहिए । विशेषता यह है—आमलकप्पा नगरी में रजनी (रयण-रत्न ?) नामक गाथापति था । उसकी पत्नी का नाम रजनीश्री था । उसकी पुत्री का भी नाम रजनी था । शेष सब वृत्तान्त पूर्ववत् समझ लेना चाहिए, यावत् वह महाविदेह क्षेत्र से मुक्ति प्राप्त करेगी ।

३६—तेजं कालेण तेजं समएणं राई देवी चमरच'चाए रायहाणोएएणं जहा कालो ग्हा  
प्रागया, णट्टविहि उयवंसेत्ता पडिगया । 'भते त्ति' भगयं गोयमे समणं भगयं महावीरं वंदइ, गमेस  
यंदिता णमसित्ता पुब्बभवपुच्छा ।

उस काल और उस समय में राजीनामक देवी चमरचना राजधानी में काली देवी के सनत  
भगवान् की सेवा में घाई और नाट्यविधि दिखाता कर चली गई । उस समय 'हे भगवन् !' इस  
प्रकार कह कर गौतम स्वामी ने श्रमण भगवान् महावीर की वन्दन-नमस्कार करके राजी देवी के  
पूर्वभय की वृच्छा की । (तब भगवान् ने प्रागे कहा जाने वाला वृत्तान्त कहा) ।

३७—एयं एतु गोयमा । तेजं कालेण तेजं समएणं भामलकप्पा नयरी, अंबसालयणे वेए  
जियसत्तू राया, राई गाहायई, राईतिरी भारिया, राई दारिया, पासस्त समीसरणं, राई दारिया  
जहेय काली तहेय णिवल्लता, तहेय सरीरवाउसिया, तं चेय सय्यं जाय अंतं काहिइ ।

हे गौतम ! उस काल और उस समय में भामलकल्पा नगरी थी । माघसालवननामक  
उद्यान था । जितवान् राजा था । राजीनामक गाथापति था । उसकी पत्नी का नाम राजीश्री था ।  
राजी उसकी पुत्री थी । किसी समय पादवं तीर्थंकर पधारे । काली की भाति राजी दारिका भी  
भगवान् की वन्दना करने के लिए निकली । वह भी काली की तरह दीक्षित होकर शरीरबहुला  
हो गई । तोप समस्त वृत्तान्त काली के समान ही समझना चाहिए, यावत् वह महाविदेह धात्र में  
सिद्धि प्राप्त करेगी ।

३८—एयं एतु जंबू ! विइयउभयणस्त निवसेवमो ।

इस प्रकार हे जम्बू ! द्वितीय अध्ययन का निक्षेप जानना चाहिए ।'

## तद्वयं अज्ज्ञयणं

[तृतीय अध्ययन]

### रजनी

४०—जड्णं भते ! तद्वयस्स उज्झ्वमो [समयेणं भगवया महावीरेणं धम्मकहाणं पढमस्सं  
! विद्वयज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, तद्वयस्सं भते ! अज्झयणस्स समणेणं भगवया महावीरेणं  
'पण्णत्ते ?

तीसरे अध्ययन का उत्तर (उपोद्घात) इस प्रकार है—'भगवन् ! यदि श्रमण भगवान्  
।२ ने धर्मकथा के प्रथम वर्ग के द्वितीय अध्ययन का यह (पूर्वोक्त) अर्थ कहा है तो, भगवन् !  
भगवान् महावीर ने तीसरे अध्ययन का क्या अर्थ कहा है ?

४१—एवं जलु जड्ण ! तेणं कालेण तेणं समणं रायगिहे जयरे, गुणसीलए चेइए, एवं जहेव  
हेव रयणी वि । जयरे—आमलकप्पा जयरी, रयणी (रयणे) गाहावई, रयणसिरी भारिया,  
वारिया, सेसं तहेव जाव अंतं काहिइ ।

जम्बू स्वामी के प्रश्न के उत्तर में श्री सुधर्मा ने कहा—जम्बू ! राजगृह नगर था, गुणसील  
था । इत्यादि जो वृत्तान्त राजी के विषय में कहा गया है, वही सब रजनी के विषय में भी  
विधि दिखलाने आदि का वृत्तान्त कहना चाहिए । विशेषता यह है—आमलकप्पा जयरी में  
(रयण-रत्न ?) नामक गाथापति था । उसकी पत्नी का नाम रजनीश्री था । उसकी पुत्री का  
नाम रजनी था । दोष सब वृत्तान्त पूर्ववत् समझ लेना चाहिए, यावत् वह महाविदेह क्षेत्र से  
प्राप्त करेगी ।

# नउत्तम अज्जमणं

[सुवर्ण मण्डप-१]

विज्जु-विज्जुत्

६० एक विज्जु वि । माय नउत्तम नउत्तम । विज्जु मायानुत्तम । विज्जुविरो मायिमा । विज्जु  
मायिमा । मेम नउत्तम ।

६१ एक विज्जु वि । माय नउत्तम नउत्तम । विज्जु मायानुत्तम । विज्जुविरो मायिमा । विज्जु  
मायिमा । मेम नउत्तम ।

## पंचमं अञ्जयरां

[पञ्चम अध्यायः]

### मेहा—मेघा

४३—एवं मेहा वि । ग्रामलकप्पाए नयरोए मेहे गाहावई, मेहतिरी भारिमा, मेहा वा' सेस तहेव ।

मेघा देवी का कथानक भी ऐसा ही जान लेना चाहिए । नामो की विशेषता यो ग्रामलकप्पा नगरी थी । उसमे मेघनामक गाथापति निवास करता था । मेघथी उसकी भार्या पुत्री का नाम मेघा का । शेष कथन पूर्ववत्, अर्थात् उसने भी आकर नाट्यप्रदर्शन किया । उसने जाने के पश्चात् गीतम स्वामी ने उसके विषय में जिज्ञासा की । भगवान् ने उसके पूर्वभव का वृत्तलाप और अन्त में कहा कि वह भी सिद्धि प्राप्त करेगी ।

---

# वीओ वगो-द्वितीय वर्ग

पदमं प्रज्जयणं

## प्रथम अध्ययन

४४ - ब्रह्म सं भते । मममेग जाउ संपत्तेणं—जाउ बोच्चस्स वगस्स उपक्षेयओ ।

ब्रह्म मरामो ने प्रजन किया-भगवान् । यावत् मुक्तिप्राप्त अमण भगवान् महाशेर ने प्रम  
न वा यह पक्ष कहा है या दूसरे पक्ष का क्या धर्म कहा है ?

४५ - एह मयु ब्रह्म । मममेग जाउ संपत्तेणं बोच्चस्स वगस्स वंच प्रज्जयणा पणत्ता,  
मरणा—(१) मुभा (२) निमुभा (३) रभा (४) निरंभा (५) मरणा ।

४६ - एह मयु ब्रह्म । मममेग जाउ संपत्तेणं बोच्चस्स वगस्स वंच प्रज्जयणा पणत्ता,  
मरणा—(१) मुभा (२) निमुभा (३) रभा (४) निरंभा (५) मरणा ।

४७ - एह मयु ब्रह्म । मममेग जाउ संपत्तेणं बोच्चस्स वगस्स वंच प्रज्जयणा पणत्ता,  
मरणा—(१) मुभा (२) निमुभा (३) रभा (४) निरंभा (५) मरणा ।

४८ - एह मयु ब्रह्म । मममेग जाउ संपत्तेणं बोच्चस्स वगस्स वंच प्रज्जयणा पणत्ता,  
मरणा—(१) मुभा (२) निमुभा (३) रभा (४) निरंभा (५) मरणा ।

४९ - एह मयु ब्रह्म । मममेग जाउ संपत्तेणं बोच्चस्स वगस्स वंच प्रज्जयणा पणत्ता,  
मरणा—(१) मुभा (२) निमुभा (३) रभा (४) निरंभा (५) मरणा ।

५० - एह मयु ब्रह्म । मममेग जाउ संपत्तेणं बोच्चस्स वगस्स वंच प्रज्जयणा पणत्ता,  
मरणा—(१) मुभा (२) निमुभा (३) रभा (४) निरंभा (५) मरणा ।

५१ - एह मयु ब्रह्म । मममेग जाउ संपत्तेणं बोच्चस्स वगस्स वंच प्रज्जयणा पणत्ता,  
मरणा—(१) मुभा (२) निमुभा (३) रभा (४) निरंभा (५) मरणा ।

५२ - एह मयु ब्रह्म । मममेग जाउ संपत्तेणं बोच्चस्स वगस्स वंच प्रज्जयणा पणत्ता,  
मरणा—(१) मुभा (२) निमुभा (३) रभा (४) निरंभा (५) मरणा ।

५३ - एह मयु ब्रह्म । मममेग जाउ संपत्तेणं बोच्चस्स वगस्स वंच प्रज्जयणा पणत्ता,  
मरणा—(१) मुभा (२) निमुभा (३) रभा (४) निरंभा (५) मरणा ।

५४ - एह मयु ब्रह्म । मममेग जाउ संपत्तेणं बोच्चस्स वगस्स वंच प्रज्जयणा पणत्ता,  
मरणा—(१) मुभा (२) निमुभा (३) रभा (४) निरंभा (५) मरणा ।



एवं तलु निक्षलेवधो अज्जभयणस्स ।

गुंभा देवी जब नाटपविधि दिखला कर चली गई तो गौतम स्वामी ने उसके पूर्वभव के विषय में पृच्छा की । भगवान् ने उत्तर दिया—आवस्ती नगरी थी । कोष्ठकनामक चेल्य था । जितघानु राजा था । आवस्ती में गुंभ नाम का गाथापति था । शुभन्नी उस की पत्नी थी । शुभा उनकी पुत्री का नाम था । दोष सर्व वृत्तान्त काली देवी के समान समझना चाहिए । विशेषता यह है—गुंभा देवी की साढ़े तीन पत्योपम की स्थिति—घायु है ।

हे जम्बू ! दूसरे वर्ग के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ है । उसका निक्षेप वह लेना चाहिए ।

## २-५ अज्जयत्ताणि [ २-३-४-५ वा अध्ययन ]

५०—एवं सेसा वि चत्तारि अज्जभयणा । साधरथोए । जवरं—भाया विपा सरिसनामया ।

दोष चार अध्ययन पूर्वोक्त प्रकार के ही हैं । इसमें नगरी का नाम आवस्ती कहना चाहिए और उन-उन देवियों (पूर्वभव की पुत्रियों) के समान उनके माता-पिता के नाम समझ लेने चाहिए । यथा-निगुंभा नामक पुत्री के पिता का नाम निगुभ और माता का नाम निगुभन्नी । रभा के पिता का नाम रभ और माता का नाम रभन्नी । निरभा के पिता निरभ गाथापति और माता निरभन्नी । मदना के पिता मदन और माता मदनन्नी ।

पूर्वभव में इन देवियों के ये नाम थे । इन्हीं नामों से देव भव में भी इनका उल्लेख किया गया है ।

## तइओ वग्गो-तृतीय वर्ग

पढमं अज्झयणं

प्रथम अध्ययन

५१—उबल्लेवओ तइयवग्गस्स ।

एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं तइयस्स वग्गस्स चउप्पण्ण अज्झयणा पण्णत्ता, तंजहा-पढमे अज्झयणे जाव चउप्पण्णइमे अज्झयणे ।

तीसरे वर्ग का उपोद्घात समझ लेना चाहिए, ग्रंथान् जम्बू स्वामी के प्रश्न से उसकी भूमिका जान लेना चाहिए ।

मुघर्मा स्वामी ने उत्तर दिया—हे जम्बू ! अथए भगवान् महावीर यावत् मुक्तिप्राप्त ने तीसरे वर्ग के चीपन अध्ययन कहे हैं । वे इस प्रकार—प्रथम अध्ययन यावत् चीपनवा अध्ययन ।

५२—जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपरोणं धम्मकहाणं तइयस्स वग्गस्स चउप्पण्णं अज्झयणा पण्णराग, पढमस्स णं भंते । अज्झयणस्स समणेणं जाव संपरोणं के अट्ठे पण्णरो ?

(प्रश्न) भगवन् ! यदि यावत् सिद्धिप्राप्त भगवान् महावीर ने धर्मकथा के तीसरे वर्ग के चीपन अध्ययन कहे हैं तो भगवन् ! प्रथम अध्ययन का अथए यावत् सिद्धिप्राप्त भगवान् ने क्या अर्थ कहा है ?

५३—एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे जयरे, गुणसीतएं चेइए, तामो समोत्तडे, परिता गिग्गया जाव पग्गुवात्तइ ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं इता<sup>१</sup> देवी धरणीए<sup>२</sup> रायहाणीए<sup>३</sup> इतावत्तंतए<sup>४</sup> भवणे इतसि<sup>५</sup> सीहात्तणत्ति, एवं कालीगमएणं जाव नट्टविहिं उवत्तंसेत्ता पडिग्गया ।

(उत्तर) हे जम्बू ! उस काल और उस समय मे राजगृह नगर था । गुणशील भंत्त था । भगवान् पथारे । परिपद निकली और भगवान् की उपासना करने लगी ।

उस काल और उस समय दत्ता देवी धरणीनामक राजधानी में इलावत्तमक भवन मे, इता नामक सिंहासन पर प्राचीन था । (उसने ध्वजिज्ञान ने भगवान् का पदार्पण जाना, भगवान् की सेवा मे उपस्थित हुई और) काली देवी के समान वह भी यावत् नाट्यविधि दिखनाकर चोट गई ।

५४—पुब्बभवपुच्छा ।

वाराणसीए जयरीए कामनहावणे चेइए, इत्ते गाहावई, इत्तिसिरो नारिया, इत्ता बारिया,

सेसं जहा कालीए । णवरं—धरणस्स अग्रमहिस्सिताए उचवाप्पो, सातिरेणं अट्टपत्तिघोवमं ठिई ।  
सेसं तहेव ।

इता देवी के चले जाने पर गौतम स्वामी ने उसका पूर्वभव पूछा ।

भगवान् ने उत्तर दिया—वाराणसी नगरी थी । उसमें काममहावननामक चैत्य था । इस  
सायापति था । उसको इसधी पत्नी थी । इला पुत्री थी । सेष वृत्तान्त काली देवी के समान । विशेष  
यह कि इला धार्वा घरीर त्याग कर धरणेन्द्र की भगमहिणी के रूप में उत्पन्न हुई । उसको प्रायु मर्द्ध  
वत्पौरव से कुछ अधिक है । सेष वृत्तान्त पूर्ववत् ।

५५—एवं तत्तु.....निश्सेषघो पडमअध्ययनस्स ।

यहाँ प्रथम अध्ययन का निक्षेप-उपसंहार कह लेना चाहिए ।

## २-६ अज्झयणाणि

(२-६ अध्ययन)

५६—एवं कमा सत्तेरा, सोदामिणी, इंडा, घणा, विज्जुया विः सत्त्वाप्पो एयाप्पो धरणस्स  
अग्रमहिस्सो ।

इसी क्रम में (१) सत्तेरा, (२) सोदामिनी (३) इन्दा (४) घना और (५) विज्जुता, इन पाँच  
देवियों के पाँच अध्ययन समझ लेने चाहिए । ये सब धरणेन्द्र की भगमहिण्या हैं ।

विशेषण—किन्ही-किन्ही प्रतियों में कमा (क्रमा) को पुषक् नाम माना गया है और 'घणा  
विज्जुया' इन दो के स्थानों पर 'घनविज्जुता' एक नाम मान कर पाँच की पूर्ति की गई है । एक प्रति  
में 'कमा' पुषक् और 'घणा' तथा 'विज्जुया' को भी पुषक् स्वीकार किया है, किन्तु ऐसा मानने पर  
एक नाम अधिक हो जाता है, जो समीचीन नहीं है ।

## ७-१२ अज्झयणाणि

(७-१२ अध्ययन)

५७—एवं ॥ अज्झयणा वेणुदेवस्स वि प्रवित्तेसिया नाणियत्त्वा ।

इसी प्रकार छह अध्ययन, बिना किसी विशेषता के वेणुदेव के भी कह लेने चाहिए ।

## १३-५४ अज्झयणाणि

(१३-५४ अध्ययन)

५८—एवं जाव [हरिस्स अग्निस्सिहास्स पुण्णस्स जलकंतेस्स अमियगतिस्स वेत्तंबरस्स] घोसस्स  
वि एए चेव छ-छ अज्झयणा ।

इसी प्रकार [हरि, अग्निशिख, पूर्ण, जलकान्त, अमितगति वेल्म्व और] घोष इन्द्र की  
पटरानियों के भी यही छह-छह अध्ययन कह लेने चाहिए ।



# चतुर्थो वगो—चतुर्थ वर्ग

पठनं प्रज्ञापनं

प्रथम अध्ययन

## रूपा

६०—चतुर्थस्त उच्यते ।

एवं ज्ञतु जंघू ! समनेनं जाव संपत्तेनं धम्मकहाण चतुर्थस्त वगस्त चतुष्पणं प्रजभयणा पणत्ता, संजहा-पठने प्रजदने जाव चतुष्पणइमे प्रजभयणे ।

प्रारम्भ मे चौथे वर्ग का उपोद्घात कह लेना चाहिए, अर्थात् जम्बू स्वामी ने प्रश्न किया— भगवन् ! श्रमण भगवान् महावीर ने यदि तीसरे वर्ग का यह पूर्वोक्त अर्थ कहा है तो चौथे वर्ग का प्रथम भगवान् ने क्या अर्थ कहा है ?

इस प्रश्न का उत्तर मुघर्मा स्वामी देते हैं—जम्बू ! यावत् सिद्धिप्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने धर्मरूपा के चौथे वर्ग के चौपन अध्ययन कहे हैं । वे इस प्रकार हैं प्रथम अध्ययन यावत् चौपनवा अध्ययन ।

६१—पठमस्त प्रजभयणस्त उच्यते ।

एवं ज्ञतु जंघू ! तेनं कालेनं तेनं समएणं रायगिहे समोत्तरनं जाव परित्ता पज्जुवासद ।

यहाँ प्रथम अध्ययन का उपोद्घात कह लेना चाहिए ।

मुघर्मा स्वामी ने उत्तर दिया—हे जम्बू ! उस काल और उस समय मे राजगृह नगर (गुण-धील वंश्य) मे भगवान् पधारें । नगर से परिपद निकली यावत् भगवान् की पशुपामना करने लगी ।

६२—तेनं कालेनं तेनं समएणं जया देवी, हयानंदा<sup>१</sup> रायहाणी, हयगवांसि ए भवणे, हयगसि सोहासणसि, जहा कासीए तहा; नवरं पुध्वभये चंपाए पुणमहे चेइए; हयगगाहावई, हयगसिरी भारिया, हया बारिया, सेसं तहेव । नवरं भूयाणव-अगमहिस्सिताए उववाओ, देसुणं पत्तिओवमं ठिई ।

निकलेवओ ।

उस काल और उस में रूपा देवी, रूपानन्दा राजधानी मे, रूपकावतसक भवन मे, रूपक नामक सिंहासन पर आसीन थी । इत्यादि वृत्तान्त काली देवी के समान समझना चाहिए । विशेषता इतनी है—पूर्वभव में चम्पा नगरी थी, पूर्णभद्र चैत्य था, वहाँ चम्पा नगरी मे रूपक नामक गाथापति था । रूपकभी उसकी भागी थी । रूपा उसकी पुत्री थी । दोष सब वृत्तान्त पूर्ववत् है । विशेषता यह कि

१. वाटान्तर—'भूयाणदा'—राजधानी का नाम 'भूतानन्दा' था ।

रूपा भूतानन्दनामक इन्द्र की अग्रमहिषी के रूप में जन्मी । उसकी स्थिति कुछ कम एक पत्नीपम की है ।

यहाँ चौथे वर्ग के प्रथम अध्ययन का निक्षेप समझ लेना चाहिए, अर्थात् यह कहना चाहिए कि श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धिप्राप्त ने चतुर्थ वर्ग के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ कहा है ।

### २-६ अध्ययन

६३—एवं सुरुया वि, रूपंसा वि, रूपगावई वि, रूपकंता वि रूपपमा वि ।

इसी प्रकार सुरुपा भी, रूपासा थी, रूपवती भी, रूपकान्ता भी और रूपप्रभा के विषय में भी समझ लेना चाहिए, अर्थात् इन पाँच देवियों के पाँच अध्ययन भी ऐसे ही जानने चाहिए ।

### ७-५४ अध्ययन

५४—एयामो चेव उत्तरिस्ताणं इवाणं भाणिघवामो जाव (येणुदात्तिस्स हरिस्सहस्स अग्निमावणस्स विसिट्ठस्स, जलपभस्स अमितवाहणस्स पभंजनस्स) महाघोसस्स ।

निक्खेयमो चतुस्यवगस्स ।

इसी प्रकार उत्तर दिशा के इन्द्रों की छह छह पटरानियों के छह-छह अध्ययन कह लेना चाहिए, अर्थात् येणुदात्ती, हरिस्सह अग्निमाणवह, विसिष्ट, जलप्रभ, अमितवाहन, प्रभजन तथा महाघोष की पटरानियों के छह-छह अध्ययन होते हैं । सब मिलकर चौपन अध्ययन हो जाते हैं ।

यहाँ चौथे वर्ग का निक्षेप-उपसंहार पूर्ववत् कह लेना चाहिए ।



## पंचमो वर्गो-पंचम वर्ग

प्रथम अध्ययन

### कमला

६५—पंचमवर्गस्त उक्त्येषाम् ।

एवं सन्तु जन्तु ! माष वरीसं प्रज्जयणा पणरा, तंजहा—

कमला कमलप्रभा खेव, उत्पला य मुदसणा ।  
 कववई बहुक्खा, मुदवा मुमणा वि य ॥ १ ॥  
 पुण्णा यहुपुरिया खेव, उत्तमा भारिया वि य ।  
 पउमा यमुमतो खेव, कणया कणगप्पभा ॥ २ ॥  
 खहेत्ता केउमई खेव, बहरसेणा रहुप्पिया ।  
 रोहिणी नयमिया खेव, हिरो पुप्फवती ति य ॥ ३ ॥  
 भुयणा भुयगवई खेव, महाकण्ठाप्पराइया ।  
 मुघोत्ता विमला खेव, मुत्तरा य सरस्सई ॥ ४ ॥

पंचम वर्ग का उपोद्घात पूर्ववत् कहना चाहिए ।

मुघर्मा स्वामी ने उत्तर दिया—जम्बू ! पाषवे वर्ग में बत्तीस अध्ययन हैं । उनके नाम ये—(१) कमला देवी (२) कमलप्रभा देवी (३) उत्पला (४) मुदसना (५) रूपवती (६) बहुक्खा (७) मुक्खा (८) मुभगा (९) पूर्णा (१०) बहुपुत्रिका (११) उत्तमा (१२) भारिका (१३) पद्मा (१४) वसुमती (१५) कनका (१६) कनकप्रभा (१७) धवतसा (१८) केतुमती (१९) वज्रसेना (२०) रतिप्रिया (२१) रोहिणी (२२) नवमिका (२३) ह्री (२४) पुष्पवती (२५) मृजगा (२६) मृजगवती (२७) महाकण्ठा (२८) अपराजिता (२९) मुघोपा (३०) विमला (३१) सुस्वरा (३२) सरस्वती ।

इन बत्तीस देवियों के वर्णन से मन्वन्त बत्तीस अध्ययन पंचम वर्ग में जानने चाहिए ।

प्रथम अध्ययन

६६—उक्त्येषाम् पदमज्जयणस्त ।

एवं सन्तु जन्तु ! तेणं कासेणं तेणं समएणं रायगिहे समोसरणं जाव परित्ता पज्जुवासइ ।

प्रथम अध्ययन का उपोद्घात कहना चाहिए, यथा जम्बू स्वामी ने प्रश्न किया—भगवन् ! एण भगवान् महावीर ने पाँचवें वर्ग के प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ कहा है ?

तब मुधर्मा स्वामी ने उत्तर दिया—जम्बू ! उस काल श्रीर उस समय राजगृह नगर था । भवान् महावीर वही पधारो । यावत् परिपद् निकलकर भगवान् की पयुपासना करने लगे ।

६७—तेणं कालेणं तेणं समएणं कमला देवी कमलाए रायहाणोए कमलवड्डेसए भवणे वलंसि सोहासणंसि, सेसं जहा कालीए तहेव । नवरं—पुण्वभवे नागपुरे नयरे सहसंबवणे उजाणे, कमलस्स गाहावड्डस्स कमलसिरीए भारियाए कमला दारिया पासस्स अरहमो वंतिए षण्णंता, कालस्स पिसायकुमारिवस्स भगमहिस्सो, अट्ठपत्तिप्रोवमं ठिई ।

उस काल श्रीर उस समय कमला देवी कमलानामक राजधानी में, कमलावतसक भवन में, कमलनामक सिंहासन पर आसीन थी । आने की शेष समस्त घटना काली देवी के अध्ययन के अनुसार ही जानना चाहिए । काली देवी से विशेषता मात्र यह है—पूर्वभय में कमला देवी नागपुर में थी । वही सहस्राववननामक चैत्य था । कमल गाथापति था । कमलश्री उसकी पत्नी थी । श्रीर कमला पुत्री थी । कमला अरहन्त पार्श्व के निकट दीक्षित हो गई । शेष वृत्तान्त पूर्ववत् जानना चाहिए यावत् वह कालनामक पिशाचेन्द्र की भगमहिणी के रूप में जन्मी । उसकी मायु वहाँ में पत्योपम की है ।

### शेष अध्ययन

६८—एवं सेता वि अउभयणा दाहिणित्थानं धाणमंतरिदानं भाणियव्यामो । तयामो नागपुरे सहसंबवणे उजाणे, माया-पिया घूया सरिसनामया, ठिई अट्ठपत्तिप्रोवमं ।

इसी प्रकार शेष एकत्तीस अध्ययन दक्षिण दिशा के बाणव्यन्तर इन्द्रो के कह लेने चाहिए । कमलप्रभा आदि ३१ कन्याओं ने पूर्वभय में नागपुर में जन्म लिया था । वही सहस्राववन उद्यान । सब के माता-पिता के नाम कन्याओं के नाम के समान ही हैं । देवीभव में स्थिति सब की आर्य-पत्योपम की कहनी चाहिए ।



## छठो वर्गो-षष्ठ वर्ग

१-३२ अध्यायन

१६—छठो वि वर्गो पंचमवर्गसरितो । नवर महाकालिदाणं उदारित्वाण इवाणं  
अणमहितीषो ।

पुष्पभरे सागेयनघरे, उदारकुन्द-उद्वज्जने, माया-पिता यूया सरिमयाभया । सेस' तं येव ।

छठा वर्ग भी पाँचवें वर्ग के समान है । विशेषता इसनी ही है कि ये सब कुमारिया महाकालिदास प्रादि उदार दिया के भाठ इन्डो की बत्तीष अणमहिदिया हुई ।

पुष्पभर में सब सांकेतनगर में उत्पन्न हुई । उत्तरकुन्दनामक उद्यान उस नगर में था । इन कुमारियों के नाम के समान ही उनके माता-पिता के नाम थे । शेष सब पूर्ववत् ।

---

## सत्तमो वग्गो—सप्तम वर्ग

१-४ अध्यायन

७०—सत्तामस्स उवस्सेवओ ।

एवं खलु जंझू ! जाव चत्तारि अग्गभयणा पण्णत्ता, तज्जहा—सूरप्पमा, आयाया, अच्चिमात्तो, पभंकरा ।

सातवें वर्ग का उल्लेख कहना चाहिए—जम्भू स्वामी ने प्रश्न किया—भगवन् ! यदि श्रमण भगवान् महावीर ने छठे वर्ग का यह श्रयं कहा तो सातवें वर्ग का क्या श्रयं कहा है ?

उत्तर में सुधर्मा स्वामी ने कहा—हे जम्भू ! भगवान् महावीर ने सप्तम वर्ग के चार अध्यायन प्रज्ञप्त किए हैं । उनके नाम ये हैं—(१) सूर्यप्रभा (२) आतपा (३) अचिमात्तो और (४) पभंकरा ।

७१—पढमउग्गयणस्स उवस्सेवओ ।

एवं खलु जंझू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायणिहे समोत्तरणं जाव परिसा पज्जुवात्तइ ।

यहाँ प्रथम अध्यायन का उपोद्घात कहना चाहिए ।

सुधर्मा स्वामी ने उत्तर दिया—जम्भू ! उस काल और उस समय राजगृह में भगवान् पधारो यावत् परिपद् उनकी उपासना करने लगे ।

७२—तेणं कालेणं तेणं समएणं सूरप्पभा बेवी सूरंति विमाणंसि सूरप्पभंसि सीहासणंसि, सेसं जहा कालीए तहा, नयरं पुब्बभवो अरक्खुरीए नयरीए सूरप्पभस्स गाहावइस्स सूरत्तिरीए भारियाए सूरण्णमा दारिया । सूरस्स अग्गमहिंसो, ठिई अद्धपत्तिओवमं पंचाहि वात्तसएहि अग्गभियं । सेसं जहा कालीए । एवं सेसामो वि तव्वाओ अरक्खुरीए नयरीए ।

सत्तामो यम्मो समारो

उस काल और उस समय सूर्य (सूर) प्रभादेवी सूर्य विमान में सूर्यप्रभ सिंहासन पर आसीन थी । शेष समग्र कथानक कालीदेवी के समान । विशेष बात इतनी कि—पूर्वभव में अरक्खुरी नगरी में सूर्याभ गाथापति की सूर्यश्री भार्या थी । उनको सूर्यप्रभा नामक पत्नी थी । मन्त में मरण के पश्चात् वह सूर्यनामक ज्योतिष्क-इन्द्र की भयमहिणी हुई । उसकी स्थिति वही पाँच सौ वर्ष अधिक आधे पत्न्योपम की है । शेष सर्व वृत्तान्त कालीदेवी के समान जानना चाहिए ।

इसी प्रकार शेष सब—तीनों देवियों का वृत्तान्त जानना चाहिए । वे भी (पूर्वभव में) अरक्खुरी नगरी में उत्पन्न हुई थी ।

॥ गातवा वग्गं समाप्त ॥

## अट्ठमो वग्गो—अष्टम वर्ग

१-४ अध्यायन

७३—अट्ठपसस उवसेवओ ।

एवं सत्तु जंजु ! जाव चत्थारि अग्गमयणा पण्णसा, तंजहा—(१) चंदप्पहा (२) दोसिणाभा (३) अचिमातो (४) पभंकरा ।

आठवें वर्ग का उगोदपाठ कह लेना चाहिए, घण्टात् जम्बू स्वामी ने सुधर्मा स्वामी से प्रश्न किया कि भ्रमण भगवान् महावीर ने साठवें वर्ग का यह धर्म प्रकृषित किया है तो आठवें वर्ग का क्या धर्म कहा है ?

सुधर्मा स्वामी ने उत्तर दिया—जम्बू ! भ्रमण भगवान् ने आठवें वर्ग के चार अध्यायन प्रकृषित किए हैं । वे इस प्रकार हैं—(१) चन्द्रप्रभा (२) दोसिणाभा [ज्योत्स्नाभा] (३) अचिमातो (४) प्रभंकरा ।

७४—पट्टमग्गमयणसस उवसेवओ ।

एवं सत्तु जंजु ! तेणं कालेणं तेण समएणं राघणिहे समोसरणं, जाव परिसा पग्गुवासाह ।

प्रथम अध्यायन का उगोदपाठ पूर्ववत् कह लेना चाहिए । सुधर्मा स्वामी ने कहा—जम्बू ! इस काल घोर उग समय में भगवान् राजगृह नगर में पधारें यावत् परिषद् उनकी पटु पास्ति देने लगी ।

७५—तेणं कालेणं तेणं समएणं चंदप्पमा देवी चंदप्पभंसि विमाणंसि चंदप्पभंसि सीहासणसि, तेमं जहा कात्तीए । नवरं पुम्बभये मत्तुराए नयरोए चंदवड्ढेसए उज्जाने, चंदप्पभे गाहावई, चंदसिरी शरिया, चंदप्पभा वारिया, चंदसस अग्गमहिस्सी, ठिई अट्ठपसिओवमं पण्णासाए वाससाहस्सेहि अभहिय ।

एव सेसाओ वि मत्तुराए नयरोए. माया-पियरो वि पूया-सरिसणामा ।

अट्ठमो वग्गो समसो ।

उस काल घोर उग समय में चन्द्रप्रभा देवी, चन्द्रप्रभ विमान में, चन्द्रप्रभ सिंहासन पर रोसीन थी । शेष वर्णन कालीदेवी के समान ही है । विशेषता यह—पूर्वभूव में वह मथुरा नगरी की निवासिनी थी । वहाँ चन्द्रावर्तसक उद्यान था । वहाँ चन्द्रप्रभ गद्यापति रहता था । चन्द्रथी उसकी स्त्री थी । चन्द्रप्रभा उन की पुत्री थी । वह (भ्रमते भव मे) चन्द्रनामक ज्योतिष्क इन्द्र की अग्र-सहिता हुई । उसकी आयु पचास हजार वर्ष अधिक धर्म पत्योपम की है । शेष सब काली देवी के समान ।

॥ आठवाँ वर्ग समाप्त ॥

## सत्तमो वग्गो—सप्तम वर्ग

१-४ अध्ययन

७०—सत्तमस्स उक्खेवओ ।

एवं खलु जंझु ! जाय चत्तारि अग्गयणा पण्णत्ता, तज्जहा—सूरप्पमा, आयाया, अच्चिमात्तो, पभंकरा ।

सातवें वर्ग का उल्लेख कहना चाहिए—जम्बू स्वामी ने प्रश्न किया—भगवन् ! यदि श्रमण भगवान् महावीर ने छोटे वर्ग का यह अर्थ कहा तो सातवें वर्ग का क्या अर्थ कहा है ?

उत्तर में सुधर्मा स्वामी ने कहा—हे जम्बू ! भगवान् महावीर ने सप्तम वर्ग के चार अध्ययन प्रज्ञप्त किए हैं । उनके नाम ये हैं—(१) सूर्यप्रभा (२) घातपा (३) अचिमात्तो और (४) प्रभकरा ।

७१—पढमउग्गयणस्स उक्खेवओ ।

एवं खलु जंझु ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे समोसरणं जाव परिसा पज्जुयात्तइ ।

यहाँ प्रथम अध्ययन का उपोद्घात कहना चाहिए ।

सुधर्मा स्वामी ने उत्तर दिया—जम्बू ! उस काल और उस समय राजगृह में भगवान् पधारे यावत् परिपद् उनकी उपासना करने लगी ।

७२—तेणं कालेणं तेणं समएणं सूरप्पभा देवी सूरंसि विमाणंसि सूरप्पभंसि सीहात्तणंसि, सेत्तं जहा कालीए तहा, नयरं पुब्बभवो अरक्खुरीए नयरीए सूरप्पभस्स गाहावइस्स सूरत्तिरीए भारियाए सूरप्पमा बारिया । सूरस्स अग्गमहिंसो, ठिई अट्ठपत्तिओवमं पंचाहिं यासत्तएहि अग्गहिंयं । सेत्तं जहा कालीए । एवं सेत्ताओ वि सव्वाओ अरक्खुरीए नयरीए ।

सत्तमो वग्गो समारो

उस काल और उस समय सूर्य (सूर) प्रभादेवी सूर्य विमान में सूर्यप्रभ सिंहासन पर आसीन थी । शेष समग्र कथानक कालीदेवी के समान । विशेष बात इतनी कि—पूर्वभव में अरक्खुरी नगरी में सूर्याभि गायोपति की सूर्यश्री भार्या थी । उनकी सूर्यप्रभा नामक पत्नी थी । मृत्यु में मरण के पश्चात् वह सूर्यनामक ज्योतिष्क-इन्द्र की मग्नमहिषी हुई । उसकी स्थिति वही पाँच सौ वर्ष अधिक प्राये पत्न्योपम की है । शेष सर्व वृत्तान्त कालीदेवी के समान जानना चाहिए ।

इसी प्रकार शेष सब—तीनों देवियों का वृत्तान्त जानना चाहिए । वे भी (पूर्वभव में) अरक्खुरी नगरी में उत्पन्न हुई थी ।

॥ मातवा वर्ग समाप्त ॥

## अष्टमो वगो-अष्टम वर्ग

१-४ अध्ययन

७३-अष्टमस्त उचसेवओ ।

एवं समु जंयु । जाव चराारि अग्भ्यणा पण्णसा, तंजहा—(१) चंदप्पहा (२) दोसिणाभा  
(३) चचिमासी (४) पभंकरा ।

घाठवें वर्ग का उपोद्घात कह लेना चाहिए, अर्थात् जम्बू स्वामी ने मुघर्मा स्वामी से प्रश्न  
या कि भ्रमण भगवान् महावीर ने सातवें वर्ग का यह अर्थ प्ररूपित किया है तो घाठवें वर्ग का  
अर्थ क्या है ?

मुघर्मा स्वामी ने उत्तर दिया—जम्बू । भ्रमण भगवान् ने घाठवें वर्ग के चार अध्ययन प्ररूपित  
किए हैं । वे इस प्रकार हैं—(१) चन्द्रप्रभा (२) दोसिणाभा [ज्योत्स्नाभा] (३) चचिमा  
(४) प्रभकरा ।

७४-पठमग्भ्यणस्त उचसेवओ ।

एवं समु जंयु ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायणिहे समोसरणं, जाव परिता पग्गुवात्तइ ।

प्रथम अध्ययन का उपोद्घात पूर्ववत् कह लेना चाहिए । मुघर्मा स्वामी ने कहा—जम्बू  
उस काल धीर उस समय में भगवान् राजगृह नगर में प्यारे यावत् परिपक्व उनकी पयुं पा  
करने लगे ।

७५-तेणं कालेणं तेणं समएणं चंदप्पमा देवी चंदप्पभसि विमाणंसि चंदप्पभसि सीहासण  
संभं जहा कालोए । अवरं पुब्बभवे महुराए जयरोए चंदवडोए उज्जाले, चंदप्पमे गाहावई, चचि  
मारिया, चंदप्पभा बारिया, चंदस्त अणमहिस्सो, ठिई मद्धपलिओवमं पण्णसाए चात्ताह  
मग्गहिंयं ।

एव सेसाओ ॥ महुराए जयरोए. माया-पियरो वि धूया-सरित्तणामा ।

अष्टमो वगो समसो ।

उस काल धीर उस समय में चन्द्रप्रभा देवी, चन्द्रप्रभ विमान में, चन्द्रप्रभ सिंहास  
प्राचीन थी । शेष अर्धेण कालीदेवी के समान ही है । विरोपता यह—पूर्वभव में वह मधुरा नगर  
निवासिनी थी । वहाँ चन्द्रावतंसक उद्यान था । वहाँ चन्द्रप्रभ गायापति रहता था । चन्द्रधरी र  
पत्नी थी । चन्द्रप्रभा उन की पुत्री थी । वह (भगले भव में) चन्द्रनामक ज्योतिष्क इन्द्र की  
महिषी हुई । उसकी आयु पचास हजार वर्ष अधिक अर्धे पत्योपम की है । शेष सब काल  
के समान ।

# नवमो वगो-नौवां वर्ग

१-८ अध्ययन

७६—नवमस्त उक्तेवगो ।

एवं खलु जंबू ! जाव अट्ठ अज्झयणा पण्णात्ता, तंजहा—(१) पउमा (२) सिवा (३) सती (४) अंजू (५) रोहिणी (६) नवमिया (७) अचला (८) अच्यरा ।

नौवें वर्ग का उपोद्घात । मुधर्मा स्वामी ने उत्तर दिया—हे जम्बू ! यावत् भ्रमण भगवान् महावीर ने नौवें वर्ग के आठ अध्ययन कहे हैं । वे इस प्रकार हैं—(१) पउमा (२) सिवा (३) सती (४) अंजू (५) रोहिणी (६) नवमिका (७) अचला और (८) अच्यरा ।

७७—पठमज्झयणस्त उक्तेवगो ।

एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे समोसरणं । जाव परिता पज्जुयासइ ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं पउमावई वेवी सोहम्मे कप्पे पउमवडंसए विमाणे सभाए सुहम्माए, पउमंसि सोहासणंसि, जहा कालीए ।

एवं अट्ठ वि अज्झयणा काली-भमएणं नायक्का । नवरं-सावरीए दो जणीओ, हस्तिणाउरे दो जणीओ, कपिल्लणुरे दो जणीओ, सागेयनयरे दो जणीओ, पउमे पिघरो, विजया मायराओ । सव्वाओ वि पासस्त अंतिए पव्वइयाओ, सब्बस्त अग्गमहिसीओ, ठिई सत्त पत्तिओवमाई, महा-विवेहे वासे अंतं काहिंति । नवमो वगो समत्तो ।

प्रथम अध्ययन का उद्घोष कह लेना चाहिए ।

मुधर्मा स्वामी ने कहा—जम्बू ! उस काल और उस समय स्वामी-भगवान् महावीर राजगृह में पधारे । यावत् जनमूह उनकी पशुपासना करने लगा ।

उस काल और उस समय पचावती देवी, सौधर्म कल्प में, पचावतसक विमान में, मुधर्मा सभा में, पचनामक सिंहासन पर आसीन थी । शेष वृत्तान्त काली देवी के समान जानना चाहिए ।

कालीदेवी के गम के अनुसार आठों अध्ययन इसी प्रकार समझ लेने चाहिए । काली-अध्ययन से जो विशेषता है वह इस प्रकार है—पूर्वभूव में दो जनी आबस्ती में, दो जनी हस्तिनापुर में दो जनी काम्पिल्यपुर में और दो जनी साकेतनगर में उत्पन्न हुई थी । सब के पिता का नाम पच और माता का नाम विजया या । सभी पार्श्व भरहूत के निकट दीक्षित हुई थी । सभी शक्रेन्द्र की अग्रमहिषिणा हुईं । उनकी स्थिति सात पत्न्योपम की है । सभी यावत् महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होकर (सम का पालन करके) यावत् समस्त दु.सों का अन्त करेंगी - मुक्ति प्राप्त करेंगी ।

॥ नौवां वर्ग समाप्त ॥

# दसमौ वर्गो-दसवां वर्ग

१-८ प्रथमयन

७८-दसमस्त उबसेवघो ।

एवं लतु जंझू ! जाव घट्ट भज्भयणा पणसा, तजहा-

कह्हा य कह्हराई, रामा तह रामरक्षिया वसु या ।

वसुगुप्ता वसुमित्रा, वसुंधरा देव ईसाणे ॥ १ ॥

दसवें वर्ग का उपोद्घात । सुधर्मा स्वामी का उत्तर-जम्बू ! यावत् सिद्धिप्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने दसवें वर्ग के आठ प्रथमयन प्रकृषित किए हैं । वे इस प्रकार-( १ ) कृष्णा (२) कृष्णराजि (३) रामा (४) रामरक्षिता (५) वसु (६) वसुगुप्ता (७) वसुमित्रा और (८) वसुंधरा । ये आठ ईशानेन्द्र की आठ प्रथमहियिया हैं ।

७९-पडमभयणस्त उबसेवघो ।

एवं लतु जंझू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे समोसरणं, जाव परिसा पज्जुवासइ ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं कह्हा देवो ईसाणे कप्पे कह्भवसेए विमाणे, सभाए सुहम्माए, कह्हुंति सीहासनंति, सेसं जहा कालीए ।

एवं घट्ट वि भज्भयणा कासीगमएणं जेयग्घा । जवरं-पुबभवे वाणारसीए जयरीए वो जणीओ, रायगिहे जयरे वो जणीओ, सावरोए जयरीए वो जणीओ, कोसंबीए जयरीए वो जणीओ । रामे पिया, धम्मा माया । सग्घाओ वि पासस्त भरहओ धंतिए पवइयाओ । पुक्कळुसाए भज्जाए सिस्सिणीयराए, ईसाणस्त अगमहिओओ, ठिई जव पतिओवमाई, महाविदेहे वासे सिग्गिहंति, बुग्गिहंति, मुक्किहंति, सम्बुधत्ताणं अंतं कांतिहंति ।

एवं लतु जंझू ! निबलेवओ वसमवगस्त ।

दसमो वर्गो समतो ।

प्रथम प्रथमयन का उपोद्घात कहना चाहिए, अर्थात् जम्बू स्वामी ने प्रश्न किया कि-भगवन् ! यदि श्रमण भगवान् महावीर ने नौवें वर्ग का यह पूर्वोक्त प्रश्न कहा है तो भगवान् ने दसवें वर्ग का क्या प्रश्न कहा है ?

इस प्रश्न के उत्तर में सुधर्मा स्वामी ने कहा-जम्बू ! उस काल और उस समय में स्वामी राजगृह नगर में पधारे, यावत् परिपद् ने उपा ।

उस काल और उस समय कृष्णा देवी सुधर्मा सभा में, कृष्ण सिंहासन पर आसीन थी । मे, जणा उस काल और उस समय कृष्णा देवी सुधर्मा सभा में, कृष्ण सिंहासन पर आसीन थी । मे, जणा देवी भगवान् का राजगृह में पदापण जानकर सेवा में उपस्थित हुई । काला ६९१ ५ ५मान





## उवरण-गाहाओ

टीकाकार द्वारा प्रत्येक अध्ययन के अन्त में विभिन्नसंस्कृत गाथाएँ उद्धृत की गई हैं, जिन्हें उपनयन-गाथाओं के नाम से अभिहित किया गया है। ये गाथाएँ मूल मूल का अर्थ नहीं हैं, किसी स्थिर आचार्य द्वारा रचित हैं। अध्ययन के मूल भाव को स्पष्ट करने वाली होने में उन्हें परिशिष्ट के रूप में यहाँ उद्धृत किया जा रहा है।

### प्रथम अध्ययन

- १—महुरोहि निउर्णोहि वयर्णोहि चोयर्णोहि आयरिया ।  
तोसे कहिचि खलिए, जह मेहमुनि महाबोरो ॥

किसी प्रसंग पर दिव्य संयम से स्तुतित हो जाय तो आचार्य उसे मधुर तथा निपुण वचनों से संयम में स्थिरता के लिए प्रेरित करते हैं। जैसे भगवान् महावीर ने भेष मुनि को स्थिर किया।

### द्वितीय अध्ययन

- २—सिबसाहणेसु आहार-विरहिणो ज न बट्टए बेहो ।  
तम्हा धण्णोध्य विजयं साह सं तेण पोसेउजा ॥

मोक्ष के साधनों में आहार के बिना यह देह समर्थ नहीं हो सकता, अतएव साधु आहार से और का उसी प्रकार पोषण करे जैसे धन्य मार्चवाह ने विजय चोर का (सिद्धमान अनुराग न होने भी) पोषण किया।

### तृतीय अध्ययन

- १—जिणवर-भासिय-भावेसु, भावसत्त्वेसु भावणो महमं ।  
नो कुज्जा सबेहं, संबेहोऽणत्तयेहं त्ति ॥  
२—णिस्संबेहत्तं पुण गुणहेउं जं तओ तयं कउज्ज ।  
एत्थं वो सेट्ठिसुया, अंडयगाहो उदाहरणं ॥  
३—कयइ महवुब्बत्तेणं, तच्चिहापरियविरहणो वा वि ।  
नेयमहणत्ताणं, नाणावरणोदणं य ॥  
४—हेऊदाहरणासंभवे य, सइ सुट्ठु जं न बुज्झिज्जा ।  
सध्वण्णुमयमयितहं, तहावि इइ चितए महमं ॥  
५—अणुवकयपराणुमह-परायणा ज जिणा जगप्पवरा ।  
जिय-राय-दोस-मोहा, य, जन्नहावाइणो तेणं ॥

ह अन्तर्धर्म का कारण है, अतः बुद्धिमान् पुरुष बीतराग जिनेश्वर द्वारा भाषित  
—भाषा में सन्देह न करे ।

सन्देहता—प्राप्त्यन्तर्धर्मों पर श्रद्धा, करने योग्य है । इस विषय में मयूरी के अंश  
दो श्रेष्ठपुत्र (जिनदत्तपुत्र और सागरदत्तपुत्र) उदाहरण हैं ।

बुद्धि की दुर्बलता, तज्ज आचार्य का संयोग न मिलना, ज्ञेय विषय की प्रतिगहनता,  
न का उदय प्रथवा हेतु एवं उदाहरण का अभाव होने से कोई तत्त्व ठीक तरह से  
तो भी सर्वज्ञ का मत (मिद्धान्त) अवितथ (असत्य नहीं) है, विवेकी पुरुष को  
जा चाहिए । तथा—

शिवर देव दूसरों से अनुपकृत होकर भी परोपकारपरायण, राग, द्वेष और मोह-  
है, अतः अन्धविश्वास हो ही नहीं सकते ।

### चतुर्थ अध्याय

१—विशेष्यं हं विद्याहं, संभंता राग-द्वेष-निष्कृता ।

पावन्ति निन्द्युहमुहं, कुम्भस्य मयंगवहसोवहं ॥

२—प्रवरे उ अणायपरंपराउ पावन्ति पावकभयसा ।

संसार-सागरगमा गोमाउमसिय-कुम्भो व्व ॥

ये इन्द्रियों को रोकते हुए अर्थात् इन्द्रिय-विषयों में प्रागति न करने वाले, राग-द्वेष  
मुक्ति का मुग प्राप्त करते हैं, जंगे कुम्भ (कण्डू) ने मृगमयातीर तट में पड़कर  
। इसके विपरीत पापकर्म के बन्धीभूत प्राणी, समार-सागर में गोते धाते हुए  
न कुम्भ की तरह अनेक अन्ध-परम्पराओं को प्राप्त करने दे ।

### पंचम अध्याय

१ - निजलिपमं व्रमकञ्जा वि होइउं उजमति जइ पच्छा ।

मवेगायो तो सेजउव्व याराहुया होति ॥

पाराधना में निहित हो जाने पर भी यदि कोई गा । क बाद में मंगल उत्पन्न हो जाने  
हो जाने है तो वे मंगल राशियों के समान पाराधक होने दे ।

### षष्ठ अध्याय

१—अहं विज्जेवन्निमं मयं नुं व्व मया वयह पव ।

अनव-उप-कर्मणुक्क, जोवा ववन्नि वव्वरव । ॥

२—अहं विज्जेवन्निमं मयं नुं व्व मया वयह पव ।

अहं नुं व्व मयं नुं व्व मया वयह पव । ॥

१—यं मिट्टी के लेप से भारी होकर मूखा जल के तल में चला जाता है, इसी प्रकार भालव शाल उनावित कर्मा से भारी हो कर जीव पथोगीन में जाता है ।

२—यं यही मूखा मिट्टी के लेप से विमुक्त होने पर, लु होकर, जल के ऊपर स्थित होता है, यं ही कर्म से विमुक्त जीव साक के धम-ऊरी भाग में प्रतिष्ठित-विराजमान हो जाते हैं ।

### सप्तम अध्यायन

- १—जह सेट्टो तह गुदणो, जह भाइजणो तहा समयस घो ।  
जह बहूया तह भरवा, जह सालिकणा तह क्याइ ॥
- २—जह सा उग्गिअणामा, उग्गिअणालो जहत्थमभिहाणा ।  
पेसण-मारित्तेणं, धम्मंउरुअणखणी जाया ॥
- ३—तह भम्बो जो कोई, संपत्तमणं गुदपिडिणाइ ।  
पडिअजिउं समुअइ, महववाइं महामोहा ॥
- ४—सो इह चेव भवस्मि, जणण धिक्कारभायणं होइ ।  
परलोण उ दुहत्तो, नानाजोणीसु संचरइ ॥
- ५—जह वा सा भोगवती, जहत्थनामोवभुससालिकणा ।  
पेसणवित्तकारित्तेण पत्ता उरुं चेव ॥
- ६—तह जो महववाइं उवभंतुइ जीवियति पालितो ।  
आहाराइसु सत्तो, चत्तो सिवसाहणिच्छाए ॥
- ७—सो इथ जहिउयाए, पावइ आहारमाइ तिगिति ।  
विउत्ताण नाइपुअओ परलोपस्मि उहो चेव ॥
- ८—जइ वा रविलय बहूया, रविलयसालीकणा जहत्थरहा ।  
परिजणमण्ण जाया, भोगमुहाइं च संपत्ता ॥
- ९—तह जो जीवो सम्मं पडियजिउज्जा महववए पंच ।  
पालेइ निरइयारे, पमायत्तेसंयि वरुज्जंतो ॥
- १०—सो अण्हिएवकरई, इहलोयमि वि विउहि पण्यपघो ।  
एगंतमुहो जायइ, परस्मि भोवत्तं पि पावेइ ॥
- ११—जह रोहिणी उ मुण्हा, रोवियसाली जहत्थमभिहाणा ।  
वज्जुत्ता सालिकणे पत्ता सव्वस्म सामितं ॥
- १२—तह जो भम्बो पाविअ क्याइं पालेइ अण्णणा सम्मं ।  
अण्णेसि पि भयवाणं वेइ अण्णेसि हियहेउं ॥
- १३—सो इह संपपहाणो, जुगप्पहाणेत्ति न्हइ संसदं ।  
अण्ण-परेत्ति कल्ताणकारओ मोयमपहुअ ॥

१४—तिरयस्स पुत्तिकारो, अवलोचणओ कुत्तिरियमाईणं ।  
विउत्तनर-सेविप-कमो, व्वमेण सिद्धिं पि पावेइ ॥

ल्टी (धन्य मयथंवाह) के स्थान पर गुरु, ज्ञातिजनों के स्थान पर भ्रमणसमय, वदुग्रों  
प्राणी और शालिकणों के स्थान पर महाव्रत समझने चाहिए ।  
उज्जिता वह मयथं नाम वाली थी और शालि के दानों को फेंक देने के कारण  
से असुर्य दुःखों को प्राप्त हुई ।  
ही जो भव्य जीव गुरु द्वारा प्रदत्त महाव्रतों को मध के समझ स्वीकार करें,  
भूत होकर स्वाग देता है—

इस भव में जनना के तिरस्कार का पात्र होता है और परलोक में भी दुःख से  
नेक योनियों में भ्रमण करता है ।

मयथं नाम वाली भोगवती वह शालिकणों को खा गई, वह भी विमेष प्रकार के  
के कारण दुःख को ही प्राप्त हुई ।

ही जो महाव्रतों को जीविका का साधन मान कर पालता एव उनका उसी प्रकार  
है, आहारादि में आसक्त होता है और ये महाव्रत मुक्ति के साधन हैं, इस भावना से

केवल साधुलिङ्गधारी व्वेष्ट आहारादि प्राप्त करता है पर विद्वानों का पूजनीय  
लोक में भी दुःखी होता है ।

इस प्रकार मयथं नामवाली वह रक्षिता ने शालिकणों की रक्षा की और पारिवारिक  
है । उसने भोग-भुक्तों को भी प्राप्त किया ।

ही प्रकार जो जीव महाव्रतों को स्वीकार करके लेश मात्र भी प्रमाद नहीं करता इसा  
पर पालन करता है—

वह एक मात्र आरमहित में आनन्द मानने वाला इस लोक में विद्वानों द्वारा पूजित  
में मुक्त होता है । परम में मोक्ष भी प्राप्त करता है ।

जैसे मयथं नाम वाली रोहिणी नामक पुनवधू शालि के रोप द्वारा, उनकी वृद्धि करके  
स्वामिनी बनी—

उसी प्रकार जो भव्य प्राणी महाव्रतों को प्राप्त करके स्वयं उनका सम्यक् प्रकार से  
और दूसरे भी भव्य प्राणियों को उनके हित के लिए प्रदान करता है ।

वह इस भव में गौतम स्वामी के समान मधप्रधान एव युगप्रधान पदवी को प्राप्त  
मपना और दूसरों का कल्याण करने वाला होता है ।

वह तीर्थ का धन्युदय करने वाला, कुतर्कियों का निराकरण करने वाला और  
पूजित होकर क्रमशः सिद्धि को भी प्राप्त करता है ।

### अष्टम अध्याय

१—उगम-तव-संजमवमो पविद्वलताहयस्स वि जियस्स ।

पम्मवित्तएवि मुदुमावि, होइ माया अणत्थोय ॥

२—जह मल्लिस्त महाबलभयम्भि तित्थगरनामबंधे वि ।  
तवविसय-मेवमाया जाया युवद्वतहेवति ॥

१—उग्रतप तथा सयमवान् एवं उत्कृष्ट फल के साधक जीव द्वारा की गई सूक्ष्म और वषपक माया भी धनयं का कारण होती है, यथा—

२—मल्ली कुमारी की महाबल के भव मे तीर्थकरनामकर्म का बंध होने पर भी तप के लय मे की गई थोड़ी-सी माया भी युवतीत्व (स्त्रीत्व) का कारण बन गई ।

### नीचां अध्ययन

१—जह रयणदीववेवो, तह एत्तां अविरेई महापावा ।

जह लाहुर्यो वणिया, तह सुहकामा इहं जीवा ॥

२—जह तेहि भोएहि, बिट्ठो आपायमंडले पुरिसो ।

संसारदुबलभीया, पासंति तहेव धम्मकहं ॥

३—जह तेण तेसि कहिया, देवी दुबलाण कारणं धोरं ।

तत्तो च्चिय नित्यारो, सेलयजक्खामो नग्नत्तो ॥

४—तह धम्मकहो भव्वाणं, साहुए बिट्ठ-अविरेइ-सहावो ।

सयलबुहहेउभूभा, विसया विरपंति जीवाणं ॥

५—सत्ताणं दुहसाणं, सरणं चरणं जिणिदपण्णत् ।

आनन्दकृष्ण-निग्धाण-साहणं तह य वेसेइ ॥

६—जह तेसि तरियमो, वंदसमुट्ठो तहेव संसारो ।

जह तेसि सगिहगमण, निग्धाणगमो तहा एरगो ॥

७—जह सेलनपिट्ठाओ, भट्ठो देवीइ सोहिदमईओ ।

सावय-सहस्स-पउरंमि, सामरे पाविओ निहणं ॥

८—तह अविरेईइ नडिओ, चरणचूओ दुबल-सावयाइण्णो ।

निवडइ अपार-संसार-सायरे वारुणसङ्खे ॥

९—जह देवीए अक्खोहो, पत्तो सट्ठाणं जीवियमुहाइ ।

तह चरणट्ठिओ साह, अक्खोहो जाइ निग्वाणं ॥

१—रत्नद्वीप की देवी के स्थान पर यहाँ महापापमय अविरति समझना चाहिए । ला' अभिलाषी वशिको की जगह यहाँ सुख की कामना करने वाले जीव समझना चाहिए ।

२—जैसे उन्होंने (जिनरक्षित और जिनपालनामक वणिकों ने) आघात-मंडल में एक को देखा, उसी प्रकार संसार से भयभीत जन धर्मकथा (धर्मकथा करने वाले उपदेशक देखते हैं ।

३—जैसे उस पुरुष ने उन्हें बतलाया कि यह (रत्न देवी) घोर दुःखों का कारण है, उससे निस्तार पाने का उपाय शतक यक्ष के सिवाय अन्य नहीं है ।

४—उसी प्रकार अविरति के स्वभाव को जानने वाले धर्मापदेशक भय्य जीवों से कहते इन्द्रियों के विषय समस्त दुःखों के हेतु हैं, अतः वे जीवों को उनसे विरत करते हैं ।

१४—तित्थस्स वृद्धिकारी, अवसेवणओ कुतित्थिमाईण ।  
विउत्तनर-सेविय-कमो, कमेण सिद्धिं पि पावेइ ॥

१—थोड़ी (धन्य सार्थवाह) के स्थान पर गुरु, ज्ञातिजनों के स्थान पर श्रमणसंघ, बृद्धों के स्थान पर भव्य प्राणी और शालिकणों के स्थान पर महाव्रत समझने चाहिए ।

२—जैसे उज्जिता दहू यथार्थ नाम वाली थी और शालि के दानों को फेंक देने के कारण दासी-कर्म करने से प्रसन्न दुखों को प्राप्त हुई ।

३—वैसे ही जो भव्य जीव गुरु द्वारा प्रदत्त महाव्रतों को सच के समक्ष स्वीकार कर महामोह के बन्दीभूत होकर त्याग देता है—

४—वह इस भव में जनता के तिरस्कार का पात्र होता है और परलोक में भी उ पीडित होकर अनेक योनियों में भ्रमण करता है ।

५—जैसे यथार्थ नाम वाली भोगवती बहू शालिकणों को खा गई, वह भी विघेप प्रकाश दासी-कर्म करने के कारण दुख को ही प्राप्त हुई ।

६—वैसे ही जो महाव्रतों को जीविका का साधन मान कर पालता एवं उनका उन्हीं से उपयोग करता है, आहारादि में मासक्त होता है और ये महाव्रत मुक्ति के साधन हैं, इस भाव में रहित होता है—

७—वह केवल साधुनिगधारी यथेष्ट आहारादि प्राप्ति करता है पर विद्वानों का पूजन नहीं होता । परलोक में भी दुःखी होता है ।

८—जिस प्रकार यथार्थ नामवाली बहू रक्षिता ने शालिकणों की रक्षा की और पारिजात जनों में मान्य हुई । उसने भोग-भुषों को भी प्राप्त किया ।

९—उसी प्रकार जो जीव महाव्रतों को स्वीकार करके लेश मात्र भी प्रमाद नहीं करता उनका निरनिघार पालन करना है—

१०—वह एक मात्र आत्महित में आनन्द मानने वाला इस लोक में विद्वानों द्वारा पूजित तथा एकाग्र रूप से सुधी होता है । परभव में मोक्ष भी प्राप्त करता है ।

११—जैसे यथार्थ नाम वाली रोहिणी नामक पुत्रवधू शालि के रोग द्वारा, उनकी वृद्धि कर समस्त धन की स्वामिनी बनी—

१२—उसी प्रकार जो भव्य प्राणी महाव्रतों को प्राप्त करके स्वयं उनका सम्यक् प्रकार में पालन करता है और दूसरे भी भव्य प्राणियों को उनके हित के लिए प्रदान करता है ।

१३—वह इस भव में गौतम स्वामी के समान मध्वप्रधान एवं युगप्रधान परमों को प्राप्त करना है तथा अपना और दूसरों का कल्याण करने वाला होता है ।

१४—वह तीर्थ का अनुदय करने वाला, कुतूहिलों का निराकरण करने वाला और विद्वानों द्वारा पूजित होकर जन्म मिट्टि को भी प्राप्त करता है ।

### अष्टम अध्याय

१—उभय-लव-मं अथ वयोपविदुःकलमात्रपुत्रस्य वि विउत्तम ।

यस्मिन्निहपुत्रि मुमुक्षुश्च, होइ माया अजरबाव ॥

- ३—जह कुसुमाद्रिजासो, सिवमगविराहणा तहा नेवा ।  
 जह दोषयाउजोने, बहु इड्ढो ईसि य अणिड्ढो ॥
- ४—तह साहम्मिय-ययणाण सहणमाराहणा जवे बहुया ।  
 इयराणमसहणे पुण, सिवमगविराहणा योवा ॥
- ५—जह जसहि-याउजोने, बोविड्ढो बहुयरा यडणिड्ढो य ।  
 तह परपवस-वपमणे, धाराहणमोसि बहु इयरं ॥
- ६—जह उभययाउविरहे, सव्वा तट्ठापया विणट्ठति ।  
 अणिमित्तोभयमच्छरव्वेह विराहणा तह य ॥
- ७—जह उभययाउजोने, सव्वसमिड्ढो वणस्स संजाया ।  
 तह उभयययणसहणे, सिवममाराहणा बुसा ॥
- ८—ता पुत्तसमणधम्माराहणचित्तो सया महासत्तो ।  
 सभेणावि कोरति, सहेज्ज सव्वपि पटिकूलं ॥

१—जैसे दायद्व्य जाति के वृक्ष कहे गए हैं, वैसे यहाँ साधु समझना चाहिए। जैसे द्वीप वृक्षी वायु है, वैसे यहाँ श्रमण आदि (श्रमणी, श्रावक, श्राविका) रूप स्वपक्ष के दुस्सह वचन मानने चाहिए।

२—जैसे सामुद्रिक पवन है वैसे यहाँ अन्त्योपिकों के कटुक वचन आदि जानना। वृक्षों में पुष्प जान लेना चाहिए।

४—उसी प्रकार साधमिकों के दुर्वचनों का सहन करना भी होती है, किन्तु अन्ययूथिकों के दुर्वचनों को सहन न करने से मोक्षमार्ग की किंचित् विराधना भी होती है।

५—जैसे सामुद्रिक वायु का संयोग मिलने पर किंचित् समृद्धि और बहुततर असमृद्धि होती है, उसी प्रकार परपक्ष (अन्ययूथिकों) के वचन सहन करने से थोड़ी धाराधना होती है, (स्वयूथ्यों के वचन न सहने से) विराधना अधिक होती है।

६—जैसे दोनों—द्वैपिक और सामुद्रिक प्रकार के पवन के अभाव में समस्त तट-सम्पदा (पत्र-पुष्प-फल आदि) का विनाश हो जाता है वैसे ही निष्कारण दोनों के प्रति मरसरता होना यहाँ विराधना है।

७—जैसे दोनों प्रकार के पवन का योग प्राप्त होने पर वन-वृक्षसमूह को सर्व प्रकार की पूर्ण समृद्धि प्राप्त होती है उसी प्रकार दोनों पक्षों (स्वयूथिकों, अन्ययूथिकों) के दुर्वचनों को सहन करने से मोक्षमार्ग की पूर्ण धाराधना कही गई है।

८—यतएव जिसके चित्त में पूर्ण श्रमणधर्म की धाराधना करने की प्रवृत्ति है, वह सभी प्रकार के मनुष्यों द्वारा किए जाने वाले प्रतिकूल व्यवहार-वचनप्रयोग, उपसर्ग आदि को सहन करे।

### बारहवाँ अध्याय

- १—निच्छत्तमोहियमणा पावपसत्तावि पाणिणो विगुणा ।  
 करिहोवणं य गुणिणो हवति वरगुरुरूपसायासो ॥

५—दुःखों से पीड़ित प्राणियों के लिए जिनेंद्र द्वारा प्ररूपित चारित्र्य ही शरण है। वही दैवस्वरूप निर्वाण का साधन है।

६—जैसे उन यणियों को विमृत मागर तरना था, उसी प्रकार भय जीवों को विगत र तरना है। जैसे उन्हें अपने घर पहुँचना था, उसी प्रकार यहाँ मोक्ष में पहुँचना सम्भवा ए।

७—देवी द्वारा मोहितमति (जिनरहित) शैलरू यश की पीठ से भ्रष्ट होकर सहस्रो हिमक प्रों से व्याप्त सागर में निधन को प्राप्त हुआ।

८—उसी प्रकार अविरति से बाधित होकर जो जीव चारित्र्य से भ्रष्ट हो जाता है वह दुःख हिंसक जन्तुओं से व्याप्त, भयकर स्वरूप वाले अपार समार-सागर में पड़ता है।

९—जैसे देवी के प्रलोभन-मोहजनक वचनों से क्षुब्ध न होने वाला (जिनपालित) अपने न पर पहुँच कर जीवन प्रीतियों को अथवा जीवन सबधी सुखों को प्राप्त कर सका, उसी प्रकार एन में स्थित एक विषयी से क्षुब्ध न होने वाला साधु निर्वाण प्राप्त करता है।

### दशम अध्यायन

१—जह चंदो तह साहू, राहुचरोहो जहा तह पमाओ।

बणाई पुणगणो जह तहा खमाई समणधम्मा॥

२—पुणो धि पइविण जह, हायंतो सव्वहा ससो नरसे।

तह पुणचरित्तो धि ह, कुसोत्तसंसिगमाईहि॥

३—जणियपमाओ साहू, हायंतो पइविण खमाईहि।

जायइ नहुचरित्तो, तत्तो बुक्खाई पावेइ॥

४—हीणगुणो वि ह होउ, मुहगुहजोगाइ जणियसंवेमो।

पुणसखो जायइ, विवड्ढमाणो ससहरो ख॥

१—यहाँ चन्द्रमा के समान साधु और राहु-ग्रहण के समान प्रमाद जानना चाहिए। चन्द्रमा के, कान्ति आदि गुणों के समान साधु के धर्मा आदि दस धर्मगुणों में जानना चाहिए।

२-३—(पूणिमा के दिन) परिपूर्ण होकर भी चन्द्रमा प्रतिदिन घटता-घटता (प्रमादस्या को) ध्या लुप्त हो जाता है, उसी प्रकार पूर्ण चारित्र्यवान् साधु भी कुशीलों के ससर्ग आदि कारणों से ादयुक्त होकर, प्रतिदिन धर्मा आदि गुणों से हीन होता-होता अन्त में चारित्र्यहीन बन जाता है। से उसे दुःखों की प्राप्ति होती है।

४—कोई साधु भले हीन गुण वाला हो किन्तु सद्गुरु के ससर्ग से उसमें सबेग उत्पन्न हो ना है तो वह चन्द्रमा के समान क्रमशः वृद्धि पाता हुआ पूर्णता प्राप्त कर लेता है।

### ग्यारहवां अध्यायन

१—जह वावट्ठसखणमेवं साहू जहेव बोविच्चा।

याया तह समणा इयसपक्खवणाई बुसहाई॥

२—जह सामुदयवाया तहणित्तिथाइकट्टयवणाइ।

कुसुमाइसंपया जह, सिक्खग्याराहणा तह उ॥



- ३—जह कुसुमाद्विणासो, सिवमग्नविराहणा तहा नेया ।  
जह दीववाउजोगे, बहु इड्ढी ईसि य अणिदुदो ॥
- ४—तह साहम्मिय-वयणाण सहणमाराहणा मवे बहुया ।  
इयराणमसहणे पुण, सिवमग्नविराहणा थोचा ॥
- ५—जह जलहि-वाउजोगे, मेविड्ढो बहुयरा यड्ढिड्ढी य ।  
तह परपक्ष-वसमणे, माराहणमोसि बहु इयरं ॥
- ६—जह उभयवाउविरहे, सव्वा तस्सापया विणट्ठत्ति ।  
अणिमित्तोभयमच्छररूवेह विराहणा तह म ॥
- ७—जह उभयवाउजोगे, सव्वसमिड्ढी वणस्स संजाया ।  
तह उभयवयणसहणे, सिवममाराहणा वुत्ता ॥
- ८—ता पट्ठसमणधम्माराहणचित्तो सया महासत्तो ।  
सव्वेणवि कोरसि, सहेउज सव्ववि पडिक्कलं ॥

—जैसे दावद्वज जाति के वृक्ष कहे गए हैं, वैसे यहाँ साधु समझना चाहिए । जैसे द्वीप पु है, वैसे यहाँ धमण आदि (धमणी, धावक, आविका) रूप स्वपक्ष के दुस्तह वचन हुए ।

—जैसे सामुद्रिक पवन है वैसे यहाँ अन्यतीर्थिकों के कटुक वचन आदि जानना । वृक्षों में पुष्प ति के समान यहाँ मोक्षमार्ग की आराधना समझना ।

—पुष्प आवि समृद्धि के अभाव को यहाँ मोक्षमार्ग की विराधना जान लेना चाहिए । अवधी वायु के अभाव में अधिक समृद्धि और थोड़ी असमृद्धि होती है—

—उसी प्रकार साधमिकों के दुर्वचनों को सहन करने से बहुत आराधना होती है, किन्तु दो के दुर्वचनों को सहन न करने से मोक्षमार्ग की किंचित् विराधना भी होती है ।

—जैसे सामुद्रिक वायु का संयोग मिलने पर किंचित् समृद्धि और बहुततर असमृद्धि होती प्रकार परपक्ष (अन्ययूयिकों) के वचन सहन करने से थोड़ी आराधना होती है, (स्वयूयियों के होने से) विराधना अधिक होती है ।

—जैसे दोनों—ई पिक और सामुद्रिक प्रकार के पवन के अभाव में समस्त तह-सम्पदा फल आदि का विनाश हो जाता है वैसे ही निष्कारण दोनों के प्रति मत्सरता होना यहाँ है ।

—जैसे दोनों प्रकार के पवन का योग प्राप्त होने पर वन-वृक्षसमूह को सर्व प्रकार की पूर्ण होती है उसी प्रकार दोनों पक्षों (स्वयूयिकों, अन्ययूयिकों) के दुर्वचनों को सहन करने से की पूर्ण आराधना कही गई है ।

—अतएव जिसके चित्त में पूर्ण श्रमसुधर्म की आराधना करने की अभिलाषा है, वह सभी मनुष्यों द्वारा किए जाने वाले प्रतिकूल व्यवहार-वचनप्रयोग, उपसर्ग आदि को सहन करे ।

### चारहवाँ अध्यायन

- १—मिच्छत्तमोहिमणा पावपसत्तावि पाणिणो विगुणा ।  
फरिहोदगं य गुणिणो हवति वरगुरूपसायासो ॥

१—जैसे यही कान्तिक द्वेष कहा है वैसे अनुमत्त गुण प्रदान करने वाला भगवान् समझना चाहिए। अद्वैतों के समान साधु और योगियों के समान अनुमत्त उपमार्ग करने वाले (नाना करने वाले) लोग हैं।

२—जैसे शब्द आदि विषयों में प्राप्त न होने वाले अद्वैत ज्ञान में नहीं कम, उसी प्रकार जो साधु इन्द्रियविषयों में प्राप्त नहीं होते वे साधु कर्मों में बन्ध नहीं होते।

३—जैसे अद्वैतों का स्वच्छन्द विहार कर्तुं, उसी प्रकार श्रेष्ठ मुनिकर्तव्यों का जरा-मरण से रहित और आनन्दमय निर्वाण समझना। तात्पर्य यह है कि शब्द आदि विषयों में विरत रहने वाले अद्वैत जैसे स्वाधीन-इच्छानुसार विचारण करने में समर्थ हुए, वैसे ही विषयों से विरत महामुनि मुक्ति प्राप्त करने में समर्थ होते हैं।

४—इससे विपरीत शब्द आदि विषयों में अनुरक्त हुए अद्वैत जैसे बन्धन-बन्ध हुए, उसी प्रकार जो विषयों में अनुरक्तवान् हैं, वे प्राणी अत्यन्त दुःख के कारणभूत एवं और कर्मबन्धन को प्राप्त करते हैं।

५—जैसे शब्द आदि में प्राप्त हुए अद्वैत अन्वय ले जाए गए और दुःख-समूह को प्राप्त हुए, उसी प्रकार धर्म से श्रेष्ठ जीव अधर्म को प्राप्त होकर दुःखों को प्राप्त होते हैं।

६—ऐसे प्राणी कर्म रूपी राजा के बन्धीभूत होते हैं। वे सवारी जैसे सासारिक दुःखों को, अद्वैतमार्गों द्वारा होने वाली पीड़ा के समान (परभव में) नारकों द्वारा दिये जाने वाले कष्टों के पात्र बनते हैं।

### अठारहवां अध्याय

१—जह सो चित्ताइपुत्तो, सुसुमगिद्धो अकज्जपडिबद्धो ।

धण-पारद्धो पत्तो, महाडवि वसणसय-कलिअं ॥

२—तह जीवो विसयसुहे, सुद्धो काळण पावकिरियाओ ।

कम्मवसेणं पावइ, भवाड्योए महावुबलं ॥

३—धणसेट्ठो विव गुरुणो, पुत्ता इव साहबो भवो अड्यो ।

सुय-मांसमिवाहारो, रायगिहं इह सिवं नेयं ॥

४—जह अडवि-नयर-नित्यरण-पावणरथं तएहि सुयमंसं ।

भुत्तं तहेह साहू, गुरुण आणाए आहारं ॥

५—भवलंघण-सिवपावण-हेअं भुजंति न उण येहोए ।

वण-बल-रूपहेअं, च भावियप्पा महासत्ता ॥

१—जैसे चित्तातीतुष्ट सुसुमा पर प्राप्त होकर कुकर्म करने पर उत्तारु हो गया और धन्य श्रेष्ठों के पीछा करने पर मंकाई सकोटों से व्याप्त महा-अटवी को प्राप्त हुआ।

२—उसी प्रकार जीव विषय-मुखों में लुब्ध होकर पापक्रियाएं करता है। पापक्रियाएं करके कर्म के बन्धीभूत होकर इस ससार रूपी अटवी में और दुःख पाता है।

३—यहाँ धन्य श्रेष्ठों के समान गुरु है, उसके पुत्रों के समान साधु हैं और अटवी के समान ससार है। मुत्ता (पुत्री) के मांस के समान आहार है और राजगृह के समान मोक्ष है।

परिशिष्ट—१ ]

४—जैसे उन्होंने घटवी पार करने और नगर तक पहुँचने के उद्देश्य से ही मुत्ता के मांस का भक्षण किया, उसी प्रकार सायू, गुरु की आज्ञा से आहार करते हैं ।

५—वे भावितात्मा एवं महासत्त्वशाली मुनि आहार करते हैं एक मात्र सत्तार को पार करने और मोक्ष प्राप्त करने के ही उद्देश्य से । आसक्ति से घबरा शरीर के वर्ण, बल या रूप के लिए नहीं ।

### उन्नीसवीं अध्यायन

—वातसहस्रं वि अहं, काङ्गं तं जमं स विउलं पि ।  
अते क्लिष्टभावो, न विमुञ्चह कङ्करोयध्व ॥

२—अप्येन वि कालेनं, केइ जहा गृहिषसीलसामण्णा ।  
साहिति निययकज्जं, पुङ्करोयमहारिसि च्व जहा ॥

१—कोई हजार वर्षों तक अत्यन्त विपुल-उच्चकोटि के समय का पालन करे किन्तु अन्त में उसकी भायना सबनेष्टयुक्त—मलिन हो जाए तो वह कङ्करीक के समान सिद्धि प्राप्त नहीं कर सकता ।

२—इसके विपरीत, कोई पील एवं धामध्य—साधुधर्म को अगीकार करके अल्प काल में भी महर्षि पुण्डरीक के समान अपने प्रयोजन को—शुद्ध आत्मस्वरूप की प्राप्ति के लक्ष्य को, प्राप्त कर लेते हैं ।

## व्यक्ति-नाम सूची

|            |     |                 |     |
|------------|-----|-----------------|-----|
| अग्निमाणव  | ५४८ | कच्छुत्त        |     |
| अग्निशिल   | ५४५ | कनककेतु         |     |
| अचल        | २१५ | कनकध्वज         |     |
| अचला       | ५५४ | कनकप्रभा        |     |
| अदीनशत्रु  | २२१ | कनकरथ           |     |
| अनंगसेना   | १५७ | कनका            |     |
| अपराजिता   | ५४९ | कपिल (वामुदेव)  |     |
| अप्सरा     | ५५४ | कमलप्रभा        |     |
| अभयकुमार   | १२  | कमलश्री         |     |
| अभिचन्द्र  | २१५ | कमला            |     |
| अमितगति    | ५४५ | कमा             |     |
| अमितवाहन   | ५४८ | कलाद            |     |
| अशिमाली    | ५५२ | काल             |     |
| अर्जुन     | ४२६ | कालश्री         |     |
| अहंभक्त    | २३२ | काली            |     |
| अरिष्टनेमि | ४६८ | कीचक            |     |
| अवतथा      | ५४९ | कृष्ण (वामुदेव) |     |
| आतपा       | ५५२ | कृष्ण (अमराज)   |     |
| अञ्ज       | ५५४ | कृष्णराजि       |     |
| इन्द्र     | ५४५ | कृष्णा          |     |
| इन्द्रभूति | १६१ | कुंभ (क)        |     |
| इन्द्रा    | ५६५ | कृतुमतौ         |     |
| इल         | ५४४ | कोणिक           |     |
| इलथी       | ५६६ | गोपालिका        |     |
| इला        | ५४४ | यना             |     |
| ईशान       | २३३ | घोष             |     |
| उद्धेत     | १५० | चन्द्र          |     |
| उग्भिजा    | १६० | चन्द्रधाय       | १५१ |
| उत्तमा     | ५६६ | चन्द्रप्रभ      | ५५१ |
| उत्तमा     | ५६६ | चन्द्रप्रभा     | ५५१ |

## परिमिष्ट २ ]

तन्द्राभी  
 तन्ताय (त)  
 तुलनी  
 पोक्षा  
 तम्बू  
 तराधिगु  
 ततकान्त  
 ततत्रभ  
 तित्तगु  
 तित्तगु (तपानुप)  
 तिनदत्त  
 तिनदत्तगु  
 तिनपासित  
 तितरक्षित  
 तृभक  
 त्र्योतित्ताभ  
 तैतलिपुत्र  
 तमधोप  
 तमदन्त  
 तदुदेव  
 दादक  
 देवदत्त  
 देवदत्ता  
 द्रुपद  
 द्रौपदी  
 धन  
 धनगोप  
 धनदेव  
 धनपाल  
 धनरक्षित  
 धन्य  
 धर  
 धरण  
 धर्म  
 धर्मगोप  
 धर्मद्वि

५५३ धारिणी  
 ४६४ धृष्टद्युम्न  
 ४२१ नकुल  
 २५४ नन्द  
 ८ नन्दादेवी  
 ४२७ नवमिका  
 ५४५ नागभी  
 ५४८ निरभा  
 २२१ निमुभा  
 ३२१ पत्तनाभ  
 ४०७ पया  
 १३५ पयावती  
 २८५ पाण्डु  
 २८५ पाण्डुसेन  
 २६६ पाद्वं  
 ५५३ पुण्डरीक  
 ३५८ पुष्पनूला  
 ४२६ पुष्पवती  
 ४२६ पूर्ण  
 ३३८ पूर्णा  
 ४५१ पोटिला  
 ११६ पथक (दासवेष्ट)  
 १३६ पथक (मुनि)  
 ४२१ प्रतिबुद्धि  
 ४२१ प्रद्युम्न  
 १६४ प्रभकरा  
 १६७ प्रभजन  
 १६७ वन्धुमती  
 १६७ बल  
 १६७ बलदेव  
 १०८ बलभद्र  
 ४२७ बली  
 ५४५ बहुपुत्रिका  
 ५५५ बहुरूपा  
 १२६ भद्रा  
 ३६५ भद्रा

१३  
 ४१३  
 ४२६  
 ३४०  
 ५४७  
 ५४६  
 ३६३  
 ५४२  
 ५४२  
 ४४०  
 ५४०  
 १६७  
 ४२६  
 ४६५  
 ५३२  
 ५१३  
 ५३४  
 ५४६  
 ५४५  
 ५४६  
 ३५८  
 १०६  
 १६७  
 २२१  
 १५७  
 ५४२  
 ५४८  
 २७६  
 २१३  
 १५७  
 २१५  
 २७३  
 ५४५  
 ५४  
 १०  
 १६

|             |     |                    |
|-------------|-----|--------------------|
| भारिका      | ५४६ | रामा               |
| भिसग        | २७६ | रविम               |
| भीमसेन      | ४२६ | रविमणी             |
| भुजगा       | ५४६ | रुयकंता            |
| भुजगावती    | ५४६ | रुयग               |
| भूतश्री     | ३६३ | रुयगावती           |
| भूतानन्द    | ५४७ | रुयप्पभा           |
| भैसग        | ४२७ | रुया               |
| भोगवती      | १६७ | रुयानंदा           |
| मदना        | ५४२ | रोहिणिका           |
| मधुरा       | ५५३ | रोहिणी             |
| मल्ली       | २२४ | रंभा               |
| मल्लीदत्त   | २४८ | वज्रसेना           |
| महाकच्छा    | ५४६ | वसु                |
| महाकाल      | ५५१ | वसुगुप्ता          |
| महाधोप      | ५४८ | वसुधरा             |
| महापद्म     | ५१३ | वसुमती             |
| महाबल       | २१४ | वसुमित्रा          |
| महावीर      | ७   | विजय (तस्कर)       |
| महासेन      | १५७ | विजया              |
| माकन्दो     | २८५ | विजय (हस्तिरत्न)   |
| मुनिमुव्रत  | ४५८ | विद्युत्           |
| मेघ         | ५४१ | विद्युत् (गाथापति) |
| मेघकुमार    | ४६  | विद्युत्श्री       |
| मेघश्री     | ५४१ | विमला              |
| मेघा        | ५३६ | विशिष्ट            |
| मेघदत्त     | ८२  | वीरसेन             |
| महुक्क      | १६७ | वेणुदासी           |
| यशधो        | ३६३ | वेणुदेव            |
| मुधिष्ठिर   | ४२६ | वेलम्ब             |
| रक्षिता     | १८७ | वंशमण              |
| रत्नो       | ५३६ | शाम्ब              |
| रत्नधो      | ५३६ | शिवा               |
| रत्न (रत्न) | ५३६ | सिन्धुपाल          |
| रात्रि      | ५३८ | शुक्र              |
| रामरक्षिता  | ५५५ | शंकर (श्रुति)      |

## परिमिष्ट २ ]

मेलक (पक्ष)

शंभ

थे लिंक

सती

मतेरा

समुद्रविजय

सरस्वती

सहदेव

सागर

सागरदत्त

सागरदत्तपुत्र

मु'भा

मु'मुमा

मुकुमालिका

मुषोपा

मुदगोन

मुदगना

मुधर्मा

मुनाम

मुदुद्धि

२६७

२२१

११

५५४

५४५

१५७

५४६

४२६

४०७

४०५

१३५

५४२

४६४

४०५

५४६

१६८

५४६

८

४४०

२२७

मुभगा

सुमेरुप्रभ

सुरूपा

मुवाहु

सुगता (घायी)

सुस्थित

सुस्वरा

सूर्यप्रभ

सूर्यप्रभा

सूर्यथी

सूर्याभि

सेवनक

सेत्त

सोम

सोमदत्त

सोमभूति

सोदामिनी

हरि

हरिस्तह

ह्री

५४६

७८

५४८

२४३

२६७

२६१

५४६

५५२

५५२

५५२

५३६

४२

४२६

३६३

३६३

३६३

५४५

५४५

५४८

५४६

## स्थल-विशेषसूची

### (क) नगर-नगरी

|             |     |                  |    |
|-------------|-----|------------------|----|
| अमरकंका     | ४४० | मथुरा            | ४  |
| अरवतुरी     | ४५२ | मिथिला           | २  |
| असकापुरी    | १५६ | राजगृह           |    |
| अहिच्छत्रा  | ३८३ | वाराणसी          | १  |
| आमलकल्या    | ५३० | वारवती (द्वारका) | १  |
| काकन्दी     | २२६ | विराट            | ४  |
| काशी        | २४६ | वीतशोका          | २  |
| कापिल्यपुर  | २५४ | जुक्तिमती        | ४  |
| कौण्डिन्य   | ४२७ | शैलकपुर          | १  |
| चमरचंचा     | ५३८ | थावस्ती          | २४ |
| पंपा        | ७   | साकेत            | २२ |
| नगर         | १११ | सौगधिका          | १६ |
| नागपुर      | ५५० | हस्तिकल्प        | ४६ |
| पाण्डुमथुरा | ४६४ | हस्तिनापुर       | २४ |
| पुण्डरीकिणी | ५१३ | हस्तिशोप         | ४२ |

### (ख) पर्वत

|         |     |           |    |
|---------|-----|-----------|----|
| एकशैल   | ५१३ | मदर       | ५० |
| अजनगिरि | ४२५ | रैवतक     | १५ |
| गिरि    | १५६ | पेतादध    | १५ |
| षाह     | २१४ | विन्ध्य   | ८  |
| निपथ    | २१३ | शत्रुञ्जय | ४६ |
| नीलवन्त | २१३ | मुन्नावह  | २१ |
| पुंढरीक | १८० |           |    |

### (ग) जलाशय

|             |     |               |     |
|-------------|-----|---------------|-----|
| पुं         | १०७ | गभीर पोतपट्टन | २३२ |
| गंगा महानदी | ८१  | गुंजालिका     | १११ |



## परिसिष्ट ३ ]

दह (हृद)  
दीर्घिका  
नदा (पुष्करिणी)  
पु (पो)म्बरिणी  
प्रवा  
मृतगदातीर  
लवणसमुद्र

|     |            |     |
|-----|------------|-----|
| १४८ | वापी       | १११ |
| १११ | सर         | १११ |
| १३७ | सरपक्ति    | १११ |
| १११ | सर-सरपक्ति | १५७ |
| ११० | सागर       | ५१३ |
| १४८ | सीता       | २१३ |
| २१३ | सीतोदा     |     |

## (घ) उद्यान : वन

भ्रात्रपालवन  
भाराम  
इन्द्रकुम्भ  
उग्ग्राण  
काममहावन  
गुणघील (सिलक)  
चन्द्रावतसक  
जीर्णोद्यान

|     |            |     |
|-----|------------|-----|
|     |            | १५७ |
| ५३८ | नन्दनवन    | ५१३ |
| १११ | नसिनीवन    | १६८ |
| २१३ | नीलाशोक    | ३५८ |
| १११ | प्रमदवन    | १०८ |
| ५४४ | मालुकाकच्छ | २७६ |
| १०७ | सहस्राभवन  | १३५ |
| ५५३ | सुभूमिभाग  |     |
| १०७ |            |     |

## (ङ) द्वीप : देश : क्षेत्र

घघोलोक  
भतरिञ्ज  
कालिकद्वीप  
कृष्णाल  
कुह  
कौशल  
जम्बूद्वीप  
दक्षिणार्ध भरत  
द्वीप  
देवलोक  
घातकीखण्ड  
नन्दीश्वर द्वीप

|     |               |     |
|-----|---------------|-----|
|     |               | १२८ |
| २२४ | नरक           | २५४ |
| २३६ | पाञ्चालदेश    | ५१३ |
| ४७६ | पुष्कलावती    | ५१३ |
| २४३ | पूर्वविदेह    | १५७ |
| २४८ | भरत           | ११  |
| २२६ | भारतवर्ष      | १०३ |
| ११  | महाविदेह      | २८६ |
| ११  | रत्नद्वीप     | २३० |
| २२४ | विदेह जनपद    | २१३ |
| १५६ | सलिलावती विजय | ४२३ |
| ४४० | सुराष्ट्र     | १२३ |
| २२४ | सगर           |     |

## (च) भवन : गृह : विमान

|     |             |    |
|-----|-------------|----|
| १३६ | इलावतसक     | ५४ |
| १३६ | उपस्थानशाला | ११ |

|                   |
|-------------------|
| न्दलीगृह          |
| नुमुगृह           |
| रुप्यावनंसक विमान |
| गर्भगृह           |
| गृह               |
| चारक              |
| चारकशाला          |
| जयन्तविमान        |
| जालगृह            |
| तस्करस्थान        |
| तस्करगृह          |
| धूलामडप           |
| देवकुल            |
| नागगृह            |
| पानागार           |
| प्रसाधनगृह        |

|     |             |
|-----|-------------|
| १३६ | प्रनाद      |
| १३६ | प्रोक्षणगृह |
| ५५५ | भजन         |
| ०२५ | भूतगृह      |
| ११४ | मोहनगृह     |
| १२२ | यशदेवगृह    |
| १२२ | यानशाला     |
| २२० | रूपकावतसक   |
| १३६ | सतागृह      |
| ११० | सयन         |
| ११० | वेश्यागार   |
| १३७ | बंधमणगृह    |
| १५६ | शासगृह      |
| ११० | गुन्यगृह    |
| ११० | सभा         |
| १३६ | सौधमंकल्प   |

|     |
|-----|
| १३६ |
| १३६ |
| १३६ |
| ११० |
| १३६ |
| ११० |
| १५६ |
| ५५५ |
| १३६ |
| १११ |
| ११० |
| ११३ |
| १३६ |
| ११० |
| ११० |
| ३६  |

## (ख) प्रकीर्णक स्थल

|             |
|-------------|
| प्रतिगमन    |
| धपद्वार     |
| आधातन       |
| उक्कुडडिय   |
| कान्तार     |
| कुहर        |
| कदरा        |
| सडी         |
| गिरिकान्दरा |
| गोपुर       |
| चतुर्मुख    |
| चतुष्क      |
| चत्वर       |
| छिजो        |
| त्रिक       |
| दरो         |

|     |             |
|-----|-------------|
| ११० | दूतखल       |
| ११० | द्वार       |
| २६६ | नगरनिद्रमन  |
| १२३ | निर्गमन     |
| १२८ | निर्वर्तन   |
| १५६ | पानागार     |
| १५६ | पथ          |
| ११० | मणिपीठिका   |
| १११ | महापथ       |
| १५६ | विवर        |
| १६८ | इमसान       |
| ११० | श्रृंगाटक   |
| ११० | सर्वर्तन    |
| ११० | सिंहगुफा    |
| ११० | सुधर्मा सभा |
| १५६ |             |

|     |
|-----|
| ११० |
| ११० |
| ११० |
| ११० |
| ११० |
| ११० |
| १२१ |
| २२५ |
| १२१ |
| १५६ |
| १११ |
| ११० |
| ११० |
| ४६७ |
| १५६ |

प्रागमप्रकाशन समिति, ब्यावर

# अर्थसहयोगी सदस्यों की शुभ नामावली

सरलक्ष

महाराष्ट्र

१. श्री मेठ मोहनमलजी चोरडिया, मद्रास
२. श्री सैठ खीबराजजी चोरडिया, मद्रास
३. श्री सायरमलजी जेठमलजी चोरडिया, मद्रास
४. श्री एस. किरानचन्दजी चोरडिया, मद्रास
५. श्री गुमानमलजी चोरडिया, मद्रास
६. श्री कबरलालजी बेताला, गोहाटी
७. श्री पुसराजजी सोपोबिया, ब्यावर
८. श्री त्रैभराजजी भंवरलालजी थोथीमाल, दुर्ग
९. श्री गुलाबचन्दजी भानीलालजी मुराणा, सिकन्दराबाद

हस्तक्ष

१. श्री जसराजजी गणेशमलजी संचेती, जोधपुर
२. श्री अग्रचन्दजी फतेचन्दजी पारख, जोधपुर
३. श्री पुसालालजी फिस्तूरचन्दजी मुराणा, बालाघाट
४. श्री मूलचन्दजी चोरडिया, कटंगी
५. श्री तिलोकचन्दजी माधरमलजी संचेती, मद्रास
६. श्री जे. दुलीचन्दजी चोरडिया, मद्रास
७. श्री हीराचन्दजी चोरडिया, मद्रास
८. श्री एस. रतनचन्दजी चोरडिया, मद्रास
९. श्री बद्धमान इन्डस्ट्रीज, कानपुर
१०. श्री एस. सायरचन्दजी चोरडिया, मद्रास
११. श्री एस. बादलचन्दजी चोरडिया, मद्रास
१२. श्री एस. रिखचन्दजी चोरडिया, मद्रास
१३. श्री आर. परसनचन्दजी चोरडिया, मद्रास
१४. श्री अन्नराजजी चोरडिया, मद्रास
१५. श्री दीपचन्दजी बोकडिया, मद्रास
१६. श्री मिथीलालजी तिलोकचन्दजी संचेती, दुर्ग

१. श्री हीरालालजी पन्नालालजी चोपडा, ब्यावर
२. श्री दीपचन्दजी चन्दनमलजी चोरडिया, मद्रास
३. श्री ज्ञानराजजी मूया, पाली
४. श्री धूपचन्दजी गादिया, ब्यावर
५. श्री रतनलालजी उत्तमचन्दजी मोदी, ब्यावर
६. श्री पन्नालालजी भागचन्दजी बोधरा, चाणाटोला
७. श्री मिथीलालजी धनराजजी विनायकिया, ब्यावर
८. श्री त्रैभराजजी जतनलालजी मेहता, मेहता
९. श्री जड़ावमलजी माणकचन्दजी बेताला बागलकोट
१०. श्री बस्तीमलजी मोहनलालजी बोहरा, (K.G.F.) एव जाइन
११. श्री केसरीमलजी जैवरीलालजी तालेरा, पाली
१२. श्री नैमोचन्दजी ललबाणी, चाणाटोला
१३. श्री बिरदीचन्दजी प्रकाशचन्दजी तलेमरा, पाली
१४. श्री सिरेकँवर बाई धर्मपत्नी स्व. श्री सुमनचन्दजी भामड, मधुरान्तकम
१५. श्री बानचन्दजी मेहता, जोधपुर
१६. श्री मूलचन्दजी मुजानमलजी संचेती, जोधपुर
१७. श्री लालचन्दजी मोहनलालजी कोठारी, गोठन
१८. श्री मेरुदानजी लाभचन्दजी मुराणा, घोवही तथा नागौर
१९. श्री रावतमलजी भोकमचन्दजी पगारिया, बालाघाट

|                 |     |             |     |
|-----------------|-----|-------------|-----|
| रलीगृह          | १३६ | प्रागाद     | १५६ |
| मुमगृह          | १३६ | प्रोक्षणगृह | १३६ |
| प्रावतंसक विमान | ५५५ | भवन         | १५६ |
| भंगगृह          | २२५ | भूतगृह      | ११० |
| इ               | ११४ | मोहनगृह     | १३६ |
| रक              | १२२ | यशवेवगृह    | ११० |
| रकरशाला         | १२२ | यानशाला     | १५५ |
| यन्त्रविमान     | २२० | रूपकावतंसक  | ५४५ |
| ललगृह           | १३६ | लतागृह      | १३६ |
| स्करस्थान       | ११० | लयन         | १११ |
| स्करगृह         | ११० | वेद्यागार   | ११० |
| ग्रामडप         | १३७ | वंथमणगृह    | ११३ |
| वकुल            | १५६ | शालगृह      | १३६ |
| गगगृह           | ११० | नून्यगृह    | ११० |
| गनागार          | ११० | सभा         | ११० |
| ससाधनगृह        | १३६ | सोधर्मकल्प  | ३८  |

## (घ) प्रकीर्णक स्थल

|            |     |             |     |
|------------|-----|-------------|-----|
| प्रतिगमन   | ११० | छूतखल       | ११० |
| प्रपट्टार  | ११० | द्वार       | ११० |
| प्राधातन   | २६६ | नगरनिद्रमन  | ११० |
| उक्कुडिय   | १२३ | निर्गमन     | ११० |
| कान्तार    | १२८ | निर्वर्त्तन | ११० |
| कुहर       | १५६ | पानागार     | ११० |
| कदरा       | १५६ | पथ          | १२१ |
| सडी        | ११० | मणिपीठिका   | २२५ |
| गिरिकन्दरा | १११ | महापथ       | १२१ |
| गोपुर      | १५६ | विनर        | १५६ |
| चतुर्मुख   | १६८ | श्मशान      | १११ |
| चतुष्क     | ११० | श्रुगाटक    | ११० |
| चत्वर      | ११० | सवर्त्तन    | ४६७ |
| छिडी       | ११० | सिंहमुफा    | १५६ |
| त्रिक      | ११० | सुधर्मा सभा |     |
| दरो        | १५६ |             |     |

आगमप्रकाशन समिति, व्यावर

## अर्थसहयोगी सदस्यों की शुभ नामावली

महास्तम्भ

संरक्षक

श्री सेठ मोहनमलजी चोरडिया, मद्रास  
श्री सेठ खीवराजजी चोरडिया, मद्रास  
श्री सायरमलजी जेठमलजी चोरडिया, मद्रास  
श्री एस. किशनचन्दजी चोरडिया, मद्रास  
श्री गुमानमलजी चोरडिया, मद्रास  
श्री कवरलालजी बेताला, गोहाटी  
श्री पुन्नराजजी धीरदिया, व्यावर  
श्री प्रेमराजजी भंवरलालजी श्रीधामाल, दुर्ग  
श्री गुलाबचन्दजी मागीलालजी सुराणा,  
सिकन्दराबाद

स्तम्भ

श्री जसरजजी गणेशमलजी संचेती, जोधपुर  
श्री मगरचन्दजी फतेचन्दजी पारख, जोधपुर  
श्री पूसालालजी कस्तूरचन्दजी सुराणा,  
बालाघाट  
श्री मूलचन्दजी चोरडिया, कटगी  
श्री तिलोकचन्दजी सागरमलजी सचेती,  
मद्रास  
श्री जे. बुलीचन्दजी चोरडिया, मद्रास  
श्री हीराचन्दजी चोरडिया, मद्रास  
श्री एस. रतनचन्दजी चोरडिया, मद्रास  
श्री वर्द्धमान इन्डस्ट्रीज, कानपुर  
श्री एस. सायरचन्दजी चोरडिया, मद्रास  
श्री एस. बादलचन्दजी चोरडिया, मद्रास  
श्री एस. रिलचन्दजी चोरडिया, मद्रास  
श्री आर. परसनचन्दजी चोरडिया, मद्रास  
श्री अन्नराजजी चोरडिया, मद्रास  
श्री दीपचन्दजी बोकडिया, मद्रास  
श्री मिथीलालजी तिलोकचन्दजी सचेती, दुर्ग

१. श्री होरालालजी पद्मालालजी चोपड़ा, व्यावर
२. श्री दीपचन्दजी चन्दनमलजी चोरडिया,  
मद्रास
३. श्री ज्ञानराजजी मूषा, पाली
४. श्री खूबचन्दजी गादिया, व्यावर
५. श्री रतनलालजी उत्तमचन्दजी मोदी, व्यावर
६. श्री पद्मालालजी भागचन्दजी बोपरा,  
बागाटोला
७. श्री मिश्रालालजी धनराजजी विनायकिया,  
व्यावर
८. श्री प्रेमराजजी जलनलालजी मेहता, मेड़ता
९. श्री जडावमलजी माणिकचन्दजी बेताला  
बायसकोट
१०. श्री बस्तीमलजी मोहनलालजी बोहरा,  
(K. G. F.) एच बाडन
११. श्री केशरीमलजी जंबरीलालजी तालेरा,  
पाली
१२. श्री नेमीचन्दजी ललबाणी, बागाटोला
१३. श्री बिरदीचन्दजी प्रकाशचन्दजी तलेसरा,  
पाली
१४. श्री सिरैकँवर बाई धर्मपत्नी स्व.  
श्री मुमनचन्दजी भायड़, मयुरान्तकम
१५. श्री धानचन्दजी मेहता, जोधपुर
१६. श्री मूलचन्दजी सुजानमलजी सचेती, जोधपुर
१७. श्री लालचन्दजी मोहनलालजी कोठारी,  
भोडन
१८. श्री मैदानजी लाभचन्दजी सुराणा,  
धोवड़ी तथा नागीर
१९. श्री रावतमलजी भीकमचन्दजी पगारिया,  
बालाघाट

|                |     |             |     |
|----------------|-----|-------------|-----|
| दलीगृह         | १३६ | ग्रामाद     | १५६ |
| मुमगृह         | १३६ | प्रक्षेपगृह | १३६ |
| प्लावतसक विमान | ५५५ | भवन         | १५६ |
| भंगगृह         | २२५ | भूतगृह      | ११० |
| ह              | ११४ | मोहनगृह     | १३६ |
| गारक           | १२२ | यशस्वीगृह   | ११० |
| गारकशाला       | १२२ | मानशाला     | १८५ |
| गम्यविमान      | २२० | रूपकावतसरु  | ५५५ |
| गालगृह         | १३६ | सतागृह      | १३६ |
| गस्करस्थान     | ११० | सयन         | १११ |
| गस्करगृह       | ११० | वेश्यागार   | ११० |
| गुणामडप        | १३७ | वंशमणगृह    | ११३ |
| वकुल           | १५६ | शालगृह      | १३६ |
| गगगृह          | ११० | शून्यगृह    | ११० |
| गानागार        | ११० | सभा         | ११० |
| गसोधनगृह       | १३६ | सोधर्मकल्प  | ३८  |

## (घ) प्रकीर्णक स्थल

|            |     |             |     |
|------------|-----|-------------|-----|
| मतिगमन     | ११० | सूतपल       | ११० |
| मपद्वार    | ११० | द्वार       | ११० |
| म्राघातन   | २६६ | नगरनिद्रमन  | ११० |
| उक्कुवडिय  | १२३ | निर्गमन     | ११० |
| कान्तार    | १२८ | निर्वर्त्तन | ११० |
| कुहर       | १५६ | पानागार     | ११० |
| कदरा       | १५६ | पथ          | १२१ |
| खंडी       | ११० | मणिपीठिका   | २२५ |
| गिरिकन्दरा | १११ | महापथ       | १२१ |
| गोपुर      | १५६ | विवर        | १५६ |
| चतुर्मुख   | १६८ | श्मशान      | १११ |
| चतुष्क     | ११० | शृंगाटक     | ११० |
| चरवर       | ११० | सवर्त्तन    | ११० |
| छिडी       | ११० | सिंहगुफा    | ४६७ |
| त्रिक      | ११० | सुधर्मा सभा | १५६ |
| दरी        | १५६ |             |     |

प्रागमप्रकाशन समिति, ब्यावर

## अर्थसहयोगी सदस्यों की शुभ नामावली

महास्तम्भ

संरक्षक

१. श्री सेठ मोहनमलजी चोरडिया, मद्रास
२. श्री सेठ गोबराजजी चोरडिया, मद्रास
३. श्री सायरमलजी जेठमलजी चोरडिया, मद्रास
४. श्री एस. किशनचन्द्रजी चोरडिया, मद्रास
५. श्री गुमानमलजी चोरडिया, मद्रास
६. श्री कवरलालजी बेताला, गोहाटी
७. श्री पुजाराजी लोचोडिया, ब्यावर
८. श्री प्रेमराजजी भंवरलालजी श्रीधोमाल, दुर्ग
९. श्री गुस्ताबचन्दजी भागीलालजी सुराणा, सिक्करापाट

स्तम्भ

१. श्री जसराजजी गणेशमलजी संचेनी, जोधपुर
२. श्री मगरचन्दजी कतेचन्दजी पारख, जोधपुर
३. श्री पूनालालजी किस्तूरचन्दजी सुराणा, बालापाट
४. श्री मूलचन्दजी चोरडिया, कटगी
५. श्री तिलोकचन्दजी नागरमलजी संचेती, मद्रास
६. श्री जे. दुलीचन्दजी चोरडिया, मद्रास
७. श्री हीराचन्दजी चोरडिया, मद्रास
८. श्री एस. रतनचन्दजी चोरडिया, मद्रास
९. श्री बट्टमान इन्डस्ट्रीज, कानपुर
१०. श्री एस. सायरचन्दजी चोरडिया, मद्रास
११. श्री एस. बादलचन्दजी चोरडिया, मद्रास
१२. श्री एस. रिखचन्दजी चोरडिया, मद्रास
१३. श्री धार. परसनचन्दजी चोरडिया, मद्रास
१४. श्री अन्नराजजी चोरडिया, मद्रास
१५. श्री दीपचन्दजी बोक्डिया, मद्रास
१६. श्री मिथीलालजी तिलोकचन्दजी संचेती, दुर्ग

१. श्री हीरालालजी पन्नालालजी चोपड़ा, ब्यावर
२. श्री दीपचन्दजी चन्दनमलजी चोरडिया, मद्रास
३. श्री ज्ञानराजजी मूषा, पाली
४. श्री पुत्रचन्दजी गाडिया, ब्यावर
५. श्री रतनलालजी उत्तमचन्दजी मोदी, ब्यावर
६. श्री पद्मलालजी भागचन्दजी बोयरा, चागाटोला
७. श्री मिथीलालजी धनराजजी विनायकिया, ब्यावर
८. श्री प्रेमराजजी जतनलालजी मेहता, मेहता
९. श्री जहांगमलजी माणिकचन्दजी बेताला बागलकोट
१०. श्री बस्तीमलजी मोहनलालजी बोहरा, (K G F.) एव जाइन
११. श्री केशरीमलजी जैबरीलालजी ठालेरा, पाली
१२. श्री नेमोचन्दजी ललबाणी, चागाटोला
१३. श्री बिरदीचन्दजी प्रकाशचन्दजी तलेसरा, पाली
१४. श्री सिरिकैवर बाई धर्मपत्नी स्व. श्री सुमनचन्दजी भागड़, मयुरान्तकम
१५. श्री यानचन्दजी मेहता, जोधपुर
१६. श्री मूलचन्दजी मुजानमलजी संचेती, जोधपुर
१७. श्री लालचन्दजी मोहनलालजी कोठारी, गोठन
१८. श्री भैरुदानजी लामचन्दजी सुराणा, घोवडी तथा नागौर
१९. श्री रावतमलजी भोकरमचन्दजी पगारिया, बालापाट

- ० श्री सागरमलजी नोरतमलजी पोचा, मद्रास
- १ श्री धर्मोचन्दजी भागचन्दजी बोहरा, जूठा
- २ श्री मोहनराजजी बानिया, मद्रास
- ३ श्री चेतनमलजी गुराणा, मद्रास
- ४, श्री गणेशमलजी धर्मोचन्दजी कार्करिया,  
नागौर
५. बादलचन्दजी मेहता, इन्दौर
- ६ श्री हरकचन्दजी सागरमलजी वेताला, इन्दौर
- ७ श्री सुगनचन्दजी चोकडिया, इन्दौर
- ८ श्री इन्दरचन्दजी बंद, राजनादगांव
- ९ श्री मांगीलालजी धर्मोचन्नजी चोरडिया,  
चांगाटोला
- १० श्री रघुनाथमलजी लिखमोचन्दजी लोढ़ा,  
चागाटोला
- ११ श्री भवरलालजी मूलचन्दजी गुराणा, मद्रास
- १२ श्री सिद्धकरणजी बंद, चागाटोला
- १३ श्री जालमचन्दजी रत्नचन्दजी बाफणा,  
ग्रामरा
- १४ श्री भवरीमलजी चोरडिया, मद्रास
- १५ श्री हीरालालजी पद्मालालजी चोपड़ा,  
मजमेर
- १६ श्री घेवरचन्दजी पुतराजजी, मोहाटी
- १७ श्री मांगीलालजी चोरडिया, ग्रामरा
- १८ श्री भवरलालजी गोठी, मद्रास
- १९ श्री गुणचन्दजी दत्तलीचन्दजी कटारिया,  
बेल्लारी
- ४० श्री धर्मचन्दजी बोधरा, मद्रास
- ४१ श्री छोगमलजी हेमराजजी लोढ़ा, डोडी-  
लोहारा
- ४२ श्री मोहनलालजी पारसमलजी पगारिया,  
बंगलौर
- ४३ श्री जड़ायमलजी सुगनचन्दजी, मद्रास
- ४४ श्री पुतराजजी विजयराजजी, मद्रास
- ४५ श्री जबरचन्दजी गेलड़ा, मद्रास
- ४६ श्री सूरजमलजी सज्जनराजजी मेहता, कुण्डल

### सहयोगी सदस्य

- १ श्री पूनमनन्दजी नाहुडा, जोधपुर
२. श्री धर्मचन्दजी बाननन्दजी मोरी, ब्यावर
३. श्री चम्पानानजी मोठालालजी गहलेवा,  
जालना
४. श्री धननोदाई विनामहिवा, ब्यावर
५. श्री भवरनाथजी चोपड़ा, ब्यावर
- ६ श्री रतनलालजी चतर, ब्यावर
- ७ श्री जंजरीलालजी धर्मरनन्दजी कोठारी,  
ब्यावर
८. श्री वादरमलजी पुतराजजी बंट, कानपुर
९. श्री मोहनलालजी गुलाबचन्दजी चतर,  
ब्यावर
- १० श्री के. पुतराजजी बाफणा, मद्रास
- ११ श्री पुतराजजी बुधराजजी बोहरा, पीपलिया
१२. श्री चम्पालालजी बुधराजजी बाफणा, ब्यावर
१३. श्री नथमलजी मोहनलालजी लूणिया,  
चण्डाबल
१४. श्री मांगीलालजी प्रकाशचन्दजी हणवाल, बर
१५. श्री मोहनलालजी मंगलचन्दजी पगारिया,  
रायपुर
१६. श्री भवरलालजी गोतमचन्दजी पगारिया,  
कुनासपुरा
१७. श्री दुलेराजजी भवरलालजी कोठारी,  
कुनासपुरा
१८. श्री फूलचन्दजी गोतमचन्दजी काठेड़, पाली
१९. श्री रूपराजजी जोधराजजी मूया, पाली
२०. श्री पद्मालालजी मोतीलालजी गुराणा, पाली
२१. श्री देवकरणजी श्रीचन्दजी डोसी,  
मेड़तासिटी
२२. श्री माणकराजजी किशनराजजी, मेड़तासिटी
२३. श्री धर्मवराजजी जसवन्तराजजी मेहता  
मेड़तासिटी
२४. श्री बी. गजराजजी चोकडिया, सलेम
२५. श्री भवरलालजी विजयराजजी कार्करिया,  
बिल्लीपुरम्



१. श्री कनकराजजी मदनराजजी गोतिमा, जोधपुर
२. श्री हरकराजजी मेहता, जोधपुर
३. श्री मुमेरमनजी मेहता, जोधपुर
४. श्री देवरचन्दजी पारसमलजी टाटिया, जोधपुर
५. श्री गणेशमनजी नेमीचन्दजी टाटिया, जोधपुर
६. श्री चम्पालालजी हीरालालजी वागरेवा, जोधपुर
७. श्री मोहनलालजी चम्पालालजी गोठी, जोधपुर
८. श्री जमराजजी जवरीलालजी धारीवाल, जोधपुर
९. श्री मूलचन्दजी पारख, जोधपुर
१०. श्री ग्रामुस एण्ड कम्पनी, जोधपुर
११. श्री देवराजजी लालचन्दजी मेहता, जोधपुर
१२. श्री देवरचन्दजी किशोरमलजी पारख, जोधपुर
१३. श्री पुखराजजी मोहरा, जोधपुर
१४. श्री वक्करराजजी सुराणा, जोधपुर
१५. श्री लालचन्दजी सिरेमलजी बाला, जोधपुर
१६. श्री ताराचन्दजी केवलचन्दजी कर्णावट, जोधपुर
१७. श्री मिथीलालजी निखमीचन्दजी साह, जोधपुर
१८. श्री उत्तमचन्दजी मांगीलालजी, जोधपुर
१९. श्री मांगीलालजी रेलचन्दजी पारख, जोधपुर
२०. श्री उदयरजजी पुखराजजी सचेतो, जोधपुर
२१. श्री सरदारमल एण्ड कम्पनी, जोधपुर
२२. श्री रामचन्दजी मोहनलालजी, जोधपुर
२३. श्री नेमीचन्दजी डाकलिया, जोधपुर
२४. श्री देवरचन्दजी रूपराजजी, जोधपुर
२५. श्री मुन्नीलालजी, मूलचन्दजी, पुखराजजी गुलेच्छा, जोधपुर
२६. श्री सुन्दरबाई गोठी, महामन्दिर

२७. श्री मांगीलालजी चोरडिया, कुचेरा
२८. श्री पुखराजजी लोडा, (महामन्दिर) जोधपुर
२९. श्री इन्द्रचन्दजी मुकनचन्दजी, इन्दौर
३०. श्री भवरलालजी बाफणा, इन्दौर
३१. श्री जेठमलजी मोदी, इन्दौर
३२. श्री भीकमचन्दजी गणेशमलजी चौधरी, धूलिया
३३. श्री मुगनचन्दजी सचेतो, राजनादगांव
३४. श्री विजयलालजी प्रेमचन्दजी गोलेश्वा, राजनादगांव
३५. श्री श्रीमूलजी लालचन्दजी पारख, दुर्ग
३६. श्री ब्राह्मकरराजजी जसराजजी पारख, दुर्ग
३७. श्री मोक्षचन्दजी हेमराजजी पारख, दुर्ग
३८. श्री भवरलालजी मूषा, जयपुर
३९. श्री सरदारमलजी सुराणा, भिलाई
४०. श्री भवरलालजी रू परमलजी कांकरिया, भिलाई
४१. श्री गणेशमलजी हेमराजजी सोनी, भिलाई
४२. श्री रावतमलजी छाजेड, भिलाई
४३. श्री होरालालजी हस्तीमलजी, भिलाई
४४. श्री पुखराजजी छल्लाणी, करणगुडडी
४५. श्री प्रभाराजजी मिट्ठालालजी कामदार, चावडिया
४६. श्री भवरलालजी माणकचन्दजी सुराणा, मद्रास
४७. श्री भवरलालजी नवरतनमलजी सोखला, मेदहूपालियम
४८. श्री सूरजकरणजी सुराणा, लाम्बा
४९. श्री रतनलालजी लखपतराजजी, जोधपुर
५०. श्री हरकचन्दजी जुगराजजी बाफणा, बंगलोर
५१. श्री लालचन्दजी मोतीलालजी गार्दिया, बंगलोर
५२. श्री मम्पतराजजी कटारिया, जोधपुर
५३. श्री पुखराजजी कटारिया, जोधपुर
५४. श्री चिम्पनसिंहजी मोहनसिंहजी लोडा, ब्यावर

२०. श्री सागरमलजी नोरतमलजी पीना, मद्रास
२१. श्री धर्मचन्दजी भागचन्दजी बोहरा, नूठा
२२. श्री मोहनराजजी बालिया, भ्रमदाबाद
२३. श्री चेतनमलजी मुराणा, मद्रास
२४. श्री गणेशमलजी धर्मचन्दजी काकरिया, नागौर
२५. बादलचन्दजी मेहता, इन्दौर
२६. श्री हरकचन्दजी सागरमलजी येताला, इन्दौर
२७. श्री सुगनचन्दजी घोडिया, इन्दौर
२८. श्री इन्दरचन्दजी बंद, राजनादगांव
२९. श्री मागोलालजी धर्मचन्दजी चोरडिया, चागाटोला
३०. श्री रघुनाथमलजी लखमीचन्दजी सोडा, चागाटोला
३१. श्री भवरलालजी मूलचन्दजी मुराणा, मद्रास
३२. श्री सिद्धकरणजी बंद, चागाटोला
३३. श्री जालमचन्दजी रिखवचन्दजी बाफणा, भागरा
३४. श्री भवरीमलजी चोरडिया, मद्रास
३५. श्री हीरालालजी पन्नालालजी चोपड़ा, भ्रजमेर
३६. श्री घेवरचन्दजी पुखराजजी, गोहाटी
३७. श्री मागीलालजी चोरडिया, भागरा
३८. श्री भंवरलालजी गोठी, मद्रास
३९. श्री गुणचन्दजी दल्लीचन्दजी कटारिया, बेल्लारी
४०. श्री धर्मचन्दजी बोधरा, मद्रास
४१. श्री छोगमलजी हेमराजजी सोडा, डोडी-लोहारा
४२. श्री मोहनलालजी पारसमलजी पगारिया, बंगलौर
४३. श्री जड़ावमलजी सुगनचन्दजी, मद्रास
४४. श्री पुखराजजी विजयराजजी, मद्रास
४५. श्री जवरचन्दजी भेलड़ा, मद्रास
४६. श्री सूरजमलजी सज्जनराजजी मेहता, कुप्पल

## सहयोगी सदस्य

१. श्री गूनमचन्दजी नाहटा, जोधपुर
२. श्री धर्मचन्दजी वागचन्दजी मोरी, ब्यावर
३. श्री चम्पानालजी मोडालालजी मरुनेना, जालना
४. श्री धर्मवीरजी विनायकिया, ब्यावर
५. श्री भवरलालजी चोपड़ा, ब्यावर
६. श्री रतनलालजी चतर, ब्यावर
७. श्री जंरीलालजी धर्मचन्दजी कोठारी, ब्यावर
८. श्री वादरमलजी गुजराजजी बट, कानपुर
९. श्री मोहनलालजी गुलाबचन्दजी चतर, ब्यावर
१०. श्री के. पुतराजजी बाफणा, मद्रास
११. श्री पुतराजजी बुधराजजी बोहरा, पीपलिया
१२. श्री चम्पालालजी बुधराजजी बाफणा, ब्यावर
१३. श्री नथमलजी मोहनलालजी लूणिया, चण्डावल
१४. श्री मागीलालजी प्रकाशचन्दजी हणवाल, ब्यावर
१५. श्री मोहनलालजी मंगलचन्दजी पगारिया, रायपुर
१६. श्री भवरलालजी गीतमचन्दजी पगारिया, कुशालपुरा
१७. श्री दुलेराजजी भवरलालजी कोठारी, कुशालपुरा
१८. श्री फूलचन्दजी गीतमचन्दजी काडेड़, पाली
१९. श्री रूपराजजी जोधराजजी मूथा, पाली
२०. श्री पन्नालालजी मोतीलालजी मुराणा, पाली
२१. श्री देवकरणजी श्रीचन्दजी डोसी, मेड़तासिटी
२२. श्री माणकराजजी किशनराजजी, मेड़तासिटी
२३. श्री भ्रमूतराजजी जसवन्तराजजी मेहता, मेड़तासिटी
२४. श्री बी. मजराजजी बोकरडिया, सलेम
२५. श्री भवरलालजी विजयराजजी काकरिया, बिल्लीपुरम्

૨૧. શ્રી કનકરાજની મદનરાજની મોતિયા,  
 જોધપુર,  
 ૨૨. શ્રી હરકરાજનો મેહતા, જોધપુર  
 ૨૩. શ્રી મુબરમલનો મેહતિયા, જોધપુર  
 ૨૪. શ્રી પેશરચન્દનો પારમમલનો ટાટિયા,  
 જોધપુર  
 ૨૫. શ્રી ગણેશમલનો નેમીચન્દનો ટાટિયા, જોધપુર  
 ૨૬. શ્રી ચમ્પાલાલની હીરાલાલનો ચાળેચા,  
 જોધપુર  
 ૨૭. શ્રી મોહનલાલની ચમ્પાલાલનો ગોઠી,  
 જોધપુર  
 ૨૮. શ્રી જમરાજની જવરીલાલની ધારીલાલ,  
 જોધપુર  
 ૨૯. શ્રી મૂલચન્દની પારલ, જોધપુર  
 ૩૦. શ્રી પ્રામુલ ઇન્દ કમ્પની, જોધપુર  
 ૩૧. શ્રી દેવરાજની લાલચન્દની મેહતિયા,  
 જોધપુર  
 ૩૨. શ્રી પેશરચન્દની કિશોરમલની પારલ,  
 જોધપુર  
 ૩૩. શ્રી પુલરાજની ચોહરા, જોધપુર  
 ૩૪. શ્રી ચણ્ડરાજની મુરાણા, જોધપુર  
 ૩૫. શ્રી લાલચન્દની સિરેમલની ચાલા, જોધપુર  
 ૩૬. શ્રી તારાચન્દની કેવલચન્દની કર્ણાવટ,  
 જોધપુર  
 ૩૭. શ્રી મિથીલાલની લિલમીચન્દની સાઠ,  
 જોધપુર  
 ૩૮. શ્રી ઉત્તમચન્દની માંગીલાલની, જોધપુર  
 ૩૯. શ્રી માંગીલાલની રેલચન્દની પારલ, જોધપુર  
 ૪૦. શ્રી ઉદયરાજની પુતરાજની સવેતી, જોધપુર  
 ૪૧. શ્રી સરદારમલ ઇન્દ કમ્પની, જોધપુર  
 ૪૨. શ્રી રાયચન્દની મોહનલાલની, જોધપુર  
 ૪૩. શ્રી નેમીચન્દની ઢાકલિયા, જોધપુર  
 ૪૪. શ્રી પેશરચન્દની રૂપરાજની, જોધપુર  
 ૪૫. શ્રી મુખીલાલની, મૂલચન્દની, પુલરાજની  
 ગુલેન્દ્રા, જોધપુર  
 ૪૬. શ્રી સુન્દરચાઈ ગોઠી, મહામંદિર

૪૭. શ્રી માંગીલાલનો ચોરકિયા, કુષેરા  
 ૪૮. શ્રી પુલરાજનો સોઢા, (મહામંદિર) જોધપુર  
 ૪૯. શ્રી ઇન્દ્રચન્દની મુકનચન્દની, ઇન્દોર  
 ૫૦. શ્રી ખવરલાલની ચાપણા, ઇન્દોર  
 ૫૧. શ્રી જેટમલનો મોદો, ઇન્દોર  
 ૫૨. શ્રી મોકમચન્દની ગણેશમલની ચોધરી,  
 પૂલિયા  
 ૫૩. શ્રી મુખનચન્દની સવેતી, રાજનાદગાંવ  
 ૫૪. શ્રી વિજયલાલનો પ્રેમચન્દનો મોલેન્દ્રા,  
 રાજનાદગાંવ  
 ૫૫. શ્રી પોમૂલાલની લાલચન્દની પારલ, ઢુર્ગ  
 ૫૬. શ્રી શાસકરણનો જસરાજનો પારલ, ઢુર્ગ  
 ૫૭. શ્રી ઘોરાચન્દની હેમરાજની પારલ, ઢુર્ગ  
 ૫૮. શ્રી ખવરલાલની મૂચા, જયપુર  
 ૫૯. શ્રી સરદારમલનો મુરાણા, મિલાઈ  
 ૬૦. શ્રી ખવરલાલનો રૂ ગરમલની કાંકરિયા,  
 મિલાઈ  
 ૬૧. શ્રી ગણેશમલનો હેમરાજની સોની, મિલાઈ  
 ૬૨. શ્રી રાવતમલની દ્યોજેદ, મિલાઈ  
 ૬૩. શ્રી હીરાલાલની હસતીમલની, મિલાઈ  
 ૬૪. શ્રી પુલરાજની છન્ડાણી, કરણગુહરી  
 ૬૫. શ્રી પ્રેમરાજની મિટ્ટાલાલની કામદાર,  
 ચાવડિયા  
 ૬૬. શ્રી ખવરલાલની માળકચન્દનો મુરાણા,  
 મઢાલ  
 ૬૭. શ્રી ખવરલાલની નવરતનમલની સાંચલા,  
 મેટ્ટપાલિયમ  
 ૬૮. શ્રી સૂરજકરણની મુરાણા, લાન્ડા  
 ૬૯. શ્રી રતનલાલની લલપતરાજની, જોધપુર  
 ૭૦. શ્રી હરકચન્દનો ઝુમરાજની ચાપણા,  
 બેંગલોર  
 ૭૧. શ્રી લાલચન્દની મોતીલાલની ગાદિયા,  
 બેંગલોર  
 ૭૨. શ્રી સમ્પતરાજનો કટારિયા, જોધપુર  
 ૭૩. શ્રી પુલરાજનો કટારિયા, જોધપુર  
 ૭૪. શ્રી ચિમ્મનસિંહની મોહનસિંહનો લોઢા, બ્યાનર

૨૦. શ્રી સાગરમલજી નોરતમલજી પીચા, મદ્રાસ
૨૧. શ્રી ધર્મચંદ્રજી ભાગચંદ્રજી બોહરા, ઝૂંઠા
૨૨. શ્રી મોહનરાજજી બાલિયા, મહમદાવાદ
૨૩. શ્રી ચેતનમલજી મુરાણા, મદ્રાસ
૨૪. શ્રી ગણેશમલજી ધર્મચંદ્રજી કાકરિયા, નાગોર
૨૫. બાદલચંદ્રજી મેહતા, ઇન્દોર
૨૬. શ્રી હરકચંદ્રજી સાગરમલજી ઘેતાલા, ઇન્દોર
૨૭. શ્રી મુગનચંદ્રજી ચોકડિયા, ઇન્દોર
૨૮. શ્રી ઇન્દરચંદ્રજી વેંદ, રાજનાદગાંવ
૨૯. શ્રી માગીલાલજી ધર્મચંદ્રજી ચોરડિયા, ચાગાટોલા
૩૦. શ્રી રઘુનાથમલજી લિલ્લમીચંદ્રજી લોઢા, ચાગાટોલા
૩૧. શ્રી ભવરલાલજી મૂલચંદ્રજી મુરાણા, મદ્રાસ
૩૨. શ્રી સિદ્ધકરણજી વેંદ, ચાગાટોલા
૩૩. શ્રી જાલમચંદ્રજી રિલ્લચંદ્રજી વાફણા, ધાગરા
૩૪. શ્રી ભયરીમલજી ચોરડિયા, મદ્રાસ
૩૫. શ્રી હીરાલાલજી વપ્પાલાલજી ચોપડા, ધજમેર
૩૬. શ્રી પેયરચંદ્રજી પુત્રરાજજી, મોહાટી
૩૭. શ્રી માગીલાલજી ચોરડિયા, ધાગરા
૩૮. શ્રી ભવરલાલજી મોઠી, મદ્રાસ
૩૯. શ્રી મુણચંદ્રજી દલ્તોચંદ્રજી કઠારિયા, વેલ્લારી
૪૦. શ્રી ધમરચંદ્રજી બોધરા, મદ્રાસ
૪૧. શ્રી દાંગમલજી હેમરાજજી લોઢા, ડોંઢી-લોહારા
૪૨. શ્રી મોહનલાલજી પારસમનજી વગારિયા, વેંગલોર
૪૩. શ્રી જઢાવમલજી મુગનચંદ્રજી, મદ્રાસ
૪૪. શ્રી પુત્રરાજજી વિજયરાજજી, મદ્રાસ
૪૫. શ્રી જવરચંદ્રજી મેતડા, મદ્રાસ
૪૬. શ્રી મૂરજમલજી સમ્બરનાથજી મેહતા, કુપ્પલ

## સહયોગી સભ્ય

૧. શ્રી પૂનમચંદ્રજી નાહટા, જોધપુર
૨. શ્રી ધમરચંદ્રજી વાલચંદ્રજી મોદી, બ્યાવર
૩. શ્રી ચમ્પાલાલજી મોઠાલાલજી સકલેચા, જાલના
૪. શ્રી છગનીવાઈ વિનાયકિયા, બ્યાવર
૫. શ્રી ભવરલાલજી ચોપડા, બ્યાવર
૬. શ્રી રતનલાલજી ચતર, બ્યાવર
૭. શ્રી જંબરીલાલજી ધમરચંદ્રજી કોઠારી, બ્યાવર
૮. શ્રી વાદરમલજી પુત્રરાજજી વંડ, કાનપુર
૯. શ્રી મોહનલાલજી ગુનાવચંદ્રજી ચતર, બ્યાવર
૧૦. શ્રી કે. પુત્રરાજજી વાફણા, મદ્રાસ
૧૧. શ્રી પુત્રરાજજી બુધરાજજી બોહરા, પોપલિયા
૧૨. શ્રી ચમ્પાલાલજી બુધરાજજી વાફણા, બ્યાવર
૧૩. શ્રી નથમલજી મોહનલાલજી તૂણિયા, ચણ્ડાવલ
૧૪. શ્રી માગીલાલજી પ્રકાશચંદ્રજી રણવાલ, વર
૧૫. શ્રી મોહનલાલજી મગલચંદ્રજી વગારિયા, રાયપુર
૧૬. શ્રી ભવરલાલજી મોતમચંદ્રજી વગારિયા, કુસાલપુરા
૧૭. શ્રી દુલેરાજજી ભવરલાલજી કોઠારી, કુસાલપુરા
૧૮. શ્રી ફૂલચંદ્રજી મોતમચંદ્રજી કાઢેડ, પાલી
૧૯. શ્રી રૂપરાજજી જોધરાજજી મૂષા, પાલી
૨૦. શ્રી વપ્પાલાલજી મોતીલાલજી મુરાણા, પાલી
૨૧. શ્રી દેવરુણજી શોખંદ્રજી રોમી, મેહતાસિટી
૨૨. શ્રી માણરુણજી કિશનરાજજી, મેહતાસિટી
૨૩. શ્રી ધમ્મનરાજજી જમવનરાજજી મેહતા, મેહતાસિટી
૨૪. શ્રી ચો. ગરરાજજી ચોકડિયા, મનેમ
૨૫. શ્રી ભવરનાથજી વિજયરાજજી કાકરિયા, વિન્તોપુરમ્

૨૬. શ્રી કનકરાજજી મદનરાજજી ગોલિયા, જોધપુર.
૨૭. શ્રી હરકરાજજી મેહતા, જોધપુર
૨૮. શ્રી સુમેરમલજી મેહતિયા, જોધપુર
૨૯. શ્રી ધેવરચન્દજી પારસમલજી ટાટિયા, જોધપુર
૩૦. શ્રી ગણેશમલજી નેમીચન્દજી ટાટિયા, જોધપુર
૩૧. શ્રી ચમ્પાલાલજી હીરાલાલજી બાગરેલા, જોધપુર
૩૨. શ્રી મોહનલાલજી ચમ્પાલાલજી ગોઠી, જોધપુર
૩૩. શ્રી જસરાજજી જવરીલાલજી ધારીવાલ, જોધપુર
૩૪. શ્રી મૂલચન્દજી પારલ, જોધપુર
૩૫. શ્રી આમુમલ ઇન્ડ કમ્પની, જોધપુર
૩૬. શ્રી દેવરાજજી લાલચન્દજી મેહતિયા, જોધપુર
૩૭. શ્રી ધેવરચન્દજી કિશોરમલજી પારલ, જોધપુર
૩૮. શ્રી પુલરાજજી વોહરા, જોધપુર
૩૯. શ્રી વશ્વરાજજી સુરાણા, જોધપુર
૪૦. શ્રી લાલચન્દજી સિરેમલજી વાલા, જોધપુર
૪૧. શ્રી તારાચન્દજી કેવલચન્દજી કર્ણાવટ, જોધપુર
૪૨. શ્રી મિથીસાલજી લિલ્હમીચન્દજી સાઠ, જોધપુર
૪૩. શ્રી ઉત્તમચન્દજી માંગીલાલજી, જોધપુર
૪૪. શ્રી માંગીલાલજી રેલ્હચન્દજી પારલ, જોધપુર
૪૫. શ્રી હવરાજજી પુલરાજજી સચેતી, જોધપુર
૪૬. શ્રી સરદારમલ ઇન્ડ કમ્પની, જોધપુર
૪૭. શ્રી રાયચન્દજી મોહનલાલજી, જોધપુર
૪૮. શ્રી નેમીચન્દજી ઠાકતિયા, જોધપુર
૪૯. શ્રી ધેવરચન્દજી રૂપરાજજી, જોધપુર
૫૦. શ્રી મુખીલાલજી, મૂલચન્દજી, પુલરાજજી ગુલેચ્છા, જોધપુર
૫૧. શ્રી મુન્દરવાઈ ગોઠી, મહામન્દિર

૫૨. શ્રી મામીલાલજી ચોરડિયા, કુચેરા
૫૩. શ્રી પુલરાજજી લોઠા, (મહામન્દિર) જોધપુર
૫૪. શ્રી ઇન્દ્રચન્દજી મુકનચન્દજી, ઇન્દોર
૫૫. શ્રી મંવરલાલજી વાફળા, ઇન્દોર
૫૬. શ્રી જેઠમલજી મોદી, ઇન્દોર
૫૭. શ્રી ભીકમચન્દજી ગણેશમલજી ચૌધરી, ખૂલિયા
૫૮. શ્રી સુગનચન્દજી સચેતી, રાજનાદમાવ
૫૯. શ્રી વિજયસાલજી પ્રેમચન્દજી ગોલેચ્છા, રાજનાદમાવ
૬૦. શ્રી ધીસૂલાલજી લાલચન્દજી પારલ, ધુર્ગ
૬૧. શ્રી બ્રાસકરણજી જસરાજજી પારલ, ધુર્ગ
૬૨. શ્રી શ્રોલ્હચન્દજી હેમરાજજી પારલ, ધુર્ગ
૬૩. શ્રી ભવરલાલજી મૂયા, જયપુર
૬૪. શ્રી સરદારમલજી સુરાણા, ભિલાઈ
૬૫. શ્રી ભવરલાલજી રૂંગરમલજી કાંકરિયા, ભિલાઈ
૬૬. શ્રી ગણેશમલજી હેમરાજજી સોની, ભિલાઈ
૬૭. શ્રી રાવતમલજી છાજેડ, ભિલાઈ
૬૮. શ્રી હીરાસાલજી હસ્તીમલજી, ભિલાઈ
૬૯. શ્રી પુલરાજજી છલ્લાણી, કરણગુહી
૭૦. શ્રી પ્રેમરાજજી મિટ્ટાલાલજી કામદાર, ચાવડિયા
૭૧. શ્રી ભવરલાલજી માગકચન્દજી મુરાણા, મદ્રાસ
૭૨. શ્રી ભવરલાલજી નવરતનમલજી સાંજલા, મેટ્ટપાલિયમ
૭૩. શ્રી સૂરજકરણજી સુરાણા, લામ્બા
૭૪. શ્રી રતનલાલજી લખપતરાજજી, જોધપુર
૭૫. શ્રી હરકચન્દજી ઝુમરાજજી વાફળા, બેંગલોર
૭૬. શ્રી લાલચન્દજી મોતીલાલજી માદિયા, બેંગલોર
૭૭. શ્રી સમ્પતરાજજી કટારિયા, જોધપુર
૭૮. શ્રી પુલરાજજી કટારિયા, જોધપુર
૭૯. શ્રી ચિમ્મનસિંહજી મોહનસિંહજી લોઠા, વ

८०. श्री अखेचन्दजी भण्डारी, कलकत्ता  
 ८१. श्री बालचन्दजी थानमलजी भुरट, (कुचेरा)  
 कलकत्ता  
 ८२. श्री चन्दनमलजी प्रेमचन्दजी मोदी, भिलाई  
 ८३. श्री तिलोकचन्दजी प्रेमप्रकाशजी, अजमेर  
 ८४. श्री सोहनलालजी सोजतिवा, थांवला  
 ८५. श्री जीवराजजी भंवरलालजी, भंरूदा  
 ८६. श्री मांगीलालजी मदनलालजी, भंरूदा  
 ८७. श्री जीवराजजी पारसमलजी कोठारी,  
 मेडतासीटी  
 ८८. श्री भीमराजजी बागमार, कुचेरा  
 ८९. श्री गगारामजी इन्दरचन्दजी बोहरा, कुचेरा  
 ९०. श्री फकीरचन्दजी कमलचन्दजी श्रीश्रीमाल,  
 कुचेरा  
 ९१. श्री सोहनलालजी लूणकरणजी मुराणा,  
 कुचेरा  
 ९२. श्री प्रकाशचन्दजी जैन, नागौर  
 ९३. श्री भंवरलालजी रत्नचन्दजी नाहटा,  
 नागौर  
 ९४. श्री गूदरमलजी चम्पालालजी, गोठन  
 ९५. श्री पारसमलजी महावीरचन्दजी बाफणा,  
 गोठन  
 ९६. श्री भीमूलालजी, पारसमलजी, जवरीलालजी  
 कोठारी, गोठन  
 ९७. श्री माहनलालजी धारीवाल, पानी  
 ९८. श्री कानमलजी कोठारी, दादिया  
 ९९. श्री वर्धमान स्थानकजी जैन थावक मय,  
 इल्लाराजपुरा  
 १००. श्री जवरीलालजी शान्तिनलालजी मुराणा,  
 पुरारम  
 १०१. श्री पंथराजजी नेमोचन्दजी कर्गावट,  
 कलकत्ता  
 १०२. श्री रिद्धिचन्दजी रावतमलजी भुरट, मोहटाटी  
 १०३. श्री पुनराजजी बरनेवा, मझम  
 १०४. श्री कुशाचन्दजी गिरीचन्दजी मुराणा,  
 पुरारम

१०५. श्री माणकचन्दजी रतनलालजी मुणोत  
 नागौर  
 १०६. श्री सम्पतराजजी चोरड़िया, मद्रास  
 १०७. श्री कुन्दनमलजी पारसमलजी भण्डारी  
 बेंगलोर  
 १०८. श्री रामप्रसन्न ज्ञान प्रसार केन्द्र, चन्द्रपुर  
 १०९. श्री तेजराजजी कोठारी, मांगलियावास  
 ११०. श्री अमरचन्दजी चम्पालालजी छाजेड़  
 पादू बड़ी  
 १११. श्री मांगीलालजी शान्तिनलालजी इल्लाराज  
 हरसोलाव  
 ११२. श्री कमलकैवर ललवाणी धर्मपत्नी श्री  
 पारसमलजी ललवाणी, गोठन  
 ११३. श्री लक्ष्मीचन्दजी अशोककुमारजी  
 श्रीश्रीमाल, कुचेरा  
 ११४. श्री भवरलालजी मांगीलालजी बेताला,  
 ११५. श्री कचनदेवी एवं निर्मलादेवी, मझम  
 ११६. श्री पुनराजजी नाहरमलजी ललवाणी,  
 मद्रास  
 ११७. श्री चांदमलजी धनराजजी मोदी, अजमेर  
 ११८. श्री मांगीलालजी उत्तमचन्दजी बाफणा,  
 बेंगलोर  
 ११९. श्री इन्दरचन्दजी पुनराजजी बाफणा,  
 बेंगलोर  
 १२०. श्री चम्पालालजी मारुचन्दजी निगो,  
 कुचेरा  
 १२१. श्री संचालालजी बाफणा, पोरन  
 १२२. श्री भूरमलजी दुल्लोचन्दजी बं  
 मेडतासीटी  
 १२३. श्री पुनराजजी रिशतनलालजी  
 मिहन्दराबाद  
 १२४. श्रीमती रामकुंवर धर्मन  
 लोहा बम्बई  
 १२५. श्री भोकरमचन्दजी मा  
 (कुहालोर) मझम

०. श्री कनकराजजी मदनराजजी गोतिया, जोधपुर
१. श्री हरकराजजी मेहता, जोधपुर
२. श्री मुमेरमलजी मेड़तिया, जोधपुर
३. श्री घेवरचन्दजी पारसमलजी टाटिया, जोधपुर
४. श्री गणेशमलजी नेमीचन्दजी टाटिया, जोधपुर
५. श्री चम्पालालजी हीरालालजी वागरेबा, जोधपुर
६. श्री मोहनलालजी चम्पालालजी गोठी, जोधपुर
७. श्री जसराजजी जवरीलालजी धारीवाल, जोधपुर
८. श्री मूलचन्दजी पारख, जोधपुर
९. श्री भामुमल एण्ड कम्पनी, जोधपुर
१०. श्री देवराजजी लालचन्दजी मेड़तिया, जोधपुर
११. श्री घेवरचन्दजी किशोरमलजी पारख, जोधपुर
१२. श्री पुखराजजी बोहरा, जोधपुर
१३. श्री बच्छराजजी मुराणा, जोधपुर
१४. श्री लालचन्दजी सिरमलजी वाला, जोधपुर
१५. श्री लाराचन्दजी केवलचन्दजी कर्णावट, जोधपुर
१६. श्री मिथीलालजी लिखमीचन्दजी साड, जोधपुर
१७. श्री उत्तमचन्दजी मांगीलालजी, जोधपुर
१८. श्री मांगीलालजी रेशचन्दजी पारख, जोधपुर
१९. श्री उदयरजजी पुखराजजी सचेती, जोधपुर
२०. श्री सरदारमल एण्ड कम्पनी, जोधपुर
२१. श्री रामचन्दजी मोहनलालजी, जोधपुर
२२. श्री नेमीचन्दजी ठाकलिया, जोधपुर
२३. श्री घेवरचन्दजी रूपराजजी, जोधपुर
२४. श्री मुन्शीलालजी, मूलचन्दजी, पुखराजजी गुलेच्छा, जोधपुर
२५. श्री सुन्दरबाई गोठी, महामन्दिर

२६. श्री मांगीलालजी चोरडिया, कुचेरा
२७. श्री पुखराजजी लोडा, (महामन्दिर) जोधपुर
२८. श्री इन्द्रचन्दजी मुकनचन्दजी, इन्दौर
२९. श्री भवरलालजी बाफणा, इन्दौर
३०. श्री जेठमलजी मोदी, इन्दौर
३१. श्री भीकमचन्दजी गणेशमलजी चौधरी, धूलिया
३२. श्री सुगनचन्दजी सचेती, राजनादगांव
३३. श्री विजयलालजी प्रेमचन्दजी गोलेच्छा, राजनादगांव
३४. श्री घीसूलालजी लालचन्दजी पारख, दुर्ग
३५. श्री भासकरराजजी जसराजजी पारख, दुर्ग
३६. श्री मोखचन्दजी हेमराजजी पारख, दुर्ग
३७. श्री भवरलालजी मूषा, जयपुर
३८. श्री सरदारमलजी मुराणा, भिलाई
३९. श्री भवरलालजी रू गरमलजी कांकरिया, भिलाई
४०. श्री गणेशमलजी हेमराजजी सोनी, भिलाई
४१. श्री रावतमलजी छाजेड, भिलाई
४२. श्री हीरालालजी हस्तीमलजी, भिलाई
४३. श्री पुखराजजी छत्ताणी, करणगुडो
४४. श्री प्रेमराजजी मिट्टालालजी कामदार, चावडिया
४५. श्री भवरलालजी माणकचन्दजी मुराणा, मद्रास
४६. श्री भवरलालजी नवरतनमलजी सांजला, मेट्टुपालियम
४७. श्री मूरजकरणजी मुराणा, लाम्बा
४८. श्री रतनलालजी लखनराजजी, जोधपुर
४९. श्री हरकचन्दजी जुगराजजी बाफणा, बंगलोर
५०. श्री लालचन्दजी मोतीलालजी गादिया, बंगलोर
५१. श्री सम्पतराजजी कटारिया, जोधपुर
५२. श्री पुखराजजी कटारिया, जोधपुर
५३. श्री चिम्पनसिंहजी मोहनसिंहजी लोडा, ब्यावर

૨૦. શ્રી સાગરમલજી નોરતમલજી પીંચા, મદ્રાસ
૨૧. શ્રી ધર્મચંદ્રજી ભાગચંદ્રજી વોહરા, ઝૂંઠા
૨૨. શ્રી મોહનરાજજી ચાલિયા, ગ્રહમદાવાદ
૨૩. શ્રી ચેતનમલજી મુરાણા, મદ્રાસ
૨૪. શ્રી ગણેશમલજી ધર્મચંદ્રજી કાકરિયા, નાગોર
૨૫. વાદલચંદ્રજી મેહતા. ઇન્દોર
૨૬. શ્રી હરકચંદ્રજી સાગરમલજી ચેતાલા, ઇન્દોર
૨૭. શ્રી મુગનચંદ્રજી ચોકડિયા, ઇન્દોર
૨૮. શ્રી ઇન્દરચંદ્રજી વેંદ, રાજનાદગાંવ
૨૯. શ્રી માગીલાલજી ધર્મચંદ્રજી ચોરડિયા, ચાગાટોલા
૩૦. શ્રી રણનાથમલજી લિંગમીચંદ્રજી લોદ્ધા, ચાંગાટોલા
૩૧. શ્રી ભંવરલાલજી મૂલચંદ્રજી મુરાણા, મદ્રાસ
૩૨. શ્રી સિદ્ધકરણજી વેંદ, ચાગાટોલા
૩૩. શ્રી જાલમચંદ્રજી રિપ્પચંદ્રજી વાકળા, પ્રાગરા
૩૪. શ્રી ભવરીમલજી ચોરડિયા, મદ્રાસ
૩૫. શ્રી હીરાલાલજી વપ્પાલાલજી ચોપડા, પ્રતમેર
૩૬. શ્રી પેવરચંદ્રજી પુત્રરાજજી, મોહાટી
૩૭. શ્રી માગીલાલજી ચોરડિયા, પ્રાગરા
૩૮. શ્રી ભવરલાલજી મોટી, મદ્રાસ
૩૯. શ્રી મુણ્ણચંદ્રજી દન્તીચંદ્રજી કઠારિયા, બેલ્તારી
૪૦. શ્રી ધમરચંદ્રજી ચોવરા, મદ્રાસ
૪૧. શ્રી ધ્યામલજી હેમરાજજી લોદ્ધા, રોહી-લોહારા
૪૨. શ્રી મોહનલાલજી વાસ્તમજી વગારિયા, ચેંગલાર
૪૩. શ્રી જહાંગમજી મુગનચંદ્રજી, મદ્રાસ
૪૪. શ્રી પુત્રરાજજી રિવરાજજી, મદ્રાસ
૪૫. શ્રી જહરચંદ્રજી ચેતડા, મદ્રાસ
૪૬. શ્રી મુરલિચંદ્રજી મગ્ગનરાજજી મેહતા, કુપ્પાલ

## સહયોગી સભ્ય

૧. શ્રી પૂનમચંદ્રજી નાહટા, જોધપુર
૨. શ્રી અમરચંદ્રજી વાલચંદ્રજી મોટી, બ્યાવર
૩. શ્રી ચમ્પાલાલજી મીઠાલાલજી સરુલેચા, જાલના
૪. શ્રી દ્યગનીવાઈ વિનાયકિયા, બ્યાવર
૫. શ્રી ભવરલાલજી ચોપડા, બ્યાવર
૬. શ્રી રતનલાલજી ચતર, બ્યાવર
૭. શ્રી જંવરીલાલજી અમરચંદ્રજી કોઠારી, બ્યાવર
૮. શ્રી વાદરમલજી પુત્રરાજજી વંટ, કાનપુર
૯. શ્રી મોહનલાલજી મુલાયચંદ્રજી ચતર, બ્યાવર
૧૦. શ્રી કે. પુત્રરાજજી વાકળા, મદ્રાસ
૧૧. શ્રી પુત્રરાજજી બુધરાજજી વોહરા, પીપલિયા
૧૨. શ્રી ચમ્પાલાલજી બુધરાજજી વાકળા, બ્યાવર
૧૩. શ્રી નથમલજી મોહનલાલજી લૂણિયા, ચણ્ડાવલ
૧૪. શ્રી માગીલાલજી પ્રકાશચંદ્રજી રુગવાલ, વાલી
૧૫. શ્રી મોહનલાલજી મગલચંદ્રજી વગારિયા, રાયપુર
૧૬. શ્રી ભવરલાલજી મોતમચંદ્રજી વગારિયા, કુસાલપુરા
૧૭. શ્રી દુલેરાજજી ભવરલાલજી કોઠારી, કુસાલપુરા
૧૮. શ્રી ફૂલચંદ્રજી મોતમચંદ્રજી કાંડેડ, વાલી
૧૯. શ્રી રૂપરાજજી જોધરાજજી મૂધા, વાલી
૨૦. શ્રી વપ્પાલાલજી મોનોલાલજી મુરાણા, વાલી
૨૧. શ્રી દેવકરણજી શ્રીચંદ્રજી રોમો, મેડતામિટો
૨૨. શ્રી માણુકરાજજી રિજનરાજજી, મેડતામિટો
૨૩. શ્રી ધમ્પુત્રરાજજી રમચંદ્રરાજજી મેહતા, મેડતામિટો
૨૪. શ્રી ચી. ગજરાજજી ચોકડિયા, મેમે
૨૫. શ્રી ભવરનાથજી રિવરાજજી કાકરિયા, વિન્નોપુરમ્



६. श्री कनकराजजी मदनराजजी गोलिया,  
जोधपुर
७. श्री हरकराजजी मेहता, जोधपुर
८. श्री मुमेरमलजी मेड़तिया, जोधपुर
९. श्री देवरचन्दजी पारसमलजी टाटिया,  
जोधपुर
१०. श्री गणेशमलजी नेमीचन्दजी टाटिया, जोधपुर
११. श्री चम्पालालजी हीरालालजी बागरेचा,  
जोधपुर
१२. श्री मोहनलालजी चम्पालालजी गोठी,  
जोधपुर
१३. श्री जसरराजजी जवरीलालजी धारीवाल,  
जोधपुर
१४. श्री मूलचन्दजी पारख, जोधपुर
१५. श्री भ्रासुमल एण्ड कम्पनी, जोधपुर
१६. श्री देवराजजी लालचन्दजी मेड़तिया,  
जोधपुर
१७. श्री देवरचन्दजी किशोरमलजी पारख,  
जोधपुर
१८. श्री पुखराजजी वोहरा, जोधपुर
१९. श्री बच्चराजजी सुराणा, जोधपुर
२०. श्री लालचन्दजी सिरेमलजी बाला, जोधपुर
२१. श्री ताराचन्दजी केवलचन्दजी कर्णावट,  
जोधपुर
२२. श्री मिथीलालजी लिलमोचन्दजी साड,  
जोधपुर
२३. श्री उत्तमचन्दजी मांगीलालजी, जोधपुर
२४. श्री मांगीलालजी रेलचन्दजी पारख, जोधपुर
२५. श्री उदयरजजी पुखराजजी सचेती, जोधपुर
२६. श्री सरदारमल एण्ड कम्पनी, जोधपुर
२७. श्री रायचन्दजी मोहनलालजी, जोधपुर
२८. श्री नेमीचन्दजी डाकलिया, जोधपुर
२९. श्री देवरचन्दजी रूपराजजी, जोधपुर
३०. श्री मुन्नीलालजी, मूलचन्दजी, पुखराजजी  
गुलेच्छा, जोधपुर
३१. श्री गजराजजी गोरी मठामन्दिर

५२. श्री मांगीलालजी चोरडिया, कुचेरा
५३. श्री पुखराजजी लोढा, (महामन्दिर) जोधपुर
५४. श्री इन्द्रचन्दजी मुकनचन्दजी, इन्दौर
५५. श्री भवरलालजी बाफणा, इन्दौर
५६. श्री जेठमलजी मोदी, इन्दौर
५७. श्री भीकमचन्दजी गणेशमलजी चौधरी,  
धूलिया
५८. श्री सुगनचन्दजी सचेती, राजनादगाँव
५९. श्री विजयलालजी प्रेमचन्दजी गोलिच्छा,  
राजनादगाँव
६०. श्री बीमूलालजी लालचन्दजी पारख, दुर्ग
६१. श्री भासकरराजजी जसरराजजी पारख, दुर्ग
६२. श्री श्रोत्रचन्दजी हेमराजजी पारख, दुर्ग
६३. श्री भवरलालजी मूया, जयपुर
६४. श्री सरदारमलजी सुराणा, भिलाई
६५. श्री भवरलालजी इंदरमलजी कांकरिया,  
भिलाई
६६. श्री गणेशमलजी हेमराजजी सोनी, भिलाई
६७. श्री रावतमलजी छाजेड़, भिलाई
६८. श्री हीरालालजी हस्तीमलजी, भिलाई
६९. श्री पुखराजजी छत्ताणी, करणगुडडी
७०. श्री प्रेमराजजी मिट्टालालजी कामदार,  
चावडिया
७१. श्री भवरलालजी माणकचन्दजी सुराणा,  
मद्रास
७२. श्री भवरलालजी नवरतनमलजी साँखला,  
मैदूपालियम
७३. श्री मूरजकरणजी सुराणा, लाम्बा
७४. श्री रतनलालजी लखपतराजजी, जोधपुर
७५. श्री हरकचन्दजी जुगराजजी बाफणा,  
बंगलोर
७६. श्री लालचन्दजी मोतीलालजी गादिया,  
बंगलोर
७७. श्री सम्पतराजजी कटारिया, जोधपुर
७८. श्री पुखराजजी कटारिया, जोधपुर
७९. श्री चिम्पनसिंहजी मोहनसिंहजी लोढा, ब्या...

२०. श्री सागरमलजी नोरतमलजी पीचा, मद्रास
२१. श्री धर्मीचन्दजी भागचन्दजी बोहरा, झूठा
२२. श्री मोहनराजजी बालिया, ग्रहमदाबाद
२३. श्री चेतनमलजी सुराणा, मद्रास
२४. श्री गणेशमलजी धर्मीचन्दजी काकरिया, नागौर
२५. बादलचन्दजी मेहता, इन्दौर
२६. श्री हरकचन्दजी सागरमलजी वेताला, इन्दौर
२७. श्री मुगनचन्दजी बोकडिया, इन्दौर
२८. श्री इन्दरचन्दजी वैद, राजनादगाव
२९. श्री मागीलालजी धर्मीचन्मजी चोरडिया, चांगाटोला
३०. श्री रघुनाथमलजी लिखमीचन्दजी लोढा, चागाटोला
३१. श्री भवरलालजी मूलचन्दजी सुराणा, मद्रास
३२. श्री सिद्धकरणजी वैद, चागाटोला
३३. श्री जालमचन्दजी रिलवचन्दजी बाकणा, आगरा
३४. श्री भवरीमलजी चोरडिया, मद्रास
३५. श्री हीरालालजी पन्नालालजी चोपड़ा, धजमेर
३६. श्री धेवरचन्दजी पुषराजजी, गोहाटी
३७. श्री मामीलालजी चोरडिया, आगरा
३८. श्री भंवरलालजी गोठी, मद्रास
३९. श्री गुणचन्दजी दस्तीचन्दजी कटारिया, बेलतारी
४०. श्री प्रमरचन्दजी बोधरा, मद्रास
४१. श्री छोगमलजी हेमराजजी लोड़ा, डोडी-लोहार
४२. श्री मोहनलालजी पारसमलजी पगारिया, बंगलोर
४३. श्री जड़ावमलजी मुगनचन्दजी, मद्रास
४४. श्री पुषराजजी विजयराजजी, मद्रास
४५. श्री जवरचन्दजी गेलड़ा, मद्रास
४६. श्री मूरजमलजी सज्जनराजजी मेहता, कुणल

### सहयोगी सदस्य

१. श्री पूनमचन्दजी नाहटा, जोधपुर
२. श्री प्रमरचन्दजी बालचन्दजी मोदी, ब्यावर
३. श्री चम्पालालजी मोठालालजी सरुलेचा, जालना
४. श्री छगनीवाई विनायकिया, ब्यावर
५. श्री भवरलालजी चोपड़ा, ब्यावर
६. श्री रतनलालजी चतर, ब्यावर
७. श्री जंवरोलालजी प्रमरचन्दजी कोठारी, ब्यावर
८. श्री वाधरमलजी पुषराजजी बंट, कानपुर
९. श्री मोहनलालजी गुलाबचन्दजी चतर, ब्यावर
१०. श्री के. पुषराजजी बाकणा, मद्रास
११. श्री पुषराजजी बुधराजजी बोहरा, पोपलिया
१२. श्री चम्पालालजी बुधराजजी बाकणा, ब्यावर
१३. श्री नथमलजी मोहनलालजी लूणिया, चण्डावल
१४. श्री मांगीलालजी प्रकाशचन्दजी हणवाल, ब
१५. श्री मोहनलालजी मंगलचन्दजी पगारिया, रायपुर
१६. श्री भवरलालजी गोतमचन्दजी पगारिया, कुशालपुरा
१७. श्री दुलेराजजी भवरलालजी कोठारी, कुशालपुरा
१८. श्री फूलचन्दजी गोतमचन्दजी काठेड़, पाली
१९. श्री रूपराजजी जोधराजजी मूषा, पाली
२०. श्री पन्नालालजी मोतीलालजी सुराणा, पाली
२१. श्री देवकरणजी श्रीचन्दजी डोसी, मेड़तासिटी
२२. श्री माणकराजजी किशनराजजी, मेड़तासिटी
२३. श्री प्रमूतराजजी जसवन्तराजजी मेहता, मेड़तासिटी
२४. श्री वो. गजराजजी बोकडिया, सतम
२५. श्री भवरलालजी विजयराजजी काकरिया, बिस्लीपुरम्

०. श्री कनकराजजी मदनराजजी गोसिया,  
जोधपुर
१. श्री हरकराजजी मेहता, जोधपुर
२. श्री मुमेरमलजी मेड़तिया, जोधपुर
३. श्री घेवरचन्दजी पारसमलजी टाटिया,  
जोधपुर
४. श्री गणेशमलजी नेमोचन्दजी टाटिया, जोधपुर
५. श्री चम्पालालजी हीरालालजी बागरेचा,  
जोधपुर
६. श्री मोहनलालजी चम्पालालजी गोठी,  
जोधपुर
७. श्री जसरामजी जवरीलालजी धारीवाल,  
जोधपुर
८. श्री मूलचन्दजी पारख, जोधपुर
९. श्री घासुमल एण्ड कम्पनी, जोधपुर
१०. श्री देवराजजी लालचन्दजी मेड़तिया,  
जोधपुर
११. श्री घेवरचन्दजी किशोरमलजी पारख,  
जोधपुर
१२. श्री पुखराजजी वोहरा, जोधपुर
१३. श्री वल्लभराजजी सुराणा, जोधपुर
१४. श्री लालचन्दजी सिरेमलजी बाला, जोधपुर
१५. श्री ताराचन्दजी केवलचन्दजी कर्णावट,  
जोधपुर
१६. श्री मिथीलालजी लिखमोचन्दजी सांड,  
जोधपुर
१७. श्री उत्तमचन्दजी मांगीलालजी, जोधपुर
१८. श्री मांगीलालजी रेलचन्दजी पारख, जोधपुर
१९. श्री उदयरामजी पुखराजजी सचेती, जोधपुर
२०. श्री सरदारमल एण्ड कम्पनी, जोधपुर
२१. श्री रायचन्दजी मोहनलालजी, जोधपुर
२२. श्री नेमोचन्दजी डाकलिया, जोधपुर
२३. श्री घेवरचन्दजी रूपराजजी, जोधपुर
२४. श्री मुन्नीलालजी, मूलचन्दजी, पुखराजजी  
गुलेच्छा, जोधपुर
२५. श्री मुन्दरवाई गोठी, महामन्दिर

२२. श्री मांगीलालजी चोरडिया, कुचेरा
२३. श्री पुखराजजी लोडा, (महामन्दिर) जोधपुर
२४. श्री इन्द्रचन्दजी मुकनचन्दजी, इन्दौर
२५. श्री भवरलालजी बाफणा, इन्दौर
२६. श्री जेठमलजी मोदी, इन्दौर
२७. श्री भीकमचन्दजी गणेशमलजी चौधरी,  
पूलिया
२८. श्री मुगनचन्दजी सचेती, राजनादगांव
२९. श्री विजयलालजी प्रेमचन्दजी गोलेच्छा,  
राजनादगांव
३०. श्री धीमूलालजी लालचन्दजी पारख, दुर्ग
३१. श्री भासकरराजजी जसरामजी पारख, दुर्ग
३२. श्री मोक्षचन्दजी हेमराजजी पारख, दुर्ग
३३. श्री भवरलालजी मूषा, जयपुर
३४. श्री सरदारमलजी सुराणा, भिलाई
३५. श्री भवरलालजी रूगरमलजी कांकरिया,  
भिलाई
३६. श्री गणेशमलजी हेमराजजी मोनी, भिलाई
३७. श्री रावतमलजी छाजेड, भिलाई
३८. श्री हीरालालजी हस्तीमलजी, भिलाई
३९. श्री पुखराजजी छत्ताणी, करणगुडो
४०. श्री प्रेमराजजी मिठ्ठालालजी कामदार,  
चावडिया
४१. श्री भवरलालजी माणकचन्दजी सुराणा,  
मद्रास
४२. श्री भवरलालजी नवरतनमलजी सांखला,  
मेट्टूपालियम
४३. श्री सूरजकरराजजी सुराणा, लाम्बा
४४. श्री रतनलालजी लखपतराजजी, जोधपुर
४५. श्री हरकचन्दजी जुगराजजी बाफणा,  
बंगलोर
४६. श्री लालचन्दजी मोतीलालजी गादिया,  
बंगलोर
४७. श्री सम्पतराजजी कटारिया, जोधपुर
४८. श्री पुखराजजी कटारिया, जोधपुर
४९. श्री चिम्पनसिंहजी मोहनसिंहजी लोडा, ब्यावर